महासागर

उनका भौतिक, रासायनिक
तथा
सामान्य जैविक अध्ययन

लेखक

एच.यू. स्वेरड्रप

मार्टिन डब्लू. जोनसन

रिचार्ड एच. फ्लेमिंग

अनुवादक

रूपचंद भंडारी एम.एससी., पीएच.डी.

तारूलाल दशोरा — श्री वीरेन्द्र कुमार

प्रकाशक

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

प्रस्तावना

हिन्दी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने के लिये यह आवश्यक है कि इनमें उच्चकोटि के प्रामाणिक ग्रंथ अधिक से अधिक संख्या में तैयार किये जायें। भारत सरकार ने इस लक्ष्य की सिद्धि के लिये वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग का निर्माण किया था। आयोग ने हिन्दी में अनुवाद तथा मौलिक लेखन की एक वृहत् योजना बनाई थी जिसे कार्यान्वित करने के लिए देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में पहले अनुवाद-अभिकरण और तत्पश्चात् पूर्णकालिक केन्द्रों की स्थापना की थी। किन्तु हिन्दी में ग्रन्थ-निर्माण की प्रक्रिया अभीष्ट गति से अग्रसर नहीं हो रही थी। इसलिए 1969 में पांच हिन्दी भाषी प्रदेशों में हिन्दी की तथा अहिन्दी भाषी प्रदेशों में प्रादेशिक भाषाओं की ग्रन्थ अकादमियों की स्थापना की गई और उक्त अभिकरण व केन्द्र इनमें सम्मिलित कर दिये गए।

प्रस्तुत पुस्तक का अनुवाद राजस्थान विश्वविद्यालय में स्थापित अनुवाद-अभिकरण के तत्वावधान में करवाया गया था। समें समुद्र विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों का तथ्यपूर्ण अध्ययन किया गया है तथा कुछ परीक्षात्मक रूप से प्रमेय भी प्रस्तुत किये गये हैं।

इस पुस्तक में जहां एक ओर समुद्री जल के गुण-धर्म, समुद्री धाराओं, तंरगों तथा ज्वारभाटाओं आदि के भौतिक गुण-धर्मों का अध्ययन किया गया है वहां समुद्री जल की रासायनिकी, समुद्री जल में ताप, लवणता तथा घनत्व का वितरण तथा जीवधारियों का समुद्री जल की संरचना पर प्रभाव आदि के विषय में भी अध्ययन किया गया है। साथ ही समुद्र में विभिन्न प्रकार के जीवधारियों की उत्पत्ति, विकास, संरक्षण तथा उनके अन्तंसम्बन्ध के विषय में भी महत्वपूर्ण आंकड़े दिये गये हैं।

प्रत्येक विषय के अन्त में विस्तृत संदर्भ-सूची भी दी गई है।

शिवचरण माथुर
अध्यक्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

विषय-सूची

अध्याय		पृष्ठ संख्या
1.	प्रस्तावना	1
2.	पृथ्वी और महासागर के क्षेत्र	9
3.	समुद्र-जल के भौतिक गुण-धर्म	53
4.	ताप, लवणता और घनत्व का सामान्य वितरण	108
5.	समुद्र में चर राशियों का वितरण	168
6.	समुद्री जल की रासायनिकी	181
7.	जीवधारी और सागर-जल की रचना	249
8.	जैव पर्यावरण के रूप में सागर	291
9.	सागर की जीव संख्या	314
10.	समुद्र में प्रेक्षण और संग्रहण	369
11.	समुद्री धाराओं के सामान्य लक्षण	438
12.	स्थैतिकी तथा शुद्ध गति विज्ञान	451

प्राक्कथन

चार वर्ष पूर्व जब हमने इस पुस्तक की तैयारी आरम्भ की तो हमने भलीभांति पुरस्थापित समुद्र-विज्ञान का सर्वेक्षण देने की आशा की थी। परन्तु तुरन्त ही यह प्रत्यक्ष हो गया कि पिछले कई वर्षों में अर्जित सूचना-राशि का तथा कई नये विचार-बिन्दुओं का, जिनकी अभिवृद्धि की गई है, संक्षिप्त वर्णन तथा संश्लेषण किये बिना पुस्तक को अद्यतन नहीं बनाया जा सकता। परिणाम स्वरूप पुस्तक मूलत: योजित विषय-क्षेत्र से कहीं अधिक विस्तृत हो गई है और परिप्रेक्ष्य लेखकों की वैयक्तिक संकलपना से अभि-रंजित हो गया है। समुद्र में विकिरण का अवशोषण, समुद्री जल की रासायनिक संरचना से जीवधारियों का सम्बन्ध अथवा समुद्र की उत्पादकता आदि कई प्रकरणों के विवेचन से कुछ प्रयोग सम्बन्धी निष्कर्ष निकले हैं जो कि वास्तविकता से भी अधिक प्रतिष्ठित रूप में शायद यहां प्रस्तुत किये गये हैं। प्राक्पक्व सामान्यीकरण की जोखिम उठा कर भी, असंबंधित प्रेक्षणों के केवल परिगणन और अन्तर्द्वन्द्वी व्याख्याओं की तुलना में हमने निश्चित धारणाएँ यह मान कर पसन्द की हैं कि इस प्रकार चयनित उपचार अधिक रोचक होगा।

इस पुस्तक का उद्देश्य यथेष्ट तथ्यपूर्ण सूचनाएं देना है, लेकिन सर्वोपरि उद्देश्य यह है कि यह पुस्तक विषय से अल्प-परिचित तथा विशेषज्ञ दोनों ही के लिये समुद्र-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के समन्वय में सहायक हो। अध्याय के अन्त में साहित्य की सूची को सर्वांगपूर्ण करने का उद्देश्य नहीं है, परन्तु यह अर्वाचीन प्रकाशनों की ओर मार्ग-दर्शन का काम देगी। जहां भी सम्भव हुआ है, मौलिक लेखों के स्थान पर उन पुस्तकों का संदर्भ दिया गया है जिनमें व्यापक संदर्भ-ग्रंथ-सूचियां दी हुई हैं।

हमारी पुस्तक के कई भागों की रचनात्मक आलोचना के लिये तथा अनेक सहायक सुझावों के लिये हम समुद्र-विज्ञान की स्क्रिप्स संस्था में कार्य करने वाले सहकर्मियों के प्रति बहुत आभारी हैं। कारनेगी के अन्तिम परि-भ्रमण की अप्रकाशित दत्तसामग्री का अबाधित उपयोग करने देने के लिये हम वाशिंगटन की कारनेगी संस्था के भू-चुम्बकत्व विभाग के निदेशक जॉन ए. फ्लेमिंग के भी अनुगृहीत हैं।

हमारे लिये अनेक संगणनाएँ करने में सहायता के लिये डा. एल. लेक को, अधिकांश ग्राफ और चार्ट वनाने के लिये श्री ई. सी. ला फोण्ड को, अमरीकी पैट्रोल भूगर्भशास्त्र संघ को तथा न्यूयार्क की जी. एम. निर्माण कम्पनी को उनके द्वारा प्रकाशित निदर्श-चित्रों के उपयोग के लिये और शिकागो विश्वविद्यालय प्रेस को गुड-वेस नक्शों के उपयोग के लिये धन्यवाद देते हैं। सुश्री रूथ रेगन ने हस्तलेख और प्रूफ शुद्ध करने और जांच करने में तथा संदर्भ सूची तैयार करने में अमूल्य सहायता दी है, उसके लिये भी हम आभारी हैं।

अध्याय 1

प्रस्तावना

समुद्र विज्ञान समुद्र सम्बन्धी सब अध्ययन करता है और समुद्री विज्ञान से संबंधित जैसे कि महासागरीय सीमाएँ और अधःस्थल स्थलाकृति, समुद्री जल की भौतिकी और रासायनिकी, धाराओं के प्रकार और समुद्री प्राणी विज्ञान की कई अवस्थाएँ, आदि विषयों में प्राप्त ज्ञान का संकलन करता है। विभिन्न समुद्री विज्ञानों के निकट अन्तः सम्बन्ध और पारस्परिक निर्भरता बहुत पहले से अभिज्ञात है। इस प्रकार 1902 में समुद्री अध्ययन की अन्तर्राष्ट्रीय कौंसिल के प्रशासन की पहली रिपोर्ट इस प्रकार है :—

"......यह आरम्भ से ही प्रकट था कि भौतिक अवस्थाओं का, महासागरीय जल की रासायनिक प्रकृति, धाराओं आदि का अध्ययन जीवों से सम्बन्धित समस्याओं की छानबीन करने के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है तथा दूसरी और तैरते हुये जीवों का अध्ययन जल की सर्वेक्षण समस्याओं के समाधान के लिये विशेष महत्व रखता है और इसके फलस्वरूप इन दो मुख्य भागों के बीच कोई तीव्र रेखा कभी नहीं खींची जानी चाहिये।"

1908 में **इन्टरनेशनल रिव्यू डेर जेसामटेन हाइड्रो बॉयलोजी एन्ड हाइड्रोग्राफी** के प्रथम अंक के साथ दिये गये विवरण पत्र में यह विचार और भी अधिक स्पष्ट रूप से प्रकट किया गया है।

सबसे बढ़कर सम्पादक, जल के प्राणी सम्बन्धी और जल लेखीय भूगर्भ सम्बन्धी हमारे ज्ञान के संश्लेषण की महत्ता को मानते हैं। खोज के ये दोनों क्षेत्र अभिन्न हैं चूँकि जल चाहे, नदी, झील और समुद्र के रूप में हो, जीव के लिये माध्यम हुए बिना पृथ्वी के स्वरूप को बनाने का कारक कभी नहीं हो सकता और साथ ही दूसरी ओर वह भूपृष्ट को बनाने में महत्वपूर्ण प्रभाव डाले बिना जीव के लिये कभी माध्यम नहीं हो सकता।

अब चूंकि जल का जीव विज्ञान उसमें क्या पाया जाता है उसके वर्णन से गुजरकर प्राणी और वनस्पति जीवन के कारण और उत्पत्ति तथा उनके साथ लगे हुए प्रपंचों के सम्बन्ध में छानबीन करने तक पहुँच गया है, अतएव जीवशास्त्री के

लिये भिन्न-भिन्न जल की प्रकृति उनकी भौतिकी और रासायनिकी तथा उनके अधःस्थल का रूप और इतिहास का वास्तव में समझना अत्यन्त आवश्यक हो गया है।

1900 के बाद तमाम समुद्री विज्ञान में बड़ी प्रगति हुई है और विशिष्ट क्षेत्रों में सम्पर्क अधिकाधिक घनिष्ट हो गया है। यह विकास कुछ तो उन्नत तकनीक के कारण हुआ है और कुछ प्रकृति के प्रपंचों के लिये सैद्धान्तिक अनुसन्धान और प्रयोग शाला अध्ययनों के उपयोग के कारण।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में उत्तरी और दक्षिणी महासागर के कुछ हिस्सों को छोड़कर स्थल और जल का वितरण ज्ञात था परन्तु अब अधिकांश तट रेखाओं के नक्शे बनाये जा चुके हैं। रेडियो समय संकेत के पुरस्थापन ने देशान्तर रेखाओं का यथार्थ निर्धारण और इस प्रकार गौण त्रुटियों का संशोधन, जो पहले नहीं टाली जा सकती थी, सम्भव बना दिया है। लगभग 25 वर्ष पूर्व, नौचालन के लिये छिछले पानी के महत्वपूर्ण क्षेत्रों को, जहाँ कि लीड और लाइन की सहायता से विस्तृत गहराई मापन शीघ्रता से किये जा सकते हैं, छोड़कर अन्तः समुद्री स्थलाकृति का ज्ञान बहुत कम था। चूँकि गहरे पानी जैसे 6000 मीटर या उससे अधिक में एक गहराई मापन कई घण्टे ले लेता है अतएव इस प्रकार के गहराई मापन संख्या में कम थे और अधिक दूरी पर थे और सामान्य रूप से यह माना जाता था कि गहरे समुद्र का अधःस्थल समतल और एक दिष्ट धरातल है जिसमें विषम उभार नहीं हैं। 1911 में फेसेनडेन ने ध्वनिक विधि से गहराई मापन का पहला प्रयास किया और लगभग 1920 से ध्वनिक गहराई मापक काम में लिये जा रहे हैं। इनकी सहायता से पूर्ण वेग से चलते हुए जहाज पर से कुछ ही सेकंड में गहराई मापन किया जा सकता है। कुछ ही वर्षों में इस नई विधि ने समुद्र के अधःस्थल की स्थलाकृति के विषय में हमारी संकल्पना को पूर्ण रूप से बदल दिया है। द्रोणियें और काठियें, गर्त और शृंग खोजे गये हैं और कई क्षेत्रों में अधःस्थल स्थलाकृति उतनी ही विषम पाई गई है जितनी कि किसी पहाड़ी भूभाग की स्थलाकृति।

अधःस्थल की स्थलाकृति की प्रकृति के आवर्धित ज्ञान ने अधःस्थल जल के बहाव को समझने में बड़ी सुविधा प्रदान की है और निकटवर्ती क्षेत्रों में जल लेखीय स्थितियों में प्रेक्षित अन्तर को समझाने में सहायता की है। दूसरी ओर ऐसे क्षेत्रों में जहाँ मापन कार्य नहीं किया गया है, इस प्रकार की विभिन्नताओं का उपयोग भिन्न-भिन्न द्रोणियों को विभाजित करने वाली आड़ों (काठियों) की ऊँचाई ज्ञात करने में किया गया है।

अधःस्थल की परतों के ज्ञान की अभिवृद्धि, आंशिक रूप में छोटे छोटे कणों के रूप में प्राप्त पदार्थों के अध्ययन में परिष्कृत रासायनिक और भौतिक विधियों के

पुरस्थापन से तथा कुछ अधःस्थल पर जमे हुए पदार्थों के लम्बे क्रोड तथा ठोस चट्टानों के नमूने प्राप्त करने की उन्नत विधियों के कारण हुई है। खुले महासागरों में प्राप्त क्रोड के नमूनों में स्तरण की विद्यमानता ने परतों की प्रकृति और परतीकरण की रफ्तार को नियन्त्रित करने वाली प्रक्रियाओं में तीव्र अभिरुचि उद्दीप्त करदी है। इन प्रगतियों के कारण अन्तः समुद्री भूगर्भ विज्ञान का तीव्र विकास हुआ है। यह विज्ञान समुद्र अधःस्थल की स्थलाकृति के लक्षणों का, इन लक्षणों के विकास में क्रियाशील नैमित्यों का, परतों के प्रकार और वितरण का और परतीकरण की प्रक्रिया का अध्ययन करता है। अन्तः समुद्री भूगर्भ विज्ञान की नींव सर जॉन मूरे ने डाली जिन्होंने अपने कई सहकर्मियों के साथ चेलेन्जर अभियान (1873-76) के अधःस्थल के नमूनों का विवेचन किया और उनकी मृत्यु (1914) से पूर्व तक प्राप्त तमाम पैंदों के नमूनों का परीक्षण किया। वर्तमान अभिरुचि का तीव्र विकास और नई तकनीक का प्रयोग मुख्य रूप से अमरीकी जैसे पिगोट, रेवीली, शेपर्ड स्टेट्सन और वोगन तथा जर्मन वैज्ञानिक कोरेन्स और प्रेटजी के कारण हुआ है।

समुद्री धाराओं की प्रकृति, समुद्री जल की रासायनिकी और भौतिकी, समुद्री परतों को वनाने में जो योग देते हैं उन जीवों के सामान्य लक्षण तथा जीवाणुओं की रूपान्तरण संबंधी क्रियाओं के ज्ञान के विना, अन्तःसमुद्री भूगर्भ विज्ञान में कई समस्याओं का ठीक प्रकार से अध्ययन नहीं किया जा सकता। इस प्रकार अन्तः समुद्री भूगर्भ विज्ञान लगभग प्रत्येक समुद्री विज्ञान के परिणामों पर आश्रित है।

भौतिक समुद्री विज्ञान में तरंगों और ज्वार भाटाओं का अध्ययन एक भिन्न श्रेणी के अन्तर्गत आता है चूँकि इन प्रपंचों के यथार्थ लक्षणों के विषय में सूचनाएँ एकत्रित होने से पहले सैद्धान्तिक छानबीन हुई। इस प्रकार पृष्ट तरंगों के सिद्धान्त 1802 में गेर्स्टनर ने विकसित किये और स्टोक्स ने इन्हें 1847 में परिष्कृत किये। इस प्रारम्भिक कार्य में चूंकि जल को आदर्श द्रव माना गया था अतः कई परिणाम व्यावहारिक उपयोग के वजाय गणितीय रूप में अधिक सुन्दर थे परन्तु गत दशाव्दी के, विशेप प्रकार से एच० जेफरी के, अध्ययनों ने सिद्धान्त और प्रेक्षण के वीच की खाई को आंशिक रूप से पाट दिया है।

ज्वार भाटों के सिद्धान्त न्यूटन (1643-1727) और लेपलास (1749-1827) ने विकसित किये। लेपलास की समस्याओं के निरूपण आज तक सत्य हैं परन्तु उस सिद्धान्त की गणितीय कठिनाइयों पर अव तक भी पार नहीं पाया गया है। अर्वाचीन वर्षों में प्राउडमेन की प्रधानता में लीवर पूल ज्वार संस्था के कार्यकर्ताओं ने ज्वार भाटाओं को समझने में उल्लेखनीय प्रगति की है। जिन्होंने वैश्लेषिक विधि से पारिभापित ज्यामितीय स्वरूप की महासागरीय द्रोणियों की मूल समस्याओं का समाधान

किया है तथा आस्ट्रियन स्कूल, उल्लेखनीय रूप से डीफेन्ट और स्टरनेक ने, अनियमित रूप की खाड़ियों में ज्वार के अध्ययन में द्रव गति विज्ञान के सिद्धान्तों का उपयोग किया है। संयुक्त राज्य तटीय और भूगणितीय सर्वेक्षण में अनरीकी कार्यकर्ताओं ने प्रेक्षित ज्वार-भाटाओं के विश्लेषण में और तटीय क्षेत्रों में ज्वार-भाटाओं के पूर्व कथन में उल्लेखनीय योगदान किया है।

स्टोक्स ने 1847 में एक तीसरे प्रकार की तरंगों, आन्तरिक तरंगों या सीमा तरंगों का विवेचन किया। इस सिद्धान्त में केवल दो भिन्न घनत्व के आदर्श तरल पदार्थों की सीमा पर ही उक्त तरंगों का विचार किया गया परन्तु 1904 में एकमेन ने "पिन्छल जल" के प्रपंच की व्याख्या करने में इसका सफल उपयोग किया। इसके बाद के प्रेक्षणों ने यह संकेत किया कि दूसरे प्रकार की, सामान्य रूप से ज्वारीय काल की, आन्तरिक तरंगें खुले महासागरों में विद्यमान थी और फीटड्स्टेड के सिद्धान्त से इनका अध्ययन काफी आगे बढ़ा। यह सिद्धान्त 1933 में दिया गया था और जो ऐसे द्रव में आन्तरिक तरंगों पर विचार करता है जिसका घनत्व अविरत रूप से गहराई के साथ बढ़ता है।

समुद्री जल के भौतिक गुण धर्म सुगमता से दो वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं—पहला वह जो महासागरीय धाराओं तथा इस प्रकार की अशुद्धियों जैसे रासायनिक या कार्बनिक उत्पत्ति के निलम्बित कणों से स्वतंत्र हो। उदाहरण के लिये घनत्व, विशिष्ट ऊष्मा, परिसारक दाब आदि तथा दूसरा वो जो धाराओं और निलम्बित कणों पर आश्रित हो—उदाहरण के लिये भंवरीश्यानता, संचालकता, विसरण तथा पारदर्शकता। पहले वर्ग के गुण धर्मों का इस शताब्दी के आरम्भ में यथार्थ निरूपण किया गया यद्यपि और अधिक शुद्ध मापन हाल ही के वर्षों में किया गया है। दूसरे वर्ग के गुण धर्मों का परीक्षण अभी भी तीव्र विकास की अवस्था में है। विसरण की प्रक्रिया के अध्ययन में समुद्री जीव विज्ञान के कुछ परिणामों का ज्ञान आवश्यक होता है क्योंकि घुले हुए ऐसे पदार्थों के वितरण का प्रायः परीक्षण किया जाता है, जो कि जीव धारियों की क्रियाओं से प्रभावित होते हैं। समुद्री जल की प्रेक्षित पारदर्शकता की व्याख्या करने के लिये जैव प्रक्रियाओं पर विचार करना आवश्यक होता है क्योंकि कुछ अंशों में समुद्री जीवधारियों द्वारा उत्पन्न किये गये घुले हुए पदार्थों के कारण पारदर्शकता में कमी होती है। दूसरी ओर समुद्री विज्ञान की अन्य कई समस्याओं में जल के भौतिक गुण धर्मों का ज्ञान आवश्यक होता है।

महासागरीय धाराओं के सामान्य भौतिक सिद्धान्त इस शताब्दि के आरम्भ में उल्लेखनीय रूप से स्केन्डीनेविया के जल लेखकों द्वारा विकसित किये गये थे। हेलेण्ड-हानसेन ने वी० ब्जेरकनेस् के असनांग तरल में परिसंचरण के प्रमेय को महासागर के लिये प्रयुक्त किया और एकमेन ने हवाओं द्वारा चलाई धाराओं के सिद्धान्त

का विकास किया। ब्जेरकनेस् प्रमेय का व्यावहारिक उपयोग अधिकतर फ्रिट्जोफ नानसेन की पटुता के कारण सम्भव हो सका जिसने कि 1900 के लगभग ताप और लवणता के निर्धारण में अधिक यथार्थता प्राप्त की। संयुक्त-राज्य में रोसबाई और उसके सहयोगियों ने तरल यांत्रिकी के परिणामों को समुद्र की गतिक समस्याओं के लिये लगाया है। यह पूर्वाभिलक्षित नहीं किया जा सकता कि ये नये विचार किस सीमा तक महासागरीय धाराओं के गतिविज्ञान की संकल्पनाओं में रूपान्तर करेंगे परन्तु रोसबाई के कार्य ने इस प्रबंध के सैद्धान्तिक और प्रायोगिक परीक्षण को नया संवेग प्रदान किया है। ताप और लवणता प्रेक्षणों के और धारा मापन के परीक्षणों के तीव्र संग्रह के कारण रोसबाई के तथा पहले के सिद्धांतों का उपयोग उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण हो गया है।

भौतिक समुद्री विज्ञान के क्षेत्र में सैद्धान्तिक और प्रायोगिक ज्ञान के अधिकांश भाग का अन्य समुद्री विज्ञानों के परिणामों पर कुछ अथवा बिलकुल कोई ध्यान दिये बिना आचरण किया जा सकता है। यदा कदा इन परिणामों की समीक्षा उन गुण धर्मों के वितरण का परीक्षण कर, की जाती है जो कि जैव क्रियाओं द्वारा प्रभावित होते हैं—उदाहरण के लिये विलीन ऑक्सीजन अंश, परन्तु प्रायः भौतिक समुद्री विज्ञान का अध्ययन स्वतंत्र रूप से किया जा सकता है। इसी कारण कई समुद्री वैज्ञानिक संस्थाएँ जैसे कि बर्लिन विश्वविद्यालय की इन्स्टीट्यूट फुर मिरेस-कुन्डे, तथा बेरगन (नार्वे) की भूगर्भीय संस्था का समुद्र वैज्ञानिक भाग केवल भौतिक समुद्री विज्ञान के अध्ययन में ही निरत रहते हैं और इसी कारण से अन्तर्राष्ट्रीय भौतिक समुद्री विज्ञान का संघ अन्तर्राष्ट्रीय भूगणित और अन्य समुद्री विज्ञानों की शाखाओं से पृथक् रूप में विद्यमान है। भौतिक समुद्री विज्ञान का अन्य भूभौतिक विज्ञानों से योग तर्क संगत है। मौसम विज्ञान और भौतिक समुद्री विज्ञान में कई समस्याएँ, विशेष कर वायुमण्डल और समुद्र की गतिकी से सम्बन्धित, इतनी समान हैं कि उनका सैद्धान्तिक उपागम लगभग समान है और समुद्र तथा वायुमण्डल में अन्योन्य क्रिया से सम्बन्धित क्षेत्र चाहे मौसम विज्ञान की दृष्टि से अथवा समुद्री विज्ञान की दृष्टि से विचाराधीन हो, समान रूप से महत्वपूर्ण हैं।

यद्यपि भौतिक समुद्री विज्ञान एक बड़ी सीमा तक अन्य समुद्री विज्ञानों से स्वतंत्र है तथापि इसके परिणाम समुद्री जीव विज्ञान में और अन्तःसमुद्री भूविज्ञान में विस्तृत रूप से प्रयुक्त किये जाते हैं। समुद्री जीव विज्ञान में; उस माध्यम के जिसमें जीव रहते हैं, भौतिक और रासायनिक लक्षणों को, इस प्रकार की धाराओं को जो जीवों का वितरण नियंत्रित करें, वनस्पति के पोषक तत्वों से विपुल स्थल मंडल जल को, ऊपरी धरातल की ओर ले जाने वाली ऊर्ध्वाधर गति को, उस गहराई को जहाँ तक प्रकाश प्रवेश करता है, आदि आदि बातों को जानना आवश्यक

है। अन्त:स्थलीय भूगर्भशास्त्र में समुद्र के अन्दर नदियों द्वारा लाये गये सूक्ष्म द्रव्यों के विसर्जन के अध्ययन के लिये विशाल पैमाने पर महासागरीय धाराओं के ज्ञान की आवश्यकता होती है। तथा विभिन्न इलाकों में पाये जाने वाले अवसादों के लक्षणों तथा अवसादन प्रक्रियाओं को समझने के लिये पैंदे पर बहने वाली धाराओं, उनके वेग और उनकी विक्षुब्धता के ज्ञान की आवश्यकता होती है। इस विस्तृत उपयोग के कारण अपने निष्कर्षों को अधिक बोधगम्य बनाने और अन्य क्षेत्रों के कार्यकर्त्ताओं को अधिक सुलभ करने के लिये यह वांछनीय है कि भौतिक समुद्री वैज्ञानिक अन्य समुद्री विज्ञानों से सम्बन्धित समस्याओं से परिचित हों।

रसायन शास्त्र के क्षेत्र में समुद्री पानी में घुले हुए लवणों के प्रमुख अवयव 1880 में डिटमार ने यथार्थ रूप से निर्धारित किये और 1900 के लगभग नडसेन ने क्लोरीनता, लवणता और घनत्व में निरीक्षण मूलक सम्बन्ध स्थापित किये। ये सम्बन्ध भौतिक समुद्री विज्ञान में इतने महत्वपूर्ण हैं कि घनत्व निकालने की रासायनिक विधियाँ इस क्षेत्र में आवश्यक साधन मानी जाती हैं। इन प्रमुख अवयवों के बाद के निर्धारणों से उनके पहले के परिणामों में केवल अल्प परिवर्तन हुए हैं। परन्तु विश्लेषण की परिष्कृत विधियों से समुद्री पानी में अधिकाधिक तत्वों की खोज हुई है और कई उदाहरणों में इन अप्रधान तत्वों की मात्रा का यथार्थ मापन सम्भव हुआ है।

अर्वाचीन काल में जैविक दृष्टि से महत्वपूर्ण वनस्पति पोषक तत्वों का निर्धारण करने की द्रुत विधियों के विकास में उल्लेखनीय प्रगति हुई है; और इस क्षेत्र में समुद्री जीव विज्ञान और समुद्री पानी के रसायन विज्ञान में इतना घनिष्ठ संपर्क हो गया है कि यह बताना कठिन है कि कहाँ पर जीव विज्ञान समाप्त होता है और रसायन विज्ञान आरम्भ होता है। भौतिक-रसायन विज्ञान की संकल्पनाएँ और परिणाम समुद्री पानी में जैविक दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्बनडाइऑक्साइड पद्धति को समझाने में विशेष प्रकार से सहायक हुई हैं। ग्रेटब्रिटेन में हॉरवे, एटकिन्स और कूपर ने, संयुक्त राज्य में मौबर्ग राकेस्ट्रा और थोमसन ने, जर्मनी में वाटेनबर्ग ने और फिनलैण्ड में बुच ने महत्वपूर्ण योग दान किया है।

आरम्भिक जैविक परीक्षण, एकत्रित करने की साधारण विधि से प्राप्त, बड़े जानवर और वनस्पति से ही मुख्य रूप से सम्बन्धित थे। यह 1839 तक चलता रहा जब कि एडवर्ड फोर्बस् ने समुद्री जीवों का उनके भौतिक वातावरण से संबंधित अध्ययन करने में पहल की। उस समय साधारणतः यह सोचा जाता था कि बहुत गहरे पानी में सम्भावित जीवन की विपरीत परिस्थितियों के कारण अधिक गहराई पर जीव नहीं रह सकता। बाद में वितलीय गहराइयों पर आबाद जानवरों की स्पष्ट

खोज के परिणामस्वरूप 600 मीटर से नीचे जीवहीन कटिवन्ध का यह विचार त्याग दिया गया ।

यह ज्ञान कि तमाम गहराई पर जीवन सम्भव है जीव विज्ञान की दृष्टि से बड़ा रुचिकर था । परन्तु जहाँ तक समुद्र की आर्थिक व्यवस्था का सम्बन्ध है ऊपरी पानी की तहों पर आबाद तैरते हुए सूक्ष्म जीवों के समुदाय की खोज उससे और अधिक विस्तृत रूप से सार्थक थी । समुद्र के इस सर्वत्र व्याप्त बहने वाले वनस्पति और जानवरों के नन्हे समुदाय के अध्ययन में टाउनेट और सूक्ष्मदर्शी का उपयोग जोहनेस मूलर ने 1846 के लगभग आरम्भ किया । 1887 में विक्टर हैन्सन ने इस समुदाय के लिये प्लैंकटन नाम प्रयुक्त किया और पहले मात्रक अध्ययन का सूत्रपात्र किया । प्लैंकटन की खोज ने अखंड रूप से समुद्र के आर्थिक ढांचे को समझने में गति प्रदान की क्योंकि जीवों के इस समुदाय का बहुउत्पादन ही बड़े प्रकार के जीवों का पोषण करता है और वही समुद्र में कतिपय तत्वों के वितरण में परिवर्तन के लिये उत्तरदायी है ।

पहले के अधिकांश समुद्री जीव वैज्ञानिक अध्ययन आवश्यक तौर पर गवेषणात्मक और वर्णनात्मक थे क्योंकि हजारों जीवों के व्यवस्थित वर्णन और समाकलन के द्वारा ही भविष्य के काम की नींव रखी जा सकती है और विश्लेपण के साधन उपलब्ध किये जा सकते हैं । वर्णनात्मक अध्ययन चालू रहने चाहियें परन्तु जैसे जैसे वर्गीकृत यूथ निर्धारित होते जाते हैं और उनकी बनावट ज्ञात होती जाती है इस प्रकार के काम की आवश्यकता कम होती जाती है और विशेषकर महासागर के भली प्रकार जाने हुए क्षेत्रों में पहले ही जीवाणुओं के परस्पर और अचेतन वातावरण के अन्तर सम्बन्धों पर बल स्थानान्तरित हो गया है । गत शताब्दी के अन्त में और वर्तमान के आरम्भ में इस विचार बिन्दु को कई कार्यकर्ताओं द्वारा संवेग प्राप्त हुआ जिनमें युरोप में ब्रांडट्, जोर्ट, ग्रान, जोनस्टोन, लोहमान जोनेस श्मिट और स्टयूअर तथा अमरीका में अगेसिज, बिगेलोव, फ्रेजर, कोफोइड, और रिटर के नाम उल्लेखनीय हैं । यही विचार आज तक चला आ रहा है ।

कई समुद्री जैविक प्रपंचों के स्पष्टीकरण की अत्यावश्यकता भौतिक और रासायनिक समुद्री विज्ञान के ज्ञात पक्षों के प्रयोग के लिए ही प्रेरणादायक नहीं हुई है वरन् यह इस प्रकार के अध्ययन जैसे कि प्रकाश का अन्त:प्रवेश, श्यानता, परिसारक दाब, कार्बनडाइऑक्साइड पद्धति और विशेष प्रकार से जैविक दृष्टि से महत्वपूर्ण तत्वों पर अनुसन्धान के लिये भी उत्प्रेरक हुई है । विलोमतः इन तत्वों के वितरण और घटत बढ़त की व्याख्या केवल जैविक परीक्षणों की सहायता से ही की जा सकती है ।

गत दशाब्दियों में, जिनके लिए समुद्री विज्ञान में अनुसन्धान की धारा का संक्षेप में पुनर्विलोकन किया है, समुद्र के विषय में ज्ञान की बड़ी अभिवृद्धि हुई है। लगभग 1900 के पहले गहरे समुद्री परीक्षण विशेष प्रकार से विशाल पैमाने पर खोज यात्रा से ही एकत्रित हुए थे। इनमें से 1873-1876 की ब्रिटिश चेलेन्जर खोज यात्रा सबसे प्रथम रहती है जो कि समुद्री विज्ञान का आरम्भ निरुपित करती हैं। 1900 के लगभग समुद्री अध्ययन के लिये स्थाई स्टेशनों की स्थापना द्रुतगति से होने लगी। विशेषकर के उत्तर-पश्चिम यूरोप के अन्दर जहाँ पर कि समुद्र वैज्ञानिक परीक्षण मत्स क्षेत्रों से सम्बन्धित अनुसन्धान की सहायतार्थ किये गये थे। प्रति वर्ष सारे संसार में समुद्री वैज्ञानिक संस्थाएँ और समुद्री जैविक स्टेशनों की अभिवृद्धि हुई है और 1914-1918 के विश्वयुद्ध से पहले और बाद में सुसज्जित खोज यात्राएं भेजी गई हैं। आगे आने वाले अध्यायों में इन खोज यात्राओं से प्राप्त परिणामों का निर्देश बार-बार किया जायगा।

समुद्र वैज्ञानिक खोज की वर्तमान स्थिति का एक व्यापक पुनर्विलोकन और समुद्री विज्ञान में लगे हुए प्रत्येक संस्थापन की स्थिति, इतिहास और सुगमताओं की सूचना टी० डब्लयू० वोगन द्वारा संकलित की गई और 1937 में राष्ट्रीय विज्ञान अकेदमी द्वारा '**अन्तर्राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान के पक्ष**' के नाम से प्रकाशित की गई। इस पुस्तक तथा एच० बी० बिगेलोव की राष्ट्रीय अकेदमी द्वारा 1931 में प्रकाशित '**समुद्र विज्ञान—उसका क्षेत्र, समस्याएँ और आर्थिक महत्व**' दोनों में समुद्री विज्ञान में अनुसन्धान की वर्तमान सुविधाओं का तथा उन उद्देश्यों का जिसकी ओर यह काम इंगित करता है संक्षिप्त वर्णन किया गया है। समुद्री खोज के विकास का वर्णन ऐसी पुस्तकों जैसे कि सर जोन मूरे की '**1873-1876 की चेलेन्जर खोज यात्रा के वैज्ञानिक परिणामों का संक्षिप्त वर्णन**' मूरे और हेजॉर्ट की '**महासागर की गहराइयाँ**' तथा हर्डस् मेन की '**समुद्री विज्ञान के संस्थापक**' में किया गया है।

हमारा महासागरों का ज्ञान अभी अपूर्ण तथा अपर्याप्त है। प्रशान्त और हिन्द महासागर में ऐसे कई क्षेत्र हैं जिनके विषय में किसी भी प्रकार की कोई सूचना नहीं है और कई क्षेत्रों का वर्ष की कतिपय ऋतुओं में केवल सामान्य परिस्थितियों का ही ज्ञान है। जिन क्षेत्रों से केवल बिखरी हुई सामग्री उपलब्ध है उनके बीच के रिक्त स्थानों को भरने के लिये और व्यवस्थित-खोज करने के लिये खोज यात्राओं की आवश्यकता है। इससे भी अधिक इस बात की आवश्यकता है कि भिन्न-भिन्न प्रकार की समुद्र वैज्ञानिक खोजों को निरूपित करने वाले सुसज्जित समुद्र वैज्ञानिक स्टेशनों पर व्यवस्थित कार्य किया जाय जिससे विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त परिणामों को सम्बन्धित किया जा सके। केवल इसी प्रकार ससम्बन्ध के द्वारा विभिन्न समुद्री विज्ञान एकीकृत समुद्र विज्ञान हो सकता है जैसा कि समुद्र के अध्ययन के लिये अन्तर्राष्ट्रीय कौंसिल की स्थापना के समय सोचा गया था।

अध्याय 2

पृथ्वी और महासागर के क्षेत्र

पृथ्वी की आकृत और आकार :

स्थूल रूप से पृथ्वी एक गोले के समान मानी जा सकती है। परन्तु यथार्थ प्रेक्षणों के अनुसार इसकी आकृति एक घूर्णन के दीर्घवृत यानि एक लघ्वक्ष गोलाभ जिसकी लघु अक्ष घूर्णाक्ष हो, द्वारा अधिक निकटता से निरुपित की जा सकती है। पृथ्वी की आकृति भिन्न भिन्न अनुकल्पित समीकरणों द्वारा निर्धारित की गई है जिनके स्थिरांक प्रेक्षणों पर आधारित हैं और जैसे जैसे प्रेक्षणों की संख्या बढ़ती जाती है और उनकी यथार्थता सुधरती जाती है वैसे वैसे इनमें रूपान्तरण सशर्त है। जल और स्थल खण्डों के वितरण की असममिति के कारण, इन समीकरणों द्वारा निर्धारित ज्यामितीय आकृतियें पृथ्वी की आकृति को यथातथ रूप में निरूपण नहीं कर सकती हैं।

पृथ्वी के पृष्ठ पर किसी बिन्दु की स्थिति निर्धारित करने के लिये एक निर्देशांक प्रणाली की आवश्यकता होती है और इस रूप में अक्षांश, देशान्तर और ऊँचाई या गहराई को काम में लेते हैं। इनमें से प्रथम दो को कोणीय निर्देशांक से अभिव्यक्त किया जाता है और तीसरा ऊर्ध्वाधर दूरी से अभिव्यक्त किया जाता है जिसे किसी उपयुक्त रेखीय इकाई में व्यक्त किया जाता है। यह ऊर्ध्वाधर दूरी माध्य समुद्री तल से साधारणतया निकट सम्बन्धित किसी निर्देश तल से ऊपर या नीचे नापी जाती है। किसी बिन्दु का अक्षांश स्थानीय साहुल-सूत्र और भूमध्य समतल के बीच का कोण होता है। चूँकि पृथ्वी एक गोलाभ के रूप में मानी जा सकती है इसलिये विषुवत रेखा के समान्तर कोई समतल, गोलाभ के पृष्ठ को एक वृत में काटेगा और इस वृत पर सभी बिन्दुका अक्षांश एक ही होगा क्योंकि इन बिन्दुओं पर तमाम व्यावहारिक उद्देश्यों के लिये साहुल सूत्र को गोलाभ के पृष्ठ के अभिलम्ब माना जा सकता है ये वृत अक्षांश-समांतर वृत कहलाते हैं। अक्षांश भूमध्य रेखा से उत्तर और दक्षिण में डिग्री, मिनट और सेकण्ड में नापा जाता है। गोले के पृष्ठ पर एक डिग्री अक्षांश से संगत रेखीय दूरी सभी जगह वही होगी परन्तु पृथ्वी के पृष्ठ पर इकाई अक्षांश द्वारा निरूपित दूरी भूमध्य रेखा से ध्रुवों तक लगभग एक प्रतिशत से बढ़ जाती है। विषुवत रेखा पर अक्षांश की एक डिग्री 110,567.2 मीटर और ध्रुवों पर यह 111,699.3 मीटर के समतुल्य होती है। विभिन्न अक्षांश-समान्तर वृत के बीच के भूपृष्ठ के प्रतिशत सारणी नं० 1 में दिये गये हैं।

घूर्णाक्ष से पारित, भूमध्य समतल के अभिलम्ब, समतल भू पृष्ठ को जिस रेखा पर काटता है उसे याम्योत्तर कहते हैं। भू-पृष्ठ पर दो बिन्दु, A और B से पारित याम्योत्तर समतल के बीच का कोण उन दो बिन्दुओं के देशान्तर का अन्तर होगा। व्यवहारिक रूप में देशान्तर वह दूरी है जोकि एक मानक याम्योत्तर समतल से पूर्व या पश्चिम में डिग्री, मिनट और सेकण्डों में नापी जाती है। साधारणतया यह याम्योत्तर समतल ग्रीनविच, इन्गलैंड की रॉयल वैधशाला का होता है। इस प्रकार देशान्तर ग्रीनविच से पूर्व और पश्चिम में 0° से 180° तक नापा जाता है। भू-पृष्ठ पर देशान्तर में इकाई अन्तर के समतुल्य रेखीय दूरी अक्षाँश के कोज्या (cosine) के लगभग समानुपाती होती है।

सारणी 1

पाँच डिग्री अक्षांश समान्तर के बीच में भूपृष्ठ के प्रतिशत

अक्षांश	प्रतिशत %	संचयी प्रतिशत %
0°—5°	8.68	8.68
5—10	8.62	17.30
10—15	8.48	25.78
15—20	8.30	34.08
20—25	8.04	42.12
25—30	7.72	49.84
30—35	7.36	57.20
35—40	6.92	64.12
40—45	6.44	70.56
45—50	5.92	76.48
50—55	5.33	81.81
55—60	4.71	86.52
60—65	4.05	90.57
65—70	3.36	93.93
70—75	2.64	96.57
75—80	1.90	98.47
80—85	1.15	99.62
85—90	0.38	100.00

सारणी 3

पृथ्वी का आकार

(फाऊले Fowle 1933)

विषुवतीय त्रिज्या	a..............6378.388	कि० मी०
ध्रूवीय त्रिज्या	b..............6356.912	कि० मी०
अन्तर	(a-b)..................21.476	कि० मी०
पृष्ठ क्षेत्रफल	510,100,934	वर्ग कि० मी०
भू-समुद्र तलाभ आयतन	1,083,319,780,000	घन कि० मी०

भू-पृष्ठ पर बिन्दुओं के बीच की दूरी, और किसी निश्चित खण्ड द्वारा निरूपित क्षेत्रफल, का ठीक ठीक निरूपण नहीं किया जा सकता जब तक कि पृथ्वी का आकार मालूम नहीं हो। विपुवतीय और ध्रुवीय त्रिज्या का मान सारणी न० 2 में दिया गया गया है और इनसे पृथ्वी के आकार से सम्बन्धित जो आंकड़े निकाले जा सकते हैं वे भी सारणी में दिये गये हैं। विपुवतीय और ध्रुवीय त्रिज्या का मान समुद्र के तल के लिये है। स्थल खण्ड पृथ्वी की ज्यामितीय आकृति पर उठान हैं और समुद्र के अधस्थल धसकन निरूपित करती है।

समुद्र तल से नीचे धसकनों का नाप यथावत् तुलना के लिये आदर्श समुद्र तल से निर्दिष्ट करना चाहिये यानि समुद्र पृष्ठ से जो कि प्रत्येक स्थान पर साहुल सूत्र के अभिलम्ब हैं। खुले महासागर में आदर्श समुद्र तल से विचलन कदाचित ही एक या दो मीटर से बढ़ता है। समुद्र के वास्तविक पृष्ठ से गहराई नापने में जो त्रुटियां पुरस्थापित होती हैं वे गहरे पानी में उपेक्ष्य हैं जहाँ कि माप की त्रुटियां कई गुना वृहत होती हैं। तटीय क्षेत्रों में जहाँ जल वालु उत्थान की गहराइयां नौचालन के लिये खतरनाक होती है और जहाँ गहराई मापन अधिक शुद्धता से किये जा सकते हैं वहाँ ज्वार भाटों का असर किसी स्थान पर गहराई मापन को एक ही निर्दिष्ट तल से निर्देशित कर विलोपित किया जाता है। माध्य समुद्री तल साधारणतया भूमि पर उठान के निर्देशन तल की तरह काम में लिया जाता है और वाल्टिक सागर में इसका उपयोग गहराइयों के निर्देशन तल की तरह किया जाता है। अधिकतर चार्ट पर सूचित कोई दूसरा निर्देशन तल गहराइयों के लिये निर्देश तल की तरह काम में लिया जाता है। उदाहरणार्थ

माध्य निम्न जल	— संयुक्त राज्य (अटलांटिक समुद्रतट), अर्जेनटाइना, नार्वे, स्विडन,
माध्य निचला निम्न जल	— संयुक्त राज्य (प्रशान्त समुद्र तट)
माध्य निम्न जल वृहत् ज्वार	— ग्रेट ब्रिटेन, इटली, जर्मनी, डेनमार्क, ब्राजील, चिली,
मासिक निम्नतम माध्य निम्नजल वृहत ज्वार	— निदरलैण्ड
निम्नतम निम्नजल वृहत ज्वार	— ब्राजील, पुर्तगाल,
भारतीय वृहत ज्वार निम्नजल	— भारत, अर्जेनटाइना, जापान
माध्य अर्ध-वार्षिक निम्नतम निम्न जल	— निदरलैण्ड, ईस्ट इन्डीज,
निम्नतम निम्नजल	— फ्रांस, स्पेन, नार्वे, ग्रीस
अन्तर्राष्ट्रीय निम्नजल	— अर्जेनटाइना

निम्नजल के बृहत ज्वार की ऊँचाइयों के औसत को निम्नजल बृहत् ज्वार कहते हैं। माध्य समुद्री तल से संगणित अन्तराष्ट्रीय निम्न जल, निम्न जल बृहत् ज्वारों से 50 प्रतिशत कम होता है। भारतीय बृहत्ज्वार निम्न जल प्रसंवादी विश्लेपण द्वारा निकाले गये ज्वार भाटों के घटकों पर निर्भर रहता है। अन्य शब्दों की परिभाषा और कहीं दी गई है (2.1)।

भू पृष्ठ के स्थल रूपरेखीय आकृतियों को उनके उचित सम्बन्धों में केवल वास्तविक भू-आकृति से सन्निकट गोले पर ही दिखाई जा सकती है परन्तु व्यावहारिक उद्देश्यों के लिये तो चपटे पालों पर छापे जा सकने वाले प्रक्षेप काम में लाने चाहिये। भू पृष्ठ के छोटे से भाग का आपेक्षित स्थिति में बिना किसी विशेष विकृति के चपटे तल पर प्रक्षेपण सम्भव है तो भी महासागरों के लिये या सम्पूर्ण भू पृष्ठ के लिये अधिक प्रकार के प्रक्षेप मानचित्रों में भू पृष्ठ के कुछ भागों की आकृति और आकार का स्थूल रूप से बढ़ा हुआ निरुपण दिया गया है। सबसे ज्यादा परिचित प्रकार का प्रक्षेप वह है जिसे मर्काटर ने विकसित किया और जो याम्योत्तरों को सीधी और समान्तर रेखाओं से निरूपित करता है। यद्यपि यह छोटे क्षेत्रों और नीचले अक्षांशों के लिये सन्तोषजनक है, तथापि उच्च अक्षांशों में आकृति और आकार के लक्षण बहुत ही विकृत होते हैं क्योंकि रेखिक पैमाना अक्षांश की कोज्या के प्रतिलोमानुपाती होता है। महासागरीय वस्तुओं के प्रस्तुत करने में यह अतिशयोक्ति अति अवाँछनीय है और परिणाम स्वरूप उन प्रक्षेपों को काम में लेना चाहिये जिन पर पृथ्वी के लक्षणों की वास्तविक आकृति और आकार अधिक सन्निकटित की जा सके।

मान चित्र बनाने वालों ने कई प्रकार के प्रक्षेप विकसित किये हैं। कुछ उदाहरणों में, ये समतल पृष्ठ पर भू-समुद्र तलाभ पृष्ठ का ज्यामितीय प्रक्षेप हैं जो कि चपटे किये जा सकते हैं और दूसरों में आवश्यक निर्देशांको, अंक्षाश समान्तरों और याम्योत्तरों, को किसी गणितीय सिद्धान्तों पर तैयार किये गये हैं। मान चित्र और चार्ट विविध प्रयोजनों के लिये काम में लिये जाते हैं जिनमें प्रक्षेपों में भिन्न-भिन्न गुण धर्मो की आवश्यकता होती है। किसी एक प्रक्षेप में असंसर्गी, ऐसी आवश्यकतायें वे हैं जो नक्शे में भू-पृष्ठ के लक्षणों को, दूरी, दिशाओं, आकृतियों और क्षेत्रों में बिना विकृति के दिखावें। मर्काटर प्रक्षेप नौचालन चार्टो के लिये काम में लिये जाते हैं क्योंकि इनमें ऐसे गुण धर्म होते हैं जो नौचालन में वाँछनीय हैं। मान चित्र बनाने की तकनीक और विभिन्न प्रक्षेपों के गुण धर्मो की विवेचना राइस्फ़, (Raisz 1938) ने की है।

आकृति और आकार में न्यूनतम सम्भावित विकृति से महासागरों को दिखाने के लिये इस पुस्तक में उपयोगित दुनियाँ के नक्शे जे. पी. गुडे द्वारा विकसित एक विषम प्रक्षेप पर आधारित हैं। गोले से तुलना करने पर पता चलेगा कि महासागर

की मुख्य रूपरेखाएँ विकृत नहीं हैं और महासागर के सीमान्त तट साफ-साफ निरूपित हैं। इस प्रक्षेप में 'समक्षेत्र' होने का अतिरिक्त लाभ है अर्थात् जो क्षेत्र नक्शों से नापे गये हैं वे भू-पृष्ट पर उनके वास्तविक क्षेत्रों के समानुपाती हैं। उच्च अक्षांशों में महासागर के विभिन्न भागों के बीच सम्बन्ध बताने के लिये ध्रुवीय प्रक्षेपों का उपयोग किया जाता है और छोटे क्षेत्रों के लिये मर्काटर या और दूसरे किस्म के प्रक्षेप काम में लिये गये हैं।

जल और स्थल का वितरण

महाद्वीपीय स्थल खण्ड उत्तर दक्षिण दिशाओं में फैले हुए हैं जिसमें स्थल का सर्वाधिक प्रतिशत भाग उत्तरी गोलार्द्ध में है (सारणी 3) और न्यूनाधिक मात्रा में स्थल और जल से ढके क्षेत्रों की प्रतिविन्यस्थ व्यवस्था है। उत्तरी ध्रुव के चारों ओर का उत्तरी ध्रुव सागर, दक्षिण ध्रुव पर केन्द्रित दक्षिण ध्रुवीय महाद्वीप के दूसरी ओर है और योरोप, एशिया तथा अफ्रीका के कुछ भाग द्वारा निरूपित महाद्वीपीय स्थल खण्ड दक्षिण प्रशान्त (महासागर) के विशाल महासागरीय क्षेत्र के प्रतिविन्यस्थ है। महासागरीय जल दक्षिण ध्रुवीय महाद्वीप के चारों ओर अविरत है और महाद्वीपों के बीच में तीन बड़ी खाड़ियों में उत्तर की ओर बढ़ता है। इनके आधार पर तीन बड़े महासागर माने जाते हैं। अटलान्टिक महासागर, दक्षिण ध्रुवीय महाद्वीप से उत्तर की ओर बढ़ता है और उत्तरी ध्रुव सागर को समाविष्ट करता है। केप होर्न (70° प०) से दक्षिणी शेट लैण्ड द्वीप की न्यूनतम दूरी बनाने वाली सीधी रेखा द्वारा यह प्रशान्त महासागर से पृथक्कृत है। हिन्द महासागर और अटलान्टिक महासागर के बीच की सीमा उत्तमाशा अन्तरीप याम्योत्तर (20° पू०) मानी जाती है। हिन्द महासागर और प्रशान्त महासागर के बीच की सीमा मलाया प्रायद्वीप से सुमात्रा, जावा, टिमोर आस्ट्रेलिया (लन्दन डेरी अन्तरीप) और तस्मानिया से गुजरने वाली रेखा का अनुसरण करती है और वहाँ से दक्षिण ध्रुवीय महाद्वीप तक 147° पू० याम्योत्तर का अनुसरण करती है। उत्तर की ओर अटलांटिक और प्रशान्त महासागर के बीच की सीमा बेरिंग जल संयोजक में मानी गई है जो कि केवल 58 कि० मीटर चोड़ा है और जिसकी अधिकतम गहराई 55 मीटर है। जब तक दूसरी तरह कथित न हो उपरोक्त प्रकार से निरूपति महासागरों में वे अर्ध घिरे हुए आसन्न समुद्र जो उनसे मिले हुए हैं समाविष्ट माने जाते हैं।

सामान्य कथन में केवल तीन महासागर माने जाते हैं परन्तु कभी कभी इनके और हिस्से करना वांछनीय होता है। दक्षिण ध्रुवीय महाद्वीप को चारों ओर से जो जल घेरे हुए है और जो उत्तर की ओर महाद्वीपों के लगभग दक्षिणी छोर तक बढ़ता है वे कभी-कभी विशाल दक्षिण महासागर, ऑस्ट्रल महासागर या दक्षिणी ध्रुव महासागर कहलाते हैं। समुद्र के भीतरी गुण धर्मों के वितरण के विवेचन में (अध्याय XV) दक्षिणी ध्रुव महासागर को इस प्रकार निरूपित करना सुविधाजनक

है जो उत्तर की ओर केवल समुद्र विज्ञान सीमा से सीमित है उदाहरणार्थ उपोष्ण कटिबंधीय अभिविन्दुता (2·2)।

महासागरों के उपविभागों के लिये प्रयुक्त नामकरण अधिक संभ्रान्त है। विशेष प्रकार के लक्षण निर्दिष्ट करने वाले जातीय नाम जैसे समुद्र, आखात और खाड़ी कुछ अंधाधुंध रूप से काम में लेते हैं अतः उनका भौताकृतिक महत्व बहुत कम है। उदाहरणार्थ सागर शब्द अन्तरस्थलीय नमक की झीलों के लिये काम में लाया जाता है जैसे कि केस्पियन सागर और महासागरों के अपेक्षाकृत एकाकी भागों के लिये जैसे कि भूमध्य सागर, तथा कम एकाकी भागों के लिये जैसे कि करैबियन समुद्र और कुछ ऐसे भागों के लिये भी जिनकी कोई स्थल सीमा नहीं है जैसे कि उत्तर अटलान्टिक में सरगासो सागर।

समुद्र विज्ञान के कामों में महासागरों के हिस्सों का नाम रखने की कई प्रणालियाँ काम में ली जाती हैं। कुछ दृष्टान्तों में जहाँ कोई प्राकृतिक सीमा बनाने वाले स्थल लक्षण न हो, नक्शे पर सीधी अथवा वक्र रेखाएं खींच कर स्वेच्छ नयी सीमा निर्धारित की जाती है। इस प्रकार की प्रणाली अन्तर्राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान व्यूरो, (International Hydrographic Bureau 1937) द्वारा अनुसरित की जाती है। वूस्ट (wüst, 1936) ने यह सुझाव दिया है कि अन्तः समुद्र कटक जो कि 4000 मीटर की गहराई पर विद्यमान है महासागरों के विभिन्न भागों की सीमा निर्धारण करने के काम ली जानी चाहिये और 4000 मीटर से अधिक गहरी द्रोणियों के लिये अब प्रयुक्त किये जाने वाले नाम उनके ऊपर के क्षेत्रों को निर्दिष्ट करने में प्रयुक्त किये जावें। इस प्रकार की सीमाओं की व्यापक स्थिति चार्ट 1 में देखी जा सकती है। समुद्र विज्ञान का सम्बन्ध महासागरों के केवल उस रूप तक ही सीमित नहीं है जो कि पृष्ठ चार्ट में बताया जाता है वरन् यह गुणधर्मों के और जीवधारियों के वितरण से तथा धाराओं की प्रकृति से भी सम्बन्ध रखता है। अतः नामकरण की वह प्रणाली जो सागर में विद्यमान सम्बन्धों को बताती है अधिक लाभदायक होगी। वूस्ट wüst की प्रणाली जो कि महासागर के अधस्तल की स्थल रूप रेखा पर आधारित है वह गहरे पानी के लिये तो इस उद्देश्य की पूर्ति कर देती है परन्तु ऊपरी परतों के लिये नहीं। महासागरों के "प्राकृतिक प्रदेश" बनाने के लिये दूसरे कार्य कर्ताओं, उल्लेखनीय रूप से स्काट (Schott 1926, 1935) ने न केवल भौगोलिक स्थलाकृति के सम्बन्धों को वरन् गुणधर्मों और जीवधारियों के वितरण, जलवायु परिस्थिति और धाराओं को भी साथ लाने का प्रयास किया है। जीवधारियों के विभाजन के विवेचन में चित्र 220 (2.3) यह बताता है कि केवल प्राणीजात विभाजन के आधार पर महासागर किस प्रकार उपविभाजित हैं और महासागरों के जल खण्डों के विवेचन में चित्र 209 (2.4) लाक्षणिक ताप और विभिन्न भागों के क्षारीय सम्बन्धों के आधार पर उपविभाजन बताता है। ऐसे चार्टों की तुलना यह बताती है कि यद्यपि कुछ सीमाएँ

सारणी 3.

अक्षांश समांतरों के बीच स्थल और जल का विभाजन

कोसिन्ना, Kossinna, (1921)

अक्षांश (°)	उत्तरी गोलार्ध				दक्षिणी गोलार्ध			
	जल 10^6कि.मी.^{2}	स्थल 10^6कि.मी.^{2}	जल %	स्थल %	जल 10^6कि.मी.^{2}	स्थल 10^6कि.मी.^{2}	जल %	स्थल %
90—85	0.979	—	100	—	—	0.978	—	100.0
85—80	2.545	0.384	85.2	12.8	—	2.929	—	100.0
80—75	3.742	1.112	77.1	22.9	0.522	4.332	10.7	89.3
75—70	4 414	2.326	65.5	34.5	2.604	4.136	38.6	61.4
70—65	2.456	6.116	28.7	71.3	6.816	1.756	79.5	20.5
65—60	3.123	7.210	31.2	69.8	10.301	0 032	99.7	0.3
60—55	5.399	6.613	45.0	55.0	12.006	0.006	99.9	0.1
55—50	5.529	8.066	40.7	59.3	13.388	0.207	98.5	1.5
50—45	6.612	8.458	43.8	56.2	14.693	0.377	97.5	2.5
45—40	8.411	8.016	51.2	48.8	15.833	0.594	96.4	3.6
40—35	10.029	7.627	56.8	43.2	16.483	1.173	93.4	6.6
35—30	10.806	7.943	57.7	42.3	15.782	2.967	84.2	15.8
30—25	11.747	7.952	59.6	40·4	15.438	4.261	78.4	21.6
25—20	13.354	7.145	65.2	34.8	15.450	5 049	75.4	24.6
20—15	14.981	6.164	70.8	29.2	16.147	4.998	76.4	23.6
15—10	16.553	5.080	76.5	23.5	17.211	4.422	79.6	20.4
10—5	16.628	5.332	75.7	24.3	16.898	5.062	76 9	23.1
5—0	17.387	4.737	78.6	21.4	16.792	5.332	75.9	24.1
10—%	154.695	100.281	60.7	39.3	206.364	48.611	80.9	19.1

कुल सागर और महासागर......361.059 × 10^6कि. मी.^{2} 70.8%

कुल स्थल भाग 148.892 × 10^6कि. मी.^{2} 29.2%

उन्हीं स्थानों के सन्निकट है फिर भी कई भाग ऐसे हैं जिनमें विभिन्न प्रकार से स्थापित सीमाओं को एक दूसरे से मिलाना सम्भव नहीं है।

पांच डिग्री की दूरी पर अक्षांश समांतरो के बीच के स्थल और जल के क्षेत्र सारणी 3 में दिये गये हैं। सारी पृथ्वी के विचार से महासागरीय जल 70.8 प्रतिशत पृष्ठ पर फैला हुआ है। लेकिन उत्तरी गोलार्द्ध में स्थल मात्रा दक्षिण गोलार्द्ध की (स्थल मात्रा से) दुगुने से भी अधिक है और पानी पहले का 60·7 प्रतिशत भाग और दूसरे का 80·9 प्रतिशत भाग ढकता है। 45° उत्तर और 70° उत्तर के बीच स्थल जल भाग से अधिक है जबकि 35° दक्षिण और 65° दक्षिण के बीच में स्थल, पृष्ठ का केवल छोटा सा भाग है।

सारणी 4 में, महासागरों और कुछ भू-मध्य सागरीय तथा कुछ भू-भागी सागरों जो कि मिल कर आसन्न सागर बनाते हैं, के क्षेत्रफल, आयतन और माध्य गहराइयें दी गई हैं। ये आंकड़े कोसिन्ना (Kossinna, 1921) से हैं और अधिकांश दृष्टान्तों में निर्दिष्ट क्षेत्र पहिचाने जाते हैं लेकिन सीमाओं से सम्बन्धित विस्तृत विवरण के लिये मूल संदर्भ को देखना चाहिये। उत्तरी ध्रुवीय भू-मध्यसागर में उत्तरी ध्रुव सागर, कनाडा के द्वीप समूह का जल, वेफिन खाड़ी तथा नार्वे का समुद्र निहित है और इसलिये यह खुले अटलान्टिक महासागर से उस रेखा द्वारा पृथक्कृत है जो कि लेब्रेडोर और ग्रीन लैन्ड को डेविस जलडमरुमध्य में मिलाती है और जो ग्रीनलैण्ड, आइसलैण्ड, फेरोद्वीप स्कॉटलैण्ड और इंगलैण्ड से होकर गुजरती हुई इंगलिश चेनल के आरपार महाद्वीप को जाती है। एशियाई भू-मध्य सागर में हिन्द महासागर और प्रशान्त महासागर के बीच की सीमा (2·5) से पूर्व की ओर का जल निहित है और जो खुले प्रशान्त महासागर से उस रेखा द्वारा पृथक्कृत होता है जो चीन के तट से फारमोसा, फिलीपाइन्स द्वीपसमूह, मोलक्का और न्यूगिनी होती हुई आस्ट्रेलिया के यार्क अन्तरीप तक जाती है।

अटलान्टिक महासागर के आसन्न सागरों के अतिरिक्त आंकड़े स्टोक, (Stocks 1938) ने दिये हैं। लिटलहेल्स (Littlehales, 1932) महासागरों के क्षेत्रफल के लिये कुछ भिन्न मान देता है।

समुद्र के अधस्तल का उभार

समुद्र विज्ञान की दृष्टि से समुद्र अधस्तल की स्थल रूपरेखा में विशेष रुचि यह है कि वह जल की नीचे की और पार्श्व की सीमाएँ बनाता है। भू अवरोध अथवा अन्तः समुद्र कटक की उपस्थिति जो कि पानी के स्वतंत्र वहाव को अववाधित करती है (वह) परिवहन के सांचे में और गुणधर्मों और जीवधारियों के वितरण में विशेष लक्षण पुरस्थापित करती है और भी जैसा कि अध्याय XX में वताया जायगा किसी क्षेत्र में अवसादों की प्रकृति का चारों ओर की स्थलाकृति से निकट

सम्बन्ध है। दूसरी ओर भू-आकृति तत्ववेत्ता अथवा भौताकृतिक चिन्तक की अभिरुचि मुख्य रूप से भू-पटल के डूबे हुए भागों में पाये जाने वाले कुछ विशेष प्रकार के स्थलाकृति लक्षणों के वितरण और आयाम में होती है। चूंकि भू-पृष्ठ का 71 प्रतिशत भाग पानी से आच्छादित है, भू-उभार के प्रमुख लक्षणों का ज्ञान अपूर्ण ही होगा यदि वह केवल उन रचनाओं पर आधारित हो जो कि भूमि पर देखी जा सकती है। पृथ्वी के भू-वैज्ञानिक इतिहास में जिसका विस्तार कुछ अरब वर्ष है वे क्षेत्र जो कि अब समुद्र तल से बाहर हैं एक या अधिक युग तक समुद्र से आच्छादित रहे हैं और इस समय के निमग्न पृष्ठ के कुछ भाग समुद्र तल से ऊपर रहे हैं। अतएव ऐतिहासिक भू-विज्ञान में कई समस्याएँ महाद्वीपों के चारों ओर के समुद्र अवस्तल की समाकृति और गहरे महासागरों के अधस्तल के आकृति सम्बन्धी ज्ञान पर निर्भर है।

यद्यपि वैज्ञानिक संगठनों द्वारा खुले महासागरों में अमूल्य कार्य किया गया है फिर भी हमारे अन्तःसमुद्र स्थलाकृति के ज्ञान का अधिकांश भाग राष्ट्रीय एजेन्सियों द्वारा अथवा उनके लिये नौचालन चार्टों को बनाने अथवा उनमें सुधार करने के लिये किये गये गहराई मापन पर आधारित है। संयुक्त राज्य (अमेरिका) में संयुक्त राज्य तटीय और भू-पृष्ठ सर्वेक्षण, संयुक्त राज्य और उसके अधिकृत भागों के सीमावर्ती जल के लिए चार्ट बनाता है और संयुक्त राज्य नौसेना का जल लेखीय विभाग खुले समुद्रों में और विदेशी जल में इसी प्रकार का कार्य करता है। पूर्व-कालिक जल लेखीय कार्य वृहत रूप से तट रेखा का मान चित्रण और लगभग 100 फैदम से कम गहराइयों के मापन तक सीमित था जहाँ कि जहाजों के सुरक्षित परिचालन को खतरा हो सकता है। परन्तु जब उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में महासागरोतर समुद्री तार लगाने से पहले सर्वेक्षण किया गया तो गहन सागरों में गहराई मापन को प्रबल संवेग मिला। चेलेन्जर की यात्रा से पहले और उसकी यात्रा के समय तक (1873-1876) सभी गहराई मापन सन की रस्सी से किये जाते थे जो प्रक्रिया को एक लम्बा और जटिल उपक्रम बना देती थी। चूंकि हजारों मीटर की गहराई में गहराई का एक माप लेने में कई घंटे लग जाते थे। गहराई मापन के उपकरण में जब तार की रस्सी और अधिक गहराई मापन में एक तार की रस्सी पुरस्थापित की गई तो गहराई मापन के उपकरण में महान सुधार हुआ। इससे गहन समुद्र में गहराई मापन के लिये आवश्यक गियर का आकार और रस्सी को उतारने और चर्खी पर लपेटने में लगने वाला समय कम हो गया। पैंदे पर पहुँचने के बाद भार को गिरा देने से पुनः लपेटते समय भार काफी कम हो जाता है। इस प्रकार की पहली युक्ति गत शताब्दी के मध्य में संयुक्त राज्य नौसेना के जे. एम. ब्रूक ने विकसित की थी। आजकल तार द्वारा गहराई मापन का जो उपकरण काम में लिया जाता है उसका वर्णन अध्याय X में किया गया है जिसमें समुद्र वैज्ञानिक उपकरणों और विधियों का वर्णन है।

सारणी 4.

समुद्रों और महासागरों का क्षेत्रफल, आयतन और औसत गहराई

(कोसिन्ना, Kossinna, 1921)

अंग	क्षेत्रफल (10^6 वर्ग किलोमीटर)	आयतन (10^6 घन किलोमीटर)	औसत गहराई (मीटर)
अटलांटिक महासागर (समीपवर्ती समुद्रों को छोड़कर)	82.441	323.613	3926
प्रशान्त महासागर (समीपवर्ती समुद्रों को छोड़कर)	165.246	707.555	4282
हिन्द महासागर (समीपवर्ती समुद्रों को छोड़कर)	73.443	291.030	3963
सभी महासागर (समीपवर्ती समुद्रो को छोड़कर)	321.130	1322.198	4117
आर्कटिक भू-मध्यसागर	14.090	16.980	1205
अमरीकी भू-मध्यसागर	4.319	9.573	2216
भू-मध्यसागर तथा काला सागर	2.966	4.238	1429
ऐशियाई भू-मध्यसागर	8.143	9.873	1212
विशाल भू-मध्यसागरीय समुद्र	29.518	40.664	1378
बाल्टिक सागर	0.422	0.023	55
हडसन की खाड़ी	1.232	0.158	128
लाल सागर	0.438	0.215	491
फ़ारस की खाड़ी	0.239	0.006	25
लघु भू-मध्य सागरीय समुद्र	2.331	0.402	172
सभी भू-मध्य सागरीय समुद्र	31.849	41.066	1289
उत्तरी सागर	0.575	0.054	94
इंगलिश चेनल	0.075	0.004	54
आयरिश समुद्र	0.103	0.006	60
सेन्ट लारेन्स की खाड़ी	0.238	0.030	127
अन्डमान सागर	0.798	0.694	870
बेरिंग समुद्र	2.268	3.259	1437
ओखोटस्क समुद्र	1.528	1.279	838
जापान समुद्र	1.008	1.361	1350
पू० चीन समुद्र	1.249	0.235	188
केलिफोनिया की खाड़ी	0.162	0.132	813
बास जल संयोजक	0.075	0.005	70
सीमावर्ती समुद्र	8.079	7.059	874
सभी निम्नवर्ती समुद्र	39.928	48.125	1205
अटलांटिक महासागर (समीपवर्ती समुद्रों सहित)	106.463	354.679	3332
प्रशान्त महासागर (समीपवर्ती समुद्रों सहित)	179.679	723.699	4028
हिन्द महासागर (समीपवर्ती समुद्रों सहित)	74.917	291.945	3897
सभी महासागर (समीपवर्ती समुद्रों सहित)	361.059	1370.323	3795

उनके व्यवहारिक महत्व के कारण और उनको लेने की आसानी के कारण उन्नीसवीं शताब्दी में कुछ सो मीटर से कम गहरे स्थानों की गहराई मापन की संख्या द्रुतगति से संचित हो गई। लेकिन1895 में लगभग 2000 मीटर से अधिक गहराई के मापों की संख्या केवल 7000 थी और उनमें से केवल 550 संख्या, 5500 मीटरसे अधिक गहराई की थी बेन्कर (Bencker 1930)। चेलेन्जर अभियान की रिपोर्ट के साथ गहराई मापन चार्टों में मूरे ने इन आंकड़ों का उपयोग किया। आगामी 25 वर्षों में गहरे समुद्र के गहराई मापन की संख्या धीरे २ बढ़ी परन्तु 1920 के पश्चात् ध्वनिक गहराई मापन उपकरण के पुरस्थापन ने पूर्ण रूप से स्थिति बदल दी है। ध्वनि आवेग के समुद्र अधस्तल तक जाने और उससे वापिस लौटने के अन्तर का समय निर्धारण से (जो कि गहरे पानी में भी केवल कुछ ही सेकण्ड होता हैं) गहराई मापने की युक्तियें सर्वेक्षण कार्यो में प्रयुक्त की जाती हैं। तथा अब ये बहुत से तटीय और महासागरीय जहाजों पर मानक उपकरण हैं। स्वचालित प्रतिध्वनि गहराई मापन की युक्तियों के विकास ने (अध्याय X) गहराई मापन को न केवल सरल बना दिया वरन् इसने यथार्थ गहराई मापन चार्ट उपलब्ध कर नौचालन में एक और सहायता पुरस्थापित की है। चूंकि समुद्र अधस्तल की विषमता पर के मार्ग को, स्थिति की पड़ताल करने में काम लिया जा सकता है। इस विकास ने यह आवश्यक कर दिया है कि गहरे पानी और इसलिये किनारे से अधिक दूर तक यथार्थ सर्वेक्षण बढ़ाया जाय। संयुक्त राज्य के समुद्र तट के 4000 मीटर की गहराई तक अधस्तल के अब विस्तृत चार्ट बनाये जा रहे हैं। ध्वनिक विधियों से यदि उपयुक्त उपकरण उपलब्ध हों तो, जल बालू उत्थित पानी से अधिक गहरे पानी में मापने में विशेष कठिनाई नहीं है। और चूंकि कई नौसेनिक जहाज और महासागरोत्तर व्यापारिक जहाज उनके प्रेक्षणों को व्यवस्थित रूप से अंकित करते हैं गहरे समुद्र में गहराई मापन के आँकड़े चित्रित करने की गति से भी द्रुत गति से अब संचित हो रहे हैं।

अन्तःसमुद्र स्थलाकृति को प्रदर्शित करने की सर्वाधिक प्रचलित विधि यह है कि तट रेखा बताने वाले चार्ट पर गहराई मापन के मान उन स्थानों पर अंकित कर दिये जायं जहाँ कि वे लिये गये हों। आंग्ल भाषी देशों के राष्ट्रीय जल लेखीय सेवाओं द्वारा निकाले गये चार्ट गहराई फेदम में बताते हैं या यदि हारबर चार्ट हो तो फीट में (1 फेदम=6 फीट=1.8288 मीटर)। दूसरे देशों द्वारा निकाले गये चार्ट साधारण तौर पर मीटर काम में लेते है यद्यपि कतिपय योरोपीय देशों द्वारा कुछ अन्य इकाइयें प्रयुक्त की जाती हैं।

चूँकि सब मापों को अंकित करना सामान्य रूप से असम्भव है तथा चूंकि केवल आंकिक मान स्थलाकृति का लेखाचित्रीय प्रदर्शन नहीं कर सकते इसलिये गहराई के कंटूर (समगहराई रेखाएँ) उन क्षेत्रों में खींची जाती हैं जो कि गहराई मापन की संख्या अथवा चार्ट का प्रयोजन इसे वांछनीय बना देता है। नौचालन चार्टों पर कंटूर

सामान्य रूप से छिछले क्षेत्रों तक ही सीमित रहती हैं जहाँ गहराई माप भी बताया जाता है। परन्तु कुछ क्षेत्रों के लिये जिनकी कि सावधानी पूर्वक परीक्षा की गई है ऐसे चार्ट निकाले गये हैं जिन पर अधिक से अधिक 2000 फेदम तक की गहराई के कंटूर बताये गये हैं। उदाहरणार्थ दक्षिणी केलीफोर्निया तट के लिये 1939 में निकाला हुआ संयुक्त राज्य तट और भू-पृष्ठ सर्वेक्षण चार्ट नं० 5101 A समुद्र वैज्ञानिक कार्यों के लिये बनाये गये गहराई मापन चार्टों में कंटूर ही बताये जा सकते हैं परन्तु केवल कुछ विशेष स्थितियों में जैसा कि भौताकृतिक अध्ययन में गहराई के समान अन्तर के लिये सम गहराई रेखाएँ बताई जाती हैं।

जिस यथार्थता से अन्तःसमुद्र स्थलाकृति चित्रित की जा सकती है वह उपलब्ध गहराई के मापों की संख्या तथा उस यथार्थता पर निर्भर करती है जिससे गहराई मापन की स्थितियाँ निश्चित की गई हों। भू-पृष्ठों के स्थलाकृति मानचित्र प्रधान रूप से ऐसे ही आंकड़ों पर आधारित हैं। अर्थात् ठीक ठीक निर्धारित बिन्दुओं की उच्चता पर परन्तु इसके सर्वेक्षक को जल सर्वेक्षक की अपेक्षा एक बड़ी सुविधा होती है। स्थल सर्वेक्षक परीक्षण क्षेत्र को देख सकता है और इससे अपने प्रेक्षण बिन्दुओं का इस प्रकार चुनाव कर सकता है जिससे स्थलाकृति के अधिक आवश्यक लक्षण यथार्थता से चित्रित हो। इसके विपरीत जल सर्वेक्षक को कई न्यूनाधिक याद्रच्छिक गहराई मापों से समुद्र अधस्तल की स्थलाकृति बनानी पड़ती है। ध्वनिक मापन विधियों और समुद्र में स्थिति ज्ञात करने के अधिक यथार्थ साधनों की प्रवृत्ति ने (देखो वेच और स्मिथ Veatch & Smith 1939) समुद्र तल के कुछ भागों का साधारण यथार्थ चार्ट और प्रतिरूप बनाने के लिये पर्याप्त आंकड़े प्राप्त करना शक्य बना दिया है। यह संयुक्त राज्य के तटीय पानी के लिये विशेष प्रकार से सत्य है। वेच और स्मिथ ने पूर्वी समुद्र तट के कंटूर मानचित्र संयुक्त राज्य तट और भू-पृष्ठ सर्वेक्षण के छानबीन के आधार पर बनाये हैं तथा शेपर्ड तथा एमरी (Shepard and Emery 1941) ने प्रशान्त महासागर किनारे के इसी प्रकार के आंकड़ों का उपयोग किया है जहाँ लगभग 1,300,00 गहराई मापन उपलब्ध थे।

कुछ दृष्टान्तों में अधस्तल समाकृति को ऊर्ध्वाधर पार्श्व चित्रों अथवा उभार प्रतिरूप से प्रदर्शित करना श्रेष्ठ है। परन्तु महासागरों के क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर आयाम के परिमाण में अन्तर होने से, ऊर्ध्वाधर पैमाने को बढ़ाकर बताना समान्यतः आवश्यक है। महासागर की औसत गहराई लगभग 3800 मीटर है और इसलिये महासागर अधस्तल का ऊर्ध्वाधर उभार कुछ किलोमीटर है। जबकि क्षैतिज दूरियाँ सहस्त्रों किलोमीटर हो सकती हैं। अतः इस प्रकार के विकृत निरूपण अन्तः समुद्र ढाल के खड़ेपन की मिथ्या धारणा देते हैं। यदि प्राकृतिक पैमाने पर पार्श्व-चित्र बनाये जायं तो महासागरीय जल एक छिछली पट्टी होगी जिसमें अधस्तल के

अन्तः समुद्र स्थलाकृति के निरूपण प्रायः समुद्र तल से निर्दिष्ट होते हैं और उन रूपों में सर्वदा विशेष रुचि रखी गई है जहाँ बृहत गहराइयाँ पाई जाती हैं। जिस विस्तृत विवरण से अब समुद्र का अवस्तल चित्रित किया जा सकता है उसने सापेक्ष उभार के महत्व पर अधिक बल दिया है। अर्थात् सामान्य परिस्थानों की तुलना में उच्चता और वलकनों के ढाँचे और परिमाण पर आगे वाले पृष्ठों में यह बताया जायगा कि भू पटल पर दो प्राथमिक निर्देशक तल हैं। स्थलखंडों से संगत एक समुद्र तल से तनिक सा ऊपर है और दूसरा बृहत् महासागरीय द्रोणियों से संगत 4000 और 5000 मीटर की गहराइयों के बीच में। भूमि पर के स्थलाकृतिक लक्षणों की समुद्र अवस्तल पर के लक्षणों से तुलना करने के लिये उन पर इन तलों के हवाले से विचार करना आवश्यक है।

सारणी 5.

महासागरों में गहराई कटिबंध का प्रतिशत क्षेत्रफल
(कोसिन्ना, Kossinna, 1921)

गहराई अन्तर (मीटर)	सन्निपवर्ती समुद्रों सहित				सन्निपवर्ती समुद्रों रहित			
	अटलांटिक	प्रशान्त	हिन्द	सभी महासागर	अटलांटिक	प्रशान्त	हिन्द	सभी महासागर
0—200	13.3	5.7	4.2	7.6	5.6	1.7	3.2	3.1
200—1000	7.1	3.1	3.1	4.3	4.0	2.2	2.7	2.8
1000—2000	5.3	3.9	3.4	4.2	3.6	3.4	3.1	3.4
2000—3000	8.8	5.2	7.4	6.8	7.6	5.0	7.4	6.2
3000—4000	18.5	18.5	24.0	19.6	19.4	19.1	24.4	20.4
4000—5000	25.8	35.2	38.1	33.0	32.4	37.7	38.9	36.6
5000—6000	20.6	26.6	19.4	23.3	26.6	28.8	19.9	26.2
6000—7000	0.6	1.6	0.4	1.1	0.8	1.8	0.4	1.2
>7000	...	0.2	...	0.1	...	0.3	...	0.1

भू पटल के पार्श्व चित्र के लक्षण बताने की एक विधि, किसी दी हुई उच्चता अथवा गहराई के कन्टूर से ऊपर भूमि के ठोस पृष्ठ के क्षेत्रफल को बताने वाले उच्चता

दर्शक वक्रों से है। चित्र (2) के उच्चता दर्शक वक्र कोसिन्ना (Kossinna, 1921) से है। यद्यपि अवस्तल की समाकृति से सम्बन्धित अधिक आंकड़े, इस वक्र में कुछ रूपान्तर करदें परन्तु व्यापक लक्षणों में कोई परिवर्तन नहीं होगा। ऊँचे पहाड़ भू पृष्ठ का अपेक्षाकृत वहुत कम भाग हैं अतः भू-पृष्ठीय पपड़ी की माध्य उच्चता केवल 840 मीटर है। निम्नस्थ भूमि के विशाल क्षेत्रों के प्रतिरूप सतह और लगभग 200 मीटर (सारणी 5) के वीच के छिछले पानी में अपेक्षाकृत विशाल क्षेत्र हैं। छिछले पानी के ये तटीय क्षेत्र महाद्वीपीय मग्नतटों के अनुरूप है। महाद्वीपीय मग्नतट से नीचे 200 मीटर से 3000 मीटर के वीच की गहराई का अपेक्षाकृत छोटा क्षेत्र है जो महाद्वीपीय ढाल के अनुरूप है और तव फैला हुआ महासागरीय वितल आरम्भ होता है जिसकी गहराई 3500 से 6000 मीटर के वीच में होती है। अथाह गहराइयाँ जो कि परिभाषा के अनुसार 6000 मीटर से अधिक गहरी हैं समुद्र अवस्तल का वहुत कम भाग है। चित्र में माध्य गोलीय गहराई वताई गई है जो वह एक समान गहराई है जहाँ तक पानी पृथ्वी को ढक लेगा यदि ठोस पृष्ठ सपाट कर दिया जाय और भू समुद्र तलाभ पृष्ठ के समांतर हो। समुद्र की माध्य गहराई जो कि 3800 मीटर है, भी दिखाई गई है।

भू पटल के उच्चतादर्शक वक्र का भापान्तर पृथ्वी के पृष्ठ और समुद्र के अधस्तल की औसत रूपरेखा से नहीं लगाना चाहिये क्योंकि यह तो केवल उन कुछ तलों के वीच के क्षेत्रों का संकलन निरूपण करता है जिनमें उनकी स्थिति या उठानों और धसकनों के सम्वन्ध का कोई विचार नहीं होता है। वास्तव में सवसे ऊँचे पहाड़ प्रायः महाद्वीपीय तटों के निकट होते हैं। निम्नस्थ जमीन के विशाल क्षेत्र महाद्वीपों के केन्द्रीय भाग में स्थित होते हैं और अति वृहत् गहराइयाँ महाद्वीपीय खण्डों के निकट पाई जाती हैं, न कि समुद्रीय धसकनों के वीच में। चित्र 2 में 1000 मीटर के अन्तर पर उठान और धसकनों के प्रतिशत दिये हुए हैं। ये दो महत्तम वताते हैं एक तो समुद्र तल से ठीक ऊपर और दूसरा 4000 और 5000 मीटर की गहराइयों के वीच में। इन महत्तमों के महत्व का विवेचन आगे (2.6) किया गया है।

सारणी 5 में तीन महासमुद्रों में गहराई खण्डों के प्रतिशत क्षेत्र दिये हुये हैं और तमाम महासमुद्रों के लिये निकटवर्ती समुद्रों के सहित और उनके रहित। यह पता चलेगा कि मग्नतट (0–200 मीटर) अटलांटिक महासमुद्र, जो कि महासमुद्रों में अति उथला महा समुद्र भी है, में एक मुख्य लक्षण निरूपण करता है। सारणी 4 तथा 5 के आँकड़े मिलाने से गहराई खण्डों की निरपेक्ष गहराई संगणित की जा सकती है। चित्र 2 में उच्चता दर्शक वक्र निकटवर्ती समुद्रों सहित तमाम महासमुद्रों के मान पर निर्भर है।

पृथ्वी के भू वैज्ञानिक इतिहास पर्यन्त समुद्र के अधस्तल और भूमि के उभार में वृहत् परिवर्तन हुये है। ऊर्ध्वाधर हलचलों की यथार्थ प्रकृति और विस्तार इस विवरण की गुंजाइश से परे हैं परन्तु यह ध्यान में रक्खा जावे कि आपेक्षिक समुद्र तल में 100 मीटर के लगभग परिवर्तन हुए जिनका हिसाब हिम एवम् अन्तर्हिम काल पर्यन्त में पानी के हटाने और शामिल होने से, आसानी पूर्वक लगाया जा सकता है और ये परिवर्तन अपेक्षाकृत विशाल क्षेत्रों को खुला रखेंगे तथा आप्लावित करेंगे।

महाद्वीपीय मग्नतट साधारणतया 100 फैदम या 200 मीटर की गहराइयों तक के फैलाव में माना जाता है लेकिन शेपर्ड, (Shepard 1939) ने मालूम किया कि यह सीमा इससे कुछ कम होनी चाहिये अर्थात् 60 और 80 फैदम (110 और 146 मीटर) के बीच में। मग्नतट की रूप-रेखाएँ बहुतसी छोटी वेदियों की उपस्थिति दिखाती हैं जो धाराओं और तरङ्गों का असर निरूपण करती है जबकि समुद्र-तल सम्भवतः हिम नदी रंजित् युगों में नीचे होता है। वेच और स्मिथ, (Veatch and Smith 1939) ने संयुक्त राज्य के अटलांटिक महासागर के तट से दूर महाद्वीपीय मग्नतट के विस्तृत अध्ययन में तटीय रेखा के सन्निकटतः समान्तर बहुत से छोटे कटक पाये हैं। महाद्वीपीय मग्नतट चौड़ाई और ढाल में बहुत घटते-बढ़ते हैं। दूर पर्वतीय किनारों के समान, कुछ परिस्थितियों में मग्नतट वस्तुतः अविद्यमान् हो सकते हैं, जबकि हिम नदी रंजित किनारों से दूर विशाल नदियों के मुहानों से दूर और चौड़ी उपत्यकाओं वाले क्षेत्रों से दूर मग्नतट बहुत चौड़ा हो सकता है। समस्त भू मण्डल के लिये मग्नतट की चौड़ाई सन्निकटतः 30 मील होती है जिसका परास शून्य मील से लगाकर 800 मील से अधिक तक होता है। सबसे ज्यादा चौड़ा मग्नतट साइबेरिया के किनारे के साथ साथ उत्तरी ध्रुव सागर में पाया जाता है।

ऊपर दिये हुए मान से यह देखा जा सकता है कि महाद्वीपीय मग्नतट भूमि का औसत ढाल लगभग 2 फैदम प्रति मील यानि 0.2 प्रतिशत है। यह लगभग 7′ का ढाल कोण के अनुरूप होता है। यद्यपि मग्नतट का ढाल सामान्य रूप से सागरमुखी होता है फिर भी यह किसी भी प्रकार से समक्रमिक रूपरेखा नहीं है। जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है कहीं कहीं वेदियाँ कटके, पहाड़ियाँ और धसकनें हो सकती है और बहुत से क्षेत्रों में तो खड़ी दिवालों वाले केनियन इसके आरपार काटते हुए होते हैं। मग्नतट विषमताएँ हिमनदी रंजित किनारों से दूर विशेष स्पष्ट होती हैं और हिम नदी युग में बर्फ के कारण बनी जब यह खण्ड हिम नदीय अपरदन से अरक्षित था शेपर्ड (Shepard, 1931)। उठान में चरम परास की अपेक्षा जमीन पर ढाल बहुधा अधिक सार्थक होता है। लिटिलहेल्स, (Littlehales 1932) के अनुसार छोटे से

छोटा ढाल जिसका मनुष्य की आँख पता चला सकती है वह 17′ है। इसलिये थोड़ी सी विपमता के सिवाय, महाद्वीपीय मग्नतट भूमि आम तौर पर सपाट दिखाई पड़ेगी।

500 पार्श्व चित्रों के परिक्षण से शेपर्ड, (Shepard, 1941) ने पता लगाया कि महाद्वीपीय ढाल का झुकाव समुद्रतट के लक्षण के साथ घटा-बढ़ा। पर्वतीय किनारों से दूर महाद्वीपीय ढालों का औसतन ढाल लगभग 6 प्रतिशत (3°30′) होता है जबकि चौड़े और भलि भांति अपवाहित तटीय मैदान के साथ दूर किनारों का ढाल लगभग 3.5 प्रतिशत (2°0′) होता है।

ज्वालामुखीय द्वीपों के निमग्न ढाल ज्वालामुखी पर्वतों के खुले हुए ढालों के समान होते हैं और ये 50° तक वृहत् हो सकते हैं, कुयेनेन (Kuenen, 1935)। बड़े अन्तः समुद्री केनियन में दिवालें इतनी रुक्षित और अवक्षेपिय होती हैं जितनी कि एरिझोना के ग्रांड केनियन की (चित्र 8,2.7)। समुद्र तल से ऊपर और नीचे कगार अंश तुलनात्मक ढाल प्रदर्शित करते हैं।

गहरे समुद्र के औसत ढाल कम होते हैं। क्रुमेल (लिटिलहेल्स, Littlehales 1932) ने पता लगाया कि उत्तरी अटलांटिक महासागर में माध्य ढाल लगभग 20′ और 40′ के बीच घटे-बढ़े परन्तु या तो ये औसत हैं या दो बिन्दुओं के उत्थापनों के अन्तर को बिन्दुओं के बीच की दूरी से विभाजित कर प्राप्त किये गये थे। जहाँ दूरियाँ अधिक हों या जब गहराई मापनो की संख्या कम हो तो इस प्रकार निकाले गये ढाल उभार का सही निरूपण नहीं करते हैं। अधिक संख्या में अब उपलब्ध आंकड़ों ने विपमताओं को प्रकट किया है जो कि रुक्षता में पृथ्वी की बड़ी स्थल रूप रेखीय आकृति के तुल्य हैं।

स्थल रूपरेखा के मुख्य लक्षण

महासागरीय अवस्तल स्थल रूपरेखा का विवेचन विशाल पैमाने वाले स्थल रूप रेखीय लक्षणों के संक्षिप्त वर्णन तक ही सीमित रखा जायगा। ये लक्षण वृहत् सम्मोच रेखांतरों से छोटे चार्ट में निरूपित किये जाते हैं। उन क्षेत्रों में जहाँ अनेक गहराई मापन किये गये हैं वहां यह पाया गया है कि समुद्री अधस्तल उतना ही टेढ़ा-मेढ़ा है जितना भू-पृष्ठ, परन्तु ऐसी तफसील केवल छोटे सम्मोच रेखांतरो से विशाल पैमानी चार्ट पर ही दिखायी जा सकती है। ऐसा इस पुस्तक में नहीं किया गया है।

अन्तः जल भूविज्ञान समुद्र के तल की स्थल रूपरेखा, महासागरीय पैंदे में पाई जाने वाली आग्नेय तथा अवसादी सामग्रियों तथा स्थल रूप रेखीय उभार के विकास की प्रक्रियाओं से सम्बन्धित है। यह क्षेत्र अपेक्षाकृत नया है इसको प्रतिध्वनिक

गहराई मापन के विकास से काफी प्रेरणा मिली तथा इन विधियों से समुद्र के तल के सही सही नक्शे प्राप्त करना सम्भव हो गया और भूभौतिक विधियों (पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र, गुरुत्व असंगतियों तथा भूभौतिक और कृत्रिम भूकम्पीय तरंगों के पथ और वेग का मापन और निर्वचन) के विकास से भी प्रेरणा मिली जिनसे पृथ्वी के पटल को बनाने वाली सामग्रियों की मोटाई और लक्षण अनुमानित हुए। तब भी अभी तक महासागर थाला के भू भौतिक-इतिहास में अन्तर्ग्रस्त प्रक्रियाओं में अन्वय नहीं है और यहां पर विभिन्न प्राक्कल्पनाओं का विवेचन नहीं किया जायगा। समस्याओं की सामान्य समीक्षा का जॉनस्टोन (Johnstone, 1928), बूचर (Bucher, 1933), कुयेनेन (Kuenen, 1935) और गुटेनबर्ग (Gutenberg, 1939) की कृतियों से पता चल जावेगा। समुद्र अवस्तल के भू भौतिक गवेषण पर हुवे परि-संवाद से अनेक प्रगतियों का पता चल जाता है, फील्ड इत्यादि (Field *etal*, 1938)।

भू-पटल के उठान और धसकनों का वितरण (चि० 2) यह बताता है कि 1000 मीटर और समुद्र-तल के बीच उठानों के तथा 4000 और 5000 मीटर की गहराइयों के काफी बड़े भाग हैं। बूचर (Bucher, 1933) के अनुसार बड़े भागों में से उठानों तथा गहराइयों के कम मान वाले भाग भू-पटल के लक्षण से सम्बन्वित हैं तथा अधिक मान वाले भाग भू-पृष्ठीय अपरदन तथा अवसादन के कारण हैं। तब प्रश्न उठता है कि 4500 मीटर की गहराई के संदर्भ से महासागरीय तल की स्थल रूप रेखा का विस्तार जिसके अनुरूप है वह भूमि समुद्र तल के संदर्भ में है या किसी और उच्चतल के संदर्भ में। बूचर के अनुसार विशाल पैमानीय लक्षण अनिवार्य रूप से एक समान होते हैं और तुलनात्मक परिमाप की उठाने तथा धसकने महासागर तल तथा भूमि, दोनों पर पाये जाते हैं। यद्यपि मुख्य लक्षण तुलनात्मक होते हैं, तफसील फिर भी बिल्कुल भिन्न होती हैं क्योंकि जो अपरदन तीक्ष्ण उभार बनाने में तथा भूमि के उठान के चरम विनाश में इतना महत्वपूर्ण होता है वह समुद्र में वस्तुतः अनुपस्थित होता है। समुद्र में अपरदन के सबसे अधिक प्रभावशाली कारक पृष्ठीय तरंगे होती हैं और ये सपाटशीर्ष लक्षण उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं ऐसे लक्षण कम गहराइयों तक ही सीमित होते हैं चूंकि ऐसी तरंगों में कणों का वेग बढ़ती हुई गहराई के साथ तेजी से घटता है (2.8)। अन्य प्रक्रियाऐं जो समुद्र तल के अपरदन में योग दें वे अध्याय XX में तथा अन्तः समुद्री कैनियनों की उत्पत्ति से सम्बन्धित अनुभाग (2.9) में विवेचित की गयी हैं। निक्षेपण वह लाक्षणिक प्रक्रिया है जो समुद्र तल की स्थल रूप रेखा को रूपान्तरित कर देती है। अवसादी मलवा धसकनो में संचित हो जाता है जबकि स्थल रुप रेखीय उच्च स्थानों पर बहुत थोड़ा या नहीं के बराबर संचय होता है। ये उच्च स्थान सूक्ष्म कणिक अवसाद रहित होते हैं और यदि पृष्ठ के निकट हैं या अपवाद रूपसे प्रबल धाराओं वाले इलाकों में हैं तो अपर-दाधीन होते हैं।

बूचर (Bucher, 1933) ने उल्लेख किया है कि भूमि और महासागरीय-तल पर मुख्य रूप से दो प्रकार के विशाल पैमाने के स्थल रूप रेखीय लक्षण होते हैं। (1) सन्निकटतः समविमितीय पार्श्विक विस्तार के लक्षण जिनके नाम के लिये बूचर "थालो" और "महातरंगों" शब्दों को काम में लेता है और (2) लम्ब रूप के लक्षण जिनके पार्श्व सामान्यतः ढालू होते हैं ऐसे लक्षणों के नाम के लिये बूचर 'सीवन' और 'खूड़' शब्दों को काम में लेता है। महासागरीय तल पर लम्बे सीवन और खूड़ ज्यादा सर्वनिष्ठ प्रतीत होते हैं और ऐसी संरचनाओं की आकृति में बहुत परिसर होती है। समुद्र तल पर बड़े सीवन की प्रवृत्ति महाद्वीपीय तटों के समान्तर होने की होती है इससे महासागर दीर्घ द्रोणिकाओं में विभाजित हो जाते हैं। अनुप्रस्थ कटक इन मुख्य धसकनों को थालाओं की श्रेणी में उपविभाजित कर देते हैं जो एक दूसरे से न्यूनाधिक अंश में पृथक होते हैं। अटलांटिक महासागर और हिन्द महासागर के तल तथा प्रशान्त महासागर के पश्चिमी भागों द्वारा यह थाला और कटक स्थल रूप रेखा स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होती है परन्तु प्रशान्त महासागर के मुख्य भाग में यह इतना उत्कृष्टसा लक्षण नहीं प्रतीत होता है।

लघु सीवनों तथा खूड़ों में अति खड़े ढाल, उच्चतम उठानें तथा परम वृहत् गहराइयाँ पाई जाती हैं। सीवन और खूड़ सामान्यतया वृतखण्डीय रूप रेखा के साथ एक दूसरे के निकट होते हैं और महाद्वीपों के पास विशिष्ट रूप से पाये जाते हैं। गहरे खूड़ सामान्य रूप से चाप के समान सीवन के उत्तल भाग में होते हैं परन्तु कभी कभी कटक के अवतल भाग में वृहत् गहराइयाँ पाई जाती हैं (चार्ट I)। सीवन के अंश समुद्र तल से ऊपर एक द्वीप या द्वीपों की श्रंखला बनाते हुए फैल सकते हैं। इस प्रकार के लक्षण प्रशान्त महासागर के उत्तरी और पश्चिमी भागों में पूर्वी हिन्द द्वीपसमूह में, वेस्ट इन्डीज में, और दक्षिण अमेरिका तथा एण्टार्कटिका के बीच के भागों में पाये जाते हैं। दक्षिण अमेरिका के पश्चिम तट-स्पर्शी सीवन ऐन्डीज की पर्वत श्रेणी के अनुरूप होता है और इसलिये महाद्वीप का भाग होता है। ये संरचनायें आपेक्षाकृत अभिनव उत्पत्ति की हैं और पृष्ठीय अस्थिरता वाले क्षेत्रों में होती हैं, इसका प्रदर्शन सीवन पर निर्वापित या सक्रिय भू पृष्ठीय या अन्तः समुद्री ज्वालामुखियों की उपस्थिति से होता है और इस तथ्य से भी प्रदर्शन होता है कि ये संरचनायें अत्यन्त ही निश्चित असंगतियों के क्षेत्रों में होती है और बड़ी भूकम्पीय सक्रियता के स्थान होती हैं (फील्ड इत्यादि Field, *et al*, 1938)।

अन्तः समुद्र स्थल रूपरेखा की शब्दावली

अन्तः समुद्र स्थल रूपरेखा के लक्षणों के लिये उपयोगित शब्दों का वर्गीकरण उनकी आकृति के अनुसार करने की अपेक्षा लक्षणों की उत्पत्ति के अनुसार किया जावेगा, यद्यपि आकृति के अनुसार वर्गीकरण करना ज्यादा सर्वनिष्ठ है। [उदाहरणार्थ

निब्लेक (Niblack, 1928), लिटिलहेल्स (Littlehales, 1932)]अन्तः समुद्र उभार के लक्षण दो मुख्य श्रेणियों में समूहित किये जा सकते हैं। यही वर्गीकरण इस पर निर्भर करता है कि उभार ने अपना लाक्षणिक रूप पटल-विरूपणात्मक सक्रियता से पाया है अथवा अपरदन या निक्षेपण से पाया है। उभार के विकास की प्रारम्भिक बड़े पैमानी प्रक्रिया पटल विरूपणात्मक ही होनी चाहिये परन्तु कई स्थितियों में विशिष्ट लक्षण अपरदन या निक्षेपण से उत्पादित होते हैं। समुद्र-पृष्ठ के नीचे बने हुए लक्षण और सम्भवतः भू पृष्ठीय अपरदन या निक्षेपण से उत्पादित लक्षणों में किसी प्रकार का अन्तर यहाँ नहीं किया जायगा। जैसा कि पहले सूचित किया गया है कि समुद्र में निक्षेपण धसकनों को भरने लगता है और तल की लघु विषमताओं को सपाट करने के लिये स्थलाकृतिक ऊंचे क्षेत्रों में थोड़ा या नहीं के बराबर निक्षेपण होता है, इसके लिये उन स्थितियों को छोड़ा जा सकता है जिनमें जीवधारियों का महत्त्वपूर्ण कार्य होता है (जैसे प्रवाल भिति की बनावट)।

महाद्वीपीय और द्वीपीय मग्न तट भूमियों को बनाने वाली प्रक्रियाओं का काफी विवेचन हुआ है। कुछ लेखकों का मत है कि ये तरंग-निर्मित हैं (निक्षेपणीय) दूसरों का विचार है कि ये तरंग रदित है (अपरदनीय) ; या दोनों प्रक्रियाओं का सम्मिश्रण है, जॉनसन (Johnson, 1919) शेपर्ड (Shepard, 1939)। उत्तर अटलांटिक के दोनों तरफ का भौगोलिक अध्ययन, बूचर (Bucher 1940), बताता है कि मग्नतट भूमि अवसादी चट्टानों के वृहत् प्रीज़्माकार संचय से बनी हुई है। पूर्वीय संयुक्त राज्य अमेरिका के सीमावर्ती मग्न तट भूमि के बाहरी किनारे पर ये चट्टानें 4000 मीटर मोटी हैं। ये लक्षण किस सीमा तक मन्द संचय और पपड़ी के धसने से हुए हैं इनका निश्चय नहीं हो पाया है और यह भी निश्चय नहीं हो पाया है कि कहाँ तक पटल विरूपणात्मक हलचलें अन्तर्ग्रस्त हुई हैं। मग्न-तट, एकाकी सपाट-शीर्ष तट तथा जल बालू उत्थान के विशिष्ट रूप और उथले तल के दूसरे लक्षण यह सूचित करते हैं कि तरंग अपरदन और धाराओं द्वारा परिवहन ने उनके विकास में बड़ा महत्त्वपूर्ण योग दिया है। विशेष महत्त्व तो समुद्र तल के अपेक्षाकृत ऊपर नीचे होने को दिया जाता है जो प्रत्येक हिम-युग में महाद्वीपीय बर्फ के संचय तथा उसके अनुवर्ती पिघलने से हुआ है। डाली (Daly, 1934) के अनुसार समुद्र तल का अधिकतम अवतरण 100 मीटर के लगभग था परन्तु अभिनव वर्षों में शेपर्ड (शेपर्ड और एमरी, Shepard and Emery, 1941) ने अन्तः समुद्री केनियन की उत्पत्ति के कारण का ख्याल करने हेतु 1000 मीटर के लगभग के अवतरण की युक्ति दी है। यहां तक कि 100 मीटर तक के अवतरण से मग्न तट के बड़े क्षेत्र खुले हो जावेंगे और निमज्जित वेदियों की उपस्थिति को स्पष्ट कर देंगे। साथ ही दूसरी विषमताओं को भी स्पष्ट कर देंगे जो जल का तल नीचा रहने पर तरंग क्रिया द्वारा बनी हों।

किसी विशेष प्रकार के स्थल-रूप रेखीय लक्षणों को निर्दिष्ट करने के लिये प्रयुक्त शब्द, उनके फ्रेन्च और जर्मन पर्याय तथा उनकी परिभाषा जो नीचे दी जा रही

है ये वहीं है जिनको अन्तर्राष्ट्रीय हाइड्रोग्राफिक ब्यूरो ने सुझाये हैं निब्लेक (Niblack, 1928) । दुर्भाग्यवश कुछ शब्दों के प्रयोग में बड़ी संभ्रान्ति है, विशेषकर वे शब्द जो स्थल रूप रेखा के बृहत् लक्षणों के लिये होते हैं । कभी कभी कई विभिन्न वर्णनात्मक शब्दों को एक ही संरचना के लिये उपयोग में लिये जाते हैं और कभी कभी एक ही शब्द एक दम विभिन्न आकार और सम्भवत: विभिन्न उत्पत्ति के लक्षणों के लिये काम में लिया जाता है। भौतिक समुद्र विज्ञान की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की एक समिति, वाघन इत्यादि (Vaughan *et al*, 1940) ने शब्दावली से सम्बन्धित कई समस्याओं के स्पष्टीकरण की कोशिश की परन्तु अभी भी काफी सम्भ्रान्ति प्रचलित है । अलग अलग लक्षणों को निर्दिष्ट करने के लिये वर्णनात्मक शब्द के उपसर्गित एक विशिष्ट नाम होता है । बृहत्-पैमानीय लक्षणों से संलग्न विशिष्ट नाम सामान्यतया भौगोलिक होते हैं परन्तु जो किनारों, जल बालू उत्थानों, केनियन, समुद्री पर्वत, और कभी कभी गहराइयों को निर्दिष्ट करते हैं वे बहुधा या तो जहाजों के नाम पर होते हैं या उन व्यक्तियों के नाम पर जो उनकी खोज या मान चित्रण से सम्बन्धित होते हैं ।

पृष्ठीय विरूपण से होने वाले लक्षण

1. उठानें—महासागरीय तल के विशाल-पैमाने वाली उठाने मेंड़, चढ़ाइयां या उभार कहलाती हैं ।

मेंड़ (फ्रे०, डोरसेल; ज० रुकेन) एक लम्बी और संकीर्ण उठान जिसकी बाजू के भाग चढ़ाइयों की तुलना में अधिक ढालू होते हैं ।

चढ़ाई—(फ्रे० सीयूइल; ज० स्वेले) एक लम्बी और चौड़ी उठान जिसका महासागरीय तल से सरल ढाल होता है ।

महासागरीय तल से उठने वाले एकाकी पर्वत समान संरचनाएँ समुद्र-पर्वत कहलाती हैं । जहां कहीं मेंड़ें वक्र होती हैं और विशेषकर, उनमें से कुछ समुद्र पृष्ठ से ऊपर होती हैं तो कभी कभी वे 'आर्क' कहलाती हैं । चढ़ाई का चौड़ा-शीर्ष पठार कहलाता हैं । दो थालों को पृथक करने वाली निमज्जित उठान के लिये 'सिल' का उपयोग किया जाता है । सिल गहराई वह परमवृहत् गहराई है जहां पर थालों के बीच सुगम क्षैतिज संचार होता है ।

2. धसकन—खाई, द्रोणिका, और थाल—ये पद सामान्यतया महासागरीय तल पर बृहत्पैमानी धसकनों के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं ।

द्रोणिका—(फ्रे० डीप्रेशन; ज० मूल्डे) एक सरल ढलवां बाजूवाली एक लम्बी, चौड़ी धसकन ।

खाई—(फ्रे० फोसे; ज० ग्रेबन) आपेक्षाकृत ढालू बाजू वाली एक लम्बी और संकीर्ण धसकन ।

थाला—(फ्रे० वासीन; ज० वेकन) न्यूनाधिक वृत्ताकार या अण्डाकार आकृति की एक बड़ी धसकन।

उपरोक्त परिभाषित पद किंचित अस्पष्टता से प्रयोग किये जाते हैं और आकार की विस्तृत सीमाओं के लक्षणों के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं।

धसकन के वे भाग जो गहराई में 6000 मीटर से अधिक होते हैं उनके लिये पद 'अथाह्' (फ्रे० फोसे; ज० टीफ) काम में लिया जाता है। जैसा कि आरम्भ में मुरे ने सुझाया था कि यह शब्द उन क्षेत्रों को नामोदिष्ट करते हैं जहाँ गहराई 3000 फैदम (5486 मीटर) से अधिक होती है परन्तु अब यह साधारणतया वृहत् गहराइयों के साधनों के लिये प्रतिवन्धित है (वाघन इत्यादि, Vaughan *et al*, 1940)। गहराई (फ्रे० प्रोफोन्डेर; ज० टिफे) का, सम्वन्धित जहाज के नाम से उपसर्गित करके किसी नियत अथाह् में पाये गये अधिकतम गहराई मापन को नामोदिष्ट करने के लिये उपयोग किया जा सकता है।

अपरदन, निक्षेपण, और जैव-क्रिया से परिणामिक लक्षण

जैसा कि ऊपर सूचित किया जा चुका है कि इस श्रेणी के लक्षण प्रारम्भिक रूप में पटल विरुपणात्मक उत्पत्ति की संरचनाओं के अपरदन या निक्षेपण से वने हैं। इस समूह के सबसे प्रमुख प्रकार के लक्षण मग्नतट भूमि और ढलान हैं।

मग्नतट भूमि—स्थाई निमज्जन की रेखा से सामान्यत: 120 मीटर की गहराई तक फैला हुआ खंड जहां वृहत् गहराइयों की ओर एक विशिष्ट अथवा ढालू उतराई होती है। महाद्वीपों के सीमास्पर्शी लक्षण के लिये महाद्वीपीय मग्न तट भूमि शब्द (फ्रे० प्लेटो कोन्टीनेन्टल; ज० कोन्टीनेन्टल-स्केल्फ) का उपयोग किया जाता है जब कि द्वीपों को घेरने वाले लक्षण के लिये द्वीपीय मग्न तट भूमि (फ्रे० सोक्ले; ज० इन्सेल-स्केल्फ) को काम में लिया जाता है।

ढलान—मग्न तट भूमि के वाहरी किनारे से अथाह् जल में होने वाले ढाल को ढलान कहते हैं। महाद्वीपों या द्वीपों के सीमा स्पर्शी ढलानों को महाद्वीपीय ढलान (फ्रे० टालुस कोन्टीनेन्टल; ज० कोन्टीनेन्टल एवफाल) और द्वीपीय ढलान (फ्रे० टालुस इन्सुलेयर; ज० इनसेलाव फाल) कहते हैं।

उठानों के ऊपरी भागों के लिये निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग किया जाता है जो अपरदन या निक्षेपण के प्रभाव वताते हैं।

किनारा—(फ्रे० वांक, ज० वेंक) न्यूनाधिक एक सपाट शीर्ष अपरदन जहां जल का गहरापन आपेक्षाकृत कम होता है परन्तु जो पृष्ठीय नौचालन के लिये पर्याप्त होता है।

जल वालू उत्थान—(फ्रे० हाउट-फोन्ड; ज० उनटीफे या सेन्डग्रुन्ड) एक पृथक उठान जहां ऐसी गहराई हो कि पृष्ठीय नौचालन को खतरा हो और जो चट्टान या प्रवाल से नहीं वने हों।

शैल भित्ति—(फ्रे० रेसीफ; ज० रीफ) एक चट्टानी या प्रवाली अपरदन (साधारणतया दीर्घ) जो कि पृष्ठीय नौचालन के लिये खतरनाक होता है। यह पृष्ठ के ऊपर तक भी निकल सकता है।

ढालू किनारे की दरारें जो ढलान को वेधती है और मग्नतट-भूमि को आर-पार काटती हैं, ऐसी दरारों के लिये विविध नामों का प्रयोग किया गया है। बहुधा काम में लिये जाने वाले शब्द हैं ; कैनियन और घाटी, परन्तु इन लक्षणों के लिये अवनालिका, गार्ज और दिखावटी-घाटी आदि शब्दों का भी उपयोग किया जाता है।

उपरोक्त शब्दों के अतिरिक्त जलगर्भीय स्थलाकृति के वर्णन के लिये कई पदावलियों का उन्हीं अर्थों के साथ प्रयोग किया गया है जो भूमि स्थलाकृति के लिये काम में लेने पर उनके अर्थ होते हैं।

महासागर के तलीय संरूपण

महासागर के तल की स्थलाकृति के मुख्य लक्षण इतने बड़े विमितीय हैं कि वे चार्ट पर 1000 मीटर के अन्तर की रूप रेखा से सुगमता से दिखाये जा सकते हैं। इस प्रकार का निरूपण चार्ट 1 में दिया गया है जहां पर 3000 मीटर से 7000 मीटर तक 1000 मीटर के अन्तर की रूप-रेखा दी गई है। 3000 मीटर से कम की गहराई वाले क्षेत्र समुद्र तल का किंचित थोड़ा ही भाग निरूपित करते हैं, और इससे कम गहराई वाले क्षेत्रों के रूप-रेखाओं की जटिल प्रकृति इस प्रकार के चार्ट के मान को बढ़ाने की अपेक्षा उसे और भी सम्भ्रान्त कर देंगी। उपलब्ध अभिनव चार्टों पर ही स्थलाकृति आधारित है, और प्राथमिक रूप से अन्तर्राष्ट्रीय हाइड्रोग्राफिक ब्यूरो द्वारा 1939 में तैयार किये गये गहराई मापन चार्ट पर आधारित हैं (वागन् इत्यादि Vaughan *et al*, 1940)। महासागरीय जल की रूप-रेखा के विषय के कुछ और हवाले अध्याय II (2.9) में दिये गये हैं। ऐसा देखा जायगा कि स्थलाकृति की जटिलता विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तित होती है। कुछ भाग में इस अन्तर को कम से कम परिवर्तन शील मात्रा में उपलब्ध आंकड़ों से सम्बन्धित करना चाहिये, क्योंकि उन क्षेत्रों में जहां गहराई मापन दीर्घान्तराली होते हैं, रूप-रेखाएँ निष्कोण और गोल होंगी, जबकि उन प्रदेशों में जहां पर भारी संख्या में गहराई मापन किये गये हों, रूप-रेखाएँ अधिक जटिल और अनियमित होती है। अटलांटिक महासागर, उत्तरी प्रशान्त महासागर का मध्यवर्ती भाग, उत्तरी हिन्द महासागर और एन्टार्कटिका के चारों ओर के क्षेत्र आदि में गहराई मापन बहुत ठीक तरह से किया गया है, परन्तु उत्तर ध्रुवीय समुद्र, दक्षिण हिन्द महासागर, तथा दक्षिणी प्रशान्त महासागर जैसे कई दूसरे प्रदेशों में प्रेक्षण बहुत कम हैं। ज्ञात स्थलाकृतिक लक्षणों की जटिलता में वृद्धि होने

पर गहराई मापों का संचय हो जाता है, और इनका ज्ञान वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में प्रकाशित अनुगभीर चार्टों की अभिनव चार्टों से तुलना करने पर हो सकता है। 1937 अनुगभीर जानकारी की स्थिति को चार्ट-श्रेणी द्वारा वागन इत्यादि ने बताया है (Vaughan *et al*, 1937)।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, महासमुद्र तल की स्थलाकृति अवनमन और दीर्घ कटको द्वारा लक्षण वर्णित होती है इनमें से कुछ लक्षण वृहत् विस्तार में होते हैं जैसा कि चार्ट 1 में आसानी से देखा जा सकता है। अनुदैर्घ्य कटक तीनों महासागर को दीर्घ द्रोणिकाओं में विभाजित करते हैं। अटलांटिक महासमुद्र में यह लक्षण विशेष तौर से पाये जाते हैं जहां अटलांटिक कटक आइस लैण्ड और लगभग 55° दक्षिण में बावेटद्वीप तक बढ़कर पश्चिमी और पूर्वीय द्रोणिकाओं को पृथक करता है। 5000 मीटर से अधिक की गहराई कटक के दोनों किनारों पर होती है जोकि कटक की लम्बाई के एक बड़े भाग में 3000 मीटर से कम गहराई तक सतत होती है और अनेक स्थानों में यह समुद्र-तल से भी ऊपर होती हैं। भूमध्य रेखा के ठीक उत्तर में रोमान्च फुरों में कटक में एक छोटा सा परन्तु महत्वपूर्ण भंग है जहां पर पल्याण गहराई 4500 से 4800 मीटर के बीच स्थित होती है। 20° दक्षिण अक्षांश में के अफ्रीकी तट से ट्रीस्टान–डा-कुन्हा (37° द०) के पड़ोसी भाग अटलान्टिक कटक तक जो वालफिश्च कटक उत्तर-पूर्व में फैला हुआ है वह 3500 मीटर पर काफी सतत है और 3000 मीटर पर एकदम ऐसा ही है। रीओ ग्रेन्डे कटक अटलान्टिक कटक (30°-35° द०) से पश्चिम की ओर फैलता है और 4000 मीटर पर एकदम सतत है। इन दो अनुप्रस्थ कटकों की उपस्थिति का पूर्वी तथा पश्चिमी अटलान्टिक महासागर में गहन-जल परिसंचरण पर गहरा प्रभाव पड़ा है, और इसलिये गुणधर्म-वितरण पर भी प्रभाव पड़ता है (अध्याय XV)।

एक अनुदैर्घ्य कटक, हिन्द कटक, हिन्द महासागर में है और भारत से एण्टार्कटिका तक फैला हुआ है, परन्तु अटलान्टिक महासागर के कटक से इस माने में भिन्न है कि यह चौड़ा है और पृष्ठ के निकट तक नहीं जाता है। प्रशान्त महासागर में अनुदैर्घ्य उन्नयन इतने स्पष्ट नहीं होते हैं, तो भी पश्चिमी प्रशान्त कटक जो वास्तव में अनेक लघु कटक से बना होता है, उसका जापान से एण्टार्कटिका तक अनुरेखण किया जा सकता है और 11° उ० 10° द० 53° द० के भंगों के सिवाय 4000 मीटर से कम की गहराई के लिये सतत होता है। एक दूसरा उन्नयन केन्द्रीय अमेरिका से पश्चिम और दक्षिण तक फैल कर न्यूजीलैण्ड के देशान्तर में एन्टार्कटिका तक पहुँचता है। यह पूर्वी-प्रशान्त महासागरीय कटक 4000 मीटर से कम की गहराइयों के लिये सतत होता है और प्रशान्त एन्टार्कटिक बेसिन तथा केन्द्रीय और दक्षिणी अमेरिका के सीमावर्ती गहन बेसिन को केन्द्रीय अवनमन से पृथक करता है। इन मुख्य

अवनमनो का समुद्र तलीय जल के ताप के वितरण पर प्रभाव चित्र 211 (2.10) में दिखाया गया है।

महाद्वीप और अनुदैर्घ्य कटकों से घिरे हुवे मुख्य अवनमन या द्रोणिकाओं के अन्दर अनुप्रस्थ कटक होते हैं जो न्युनाधिक अंश में अनेक बेसिन को पृथक करते हैं। वुस्ट (वागन इत्यादि Vaughan *et al*, 1940) ने सुझाया है कि बेसिन को निमज्जित करने के लिये 4000 मीटर कन्टूर को सीमा की तरह काम में लेना चाहिए परन्तु यह बिल्कुल ही स्वेच्छ सीमांकन है जो परम गहराई पर अनावश्यक बल देता है और जबकि अपेक्षिक उच्चावच पर विशेष बल देना चाहिये जो कई माने में अधिक सार्थक होता है। उदाहरणार्थ, भूमध्य सागरीय बेसिन ऐसे वर्गीकरण से व्यवहारिक रूप में अपवर्जित कर दिया गया है, यद्यपि यह गहन, एकल बेसिन है, और जिसका बहुतसा भाग जिब्राल्टर के जल डमरुमध्य में सिल के नीचे 3000 मीटर से अधिक तक फैला हुआ है। चार्ट 1 से संलग्न सारणी में उन महासागरीय अवनमन के मुख्य भागों के नाम दिये गये हैं जो वुस्ट द्वारा बेसिन कहलाते हैं; जैसे वे भाग जिनकी गहराई 4000 मीटर से अधिक होती है। कुछ विशिष्ट बेसिन, 4000 मीटर पर सतत कटक की उपस्थिति द्वारा स्पष्ट रूप में परिभाषित हैं परन्तु द्रोणिकाओं के विभिन्न भागों को भी नामांकित किये गये हैं। ऐसी स्थिति में सीमाएँ अवनमन के कम से कम उथले या संकीर्ण भाग में निर्धारित होती है। कुछ क्षेत्रों में नाम-पद्धति अपूर्ण होती है, और एक ही नाम न्यूनाधिक एकल अवनमन की बड़ी संख्या के लिये उपयोग किया जाता है जैसे मेडागास्कर बेसिन। मध्यवर्ती प्रशान्त महासागर में आधुनिक वर्षो में स्थलाकृति की जानकारी बहुत बढ़ गयी है और जहां बेसिन और कटक के किस्म की स्थलाकृति विद्यमान नहीं मालूम पड़ती वहाँ कोई नाम नहीं दिये गये हैं। स्थलाकृति के मुख्य लक्षणों को निर्दिष्ट करने के लिये काम में आने वाले नाम का विस्तृत विवरण वाघन इत्यादि (Vaughan *et al*, 1940) ने किया है, और चार्ट 1 में दिये गये नाम उनकी रिपोर्ट में दी गयी सिफारिशों से साधारणतया सम्पुष्ट होते हैं।

चार्ट 1 में बेसिन के सारणीकरण के साथ साथ कुछ विशेष महत्वपूर्ण गहरे भाग भी सूचिवद्ध किये गये हैं जैसे, वे लक्षण जहाँ गहराई 6000 मीटर से अधिक होती है। कुछ गहरे भाग बड़े बेसिन में न्यूनाधिक केन्द्रित रूप से स्थित होते हैं; उदाहरणार्थ अथाह व्हारटन, अथाह ब्यीर्ड और उत्तरी प्रशान्त महासागर के मध्य भाग के अनेक अथाह भाग, परन्तु इन सभी अथाह भागों की गहराई कदाचित ही 7000 मीटर से अधिक होती है। दूसरी ओर, दीर्घस्वरूप के अनेक अथाह भाग महाद्वीपीय तट, द्वीप चाप, या अंतः समुद्री कटक के समीप और समान्तर स्थित होते हैं ये सभी इस अध्याय में वर्णित खड़ के तदनुरुपी होते हैं। ये उपान्त गहरे भाग जिनके लिये 'खाई' या कभी

कभी 'द्रोणिका' शब्द का उपयोग किया जाता है ऐसे लक्षण हैं कि इनमें अत्यधिक गहराइयाँ पाई जाती हैं और ऐसा लगभग उन सभी स्थितियों में होता है जहाँ गहराई 8000 मीटर से अधिक होती है। सुन्डा की खाई नामक केवल एक ही ऐसी खाई हिन्द महासागर में पाई गयी है। अटलाण्टिक महासागर में रोमान्च, दक्षिण सेन्डविच नाम की खाइयाँ और पुर्टोरिको तथा केमन नाम की द्रोणिकाएँ हैं। यद्यपि मध्यवर्त्ती तथा दक्षिण अमेरिका के भागों के पर्वतीय तट के समान्तर ऐसे लक्षणों की शृंखला सी होती है फिर भी खाइयों तथा द्रोणिकाओं की सबसे अधिक संख्या प्रशान्त महासागर के पश्चिमी भाग में हैं। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, कि वे क्षेत्र जिनमें ये अथाह खाइयाँ होती हैं ज्वालामुखीय और भुकम्पीय क्रिया के स्थल होते हैं। क्युनेन (Kuenen, 1935) द्वारा वर्णित पूर्व हिन्द-द्वीप पुंज की जटिल स्थलाकृति चित्र 208 (2.11) में व्यवस्थित रूप से दिखाई गयी है।

समुद्र की तलहटी के लक्षणों के विस्तृत वर्णन के लिये पाठक को लिटलहेल्स (Littlehales, 1932) का कार्य देखना चाहिये। वाघन, (Vaughan, 1938) ने दक्षिण गोलार्द्ध की स्थलाकृति का वर्णन किया है। वाघन और उसके साथियों (1940) द्वारा तैय्यार की गयी लम्बी रिपोर्ट में बहुत सी उपयोगी सूचना है और उसी रिपोर्ट में अन्तर्राष्ट्रीय हाइड्रोग्राफिक ब्यूरो द्वारा मरकेटर प्रक्षेप पर तैय्यार किये गये लघुपमानीय गहराई मापन चार्ट भी हैं, तथा यू. एस. हाइड्रोग्राफिक दफ्तर द्वारा तैय्यार किया गया उत्तर प्रशान्त महासागर का एक विशेष चार्ट और उसी एजेंसी द्वारा तैय्यार किया गया केरीबियन समुद्री क्षेत्र का एक अत्यन्त ही श्रेष्ठ और विस्तृत चार्ट भी है। महासागरीय गहराई मापन के मानक चार्ट श्रेणी में वे हैं जो 'कार्टे जेनेरल बेथीमेट्रीक्यू डे ओसन्स' के नाम से कहलाते हैं और जिनको मोनाको के अन्तर्राष्ट्रीय हाइड्रोग्राफिक ब्यूरो ने प्रकाशित किये हैं। इन चार्टों में चौबीस पत्र हैं जो समय समय पर संशोधित किये जाते हैं और नये चार्टों के पूर्ण होने पर सामयिक रूप से जारी किये जाते हैं। तीसरा प्रकरण अब जारी किया जाने वाला है। इन चार्ट पर गहराई मीटर में अंकित है। स्कॉट (Schott, 1926,1935) के प्रकाशित काम में महासागर के सामान्य गहराई मापन चार्ट समाविष्ट है। नौचालन चार्ट के प्रकाशन करने वाली विभिन्न राष्ट्रीय एजेन्सियों द्वारा महासागर के सामान्य चार्ट और सीमित क्षेत्रों के विस्तृत चार्ट जारी किये गये हैं। 'मिटियोर' अभियात्रा (ड्यूटस्चे एटलांटिस्चे एक्सपेडीशन 'मिटियोर' (1925–1927) विसेनस्चाफ्टलीचे, अर्गेबनीसे) की रिपोर्ट तेरह पत्रों में जारी की जावेगी तथा उसमें अटलांटिक महासमुद्र के चार्ट होंगे। स्नेलीयुस अभियात्रा ने पूर्व हिन्दमहासागर क्षेत्र के श्रेष्ठ गहराई मापन चार्ट तैयार किये हैं (वान रील, van Riel 1934)। अमेरिका की भू-वैज्ञानिक समिति ने यू. एस. कोस्ट और जियोडेटीक सर्वेक्षण संस्था द्वारा किये गये गहराई मापन पर आधारित, संयुक्त-राज्य अमेरिका के पूर्वी तथा पश्चिमी तटों

के विस्तृत स्थलाकृति चार्ट बनाने तथा प्रकाशन का दायित्व लिया है, वीच और स्मिथ, (Veatch and Smith 1939) शेपर्ड और एमरी (Shepard and Emery, 1941)।
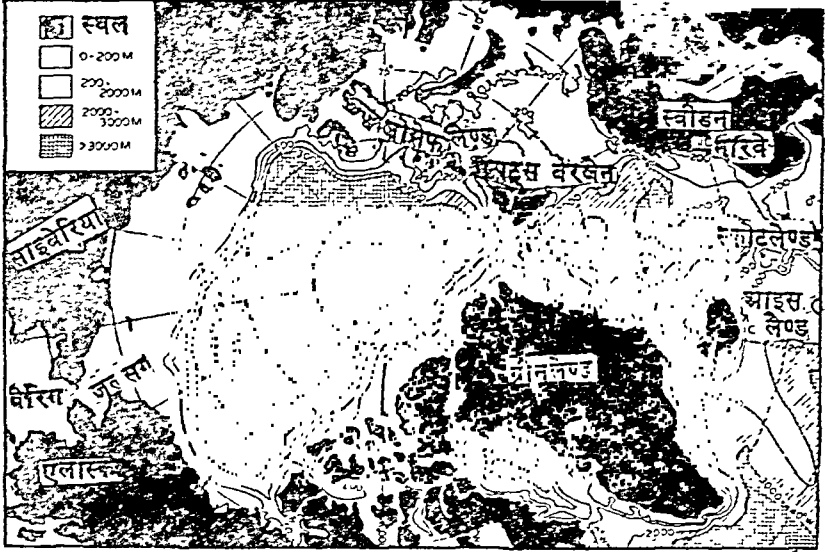
चित्र 3. आर्कटिक क्षेत्रों का ध्रुवीय प्रक्षेप जिसमें समुद्र अधस्तल की सामान्यीकृत स्थल रूपरेखा दिखायी गयी है (इसमें शेरे वोचनी के 1941 के गहराई मापन शामिल नहीं हैं)

आर्कटिक और एन्टार्कटिक क्षेत्रों की तलीय आकृति

चित्र 3 उत्तर ध्रुवीय क्षेत्रों की अन्तः समुद्री स्थलाकृति को दिखाने के लिये बनाया गया है क्योंकि इन क्षेत्रों का चार्ट 1 में काम में लिये गये विषम प्रक्षेपण से ठीक ठीक प्रत्यक्षीकरण नहीं हो सकता। स्टॉक्स (Stocks, 1938) द्वारा बनाये गये चार्ट पर यह चित्र आधारित है और उपलब्ध तमाम आंकड़ों को मिलाता है। पैमाना बड़ा होने के कारण इस क्षेत्र के एक विशाल भाग को बनाने वाली कम गहराइयों की समोच्च रेखाएँ बताना सम्भव है। अथाह, आंशिक एकाकी बेसिन और अति विस्तृत मग्न तट भूमि जहाँ से केनेडियन द्वीप समूह, ग्रीनलैण्ड और यूरोप तथा एशिया के उत्तरी भाग के बहुत से द्वीप उठते हैं। ये सभी स्थलाकृति के विशेष लक्षण हैं।

उत्तरध्रुवीय बेसिन की स्थलाकृति के विषय में बहुत कम जानकारी है तथा समोच्च रेखाओं का रूप वृहत रूप से परिकल्पित है। 3000 मीटर से अधिक के लिये गहराई मापन यूरोप के उत्तर में तो काफी संख्या में हुए हैं परन्तु अलास्का के उत्तर

में इनकी संख्या कुछ कम है। गहराई मापनों को सूचित करने वाली एक रेखा उत्तरी ध्रुव से भी निकली है जो ग्रीनलैण्ड के पूर्वी तट के समान्तर हो जाती है। ये गहराई मापन 1937–1938 में रूसी अभियान द्वारा किये गये थे जो हवाई जहाजों से वर्फ पर उतरे थे और प्रवाही हिमपुंज के साथ ग्रीनलैण्ड के पूर्वी तट से दूर तक खिसके जहाँ वे उठा लिये गये। इस दल ने उत्तरी ध्रुव से 100 कीलोमीटर के क्षेत्र में, 4300 मीटर की गहराई तक का गहराईमापन लिया। सन् 1927 में सर हुवर्ट विल्किन्स अलास्का से हवाई जहाज द्वारा उड़कर वर्फ़ पर उतरे और सुवाह्य ध्वानिक गहराई मापन यन्त्र द्वारा उन्होंने केवल एक ही गहराई मापन में 5440 मीटर की गहराई ज्ञात की, इसी गहराई के आधार पर 5000 मीटर की समोच्च रेखा निविष्ट है। तो भी इस गहराई मापन की शुद्धता संदिग्ध प्रतीत होती है। सन् 1941 के अप्रेल मास में रूसी वायुयान चालक चेरेवीचनी व्रानगेल द्वीप के उत्तर में तीन अलग अलग इलाकों में उतरा और प्रत्येक स्थान पर साढ़े तीन से छः दिन विताते हुए अत्यन्त ही कम गहराइयाँ मालूम कीं (सेन फ्रान्सिसको केलीफोर्निया, के अमरीकी रूसी संस्थान के सौजन्य से प्राप्त अप्रकाशित आंकड़े)। चेरेवीचनी के गहराई मापन के मान निम्न प्रकार से हैं :

अक्षांश, उत्तर	देशान्तर	गहराई, मीटर में
81°02′	180°00′ पूर्व	2647
78°30′	176°40′ पूर्व	1856
80°00′	170°00′ पश्चिम	3430

आर्कटिक क्षेत्र का गहराई मापन चार्ट (चित्र 3) जब तैयार किया गया था उस समय ये मान उपलब्ध नहीं थे।

न्यूनाधिक दीर्घवृत्ताकार उत्तरध्रुवीय वेसिन ग्रीनलैण्ड और स्पिट्सवर्जेन के बीच की काफी गहरी चैनल द्वारा नार्वे के वेसिन से जुड़ा हुआ है और जिसमें सिल गहराई लगभग 1500 मीटर के है (सा. 6)। नार्वे के वेसिन में 3000 मीटर से अधिक की गहराई के दो धसकन हैं और ये वेसिन ग्रीनलैण्ड से स्काटलैण्ड तक फैली हुई कटक द्वारा खुले अटलान्टिक महासागर से अलग कर दिया गया है और जिनमें से आइसलैण्ड और फरो द्वीप समुद्र तल से ऊपर उठे हुए हैं। ग्रीनलैण्ड तथा आइसलैण्ड के वीच के डेन्मार्क जलडमरुमध्य में, तथा फरो और स्काटलैण्ड के वीच का वीवीले थामसन कटक पर सिल गहराइयाँ लगभग 500 मीटर हैं। नार्वे के वेसिन की सतह से ऊपर उठा हुआ एक एकाकी उठान है जो जनमेयन द्वीप की भांति पृष्ठ से ऊपर निकला हुआ है।

वेफिन द्वीप और ग्रीनलैण्ड के वीच, जहाँ गहराइयाँ 2000 मीटर से अधिक हो जाती हैं, वेफिन वेसिन है जिसमें काफी बड़े आकार का एक और धसकन है और

जो चार्ट 1 में नही दिखाया गया है। यह वेसिन खुले अटलान्टिक महासागर से डेविस जलडमरुमध्य के एक कटक द्वारा पृथक किया गया है, यह जलडमरुमध्य वेफिन द्वीप और ग्रीनलैण्ड के वीच में है जहां सिल गहराई 700 मीटर के लगभग है।

आर्कटिक क्षेत्रों में पूर्ण विकसित महत्त्वपूर्ण स्थलाकृतिक लक्षण वे "द्रोणिकाएँ" हैं जो जलमग्नतट भूमि को आर पार काटती हैं। ये 'यू' आकार के खूड़ हिमशिलाओं द्वारा प्रत्यक्षरूप से उस काल में काटे गये थे जब समुद्र-पृष्ठ निम्न स्थर पर था। ऐसी एक द्रोणीका नार्वे के दक्षिणी सिरे के चारों ओर वढ़ी हुई है और शेष द्रोणिकाएँ, रूस के उत्तरी भाग तथा कनाडा के द्वीप पुंज के बीच की 200 मीटर की समोच्च रेखा की विपमताओं द्वारा अनुरेखित की जा सकती हैं। उत्तर ध्रुवीय वेसिन की स्थलाकृति का विवरण करते समय नानसेन (Nansen 1928) ने इन लक्षणों का भी वर्णन दिया है।
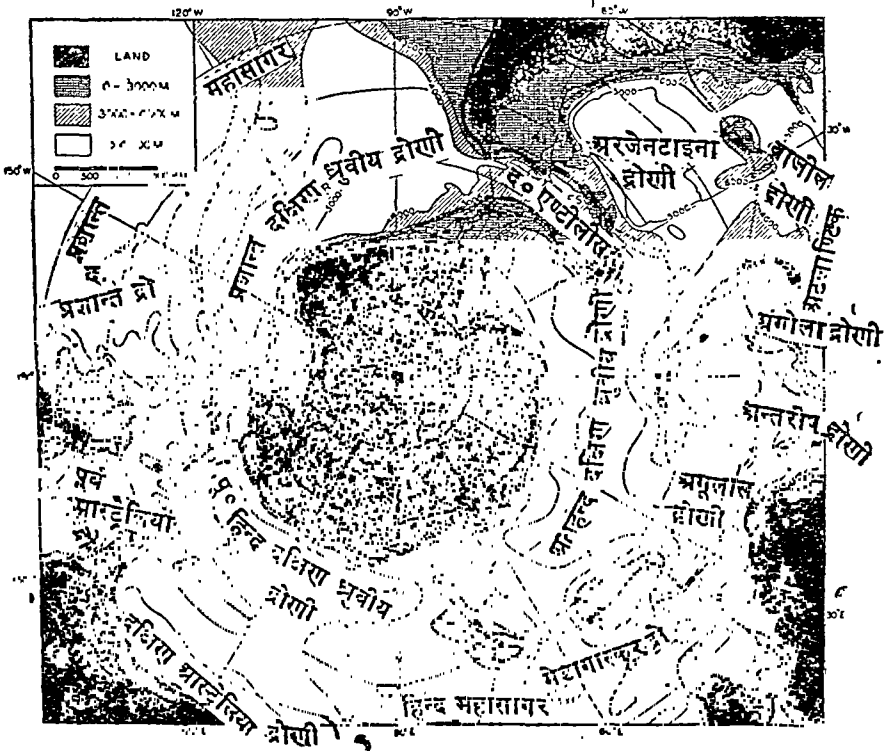
चित्र 4 अन्टार्कटिक क्षेत्रों के समुद्र अधस्तल की सामान्यीकृत स्थल रूपरेखा का ध्रुवीय प्रक्षेप। 4000 मीटर से कम की गहराइयाँ रेखाच्छादित। गाढ़ी विन्दु रेखाऐं विभिन्न वेसिन को पृथक करने वाले उठानों की स्थिति वताती हैं। 3000 मीटर और इससे अधिक गहराइयों पर सम्मोच रेखाऐं चार्ट 1 में दी गयी रेखाओं के अनुरुप है।

चित्र 4 अन्टार्कटिक क्षेत्रों का ध्रुवीय प्रक्षेप है जिसमें अन्तःसमुद्री स्थलाकृति के उन मुख्य लक्षणों के बीच सम्बन्ध चित्रित हैं जिनका चार्ट 1 से प्रत्यक्षीकरण नहीं हो सकता। यह स्थलाकृति उन्हीं आंकड़ों पर आधारित है जिनसे चार्ट 1 तैय्यार किया गया था परन्तु इस बार आँकड़ों को दूसरे अन्य स्रोतों से परिशिष्ट किया गया। वैसे तो सभी मुख्य धसकनें दुनियां के मान चित्र में भी बताई ही जाती हैं लेकिन इस चित्र में 3000 मीटर से अधिक की गहराई की समोच्च रेखाओं को बताना सम्भव हो गया है। उत्तर और दक्षिण ध्रुवीय क्षेत्रों की स्थलाकृति के बीच अनेक विलक्षण भेद हैं। आंशिक-एकाकी बेसिन, जो उत्तर ध्रुवीय क्षेत्रों में प्रमुख होते हैं उनका दक्षिण ध्रुवीय क्षेत्र में अभाव है। 200 मीटर से कम की गहराई की जलमग्न तटभूमि केवल दक्षिण अमेरिका के दक्षिणी भागों के पूर्वी तट से दूर ही व्यापक है जहां फाकलैंड द्वीप जलमग्न तट भूमि से उभरते हैं।

गहरे बेसिन एन्टार्कटिका के महाद्वीप के निकट तक बढ़े हुए हैं और ढाल अपेक्षाकृत सीधे हैं। दक्षिण अमेरिका को एन्टार्कटिका से जोड़ने वाला दक्षिण एन्टीलीस चाप है जिस पर दक्षिण जोरजीया, दक्षिण सेन्डविच, दक्षिण ओर्कने और दक्षिण शेटलैण्ड द्वीप आदि स्थित हैं। 4000 मीटर तक कटक अविच्छिन्न होती है और 3000 मीटर पर इसमें केवल अपेक्षाकृत संकीर्ण छिद्र होते हैं। अटलांटिक महासागरीय कटक दक्षिण एन्टार्कटिका तक नहीं जाता परन्तु बोवेट द्वीप के आस पास ही समाप्त हो जाता है। मेडागास्कर और अफ्रीका के दक्षिण के कटक को क्रोजेट कटक कहते हैं यह नाम उसी द्वीप के नाम पर है जो उस कटक में से उभरा है। हिन्द के कटक के कुछ भाग से बनने वाला एक विशेष उठान है जो करगुलेन द्वीप को घेरे हुवे है और जो करगुलेन कटक के नाम से कहलाता है। आस्ट्रेलिया से एन्टार्कटिका तक फैला हुआ कटक मेकुआरे द्वीप को टिकाये हुए है और मेकुआरे कटक के नाम से कहलाता है। एन्टार्कटिका के चारों ओर परिसंचरण करने वाले लक्षण तथा गुणधर्मों के वितरण को मालूम करने के लिये इन कटकों का महत्त्व अध्याय XV (2.11) में वर्णित है। चित्र 4 में दिखाये गये क्षेत्र में पाई जाने वाली अधिकतम गहराई न्यूज़ीलैण्ड के दक्षिण में बायर्ड गर्त में और दक्षिण एन्टीलीस चाप के उत्तल किनारे पर दक्षिण सेन्डविच खाई में हैं।

निकटवर्ती समुद्रों की तल आकृति

कई निकटवर्ती तथा सीमातटीय समुद्रों के चार्ट या विवरण को इस पुस्तक में देना सम्भव नहीं है। इनमें से कुछ लक्षणों के क्षेत्रफल, आयतन और माध्य गहराई सारणी 4 में दिये गये हैं। चित्र 3 में आर्कटिक क्षेत्रों के निकटवर्ती समुद्र दिखाये गये हैं और चित्र 5 तथा 6 में यूरोपीय और अमरीकी भूमध्यसागरों की व्यापक स्थलाकृतियाँ दिखाई गयी हैं। दूसरे सीमातटीय क्षेत्रों की स्थलाकृति के

ब्योरेवार विवरण इस पुस्तक में और कहीं पर दिये गये हैं। पृथक्करण की मात्रा—यानि जिस विस्तार तक निकटवर्ती महासमुद्र से जल के अबाध विनिमय में स्थल या अन्तःसमुद्री रोधों से बाधित होती है—ऐसे क्षेत्रों में गुणधर्मों के विशिष्ट वितरण को नियत करने में बड़ी ही महत्वपूर्ण होती है (देखिये, अध्याय IV & XV)।

भूमध्य सागर, काला सागर और इनको मिलाने वाले जल भागों (जैसे डारडेनलीस्, मारमोरा का समुद्र, और बासपोरस) से समाविष्ट यूरोपीय भूमध्य-सागरीय क्षेत्र, यूरोप, ऐशिया और अफ्रिका से परिसीमित एक अन्तरमहाद्वीपीय समुद्र बनाता है। भूमध्यसागर में एक गहन, लम्बा, असमान धसकन है जिसका झुकाव पूर्व-पश्चिम दिशा की ओर है और काले सागर में एक छोटा और स्थल रूपरेखा कृत साधारण धसकन है जो उत्तर दिशा को विस्थित होता है। 2200 मीटर से अधिक गहराइयों का काला सागर बेसिन भूमध्य सागर के प्रमुख क्षेत्र से वस्तुतः पृथक है, इन दोनों सागरों का संयोजन, केवल 40 मीटर की सिल गहराई के बासपोरस तथा वैसी ही 70 मीटर की सिल गहराई की डारडेनलीस की एक संकरी तथा उथली चैनल (जलमार्ग) तक ही सीमित है। मारमोरा के समुद्र में गहराइयाँ 1000 मीटर से भी अधिक हैं। भूमध्य सागरीय बेसिन के 4600 मीटर तक की गहराई के भाग का जिब्राल्टर के जलडमरुमध्य द्वारा खुले अटलान्टिक महासागर से सीमित संचरण होता है जो (जिब्राल्टर) केवल 20 कीलो मीटर चौड़ा है तथा उसमें सिल गहराई लगभग 320 मीटर है। काला सागर और भूमध्य-सागर में समुद्र विज्ञान की जो विशिष्ट स्थितियाँ प्रचलित हैं उनको अगाध जलों (महासागरों) के पृथकत्त्व के कारण मानी जा सकती है (अध्याय XV)।

चित्र 5. यूरोपीय भूमध्यसागर के अधस्तल की सामान्यीकृत स्थल रूपरेखा। विशाल बेसिनः (I) एलजीयर्स प्रोवेनकल (II) टीरहेनीयन (III) आयोनीयन (IV) लेवनटाइन और (V) काला सागर बेसिन हैं

यूरोपीय भूमव्यसागर की सामान्यीकृत स्थलाकृति चित्र 5 में दिखायी गयी है जो स्टॉक्स (Stocks, 1938) द्वारा तैयार किये गये चार्ट पर आधारित है। काला सागर वेसिन (V) उत्तरी भाग को छोड़कर न्यूनाधिक दीर्घवृत्ताकार है तथा उत्तरी भाग में असमान उथले समुद्र हैं जिनमें सबसे बड़ा क्रीमीयन प्रायःद्वीप के पूर्व का अझोव का समुद्र है। भूमध्यसागर से संयोजन वासपोरस और मारमोरा के सागर तथा एज़ीयन समुद्र के डारडेनलीस के द्वारा होता है जहाँ असमान स्थलाकृति अनेकों द्वीपों में दिखाई पड़ती है। भूमव्यसागरीय वेसिन, उत्तर-दक्षिण दिशा में झुकाव के अनुप्रस्थ कटकों की एक श्रंखला द्वारा उपखण्डित हुआ है इन कटकों के कुछ भाग समुद्र तल से ऊपर तक उभरे हुए हैं, पूर्वीय और पश्चिमी घसकनों का प्राथमिक विभाजन यूरोप से अफ्रीका, जैसे इटली सिसली और अफ्रीका और इन स्थल क्षेत्रों के बीच की उठानों के निमग्न भाग तक फैले हुवे कटक से सम्पादित होता है। सिसली और ट्यूनिस के बीच के जलडमरुमव्य की सिल गहराई लगभग 400 मीटर है। इसी प्रकार पश्चिमी भूमध्य सागर उत्तर-पश्चिमी इटली से ट्यूनिस तक फैले हुए कटक द्वारा एलज़ीयर्स-प्रोवेनकल वेसिन (i) और टीरहेनीयन वेसिन (ii) में उपखण्डित हुआ है, इस कटक में से कोर्सिका और सारडेनिया समुद्र पृष्ठ से ऊपर उठे हुवे हैं। पूर्वीय भूमव्यसागर दो मुख्य घसकनों में उपखण्डित है : आयोनियन
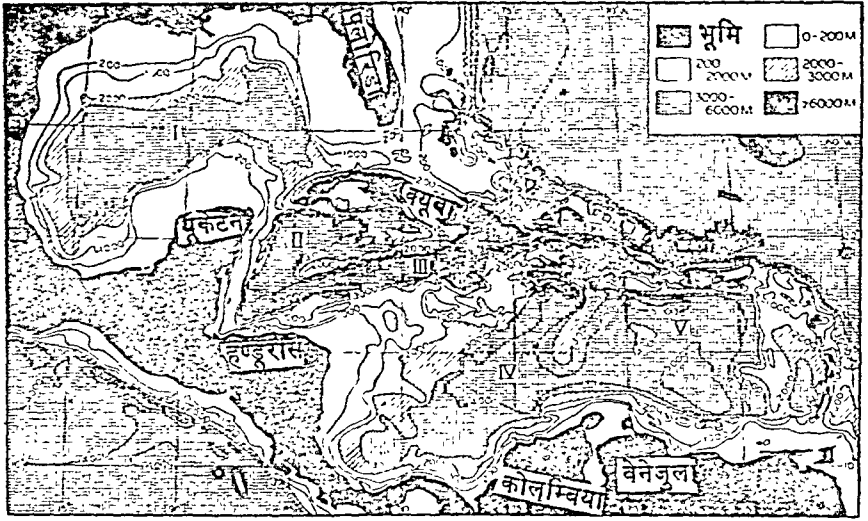
चित्र 6. अमरीकी भूमव्यसागर के अधस्तल की सामान्यीकृत स्थल रूपरेखा। विशाल वेसिन; (I) मेक्सिको वेसिन (II) केमन वेसिन और (III) केमन द्रोणिका, पश्चिमी कैरीवियन में (IV) कोलम्विया वेसिन और (V) वेनेझुएला वेसिन पूर्वी कैरीवियन में। अटलान्टिक महासागर में सबसे अधिक ज्ञात 8750 मीटर की गहराई पोर्टोरिको के पूर्व की ओर पोर्टोरिको द्रोणिका में स्थित है।

वेसिन (iii) जिसमें अधिकतम गहराइयाँ 4600 मीटर तक पाई गयी हैं, और लेवनटाइन वेसिन (iv), ये दोनों वेसिन ग्रीस से अफ्रीका तक फैले हुए कटक द्वारा विभाजित हुए हैं। छोटे परिमाप की अन्य पृथक धसकने हैं जैसे स्पेन और मोरक्को के बीच ऐल्वोरन वेसिन, एड्रीयाटिक समुद्र में इटली और अल्वानिया के वीच, क्रेट द्वीप के उत्तर में तथा साईप्रस द्वीप के दक्षिण में हैं।

उत्तरी, केन्द्रीय और दक्षिण अमरीका से परिवेशित चोड़ी खाड़ी के आंशिक रूप से पृथक वेसिन को अमरीकी भूमध्यसागर घेरता है ये वेसिन खुले अटलान्टिक महासागर से कटकों द्वारा अलग किये हुए हैं जिनके कुछ भाग समुद्र तल से ऊपर उभरे हुए हैं। इस क्षेत्र की सामान्यीकृत स्थलाकृति चित्र 6 में दिखाई गयी है जो स्टॉक्स, (Stocks 1938) द्वारा तैय्यार किये गये चार्ट पर आधारित है। यूरोपीय तथा अमरीकी भूमध्यसागर के बीच मुख्य अन्तर यह है कि अमरीकी भूमध्यसागर में अनेकों उथले और कई गहन संयोजन खुले अटलान्टिक महासागर से हैं। अमरीकी भूमध्यसागर की स्थलाकृति अत्यन्त ही विषम है जिसमें ढालू कटकों के निकटवर्ती गहरी खाइयाँ हैं जिनमें से अनेकों समुद्र तल से ऊपर तक उठे हुए हैं। ऐसा विशेष कर प्रदेश के केन्द्रीय तथा दक्षिणी भागों में होता है। ये प्रदेश विशिष्ट गुरुत्व असंगति, ज्वालामुखी-क्रिया तथा तेज भूकम्पीय हलचलों के क्षेत्र हैं फील्ड इत्यादि (Field *et al* 1938)। मेक्सिको की खाड़ी के निचले किनारे के सीमास्पर्शी, हान्डूरास और निकारगुआ के दूर के भाग, तथा वहामा द्वीपों को घेरे हुए, विस्तृत मग्नतट भूमि है। गहरे जल की ओर ढाल, विशेषकर क्यूवा और जमेका के बीच और वहामा द्वीपो के वाह्य सीमान्त स्पर्शी, सामान्य रूप से ढालू हैं लैसर ऐन्टीलीस आर्क के उत्तरी और वाहरीभाग में पोर्टोरिको द्रोणिका है जो अटलान्टिक महासागर के तल में सवसे अधिक गहरा धसकन है तथा जहाँ यू. एस. एस. "मिलवाके" ने अधिकतम गहराई 8750 मीटर ज्ञात की। यद्यपि लैसर ऐन्टिलीस आर्क के द्वीपों के वीच कई द्वार हैं, तथापि अपेक्षाकृत अधिक सिल गहराइयों के द्वार वहुत थोड़ी संख्या में है। फ्लोरीडा के जलडमरुमध्य में सिल गहराई लगभग 800 मीटर है और क्यूवा तथा हिसपेनिओला के वीच के विन्डवार्ड मार्ग में गहराई लगभग 1600 मीटर है। लगभग 1600 मीटर की सिल गहराई का एक तीसरा गहरा जल मार्ग ऐनेगाडा और जंगफर्न मार्गो में स्थित हैं ये मार्ग वर्जिन द्वीप तथा वीन्डवर्ड द्वीपके, तथा वर्जिन द्वीप औरे सेंट क्रुक्स द्वीप के वीच हैं। समुद्र विज्ञान स्थितियाँ (2.12) वताती हैं कि एनेगाडाऔर जंगफर्न के मार्गो के वीच एक छोटा सा पृथक वेसिन विद्यमान है। 1500 मीटर से कम सेडल (काठी) गहराई के डोमीनिका और मार्टीनीक के वीच की चेनल को छोड़कर, लेसर एन्टीलीस आर्क 1000 मीटर से कम की गहराई पर विन्डवार्ड द्वीपों से दक्षिण अमेरिका के तट तक अविच्छिन्न है।

अमरीकी भूमध्य सागर क्यूबा और यूकेटन के बीच के कटक तथा क्यूबाके द्वीप से दो मुख्य धसकनों में उपखण्डित है एक मेक्सिको की खाड़ी तथा दूसरा दूसरा कैरीबियन समुद्र। यूकेटन जलमार्ग (चेनल) में सिल गहराई 1600 मीटर से कम है। मेक्सिको बेसिन (i) अपेक्षाकृत साधारण धसकन है जिसमें कैरीबियन प्रदेश की स्थल रूप रेखा के लक्षण वर्णन करने वाली असमानताओं का अभाव है। लगभग 4000 मीटर तक अधिकतम गहराइयाँ बेसिन के पश्चिमी भाग में पाई जाती हैं। पूर्वी कैरीबियन और पश्चिमी कैरीबियन इन दो प्रमुख बेसिन में कैरीबियन समुद्र का खण्ड जमेका के उभार द्वारा पृथक कर दिया गया है, यह उभार हान्डुरास से हिसपेनिओला तक फैला हुआ है और इसी में से जमेका पृष्ठ से ऊपर निकला हुआ है। इसी प्रकार पश्चिमी कैरीबियन केमन कटक द्वारा, यूकेटन बेसिन (ii) और केमन द्रोणिका (iii) में विभाजित है, जो (कटक) क्यूबा के दक्षिणी छोर से पश्चिम की ओर फैलता है। अमरीकी भूमध्य सागर में केमन द्रोणिका अति-गहरा धसकन है और क्यूबा के दक्षिण की ओर वार्टलेट के गहरे समुद्र में यू. एस. एस. S-21 ने गहराई-मापन द्वारा अधिकतम गहराई 7200 मीटर निकाली है। क्यूबा औन हिसपेनिओला के बीच का वीन्डवार्ड मार्ग (पेसेज) केमन द्रोणिका को बनाने वाले धसकन का ही विस्तार प्रतीत होता है। पूर्वी तथा पश्चिमी कैरीबियन के बीच अत्यधिक-काठी-सम गहराई जमेका और हिसपेनिओला, बीच के (जल) मार्ग में स्थित है। जहाँ यह लगभग 1200 मीटर है, के बीटा कटक द्वारा पूर्वी कैरीबियन दो बेसिन में आंशिक रूप से विभाजित है, जो कि (कटक) हिसपेनिओला से पश्चिम और दक्षिण में दक्षिण अमरीका की ओर फैला हुआ है। धसकन का पश्चिमी भाग कोलम्बिया बेसिन (iv) और पूर्वी भाग वेनेझुला बेसिन (v) कहलाता हैं। वेनेझुला बेसिन के पूर्वी भाग में 3000 मीटर से अधिक की गहराइयों के एक छोटे बेसिन को, जो ग्रेनाडा द्रोणिका कहलाता है, एव्स (स्वेल) महातंरग पृथक करता है।

अमरीकी भूमध्य सागर के लक्षणों के लिये काम में ली जाने वाली शब्दावली का वाघन ने वाघन इत्यादि (Vaughan *et al*, 1940) द्वारा लिखित रिपोर्ट में विवेचन किया है जिसमें अमरीकी जल सर्वेक्षण कार्यालय द्वारा तैय्यार किये गये कैरीबियन खण्ड का एक उत्तम गहराई मापन चार्ट भी शामिल है। इस प्रदेश में धाराओं और गुणधर्मों के वितरण का वर्णन अध्याय XV (2.13) में किया गया है।

समुद्र-विज्ञान के दृष्टिकोण से एकाकी बेसिन बहुत ही रोचक होते हैं और सारणी 6 में निकटवर्ती समुद्रों में वृहत बेसिन से सम्बन्धित कुछ आंकड़े एक स्थान पर एकत्रित किये गये हैं। इस सारणी में पूर्वी भारतीय द्वीप समूह में स्थित बेसिन का विवरण नहीं है इनका वर्णन आगे किया गया है (सारणी 87)। प्रत्येक बेसिन में अधिकतम गहराई तथा निकटवर्ती बेसिन से अनुप्रस्थ

सारणी 6.

निकटवर्ती समुद्रों में एकाकी बेसिन

बेसिन	अधिकतम गहराई (मीटर)	निकटवर्ती गहरे धसकन	पृष्ठीय लक्षण	सिल की स्थिति	सिल की गहराई	अधिकतम गहराई-सिल गहराई (मीटर)
आर्कटिक भूमध्यसागरीय क्षेत्र						
उत्तर ध्रुवी बेसिन	4300	उत्तर प्रशान्त	बेरिंग का जलडमरुमध्य	साइबेरिया-अलास्का	55	
		नार्वेजीयन बेसिन		ग्रीनलैण्ड-स्पीटसबर्जेन	1500	2800
नार्वेजीयन बेसिन	3700	उत्तर अटलान्टिक	डेनमार्क जलडमरुमध्य	ग्रीनलैण्ड आइसलैण्ड	500	3200
		उत्तर अटलान्टिक		फरो-स्काटलैण्ड	500	3200
बफीन बेसिन	2200	उत्तर अटलान्टिक	डेविस का जलडमरुमध्य	बफीन-ग्रीनलैण्ड	700	1500
यूरोपीय भूमध्य सागरीय क्षेत्र						
पश्चिमी भूमध्यसागरीय बेसिन	3700	उत्तर अटलान्टिक	जिब्राल्टर का जलडमरुमध्य	जीब्राल्टर-मोरक्को	320	3400
पूर्वीय भूमध्यसागरीय बेसिन	4600	पश्चिमी भूमध्य सागर		सिसली ट्यूनिस	400	4200
काला सागर बेसिन	2200	पूर्वी भूमध्य सागर	बासपोरस		40	
			डार्डेनलीस		70	2200
अमरीकी भूमध्यसागरीय क्षेत्र						
पूर्वीय कैरीबियन बेसिन	5500	उत्तर अटलान्टिक	अनेगडा और जंग फर्न के मार्ग	वर्जिन द्वीप-लेसर	1600	3900
पश्चिमी कैरीबियन बेसिन	7200	उत्तर अटलान्टिक	विण्डवर्ड मार्ग जमाइ का जल	एण्टीलीस		
		पूर्वीय कैरीबियन	मार्ग यूकेटन जल मार्ग	क्यूबा हिसपेनीओला	1600	5600
मेक्सिको बेसिन	3900	पश्चिमी कैरीबियन	फ्लोरीडा का जलडमरुमध्य	जमैका-हिसपेनीओला		
		उत्तर अटलान्टिक		यूकेटन-क्यूबा	1200	—
				फ्लोरीडा-बहामा द्वीप	1600	2300
					800	—
अन्य क्षेत्र						
जापान समुद्र बेसिन	3700	फिलीपाइन बेसिन	सूशीमा जलडमरुमध्य	कोरिया-जापान	150	3550
लाल सागर बेसिन	2800	हिन्द महासागर	बाब-एल-मानदेब का जलडमरुमध्य	सोमालीलैण्ड-अरेबिया	100	2700
बाल्टिक सागर बेसिन	300	उत्तर अटलान्टिक	डेनमार्क की जलसन्धि	डेनमार्क के द्वीप-जर्मनी	20	280

संचरण के लिये अधिकतम सिल गहराई सूची-बद्ध की गई हैं साथ ही वेसिन में अधिकतम गहराई और सिल गहराई का अन्तर भी दिया गया है। यह पश्चाद्वत मान उस "झील" की गहराई के लिये है जो पानी के तल को अधिकतम सिल गहराई तक ले जाने पर वन जायगी। यह देखा जावेगा कि सूचीवद्ध किये हुए वहुत से वेसिन 3000 से 4000 मीटर तक की ऊर्ध्वाधर दूरियों तक अनुप्रस्थ-संचरण रहित है और यूकेटन वेसिन में सिल से अधिकतम गहराई 5600 मीटर नीचे है। इन अगाध वेसिन की वृहत् विपमता में वाल्टिक समुद्र (औसत गहराई 55 मीटर) है जहाँ सिल गहराई केवल 20 मीटर है तथा जहाँ 300 मीटर से अधिक की गहराइयाँ छोटे एकाकी धसकनों तक ही सीमित हैं।
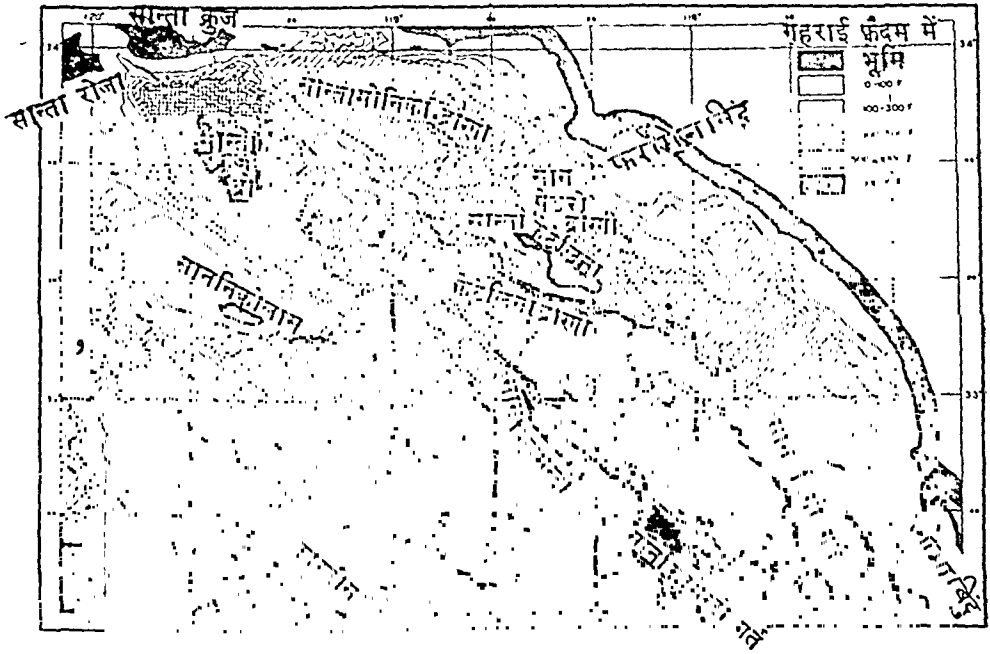
चित्र 7. दक्षिण कैलीफोर्निया के तट से परे अत्यन्त अनियमित अधस्थल के कुछ भाग की स्थलाकृति, जहाँ कहीं वेसिन तथा कटक हैं वहाँ की स्थलाकृति निकटवर्ती भूमि के समान परिवर्तित होती है गहराई फेदम में (रेवेली और शेपर्ड 1939 के अनुसार)

चित्र 7 में दक्षिण केलीफोर्निया के तट से परे के क्षेत्र की स्थलाकृति दिखाई गयी है। यह तटीय-क्षेत्र इस माने में बहुत ही महत्वपूर्ण है कि यह भौताकृतिक दृष्टि कोण से निकटवर्ती भू-खण्ड के समान है और प्रत्यक्ष रूप से महाद्वीप के अधः समावलित भाग का निरूपण करते हैं। महाद्वीपीय मग्नतट भूमि अपेक्षाकृत संकरी है और तट से दूर वेसिन और कटक की श्रेणियाँ है जिन पर कई द्वीप स्थित हैं। दक्षिणी भाग में महासागरीय वितल की ओर जाने वाला वास्तविक महाद्वीपीय

मग्नढाल तट से लगभग 150 मील दूर है। यह नक्शे में नहीं दिखाया गया है। कई छोटे प्रपाती खड्ड (केनियन) भी चित्र में दिखाये गये हैं।

अन्त: समुद्र प्रपाती खड्ड

कई वर्षों से यह ज्ञात था कि कुछ क्षेत्रों में मग्नतट भूमि को आरपार काटते हुए खाँचे हैं परन्तु जब से मग्नतट भूमि तथा ढाल के गहराई मापन की सही-सही स्थिति का बड़ी संख्या में पता लगाना सम्भव हो गया तब से इस प्रकार के लक्षण अनेक और दूर तक फैले हुए पाये गये हैं। विभिन्न लेखकों द्वारा इन लक्षणो का अलग-अलग नाम आदि जैसे (केनियन्स) प्रपाती खड्ड, घाटियाँ, दिखावटी घाटियाँ और अवनालिकाएँ देने से भूवैज्ञानिकों में इनके लिये बड़ी रुचि पैदा हो गयी और इन प्रपाती खड्डो के लक्षण तथा बनने की विधि सम्बन्धी काफी साहित्य प्रकाशित हो गया है। प्रपाती खड्डों की स्थलाकृति सम्बन्धी आंकड़े तट निकट क्षेत्रों का सावधानी पूर्वक मान चित्रण करने वाली राष्ट्रीय एजेंसियों ने विशेष करके प्राप्त किये हैं। इस प्रकार के आंकड़ों को वीच और स्मिथ (Veatch and Smith 1939) और शेपर्ड और एमरी (Shepard and Emery 1941) ने संयुक्त राज्य अमरीका के पूर्व और पश्चिम के किनारो से दूर के प्रपाती खड्डों के विस्तृत एवम् सामान्य स्थलाकृति चार्ट तैयार करने के लिये काम में लिये हैं। स्टेट्सन् (Stetson 1936) ने पूर्वी किनारे पर स्वतन्त्र अवलोकन किये हैं, और शेपर्ड तथा उसके साथियों ने प्रपाती खड्डों का विशेषकर पश्चिमी किनारे पर गहन अध्ययन किया है। भू-वैज्ञानिकों की मुख्य अभिरुचि केनियन्स के बनने की विधि का संस्थापन करना रही है और इनकी (केनियन्स) उत्पत्ति के विषय में अनेकों परिकल्पनाएँ प्रस्तावित की गयी हैं। जो विभिन्न परिकल्पनाएँ सुझायी गयी हैं उनका शेपर्ड (शेपर्ड और एमरी, (Shepard and Emery 1941) ने विस्तृत वर्णन किया है और प्रत्येक के पक्ष तथा विपक्ष में तर्क दिये हैं।

यद्यपि उपरोक्त शब्द न्यूनाधिक समानार्थकता से उपयोग में लिये गये हैं, प्रपाती खड्डो का आकार और सामान्य लक्षण बहुतायत से बदलते रहते हैं। उनमें से कुछ में, हडसन, (चित्र 9) कान्गो और सिन्धु केनियन जैसी नदियों के मुहानों से दूर, घसकने हैं जो मग्नतट भूमि के आरपार, यहाँ तक कि नदियों के मुहानों तक अनुरेखित की जा सकती हैं। कुछ प्रपाती खड्ड मग्नतट भूमि के आरपार बढ़े हुए होते हैं परन्तु दूसरे, उदाहरणार्थ वीच और स्मिथ द्वारा तैयार किये चार्ट में दिखाये गये में से अनेकों, महाद्वीपीय ढाल में विवृत शिरा तक सीमित हैं तथा मग्नतट भूमि को दूर तक नहीं काटते हैं। प्रपाती खड्डों के ऊपरी भाग की समाकृति साधारणतया V (वी) के आकार की खड़ी दिवालों की तरह पाई गयी है जिनका पैंदा सतत् बाहर की ओर ढलवाँ है (चित्र 8)। यदि कुछ घुमावदार हैं तो अनेक पादपसम

प्रतिरूप बताते है जिनके छोटे सहायक प्रपाती खड्ड होते हैं। आकार में इनमें छोटी अवनालिका से कोलेरेडो नदी (चित्र 8) की ग्रांड केनियन, जैसे विशाल परिमाप की रचनाओं, तक हेर फेर होता है। प्रपाती खड्ड का सिरा कभी कभी उथले स्थल से कुछ सौ मीटर तक उथलेपानी में ही अनुरेखित किया जा सकता है और अन्य स्थितियों में 100 से 200 मीटर तक की गहराई में और तट से 50 या अधिक कीलोमीटर की दूरी तक ढाल के ऊपरी भाग में ही सीमित होता है। कुछ प्रपाती खड्ड, बाहर की ओर ज्यादा दूरियों तक तथा हजारों मीटर की गहराइयों में अनुरेखित किये जा सकते हैं परन्तु शेपर्ड को सन्देह है कि क्या प्रपाती खड्डों के गहरे भाग, जो कि चौड़े और काफी ढालू हैं उसी उद्गम से हैं जिससे भीतरी भाग होते हैं। महाद्वीपीय तट के (केनियन) प्रपाती खड्ड लाक्षणिक हैं परन्तु महासागरीय द्वीपों के आस-पास ऐसे ही लक्षण होते हैं, जिसे बताने के लिये कुछ प्रमाण है।
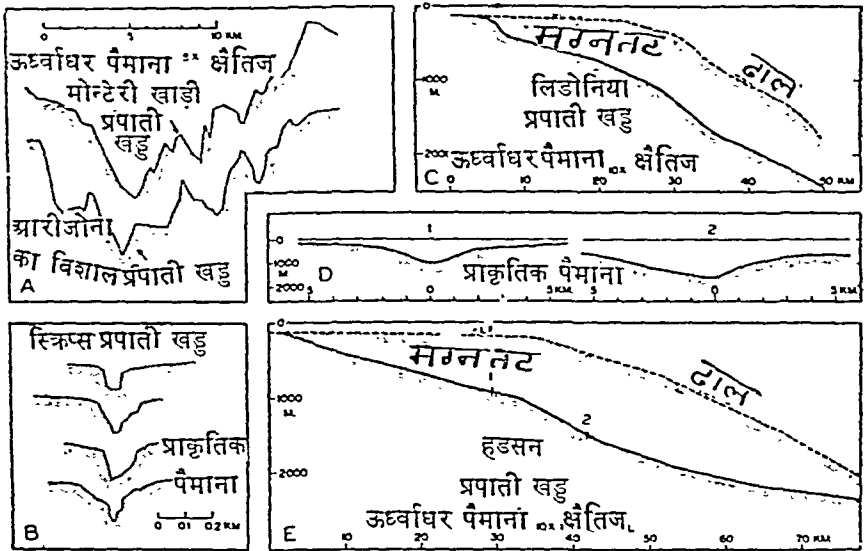
चित्र 8 अन्तः समुद्र केनियन की समाकृति

(A) ऐरिझोना में कोलोरेडो नदी के ग्रान्ड केनियन की समाकृति की तुलना में मोन्टेरे की खाड़ी में अन्तः समुद्र केनियन की अनुप्रस्थ समाकृति (देखिये चित्र 10)

(B) ये दक्षिणी केलिफोर्निया के तट से दूर छोटे और अति ढालू केनियन की अनुप्रस्थ समाकृति

(C) लाइडोनिया केनियन और समीपवर्ती ढाल तथा पट्टिका की अनुदैर्ध्य समाकृति

(D) और (E) हडसन केनियन के अनुप्रस्थ और अनुदैर्ध्य समाकृति तथा निकटवर्ती पट्टिका और ढाल के सम्बन्ध। अनुप्रस्थ काट की स्थितियाँ (D) अनुदैर्ध्य समाकृति पर दिखाई गयी हैं। कुछ चित्रों में ऊँचाई की अत्योक्ति तथा क्षैतिज पैमानों में अन्तर को ध्यान से देखिये। A और B शेपर्ड, (Shepard 1938); के अनुसार C,D तथा E वीच और स्मिथ (Veatch and Smith 1939) के अनुसार।

केनियन्स की ढालू दीवारें सामान्यतः अदृढ़ीभूत तलछट से मुक्त होती हैं और उन केनियन में जहाँ विशेष प्रकार से छानबीन की गयी वहाँ दिवाले सामान्यतः तलछटी शैल की प्रतीत होती है कुछ स्थितियों में (जैसे केलिफोर्निया तट से परे मोन्टेरे केनियन; चित्र 10) केनियन ग्रैनाइट में कटी होती हैं जिन पर तलछटी शैल उपरिस्त होती है। केनियन के पैंदे की तलछट निकटवर्ती मग्नतट पर की तलछट से सामान्यतः मोटी होती है तथा कुछ में वट्टियाँ तथा कंकड़ पाये गये हैं।

केनियन की वनावट के संभाव्य कारण के लिये निम्नलिखित कारक दिये गये हैं :

1. पटल रुपक्षण—

2. जल गर्भी धाराओं द्वारा भूक्षरण—डाली, (Daly 1936) ने एक सिद्धान्त प्रस्तावित किया कि अति-सूक्ष्म कणिक तलछट से बनी हुई "घनत्त्व धाराएँ" ढाल के नीचे तक प्रवाहित हुई हों और प्रपाती खड्डों को काटा हो, विशेष कर हिम-काल पर्यन्त नीचे गये हुए समुद्र तल के अन्तरालों में। घनत्त्व धाराएँ जलाशयों में होती हैं परन्तु समुद्र में इनके होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता, जहाँ जल का घनत्त्व स्तरीकरण जल के ऊर्ध्वाधर वहाव में रुकावट डालता है।

3. स्प्रिग (सोता) मूलोच्छेदन—जलगर्भी केनियन के लक्षण तथा उत्पत्ति से सम्बन्धित साहित्य की पर्याप्त समीक्षा में जॉनसन (Johnson, 1939) ने
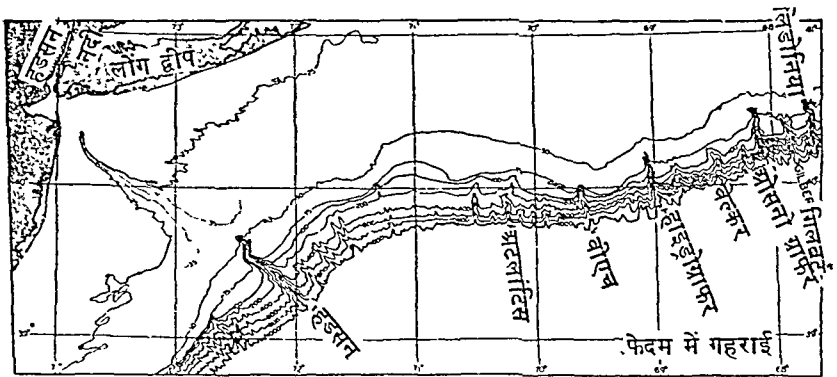
चित्र 9. संयुक्तराज्य अमरीका के पूर्वी तट से दूर के विभिन्न प्रकार के अन्तः समुद्री केनियन को वताने वाले, ढाल और पट्टिका की स्थल रूपरेखा। पट्टिका के आरपार हडसन केनियन को अनुरेखित किया जा सकता है; लिडोनिया, ओसनोग्राफर तथा हाइड्रोग्राफर केनियन की तरह के दूसरे, पट्टिका के वाह्य पट्टी में काटते हैं जबकि शेष ढाल तक ही सीमित रहते हैं। गहराई समोच्च रेखाएँ फैदम में हैं। (वीच और स्मिथ, 1939 के चार्ट से सरलीकृत)

यह प्रमेय (परिकल्पना) प्रस्तावित किया कि भूमिगत जल के निःस्राव से बना हुआ घोल और अपरदन शायद केनियन की बनावट में मदद करता है।

4. **पंक वाह और भूमि खसकन**—पंकवाहों का केनियन में होना पाया जाता है शेपर्ड और एमरी, (Shepard and (Emery, 1941) तथा केनियन को अदृढ़ीभूत मलवे से साफ रखने के कारक होते हैं, लेकिन यह संदेहास्पद है कि वे चट्टान का अपरदन करने योग्य होते हैं।

5. **त्सुनामी या भूकंपी तरङ्गें** (2.14)—बूचर (Bucher 1940) ने बताया कि केनियन में पाई जाने वाली तरंगों में बहुत सी अपेक्षाकृत कम वेग की होती हैं और इसलिये चट्टान के सक्रिय अपरदन के लिये असमर्थ होती है। केनियन की जलगर्भी-उत्पत्ति का स्पष्टीकरण करने हेतु उसने सुझाया कि समुद्र के पैंदे के प्रचण्ड भूकम्पीय गति से समुद्र में जो भूकम्पीय तरंगे उठती हैं उनसे संगुणित तीव्र धाराएँ प्रभावी कारक हो सकती हैं।

6. **भूपृष्ठीय अपरदन**:—उपरोक्त पाँच स्पष्टीकरण केनियन का समुद्र पृष्ठ के नीचे बनने के अनुरुप हैं। स्थल पर नदियों द्वारा काट कर बनाये गये केनियन से उनकी कई समानताओं के कारण बहुत से अन्वेषको, मुख्य रूप से शेपर्ड, को विश्वास हो गया कि केनियन की भूपृष्ठीय उत्पत्ति ही रही है। फिर भी, ऐसा कोई भी स्वीकृत भूवैज्ञानिक सिद्धान्त नहीं है जो अपेक्षाकृत अभिनव भूवैज्ञानिक समय में मग्नतट भूमि तथा ढाल के विश्वव्यापी उद्भासन का स्पष्टीकरण कर सके। इस कठिनाई से छुटकारा पाने के लिये शेपर्ड ने सुझाया कि हिमयुगों में महासागर से निष्कासित जल और उसके हिमावरण की तरह निक्षिप्त होने की मात्रा सामान्यतः स्वीकृत मात्राओं (2.15) से कई गुनी अधिक रही होनी चाहिए।
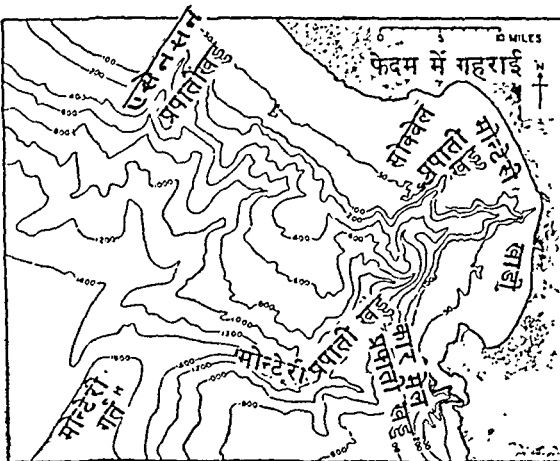
चित्र 10. कैलिफोर्निया के तट से दूर के मोन्टेरे केनियन

जलगर्भी केनियन की उत्पत्ति से सम्बन्धित इन विविध परिकल्पनाओं के पक्ष तथा विपक्ष में शेपर्ड (शेपर्ड और एमरी, Shepard and Emery, 1941) ने बड़े ही सुचारु रूप से युक्तियों का मूल्यांकन किया और यह निष्कर्ष निकाला है कि अभी तक परिपादित परिकल्पनाओं में से एक भी इनके (केनियन) विशिष्ट लक्षणों का स्पष्टीकरण नहीं कर सकती हैं। मग्नतट भूमि से बह कर केनियन में आने वाले तलछटीय मलवे को हटाने के प्रक्रमों से सम्बन्धित समस्याएँ फिर भी रहती हैं। पंक वाह और धाराओं द्वारा परिवहन क्रियात्मक पाये जाते हैं परन्तु उनकी क्षमता अभी तक ज्ञात नहीं हो पाई है।

तट रेखाएँ

तट रेखाओं के विकास का अध्ययन भूवैज्ञानिकों तथा भौताकृतिक विदों द्वारा किया गया है जिन्होंने विभिन्न प्रकार के तटों का वर्गीकरण वृहत्‌रूप से उस आधार पर किया है जिससे तटीय समाकृति अपरदन और निक्षेपण से प्रभावित हुई है। जॉनसन (Johnson 1919, 1925) ने तट और उथला जल प्रदेश के विशिष्ट लक्षणों का वर्णन किया है और इन्हें तथा अन्य स्रोतो को भूमि तथा समुद्र के बीच के संक्रमण क्षेत्र की जटिल प्रकृति के गुण-दोष की विवेचना करने के लिये देखना चाहिये तथा जहाँ भूपृष्ठीय तथा समुद्रीय दोनों के अपरदन और निक्षेपण के प्रभावों को ध्यान में रखना चाहिये। समुद्रीय तलछटीकरण के अध्याय में (अध्याय XX) तलछटी मलवे के स्रोत, परिवहन कारक और अपरदन तथा निक्षेपण में धाराओं और तरंगों का कर्तव्य, इन सभी के सम्बन्ध में पुलिन और उथला-जल तलछट के गुणधर्मों का विवेचन किया गया है। यद्यपि तट रेखा के लक्षणों के अनेकों प्रेक्षणात्मक आंकड़े प्राप्त किये गये हैं, परन्तु तरंगों, ज्वार धाराओं और समुद्र में परिवहनात्मक तथा अपरदनात्मक अभिकर्त्ताओं की तरह अन्य गतियों के समुचित ज्ञान के अभाव में विभिन्न अन्तःग्रस्त कारकों के सापेक्ष महत्व के मूल्यांकन में अड़चने आई हैं।

तट रेखाओं के वर्गीकरण का जॉनसन, (Johnson 1919) और शेपर्ड (Shepard, 1937) द्वारा विवेचन किया गया है। शेपर्ड का प्राथमिक वर्गीकरण निम्नलिखित घटकों पर आधारित है।

1. मुख्य रूप से असमुद्रीय अभिक्रियाओं से होने वाली समाकृतियों के प्राथमिक या किशोर तट
   - (a) वे जो स्थलीय अपरदन अभिक्रियाओं से आकारित (रचित) और अधःसमावलन तथा अग्लेश्वरीकरण द्वारा निमज्जित हों।
   - (b) वे जो स्थलीय निक्षेपणात्मक अभिक्रियाओं जैसे नदियों, हिम-नदियों और वायु, द्वारा आकारित (रचित) हों।

(c) वे जो ज्वालामुखीय-विस्फोट या लावा के बहाव से आकारित (रचित) हों।

(d) वे जो पटल विरूपक सक्रियता से आकारित (रचित) हों।

2. मूल-रूप से समुद्रीय अभिक्रियाओं से होने वाली समाकृतियों के गौण या परिपक्व तट।

(a) वे जो समुद्रीय अपरदन से रचित हों।

(b) वे जो समुद्रीय निक्षेपण से रचित हों।

पुलिन को उस क्षेत्र से परिभाषित करते हैं जो प्रभावी तरंग-क्रिया की ऊपरी तथा भूमि की ओर की सीमा से भाटा के तल तक फला हुआ होता है। परिणाम स्वरूप, पुलिन समुद्र और भूमि के बीच वास्तविक संक्रमण क्षेत्र को निरूपित करता है क्योंकि यह तरंगों और ज्वार-भाटे से अन्तरायिकता से ढकता तथा खुलता है। पुलिनों के लक्षण उनके तलछट को रचने वाले स्रोत पदार्थ की प्रकृति पर, तथा तरंगों और धाराओं द्वारा अपरदन, परिवहन और निक्षेपण के प्रभाव पर, इतने निर्भर करते हैं कि ये समुद्रीय तलछटीकरण के अध्याय में ज्यादा लाभपूर्वक विवेचित किये जा सकते हैं। पुलिन का ऊपरी भाग केवल उच्च तरंगों की अवधि में ही ढक पाता है विशेष कर जब तूफानों का उच्च वृहत् ज्वारों से संपात होता है। पुलिन का ढाल वृहत् रूप से तलछटों के कण-आकार से मालूम किया जाता है (2.16), परन्तु पुलिन का फैलाव ज्वार-भाटे की परास पर निर्भर करेगा। पुलिन के विभिन्न भागों, और निकटवर्ती क्षेत्रों के लिये काम में ली गयी शब्दावली चित्र 11 में दिखाई गयी है, यह शब्दावली बीच इरोसन बोर्ड (यू. एस. बीच इरोसन बोर्ड, U. S. Beach Erosion Board, 1933) द्वारा तैयार की गयी रिपोर्ट से ली गयी है।

अदृढ़ीभूत पदार्थ से निर्मित पुलिन विशिष्ट रूप से अस्थिरता के क्षेत्र होते हैं। प्रत्येक तरंग न्यूनाधिक छोटे तलछट कणों को विक्षुब्ध करती है और तरंग के स्वरूप से यह पता चलेगा कि क्या निश्चित कालान्तर में किसी नियत स्थान पर तलछट की निवल अभिवृद्धि या निष्कासन होता है या नहीं। तरंगों द्वारा निलम्बन में रखे हुए पदार्थ के निवल परिवहन को प्रभावित करने वाली धाराऐं भी पुलिन के आकृति की रचना करने में महत्वपूर्ण योग देती हैं। तरंगों की ऊँचाई और दिशा में या धाराओं की तट-स्पर्शी दिशा में उतार-चढ़ाव से आम तौर पर पुलिन की रुप-रेखा में परिवर्तन होने लगता है। इस प्रकार के परिवर्तन सामान्यतया मौसमी होते हैं तथा किसी इलाके में रेत की मात्रा में और पुलिन की रूपरेखा में तत्सम्बन्धित परिवर्तन होते हैं शेपर्ड और लाफोण्ड, (Shepard and LaFond, 1940)। अपेक्षाकृत अल्प-

कालान्तर में पुलिन की अस्थिरता के, स्थावर जीवों के पर्यवरण के रूप में पुलिन से सम्बन्धित, कई आशय है (अध्याय VIII)
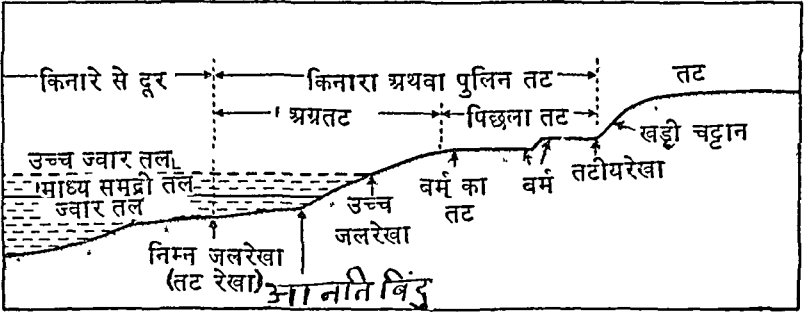
चित्र 11. पुलिन समाकृति के विभिन्न भागों के लिये काम में ली गयी शब्दावली। वर्म छोटे अस्थायी वेदियां हैं जो शान्त मौसम में निक्षेपण से और तूफानो में अपरदन से बने हैं। आनति विन्दु परिवर्ती खण्ड है जहां तरंगें टकराती है इसलिये इसकी स्थिति तरंगों की ऊँचाई और ज्वार की अवस्था पर निर्भर रहती है।

यद्यपि पुलिन में अल्पावधि विक्षोभ होते है तट के मन्द अपरदन या स्थायी निक्षेपण के, जो शायद हो रहा हो, बावजूद भी पुलिन सामान्य रूप से एक संतुलित अवस्था का निरूपण करता है। यदि तरंगों तथा धाराओं की सामान्य पारस्परिक क्रिया में किसी प्रकार की जैसे पाये, घाट या तरंग रोध के निर्माण से रुकावट आती हो तो पुलिन का स्वरुप पूर्ण रूप से बदला जा सकता है। कुछ दृष्टान्तों में तट का अत्यन्त ही अवांछनीय अपरदन हो सकता है तथा दूसरे दृष्टान्तों में उतना ही अवांछनीय निक्षेपण हो सकता है। इस प्रकार के परिवर्तन होते रहेंगे जब तक कि एक नया संतुलन स्थापित हो जावे जो संरचना के मूल्य को उस प्रयोजन हेतु जिसके लिये यह प्रारम्भ में (अभीष्ट) अभिप्रेत था बेकार करदे। तलछटी पदार्थ के स्रोत, प्रचलित धाराएँ तरंगों की दिशा एवम् सामर्थ्य तथा पुलिन के संतुलन को निर्धारित करने वाले अन्य कारक आदि सभी की पर्याप्त छान-बीन कर लेने के पश्चात् ही एक खुले तट पर तरंग रोध, समुद्री-दीवारें यानि चड्डे और इसी प्रकार की अन्य संरचनाओं का निर्माण करना चाहिये। इस प्रकार के अध्ययन में यू. एस. आर्मी कोर ऑफ इन्जीनीयर्स का बीच इरोजन बोर्ड (Beach Erosion Board of the U. S. Army Corps of Engineers) एवम् कई असार्वजनिक संस्थाऐं लगी हुई है।

अध्याय 3

समुद्र जल के भौतिक गुणधर्म

शुद्ध जल के गुणधर्म दूसरे द्रवों के गुणधर्मों की तुलना में अनन्य होते हैं और महासागरों, वायुमण्डल और भूमि की विशेषताएं आदि हमारे भौतिक पर्यावरण की प्रकृति कई तरह से जल के असाधारण गुणधर्मों पर आश्रित रहती हैं। जीवधारी रचना की अनेक रूप से आवश्यकताओं के लिये जल की "उपयुक्तता" कार्यकीविज्ञो और परिस्थितिकी विज्ञो द्वारा बतलाई गयी है, उदाहरणार्थ हेन्डरसन (Henderson, 1913) बाइलिस (Bayliss, 1927)। कुछ विशेषताएं सारणी 7 में दी गयी हैं जो शुद्ध जल और समुद्री-जल दोनों के लिये इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण है।

जल की अनन्य विशेपता को इस तथ्य से और भी अधिक बल मिलता है कि, सम्बन्धित योगिकों के अध्ययन के आधार पर शुद्ध जल को लगभग – 150°C पर जम जाना चाहिए और—100°C पर उबलना चाहिये। जल की रासायनिक संरचना इन असंगतियों का और सैद्धांतिक गुणधर्मों से किसी दूसरे विचलनो का स्पष्टीकरण नहीं करती। तो भी, यह पाया गया है कि द्रव जल अलग अलग H_2O अणुओं से नहीं बना है परन्तु यह बहुलकी हो गया है अर्थात् एक, दो, और तीन मौलिक H_2O अणु वाले बहुसमूह विद्यमान हो सकते हैं ये मोनो-हाइड्रोल, डाई-हाइड्रोल और ट्राइ-हाइड्रोल के नाम से उल्लेखित किये जाते हैं। तीनों प्रकार के समूहों का आपेक्षिक अनुपात ताप, जल के तात्कालिक भूतपूर्व वृत्तान्त और दूसरे कारणों पर निर्भर करता है : बहुलीकरण की मात्रा बढ़ते हुए ताप के साथ कम हो जाती है। जल बहुलकों का अस्तित्व जल के कुछ असाधारण गुणधर्मों, जैसे उच्च गलनांक और क्वथनांक, का स्पष्टीकरण करने में उपयोगी होता है। ऐसा माना गया है कि बहुलीकरण की मात्रा के कुछ शरीरक्रियात्मक प्रभाव होते हैं। बार्न्स और जांन (Barnes and John 1934)।

हाईड्रोजन और आक्सीजन के समस्थानिकों के आविष्कार ने 'शुद्ध' जल के विषय में हमारे संकल्पन को रुपान्तरित कर दिया है। तमाम प्राकृतिक जल में थोड़ी परन्तु अस्थिर मात्रा में भारी हाईड्रोजन (ड्यूटेरियम) और भारी आक्सीजन होती है। ये घनत्व और दूसरे गुणधर्मों में हेर फेर कर देते हैं, परन्तु चूंकि उनकी सांद्रता अत्यन्त ही कम होती है इसलिये उनका प्रभाव थोड़ा होता है। जैसे जैसे इस समस्या

सारणी 7.

जल के कुछ भौतिक गुणधर्म

आंशिक रूप में फ्लेमिंग और रेवेली से

(Fleming and Revelle, 1939).

गुणधर्म	दूसरे पदार्थों से तुलना	भौतिक-जैव पर्यावरण में महत्त्व
ऊष्मा-धारिता	द्रव NH_3 को छोड़कर तमाम ठोस और द्रव से उच्चतम	ताप में अधिकतम परासों को रोकती है। जल गति से ऊष्मान्तरण बहुत अधिक होता है। शरीर ताप को एक समान बनाये रखने की ओर प्रवृत होती है।
गलन की गुप्त ऊष्मा	NH_3 को छोड़कर सबसे उच्चतम	गुप्त ऊष्मा की मुक्ति या अवशोषण के कारण हिमांक पर ऊष्मा-स्थैतिक प्रभाव।
वाष्पीकरण की गुप्त ऊष्मा	तमाम वस्तुओं से उच्चतम	वृहत वाष्पीकरण की गुप्त ऊष्मा वायुमण्डल के जल और ऊष्मान्तरण में महान महत्वपूर्ण होती है।
तापीय प्रसरण	अधिकतम घनत्व का ताप बढ़ते हुए लवणता के साथ कम होता है। शुद्ध जल के लिये यह ताप 4° सें० ग्रे० है।	शुद्ध जल और तनु समुद्र जल का अधिकतम घनत्व हिमांक से ऊपर के ताप पर होता है। यह गुणधर्म झीलों में ताप का वितरण और ऊर्ध्वाधर परिसंचरण के नियन्त्रण में प्रभावशाली होता है।
तल तनाव	सभी द्रवों से उच्चतम	कोशिका की कार्यकी में महत्त्वपूर्ण। तल की कुछ घटनाओं का और बूंदों की विरचना तथा व्यवहार का नियन्त्रण करता है।
विलयन शक्ति	आमतौर पर दूसरे द्रवों की अपेक्षा अधिक वस्तुओं को और ज्यादा मात्रा में घुलाता है।	भौतिक और जैव घटना दोनों में सुस्पष्ट आशय।

1	2	3
विद्युदपार्य स्थिरांक	शुद्ध जल का सभी द्रवों से उच्चतम	अकार्बनिक घुली हुई वस्तुओं के व्यवहार में परम महत्त्वपूर्ण क्योंकि इससे उच्च नियोजय होता है।
विद्युत् विश्लेषी वियोजन	बहुत कम	यद्यपि एक उदासीन पदार्थ फिर भी इसमें दोनों H^+ और OH^- आयन होते हैं।
पारदर्शकता	अपेक्षाकृत अधिक	विकिरण ऊर्जा का अवशोषण अवरक्त और परावैंगनी में अधिक होता है। ऊर्जा वर्णक्रम के दृश्य भागों में चयनात्मक अवशोषण कम होता है इसलिये रङ्गहीन है। भौतिक और जैव घटनाओं में लाक्षणिक अवशोषण महत्त्वपूर्ण है।
ऊष्मा चालन	सभी द्रवों से उच्चतम	यद्यपि छोटे पैमाने पर जैसे जीवित कोशिका में महत्वपूर्ण होता है। फिर भी आणविक प्रक्रियाएँ भंवरीय चालन से महत्व में अत्यधिक बढ़ी हुई होती हैं।

की समझ बढ़ती है वैसे यह वांछनीय हो जाता है, कि जल के गुणधर्मो पर आधारित लीटर और कैलोरी जैसी जल की कुछ भौतिक इकाइयों की भी परिभाषा जल की समस्थानिक बनावट का विचार करते हुए, विशेष यथार्थता से दी जाय। जल के स्रोत के आधार पर भारी समस्थानिकों की मात्राएँ कुछ घटती बढ़ती हैं। वर्थ, थाम्पसन और उट्टरबेक (Wirth, Thompson and Utterback. 1935) ने मालूम किया कि समुद्र-जल के नमूनों से तैयार किया गया आसुत जल नल के आसुत जल से घनत्व में औसतन 1.4×10^{-6} अधिक होता है। अधिक लवणता वाले क्षेत्रों के जल ने कुछ कम असंगति बताई है अर्थात् 0 2 से 0.5×10^{-6} तक। महासागर की गहराइयों से लिये गये नमूनों का घनत्व औसत से अधिक था। स्वार्टआउट और डोल (Swartout and Dole 1939) ने मालूम किया कि समुद्र जल नमूने से आसुत जल का घनत्व मिशीगन झील के पानी से तैयार किये गये आसुत जल से 1.7×10^{-6} अधिक था। उन्होंने यह भी पाया कि समुद्र जल में हाइड्रोजन और ड्यूटेरियम का अनुपात लगभग 7000 : 1 है। वर्षा के जल और इसके फलस्वरूप शुद्ध जल में

भारी समस्थानिकों का अनुपात समुद्र जल से कम होता है चूंकि वाष्पीकरण प्रक्रम में कुछ प्रभाजन होता है। समस्थानिकों का अध्ययन-क्षेत्र अपेक्षाकृत नया है और अभी तक समस्थानिकों की सार्थकता या वितरण का बहुत कम ज्ञान है। उनकी परिवर्तनशीलता आभासी रूप से प्रायः कम होती है और इसके फलस्वरूप विवेचन किये जाने वाले गुणधर्मो के परिमाण पर सार्थक प्रभाव नहीं डालेगी।

आसुत जल के भौतिक गुणधर्मो की जानकारी व्यापक पुस्तिकाओं में (उदाहरणार्थ डोरसे, Dorsey, 1940) या इन्टरनेशनल क्रिटिकल टेबल्स में मिलती है। इन भौतिक गुणधर्मो में से कई तो दो चरों, ताप और दाब, पर निर्भर रहते है, परन्तु समुद्र जल के लिये एक तीसरे चर का भी विचार करना पड़ता है; अर्थात् पानी की लवणता, जिसकी परिभाषा और विवेचन नीचे दिया जायगा। संपीड्यता, तापीय प्रसरण, और वर्तनांक जैसे कुछ गुणधर्मो में, घुले हुए लवणों के होने से केवल किंचित परिवर्तन होता है परन्तु आसुत जल के लिये अन्य गुणधर्म जैसे हिमांक, और अधिकतम घनत्व का ताप, जो स्थिरांक है वे समुद्र जल के लिये लवणता पर आश्रित होते हैं। और भी, घुले हुए लवणों से समुद्र जल में कुछ नये लक्षण आ जाते हैं जैसे कि रसाकर्षण दाब। समुद्र जल के भौतिक गुणधर्मो के सामान्य सर्वेक्षण क्रुमेल, (Krummel, 1907) मेथ्यूस (Matthews, 1923) हार्वे, (Harvey, 1928) जॉनस्टोन, (Johnstone 1928) और थाम्पसन, (Thompson 1932) ने दिये हैं।

प्रकृति में पाये जाने वाले जल का, चाहे वह शुद्ध जल हो या समुद्री जल, वर्णन करते समय उसके भौतिक लक्षणों में से एक और महत्त्वपूर्ण पहलू का भी विचार करना चाहिये। वह पहलू है कि छोटे छोटे निलम्बित कणों के विद्यमान् होने से या गति की अवस्था होने से कई मुख्य प्रक्रम बहुतायत से उपान्तरित हो जाते हैं इस प्रकार प्रकाश का अवशोपण झीलों के पानी में या समुद्र के जल में, आसुत जल या 'शुद्ध' समुद्रीयजल से पूर्णतया भिन्न होता है, क्योंकि प्रकृति में होने वाले जल में सदैव निलम्वित द्रव्य होता है जिससे प्रकाश के प्रकीर्णन में वृद्धि हो जाती है और तदनुसार समान मोटाई वाली परतों के अवशोषण में वृद्धि हो जाती है। वहते हुए पानी में ऊष्मा चालन, रासायनिक विसरण, और एक परत से दूसरे परत में संवेग अन्तरण की प्रक्रियाओं में इतना परिवर्तन हो जाता है कि प्राकृतिक अवस्थाओं वाले पानी के लिये जो गुणांक प्रयोगशाला में ज्ञात किये गये हैं उनको ऐसे तत्स्थानी 'भंवर' गुणांकों द्वारा प्रतिस्थापित करना चाहिये जो भंवरों की उपस्थिति पर निर्भर रहते हों। इसलिये, समुद्रीय जल के कुछ भौतिक गुणधर्म केवल तीन चरों पर निर्भर रहते हैं, ताप, लवणता और दाब, और ये सभी काफी यथार्थता से मालूम किये जा सकते हैं, जबकि अन्य गुणधर्म, निलम्बित द्रव्य की मात्रा या गति के लक्षण जैसे चरों पर निर्भर रहते हैं और जो अभी यथार्थता से नहीं ज्ञात किये जा

सकते हैं । भौतिक गुणधर्म और उनका इन चरों से सम्बन्धों का विवरण देने से पहले हम समुद्र जल की लवणता का वर्णन करेंगे ।

लवणता और क्लोरीनता

रासायनिक समुद्र विज्ञान के अध्याय में समुद्र जल में घुले हुए घटकों की संविरचना का विस्तारपूर्वक वर्णन दिया गया है । इस समय हमारी रुचि केवल वहु प्रचुर वस्तुओं में है जिनके सांद्रण से भौतिक गुणधर्मों पर प्रभाव पड़ेगा । यह पाया गया है कि यदि निरपेक्ष सांद्रण का ध्यान नहीं रक्खा जावे तो उच्च तनुता (निम्न लवणता) वाले खण्ड को, जिनमें लघु विचलन हो सकते हैं, छोड़कर सभी खण्डों में विभिन्न मुख्य घटकों के सापेक्ष भाग व्यावहारिकता में स्थिरांक हैं । इस नियम से यह विदित होता है कि मुख्य घटकों में से किसी एक को शेप के माप की तरह और नमक की कुल मात्रा के माप की तरह उपयोग किया जा सकता है, तथा समान पूर्ण लवणांश वाले जल के नमूने जिनका स्रोत चाहे कहीं भी हो, भौतिक गुणधर्मों में व्यावहारिकता से समरूप होते हैं ।

समुद्र जल की संमिश्रणता के कारण किसी नमूने में घुले हुए ठोस पदार्थों की कुल मात्रा को प्रत्यक्ष रासायनिक विश्लेषण द्वारा मालूम करना असम्भव है । और भी, समुद्र जल को शुष्कता तक वाष्पन करके अवशेष को तोलने पर जो परिमाण आते हैं उनका फिर से मालूम करना भी असम्भव होता है क्योंकि कुछ प्रस्तुत सामग्रियाँ, विशेष कर क्लोराइड, शुष्कन की आखरी अवस्था में खो जाती हैं । परिणामों के पुनरुत्पादन के योग्य क्षमता वाली तकनीक से ये कठनाइयाँ टाली जा सकती हैं, ऐसे परिणाम, यद्यपि घुले हुए ठोस पदार्थों की कुल मात्रा को निरूपित नहीं करते, फिर भी वे कुछ ही छोटे संख्यात्मक मूल्य वाली मात्रा को निरूपित करते हैं जो वहुत ही निकट से सम्बन्धित हैं और जिसे जल की लवणता कहते हैं । इस तकनीक को एक अन्तर्राष्ट्रीय आयोग ने संस्थापित की थी (फोर्च, नुडसन और सोरेनसन, Forch, Knudsen, and Sorensen, 1902) और उसके कार्य के आधार पर लवणता को, एक किलोग्राम समुद्र जल में ठोस सामग्रियों की ग्राम में कुल मात्रा द्वारा परिभाषित किया है, जब सारे कार्वोनेट आक्साइड में परिवर्तित हो गय हों, ब्रोमीन और आयोडीन, क्लोरीन द्वारा प्रतिस्थापित हो गयी हों, और सारे जैव पदार्थ पूर्णतया ऑक्सीकृत हो गये हों ।

अन्तर्राष्ट्रीय आयोग की विधि द्वारा लवणता आजकल कदाचित ही मालूम करते हैं क्योंकि यह अति कठिन और मंद विधी है, किन्तु, घुले हुए ठोस पदार्थों की स्थिर संविरचना के कारण अपेक्षाकृत भारी मात्रा में मौजूद किसी तत्व के निर्धारण को दूसरे तत्त्वों और लवणता के माप की तरह उपयोग किया जा सकता है ।

घुले हुए ठोस पदार्थों में लगभग 55 प्रतिशत क्लोराइड आयन होते हैं जो पोटासियम क्रोमेट को संकेतक की तरह काम में लेकर रजत नाइट्रेट से अनुमापन कर सही-सही और आसानी से मालूम किये जा सकते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय आयोग द्वारा स्थापित, क्लोरीनता और लवणता में आनुभविक सम्बन्ध यह है

$$\text{लवणता} = 0.03 + 1.805 \times \text{क्लोरीनता}$$

इस समीकरण में आने वाली क्लोरीनता भी एक परिभाषित राशि है और समुद्र जल के नमूने में क्लोरीन की सही-सही मात्रा का निरूपण नहीं करती। लवणता और क्लोरीनता दोनों ही सदैव ग्राम प्रति किलोग्राम समुद्र जल द्वारा अभिव्यक्त किये जाते हैं; यानि प्रति सहस्रांश या प्रति मिल्ले (Mille) इकाई के अंशों में, जिनके लिये ‰ का चिन्ह काम में लिया जाता है।

क्लोरीनता—रजत नाईट्रेट से अनुमापन पर ब्रोमाइड और आयोडाइड, क्लोराइड के साथ-साथ अवक्षेपित हो जाते हैं परन्तु संगणना में यह मान लिया जाता है कि ये क्लोराइड ही हैं। इसलिये क्लोरीनता को प्रारम्भ में इस प्रकार परिभाषित किया था—यदि यह मान लिया जाय कि क्लोरीन ने ब्रोमीन और आयोडीन को प्रतिस्थापित किया है तो एक किलोग्राम समुद्र जल में स्थित क्लोरीन, ब्रोमीन और आयोडीन की ग्राम में कुल मात्रा। यह परिभाषा एक क्लोरीन-तुल्यांक की शुरुआत करती है जो मानक विलयन को तैयार करने के लिये काम में लिये जाने वाले परमाणु-भार पर आश्रित रहती है। अन्तर्राष्ट्रीय आयोग के कार्य की शुरुआत के समय से परमाणु भार के मूल्यों में काफी परिवर्तन होते रहे हैं और ऊपर परिभाषित लवणता और क्लोरीनता का सम्बन्ध वस्तुतः ठीक नहीं है। इस सम्बन्ध को कायम रखने के लिये और समृद्र जल की क्लोरीनता में आभासी परिवर्तनों से बचने के लिये भाग्यवश क्लोरीनता को फिर से परिभाषित करना सम्भव हो गया जिससे यह परमाणु भार में परिवर्तनों से मुक्त हो जाय।

क्लोरीनता के निर्धारण में उपयोग किया गया मुख्य मानक तथाकथित् 'सामान्य जल' (नार्मल वाटर) है जिसे कोपेन हेगन, डेनमार्क की जल सर्वेक्षण सम्बन्धी प्रयोगशालाओं ने तैयार किया और जो तमाम समुद्र विज्ञान संस्थाओं को वितरण किया गया। इन संस्थाओं में से कुछ ने सामान्य जल की मदद से अपने गौण मानक तैयार किये। विश्व की परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप "सामान्य जल" को तैयार करने का कार्य वूडस होल की समुद्र विज्ञान संस्था ने अस्थायी रूप से लिया है।

सामान्य जल समुद्र जल है जिसकी क्लोरीनता लगभग 19.4‰ समंजित की गयी है और 1902 में तैयार किये गये प्रारम्भिक मानक से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में तुलना करके सही-सही ज्ञात की गयी है। इसलिये सभी वर्गों की क्लोरीनताएँ

परमाणु भार में परिवर्त्तनों से स्वतंत्र रहती हैं। सन् 1937 में तैयार किया गया एक नया मुख्य मानक, युरनोरमल (Urnormal 1937) सामान्य वितरण के लिये 'सामान्य जल' के भावी वर्गों की क्लोरीनता संस्थापन के लिये काम में लिया जायगा जेकबसन और नुडसन (Jacobson and Knudsen 1940) 'सामान्य जल' की पूर्व श्रेणियों से तुलना करने से पता चला कि नये मानक की क्लोरीनता 19.381‰ होनी चाहिये। चूंकि एक अति निरपेक्ष विधि 'सामान्य जल' के उपक्रम की जांच करने के लिये उपलब्ध होनी चाहिये जिसके लिये 1937 के मुख्य मानक को परमशुद्ध 'परमाणु भार रजत' काम में लेकर विश्लेषित किया गया। हेलाइड्स को अवक्षेप करने के लिये रजत के तुल्यांक की आवश्यक मात्रा मालूम की गयी और रजत और क्लोरीनता का अनुपात 0.3285233 पाया गया। इसके आधार पर क्लोरीनता की एक नयी परिभाषा निकाली गयी: एक किलोग्राम समुद्र जल के नमूने में ग्राम में क्लोरीनता बताने वाली संख्या 'परमाणु-भार रजत' के ग्राम में भार की उस संख्या के समरूप होती है जो 0.3285233 कि० ग्राम समुद्र जल के नमूने में हेलोजन को अवक्षेप करने के लिये यथोचित आवश्यक होती है। इस नयी परिभाषा ने क्लोरीनता को परमाणु भार में परिवर्तनों से बिल्कुल स्वतन्त्र कर दिया जबकि मूल परिभाषा के अनुसार क्लोरीन तुल्यांक में, परमाणु भारों के उपान्तरित होने पर किंचित हेर-फेर हो सकता है। क्लोरीनता और लवणता का आनुभविक संस्थापित सम्बन्ध (3.1) मान्य रहता है और क्लोरीनता की नई परिभाषा के अनुसार वह सम्बन्ध परमाणु भारों में उपान्तरण से कभी भी प्रभावित नहीं होगा।

सन् 1940 के परमाणु भारों (Ag=107.880 और Cl=35.457) का उपयोग करने से रजत और क्लोरीन का अनुपात 0.3286707 है। इसलिये क्लोरीन-तुल्यांक और क्लोरीनता का अनुपात $\frac{0.3286707}{0.3285233}=1.00045$ है। किसी निश्चित क्लोरीनता वाले समुद्र जल की रासायनिक संविरचना की संगणना करते समय यह अनुपात महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि सूचित क्लोरीनता से क्लोरीन-तुल्यांक बड़ा होगा। जब क्लोराइड के मानक घोल तैयार करने हो अथवा समुद्र जल में हैलाइड अंशों को प्रत्यक्ष भारात्मक विश्लेषण से मालूम करने हो तब भी इस अनुपात का विचार करना चाहिये। यह देखने योग्य है कि किस निकटता से यह अनुपात परमाणु भारों के उपान्तरण से जो परिवर्तन प्रत्याशित हैं उनके अनुरूप होता है। जेकबसन और नुडसन (Jacobson and Knudsen 1940) के अनुसार इस उपान्तरण का विचार करने के लिये 'सामान्य जल' की सूचित क्लोरीनता में 0.0094‰ की वृद्धि कर देनी चाहिये। इस प्रक्रिया से क्लोरीन तुल्यांक और क्लोरीनता का अनुपात 1.000485 हो जाता है जो कि ऊपर दिये गये अनुपात के काफी निकट है।

जब समुद्र जल के रासायनिक अध्ययन का विवरण देते समय सामान्यतया अन्य पदार्थ मालूम किये जाते हैं और आयतन के आधार पर प्रतिवेदित किये जाते हैं तब क्लोरोसीटी (*Cl*) का पुरःस्थापन करना सुविधा जनक होता है (Inter. Assn. Phy. Oceanogr, 1939) जो कि ग्राम प्रति 20°—लिटर (3.2) में अभिव्यक्त की गयी क्लोरीनता के अनुरूप गुणधर्म है। पानी के नमूने की क्लोरीनता को उसकी 20° पर घनत्व से गुणा करने से क्लोरोसीटी प्राप्त हो जाती है। सारणी 8 में 15.00‰ और 21.00‰ के बीच की क्लोरीनता के अनुरूप क्लोरोसीटी के मान दिये गये हैं।

रजत-नाईट्रेट से अनुमापन करने के सिवाय लवणता प्राप्त करने की विधियां

किसी दिये गये ताप पर पानी के नमूने के घनत्व से भी लवणता मालूम की जा सकती है अथवा विद्युत् चालकता या वर्तनांक को मापने से मालूम की जा सकती है, क्योंकि ये दोनों ही लवणता पर निर्भर रहते हैं। इन गुणधर्मों के लक्षण का वर्णन नीचे दिया जायगा परन्तु लवणता को मालूम करने के लिये उनके विनियोग का संक्षेप में यहां वर्णन किया जायगा।

घनत्व का निर्धारण समुचितरूप से लवणता निकालने की विधियों में शामिल किया गया है क्योंकि इस प्रकार के निर्धारण आमतौर से वायुमण्डलीय दाब और कमरे के ताप पर किये जाते हैं और इस प्रकार उस इलाके के, जहां पानी का नमूना इकट्ठा किया गया था, घनत्व से भिन्न होगा, किन्तु इस प्रकार प्रेक्षित घनत्व से 0° से.ग्रे. पर घनत्व संगणित किया जाता है और इस पश्चादुक्त से लवणता, नुडसन के जल-लेखा चित्रीय सारणियों (3.3) की मदद से निकाली जा सकती हैं। घनत्व के निर्धारण कदाचित ही किये जाते है चूंकि ये मुश्किल है और क्लोरीनता अनुमापन में प्राप्त परिशुद्धता, जोकि लगभग ±0.00001 है, की तुलना में परिशु-

सारणी 8

क्लोरीनताओं और क्लोरोसिटीज़ के तद्नुरूपी मूल्य

क्लोरीनता ‰	15.00	16.00	17.00	18.00	19.00	20.00	21.00
क्लोरोसीटी g/L	15.28	16.32	17.37	18.41	19.46	20.51	21.57
अन्तर	0.28	0.32	0.37	0.41	0.46	0.51	0.57

द्धता प्राप्त करने में बहुत समय खर्च होता है। काम में ली गयी विधियां दो समूहों में वर्गीकृत की जा सकती है। एक में, किसी निश्चित ताप पर पानी के ज्ञात आयतन की संहति ठीक ठीक मालूम की जाती है जैसे घनत्वमापी बोतल की सहायता से। दूसरे समूह में किसी प्रकार का द्रवघनत्वमापी या समतलक काम में लिया

जाता है और घनत्व द्रवघनत्वमापी के भार और विस्थापित जल के आयतन से संगणित किया जाता है। सावारण आकृति का स्तम्भ द्रवघनत्वमापी आमतौर पर पर्याप्त परिशुद्ध नहीं होता है, सिवाय इसके कि जब तटीय-जल का वर्णन करना हो जहां घनत्व में अत्यधिक भिन्नताऐं कम दुरियों में पाई जाती हों। हेन्स पेटरसन् (Hans Petterson, 1929) का शृंखला-द्रवघनत्वमापी वृहत् परिशुद्धता देता है किन्तु इच्छायोग्य परिशुद्धता नहीं होती। नानसन (Nansen, 1900) ने एक पूर्ण निमज्जन द्रवघनत्वमापी बनाया जो कि बहुत सुग्राही है परन्तु इसे कम से कम 30 मिलीलीटर पानी का नमूना चाहिये। छोटे बाटों के रखने या हटाने से उत्पलावकता को समंजित किया जाता है जब तक कि द्रवघनत्वमापी पानी के नमूने के अन्दर न तो डूबता है और न ही ऊपर उठता है, इस नमूने का ताप $\pm 0.02°$ तक मालूम होना चाहिये। एक दूसरे प्रकार के यन्त्र में एक सिंकर का उपयोग होता है जो एक नाजुक रासायनिक तुला की एक भुजा से पानी के नमूने में निलम्बित रहता है कमीन्ग्स, (Cummings 1932). पानी के नमूने में सिंकर का 'भार' किसी ज्ञात ताप पर निकाला जाता है और उससे घनत्व संगणित किया जा सकता है। तमाम दृष्टान्तों में इस प्रकार के निर्धारण का प्रयत्न करने से पहले अनेक संशोधन करने चाहिये और मूल स्रोतों को देखना चाहिये। थाम्पसन (Thompson, 1932) ने विधियों का कुछ विस्तार में उल्लेख किया है और उन्होंने कई हवाले दिये हैं।

विद्युत् चालकता के मापों को, जहाज 'कार्नेगी' पर और अमेरिका के कोस्ट गार्ड द्वारा लवणता मालूम करने की सामान्य विधि की तरह काम में लिया गया है। आयन की सापेक्षिक उच्च सांद्रता और चालकता पर ताप के प्रभाव के कारण उपकरण और नियोजित तकनीक किंचित जटिल होते हैं। वेनर, स्मिथ, और सौले (Wenner, Smith, and Soule, 1930) सौले, (Soule, 1932)। समुद्र जल के नमूनों की "ज्ञात लवणता" (रजत नाईट्रेट द्वारा 'सामान्य' जल के विरुद्ध अनुमापन कर निकाली गयी) को प्रयोग कर ये यन्त्र आनुभविकता से मानंकित किये जाते हैं, और अज्ञात नमूनों के मान अन्तर्वेशन द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। समुचित परिशुद्धता के परिणामों को पाने के लिये चालकता सैलों के ताप के नियन्त्रण में असीम सावधानी रखनी चाहिये, और प्रतिरोध को बहुत ठीक ठीक मापना चाहिये। समुद्र जल के विद्युत् चालकता मापन के लिये उपयोग किये गये एक प्रकार के परिपथ का सरल किया हुआ आरेख चित्र 12 में दिखाया गया है। A और B दो समान विद्युत् विश्लेपी सैल को निरूपित करते हैं। अज्ञात नमूने के लिये काम में लिये गये सैल B के श्रेणी बद्ध एक परिवर्तनशील प्रतिरोधक R है। A में ज्ञात क्लोरीनता का समुद्र जल होता है या लगभग उतनी ही चालकता का पोटासियम क्लोराइड का मानक घोल होता है। C और D निश्चित प्रतिरोधक हैं और S एक स्लाइड-वायर प्रतिरोधक है। H प्रत्यावर्ती धारा का एक स्रोत है जिसकी आवृति लगभग 0.5 से 1.0

वोल्ट तक के विभव पर, 600 से 1000 साइकल प्रति सेकण्ड के बीच होती है। T 'टेलीफोन-चोंगा' को निरूपित करता है जो सेतु संतुलन स्थापित करने के लिये काम में लिया जाता है।

चित्र 12 समुद्र जल की लवणता मालूम करने हेतु विद्युत चालकता मापने के लिए परिपथ प्रतीक मूलपाठ में स्पष्ट कर दिये गये है।
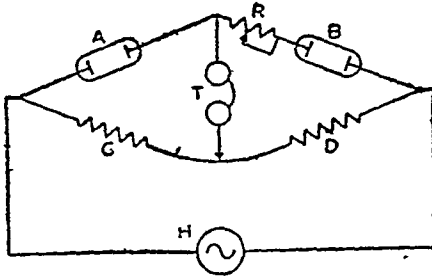
ताप के थोड़े प्रभावों का निरसन करने के लिये दो सैलों का उपयोग किया जाता है। परिपथ के विस्तार पूर्वक विवरण के लिये ऊपर उल्लेखित हवालों को देखना चाहिये।

थॉमस, थाम्पसन और उट्टरबेक (Thomas, Thompson and Utterback 1934) के अनुसार ग्रीनेल जॉन्स के चालकता सेतु को वाशवर्न के पिपेट के समान सैलों के साथ उपयोग में लिया जा सकता है, जिसके स्थिरांक पोटासियम क्लोराइड के मानक घोलों से निकाले जाते हैं।

समुद्र जल का वर्तनांक, जिसका विस्तारपूर्ण विवरण वाद में दिया जावेगा, समुद्र में पाई जाने वाली लवणता और ताप की परास में केवल थोड़ा ही वदलता है, परन्तु व्यतिकरण मापी से वर्तनांक में परिवर्तन परम परिशुद्धता से नापा जा सकता है। किसी दिये हुए ताप पर इस प्रकार के परिवर्तन केवल लवणता पर निर्भर रहते हैं और इसलिये ज्ञात लवणता के पानी को मानक मानकर अप्रत्यक्ष रूप से लवणता मालूम करने के लिये विशेप प्रकार के व्यतिकरण मापी बनाये गये हैं। चूंकि वर्तनांक तरङ्ग दैर्घ्य के साथ बदलता है इसलिये एकवर्णी प्रकाश काम में लेना चाहिये। लवणता निकालने की यह विधि विस्तृता से काम में नहीं लाई गयी है।

ताप, लवणता और दाव की इकाइयाँ और समुद्र में उनकी परास

समुद्र विज्ञान में ताप सेन्टीग्रेड अंशों में मापा जाता है। काम में लिये जाने वाले थर्मामीटर का वर्णन अध्याय X (3.4) में किया गया है। माप की परिशुद्धता लगभग $\pm 0.02°C$ होती है। लवणता ग्राम प्रति समुद्र जल के किलोग्राम में व्यक्त की जाती है अर्थात् प्रति सहस्त्र या प्रति मिल्ले के अंशों में व्यक्त की जाती है जिसके लिये $\%_0$ का चिन्ह काम में लिया जाता है। $\pm 0.02\%_0$ की परिशुद्धता आवश्यक है। दाव (3.5) एटमासफियर में या से. ग्रा. से. पद्धति की इकाइयों में मापा जाता है। पारे के 760 मि.मी. ऊँचे स्तम्भ का 0° से. ग्रे. ताप पर 980.665 से.मी. प्रति वर्ग से. गुरुत्व

जनित त्वरण वाले स्थान के एक वर्ग से. मी. पर जितना दाव होता है उसे एक एटमासफियर कहते है। रासायनिक समुद्र विज्ञान में एक सम्वन्धित इकाई, टोर्र काम में ली जाती है जो कि एक वर्ग से. मी. पर एक मि. मी. ऊँचे पारे के स्तम्भ का 0° से. ग्रे. ताप पर दाव के वरावर होता है। इस स्थान पर भी गुरुत्व जनित त्वरण उतना ही हो जितना ऊपर दिया गया है। से.ग्रा.से. पद्धति में दाव की इकाई डाइन प्रति वर्ग से. मी. है और एक एटमासफियर 1.0133×10^6 डाइन प्रति वर्ग से. मी. के वरावर होता है। वी. ब्जेरकनीज ने दस लाख डाइन प्रति वर्ग से. मी. को एक वार से नामोदिष्ट किया था। भौतिक समुद्र विज्ञान में तदनुरूपी व्यवहारिक इकाई एक डेसीवार है जो कि 0.1 वार के वरावर होता है। समुद्र जल की एक मीटर ऊँचाई का प्रति वर्ग से. मी. पर दाव लगभग एक डेसी वार के वरावर होता है; यानी समुद्र में तरल स्थैतिक दाव सन्निकटत: प्रत्येक एक मीटर की गहराई पर एक डेसीवार से वढ़ता है। इसलिये मीटर में गहराई और डेसीवार में दाव लगभग समान संख्यात्मक मान से अभिव्यक्त किये जाते हैं। जल के भौतिक गुणधर्मो पर दाव का प्रभाव मालूम करने के लिये यह नियम पर्याप्तक परिशुद्ध है परन्तु दाव वितरण के विवरण घनत्व वितरण से अभिगणित करने चाहिये (3.6)।

महासागरों में ताप लगभग $-2°$ से $+30°$ से. ग्रे. के वीच में होता है। अव: सीमा वर्फ के वनावट से मालूम की जाती है; और विकीरण प्रक्रिया और ऊष्मा का वायु-मण्डल से (3.7) विनिमय द्वारा ऊपरी सीमा मालूम की जाती है। भू-सीमित क्षेत्रों में सतह ताप उच्च हो सकता है परन्तु खुले महासागरों में यह कदाचित ही 30° से.ग्रे.से अधिक होता है।

महासागरों में लवणता साधारणतया 33‰ और 37‰ के वीच में होती है। उच्च अक्षांशों में, उच्च वृष्टि वाले क्षेत्रों में, और जहाँ कहीं नदियों से तनुता हुई हो, सतह लवणता वहुत कम होती है और वोथनिया की खाड़ी के समान कुछ अर्ध परिवेष्ठित क्षेत्रों में तो लवणता शून्य तक पहुँच सकती है। मध्यवर्ती अक्षांशों के लाल सागर जैसे एकाकी समुद्रों में, जहाँ वाष्पन अत्यधिक होता हो, लवणता 40‰ या अधिक तक पहुँच सकती है। चूंकि खुले महासागरों की परास किंचित कम होती है, इसलिये 35‰ को सभी महासागरो के लिये औसत लवणता की तरह काम में लेना कभी-कभी सुविधाजनक हो जाता है। समुद्र जल के रासायनिक अध्ययन के अध्याय में पानी की 19.00‰ क्लोरीनता; यानी 34.325 लवणता के लिये सारणीकरण किया गया है।

महासागरों में दाव से सम्वन्धित वर्णन करते समय वायुमण्डलीय दाव की सदैव उपेक्षा की जाती है और समुद्र के पृष्ठ पर दाव को शून्य अंकित किया जाता

है। चूंकि दाव विशेपकर गहराई का फलन होता है और 'डेसीवार में संख्यात्मक मान लगभग मीटर में गहरायों के वरावर होता है इसलिये दाव की परास समुद्र के पृष्ठ पर शून्य से लेकर महासागरों के वहुत गहरे भागों में 10,000 डेसीवार से अधिक तक होगी।

महासागरों में ताप और लवणता के वितरण के लक्षण के कारण इन स्थितियों और दाव के वीच में कुछ सम्वन्ध होते हैं। महासागरों के गहरा और पैंदीय जल का ताप सदैव निम्न होता है, जो 4° और —1° से. ग्रे. के वीच में परिवर्ती होता है, जिससे निम्न ताप से उच्च दाव संगुणित रहते हैं। इसी प्रकार गहरे और पैंदे जल की लवणता वहुत ही संकीर्ण सीमाओं, 34.6‰ से 35‰, में वदलती रहती है, और इसलिये उच्च दाव इन सीमाओं के वीच की लवणता से संगुणित होते हैं। मध्यवर्त्ती अक्षांशों के भूमध्यसागर और लाल समुद्र जैसे एकाकी समुद्रों में अपवाद पाये जाते हैं जहाँ उच्च ताप तथा अति लवणता का पानी वृहत् गहराइयों में पाया जाता है और इसलिये जहाँ पर पानी का दाव वहुत अधिक होता है।

समुद्र जल का घनत्व

किसी पदार्थ के इकाई आयतन की संहति को उस पदार्थ का घनत्व कहते हैं। इस प्रकार, से. ग्रा. से. पद्धति में घनत्व ग्राम प्रति घन सेन्टीमीटर में लिखा जाता है। किसी पदार्थ के घनत्व और किसी दिये गये ताप और वायुमण्डलीय दाव पर आसुत जल के घनत्व के अनुपात को उस पदार्थ का आपेक्षिक गुरुत्व कहते हैं। से. ग्रा. से. पद्धति में आसुत जल का 4° से. ग्रे. पर घनत्व 'एक' होता है। समुद्र विज्ञान में आपेक्षिक गुरुत्व के लिये आज कल सदैव 4° से.ग्रे. पर आसुत जल का हवाला दिया जाता है और इसलिये यह संख्यात्मक रूप से घनत्व के समरुप होता है। समुद्र विज्ञान में घनत्व शब्द का आमतौर से उपयोग किया जाता है, यद्यपि वस्तुत: आपेक्षिक गुरुत्व का ही सदैव विचार किया जाता है।

समुद्र जल का घनत्व ताप, लवणता और दाव, इन तीन चरों पर निर्भर रहता है। घनत्व को $\rho_{s,\theta,p}$, प्रतीक द्वारा निर्दिष्ठ कर इन चरों को निदर्शित किया जाता है, परन्तु जव संख्यात्मक मान से सम्वन्ध रखना हो तो $\sigma_{s,\theta,p}$ को पुर:स्थापन कर स्थान वचाया जाता है जिसे इस प्रकार से परिभाषित किया जाता है,

$$\sigma_{s,\theta,p} = (\rho_{s,\theta,p} - 1)\ 1000$$

इस प्रकार यदि $\rho_{s,\theta,p} = 1.02575$ तो $\sigma_{s,\theta,p} = 25.75$ है।

किसी ताप और दाव पर इकट्ठा किया गया समुद्र-जल नमूने के घनत्व $\rho_{s,\theta,p}$, को स्वस्थान का घनत्व कहते हैं और आमतौर पर $\sigma_{s,\theta,p}$, से अभिव्यक्त किया

जाता है। वायुमण्डलीय दाव और θ° से. ग्रे. ताप पर तदनुरूपी राशि को साधारणतया σ_t लिखा जाता है और इसी को 0° से. ग्रे. पर σ_0 लिखा जाता है। प्रतीक θ ताप के लिये ही काम में लिया जावेगा किन्तु जब σ_t लिखा जाय तो सामान्य कार्य प्रणाली के अनुसार, t ताप को सूचित करेगा।

वायुमण्डलीय दाब और 0° से. ग्रे: ताप पर घनत्व केवल लवणता का फंक्शन होता है, या, चूंकि लवणता और क्लोरीनता में एक साधारण सम्बन्ध होता है इसलिये घनत्व को क्लोरीनता का फंक्शन माना जा सकता है। लवणता और क्लोरीनता के बीच में सम्बन्ध जिस अन्तर्राष्ट्रीय आयोग ने मालूम किया और जिसने अनुमापन द्वारा क्लोरीनता मालूम करने की मानक तकनीक तैयार की उसी आयोग ने घनत्वमापी को काम में लेकर समुद्र जल का 0° से.ग्रे. पर उच्च कोटि की यथार्थता का घनत्व भी मालूम किया। इस निर्धारण से σ_0 और क्लोरीनता के बीच निम्नलिखित सम्बन्ध व्युत्पन्न किया गया—

$$\sigma_0 = -0.069 + 1.4708\ Cl - 0.001570\ Cl^2 + 0.0000398\ Cl^3.$$

क्लोरीनता, लवणता और σ_0 के तदनुरुपी मान नुडसन के जल ग्राफीय सारणियों में प्रत्येक 0.01 ‰ Cl के लिये दिये गये हैं।

समुद्र जल का घनत्व अन्य ताप और दाव पर मालूम करने के लिये, तापीय प्रसरण और संपीड्यता का घनत्व पर प्रभाव ज्ञात होना चाहिये। तापीय प्रसरण गुणांक वायुमण्डलीय दाव पर प्रयोगशाला में निकाला गया है और इस निर्धारण के अनुसार वायुमण्डलीय दाव और 0° पर घनत्व निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है

$$\sigma_t = \sigma_0 - D$$

राशि D को ताप और σ_0 का एक जटिल फंक्शन की तरह व्यक्त किया जाता है और यह नुडसन के जल ग्राफीय सारणियों में सारणीबद्ध की गई है। चूंकि σ_t के मान परिवर्तनात्मक समुद्र विज्ञान में बहुतायत से काम में आते हैं इसलिये मेकइवेन्. (Mc Ewen, 1929) और मेथ्यूस (Matthews 1932) ने लवणता और ताप से σ_t को सीधे अभिगणित करने की सारणियां बनाई। इसी प्रकार के प्रयोजन के लिये सुन्ड, (Sund, 1929) ने एक विशेष प्रकार का स्लाइड-रूल तैयार किया। नुडसन की सारणियों में भी D को σ_t और ताप के फंक्शन की तरह सारणीबद्ध किया गया है जिसकी सहायता से σ_0 निकाला जा सकता है यदि σ_t ज्ञात हो $(\sigma_0 = \sigma_t + D)$। यह सारणी उस पानी के नमूने की लवणता मालूम करने में उपयोगी है जिसका घनत्व प्रत्यक्षरूप से किसी ज्ञात ताप पर मालूम किया गया हो (3.8)।

भिन्न भिन्न ताप और दाव पर और विभिन्न लवणता के समुद्र जल की संपीड्यता के घनत्व पर प्रभाव की जांच एक्मेन (Ekman 1908) ने की थी जिसने O

और p डेसीवार के बीच दाव की माव्य संपीड्यता के लिये एक जटिल आनुभविक सूत्र स्थापित किया (वी. ब्जेरक्नीज् आर सैन्डस्ट्राम, V. Bjerknes and Sandstrom, 1910 में उद्धृत)। इस सूत्र से शुद्धियां संगणित की गई जिनके σ_t में जोड़ देने से किसी दाव पर $\sigma_{s,\theta,p}$ प्राप्त हो जाता है।

स्वस्थाने घनत्व और विशिष्ट आयतन की अनिगणना : जिन सारणियों से स्वस्थाने घनत्व, $\rho_{s,\theta,p}$, लवणता, ताप और दाव, से पर्याप्त अन्तराल पर सीधे निकाला जा सकता है ऐसी सारणियाँ वहुत स्थान लेंगी परन्तु विभिन्न युक्तियों से सुविधाजनक सारणियाँ तैयार की गई हैं। ब्जेरक्नीज और सेन्ड स्ट्रोम की प्रक्रिया के अनुसार $\rho_{s,\theta,p}$ को निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है

$$\rho_{s,\theta,p} = \rho_{35,0,0} + \varepsilon_s + \varepsilon_\theta + \varepsilon_{s,\theta} + \varepsilon_p + \varepsilon_{s,p} + \varepsilon_{\theta,p} + \varepsilon_{s,\theta,p}.$$

शुरू के चार पदों को σ_t से व्यक्त किया जा सकता है जो ऊपर दी गई विधियों द्वारा आसानी से निकाला जा सकता है और शेष पद संपीड्यता के प्रभाव को निरूपित करते हैं। घनत्व से सम्बन्धित विवरण करते समय यह वांछनीय हो जाता है, जिनके कारणों की व्याख्या बाद में की जावेगी (3.9), कि दाव p के बजाय गत्यात्मक गहराई D को एक स्वतन्त्र चर की तरह पुरःस्थापन किया जाय और निम्न सूत्र लिखा जावे

$$\rho_{s,\theta,D} = 1 + 10^{-3}\sigma_t + \varepsilon_D + \varepsilon_{s,D} + \varepsilon_{\theta,D} + \varepsilon_{s,\theta,D}.$$

इस समीकरण में t वाले पद ब्जेरक्नीज और सेन्डस्ट्रोम (Bjerknes & Sandstrom 1910) और हेसलवर्ग और स्वेरड्रप, (Hesselberg and Sverdrup 1914) द्वारा सारणीवद्ध किये गये हैं।

गत्यात्मक समुद्र विज्ञान में घनत्व $\rho_{s,\theta,p}$ के बजाय इसका व्युत्क्रम मान, स्वस्थाने आपेक्षिक आयतन $\alpha_{s,\theta,p}$ का आमतौर से उपयोग किया जाता है। एक भारी संख्या में दशमलव विन्दु लगाने से वचने के लिये आपेक्षिक आयतन को साधारणतया एक असंगति δ की तरह व्यक्त किया जाता है जिसे निम्न प्रकार से परिभाषित किया जाता है

$$\delta = \alpha_{s,\theta,p} - \alpha_{35,0,p},$$

जिसमें $\alpha_{35,0,p}$, P डेसीवार दाव और 0.° से० ग्रे० ताप पर 35‰ लवणता के पानी का आपेक्षिक आयतन है। असंगति ताप, दाव और लवणता पर निर्भर रहती है इसलिये इसे निम्न प्रकार से अभिव्यक्त किया जा सकता है

$$\delta = \delta_s + \delta_\theta + \delta_{s,\theta} + \delta_{\theta,p} + \delta_{s,\theta,p},$$

यह विदित होना चाहिये कि परिभाषा से असंगति में पद δ_p नहीं है जो कि 0° से० ग्रे० ताप और 35‰ लवणता पर दाव का प्रभाव निरूपित करता है।

इसका कारण अध्याय XII (3.10) में दिया गया है। उपरोक्त पदों में से अन्तिम पद $\delta s, \theta, p$ इतना छोटा होता है कि इसे हमेशा छोड़ा जा सकता है। इस प्रकार δ को मालूम करने के लिये पांच पद चाहियें और इनको ब्जेरक्नीज और सेन्डस्ट्रोम ने सारणी बद्ध किये थे। यदि σ_t की पहले से ही अभिगणना हो चुकी हो तो जो पद दाब पर निर्भर नहीं रहते हैं उन सभी को एकत्रित कर $\Delta s,\theta$ की तरह लिखा जा सकता है स्वेरड्रूप (Sverdrup, 1933).

$\Delta s,_\theta = \delta^s + \delta_\theta + \delta s,_\theta$ का मूल्य σ_t से आसानी से निकाला जा सकता है क्योंकि

$$\alpha s,_{\theta},{}_o = \frac{1}{\rho s,_{\theta},{}_o} = 1 - \frac{10^{-3}\sigma t}{1+10^{-3}\sigma t}$$

और

$$\alpha s,_{\theta},{}_o = \alpha_{35,0,0} + \Delta s,_\theta = 0.97264 + \Delta s,_\theta$$

इसलिये

$$\Delta s,_\theta = 0.02736 - \frac{10^{-3}\sigma_t}{1+10^{-3}\sigma_t}$$

इस प्रकार व्यावहारिकता में

$$\delta = \Delta s,_\theta + \delta s,p + \delta_{\theta},p$$

इन तीनों पद के मान परिशिष्ठ में छोटी सारणियों में दिये गये हैं जिनसे किसी भी जल के नमूने का आपेक्षिक आयतन असंगति स्वस्थाने निकल सकता है जब कि उस नमूने का ताप, लवणता, σ_t और दाब ज्ञात हो। इन सारणियों में पदों के मान एक अतिरिक्त दशमलव तक दिये गये हैं जिससे अंकों के पूर्णांकन से उत्पन्न किसी त्रुटि संचय से वंचित रह सकें और ठीक-ठीक ग्राफ तैयार करने में भी सुविधा हो जाय जिन्हें सारणीकरण के बजाय काम में लिये जा सकें यानि ऐसी सारणियों का तैयार करना सुविधा जनक हो जाय जिनमें कोणांक इतने कम अन्तर पर होते हैं कि अन्तर्वेशन आसान या अनावश्यक हो जाता है।

घनत्व या स्वस्थाने आपेक्षिक आयतन निकालने के लिये जिस प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है वह निम्न प्रकार से संक्षेपित की जा सकती है। किसी दिये हुए पानी के नमूने के लिये ताप, लवणता और गहराई जहाँ से वह एकत्रित किया गया है, ज्ञात होनी चाहिये। कहीं और वर्णित कारणों से यह मान लिया जा सकता है कि दाब का डेसीबार में संख्यात्मक मान वही होता है जो गहराई का मीटर में होता है। ताप और लवणता से σ_t का मान नुडसन की सारणियों से प्राप्त किया जाता है या फिर इनसे तैयार किये गये ग्राफ या सारणियों से निकाला जाता है मेकइवेन (McEwen, 1929) मेथ्यूस, (Matthews, 1932)। σ_t, ताप, लवणता, और दाब से आपेक्षिक आयतन असंगति को परिशिष्ठ में दी गयी सारणियों द्वारा संगणित

किया जाता है। यदि आपेक्षिक आयतन के परम-मान की आवश्यकता हो तो असंगति को परिशिष्ठ में दिये गये $\alpha_{35,0},p$ के उचित मान में जोड़ देना चाहिये। इस सारणी में डेसीबार में विभिन्न दाव पर पानी का आपेक्षिक आयतन 35‰ और 0° से. ग्रे. पर दिया होता है तव स्वस्थाने निरपेक्ष घनत्व आपेक्षिक आयतन के व्युतक्रम की तरह निकाला जा सकता है।

स्वस्थाने आपेक्षिक आयतन की संगणना करने के लिये सारणियों का एक दूसरा समूह मेथ्यूस (Matthews, 1938) ने तैय्यार किया और जो हमारी अंकन पद्धति में असंगति को इस प्रकार परिभाषित करते हैं $\delta' = \alpha_{s,\theta,p} - \alpha_{34\ 85\ op}$, इस प्रकार वह असंगतियों को जल की 34.85‰ लवणता जिसके लिये $\sigma_0 = 28.00$ है, से उल्लेख करता है। $\delta - \delta' = \sigma_{34\ 85,o,p} - \alpha_{85,o,p}$, यह अन्तर दाव पर निम्न प्रकार से निर्भर रहता है :

डेसीवार में दाव	O	2000	400	6000	8000	10,000
$(\delta - \delta', \times 10^5$	12.0	11.5	11.1	10.7	10.4	10.1

भिन्न भिन्न रिपोर्ट में प्रकाशित आपेक्षिक आयतन असंगतियों के संख्यात्मक मान की तुलना करने से पहले यह ज्ञात होना आवश्यक होता है कि रिपोर्ट किये गये मान किन सारणियों पर आधारित हैं।

नुडसन की जल ग्राफ़ीय सारणियों का उपयोग

नुडसन की जल ग्राफीय सारणियों के उपयोग के विषय में एक विशेष वात ध्यान में रखनी चाहिये। यद्यपि यह वताया गया है कि समुद्र जल की सामान्य सांद्रता की सीमा तक ये वहुत अच्छी तरह से मान्य होते हैं फिर भी ये अति सांद्र या अति तनुकृत जल के लिये आवश्यक रूप से मान्य नहीं होते हैं। विभिन्न खण्डों से एकत्रित क्रमवद्ध नमूनों की सावधानी पूर्वक की गई परीक्षा पर ये सारणियाँ आधारित हैं। काम में लिये गये तनुकृत जल के नमूने वाल्टिक समुद्र से लिये गये थे जहाँ तनुता कभी-कभी क्लोरीनता को लगभग 1‰ तक घटा देती और जहाँ पर नदी का जल जो मुख्य रूप से तनुता के लिये जिम्मेदार होता है, उसमें अपेक्षाकृत ज्यादा ठोस पदार्थ घुले हुए होते हैं। इस वात का पता इस तथ्य से चलता है कि जो समीकरण क्लोरीनता और लवणता के लिये है वह शून्य क्लोरीनता के लिये 0.03‰ लवणता वताता है और लायमन और फ्लेमिंग, (Lyman and Fleming, 1940) के अनुसार इस अंक के तदनुरूपी घुले हुए तमाम ठोस पदार्थो का मान लगभग 0.07‰ क्रम का है। इस प्रकार समुद्र जल की लवणता आनुभविकता से निम्न प्रकार के समीकरण द्वारा व्यक्त की जा सकती है—

$$S = a + b\text{Cl},$$

जिसमें a का संख्यात्मक मान इस सम्बन्ध को स्थापित करने के लिये काम में लिये गये तनुकृत जल के नमूनों के संघटन पर निर्भर रहता है। यदि उच्च लवणता S के एक किलोग्राम जल को n किलोग्राम आसुत जल मिलाकर तनुकृत किया जाय तो तनुता की लवणता $S_D = S/(n+1)$ होगी और तनुकृत नमूने की क्लोरीनता $Cl/(n+1)$ होगी। तो भी, नुडसन की सारणियों के अनुसार इस नमूने की लवणता $S_k = a + b\,Cl/(n+1)$ है, इसका और वास्तविक लवणता का अन्तर $S_k - S_D = a[n/(n+1)]$ जिसका अर्थ है कि, यदि तनुता के पश्चात क्लोरीनता अनुमापन द्वारा निकाली जाय और लवणता नुडसन की सारणियों से ली जाय तो इस अन्तर का मान बहुत ऊँचा होगा। इसीलिये नुडसन की सारणियों से घनत्व का मान भी ऊँचा होगा। उदाहरणार्थ, हम मानलें कि 35‰ लवणता और 19.375‰ क्लोरीनता का एक किलोग्राम पानी 9 किलोग्राम आसुत जल के मिलाने से तनुकृत किया जाता है जिससे क्लोरीनता घट कर 1.938‰ हो जाती है। नुडसन की सारणियों से इस क्लोरीनता के लिये 3.53‰ लवणता होगी जब कि वास्तविक लवणता 3.50 होगी। इसी प्रकार नुडसन की सारणियों में σ_0 का मान 2.78 के बराबर होगा जबकि इसका वास्तविक मान 2.75 होना चाहिये। इसलिये कम सांद्रता पर, प्रत्यक्ष घनत्व निर्धारण से संगणित क्लोरीनताएँ और विलोमत:, त्रुटिपूर्ण हो सकती हैं। उदाहरण के लिये द्रवीकृत जल से लिये गये घनत्व के माप से संगणित समुद्र जल की क्लोरीनताएँ अनुमापन द्वारा मालूम की गयी क्लोरीनताओं से समंजस पूर्वक कम थी (3.11) और इस स्थिति में तनुता के लिये जल, विशेष कर आसुत जल था। प्राकृतिक या प्रयोग शालाओं में तैय्यार परम तनुकृत जल के लिये Cl : S : घनत्व, सम्बन्धों का प्रतिबंधित विनियोग सदैव ध्यान में रखना चाहिये।

समुद्र जल के तापीय गुण धर्म

तापीय प्रसरण—तापीय प्रसरण गुणांक e जिसकी परिभाषा $e = \left(\frac{1}{\alpha_{s,\theta,p}}\right)\left(\frac{\delta\alpha_{s,\theta,p}}{\partial\theta}\right)$ है, वायुमण्डलीय दाब पर नुडसन की जल ग्राफीय सारणियों में D के पदों से निकाला जाता है और उच्च दाब पर एक्मेन के सूत्रों (3.12) या सारणियों से निकाला जाता है। गुणाँक का मान शुद्ध जल की अपेक्षा समुद्र जल के लिये अधिक होता है और दाब के बढ़ने पर बढ़ता है। कुछ संख्यात्मक मान सारणी 9 में दिये गये हैं जिसमें ऋण मान बढ़ते हुए ताप के साथ सिकुड़ने को सूचित करते हैं।

ऊष्मा चालकता—पानी में जिसमें ताप विन्यास में बदलता रहता है, ऊष्मा उच्च ताप वाले खण्डों से निम्न ताप वाले खण्डों में चालित होती है। ग्राम कैलोरी

सारणी 9

समुद्र जल का विभिन्न ताप, लवणता और दाब पर तापीय प्रसरण गुणांक

दाब (डेसीबार)	लवणता ‰	ताप (° से० ग्रे०)							
		—2	0	5	10	15	20	25	30
0 ..	0	—105	—67	17	88	151	207	257	303
	10	— 65	—30	46	112	170	222	270	315
	20	— 27	4	75	135	189	237	282	324
	30	7	36	101	157	206	250	292	332
	35	23	51	114	167	214	257	297	334
2,000...	35	80	105	157	202	241	278		
	40	94	118	168	210	248	283		
4,000...	35	132	152	196	233	266			
	40	144	162	204	240	272			
6000...	34.85	177	194	230					
8000...	,, ,,		231	246					
10,000...	,, ,,		276	287					

प्रति सैकण्ड में ऊष्मा की मात्रा जो कि 1 वर्ग से. मी. क्षेत्रफल के पृष्ठ से चालित होती है वह पृष्ठ के अभिलम्ब सीधी रेखा में प्रति से. मी. पर ताप के परिवर्तन के समानुपाती होती है और अनुपात का गुणांक γ ऊष्मा चालकता गुणांक कहलाता है $\left(\frac{dQ}{dt} = - \gamma\frac{d\theta}{d\eta}\right)$. शुद्ध जल के लिये 15° से. ग्रे. पर इस गुणांक का मान 1.39×10^{-3} के बराबर होता है। समुद्र जल के लिये गुणांक कुछ कम होता है और बढ़ते हुए ताप और दाब के साथ बढ़ता है। इस प्रकार यदि जल स्थिर है या अघूर्णीय गति में है केवल तब यह गुणांक मान्य होता है (3.13)। परन्तु महासागरों में जल लगभग सदैव ही विक्षुब्ध गति की अवस्था में होता है जिसमें ऊष्मान्तरण की प्रक्रिया पूर्णरूप से परिवर्त्तित हो जाती है इन परिस्थितियों में उपरोक्त ऊष्मा चालकता गुणांक को एक "भंवरीय" गुणांक से बदल देना चाहिये जो कि कई गुणा वृहत होता है और जो कि गति की अवस्था पर इतना निर्भर रहता है कि ताप और दाब के प्रभाव उपेक्षित किये जा सकते हैं (3.14)।

विशिष्ट ऊष्मा—किसी 1 ग्राम पदार्थ के ताप में 1° से. ग्रे. वृद्धि के लिये आवश्यक कैलोरी को विशिष्ट ऊष्मा कहते हैं। द्रवों का अध्ययन करते समय स्थिर दाब विशिष्ट ऊष्मा c_p सामान्यतः मापी जाती है परन्तु कुछ प्रश्नों के लिये स्थिर आयतन विशिष्ट उष्मा c_v भी ज्ञात होना चाहिये।

विभिन्न क्लोरीनताओं के समुद्र जल की विशिष्ट ऊष्मा का थाउलेट और शेवेलियर ने अनुसन्धान किया था जिनके परिणाम की पुनः गणना की गयी है और विभिन्न तरीकों से प्रस्तुत किये गये हैं। क्रुमेल, (Krümmel 1907) द्वारा दिये गये विशिष्ट ऊष्मा के मान 17.5° से. ग्रे. ताप और वायुमण्डलीय दाव पर निम्नलिखित हैं

S (‰)	0	5	10	15	20	25	30	35	40
c_p (Cal/gm)	1.000	0.982	0.968	0.958	0.951	0.945	0.939	0.932	0.926

कुवाहारा, (Kuwahara 1939) ने 0° से. ग्रे. और वायुमण्डलीय दाव पर विशिष्ट ऊष्मा के लिये निम्नलिखित आनुभविक समीकरण दिया :

$$c_p = 1.005 - 0.004136S + 0.0001098S^2 - 0.000001324S$$

यह स्पष्ट होगा कि विशिष्ट ऊष्मा लवणता के बढ़ने पर घटती है परन्तु क्रुमेल ने ऐसा सूचित किया कि घोल की संविरचना से आशान्वित प्रभाव से यह प्रभाव कुछ वृहत होता है, और समस्या की फिर से जांच की जाय। ताप और दाब के प्रभाव मापे नहीं गये हैं परन्तु यह मान लिया गया कि वे वही हैं जो शुद्ध जल के लिये होते हैं। एक्मेन्, (Ekman 1914) के द्वारा दिये गये निम्नलिखित मान हैं जो वायुमण्डलीय दाव पर S=34.85‰ वाले जल की विशिष्ट ऊष्मा पर ताप का प्रभाव बताते हैं :

θ° से. ग्रे.	−2	0	5	10	15	20
c_p	0.942	0.941	0.938	0.935	0.933	0.932.

एक्मेन, (Ekman 1914) ने विशिष्ट ऊष्मा पर दाव का प्रभाव निम्नलिखित समीकरण से संगणित किया है

$$\frac{dc_p}{dp} = -10^5 \frac{T}{\rho J}\left(\frac{de}{d\theta} + e^2\right)$$

जिसमें p डेसीवार में दाब है, T परम ताप है, ρ घनत्व, J ऊष्मा का यान्त्रिक

सारणी 10.

वायु मण्डलीय दाव और दाब p पर विशिष्ट ऊष्मा में अन्तर ($c_{p,o} - c_{p,p}$)

(सूचित ताप पर लवणता 34.85‰)

θ (°से. ग्रे)	p डेसीवार				
	2000	4000	6000	8000	10,000
—2	0.0171	0.0315	0.0435		
0	0.0159	0 0291	0.0401	0.0492	0.0566
5	0.0136	0.0248	0.0340	0.0416	0.0479
10	0 0120	0.0220			
15	0.0110	0.0203			
20	0.0105				

तुल्यांक और e तापीय प्रसरण गुणांक हैं। ताप और दाब का संयुक्त प्रभाव सारणी 10 में दिया गया है जिसमें $c_{p,o}$ वायुमण्डलीय दाब पर 34.85‰ लवणता वाले पानी की विशिष्ट ऊष्मा है। स्थिर आयतन विशिष्ट ऊष्मा, जो कि c_p से कुछ कम होती है, नीचे दी गई समीकरण द्वारा संगणित की जा सकती है :

$$c_v = c_p - \frac{Te^2}{\rho KJ}$$

जिसमें K वास्तविक संपीड्यता है (3.15) और दूसरे संकेतों की परिभाषा ऊपर दे दी गई है। मेथ्यूस (Matthews 1923) के अनुसार वायुमण्डलीय दाब पर S=34.85‰ वाले पानी के लिये $c_p : c_v$ का अनुपात 0° पर 1.000⁴ से 30° पर 1.0207 तक बढ़ जाता है। दाब का प्रभाव उल्लेखनीय है; उसी जल के लिये 0° पर यह अनुपात 1000 डेसीबार पर 1.0009 है और 10,000 डेसीबार पर 1.0126 है। ध्वनि वेग के अध्ययन में यह अनुपात महत्वपूर्ण है (3.16)।

वाष्पन की गुप्त ऊष्मा : एक ग्राम जल के वाष्पीकरण के लिये आवश्यक ग्राम कैलोरी में ऊष्मा की मात्रा या एक ग्राम जल वाष्प को उसी ताप पर जिस पर पानी हो, तैयार करने के लिये आवश्यक ऊष्मा की मात्रा को शुद्ध जल के वाष्पन की गुप्त ऊष्मा कहते हैं। समुद्र जल के लिये केवल पश्चादुक्त परिभाषा ही लागू हो सकती है। समुद्र जल के वाष्पन की गुप्त ऊष्मा की जाँच नहीं की गई है परन्तु साधारणतया यह मान लिया जाता है कि उसमें और शुद्ध जल के वाष्पन की गुप्त ऊष्मा में अन्तर उपेक्ष्य है; अतः 0° से 30° से. ग्रे. तक ताप के लिये निम्न सूत्र काम में लिया जा सकता है।

$$L = 596 - 0.52\theta$$

रुद्धोष्म ताप परिवर्तन : आस पास के स्थानों में ऊष्मा के हानि या लाभ के बिना जब किसी तरल पदार्थ को संपीडित किया जाता है तो संघ पर काम किया जाता है और ताप में वृद्धि हो जाती है। विलोमतः जब प्रसरण होता है तो द्रव स्वयम् ऊर्जा त्याग देता है जो ताप में कमी द्वारा प्रदर्शित हो जाती है। इस प्रकार के रुद्धोष्म ताप परिवर्तन वायुमण्डल में भली भांति ज्ञात एवं महत्वपूर्ण हैं। समुद्र जल संपीड्य है और गहरे एकाकी क्षेत्रों का जहां रुद्धोष्म तापन से तल की तरफ ताप में वृद्धि हो सकती है, (3.17) और महागरों की वृहत् गहराइयों में ताप के ऊर्ध्वाधर वितरण का अध्ययन करते समय रुद्धोष्म प्रक्रमों के प्रभाव को ध्यान में रखना चाहिये यद्यपि ये थोड़े होते हैं। रुद्धोष्म शीतलन तत्काली, व्यावहारिक विषय है जब जल के नमूनों को ऊष्मा रोधी जल बोतलों के साथ ले जाये जाते हैं और जल नमूने का ताप उसको पृष्ठ पर ऊपर उठाये जाने के बाद मालूम किया जाता है (3.18)।

सारणी 11.

34.85‰ लवणता पर समुद्र में रुद्धोष्म ताप प्रवणता
डिग्री से.ग्रे. प्रति 1000 मीटर

गहराई (मीटर)	ताप (से.ग्रे. अंश)								
	-2	0	2	4	6	8	10	15	20
0	0.016	0.035	0.053	0.078	0.087	0.103	0.118	0.155	0.190
1000	0.036	0.054	0.071	0.087	0.103	0 118	0.132	0.166	0 199
2000	0.056	0.073	0.089	0.104	0 118	0.132	0.146	0.177	0.207
3000	0.075	0.091	0.106	0.120	0.133	0.146	0.159	0.188	
4000	0 093	0 108	0.122	0.135	0.147	0.159	0.170	0.197	
5000	0.110	0.124	0.137	0.149					
6000	0.120	0.140	0.152	0.163					
7000		0.155	0.165	0.175					
8000		0.169	0.178	0.187					
9000		0.182	0.191	0.198					
10,000		0.194	0.202	0.209					

दाव में परिवर्तन कोई भी रुद्धोष्म प्रभाव से सम्बन्धित रहते हैं परन्तु समुद्र में दाव को गहराई के समानुपाती समझा जा सकता है और रुद्धोष्म ताप परिवर्तनों को परिवर्तन प्रति दाब की इकाई के स्थान पर प्रति गहराई की इकाई से व्यक्त किये जा सकते हैं। लार्ड केल्विन के अनुसार ऊर्ध्वाधर विस्थापन के प्रत्येक सेन्टीमीटर के लिये ताप में परिवर्तन का सूत्र यह होता है

$$10^{-5}\, d\theta = \frac{T\, e}{J\, c_p}\; g\, \rho$$

जिसमें T परम ताप है और g गुरुत्व जनित त्वरण है और दूसरे प्रतीकों का अर्थ पहले वाला ही है। यह परिवर्तन अत्यन्त ही कम होता है और बदले में व्यावहारिक प्रयोजनों के लिये 1000 मी. की ऊर्ध्वाधर दूरी में रुद्धोष्म ताप परिवर्तन को काम में लेते हैं जिसे रुद्धोष्म ताप प्रवणता कहते हैं। यह देखा जायगा कि रुद्धोष्म ताप प्रवणता विशेषकर तापीय प्रसरण गुणांक e पर निर्भर रहता है जो दूसरी अन्तर्ग्रस्त राशियों की अपेक्षा ताप और दाव के साथ कहीं अधिक घटता बढ़ता रहता है। एक्मेन (Ekman 1914) ने विभिन्न ताप, लवणता, और गहराइयों के लिये रुद्धोष्म ताप प्रवणता को संगणित किया है और उसके कुछ मान सारणी 11 में दिये गये हैं।

यदि जल के नमूने को रुद्धोष्मता से समुद्र पृष्ठ पर उठाया जावे तो जो ताप वह प्राप्त करेगा उस ताप को विभव ताप कहते हैं हेलैन्ड-हेन्सन् (Helland Hansen 1912) और यह θ द्वारा निर्दिष्ट किया गया है। इस प्रकार $\theta = \theta_m - \Delta\theta$

सारणी 12.

समुद्र जल ($\sigma_0=28.0$, S=34.85‰) जिसका *m* मीटर की गहराई पर ताप θ_m है उसको गहराई से पृष्ठ पर लानें से रुद्धोष्म शीतलन (0.01° से.ग्रे. में)

गहराई (मीटर)	ताप θ_m (डिग्री से. ग्रे.)												
	-2	-1	0	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1000	2 6	3.5	4 4	5.3	6.2	7.0	7.8	8.6	9 5	10.2	11 0	11.7	12.4
2000	7.2	8.9	10.7	12.4	14.1	15.7	17.2	18.8	20.4	21.9	23.3	24.8	26.2
3000	13.6	16·1	18.7	21.2	23 6	25.9	28.2	30.5	32.7	34.9	37.1	39.2	41 2
4000	21.8	25.0	28.4	31.6	34 7	37.7	40 6	43.5	46.3	49.1	51.9	54.6	57 2
5000	31.5	35.5	39.6	43.4	47.2	50.9	54.4						
6000	42.8	47.5	52.2	56.7	61.1	65.3	69.4						
7000			66.2	71.3	76.2	80.9	85.5						
8000			81.5	87.1	92.5	97.7	102.7						
9000			98 1	104.1	109.9	115.6	121.0						
10,000			115.7	122.1	128.3	134.4	140.2						

जहां θ_m स्वस्थाने ताप है और यदि जल के नमूने को पृष्ठ पर उठाया जाय तो ताप में रुद्धोष्मतापूर्वक जो कमी होगी वह $\Delta\theta$ है। रुद्धोष्म प्रवणता की सारणी से क्रम में अभिगणना करके विभव ताप मालूम किया जा सकता है। इस प्रकार की अभिगणना लम्बी और थकाने वाली होती है परन्तु हेलैन्ड-हेन्सन (Helland-Hensen 1930) ने $\delta\theta$ के लिये एक सुविधाजनक सारणी तैयार की है जो कि सारणी 12 में पुनरुत्पादित की गयी है। सारणी 34.85‰ ($\sigma_0=28.0$) की लवणता पर आधारित है और सामान्यत: गहन महासागर क्षेत्र में लागू होने योग्य है क्योंकि इन क्षेत्रों में लवणता 34.85‰ से विशेष भिन्न नहीं होती है और क्योंकि रुद्धोष्म प्रक्रियाओं पर लवणता का प्रभाव थोड़ा होता है। यह देखा जा सकता है कि यदि 2° से. ग्रे. पर पानी को रुद्धोष्मता पूर्वक 8000 मी. की गहराई से पृष्ठ पर लाया जाय तो $\Delta\theta=0{\cdot}925°$ है और इसलिये उस जल का विभव ताप 1.075° है। विभिन्न लवणता का जल जो पृष्ठ के समीप हो सकता है और जो भूमध्य सागर में हो सकता है, उसका रुद्धोष्म शीतलन सारणी 13 और 14 में दिया गया है।

समुद्र जल के सहजात और अन्य गुण

सहजात गुण :—वाष्प दाब अवतरण, हिमांक अवनयन, क्वथनांक उत्कर्ष और परिसारक दाब जैसे सहजात गुण विलयनों के अद्वितीय गुण होते हैं। यदि इनमें से किसी एक का परिमाण, निश्चित परिस्थितियों में विलयन के लिये, ज्ञात हो तो दूसरे आसानी से संगणित किये जा सकते हैं। समुद्र जल की सांद्रता और संमि-

श्रणता के विलयन सहजात गुणों के व्यापकीकृत सिद्धान्तो को नहीं मानते परन्तु तमाम स्थितियों में सैद्धान्तिक मानों में अन्तर समानुपाती होते हैं।

सारणी 13

निर्दिष्ट ताप और लवणता के जल को 1000 मी. से पृष्ठ पर लाने में रुद्धोष्म शीतलन (0.01 से.ग्रे. में)

लवणता ‰	ताप, θ_m (से. ग्रे. डिग्री)											
	0	2	4	6	8	10	12	14	16	18	20	22
30.0	3.5	5.3	7.0	8.7	10.3	11.8	13.2	14.7	16.1	17.6	18.9	20·3
32.0	3.9	5.7	7.3	9 0	10 6	12 1	13.5	15.0	16.4	17.8	19.1	20.5
34.0	4.3	6.0	7.7	9.4	10.9	12.4	13.8	15.3	16.6	18.0	19.3	20.7
36.0	4.7	6.4	8.1	9.7	11.2	12.7	14.1	15.5	16 9	18.3	19.6	20.9
38.0	5.1	6.8	8.4	10.0	11.6	13 0	14.4	15.8	17.2	18.5	19.1	21.8

सारणी 14

समुद्र जल (σ_0=31.0, S=38. 57 ‰) जिसका m मीटर की गहराई पर ताप θ_m है उसको उस गहराई से पृष्ठ पर लाने से रुद्धोष्म शीतलन (0.01 से. ग्रे. में) (भूमध्य सागर के लिये लागू)

गहराई (मीटर)	ताप θ_m (डिग्री से. ग्रे.)		
	12	13	14
1000	14 4	15.1	15.8
2000	30.0	31.4	32.7
3000	46.6	48 6	50.6
4000	64 2	66.7	69.2

विभिन्न क्लोरीनताओं के समुद्र जल का हिमांक में केवल अवनयन ही प्रायोगिक रूप से मालूम किया गया है (नुडसन Knudsen, 1903) मियाके, (Miyake, 1939 a) और वाष्प दाब अवनयन और परिसारक दाब की अभिगणना करने के लिये आनुभविक समीकरण इन प्रेक्षणों पर आधारित है। थाम्पसन, (Thompson 1932) ने बताया है कि हिमांक के अवनयन, $\Delta\theta_f$, क्लोरीनता से इस समीकरण द्वारा परिकलित हो सकते हैं

$$\Delta\theta_f = -0.0966\ Cl - 0.0000052Cl^3$$

अलग अलग क्लोरीनताओं के लिये $\Delta\theta_f$ के मान चित्र 13 में दिखाये गये हैं। समुद्र

जल का हिमांक 'प्रारम्भिक' हिमांक है। अर्थात् वह ताप जिस पर बर्फ की अनन्त रूप से थोड़ी मात्रा घोल से साम्यावस्था में हो। ज्यों ही कुछ बर्फ बन जाती है घुले हुए ठोस पदार्थों की सांद्रता बढ़ जाती है और इसलिये अतिरिक्त बर्फ का बनना निम्न ताप पर होता है (3.19)।
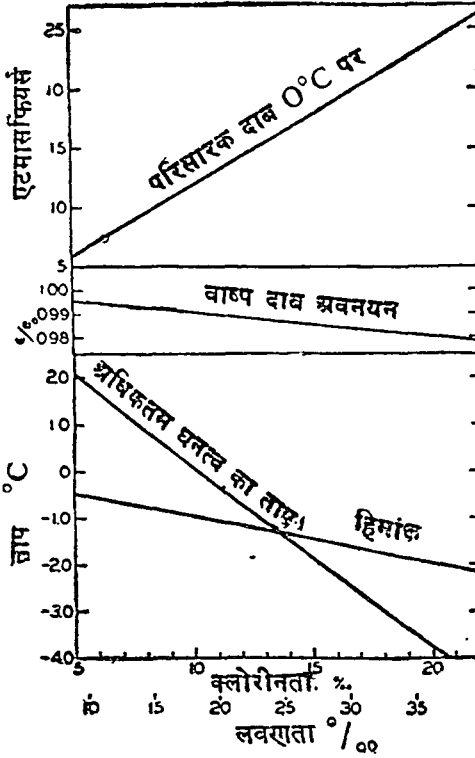
चित्र 13. क्लोरीनता और लवणता के फंक्शन की तरह परिसारक दाब, शुद्ध जल की सापेक्षता में वाष्प दाब, हिमांक, और अधिकतम घनत्व का ताप।

किसी भी क्लोरीनता के समुद्र जल का वाष्पदाब, जिसका उसी ताप पर आसुत जल से हवाला दिया जाता है, निम्नलिखित समीकरण द्वारा संगणित किया जा सकता है, वीटिंग (Witting 1908)

$$\frac{e}{e_o} = 1 - 0.000969 \text{ Cl},$$

जिसमें e नमूने का वाष्प दाब है और e_o उसी ताप पर आसुत जल का वाष्प दाब है (चित्र 13)। सांद्रता की सामान्य सीमाओं के अन्दर समुद्र जल का वाष्प दाब उसी ताप पर शुद्ध जल के वाष्प दाब का 98 प्रतिशत होता है और बहुत सी स्थितियों में लवणता के प्रभाव का विचार करना आवश्यक नहीं होता है, क्योंकि

पृष्ठ जल के ताप में घट-बढ़ का वाष्प दाब पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। (सारणी 29)

हिमांक अवनयन से परिसारक दाब स्टेन्यूग्रस (थाम्पसन Thompson, 1932) द्वारा व्युत्पन्न समीकरण की मदद से परिकल्पित किया जा सकता है :

$$OP_o = -12.08 \,\triangle \theta_f$$

तब परिसारक दाब किसी दाब पर संगणित किया जा सकता है

$$OP_\theta = -OP_o \times \frac{273+\theta}{273}$$

क्लोरीनता की 5‰ से 22‰ तक की परास में परिसारक दाब में घट-बढ़ चित्र 13 में दिखायी गई है।

यह पाया जावेगा कि हिमांक अवनयन, और इसलिये दूसरे सहजात गुण क्लोरीनता के रैखिक फलन नहीं है क्योंकि क्लोरीनता को ग्राम प्रति किलोग्राम समुद्र जल से लिखी जाती है न कि ग्राम प्रति किलोग्राम विलायक जल से, इस स्थिति में एक रैखिक सम्बन्ध प्रत्याशित होना चाहिये। इस प्रत्याशा के अन्वय में लाइमन और फ्लेमिंग (Fleming 1940) ने पाया कि हिमांक अवनयन निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है

$$\triangle \theta_f = -0.5241\, Z,$$

जिसमें Z विलायक जल के प्रति किलोग्राम में कुल लवण मात्रा है।

सहजात गुणधर्मों का परिमाण घोल में आयन की सांद्रता और उनकी सक्रियता पर निर्भर करता है। वर्तमान् प्रत्ययों के अनुसार समुद्र जल के मुख्य अवयव आयन हैं जिनकी सांद्रता सारणी 35 (3.21) में दिये गये आंकड़ों से संगणित की जा सकती है। समुद्र जल की सामान्य परास में विलायक जल के प्रति किलोग्राम में ग्राम आयनिक सांद्रता निम्न लिखित व्यञ्जक द्वारा दी जा सकती है

$$I = 0.03183Z$$

19‰ Cl के जल की ग्राम आयनिक सांद्रता 1.1368 है। हिमांक का ग्राम-अणुक अवनयन 1.86° है। इसलिये 19‰ क्लोरीनता के जल में हिमांक के अवनयन का "सैद्धान्तिक" मान $-1.86 \times 1.1368 = -2.11°$ होना चाहिये परन्तु उसी क्लोरीनता के जल के लिये प्रेक्षित मान $-1.872°$ है। वास्तविक और सैद्धान्तिक मान का अनुपात 0.89, सामान्य सांद्रता के समुद्र जल में आयन की घटी हुई सक्रियता का माप है और जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है, दूसरे सहजात गुण धर्म सैद्धान्तिक मानों से वैसा ही सम्बन्ध रखते हैं।

अधिकतम घनत्व—शुद्ध जल का अधिकतम घनत्व 4° के अति निकट ताप पर होता है परन्तु समुद्र जल के लिये अधिकतम घनत्व का ताप बढ़ती हुई लवणता के साथ कम होता है और यह ताप 24.70‰ से अधिक लवणता पर हिमांक से नीचे होता है। 24.70‰ लवणता पर अधिकतम घनत्व का ताप हिमांक से संपातित होता है; $\theta_f = -1.332°$ तदनुसार, जब इस प्रकार से जल को हिमांक तक ठण्डा किया जाता है तो 24.70‰ से अधिक लवणता के समुद्र जल का घनत्व

सारणी 15.

34.85‰ लवणता के समुद्र जल की औसत संपीड्यता ($K \times 10^8$)

P	ताप			(डिग्री सें. ग्रे.)			
(बार)	0	5	10	15	20	25	30
0	4649	4531	4427	4345	4281	4233	4197
100	4582	4458	4357	4278	—	—	—
200	4508	4388	4291	—	—	—	—
400	4368	4256	—	—	—	—	—
1000	4009	3916	—	—	—	—	—

निरन्तर बढ़ता है। चित्र 13 में अधिकतम घनत्व के ताप को लवणता और क्लोरीनता के फलन की तरह दिखाया गया है।

संपीड्यता—एकमेन (Ekman 1908) ने शून्य से p बार तक के दाब पर समुद्र जल की माध्य संपीड्यता के लिये एक आनुभविक समीकरण निकाला (3.22) और जो इस प्रकार परिभाषित होता है: $\alpha_{s,\theta,p} = \alpha_{s,\theta,0}(1-kp)$। संख्यात्मक मान सारणी 15 में दिये गये हैं जहाँ बार को दाब की इकाई के लिये काम में लिया गया है।

समुद्र जल की वास्तविक संपीड्यता का उल्लेख एक गुणांक द्वारा किया जाता है जो, तरल स्थैतिक दाब को एक इकाई दाब के बढ़ाने से विशिष्ट आयतन में समानुपातीय परिवर्तन निरूपित करता है: $K = \left(-\frac{1}{\alpha}\frac{d\alpha}{dp}\right)$ निम्नलिखित समीकरण द्वारा वास्तविक संपीड्यता एकमेन द्वारा दी गई औसत संपीड्यता से परिकलित की जा सकती है

$$K = \frac{\left(k + p\,\frac{dk}{dp}\right)}{(1-kp)}$$

जिसमें k औसत संपीड्यता है जहाँ दाब इकाई को बार से उल्लेखित किया गया है और p बार में दाब है।

श्यानता—जब गतिमान जल का वेग विन्यास में घटता-बढ़ता है तब घर्षण-प्रतिबल विद्यमान होते हैं। 1 वर्ग से. मी. पृष्ठ पर क्रियाशील घर्षण-प्रतिबल, उस पृष्ठ के अभिलम्बीय सीधी रेखा के प्रत्येक से. मी. पर वेग में परिवर्तन के समानुपाती होता है $\left(\tau s=\mu\frac{dv}{dn}\right)$ । अनुपात का गुणांक (μ) गतिक श्यानता कहलाता है। यह गुणांक बढ़ते हुए ताप के साथ तीव्रता से घटता है और बढ़ती हुई लवणता के साथ धीमे-धीमे बढ़ता है (सारणी 16, डोरसे Dorsey 1940)। शुद्ध जल का गुणांक बढ़ते हुए ताप के साथ निम्न ताप पर घटता है परन्तु उच्च ताप पर बढ़ता है (डोरसे Dorsey, 1940) यदि यह सारा विवरण समुद्र जल के लिये यथार्थ हो और यदि प्रभाव समतुल्य परिमाण का हो तो शून्य डिग्री ताप पर 35‰ लवणता के जल की श्यानता 10,000 डेसीबार दाब पर 18.3×10^{-3} से. ग्रा. से. मात्रक, होता है जब कि इसके विपरीत वायुमण्डलीय दाब पर यह 18.9×10^{-3} होती है। यह अन्तर उपेक्ष्य है और महासागरों में श्यानता पर दाब का असर उपेक्षित किया जा सकता है।

सारणी 16

समुद्र जल तथा शुद्ध जल की वायुमण्डलीय दाब पर श्यानता

($\mu\times10^3$ से. ग्रा. से. मात्रक)

(डोरसे, Dorsey के अनुसार)

लवणता	ताप (डिग्री से. ग्रे.)						
‰	0	5	10	15	20	25	30
0	17.9	15.2	13.1	11.4	10.1	8.9	8.0
10	18.2	15 5	13.4	11.7	10.3	9.1	8.2
20	18.5	15.8	13.6	11.9	10.5	9.3	8:4
30	18 8	16.0	13.8	12.1	10.7	9.5	8.6
35	18.9	16.1	13.9	12.2	10.9	9.6	8.7

अभी तक वर्णित श्यानता केवल मात्र मान्य है जब गति अघूर्णीय हो परन्तु जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है समुद्रों में विक्षुब्ध गति प्रचलित होती है इसलिये एक 'भंवरीय' गुणांक पुरःस्थापित करना चाहिये जो कि कई गुना बृहत होता है (3.23)।

विसरण—जिस घोल में विलीन पदार्थ की सांद्रता आकाश में घटती-बढ़ती रहती है तो उस पदार्थ की मात्रा जो एक वर्ग से. मी. क्षेत्रफल वाले पृष्ठ से प्रति सेकण्ड विसरित होती है वह पृष्ठ के अभिलम्बीय सीधी रेखा के प्रति से. मी. पर सांद्रता के परिवर्तन के समानुपाती होती है $\left(\frac{dM}{dt}=-\delta\frac{dc}{dn}\right)$ । अनुपात का

गुणांक (δ) विसरण का गुणांक कहलाता है; जल के लिये यह लगभग 2×10^{-5} के बराबर होता है जो विलयशील के लक्षण पर निर्भर, और ताप से लगभग स्वतन्त्र रहता है। समुद्र में पाई जाने वाली सांद्रता की सीमाओं के अन्दर, यह गुणांक लवणता से भी लगभग स्वतन्त्र रहता है।

समुद्र में ऊष्मा चालकता गुणांक के विषय में जो कुछ भी ऊपर लिखा गया है वह विसरण गुणांक के लिये भी लागू होता है। जहाँ विक्षुब्ध गति प्रचलित होती है वहाँ 'भंवरी' गुणांक पुरस्थापित करना आवश्यक है जो कई गुना बृहत होता है और जो मुख्य रूप से गति की स्थिति पर निर्भर रहता है।

तल तनाव—एक ही ताप पर शुद्ध जल के तल तनाव से समुद्र जल का तल तनाव तनिक अधिक होता है। क्रूमेल, (Krümmel 1907) ने तल तनाव का ताप और लवणांश से सम्बन्धित एक आनुभविक समीकरण प्राप्त किया। शुद्ध जल के आधुनिक मूल्यों का विचार करने के लिये इस समीकरण को फ्लेमिंग और रेवेली (Fleming & Revelle 1939) ने संशोधित किया। संशोधित व्यञ्जक इस प्रकार से है :

$$\text{तल तनाव (डाइन/वर्ग से. मी.)} = 75.64 - 0.144\theta + 0.0399 \text{ Cl.}$$

अपद्रव्यों से तल तनाव घट जाता है, और समुद्र में इसका मान उपरोक्त मान से बहुधा कम होता है।

वर्तनांक—बढ़ती हुई लवणता और घटते हुए ताप के साथ वर्तनांक बढ़ता है। इन चरों के बीच सम्बन्ध मालूम करने की समस्या को तथा काम में लिये जाने वाले उपकरण के प्रकार को कई लेखकों ने विवेचित किया है (उदाहरणार्थ, उट्टरबेक, थॉम्पसन और थामस, (Utterbeck, Thompson & Thomas 1934) बीन, हर्सकोर्न और मोलर, (Bein, Hirsekorn & Moller 1935), मियाके, (Miyake 1939)। चूंकि वर्तनांक प्रकाश की तरङ्ग लम्बाई के साथ बदलता है इसलिये सामान्य रूप से सोडियम की D रेखा के समान एक मानक वरण करना चाहिये।

उट्टरबेक, थॉम्पसन और थामस ने आसुत जल से तनुकृत महासागरी जल के नमूनों का वर्तनांक कई ताप पर निकाला। उन्हें पता चला कि वर्तनांक को निम्न प्रकार के व्यञ्जकों से निरूपित किया जा सकता है

$$n_\theta = no,_\theta + k_\theta, \text{Cl},$$

जिसमें n_{θ,θ° पर समुद्र जल नमूने का वर्तनांक, $no,_\theta$ उसी ताप पर आसुत जल का वर्तनांक और k_θ उस ताप के लिये समुचित स्थिरांक है। यह समीकरण वर्तनांक और क्लोरीनता में एक सीधी रेखा का सम्बन्ध देता है परन्तु याद रखना चाहिये कि यह आसुत जल से तनुकृत महासागरी जल के लिये मान्य होती है और नुडसन के जल-ग्राफीय सारणियों के अनुसार निम्न क्लोरीनता पर तनुकृत जल

उसी निम्न क्लोरीनता के समुद्र जल के तदनुरूपी नहीं होता है। उट्टरबेक, थाम्पसन, और थामस द्वारा प्राप्त n, θ, Cl के बीच सम्बन्ध चित्र 14 में दिखाये गये हैं। मियाके (Miyake 1939 b) ने प्रयोगशाला में तनुकृत महासागरी जल के नमूनों का 25^0 C पर सोडियम की D रेखा के लिये वर्तनांक ($n_{D,25°}$) मालूम किया। उसने अपने परिणामों को उसी प्रकार की समीकरण से निरूपित किया परन्तु जो संख्यात्मक स्थिरांक उसने मालूम किये वे उपरोक्त लेखकों के स्थिरांक से तनिक भिन्न है

$$n_{D,25°} = 1.332497 \pm 0.000334 \text{ Cl} \quad \text{(मियाके)}$$
$$n_{D,25°} = 1.33250 \pm 0.000328 \text{ Cl} \quad \text{(उ. था. और था.)}$$

मियाके ने पाया कि समुद्र जल का वर्तनांक निम्न प्रकार से अभिव्यक्त किया जा सकता है

$$n = n_o + \Sigma (\nu - n_o),$$

जिसमें n_o आसुत जल का वर्तनांक है और ν एक ही लवण के घोल का वर्तनांक है जिनकी सांद्रता उन घोलों से तुलनीय है जिनमें ये लवण समुद्र जल में पाये जाते हैं। यह ज्ञात है कि अलग-अलग आयन के लाक्षणिक आयनिक वर्तन होते हैं। समुद्र जल में लवण पूर्ण रूप से आयनीकृत होते हैं और, चूंकि प्रत्येक आयन के लिये ग्रामाणु वर्तन ज्ञात होते हैं, इसलिये मियाके वर्तनांक को उचित परिशुद्ध-मात्रा से संगणना कर सके।

विद्युत् चालकता—थामस, थॉम्पसन और उट्टरवेक, (Thomas, Thompson & Utterback 1934) तथा वेइन, हिर्सकोर्न और मोलर, (Bein, Hirsekorn & Moller 1935) ने चालकता का ताप और क्लोरीनता के फंक्शन के रूप में अध्ययन किया है और स्थितियों की विस्तृत सीमाओं के लिये विशिष्ट चालकता की व्युतक्रम ओम प्रतिघन सेन्टीमीटर में सारणियां दी।

चित्र. 14. क्लोरीनता और ताप के फंक्शन की तरह समुद्र जल का वर्तनांक।

थामस, थॉम्पसन और उट्टरवेक के अनुसन्धान के परिमाण 0, 5, 10, 15,20 और 25 डिग्री के ताप पर अभिव्यक्त किये गये हैं। उनके परिमाण चित्र 15 में लेखा चित्रीय रीति से दिये गये हैं। निम्न क्लोरीनता के मान महासागर के जल को आसुत जल से तनुकृत करके प्राप्त किये गये थे और इसलिये घनत्व तथा दूसरे गुण धर्म जल

की उसी क्लोरीनता पर के गुणधर्म के यथार्थ रूप से तदनुरूपी नहीं होंगे जैसा कि नुडसन की जल ग्राफीय सारणियों में निरूपित किया गया है।

समुद्री बर्फ के गुणधर्म

उच्च अक्षांशों में समुद्र जल से बने हुए बर्फ के रासायनिक गुणधर्म और हिमीकरण के प्रक्रमों का विवेचन और किसी अध्याय में किया गया है। जल की तरह, बर्फ के भौतिक गुण लवणांश पर निर्भर करते हैं जो कि हिमीकरण-दर, आयु, तापीय वृतान्त, आदि के फंक्शन हैं। समुद्रीय बर्फ (3.24) में लवणों का संघटन जल में होने वाले लवणों के संघटन से विशेष भिन्न नहीं होता है, क्योंकि ये छोटे सैलों में परिवेष्ठित लवण जल में सामान्यतया मौजूद रहते हैं। इसलिये व्यवहारिक सीमा के भीतर समुद्रीय बर्फ की क्लोरीनता तथा लवणता के लिये वही अर्थ माने जा सकते हैं जो जल के लिये होते हैं यद्यपि लवण बर्फ में एक समानता से वितरित नहीं हैं।

जैसा कि पहिले सूचित किया जा चुका है कि समुद्र जल का हिमांक उस प्रारम्भिक हिमांक का निरूपण करता है जिस पर बर्फ निर्दशित क्लोरीनता के समुद्र जल से साम्यवस्था में होती है। जिस प्रकार बर्फ में सैलों में लवण जल परिवेष्ठित होता है उसी प्रकार यदि बर्फ और समुद्र जल किसी बंद समुदाय में हो तो अतिरिक्त बर्फ को पृथक होने के लिये ताप में और भी कमी होना आवश्यक है विभिन्न ताप पर बर्फ से साम्यवस्था में होने वाले लवण जल का लवणांश मालूम करना रीगंर (3.25) के प्रेक्षणों ने सम्भव कर दिया (चित्र. 16 A) यद्यपि निम्न ताप पर कुछ लवण स्फटित हो जाते हैं फिर भी इस विषय में काम में लिया गया लवणांश लवण की कुल विद्यमान मात्रा होती है। आंकड़ों का इस प्रकार दिया जाने का कारण यह है कि बर्फ की लवणता या क्लोरीनता का विश्लेषण स्फटिक या विलयन में पाई जाने वाली लवणता या क्लोरीनता में विभेद नहीं करता है। किसी ताप पर बर्फ की साम्यावस्था में लवणजल का लवणांश ज्ञात होने पर इकाई लवणता के बर्फ के प्रत्येक किलोग्राम में बन्द लवणजल की मात्रा की गणना करना सम्भव

चित्र. 15. क्लोरीनता और ताप के फंक्शन की तरह विशेष चालकता व्युतक्रम ओम वर्ग से०मी०

है। दिये हुए ताप पर वर्फ के किसी नमूने में लवणजल की मात्रा मालूम की जा सकती है इसके लिए चि. 16. B में दिखाये गये वक्र के अनुसार उस ताप के मूल्य को बर्फ की लवणता से गुणा करना होगा। इस प्रकार -3°C पर 10‰ लवणता का समुद्र वर्फ मुख्य रूप से शुशकार है जिसमें प्रति किलोग्राम 200 ग्राम लवणजल होता है। ज्ञात लवणता के वर्फ को जब ठण्डा या गर्म किया जाता है तो जो बर्फ बनता या पिघलता है उसकी मात्रा की गणना करना भी चित्र 16 के आंकड़ों के अनुसार सम्भव हो गया है।

समुद्रीय वर्फ के कुछ भौतिक गुणों को विशेष रूप से प्रभावित करने वाला दूसरा चर है गैस अंश। वर्फ में गैसें सामान्य रूप से छोटे "वुलबुलों" की तरह होती है और शीघ्रता से जमे हुए वर्फ में साधारणतया मात्रा अधिक होती है, जब वुलवुले आरम्भ में विलीन गैसों को निरूपित करते हैं या पुराने वर्फ़ में जिसका आंशिक हिमद्रवण हुआ हो और फिर से वर्फ वन गया हो ऐसी हालत में बर्फ में वायुमण्डलीय हवा फंद जाती है।

चित्र 16. (A) विभिन्न ताप पर समुद्रीय वर्फ से संतुलन में बन्द लवण जल का लवणांश (B) विभिन्न ताप पर 1‰ लवणता के। किलोग्राम समुद्र वर्फ में लवणजल की मात्रा

निम्नलिखित विवेचन में समुद्रीय वर्फ के गुण धर्मों से सम्बन्धित सांख्यिक मान माल्मग्रेन, (Malmgren, 1927) के काम से उद्धृत किये गये हैं यदि इनका किसी दूसरी तरह से उल्लेख नहीं किया गया हो। शुद्ध बर्फ के लिये तदनुरूपी मान गैस और नमक रहित वर्फ के स्थिरांक निरूपित करते हैं और ये वार्न्स (Barnes, 1928) के कार्य से लिये गये हैं।

0°C पर शुद्ध वर्फ का घनत्व 0.91676 है, जबकि उसी ताप पर शुद्ध जल का घनत्व 0.9998674 होता है। समुद्रीय बर्फ का घनत्व शुद्ध बर्फ के जल, लवण जल और गैस के अंश के आधार पर उसके घनत्व से कम और अधिक होता है। पुराने पृष्ठ वर्फ में माल्मग्रेन 0.857 और 0 92 के बीच की सीमा रिपोर्ट करते हैं।

शुद्ध बर्फ की विशिष्ट ऊष्मा उसके ताप पर निर्भर करती है और संकीर्ण सीमाओं में बदलती है परन्तु समुद्रीय वर्फ के लिये यह कहीं अधिक परिवर्तनशील गुणधर्म है जो लवण या लवण जल अंश और ताप पर निर्भर होता है। समुद्रीय बर्फ के ताप को बदलने से साधारणतया या तो हिमीकरण होता है या गलन होता

सारणी 17.

समुद्री बर्फ की विशिष्ट ऊष्मा

(माल्मग्रेन से)

लवणता ‰	ताप °C										
	-2°	-4°	-6°	-8°	-10°	-12°	-14°	-16°	-18°	-20°	-22°
0	0.48	0.48	0 48	0 48	0 48	0 47	0.47	0.47	0.47	0.47	0.46
2	2 47	1.00	0.73	0.63	0.57	0 55	0.54	0.53	0.53	0.52	0.42
4	4.63	1.50	0.96	0 76	0.64	0 59	0.57	0.57	0.56	0.53	0.54
6	6.70	1.99	1.20	0.88	0.71	0 64	0.61	0.60	0.58	0.57	0.56
8	8.76	2.49	1.43	1 01	0.78	0.68	0.64	0.64	0.61	0.60	0.58
10	10.83	2.99	1.66	1.14	0.85	0.73	0 68	0 67	0.64	0.62	0.60
15	16.01	4.24	2.24	1.46	1.02	0.85	0.77	0.74	0.71	0.61	0.65

है और जैसा कि सारणी 17 में वतलाया गया है, इस क्रिया के लिये आवश्यक ऊष्मा की मात्रा लवणता पर निर्भर करेगी। यह ध्यान में रखना चाहिए कि शुद्ध बर्फ की विशिष्ट ऊष्मा शुद्ध जल की विशिष्ट ऊष्मा के आधे से कम होती है। हिमांक के निकट उच्च लवणता के बर्फ की परम उच्च विशिष्ट ऊष्मा वास्तव में, वन्द लवण जल से बर्फ बनने के कारण या बर्फ पिघलने के कारण होती है।

शुद्ध जल के गलन की गुप्त ऊष्मा O°c और वायुमण्डलीय दाब पर 79.67 कैलोरी प्रति ग्राम होती है। चूंकि लवण के विद्यमान होने के कारण समुद्रीय बर्फ का गलन किसी निश्चित ताप पर नहीं होता है इसलिये गुप्त ऊष्मा को सामान्य रीति से निर्दिष्ट करना असम्भव है। किसी दी गई लवणता के 1 ग्राम बर्फ को जो कि प्रारम्भ में निर्दशित ताप पर था, पिघलने के लिये आवश्यक ऊष्मा माल्मग्रेन ने अपनी सारणी में दी है (सा. 18)। यह आसानी से देखा जा सकता है कि लवणों की उपस्थिति आभासी गुप्त ऊष्मा को कम कर देती हैं।

समुद्रीय बर्फ के वाष्प दाब का अन्वेषण नहीं किया गया है परन्तु इसका मान शुद्ध बर्फ के मान से वहुत अधिक विचलित नहीं हो सकता। शुद्ध बर्फ के लिये वाष्प दाब का मान निम्नलिखित है।

$0°, e=6.11$ मि. बा. $-20^0, e=1.04$ मि. बा.

$-10°, e=2.61$ मि. बा. $-30^0, e=0.39$ मि. बा.

शुद्ध बर्फ के वाष्पन की गुप्त ऊष्मा परिवर्तनशील है। यह पाया गया है कि कुछ स्थितियों में बर्फ द्रव अवस्था में आये बिना सीधा ही वाष्पशील हो कर वाष्प बन सकता है जिस हालत में वाष्पन की गुप्त ऊष्मा लगभग 600 कैलोरी प्रति ग्राम होती

है। यदि वाष्पन धीरे-धीरे होता है तो वाष्पीकरण के पहले ही वर्फ पिघल जाता है और प्रतिग्राम 700 कैलोरी की आवश्यकता होती है। यह वाद का प्रक्रम प्रकृति में प्रचलित मालूम पड़ता है।

सारणी 18.

समुद्री वर्फ के गलन की गुप्त ऊष्मा

(मालमग्रेन से)

ताप (°C)	लवणता ‰						
	0	2	4	6	8	10	15
−1......	80	72	63	55	46	37	16
−2......	81	77	72	68	63	59	48

शुद्ध वर्फ के लिये तापीय प्रसरण गुणांक (e) प्रति डिग्री लगभग 1.7×10^{-4} होता है जबकि $e = \left(\frac{1}{\alpha}\frac{d\alpha}{d\theta}\right)$ है। यह गुणांक ताप पर निर्भर नहीं रहता। समुद्रीय वर्फ का तापीय प्रसरण उसके ताप और लवणता का फंक्शन होता है और धन और ऋण दोनों मान में अधिक परास वताता है जैसा कि सारणी 19 में दिखाया गया है, जहाँ ऋणात्मक मान शीतलन पर प्रसरण का और धनात्मक मान शीतलन पर सिकुड़न का निदर्शन करते हैं। यह असंगत व्यवहार लवण या लवण जल की मात्रा ही से फिर सम्वन्धित है, क्योंकि ताप में किसी भी परिवर्तन से वर्फ की निश्चित मात्रा पिघलती या हिमीकरण होती है। इस प्रकार, समुद्रीय वर्फ में प्रक्रम वर्फ $\rightleftarrows$ जल के रूपान्तरण से सम्बन्धित आयतन में आकस्मिक परिवर्तन और वर्फ और लवणजल के तापीय प्रसरण का एक सम्मिश्रण है। सारणी 19 के अनुसार उच्च लवणता का समुद्रीय वर्फ तेजी से विस्तारित होता है ज्यों ही यह प्रारम्भिक हिमांक से नीचे के ताप तक ठंडा किया जाता है। तापीय प्रसरण गुणांक निम्न तापों पर घटता है परन्तु सदैव ही ऋणात्मक होता है। दूसरी ओर, निम्नतर लवणता का वर्फ, शुरु में विस्तारित होता है और वाद में सिकुड़ता है ज्यों ज्यों इसका ताप कम किया जाता है।

शुद्ध वर्फ़ का ऊष्मा चालकता गुणांक लगभग 0 005 होता जो कि 0°C पर शुद्ध जल के ऊष्मा चालकता गुणांक से सन्निकटतः तीन गुना वृहत् होता है। मालमग्रेन ने आर्कटिक समुद्र के वर्फीले क्षेत्रों में कई माप लिये और यह पाया कि चालकता वर्फ के लक्षण से मुख्य रूप से प्रभावित हुई है विशेषकर वर्फ में गैस की मात्रा से (यानी, छिद्रलता से)। प्राकृतिक अवस्थाओं में, छिद्रलता वर्फ के गहरे भागों

सारणी 19

समुद्री बर्फ के लिये तापीय प्रसरण गुणांक प्रति 1°C ($e \times 10^4$).

(माल्मग्रेन से)

लवणता (‰)	ताप °C										
	-2	-4	-6	-8	-10	-12	-14	-16	-18	-20	-22
2	-22.10	-4.12	-1.06	-0.16	-0 83	1.13	1.23	1.27	1.33	1.38	1.44
4	-45.89	-9.92	-3 81	-1.37	-0.02	0.57	0.78	0.85	0.96	1.07	1.88
6	-69.67	-15.73	-6.55	-2.90	-0.88	0 00	0.33	0 43	0.60	0.76	0.93
8	-93 46	-21.53	-9.30	-4.43	-1.73	-0.57	-0.13	0.02	0.23	0.45	0.67
10	-117.25	-27.34	-12.05	-5.95	-2 59	-1.13	-0.59	-0.40	-0 13	0.14	0.42
15	-176.72	-41.85	-18.92	-9.78	-4.73	-2.54	-1.72	-1.45	-1.04	-0.63	-0.22

की अपेक्षा पृष्ठ के समीप अधिक होती है। औसतन, पृष्ठ के समीप ऊष्मा चालकता गुणांक लगभग 1.5×10^{-3} था, 0.5 मीटर पर यह 4.0×10^{-3} था और 1.0 मी. से नीचे की गहराई पर मान शुद्ध वर्फ के लिये ऊपर दिये गये मान के वरावर अर्थात् 5.0×10^{-3} होने लगा।

ध्वनि का प्रेषण

ध्वनि के प्रेपण के लिये जल एक अत्यन्त ही उत्तम माध्यम है, ध्वनि वायु के वजाय जल में अधिक तीव्रता से गमन करती है तथा ऊर्जा का वहुत कम अवशोपण होता है इस लक्षण ने नौचालन में अत्यधिक महत्वपूर्ण जल गर्भ ध्वनि प्रणालियों के विकास को सम्भव वना दिया है। इनका अत्यन्त ही परिचित उपयोग प्रति ध्वनिक गहराई मापने में है जिसमें आवेग के समुद्र तल तक पहुँचने और वापस जहाज़ तक आने के समय को गहराई के माप की तरह काम में लिया जाता है। क्षैतिज ध्वनि प्रेपण को रेडियो ध्वनि से परास ज्ञात करने में काम में लिया जाता है और जोकि सर्वेक्षक जहाजों द्वारा अपनी स्थिति को ठीक-ठीक मालूम करने हेतु काम में लिये जाते हैं जव वे जहाज़ भूमि से अदृश्य स्थानों पर गहराई मापने की क्रिया करते होते हैं। वम विस्फोट के आवेग को एक दो या अधिक ज्ञात स्थितियों, सामान्यतया किनारों के निकट, पर जल गर्भ ध्वनि परिचायकों (हाइड्रोफोन) तक पहुँचने के लिये आवश्यक समयान्तर को माप कर जहाज़ की स्थिति मालूम की जाती है। स्थल मण्डलीय घंटियों से ध्वनि के प्रेपण को भी जल द्वीपों के निकट दिक् चालन साधन की तरह उपयोग में लिया गया है। पराश्रव्य आवेग (मानव कान की श्रवण सीमा से अधिक आवृत्ति) वृहत रूप से दिष्ट होते हैं और इसलिये जहाज़ों के रास्ते में आने वाले दिक् चालन खतरे तथा हिम शैलों का पता चलाने वाले उपकरणों के विकास के लिये कई प्रयास किये गये हैं। इस प्रश्न के व्यावहारिक पहलू, तथा काम में लिये गये उपकरण के प्रकार इतनी अधिक संख्या में है कि उन पर इस विवेचन में विचार नहीं किया जा सकता और इसलिये इन प्रश्नों के विपय में तथ्यों के एक श्रेष्ठ साधन की तरह हाईड्रोग्राफीक रिव्यू (मोनाको) का हवाला दिया गया है।

अपेक्षाकृत भारी मात्रा में विस्फोटक के दाग़ने से उत्पादित आवेगों के वेग के अलावा समुद्र जल में ध्वनि का वेग तरङ्ग लम्बाई से स्वतन्त्र रहता है। प्रत्यक्ष रूप में अत्यधिक ऊर्जा अन्तर्ग्रस्त होने के कारण ऐसे विस्फोटों में प्रारम्भ में आवेग सामान्य से 30 प्रतिशत अधिक द्रुतगामी हो सकते हैं।

द्रव में ध्वनि का वेग घनत्व और प्रत्यास्थता से संगणित किया जा सकता है

$$v = \sqrt{\frac{\text{प्रत्यास्थता}}{\text{घनत्व}}} ,$$

परन्तु व्यावहारिकता में निम्नलिखित व्यञ्जक काम में लेना सुविधाजनक होता है

$$v = \sqrt{\gamma/\rho k},$$

जिसमें γ विशिष्ट ऊष्मा का अनुपात, c_p/c_v (3.26) है ρ घनत्व है, और k वास्तविक संपीड्यता है। यदि ρ और k से. ग्रा. सै. इकाइयों में है तो वेग सेन्टीमीटर प्रति सैकण्ड में होता है। अनुपात γ को इसलिये पुरःस्थापित किया गया क्योंकि ध्वनि आवेग एक संपीडन तरंग है और इसलिये जिस जल में से होकर यह गुजरती है उसे गर्म कर देती है γ, ρ, और k तीनों चर ताप, लवणता और दाव के साथ बदलते हैं और इसलिये किसी दी हुई स्थितियों के सेट के लिये ही इनका मान निश्चित करना चाहिये। उदाहरणार्थ 30°C पर 34.85‰ की लवणता के जल का वायुमंडलीय दाव ($p=0$) पर घनत्व 1.021637 होता है और इन स्थितियों के लिये $\gamma = 1.0207$ और $k = 4.196 \times 10^{-11}$ है इसलिये

$$v = 1.543 \times 10^5 \text{ से.मी./सै.} = 1543 \text{ मीटर/सै.}$$

उपरोक्त सूत्र की सहायता से उचित सारणियाँ बनाई गयीं जिनसे यह पता चल सकता है कि ध्वनि का वेग ताप, लवणता और दाव का फंक्शन होता है। प्रथम व्यावहारिक सारणियाँ संयुक्त राज्य अमेरिका के समुद्र तट तथा भूपृष्ठीय सर्वेक्षण (U S. Coast & Geodetic Survey) के हेक और सर्विस (Heck & Service 1924) की थीं किन्तु इनका मेथ्यूस (Matthews, 1927) द्वारा तैयार किये गये ब्रिटिश एड-मिरेल्टी टेबल्स ने अधिक्रमण किया जो, यद्यपि उन्हीं मूल आंकड़ों पर आधारित हैं, फिर भी किंचित अधिक संगत है। ध्वनि में परिवर्तनों को ताप और लवणता के फलन से चित्र 17 में दिखाये गये हैं। दाव का प्रभाव और इसलिये गहराई का प्रभाव चित्र 18 में दिखाया गया है। यह प्रभाव ताप और लवणता से लगभग स्वतन्त्र होता है लेकिन जो वक्र चित्र में दिखाया गया है वह वास्तव में 0°C पर 34.85‰ लवणता के लिये ही है। यह लवणता इन सारणियों में काम में ली गयी मानक निर्देश लवणता होती है और लवणता में परिवर्तनों के कारण होने वाली शुद्धियाँ, मानक मूल्यों में जोड़ने या घटाने के लिये असंगतियों के रूप में दी गयी हैं।

चित्र 17. ताप और लवणता के फंक्शन शुद्ध जल और समुद्र जल में वायु मण्डलीय दाव पर ध्वनि का वेग।

यदि ध्वनि का वेग पता हो तो विभिन्न आवृत्तियों की ध्वनि की तरंग लम्बाई समीकरण $\lambda = v/n$ से मालूम करना सम्भव है, इस समीकरण में λ तरंग लम्बाई है, v वेग और n आवृति है (सा० 20)। मनुष्य के कान 25 और 10,000 कम्पन प्रति सैकण्ड के बीच की आवृत्तियों का सरलता से पता लगा लेते हैं और अधिकतम संवेदिता 1000 कम्पन प्रति सैकण्ड पर होती है। मनुष्य के कान से श्रव्य के ऊपर की आवृत्तियों वाली पराश्रव्य तरंगों के कुछ वांछनीय गुण होते हैं जो उन्हें जल-गर्भ ध्वनिकी में मूल्यवान बना देते हैं परन्तु, जैसा कि आगे बताया जावेगा, उनका वृहत् अवशोपण होने के कारण उनकी प्रभावी सीमा बहुत कम होती है। ध्वनि उत्सर्जकों को बनाकर प्रभावी सीमा में वृद्धि की गयी है, ये उत्सर्जक छोटी तरंग लम्बाइयों के लिये एक दिश्य दंड देते हैं, जो किसी अंश में सर्चलाइट के सदृश्य होता हैं। व्यवहार में दण्ड का लगभग 10° से 15° का फैलाव होता है। एक दिश्य दंड किसी परावर्ती वस्तु तक की दूरी को न केवल नापने का ही काम करता है परन्तु उस वस्तु की दिशा को मालूम करने का काम भी करता है।
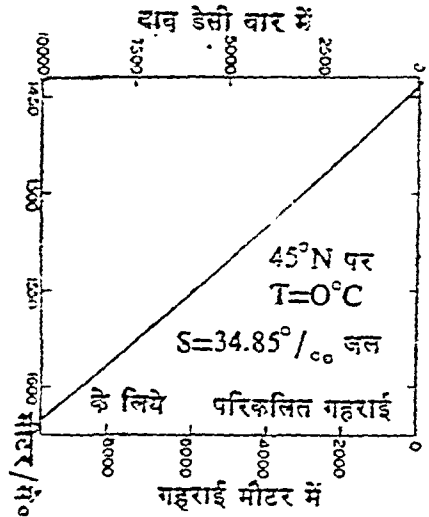
चित्र 18. 0° पर 34.85‰ लवणता के समुद्रजल में ध्वनि वेग पर दाब का प्रभाव।

उल्लेखनीय अवशोपण तथा वर्तन के अभाव में ध्वनि की तीव्रता स्रोत से दूरी के वर्ग से प्रतिलोमतः बदलती है। जल की श्यानता के कारण ध्वनि तरंगों की गतिज ऊर्जा की कुछ मात्रा ऊष्मा में बदल जाती है और इसलिये किसी अंश में प्रकाश के सदृश्य ध्वनि का अवशोपण होता है। समुद्र जल में ध्वनि के अवशोपण की समस्या को लैंगवीन (Langevin, 1924) ने विवेचित किया है। समतल ध्वनि तरंग की ध्वनि तीव्रता x दूरी से गुजरने पर I_o से I_x में घातीयता से घटती है इसलिये,

$$I_x = I_o\, e^{-2\nu x}$$

जिसमें $\nu = 8\pi^2\mu/3\lambda^2\rho v$, और विकीर्ण ऊर्जा के लिये अवशोपण गुणांक के अनुरूप होता है। इसलिये दूरी d जिस पर तीव्रता घटकर $\frac{1}{e}$ (सन्निकटतः $\frac{1}{3}$) हो जाती है वह है।

$$d(\text{cm}) = \frac{3\lambda^2\rho v}{16\pi^2\mu}, \quad \text{से. मी.}$$

सारणी 20

विभिन्न आवृत्तियों की ध्वनि के लिये हवा और जल में तरंग लम्बाइयाँ

आवृत्ति (n)	हवा	समुद्र जल	समुद्र जल
	$\theta=20°$ $p=1$ एटमास्फीयर v=346 मी./सै	S=34.85‰ $\theta=0°$ $p=1$ एटमास्फीयर v=1445.2 मी./सै.	S=34.45‰ $\theta=20°, p=1$ एटमा. v=1518.5 मीटर/सै.
	तरंग लम्बाई λ (मीटर)	तरंग लम्बाई λ (मीटर)	तरंग लम्बाई λ (मीटर)
10	35.6	144.5	151.8
100.........	3 56	14.45	15.18
1000.........	0.36	1 44	1.52
10,000	0.036	0.144	0.152
40,000.........	0 009	0.036	0.038
100,000...... .	0.0036	0.0144	0.0152

जिसमें सभी मान से.ग्रा.सै. इकाइयों में हैं । λ ρ, और v तो पहले ही परिभाषित कर दिये गये हैं तथा μ गतिक श्यानता है । ρ, और v की परास छोटी होती हैं इसलिये d में परिवर्तन λ^2/μ से होता है । इसलिये अवशोषण बढ़ती हुई आवृत्ति के साथ तेज़ी से बढ़ता है और कुछ अंश में बढ़ती हुई श्यानता के साथ बढ़ता है और केवल पराश्रव्य तरंगों के लिये ही महत्वपूर्ण है। बर्गमेन (Bergman 1939) के अनुसार जल में अवशोषण ऊपर दी गई समीकरण से सूचित अवशोषण से अत्यधिक होता है । हार्टमेन और फोक (1940) ने प्रायोगिक आंकड़े प्राप्त किये जो यह सूचित करते हैं कि अवशोषण सन्निकटतः सहस्र गुना बृहत् है । आया कि समुद्र में अवशोषण इन प्रयोगशाला के परीक्षणों द्वारा बताये गये मान के बराबर या उससे अधिक होता है इस क्षेत्र में छानबीन की आवश्यकता है ।

ध्वनि तरंग जिस वेग से जल में गुजरता है वह गहराई के साथ बहुत बदलता है । इसलिये पराश्रव्य तरंगों का एक दंड जब क्षैतिज वत् दिशा में पारगमित हो तो वह वर्तित हो सकता है । ऊपरी परतों में बढ़ती हुई गहराई के साथ वेग सामान्यतः घटता है और दंड नीचे की ओर मुड़ जाती है । यू. एस. कोस्ट और जीयोडेटीक सर्वे स्वेनसन (Swainson, 1936) द्वारा किये गये अध्ययनों से पता चला है कि ध्वनि आवेग सीधे ही हाइड्रोफोन तक पहुँच सकता है या पृष्ठ अथवा तल से एक या अधिक बार परिवर्तित होने के बाद हाइड्रोफोन तक पहुँच सकता है । कई स्थितियों में अनेक विभिन्न किरणों में, जो विभिन्न कालान्तर

के वाद प्राप्त की जाती थी, प्रभेद करना सम्भव था। केवल 20 किलोमीटर से कम की दूरियों और जब तल तक की गहराई लगभग 2000 मीटर हो तो सीधा संचारण प्राप्त किया जा सका था। ताप और लवणता से संगणित वेग के अनुरूप प्रत्यक्ष तरंग आवेग का वेग पाया गया परन्तु तरंग आवेग जो परावर्तित होती थी, उनके अधिक लम्बे पथ से गुजरने के कारण, उन्होंने आभासी "क्षैतिज" वेग को सैद्धान्तिक वेग से कम पाया। यह आनुभविक क्षैतिज वेग जहाज और हाईड्रोफोन के बीच की दूरी, तल की गहराई, तल पार्श्विका, जल के भौतिक गुण इत्यादि पर निर्भर करता है।
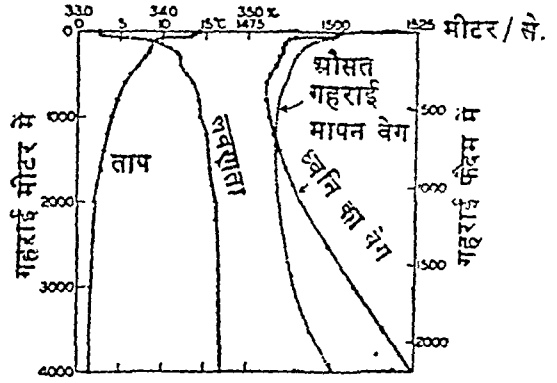
चित्र 19. 12°57′ उत्तर और 122°07′ पश्चिम दक्षिणी केलीफोर्निया से दूर की लवणता और ताप का ऊर्ध्वाधर वितरण, ध्वनि का संगणित वेग तथा माध्य गहराई मापन वेग।

जैसा कि पहले वर्णन किया गया है ऊर्ध्वाधर वेग लवणता और ताप का वितरण तथा गहराई का फलन होता है। बहुत से ध्वनिक गहराई मापी यंत्रों को एक अचर "गहराई मापन वेग" सामान्यतया 800 से 820 फैदम प्रति सैंकड (1463 से 1500 मी./सै.) के लिये समंजित किया जाता है। कुछ स्थितियों में पाठ्यांकों में वास्तविक गहराई के लिये संशोधन करना वांछनीय हो जाता है। यदि लवणता और ताप का वितरण ज्ञात हो तो संशोधन किया जा सकता है। महासागर के विभिन्न क्षेत्रों के लिये तथा विभिन्न गहराइयों के लिये "औसत गहराई मापन वेग" अर्थात् पृष्ठ से कथित गहराई तक के औसत वेग, ब्रिटिश एडमिरल्टी टेवल्स में हैं। आम तौर पर ये प्रारम्भ में कुछ अंश में गहराई के साथ घटते हैं चूंकि घटता हुआ ताप अधिक प्रभावी होता है परन्तु वृहत् गहराइयों पर वे पुनः वढ़ते हैं जैसे ही दाव का प्रभाव प्रवल होने लगता है। चित्र 19 में दक्षिणी केलीफोर्निया के किनारे से दूर किसी स्टेशन पर ऊर्ध्वाधर ताप तथा लवणता का वितरण वताया गया है और इसके साथ ही तदनुरूपी ध्वनि का वेग वताया गया है जो ब्रिटिश एडमिरल्टी टेवल्स से संगणित सभी गहराइयों पर हैं। इसी चित्र में औसत गहराई मापन वेग भी वताया गया है। यह वाद वाला वेग पृष्ठ पर 1503 मी/सै. से घटकर 800 और 1800 मीटर तक की गहराइयों के लिये न्यूनतम 1484 मीटर/सैकण्ड हो गया है और तव 4000 मीटर पर फिर से वढ़कर 1496 मीटर/ सैकण्ड हो गया है।

विकिरण का अवशोषण

शुद्ध समुद्र जल और आसुत जल के अवशोषण गुणांक—जल में तरंग लम्बाई λ वाले विकिरण की समान्तर किरणावली की तीव्रता दण्डों की दिशा में घटती है और अत्यन्त सूक्ष्म मोटाई की परत में यह कमी, ऊर्जा I तथा परत मोटाई के समानुपाती होती है

$$dI_{\lambda} = -x'_{\lambda} I_{\lambda} dx$$

अनुपाती गुणांक x', अवशोषण गुणांक कहलाता है। इस समीकरण को $x=h$ और $x=h+L$ के बीच की सीमाओं तक समाकलन करने से यह मिलता है कि

$$x'_{\lambda} = \frac{2.30}{L}(\log I_{\lambda h} - \log I_{\lambda (h+L)}),$$

जिसमें घटक 2.30 इसलिये आता है क्योंकि प्राकृतिक लघुगणक के स्थान पर आधार 10 के लघुगणक काम में लिये गये हैं और L परत की मोटाई है जिसके अन्दर विकिरण की ऊर्जा $I\lambda,h$ से घटकर $I\lambda(h+L)$ हो गयी। यह पश्चादुक्त समीकरण अवशोपण गुणांक की परिभाषा देने का भी काम करती है। अवशोषण गुणांक का सांख्यिकी मान लम्बाई की इकाई पर निर्भर करता है जिसमें L को अभिव्यक्त किया जाता है। भौतिकी में इकाई 1 सेन्टीमीटर है परन्तु समुद्र विज्ञान में वह आम कार्य प्रणाली हो गयी है कि 1 मीटर को लम्बाई की इकाई की तरह काम में लिया जावे। इसलिये गुणांक के जो संख्यात्मक मान यहां दिये जावेगें वे भौतिकी की पाठ्य पुस्तकों में दिये गये तदनुरूपी मानों से एक सौ गुना अधिक होंगे।

जल की परत से गुजरने वाले विकिरण की तीव्रता में कमी केवल वास्तविकता में अवशोषित विकिरण यानी किसी दूसरे रूप की ऊर्जा में परिवर्तित विकिरण—की मात्रा पर ही निर्भर नहीं करती परन्तु उस मात्रा पर भी निर्भर करती है जो पार्श्विक रूप से प्रकीर्ण होती है। 'शुद्ध' जल में प्रकीर्णन जल के अणुओं से होता है और प्रकीर्णन का प्रभाव जल के अणु की संरचना से सम्बन्धित होता है (3.27)। तो भी, जब शुद्ध जल में अवशोषण मापा जाता है, प्रकीर्णन का प्रभाव पृथक नहीं किया जाता परन्तु अवशोषण गुणांक में समाविष्ट किया जाता है, जो तरंग लम्बाई के साथ बहुतायत से बदलता है।

शुद्ध जल के अवशोषण गुणांक के बड़ी संख्या में माप किये गये हैं परन्तु विभिन्न अनुसंधाताओं के परिणाम एक समान नहीं हैं : डोर्से (Dorsey 1940)। इस प्रकार 0.48μ ($1\mu=0.0001$ से.मी.) की तरंग लम्बाई पर जहाँ अवशोषण बहुत कम होता है, अवशोषण गुणांक के निम्नलिखित मान प्रकाशित किये गये हैं :

हुफनर और अल्ब्रेक्ट (Hufner and Albrecht 1891)................0.04
इवान, (Ewan 1895)..0.030

एस्चकीनास, (Aschkinass 1895)..0.020
सायर, (Sawyer 1931)... 0.015

इस प्रकार की असंगतियों के कारण शुद्ध जल में अवशोषण यथार्थता में ज्ञात नहीं है परन्तु तुलनात्मक आधार के लिये, 0.35μ से 0.65μ की परास में डब्ल्यू. आर. सायर के निर्धारणों के अनुसार अवशोषण गुणांक के मान, सारणी 21 में हैं और उसी सारणी में जे. आर. कोलीन्स के अनुसार 0.65μ से बृहत् तरंग लम्बाइयों के लिये गुणांक हैं डाईट्रीच, (Dietrich, 1939)। सायर के परिणाम इसलिये चुने गये हैं क्योंकि निस्पन्दित समुद्र जल से किये गये परीक्षणों से क्लार्क और जेम्स, (Clark & James 1939) ने भी ऐसे ही मान प्राप्त किये थे।

सारणी से यह स्पष्ट है कि जल 0.4μ और 0.6μ के बीच की तरंग लम्बाई के विकिरण, यानी वर्णक्रम के बैंगनी, नीले, हरे और पीले भागों की दृश्य किरणों के लिये बहुत पारदर्शक है। यह नारंगी और लाल रोशनी के लिये अल्प पारदर्शक है और अवरक्त भाग में पारदर्शकता बिल्कुल नहीं के बराबर है (चित्र 21) क्योंकि, यदि अवशोषण गुणांक प्रति मिटर के लिये 100 होता है तब विकिरण का 99.5 प्रतिशत 5.3 से. मी. मोटाई की परत में अवशोषित हो जाता है।

सारणी 21

प्रति मीटर शुद्ध जल का अवशोषण गुणांक 0.32μ और 0.65μ के बीच की तरंग लम्बाई पर डब्ल्यू. आर. सायर के अनुसार तथा 0.65μ से अधिक की तरंग लम्बाई पर जे. आर. कोलीन्स के अनुसार

तरंग लंबाई माइक्रोन μ में	अवशोषण गुणांक प्रति मीटर	तरंग लंबाई μ में	अवशोषण गुणांक प्रति मीटर	तरंग लंबाई μ में	अवशोषण गुणांक प्रति मीटर	तरंग लंबाई μ में	अवशोषण गुणांक प्रति मीटर
.32......	0.58	.52......	0.019	.85...	4.12	1.60...	800
.34......	0.38	.54......	0.024	.90...	6.55	1.70...	730
.36......	0.28	.56......	0.030	.95...	28.8	1.80...	1700
.38......	0.148	.58......	0.055	1.00 ..	39.7	1.90..	7300
.40......	0.072	.60......	0.125	1.05...	17.7	2.00...	8500
.42......	0.041	.62......	0.178	1.10...	20.3	2.10...	3900
.44......	0.023	.65......	0.210	1.20...	123.2	2.20...	2100
.46......	0.015	.70......	0.84	1.30...	150	2.30...	2400
.48......	0.015	.75......	2.72	1.40...	1600	2 40...	4200
.50......	0.016	.80......	2.40	1.50...	1940	2.50...	8500

कोलीन्स ने आसुत जल में अवशोषण की लवण घोलों में अवशोषण से तुलना की है और उसके परिणामों से यह निर्णय किया जा सकता है कि समुद्र जल में पाई जाने वाली सांद्ताओं के विलीन लवणों का अवशोषण गुणांक पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। अधिकतम प्रभाव लगभग 1.3 प्रतिशत प्रतीत होता है और प्रेक्षित मानों में अनिश्चितता इस मात्रा से अधिक होती है। इन परिणामों की क्लार्क और जेम्स (Clark & James 1939) ने पुष्टि की है जिन्होंने पाया कि 'बर्कफेल्ड-छना हुआ महासागरीय समुद्र जल' से निरूपित शुद्ध जल में अवशोषण व्यवहारिकता में आसुत जल में अवशोषण के समरूप होता है। उनके प्रेक्षण यह बताते हैं कि आसुत जल के लिये सायर के मान परा बैंगनी तरंगों यानी 0.38μ से छोटी तरंग लम्बाइयों के लिये, अति उच्च हो सकते हैं।

यह भी निर्णय किया जा चुका है कि अवशोषण पर ताप का प्रभाव जिसे आसुत जल के लिये स्थापित कर दिया गया है असंदूषित समुद्र जल के लिये प्रयोज्य है। ताप के परिवर्तनों का प्रभाव अवशोषण को बढ़ाना है अवरक्त के कुछ भागों में प्रत्येक 1°C से ताप के बढ़ने पर लगभग 0.5 प्रतिशत से अवशोषण बढ़ता है परन्तु वर्णक्रम के एक बड़े हिस्से में ताप का प्रभाव बहुत कम होता है। समुद्र जल का वर्णन करते समय इस प्रभाव की उपेक्षा की जा सकती है।

समुद्र में लोप-गुणांक—समुद्र विज्ञान में जिस दर से अधोमुखी प्रगामी विकिरण घटता है उसके लिये विशेष रुचि होती है। घटने की दर को अवशोषण गुणांक के समतुल्य गुणांक से इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है :

$$x'_{\lambda}=2\ 30\ (\log I_{\lambda,z}-\log I_{\lambda(z+1)}),$$

जहाँ $I_{\lambda,z}$ और $I_{\lambda,(z+1)}$ Z और $(Z+1)$ मीटर की गहराई पर अनुप्रस्थ पृष्ठों में λ तरंग लम्बाई के विकिरण की तीव्रताओं का निरूपण करते है। इस गुणांक के लिये विभिन्न नाम प्रस्तावित किये गये जैसे परागमनीय घातांक (क्लार्क, Clarke 1933) या लोप गुणांक पेटरसन, (Pettersson. 1936 a) यह पश्चादुक्त नाम विस्तृता से काम में लिया गया है और यहां भी काम में लिया जावेगा, यद्यपि जिस प्रक्रिया से विकिरण की तीव्रता में कमी होती है वह अवशोषण कहलावेगा। समुद्र में निलम्बित कणों के कारण प्रकीर्णन के बढ़ने से और घुली हुई रङ्गीन वस्तुओं के मौजूद होने से, विकिरण का अवशोषण जटिल हो जाता है। इसलिये किसी दी हुई तरंग लम्बाई के विकिरण का लोप गुणांक एक इलाके से दूसरे इलाके तक विस्तृत सीमाओं में बदलता है और किसी दिये गये इलाके में यह काल और गहराई के साथ बदलता है।

मानक आकार (30 से.मी.) की एक श्वेत चकती, सेक्ची चिकती, को जल में अवतरण कर, और गहराई प्रेक्षित कर जहाँ पर चकती दृष्टि से ओझल हो गयी हो

वर्णक्रम के दृश्य भाग में अवशोषण के प्रथम असोचित मापन किये गये थे। दूसरी विधियों से प्राप्त अभिनव यथार्थ मापों से तुलना करने से पता चला कि इन्गलिश चेनल में दृश्य किरणों का लोप गुणांक, सूत्र $x'=1.7/D$ से स्थूल रूप से उपलब्ध किया जा सकता है इस सूत्र में D दृश्यता की मीटर में अधिकतम गहराई है जो सेक्ची चकती से मालूम की जाती है पूल और एटकीन्स, (Poole and Atkins 1929)

समुद्र जल में विकिरण के अवशोषण के अनुसंधान का दूसरा कदम उठा जब फोटो पट्टिकाओं को जलबन्द बर्तनों में बन्द कर स्थल मंडल पर उद्भासित किया गया। इस प्रकार के परीक्षण एज़्रोसी के आसपास विभिन्न गहराइयों पर पेनक्रोमेटिक (फोटो) पट्टिकाओं को उद्भासित कर हेलैन्ड-हेन्सैन (Helland-Hansen 1912a) द्वारा माइकल सार्स अभियान में किये गये थे। इन परीक्षणों से पता चला कि फोटो पट्टिकाएँ अत्यधिक गहराइयों पर काली हो गयी थीं। 500 मीटर की गहराई पर 40 मिनट के लिये उद्भासित की गयी पट्टिका में भारी कालापन था तथा 1000 मीटर की गहराई पर 80 मिनट के लिये उद्भासित दूसरी पट्टिका ने भी कालापन बताया परन्तु 1700 मीटर की गहराई पर 120 मिनट के लिए उद्भासित की गई तीसरी पट्टिका ने तो किसी भी प्रकार का प्रभाव नहीं बताया। ये परीक्षण जून 6, 1910 के दोपहर में किये गये थे जब आकाश भी साफ था। 500 मीटर की गहराई पर यह पाया गया कि विकिरण की स्पष्ट रूप से अधोमुखी दिशा थी क्योंकि एक घन के ऊपरी भाग में पट्टिकाओं को उद्भासित की गयी तो ये पार्श्व में उद्भासित पट्टिकाओं की तुलना में अत्यधिक काली थी।

दूसरे परीक्षणों में वर्ण फिल्टर काम में लिये गये थे जिनसे पता चला कि वर्णक्रम का लाल भाग तेजी से अवशोषित हो गया, जबकि हरी और नीली किरणें अति वृहत् गहराइयों तक चली गयी। वर्णक्रमीय ज्योति मापी के उपयोग से विभिन्न तरंग लम्बाइयों पर अवशोषण के मात्रिक परिणाम प्राप्त किये गये नुडसन, (Knudsen, 1922)। परन्तु ये विधियाँ बहुत ही कष्ट साध्य थीं तथा वृहत् गहराइयों तक काम में लेने के लिये यथेष्ट रूप से सुग्राही नहीं थी।

वर्णक्रम के विभिन्न भागों में लोप गुणांक के द्रुत एवम् परिशुद्ध निर्धारण को अभिनव वर्षों में प्रकाश-विद्युत् सेलों के पुरःस्थापन ने सम्भव कर दिया है। कई विभिन्न उपकरण अभी तक उपयोग में हैं परन्तु समुद्रीय गवेषणा के लिये अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् की समिति द्वारा एक मानक तकनीक प्रस्तावित की गयी है एटकीन्स इत्यादि, (Atkins *et al*, 1938)। चूंकि विभिन्न तरंग लम्बाइयों पर अवशोषण में विस्तृत परिवर्तन होते हैं इसलिये संकीर्ण वर्णक्रमीय बैंड में अवशोषण को यथेष्ट रूप से मापने के लिये प्रयास निदेशित किये गये। उचित वर्ण फिल्टर लगे हुए जल-

बंद वर्तन में बंद प्रकाश विद्युत् या प्रकाशानुवर्ती सेल को क्रम से जल में अवतरण कर, और डेक पर प्रकाश-विद्युत् धारा को एक सुग्राही गेल्वेनोमीटर या उचित सेतु परिपथ से प्रेक्षण कर, निर्धारणों को निष्पत किये गये हैं। मापन अचर आपाती रोशनी द्वारा या तो साफ धूपयुक्त दिनों में करने चाहिये या उन दिनों करना चाहिये जब आकाश एक समान आछन्न हो क्योंकि आकाश में विखरे हुए बादलों के दिनों में आपाती रोशनी में तेजी से परिवर्तन होते हैं और इन परिवर्तनों से स्वाभाविकतः अवशोषण के गलत परिणाम निकलेंगे। किसी गहराई तक पहुँचने वाले विकिरण की प्रतिशत मात्रा को मालूम करने के लिये यह आवश्यक है कि आपाती विकिरण के समकालिक पाठ्यांक जहाज पर भी लिये जावें। जो विभिन्न एहतियात रखने होते हैं उनका हवाला, संदर्भ-ग्रंथ सूची में दिये गये लेखों, विशेषकर एटकिन्स आदि (Atkins *et al*, 1938) से दिया गया है।

ये विधियाँ निश्चित मोटाई की परत में अवशोषण की सूचना देती हैं। किसी दीगई गहराई पर समुद्र जल की पारदर्शकता का मापन करने के लिये और प्रकीर्ण प्रकाश के लिये उपकरण एच. पेटरसन (H. Petterson, 1936b) ने अभिकल्पित किये हैं और आपेक्षित मान मालूम करने के लिये काम में लिये गये हैं। विशेषकर ऐसा निरूपण किया गया है कि सीमा पृष्ठों पर पारदर्शकता और प्रकीर्णता में तीव्र परिवर्तन होते हैं। समुद्र में विकिरण के अवशोषण का अध्ययन काफी प्रगति पर है और इसलिये निम्नलिखित सामान्य कारणों में से अनेक संयम-पूर्वक प्रस्तुत हैं।

समुद्र में विभिन्न तरंग लम्बाइयों के विकिरण के लिये लोप गुणांक के लक्षण के मुख्य परिणाम उट्टरवेक (Utterbeck, 1936) और जोरग्नसेन तथा उट्टरवेक (Jorgensen & Utterbeck, 1939) द्वारा प्रकाशित आंकड़ों की सहायता से सुगमता से चित्रित किये जा सकते हैं। उट्टरवेक ने लोप गुणांक को यथा सम्भव संकीर्ण वर्णक्रमीय बैंड में मालूम करने का प्रयास किया और प्रेक्षित लोप गुणांको को भिन्न तरंग लम्बाइयों से निर्दिष्ट किया परन्तु यह समझा जाना चाहिये कि तरंग लम्बाई वास्तविकता में एक निश्चित चौड़ाई की वर्णक्रमीय बैंड के लिये होती है। जुआन डी फ्यूका के जलडमरुमध्य के भीतरी भागों में द्वीपों के निकट के उथले जल में, तथा वाशिंगटन के किनारे से दूर के खुले महासागरीय जल में, चार स्टेशनों पर उन्होंने अनेक प्रेक्षण किये और ये क्रमशः तटीय तथा महासागरीय जल के प्रतिरूपी माने जा सकते हैं। उट्टरवेक द्वारा काम में ली गयी तरंग लम्बाई पर शुद्ध जल का अवशोषण गुणांक, महासागरीय जल में प्रेक्षित न्यूनतम, औसत, तथा अधिकतम लोप गुणांक और तटीय जल में प्रेक्षित न्यूनतम, औसत और अधिकतम गुणांक सारणी 22 में हैं।

सारणी 22

प्रति मीटर शुद्ध जल में अवशोषण गुणांक और समुद्र में लोप गुणांक

(उट्टरवेक के आंकड़ों से)

जल का प्रकार		तरंग लम्लाई (μ) माइक्रोन में								
		.46	.48	.515	.53	.565	.60	.66	.80	1.00
शुद्ध जल		.015	.015	.018	.021	.033	.125	.280	2.40	39.7
महासागरीय जल	न्यूनतम	.038	.026	.035	.038	.074	.199			
	औसत	.086	.076	.078	.084	.108	.272			
	उच्चतम	.160	.154	.143	.140	.167	.333			
तटीय जल	न्यूनतम	.224	.230	.192	.169		.375	.477		
	औसत	.362	334	.276	.269		.437	.623		
	उच्चतम	.510	.454	.398	.348		489	.760		

समस्त न्यूनतम तथा अधिकतम गुणांक प्रत्येक वर्ग में चार लघुतम और चार उच्चतम मान से संगणित किये गये हैं। सारणी 22 के आंकड़े चित्र 20 में निरूपित किये गये हैं। महासागर के बिल्कुल निर्मल जल में लोप गुणांक शुद्ध जल के गुणांकों से केवल दुगुने थे और इनके औसत मान शुद्ध जल के गुणांकों से चार-पांच गुना थे जब कि इनके अधिकतम मान दस गुना वृहत् थे। तटीय जल में लोप गुणांक के न्यूनतम मान शुद्ध जल के अवशोषण गुणांकों से सोलह गुना तक बड़े थे, औसत मान चौबीस गुना तक बड़े थे तथा अधिकतम मान चौंतीस गुना तक बड़े थे। तो भी, लोप गुणांकों में वृद्धि वर्णक्रम के विभिन्न भागों में विस्तृता से बदली, और अधिक लम्बी तरंग लम्बाइयों की अपेक्षा अधिक छोटी तरंगों के लिये गुणांक में वृद्धि अत्यधिक थी।

विभिन्न तरंग लम्बाइयों के विकिरण के लिये जल की पारदर्शकता 1 मीटर मोटी परत के वेधने वाले विकिरण की प्रतिशत मात्रा की मदद से अभिव्यक्त की जा सकती है। ये प्रतिशत मात्रा सारणी 23 में दी गयी हैं जिससे यह स्पष्ट है कि बिल्कुल निर्मल जल की परम पारदर्शकता 0.48μ यानी वर्णक्रम के नीले भाग के लिये है जब कि तटीय जल की परम पारदर्शकता 0.53μ या उच्च तरंग लम्बाइयों यानी वर्णक्रम के हरे या हरे-पीले भाग के लिये है। यह भी स्पष्ट है कि 0.48μ तरंग लम्बाई के विकिरण का 97.5 प्रतिशत महासागर के बिल्कुल निर्मल जल की 1 मीटर मोटी परत से गुजर जाता है परन्तु उसी तरंग लम्बाई के विकिरण का केवल 63.5 प्रतिशत ही 1 मीटर तटीय गंदले जल से गुज़र पाता है।

लोप गुणांकों के अधिकतम और माध्य मान में भारी अन्तर यह बताते हैं, कि समुद्र जल में अवशोषण बहुत विस्तृत सीमाओं में बदलता रहता है। सारणी 22 में दिये गये उदाहरण में महासागरीय तथा तटीय जल में प्रतिशत परिवर्तन लगभग
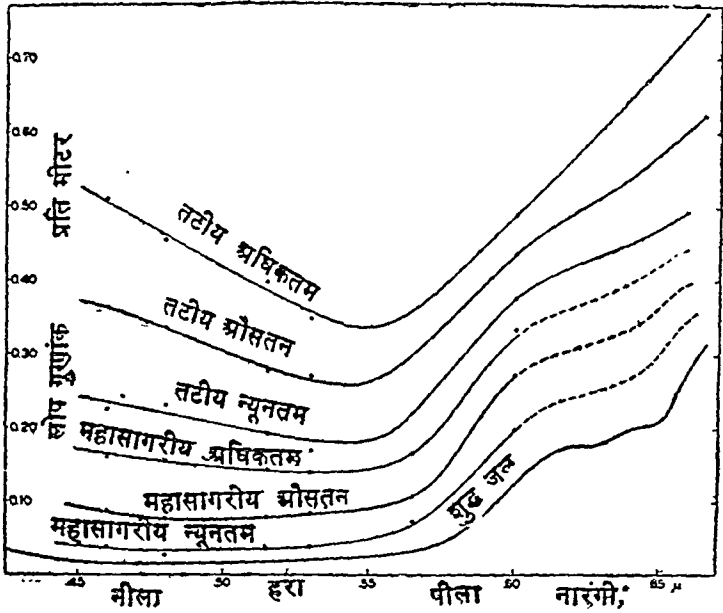
चित्र 20. विभिन्न प्रकार के समुद्र जल तथा शुद्ध जल में विभिन्न तरंग लम्बाइयों के विकिरण के लोप गुणांक।

समान हैं और महासागरीय जल में अधिकतम मान तटीय जल के न्यूनतम मानों के समान होने लगते हैं। किसी निश्चित इलाके में ऊर्ध्वाधर दिशा में बड़े परिवर्तन भी होते हैं जहां निम्न अवशोषण की परतें उच्च अवशोषण की परतों से एकान्तर होती हैं, और यह लक्षण वास्तविक स्थितियों को और भी जटिल कर देता है।

इनके समरूप परिणाम अन्य अनुसन्धाताओं ने इन्गलिश चेनल पूल, और एटकिन्स, (Poole & Atkins 1929) पूल (Poole 1936) अमरीकी संयुक्त राज्यों के पूर्वी तट से दूर के जल, क्लार्क (Clarke 1939) तथा दक्षिण केलीफोर्निया से दूर के जल जैसे विस्तीर्ण विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त किये हैं। समस्त दृष्टान्तों में यह पाया गया है कि तटीय जल की अपेक्षा महासागरीय जल में अवशोषण कम होता है परन्तु यह स्थानीय और गहराई दोनों की विस्तृत सीमाओं में बदलता रहता है। जहां कहीं वर्णक्रम के विभिन्न भागों में अवशोषण की जांच की गयी वहां यह पाया गया कि अवशोषण वर्णक्रम के लाल सिरे की अपेक्षा नीले सिरे में अत्यन्त ही कम होता है। यह भी पाया गया कि नीला प्रकाश निर्मल जल के अति बृहत् गहराइयों को वेध देता है जबकि हरा या पीला प्रकाश गँदले जल में और भी नीचे तक पहुँच जाता है।

सारणी 23

1 मीटर जल द्वारा पारगमित किसी नियत तरंग लम्बाई के विकिरण का प्रतिशत

(सारणी 22 के आँकड़ों पर आधारित)

जल के प्रकार		तरंग लम्बाई (μ) माइक्रोन में						
		.46	.48	.515	.53	.565	.60	.66
शुद्ध जल		98.5	98.5	98.2	97.9	96.8	88.3	75.9
महासागरीय जल	न्यूनतम	96.4	97.5	96.6	96.3	92.9	81.8	
	औसत	91.8	92.7	92.5	91.8	89.8	75.9	
	उच्चतम	85.1	85.7	86.7	86.9	84.5	71.6	
तटीय जल	न्यूनतम	80.0	79.4	82.6	84.5		68.7	62.0
	औसत	69.7	71.6	75.9	76.4		64.6	53.6
	उच्चतम	60.0	63.5	67.1	70.6		61.4	46.7

सूर्य के उन्नतांश का लोप गुणांक पर प्रभाव—

लोप गुणांक ऊर्ध्वाधर दूरी में तीव्रता के घटने का माप है और इसलिये किरणों की तिर्यक्ता पर निर्भर रहता है। तो भी, प्रकीर्णन के प्रभाव से और हवा से जल में प्रवेश करते समय वर्तन से आपाती किरणों की तिर्यक्ता घट जाती है। जब सूर्य की किरणें जल-पृष्ठ से गुजरती हैं तो वर्तनकोण शून्य से जब कि सूर्य शिरो बिन्दु पर होता है 48.5 डिग्री तक बढ़ जाता है जब कि सूर्य क्षितिज पर होता है और इसलिये जल मे वेधन करती हुई अति तिर्यक् किरणें ऊर्ध्वाधर के साथ 48 डिग्री से छोटा कोण बनाती हैं। अति तिर्यक् किरणों का जो विकिरण साधारण गहराई तक वेधन कर जाता है वह अवशोषण से विक्षेपण तथा प्रकीर्णन के कारण लगभग ऊर्ध्वाधर हो जावेगा और मापा गया लोप गुणांक विस्तृत सीमाओं में सूर्य के उन्नतांश से स्वतंत्र रहेगा। आपाती विकिरण की तिर्यक्ता में कमी को जानसन और लिल्जेक्वीस्ट (Johnson and Liljequist 1938) ने प्रत्यक्ष रूप से प्रमाणित किया है। बहुत नीचे सूर्य होने की स्थितियों की जांच नहीं की गई है परन्तु यह सम्भव है कि नीचे सूर्य पर लोप गुणांक बढ़ जाते हैं। तथा इस वृद्धि का वृहत् गहराइयों पर (3.28) प्रवेशी ऊर्जा के दैनिक विचरण से कोई सम्बन्ध हो।

समुद्र में विकिरण का प्रकीर्णन—विकिरण के प्रकीर्णन की जांच एक तो पेटरसन के प्रकीर्णनमापी (3.29) की सहायता से प्रत्यक्ष में की गयी और दूसरी क्षैतिज तथा ऊर्ध्वाधर विकिरण या अधोमुखी और ऊर्ध्वामुखी प्रगामी विकिरण की सापेक्ष तीव्रताओं को माप कर की गयी है। जोर्गनसेन और उट्टरबेक (1939) ने मालूम

किया कि तटीय जल में ऊर्ध्वामुखी प्रगामी विकिरण की तीव्रता अधोमुखी प्रगामी विकिरण लघु तरंग लम्बाइयों के लिये 1 से 3 प्रतिशत तक और दीर्घ तरंग लम्बाइयों के लिये 0.5 से 2 प्रतिशत तक सीमित होती हैं। महासागरीय जल में उट्टरबेक (1936) ने लघु तरंग लम्बाइयों पर 1 से 2 प्रतिशत के बीच के अनुपात पाये। क्लार्क (1936) ने उथले तटीय जल में अत्यन्त ही उच्चतर मान पाये परन्तु मेने की खाड़ी के अथाह क्षेत्र में समरूप मान पाये।

क्षैतिज तथा ऊर्ध्वाधर विकिरण की सापेक्ष तीव्रताओं का इन्गलिश चेनल में पूले और एटकीन्स द्वारा, तथा अमरीकी संयुक्त राज्यों के पूर्वी तट से दूर के जल में क्लार्क द्वारा माप किया गया। क्लार्क द्वारा पाया गया उच्चतम मान 17 प्रतिशत था परन्तु पूले और एटकीन्स ने इन्गलिश चेनल में 25 मीटर की गहराइयों तक क्षैतिज विकिरण के लिये 50 प्रतिशत के औसत मान प्रकाशित किये हैं। इन परीक्षणों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्थल मण्डल ज्योति बढ़ती हुई गहराई, विशेषकर तटीय जल में, के साथ निरन्तर विसृत्त होती जाती है परन्तु विकिरण के दैशिक लक्षण केवल धीरे-धीरे लुप्त होते हैं। महासागरीय निर्मल जल में यह निष्कर्ष मुख्य रूप से वास्तविक है जहां हेलैन्ड-हेनसन (1912a) ने पाया कि 500 मीटर की गहराई पर क्षैतिज विकिरण की अपेक्षा ऊर्ध्वाधर विकिरण स्पष्ट रूप से अधिक तीव्र थे (3.30)।

समुद्र में बृहत लोप गुणांक के कारण—परम शुद्ध जल के लोप गुणांक की तुलना में समुद्र में बृहत लोप गुणांकों का नियमतः कारण सूक्ष्म कणों को बताया जाता है। ये सूक्ष्म कण विकिरण का प्रकीर्णन और परावर्तन करते हैं तथा स्वयं विकिरण का अवशोषण करते हैं। यदि ऐसे कण विकिरण की तरंग लम्बाई λ की तुलना में छोटे हों तो लार्ड रेले के अनुसार प्रकीर्णन λ^{-4} के अनुपाती होता है, और इसलिये 0 46μ जैसी तरंग लम्बाई के लिये प्रभाव 0.60.μ तरंग लम्बाई की अपेक्षा 2.86 गुना बृहत् होगा। इस चयनात्मक प्रभाव से न्यूनतम अवशोषण क्षेत्रों में दीर्घ तरंग लम्बाइयों की ओर विचलन होने लगता है।

क्लार्क और जेम्स (1939) ने मालूम किया कि महासागरीय जल में बढ़ा हुआ अवशोषक मुख्यरूप से निलम्बाभ के कारण होता था जो एक 'बारीक' बर्कफेल्ड फिल्टर की सहायता से निष्कासित किया जा सकता है और उन्होंने पाया कि ये निलम्बाभ अपने प्रभाव में बृहतरूप से अचयनात्मक थे। इसके विपरीत, उट्टरबेक (1936) के आकड़ों ने सूचित किया कि महासागरीय जल में बढ़ा हुआ अवशोषण कम से कम अंशतः चयनात्मक प्रकीर्णन के कारण ही है क्योंकि लोप गुणांक दीर्घ तरंग लम्बाइयों की अपेक्षा लघु तरंग लम्बाइयों पर अधिक, शुद्ध जल के गुणांकों से भी ऊपर, बढ़ गये थे। (सा. 22) काल्ले (Kalle, 1938) का मत है कि चयनात्मक प्रकीर्णन प्रबल

महत्व का है (3.31) परन्तु शुद्ध जल की तुलना में महासागरीय जल में अवशोषण को वढ़ाने के प्रक्रम का प्रश्न अभी तक हल नहीं हुआ है। यहाँ तक कि शुद्ध जल की अपेक्षा महासागरीय विल्कुल निर्मल जल में भी अवशोपण अधिक होता है जिसे यह तथ्य सूचित करता है कि महीन निलम्वित पदार्थ सदैव विद्यमान रहता है। यह कहा जा सकता है कि महासागरीय जल में धूल सदैव रहती है।

तटीय जल के अवशोपण गुणांकों में वृद्धि अंशतः अन्य प्रक्रिया के कारण प्रतीत होती है। क्लार्क और जेम्स (1939) अपने परीक्षण से निष्कर्ष निकालते हैं कि तटीय जल में निलम्वाभ और "फिल्टर से निकलने वाले" दोनों प्रकार के पदार्थ अवशोपण को वढ़ाने में प्रभावशाली होते हैं, और अत्यन्त ही चयनात्मक कार्य करते हैं तथा लघु तरंग लम्वाइयों पर अवशोपण अधिकतम होता है। लघु तरंग लम्वाइयों पर ये वृहत् अवशोपण उट्टरवेक के माप द्वारा निर्दशित किये गये हैं। (सा. 22) क्लार्क ने "फिल्टर से निकलने वाले" पदार्थ के स्वरूप का वर्णन नहीं किया है परन्तु काल्ले (Kalle 1938) ने वताया है कि समुद्र जल में पीले रंग के जल विलेय रंगद्रव्य होते हैं। ये रंगद्रव्य ह्यमिक अम्ल से सम्वन्धित प्रतीत होते हैं परन्तु उनके रासायनिक संघटन का पूर्णरूप से परीक्षण नहीं किया गया है, जिस कारण से काल्ले उन्हें "पीली वस्तुएँ" कहता है। इस पीली वस्तु का तटीय क्षेत्रों में भारी वहुलता से पाया जाना मालूम पड़ता है परन्तु काल्ले ने खुले महासागर में भी इसका होना वताया है और वह विश्वास करता है कि यह, समुद्र के पादक प्लवक से सम्वन्धित एक काफी स्थायी उपापचय पदार्थ का, निरूपण करता है। तटीय जल में अवशोपण के लक्षण के लिये, तथा न्यूनतम अवशोपण के लिये वर्णक्रम वैंड के दीर्घ तरङ्ग लम्वाइयों की तरफ विचलन के लिये इस पीले पदार्थ का चयनात्मक अवशोपण अंशतः उत्तरदायी हो सकता है।

अवशोपण पर पादकप्लवक जीवसंख्याओं का प्रत्यक्ष प्रभाव कहीं भी वताना सम्भव नहीं हो पाया है परन्तु भारी जीव संख्या पारदर्शकता को कम कर सकती है। इस समय तो ऐसा लगता है कि शुद्ध जल की अपेक्षा समुद्र जल में अवशोपण में मुख्य वृद्धि के दो कारक हैं : एक तो सूक्ष्म निलम्वित कणों का होना और दूसरा विलीन "पीले पदार्थ" का होना। पहला कारक महासागरीय जल में प्रवल होता है और दूसरा तटीय जल में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

समुद्र का रंग :—समुद्र का रंग, जैसा कि समुद्र के तट पर खड़े या जहाज़ पर चढ़े, एक प्रेक्षक को यह दिखाई पड़ता है, एक गहरे नीले से तेज़ हरे रंग तक वदलता है और कुछ परिस्थितियों में यह भूरा या बभुरक्त होता है। नीला जल तो खुले महासमुद्रों का, विशेप कर मध्य और निम्न अक्षांशो में उपलक्षक होता है

जबकि हरा पानी तटीय इलाकों में ज्यादा सर्वनिष्ठ होता है और भूरा या 'लाल' जल केवल तटीय क्षेत्रों में देखा गया है।

समुद्र के रंग की जाँच सेक्ची चकती (3.32) की सहायता से की गयी है, जब चकती के श्वेत निमज्जित पृष्ठ के अभिलंब जल को देखा जावे तब जल का जो रंग प्रतीत होता है उसे प्रेक्षित किया जाता है। इस रंग को एक विशेपरूप से तैयार की गयी रंग मापक्रम 'फोरेल' (क्रुमेल 1907) के अनुसार दर्ज किया जाता है। यह विधि काम चलाऊ है और तटीय जल में सीमान्त रंगों को दर्ज करने के लिये व्यवहार में नहीं ली जाती है। ज्यादा ठीक परिणाम पाने के लिये फिनलैंड के समुद्र में काम करते समय ग्रानक्वीस्ट ने एक लम्बी नली को काम में लिया जो भीतरी भाग में काली की गयी थी और इस प्रकार के उपकरणों में काल्ले (Kalle 1938) द्वारा कई संशोधन किये गये हैं।

काल्ले ने समुद्र के रंग के कारणों के प्रारम्भिक सिद्धान्तों की आलोचनात्मक समीक्षा की और जिस निष्कर्ष पर पहुँचा वह सारे उपलब्ध प्रेक्षणों से संगत प्रतीत होता है। जल अणुओं के अभिलंब प्रकीर्णन या लघुतम दृश्य तरंग लम्बाइयों से छोटे निलम्बित सूक्ष्म कणो के अभिलंब प्रकीर्णन के फलस्वरूप नीले रंग की व्याख्या की गयी जो प्रारम्भिक सिद्धान्तों से सहमत थी। इसलिये जल का नीला रंग आकाश के नीले रंग से तुल्य है। प्रकीर्णन के कारण नीले से हरे के संक्रमण की व्याख्या नहीं की जा सकती और काल्ले ने निष्कर्ष निकाला कि यह संक्रमण तो ऊपर लिखित 'पीले पदार्थ' के कारण है और बताया कि पीले रंग और जल के प्राकृतिक नीले रंग के मिश्रण से हरे रंग का क्रम बनता है जैसा कि समुद्र में दिखाई पड़ता है। प्रतीदीप्ति जल के रंग में अंशदान दे सकती है परन्तु यह गौण महत्व की मालूम पड़ती है।

निलम्बित बड़े कण यदि बड़ी प्रचुरता में हो तो उनका रंग समुद्र जल को रंगीन बना सकता है। इस स्थिति में जल के प्रकाशीय गुणधर्म या विलीन पदार्थो से समुद्र का रंग निर्धारित नहीं किया जाता है परन्तु निलम्बित कार्बनिक या अकार्बनिक कणों के रंगों से किया जाता है और समुचित रूप से जल 'विवर्णित' कहलाता है। भारी वर्षा के बाद बारीकी से निलम्बित खनिज कण जब समुद्र में काफी मात्रा में ले जाये जाते हैं तब विवर्णता दिखाई पड़ सकती है या जब शेवाल या डाइनोफ्लैजेलेटाओं के कुछ स्पीशीज़ की अतिबृहत् संख्या, अनेक दसलक्ष सेल प्रति लीटर, पृष्ठ के अति निकट हों। इस प्रकार "लाल जल," (बहुधा लाल की अपेक्षा अधिक भूरा) जो कि बहुत से क्षेत्रों में बहुधा दिखाई पड़ता है और जिसके अनुसार ही लाल समुद्र (Red Sea) व सिंदूर समुद्र (Vermilion Sea) (केलिफोर्निया की खाड़ी) नाम दिये गये हैं, कुछ शेवाल (लाल समुद्र में ट्रीचोडेस्मीयम ऐरी थ्रे यम) या

डायनोफ्लैंजेलेटा की प्रचुरता के कारण ही हैं। विवर्णता, जिसके गुन्थर (Gunther, 1936) ने सुन्दर उदाहरण दिये हैं उपलक्षक तटीय जल की एक घटना है, समुद्र तट के निकट या उच्च अक्षांशों के समुद्र में हरे रंग बहुतायत से पाये जाते हैं और नीले रंग मध्य तथा निम्न अक्षांशों में खुले महासमुद्रों के लक्षण हैं (चि. 214, 3.33)।

भंवर चालकता, विसरणता और श्यानता

पूर्व विवेचन में यह बार-बार कहा गया है कि अभी तक वर्णित ऊष्मा चालकता, विसरणता तथा श्यानता के गुणांक तभी प्रयोज्य है जब जल स्थिर है या स्तरीय प्रवाह में है। स्तरीय प्रवाह से उस स्थिति को समझा जाता है जिसमें द्रव की चादरें (पतली तहें) एक नियमित ढंग से इस प्रकार बहती हैं जिसमें स्थानीय या दृच्छिक घट बढ़ वेग में नहीं होते हैं। तो भी, विलीन पदार्थों के अणुओं के सहित द्रव के अणु बेतरतीब से बहते हैं और इस बेतरतीब गति के कारण निकटवर्ती परतों के बीच में अणुओं का विनिमय होता है। तदनुसार, यदि निकटवर्ती परतें विभिन्न ताप पर होती हैं तो ऊष्मान्तरण होता है, यदि विलीन पदार्थों की सांद्रता विन्यास में परिवर्तनशील होती है तो उनका विसरण होता है, या संवेग का अन्तरण होता है यदि उनके वेग भिन्न हैं। जो मात्राएँ अन्तरित होती हैं वे ताप, सांद्रता या वेग के प्रवणता के अनुपाती होती हैं और अनुपात के स्थिरांक—यानि ऊष्मा चालकता, विसरणता और श्यानता के गुणांक द्रव के लाक्षणिक गुणधर्म में से ही होते हैं। किसी दिये हुए द्रव के लिये वे ताप, दाब और सांद्रता के फंक्शन होते हैं और प्रयोगशाला में यथार्थ रूप से मालूम किये जा सकते हैं।

प्रकृति में स्तरीय प्रवाह कदाचित ही या कभी भी नहीं देखने को मिलता परन्तु इसके बदले में विक्षुब्ध प्रवाह या क्षुब्धता प्रचलित होती है। विक्षुब्ध प्रवाह वह स्थिति समझनी चाहिए जिसमें तरल के छोटे या बड़े ढेर की बेतरतीब गति किसी साधारण प्रतिरूप पर अध्यारोपित हो। क्षुब्धता का लक्षण कई सारे कारकों पर निर्भर रहता है जैसे प्रवाह का औसत वेग, औसत वेग प्रवणता, और निकाय की सीमाएँ आदि। इन स्थितियों में बहती हुई निकटवर्ती परतों के बीच का विनिमय अणुओं के अदला-बदली तक ही सीमित नहीं रहता वरन् एक परत से दूसरी परत तक विभिन्न आयाम के ढेर भी चले जाते हैं जो अपने साथ अपने लक्षण के गुणधर्म भी लिये जाते हैं। इसके फलस्वरूप, समुद्र में ताप, वेग, लवणता और दूसरे चर के तात्कालिक वितरण का स्नेप शॉट एक महाजटिल प्रतिरूप बतावेगा परन्तु अभी तक इस चित्र को स्थापित करने के कोई साधन विकसित नहीं हुए हैं। सुग्राही धारा मापियों द्वारा लिये गये माप ने बता दिया कि किसी निश्चित इलाके में वेग प्रत्येक सैकण्ड घटता-बढ़ता है परन्तु बहुतसी स्थितियों में महासागरीय धाराओं के प्रेक्षण, उन कालान्तरों के लिये माध्य वेग की जानकारी देते हैं जो कुछ मिनटों से

लेकर चौबीस या अधिक घंटों तक बदलते हों। इसी प्रकार, विशेष माप ने यह निर्दशित कर दिया है कि ताप वितरण का ब्यौरा बहुत ही जटिल है परन्तु आमतौर से प्रेक्षण ऐसी बृहत् दूरियों के अन्तर पर किये जाते हैं कि ताप वितरण के केवल मुख्य लक्षण ही प्राप्त होते हैं। चूंकि ताप, लवणता और वेग के विन्यास में तात्कालिक वितरण का प्रेक्षण करना असम्भव होता है इससे स्वयं यह पता चलता है कि तदनुरूपी प्रवणता मालूम नहीं की जा सकती और प्रयोगशाला में मालूम किये गये ऊष्मा चालकता, विसरण और श्यानता के गुणांकों को समुद्र में होने वाली प्रक्रियाओं के लिये लागू करने का कोई आधार विद्यमान् नहीं है। चूंकि केवल कुछ औसत प्रवणता ही मालूम की जा सकती हैं इसलिये जब समुद्र में होने वाली प्रक्रियाओं का विवरण करना हो तब दूसरे उपागम की शरण लेनी ही पड़ती है। इस उपागम का दृष्टान्त देने के लिये सबसे पहले श्यानता को लिया जाय।

स्तरीय प्रवाह में श्यानता गुणांक 'μ' को समीकरण $\tau_s=\mu\frac{dv}{dn}$ से परिभाषित किया जाता है जिसमें τ_s पृष्ठ के इकाई क्षेत्रफल पर लगने वाला अपरूपक प्रतिबल और dv/dn उस पृष्ठ के अभिलम्ब अपरूपण है। विक्षुब्ध प्रवाह में भंवर श्यानता का गुणांक A इसी भांति परिभाषित किया जा सकता हैं कि :

$$\tau_s=A\frac{d\bar{v}}{dn}$$

जिसमें $d\bar{v}/dn$ अब प्रेक्षित वेगों का अपरूपण निरूपित करता है। भंवर श्यानता का संख्यात्मक मान भवंरों के आकार और तीव्रता पर निर्भर करता है यानी निकटवर्ती परतों में तरल ढेरों के विनिमय के अकाार पर निर्भर करता है; और प्रतीक A जो आमतौर से काम में लिया जाता है वह स्मीड्ट (Schmidt, 1917) द्वारा पुरःस्थापित शब्द "आस्टॉस्च" के लिये एक संक्षिप्त रूप है। A का संख्यात्मक मान इस पर भी निर्भर करता है कि "औसत" वेग किस प्रकार मालूम किये गये हैं; यानी प्रेक्षणों का विन्यास में वितरण पर, और हवाला दिये गये औसत के कालान्तरों की सीमा पर।

उपरोक्त रीति से परिभाषित भंवर श्यानता केवल नियम निष्ठवत् प्रतीत होती है परन्तु यह प्रत्यय पर आधारित है, कि एक परत को छोड़ने वाले तरल ढेर उस परत में औसत वेग के तदनुरूपी संवेग को अपने साथ ले जाते हैं और वे ढेर अपने नये घिरावों को छोड़ने से पहले उनमें औसत वेग के तदनुरूपी संवेग को संघट्ट द्वारा प्राप्त कर लेते हैं (3.34)। इस प्रकार, A माध्य गति के संवेगान्तरण के लिये एक व्यञ्जक है। क्षुब्धता से इस अन्तरण में अधिक वृद्धि हो जाती है जैसा इस तथ्य से स्पष्ट है कि भंवर श्यानता आण्विक श्यानता से कई गुना बृहत होती है।

माध्य गति पर प्रभाव की जांच कर ही भंवर श्यानता मालूम की जा सकती है। इस प्रभाव का अध्याय XIII और XIV (3.35, 3.36) में विवरण दिया गया है परन्तु कुछ अंशों का यहाँ उल्लेख किया जावेगा। समुद्र में ऊर्ध्वाधर और पार्श्विक, इन दो प्रकार की क्षुब्धता के बीच प्रभेद करना व्यावहारिक पाया गया है। ऊर्ध्वाधर क्षुब्धता में तरल ढेरों का प्रभावी विनिमय ऊर्ध्वाधर दिशा में तुलनात्मक दृष्टि से किंचित यादृच्छिक गति से, या ऊर्ध्वाधर समतल में छोटे भंवरों से सम्बन्धित है यदि 'भंवर गति' शब्द का प्रयोग किया जाय। वास्तविकता में, भंवरें बेतरतीब से अभिस्थित होती हैं परन्तु केवल उनके ऊर्ध्वाधर संघटक ही कोई प्रभाव माध्य गति पर डालते हैं। तदनुरूपी भंवर श्यानता 1 और 1000 से. ग्रा. सैं. इकाइयों के बीच हेर-फेर होती पायी गयी है, इस प्रकार जल की आण्विक श्यानता से एक हजार से दस लाख गुना बृहत् होती है। पार्श्विक क्षुब्धता में तरल ढेरों का प्रभावी विनिमय बड़ी क्षितिजवत् भंवरों के कारण होता है। तदनुरूपी भंवर श्यानता विचाराधीन समुदाय के परिमाप पर निर्भर रहती है और इसमें 10^6 और 10^8 से. ग्रा. सैं. इकाइयों के बीच हेर-फेर होना पाया गया है।

ऊर्ध्वाधर और पार्श्विक क्षुब्धता के बीच अन्तर विशेष रूप से सार्थक होता है जहां जल का घनत्व गहराई के साथ बढ़ता है, क्योंकि इस प्रकार की वृद्धि दोनों प्रकार की क्षुब्धता को विभिन्न ढंग से प्रभावित करती है। जहां समुद्र जल का घनत्व गहराई के साथ बढ़ता है (दाब के प्रभाव को उपेक्षित करते हुए), वहां आर्किमीडीज के बलों के कारण ऊर्ध्वाधर बेतरतीब गति में बाधा पड़ने लगती है क्योंकि एक द्रव्यमान जो उच्च तल तक ले जाया जाता है वह निम्न घनत्व के जल से घिर जावेगा और जिस तल से बहकर आया था वहाँ तक वापस डूबने लगेगा और इसी प्रकार जल का अधोमुखी बहने वाला द्रव्यमान घने जल से घिर जावेगा और ऊपर उठने लगेगा। इस स्थिति में जल का स्तरीकरण स्थायी कहलाता है क्योंकि गुरुत्व के विरुद्ध काम किये बिना इसमें परिवर्तन नहीं हो सकता है। स्थायी स्तरीकरण ऊर्ध्वाधर क्षुब्धता को घटा देता है; जहां स्थिरता अधिकतम होती है वहां ऊर्ध्वाधर क्षुब्धता लगभग अवरुद्ध सी हो सकती है और भंवर श्यानता कम हो सकती है। इसके विपरीत, पार्श्विक क्षुब्धता पर स्थिरता का प्रभाव नगण्य होता है क्योंकि बेतरतीब पार्श्विक गति मुख्य रूप से समान घनत्व वाले पृष्ठों के साथ होती है।

भंवर चालकता के विषय में भी इसी प्रकार का तर्क लागू होता है। भंवर श्यानता का विवेचन करते समय यह मान लिया गया था कि द्रव्यमान के विनिमय से संवेग का अन्तरण एक परत से दूसरी परत तक होने लगता है जो कि A के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। तदनुसार, जब भंवर चालकता का विवेचन करना हो तो यह माना जा सकता है कि किसी पृष्ठ से ऊष्मान्तरण पृष्ठ से द्रव्यमान का विनि-

मय, जैसा कि A द्वारा अभिव्यक्त किया जता है, और प्रेक्षित ताप प्रवणताओं $-d\bar{\theta}/dn$ के अनुपाती होता है अर्थात् $dQ/dt = -r\ A\ d\bar{\theta}/dn$ जिसमें r एक घटक है जो कि तरल की विशिप्ट ऊष्मा पर तथा वहते हुए द्रव्यमानों की ऊष्मा-मात्रा को घिराव देने के ढंग पर निर्भर रहता है। जब समांग जल से सम्बन्धित विवेचना करनी हो तब यह मान लिया जाता है कि भारी द्रव्यमान जो एक नये तल में अन्तरित होता है वह तल पर लघु तत्वों में टूट-फूट जाता है तथा यह कि घिराव और छोटे तत्वों में आण्विक ऊष्मा चालन द्वारा अन्त में ताप समीकरण होता है। यदि इस प्रकार की स्थिति है तो संवेग में विभिन्नता तथा ऊष्मा-मात्रा में विभिन्नता दोनों बराबर कर दी जाती हैं और अनुपाती घटक r द्रव की विशिप्ट ऊष्मा के बराबर होता है। चूंकि जल की विशिष्ठ ऊष्मा लगभग एक है, भंवर चालकता और भंवर श्यानता के संख्यात्मक मान व्यावहारिकता में बराबर होते हैं। तो भी, जहां स्थायी स्तरीय-करण प्रचलित है, तत्व जो घिराव की अपेक्षा या तो हल्के हैं या भारी, अपनी प्रारम्भिक तल तक, बिना ताप समीकरण के पूर्ण हुए, वापस चले जावें; परन्तु संवेग का समीकरण संघट्ट से पूर्ण हो चुका हो। इस स्थिति में अनुपात का घटक r द्रव की विशिष्ट ऊष्मा से कम होगा यानी समुद्र में r एक से कम होता है और भंवर चालकता भंवर श्यानता से छोटी होती है। इस प्रकार, स्थायी स्तरीकरण ऊर्ध्वाघर भंवर चालकता को उससे भी ज्यादा घटा देता है जितना यह ऊर्ध्वाधिर श्यानता को घटाता है। टेलर (Taylor, 1931) ने उपरोक्त तर्क गणितीय भाषा में प्रस्तुत किया है (3.37)।

यह विवेचन अभी तक ऊर्ध्वाधर भंवर चालकता के अभिसंधान तक ही सीमित रहा है, परन्तु पार्श्विक क्षुब्धता के कारण पार्श्विक चालकता को भी पुरः-स्थापित करना है। पार्श्विक भंवर चालकता का संख्यात्मक मान पार्श्विक भंवर श्यानता के मान के लगभग बराबर होना चाहिये, क्योंकि पार्श्विक क्षुब्धता स्थायी स्तरीकरण से प्रभावित नहीं होती है।

प्रेक्षित ताप वितरण पर मिश्रण प्रक्रियाओं के प्रभाव के केवल अध्ययन से ही भंवर चालकता के गुणांकों के संख्यात्मक मान व्युत्पन्न किये जा सकते हैं। इस प्रकार के निर्धारणों की विधियां तथा संख्यात्मक मान अध्याय XIII (3.38) में प्रस्तुत किये हैं। परिणामों ने उपरोक्त निष्कर्षों की पुष्टि कर दी है और यह भी निदर्शित कर दिया है कि भंवरचालकता विस्तृत सीमाओं में बदलती है। समुद्र की ऊपरी परतों में जहां स्थायी स्तरीकरण प्रचलित होता है, भंवर श्यानता का ऊर्ध्वाधर गुणांक 1 और 1000 के बीच बदलता है जब कि तद्स्थानी भंवर चालकता कम होती है और 0.01 और 100 के बीच बदलती है; अलबत्ता समांग जल में कोई अन्तर स्थापित नहीं हो पाया है (3.39)। उन स्थितियों में जिनमें श्यानता और चालकता के पार्श्विक

गुणांकों की जांच की गयी है, लगभग बराबर संख्यात्मक मान इस निष्कर्ष से सहमत पाये गये हैं कि स्तरीकरण की स्थिरता पार्श्विक क्षुब्धता को प्रभावित नहीं करती।

लवणता या अन्य सांद्रता का अन्तरण ऊष्मान्तरण के समान ही है। भंवर विसरणीयता भी द्रव्यमान के विनिमय A के अनुपाती होती है, अनुपात का घटक केवल मात्र एक संख्या होती है। समरूप घनत्व के समुद्र जल में $r=1$ होता है परन्तु स्थायी स्तरीकरण में जब कि सांद्रता का पूर्ण समीकरण नहीं होता तब $r<1$ यानी ऊर्ध्वाधर भंवर विसरणीयता A से कम होती है और भंवर चालकता के बराबर हो जाती है। इस निष्कर्ष की पुष्टि प्रेक्षणों से भी हुई है (3.40)।

अध्याय 4

ताप, लवणता और घनत्व का सामान्य वितरण

पृथ्वी का पूर्ण-रूपेण ऊष्मा बजट

पूर्ण-रूपेण पृथ्वी के लिये, वायुमण्डल की सीमा पर सूर्य से एक वर्ष में प्राप्त होने वाली कुल ऊष्मा और वास्तव में समान काल में विकिरण और परावर्तन द्वारा आकाश में लुप्त होने वाली ऊष्मा में पूर्ण संतुलन होना चाहिये। अन्यथा वायुमंडल और महासागरों का ताप बदल जायेगा। ऊष्ण सूर्य से प्राप्त विकिरण को लघु तरंग विकिरण भी कहा जाता है, क्योंकि पृथ्वी से वायुमण्डल की सीमा तक पहुँचने वाली तरंग लम्बाइयां लगभग 0.38μ (माइक्रोन) और 2.5μ (माइक्रोन) के बीच होती हैं, जब कि सामान्य ताप पर ऊष्मा उत्सर्जित करने वाले पदार्थों द्वारा उत्सर्जित विकिरण की तरंग लम्बाइयां 5.0 माइक्रोन और 20.0 माइक्रोन के बीच में होती है। लघु-तरंग विकिरण का परावर्तित होने वाला भाग पृथ्वी के ऊष्मा बजट के लिये किसी भी महत्व का नहीं होता है और इसलिये वायुमण्डल, महासागरों और भूमि द्वारा अवशोषित लघुतरंग विकिरण और समस्त प्रणाली द्वारा उत्सर्जित दीर्घ तरंग विकिरण में पूर्ण संतुलन होता है। वायुमण्डल द्वारा प्राप्त ऊष्मा का थोड़ा सा भाग गतिज ऊर्जा में रूपान्तरित हो जाता है और घर्षण के कारण पुनः ऊष्मा में रूपान्तरित होकर अन्त में नभ में विकिरण के रूप में विलीन हो जाता है। इस प्रकार, ऊष्मा का गतिज ऊर्जा में यह रूपान्तरण कुल ऊष्मा में कोई वृद्धि न करके केवल महासागरों और वायुमण्डल में परिसंचरण का पोषण करता है।

प्रथा के अनुसार ऊष्मा को ग्राम कैलोरी इकाइयों में लिखा जाता है न कि कार्य की इकाइयों अर्ग और जूल में। समपरिवर्तन गुणांक इस प्रकार हैं—

1 ग्राम कैलोरी $= 4.183 \times 10^7$ अर्ग $= 4.183$ जूल

निम्न अक्षांशों में विकिरण द्वारा प्राप्त ऊष्मा, पश्च विकिरण और परावर्तन द्वारा लुप्त ऊष्मा से अधिक होती है जब कि उच्च अक्षांशों में ऊष्मा का लाभ उस की हानि की अपेक्षा कम होता है। सारणी 24 में विभिन्न अक्षांशों पर प्राप्त ऊष्मा और परावर्तन आदि से लुप्त ऊष्मा दिखलाई गयी है। तृतीय कॉलम में उपरोक्त दोनों संख्याओं का अन्तर यह दर्शाता है कि, भूमध्य प्रदेशीय क्षेत्रों में जहाँ ऊष्मा प्राप्ति में कुल वार्षिक लाभ होता है वहाँ ध्रुवप्रदेशीय क्षेत्रों में कुल हानि होती है। पृथ्वी पर

विभिन्न अक्षांशों पर माध्य वार्षिक ताप का प्रत्येक वर्ष समान रहना यह दर्शाता है कि, वायुमण्डल और महासागरों के निम्न अक्षांश से उच्च अक्षांश तक ऊष्मा का स्थानान्तरण, प्राप्त ऊष्मा और विकिरण द्वारा लुप्त ऊष्मा के अन्तर के बिल्कुल बराबर होता है। किन्हीं दो समानान्तर अक्षांशों के बीच के औसत अन्तर को उन दोनों अक्षांशों के बीच के क्षेत्रफल से गुणा कर के, राशियों को जोड़ने से कुल प्राप्त राशि, प्रत्येक अक्षांश में, भूमध्यरेखा से ध्रुव की तरफ ऊष्मा की कुल मात्रा का स्थानान्तरण देती है। इन में से कुछ संख्याओं के मान सारणी के चौथे कालम में दिये गये है, जिस से ज्ञात होता है कि उन के मान का क्रम 10^{16} ग्राम कैलोरी/मिनट है। इन संख्याओं में अक्षांश की लम्बाई का भाग देने पर जो संख्या आती है उसे पाँचवें कालम में रखा गया है, यह उस अक्षांश के प्रत्येक सेन्टीमीटर में से होकर ऊष्मा का औसत प्रवाह है इन संख्याओं का क्रम 10^7 ग्राम कैलोरी से. मी./मिनट है।

ऊष्मा के निम्न अक्षांश से उच्च अक्षांश तक स्थानान्तरण कुछ तो वायुमण्डलीय धाराओं (हवाओं), और कुछ महासागरीय धाराओं के कारण होता है। मौसम विज्ञान सम्बन्धी साहित्य में सामान्यत: महासागरीय धाराओं द्वारा ऊष्मा के स्थानान्तरण को उपेक्षणीय मान लिया जाता है (ब्जरकेन इत्यादि, Bjerknes et. al. 1932)। यद्यपि इस प्रश्न पर अभी तक पूर्णतया विचार नहीं किया गया है। यदि

सारणी 24

पृथ्वी का पूर्ण रूपेण ऊष्मा बजट और निम्न अक्षांशों से उच्च अक्षांशों की ओर ऊष्मा का स्थानान्तरण

अक्षांश (0)	ग्राम कैलॉरी/(सेन्टी मीटर)²/मिनट इकाइयों में				
	प्राप्त ऊष्मा ग्रा.कै./से.मी.² /मिनट	लुप्त ऊष्मा ग्रा.कै./से.मी.² /मिनट	ऊष्मा में लाभ या हानि ग्र.कै./से.मी.² /मिनट	अक्षांश समानान्तरों के पार ऊष्मा का स्थानान्तरण $\times 10^{16}$ ग्रा.कै./मिनट	अक्षांश समानान्तर के प्रत्येक से.मी. पर ऊष्मा का स्थानान्तरण $\times 10^7$ ग्रा.कै./मिनट
0.........	0.339	0.300	0.039	0.00	0.00
10.........	0.334	0.299	0.035	1.59	0.40
20.........	0.320	0.294	0.026	2.94	0.78
30.........	0 297	0.283	0.014	3.58	1.07
40.........	0.267	0.272	—0 005	3.96	1.30
50.........	0.232	0 258	—0.026	3.34	1.32
60.........	0 193	0.245	—0.052	2.40	1.20
70.........	0.160	0.231	—0.071	1.20	0.88
80.........	0.144	0.220	—0.076	0.32	0.46
90.........	0.140	0 220	—0.080	0.00	0.00

संपूर्ण पृथ्वी के लिये औसत रूप से विचार किया जाये तो यह दर्शाया जा सकता है कि यह मान्यता सत्य है, परन्तु कुछ क्षेत्रों में महासागरीय धाराओं द्वारा स्थानान्तरण अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

उत्तर दक्षिण दिशा में महासागर के इकाई आयतन जल द्वारा ऊष्मा की स्थानान्तरित मात्रा $c\rho\theta v_n$ के बराबर है, जहाँ c विशिष्ट ऊष्मा, ρ घनत्व, θ जल का ताप और v_n उत्तर-दक्षिण दिशा में जल का वेग घटक दर्शाते हैं। सागर के किसी एक खंड में कुल स्थानान्तरण तो समाकलन द्वारा ही ज्ञात किया जा सकता हैं, किन्तु सरलता के लिये हम मान लेंगे कि यह स्थानान्तरण $c\bar{\theta}\rho T_n$ के बराबर लिखा जा सकता है. जहां $\bar{\theta}$ जल का औसत ताप और ρT_n उस खंड से उत्तर की ओर इकाई समय में बहने वाले जल की संहति है। यदि यह खंड किसी महासागर के आरपार लिया जाय तो उत्तर की तरफ स्थानान्तरित संहति ρT_n दक्षिण की ओर स्थानान्तरित संहति ρT_s के बराबर होगी। परन्तु ऊष्मा का स्थानान्तरण भिन्न हो सकता है, क्योंकि किसी एक दिशा में स्थानान्तरित जल का ताप, उसके विपरीत दिशा में स्थानान्तरित जल के ताप से अधिक या कम हो सकता है। यदि यह ताप क्रमशः θ_n और θ_s हो तो ऊष्मा का स्थानान्तरण, $c(\theta_n - \theta_s)\rho T$ होगा, जहां ρT अब उत्तर दक्षिण दिशा में जल की कुल संहति का स्थानान्तरण है। उदाहरण के तौर पर उत्तरी अटलांटिक महासागर के 55° उत्तर अक्षांश के लिये यह विचार लागू हो सकता है। पूर्वी अटलांटिक में लगभग एक करोड़ मीटर ^{3}/सेकण्ड ऊष्ण जल उत्तर की ओर बहता है, और पश्चिमी अटलांटिक में लैब्रेडोर धारा तथा गहरे पानी के बहाव से उतने ही आयतन का ठंडा जल दक्षिण में ले जाया जाता है। अब यदि $(\theta_n - \theta_s) = 5°$, $c = 1$, $\rho = 1$ हो और $T = 10 \times 10^6$ मी.^{3}/से., रखने पर हम देखते हैं कि अटलांटिक महासागर में 55° अक्षांश उत्तर के पार ऊष्मा का स्थानान्तरण लगभग 0.3×10^{16} ग्राम कैलोरी/मिनट होता है। अतः समुद्री धाराओं द्वारा स्थानान्तरित ऊष्मा की मात्रा उपेक्षणीय नहीं है।

महासागरीय धाराओं द्वारा ऊष्मा के ध्रुवों की ओर स्थानान्तरण का यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण उदाहरण है। प्रशान्त महासागर में तुलनात्मक परिमाण का स्थानान्तरण सम्भवतः 30° उत्तर और 40° उत्तर अक्षांशों में होता है, किन्तु दक्षिणी महासागरों में उत्तर-दक्षिण संचरण और उच्च अक्षांशों की ओर या उनसे दूर बह रही धाराओं का तत्सम्बन्धित ताप वैषम्य, उत्तरी महासागरों की अपेक्षा कम है। महासागरीय धाराओं द्वारा ऊष्मा के स्थानान्तरण का अभी तक विस्तार से अध्ययन नहीं किया गया है; फिर भी यह स्पष्ट है कि ऊष्मा का स्थानान्तरण मुख्य रूप से वायुमंडल द्वारा ही होता है।

महासागरों का ऊष्मा बजट

उपरोक्त विचार वायुमण्डल और महासागरों की सम्पूर्ण प्रणाली के लिये है; परन्तु यदि केवल महासागरों पर ही विचार किया जाय तो एक दूसरा ही चित्र सामने आता है। औसतन, ऊष्मा का लाभ और उसकी हानि में पूर्ण संतुलन होना चाहिए, परन्तु अन्तर्ग्रस्थ प्रक्रियाएँ केवल विकिरण तक ही सीमित नहीं होतीं; जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है :

महासागरीय जल को ऊष्ण करने वाली प्रक्रियाएँ	महासागरीय जल को ठंडा करने वाली प्रक्रियाएँ
1. सूर्य और आकाश से विकिरण का अवशोपण, Q_s.	1. सागर की सतह से पश्च विकिरण, Q_b.
2. पृथ्वी के आन्तरिक भाग से समुद्र के तल द्वारा ऊष्मा का संवहन	2. ज्ञेय ऊष्मा का वायुमंडल में संवहन, Q_h.
3. गतिज ऊर्जा का ऊष्मा में रूपान्तरण	3 वाष्पीकरण, Q_e.
4. रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा तापन	
5. वायुमण्डल से ज्ञेय ऊष्मा का संवहन	
6. जलीय वाष्प का सुद्रवण	

इन सब प्रक्रियाओं पर विस्तार से विचार किया जायेगा, परन्तु स्पष्टतया यह कहा जा सकता है कि ऊष्ण करने वाली प्रक्रियाओं में से केवल प्रथम ही अधिक महत्वपूर्ण है; और महासागर का ऊष्मा बजट इस प्रकार लिखा जा सकता है

$$Q_s - Q_b - Q_h - Q_e = 0,$$

जहां Q_s प्राप्त ऊष्मा है। मोस्वाई (Mosby, 1936) के अनुसार महासागरों के समस्त पृष्ठों पर 70° उत्तर और 70° दक्षिण के बीच में उपरोक्त राशियों का औसत मान (ग्राम कैलोरी/(से०मी०)^2/मिनट में) इस प्रकार है,

	$Q_s = 0.221$	$Q_b = 0.090$
		$Q_h = 0.013$
		$Q_e = 0.118$
कुल	$= 0.221$	0.221

यदि किसी विशिष्ट प्रदेश के बारे में विचार किया जाये तो इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि ऊष्मा केवल महासागरीय धाराओं और मिश्रण की

विधियों द्वारा ही उस प्रदेश के भीतर लाई या बाहर ले जाई जा सकती है और कम समयान्तरों में, कुछ ऊष्मा जल का ताप बदलने के काम भी आ सकती है। इसलिये, दिये हुए समयान्तर में महासागर के किसी भी भाग के लिये ऊष्मा संतुलन का पूर्ण समीकरण निम्न है,

$$Q_s - Q_b - Q_h - Q_e + Q_v + Q_\theta = 0$$

जहां Q_v महासागरीय धाराओं द्वारा उस क्षेत्र के भीतर लाई या बाहर ले जाई गई ऊष्मा की कुल राशि निरूपित करता है. और Q_θ स्थानीय रूप से जल का ताप बदलने में लगी कुल ऊष्मा राशि को निरूपित करता है।

सूर्य और नभ से विकिरण—समुद्र के पृष्ठ पर कुछ विकिरण तो सीधे सूर्य से आते हैं और कुछ नभ में परावर्तन और प्रकीर्णन के पश्चात्। समुद्र के प्रत्येक इकाई आयतन द्वारा अवशोषित विकिरण ऊर्जा जिन बातों पर निर्भर करती है वे हैं; समुद्र के पृष्ठ पर पहुँचने वाली कुल विकिरण ऊर्जा, समुद्र के पृष्ठ से परावर्तित ऊर्जा और पूर्ण ऊर्जा के अवशोषगुणांक। समुद्र के पृष्ठ तक आने वाली कुल विकिरण ऊर्जा मुख्यतया सूर्य के उन्नतांश, वायुमण्डल में अवशोषण और मेघाच्छादन पर निर्भर करती है। निर्मल नभ में सूर्य जब काफी ऊँचा होता है तो समुद्र की सतह पर पहुँचने वाली विकिरणों का 85 प्रतिशत भाग सीधा सूर्य से और बाकी 15 प्रतिशत नभ से परावर्तन के द्वारा पहुँचता है, परन्तु जब सूर्य नभ में ऊँचा नहीं होता है तो नभ से आने वाले विकिरणों का अनुपात अधिक होता है, जो यदि सूर्य क्षितिज से 10° ऊँचा हो तो कुल विकिरण के लगभग 40 प्रतिशत तक हो जाता है।

वायुमंडल को पार करते समय सूर्य से आने वाली ऊर्जा कुछ तो कार्बन डाई-आक्साइड तथा जल वाष्प द्वारा अवशोषण से कम हो जाती है और कुछ धूल कणों और वायु के अणुओं द्वारा प्रकीर्णन से कम हो जाती है। अवशोषण और प्रकीर्णन का कुल प्रभाव वायुमंडलीय वायु खंड की उस मोटाई पर निर्भर करता है, जिसमें से सूर्य की किरणें पार हो रही हैं, जैसा निम्न समीकरण से व्यक्त किया है

$$I = Se^{-Ta_m m}$$

यहाँ I ग्राम कैलोरी/(सें०मी०)^2/मिनट इकाई में पृष्ठ पर अभिलम्बवत् पहुँच रही सूर्य की किरणों की ऊर्जा है। m वायु खंड की आपेक्षिक मोटाई है, जो 760 मिली मीटर दाब पर जब सूर्य ऊर्ध्व बिन्दु पर स्थित हो, तो 1 होती है, तथा यही संख्या यदि सूर्य क्षितिज से 30° ऊपर हो तो 2 होती है (Sin 30° = 1/2) और इस संख्या का और भी मान उपरोक्त विधि से ज्ञात किया जा सकता है; S सौर विकिरणांक (1.932 कैलोरी/(सें०मी०$_2$)/मिनट) है और T वायु का "गंदलापन घटक" है व a_m का मान, 0 128 — 0.054 log m है।

क्षैतिज पृष्ठ पर सूर्य से आगत विकिरण Sin h से गुणा करके प्राप्त किये जा सकते हैं, जहाँ h सूर्य का उन्नतांश है। क्षैतिज पृष्ठ पर पूर्ण विकिरण प्राप्त करने के लिये उपरोक्त राशि में विसरित विकिरण भी जोड़ने चाहियें। इस प्रकार कुल विकिरणों के अभिलेखन और सीधे सूर्य से आ रहे और नभ से आ रहे विकिरणों के पृथक्-पृथक अभिलेखन के लिये भी उपकरिकाएँ कार्य कर रही हैं।

जब सूर्य मेघाच्छादित होता है, विकिरण नभ और बादलों के मध्य से आते हैं, तथा औसतन उन्हें इस सूत्र से व्यक्ति जा सकते हैं: $Q = Q_0(1 - 0.071\,C)$ जहां मेघाच्छादितता, C, 0 से 10 तक के पैमाने पर नापी जा सकती है, Q_0 स्वच्छ नभ से आने वाले समस्त विकिरण हैं। यह सूत्र केवल औसत अवस्थाओं में ही लागू हो सकता है। क्योंकि मेघाच्छादित नभ से आने वाले विकिरण, मेघों में परावर्तन के कारण, स्वच्छ नभ से आने वाले विकिरणों से अधिक हो सकते हैं और पूर्णतया अन्धकार पूर्ण मेघाच्छन्न वर्षा के दिन में, स्वच्छ नभ की अपेक्षा लगभग 10 प्रतिशत से भी कम विकिरण, समुद्र की सतह तक आ पाते हैं। सारणी 25 में क्षैतिज पृष्ठ तक पहुँचने वाले औसत मासिक विकिरण, जो ग्राम कैलोरी/(सें०मी०)²/मिनट इकाइयों में हैं, सम्बन्धित इलाकों के सामने दर्ज हैं, (किम्बल Kimball, 1928 के कार्य से संगणित)। समान अक्षांशों पर महासागरों के विभिन्न भागों में अन्तर मुख्यतया मेघाच्छादन में भिन्नता के कारण होता है।

महासागरीय विकिरणों के कुछ प्रत्यक्ष माप प्राप्य हैं और केवल आगत विकिरणों पर ही विचार करते समय यह आवश्यक है कि औसत मानों का ही विवेचन किया जाये, ये औसत मान तुलानुपाती सूत्रों से संगणित किये जा सकते हैं। मोसबाई (Mosby, 1936) ने एक ऐसा सूत्र दिया है जिसकी सहायता से सागर के क्षैतिज पृष्ठ पर पहुँचने वाले मासिक या वार्षिक औसत विकिरणों की संगणना की जा सकती है: यदि तत्सम्बन्धित औसत सूर्योन्नतांश और औसत मेघाच्छन्नता ज्ञात हो तो

$$Q = k(1 - 0.071C)\,\bar{h} \text{ [ग्राम कैलोरी/(सें०मी०)}^2\text{/मिनट]}$$

यहाँ $\bar{h}$ औसत सूर्योन्नतांश है। घटक k वायुमंडल की पारिता पर निर्भर करता है और अक्षांशों के साथ परिवर्तित होता प्रतीत होता है; विषुवत रेखा पर इसका मान 0.023 है, 40° अक्षांश पर 0.024 और 70° अक्षांश पर 0.027 है। यदि $h > 60°$, हो तो मोसबाई का सूत्र वैध नहीं है, परन्तु यदि उच्च उन्नतांशों के स्थान पर निम्न सारणी में प्रदर्शित लघुकरित उन्नतांश रख कर गणना की जावे तो शुद्ध परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं

वास्तविक उन्नतांश (°)	60	65	70	75	80	85	90
लघुकरित उन्नतांश (°)	60	62	64	66	68	69	70

सारणी 25.

सूर्य और नभ से आगत विकिरण की समुद्र के पृष्ठ द्वारा हर महीने बतलाये क्षेत्रों में प्राप्त औसत राशि जिन्हें ग्राम कैलोरी प्रति से. मी. वर्ग प्रति मिनिट की इकाइयों में अभिव्यक्त किया गया है।

(किम्बल के अनुसार)

क्षेत्र		महीने											
अक्षांश	देशान्तर	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर
60°N...........	7°E-56°W	.002	0.053	.125	.207	.272	.292	.267	.212	.147	.074	.006	.0
60N............	135-170W	.005	.078	.155	.208	.269	.260	.242	.185	.127	.077	.015	.0
52N............	10W	.048	.089	.148	.219	.258	.267	.251	.211	.160	.104	.062	041
52N............	129W	.053	.091	.135	.185	.246	.250	.230	.214	.158	.097	.058	.039
42N............	60-70 W	.094	.138	.212	.272	.306	.329	.302	.267	.230	.174	.115	.086
42N............	124W	.100	.151	.210	.286	.331	.360	.320	.274	.231	.174	.113	.092
30N............	65-77 W	.146	.165	.238	.285	.317	.310	.301	.282	.239	.188	.169	.142
30N............	128-130 E	.141	.153	.199	.241	.258	.238	.256	.260	.219	.178	.153	.135
10N............	61-69 W	.254	.276	.299	.305	.272	.276	.285	.292	.287	.269	.248	.239
10N............	116E-80W	.226	.257	.292	.278	.255	.239	.240	.242	.247	.237	.224	.219
0..............	7-12 E	.239	.248	.244	.230	.210	.196	.188	.194	.220	.240	.239	.235
0..............	48W&170E	.261	.265	.282	.297	.309	.300	.300	.340	.366	.362	.339	.278
10S............	14E;36-38W	.329	.328	.301	.254	.219	.206	.232	.278	.312	.324	.317	.320
10S............	72-171W	.290	.308	.315	.289	.266	.253	.269	.306	.332	.313	.301	.303
30S............	17&116E	.452	.406	.340	.254	.186	.148	.166	.214	.274	.362	.401	.430
30S............	110W	.380	.330	.260	.209	.162	.130	.145	.176	.237	.321	.340	.390
42S............	73W;147W	.343	.297	.223	.154	.104	.085	.092	.135	.187	.264	.310	.348
52S............	58W	.289	.237	.167	.112	.062	.039	.049	.097	.150	.222	.273	.302
60S............	45W	.213	0.171	.105	.056	.011	.0	.003	.054	.111	.156	.204	.221

इस सूत्र की सहायता से संगणित मान, कुछ प्रतिशत त्रुटियों के भीतर, किम्बल (सारणी 25) द्वारा बिल्कुल ही दूसरी विधियों द्वारा संगणित मानों के साथ पूर्णतया सहमति प्रकट करते हैं।

सूर्य द्वारा प्राप्य विकिरणों का कुछ भाग तो समुद्र के पृष्ठ पर परावर्तन के कारण लुप्त हो जाता है, जिससे होने वाली हानि सूर्य के उन्नतांश पर निर्भर करती है। हानि की संगणना करते समय, सूर्य से सीधे प्राप्त विकिरण और नभ से प्रकीर्ण विकिरणों पर अलग अलग विचार करना चाहिये। यदि सूर्य क्षितिज से क्रमशः 90°, 60°, 30° और 10° ऊपर हो तो स्मिड्ट (Schmidt, 1915) के अनुसार सूर्य से सीधे प्राप्त विकिरणों का कुल परावर्तित भाग क्रमशः 2.0 प्रतिशत, 2.1 प्रतिशत 6.0 प्रतिशत और 34.8 प्रतिशत होगा। स्मिड्ट के अनुसार मेघों और नभ में विसरित विकिरणों के कारण परावर्तन 17 प्रतिशत होगा। पावेल और क्लार्क (Powell and Clarke, 1936) द्वारा निर्मल दिनों में लिये गये माप भी उपरोक्त तथ्य से सहमति प्रकट करते हैं, परन्तु मेघाच्छादित दिनों में जब सागर पृष्ठ तक केवल विसरित विकिरण ही पहुंच पाते हैं, प्रेक्षित परिवर्तन लगभग 8 प्रतिशत ही पाया गया है। यदि मेघरहित निर्मल नभ में सूर्य से और नभ से आने वाले कुल विकिरण क्रमशः p और q से दर्शाये जायें और तत्सम्बन्धित प्रतिशत परावर्तन क्रमशः m और n हो तो कुल आगत विकिरणों का परावर्तित भाग होगा $r=mp+nq$। इस प्रकार मेघाच्छादित दिन में जब कुल विकिरण केवल विसरित होते हैं; $r=8$ प्रतिशत होता है। सारणी 26 में सूर्य के विभिन्न उन्नतांशों पर निर्मल दिन में r के सन्निकट मान दर्ज हैं।

सारणी 26

सूर्य के विभिन्न उन्नतांशों और नभ द्वारा प्राप्य कुल विकिरणों की निर्मल दिनों में क्षैतिज जल पृष्ठ द्वारा प्रतिशत परावर्तित मात्रा

सूर्य उन्नतांश (°)	5	10	20	30	40	50	60	70	80	90
प्रतिशत परावर्तन	40	25	12	6	4	3	3	3	3	3

उपरोक्त सारणी में दिये गये मान केवल समुद्र के पृष्ठ सपाट होने पर ही लागू होते हैं। लहरों की उपस्थिती में जब सूर्य का उन्नतांश कम होता है, परावर्तन द्वारा हानि कुछ बढ़ जाती है और उच्च अक्षांशों पर तो यह हानि बहुत ही महत्वपूर्ण होगी। कथित स्थितियों में सागर पृष्ठ में प्रवेश करने वाले विकिरणों की राशि आगत कुल विकिरणों में से परावर्तित विकिरणों की राशि को घटा कर प्राप्त की जा सकती है।

विकिरण ऊर्जा का समुद्र में अवशोषण:—सागर पृष्ठ में प्रवेश करने वाले समस्त विकिरण जल में अवशोषित हो जाते हैं। सागर की विभिन्न गहराइयों पर जल की परतों द्वारा अवशोषित विकिरण, तापीय पुंज के द्वारा उन परतों पर पहुँचने वाली कुल ऊर्जा माप कर और ज्ञात लोप गुणांकों की सहायता से संगणित किये जा सकते हैं। ऊर्जा का प्रत्यक्ष माप केवल भूमध्य सागरीय जल में (वर्सेली, Vercelli 1937) ही लिया गया है किन्तु विकिरण की विभिन्न तरंग लम्वाइयों के लिये लोप गुणांकों का निर्धारण कई क्षेत्रों के लिये किया जा चुका है (4.1)। जल में ज्ञात गहराई तक पहुँचने वाली ऊर्जा की संगणना के लिये यह आवश्यक है कि, विकिरण का ऊर्जा वर्णपट या विकिरण की विभिन्न तरंग लम्वाइयों की तीव्रता ज्ञात हो। तीव्रता में कमी की गणना प्रत्येक तरंग लम्वाई के लिये अलग करनी होगी, और दी हुई गहराई तक पहुँचने वाली कुल ऊर्जा का निर्धारण केवल ऊर्जा वर्णपट के समाकलन के द्वारा ही किया जा सकता है। कुल ऊर्जा के लोप गुणांक की परिभाषा भी विभिन्न तरंग लम्वाइयों के लोप गुणांकों के संदर्भ (4.2) में दी गई परिभाषा के समान ही है।
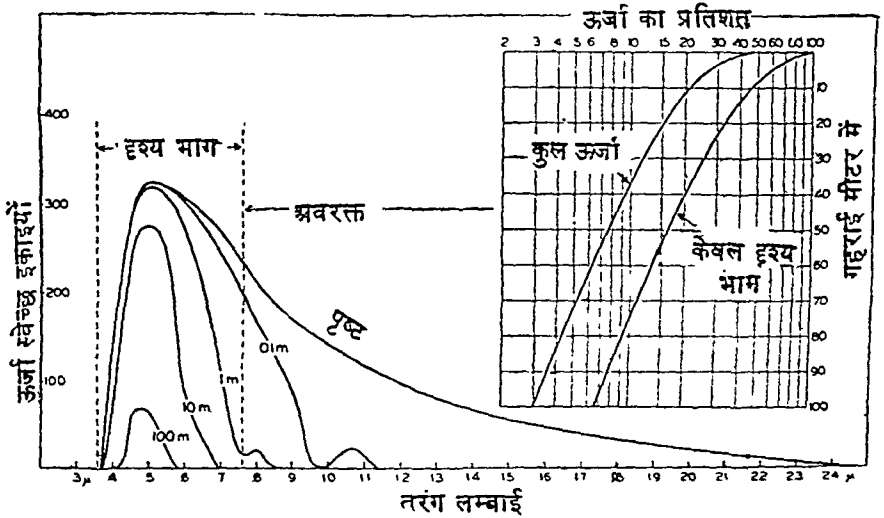
चित्र 21. सागर के पृष्ठ में प्रवेश करने वाले विकिरणों का ऊर्जा वर्णपट और शुद्ध जल में क्रमशः 0.1,1,10 और 100 मीटर तक प्रवेश करने वाले विकिरणों का ऊर्जा वर्णपट। संलग्न अन्दर का चित्र कुल ऊर्जा और वर्णपट के दृश्य भाग की ऊर्जा का जल की विभिन्न गहराइयों तक पहुँचने वाला प्रतिशत अंग।

सागर पृष्ठ में प्रवेश करने वाले ऊर्जा वर्णपट को चित्र 21 के ऊपरी वक्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है, इस चित्र में शुद्ध जल में विभिन्न गहराइयों पर ऊर्जा वर्णपट भी प्रदर्शित है। किसी भी गहराई पर कुल ऊर्जा, उपरोक्त चित्र के आधार और सम्बन्धित ऊर्जा वर्णपटीय वक्रों के बीच में परिवेष्टित क्षेत्रफल के समानुपाती हैं। संलग्न आरेख में कुल ऊर्जा, जो कि सागर पृष्ठ में प्रवेश करने वाली

कुल ऊर्जा की प्रतिशत राशि में अभिव्यक्त की गई है, साथ साथ वर्णपट के दृश्य भाग में तत्सम्बन्धित प्रतिशत ऊर्जा, सागर पृष्ठ से गहराई के साथ आलेखित किया गया है। उपरोक्त चित्र यह भी दर्शाता है कि शुद्ध जल केवल दृश्य विकिरणों के लिये ही पारदर्शी है।

सागर जल के लिये, विभिन्न गहराइयों तक पहुँचने वाली ऊर्जा की कुल मात्रा की संगणना, स्वच्छातिस्वच्छ महासागरीय जल, औसत महासागरीय जल और गंदले तटवर्ती जल के लिये, चित्र 20 में दर्शाये विभिन्न लोप गुणाँक, लेकर की गई है। परिणाम सारणी 27 में संग्रहित हैं। सागर तट से दूर स्वच्छातिस्वच्छ जल में कुल ऊर्जा का 62.3 प्रतिशत भाग गहराई के प्रथम मीटर में ही अवशोपित हो जाता है। सागर पृष्ठ के नीचे प्रथम मीटर में उपस्थित झागों और हवा के बुलबुलों के कारण अवशोपण कुछ बढ़ जाता है। इस बढ़े हुए अवशोपण को, प्रकाश के सागर पृष्ठ में प्रवेश संदर्भ में "पृष्ठ हानि" कहा जाता है। यदि इस प्रक्रिया पर ध्यान ही नहीं दिया जाये तो इन मानों द्वारा स्पष्ट तौर पर यह प्रदर्शित हो सकता है कि ऊर्जा का अधिकतम भाग सागर पृष्ठ के निकट ही अवशोपित होता है और परिशोधनीय गहराई तक प्रवेशित विकिरण केवल उसी समय विचार करने योग्य होते हैं जब कि जल बहुत ही स्वच्छ हो। स्वच्छातिस्वच्छ जल में 10 मीटर की गहराई तक 83.9 प्रतिशत विकिरण अवशोपित हो जाते हैं जब कि तटवर्ती गंदले जल में 99.55 प्रतिशत विकिरण अवशोपित हो जाते हैं।
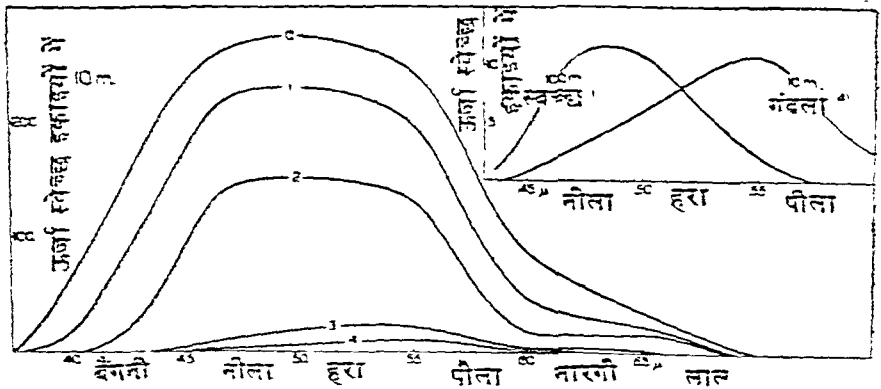
चित्र 22. विभिन्न प्रकार के जलों में, 10 मीटर की गहराई पर ऊर्जा वर्णपट। वक्र 0,1,2,3, और 4 क्रमशः शुद्ध महासागरीय जल, औसत महासागरीय जल, औसत तटवर्ती जल और गंदले तटवर्ती जल का ऊर्जा वर्णपट दर्शाते हैं। संलग्न चित्र :— स्वच्छ जल में 100 मीटर गहराई पर और गंदले जल में 10 मीटर गहराई पर ऊर्जा वर्णपट।

चित्र 22 में ऊर्जा का औसत अवशोपण प्रदर्शित किया गया है, जिसमें 10 मीटर की गहराई पर विभिन्न प्रकार के जलों में ऊर्जा वर्णपट आलेखित हैं। इस गहराई पर

सारणी 27

कुल आपतित ऊर्जा की प्रतिशत मात्रा और विभिन्न गहराई अन्तरों पर लोप गुणांक

गहराई	आपतित ऊर्जा की प्रतिशत मात्रा					गहराई अन्तर	लोप गुणांक प्रति मीटर				
	शुद्ध सागर जल	महासागरीय जल		तटीय जल			शुद्ध सागर जल	महासागरीय जल		तटीय जल	
		स्वच्छाति-स्वच्छ	औसत	औसत	गंदला			स्वच्छाति-स्वच्छ	औसत	औसत	गंदला
0	100	100	100	100	100	0–1	0.944	.975	1.080	1.318	1.385
1	38.9	37.7	35.2	26.7	22.8	1–2	0.143	.176	.230	.450	.547
2	33.7	31.6	28.0	17.0	13.2	2–5	0.062	.095	.159	.351	.452
5	28.0	23.7	17.3	5.95	3.41	5–10	0.048	.076	.120	.318	.405
10	22.0	16.1	9.50	1.21	0.449	10–20	.033	.054	.094	.292	.368
20	15.8	9.35	3.72	0.064	0.012	20–50	.024	.042	.083		
50	7.64	2.69	0.311			50–100	.018	.036			
100	3.04	0.452	0.0057								

स्वच्छ जल में अधिकतम ऊर्जा, वर्णपट के नीले हरे भाग में मिलती है जबकि तटवर्ती गंदले जल में 'अधिकतम' पीले हरे भाग की तरफ हट गया है। यह हटाव संलग्न आलेख में बहुत ही सुन्दरता से दिखलाया गया है, जो उपरोक्त वक्र के दाहिनी ओर ऊपर की तरफ है, और जिसमें 100 मीटर पर स्वच्छ जल में और 10 मीटर पर तटीय गंदले जल में ऊर्जा वर्णपट दर्शाया गया है।

कुल ऊर्जा के लोप गुणांक संगणित किये गये हैं और सारणी 27 में संग्रहित हैं। ये लोप गुणांक ऊपरी एक मीटर में बहुत ही अधिक उच्च हैं परन्तु शीघ्रता से घटते हैं, और अधिक गहराई पर न्यूनतम होने लगते हैं जो सम्बन्धित जल प्रकार के लाक्षणिक होते हैं; सारणी में दिये गये न्यूनतम मान अधिक गहराइयों पर भी वैध हैं।

सारणी 27 में संग्रहित आंकड़ों के आधार पर, सागर पृष्ठ से लेकर 10 मीटर गहराई तक विभिन्न परतों तक पहुँचने वाली कुल ऊर्जा चित्र 23 में आलेखित की गई है। वर्सेली (Vercelli, 1937) द्वारा भूमध्यसागर में किये गये प्रयोगों के आधार पर जो तीन वक्र आलेखित हैं उन्हें केपरी, त्रिस्ट और वैनिस के आधार पर दर्शाया गया है और बाकी की चार रेखाएँ बर्ज और जूड़े (Birge and Juday 1929) के कुछ झीलों में किये गये प्रयोगों पर आधारित हैं। इन सभी वक्रों के गुणधर्म में
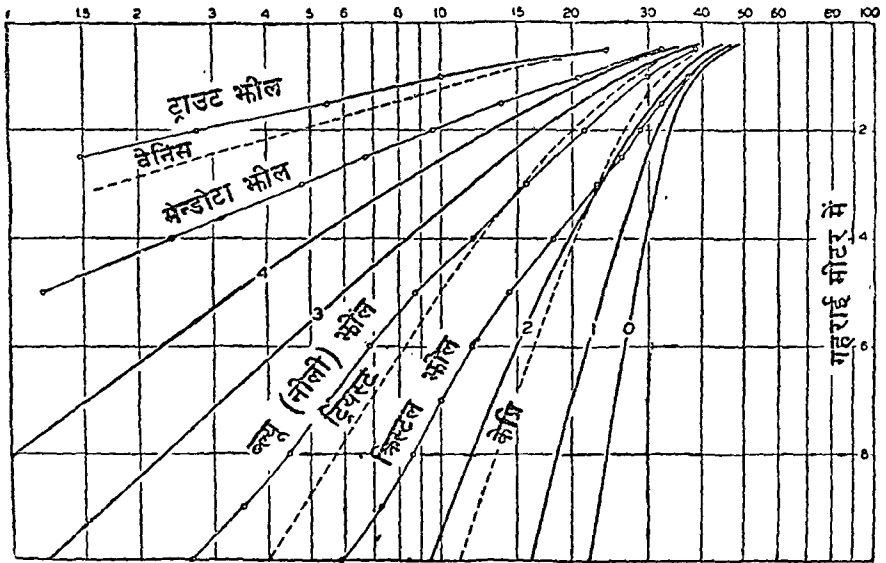
चित्र 23. शुद्ध महासागरीय जल, औसत महासागरीय जल, तटवर्ती जल और गंदले तटवर्ती जल (वक्र 0,1,2,3 और 4) लोप गुणांकों द्वारा संगणित भूमध्य सागर के कुछ क्षेत्रों और चार झीलों में विभिन्न गहराइयों तक अवशोषित ऊर्जा की प्रतिशत मात्रा।

समानता इस बात की पुष्टि करती है, कि प्रेक्षित गुणांकों की सहायता से सागर द्वारा अवशोषित ऊर्जा की गणना की जा सकती है।

विकिरणों के अवशोपण से मिलने वाली ऊष्मा का अनुमान जल के ताप में विभिन्न गहराइयों तक कुल वृद्धि देख कर भी किया जा सकता है, जो सागर पृष्ठ में 1000 ग्राम कैलोरी प्रति वर्ग से.मी. ऊष्मा प्रवेश करने से होता है। सारणी 28 से संकलित परिणाम इस तथ्य को बल प्रदान करते हैं कि ऊर्जा का अधिकतम भाग विशेषकर गंदले जल में, सागर पृष्ठ के निकट ही अवशोपित हो जाता है। यदि और दूसरी प्रक्रियाओं ने भाग नहीं लिया हो तो सागर पृष्ठ और 1 मीटर गहराई पर स्थित परत के बीच ताप में अन्तर स्वच्छ जल में 6.24° और अति गंदले जल में 7.72° होगा। 20 मीटर और 21 मीटर गहराई के बीच तथाकथित तापान्तर 0.04° और 0.0003° होगा।

सारणी 28

1000 ग्राम कैलोरी प्रति सेन्टीमीटर अवशोषण के तदनुरूपी विभिन्न प्रकार के जल में विभिन्न गहराइयों तक, °C, में ताप में वृद्धि

गहराई अन्तराल (मीटरों में)	महासागरीय जल		तटवर्ती जल	
	स्वच्छाति-स्वच्छ	औसत	औसत	गंदला
0—1	6.24	6.48	7.32	7.72
1—2	0.610	0.720	0.970	0.960
5—6	0.236	0 282	0.164	0.120
10—11	0.104	0.096	0.030	0 0140
20—21	0.040	0 030	0.0016	0 0003
50—51	0.0096	0.0024	0.0000034	0.000000015
100—101	0.0016	0.000011		

सारणी 28 में संकलित ताप परिवर्तन, खुले महासागरों में, जहां मिश्रण प्रक्रियाएँ समस्त सीधे अवशोषण को आच्छादित कर लेती हैं, हो रहे ताप परिवर्तनों से कोई समानता नहीं रखते हैं। किन्तु कुछ छोटे स्थलीय जलांगो में जल पृष्ठ द्वारा अवशोषित लघु तरंग विकिरण ही विभिन्न परतों में ताप परिवर्तनों को निर्धारित करते हैं। इस प्रकार की प्रक्रियाएँ नार्वे के पश्चिमी किनारे पर स्थित औस्टर द्रोणी (बेसिन) पर देखी गई हैं, जिनके ताप गुणधर्म का विवरण हैलैन्ड और हेनसन ने दिया है और जिनका विस्तार से अध्ययन गार्डर और स्पार्क (Garder and Spark 1932) ने किया है। ये द्रोणियें संकीर्ण और छिछले मुखों द्वारा खुले महासागरों से जुड़ी हुई हैं, परन्तु शिशिर झंझावात में द्रोणियों और वाह्य सागर में जल विनिमय हो ही जाता है। वर्षा के बाद आगामी वसन्त ऋतु में वर्षा के द्वारा आने वाले जल से द्रोणियों की पृष्ठीय परतों पर ताजे या खारे पानी के हट जाने से द्रोणियों के गहरे पानी पर

एक आवरण बन जाता है, जो द्रोणियों के गहरे जल व बाह्य जल में विनिमय को रोकता है। लवणता में अन्तर के कारण, गहरे पानी का घनत्व पृष्ठीय परतों के पानी से काफी अधिक होगा। गर्मियों में प्राप्य विकिरण, ऊपरी परतों में ताजे पानी और नीचे गहरे पानी, दोनों ही में अवशोषित होते हैं, और इस प्रकार दोनों परतों का ताप बढ़ जाता है। ऊपरी जल की परतों में साधारण संवहन धाराएँ उत्पन्न हो जाती हैं और ताप नियंत्रण मुख्यतया वायु ताप के द्वारा ही होता है, लेकिन निचली परतों का ताप अधिक लवणता के कारण बिना किसी स्तरीय अस्थिरता के ऊँचे मानों तक बढ़ जाता है और चूंकि अन्य दूसरी प्रक्रियाएँ यहां कुछ महत्व नहीं रखतीं इसलिये अवशोषण का प्रभाव प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ता है।

गार्डर और स्पार्क (Garder and Spärk) द्वारा एक द्रोणी में 30 जून और 15 जुलाई को परीक्षित ताप का ऊर्ध्वाधर वितरण चित्र 24 में दर्शाया गया है। उपरोक्त दिनांकों के बीच के दिनों में न तो बादल ही छाये और न वर्षा ही हुई थी। किम्बल (Kimball, 1928) के अनुसार प्राप्य दैनिक लघुतरंग विकिरण लगभग 740 ग्राम कैलोरी/(से०मी०)^2/दिन, या लगभग 11,100 ग्राम कैलोरी/(से०मी०)^2/उपरोक्त पूर्ण समय के लिये थे। परावर्तन के लिए यदि 6 प्रतिशत घटाया जाय तो जल में प्रवेश करने वाली मात्रा लगभग 10,400 ग्राम कैलोरी/(से०मी०)^2 होगी। ताप वक्र दर्शाते हैं कि इस मात्रा में से 1630 ग्राम कैलोरी/(से०मी०)^2 या 15.5 प्रतिशत भाग एक मीटर गहराई के नीचे अवशोषित होता है, और इस प्रकार बाकी 84.5 प्रतिशत भाग सागर पृष्ठ और एक मीटर गहराई के बीच में ही अवशोषित हो जाता है।
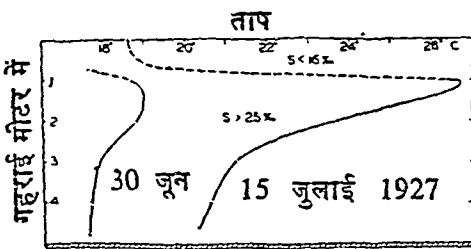
चित्र 24. नार्वे के औस्टर मुहाने में 30 जून और 25 जुलाई, 1927, पर ताप का ऊर्ध्वाधर वितरण।

ऊपर वर्णित ऊष्मा का 85.5 प्रतिशत अंश पश्च विकिरण, वाष्पीकरण और चालन के द्वारा वायुमण्डल में लुप्त हो जाता है, इसलिये इस अंश पर आगे विचार नहीं किया जायेगा। यहां पर यह संकेत करना कम रुचिकर नहीं होगा कि द्रोणियों के जल में गहराई के प्रथम मीटर में अवशोषण साधारण तटवर्ती जल में अवशोषण से अधिक और गंदली झीलों में अवशोषण के समान होता है। एक मीटर और दो मीटर गहराई के बीच स्थित परत का ताप भी इस परत के मध्य अधिक गंदलेपन का द्योतक है, क्योंकि एक मीटर गहराई तक पहुँचते हुए कुल ऊष्मा राशि अर्थात् 1630 ग्राम कैलोरी/(से०मी०)^2 में से 630 ग्राम कैलोरी/(से०मी०)^2, इस परत में अवशोषित हो गई थी, और तत्सम्बन्धित लोप

गुणांक 0.488 है (सारणी 27 के अनुसार)। ये परिणाम गार्डर और स्पार्क के इस कथन से कि "लगभग दो मीटर गहराई पर 'सेक्ची डिस्क' लुप्त हो जाती है", मोटे तौर पर सहमति प्रकट करते हैं। इस स्थिति में परिस्थितियां पूर्णतया स्पष्ट हैं, परन्तु इस प्रकार की द्रोणियों में भी अवशोषण ऊष्मा चालन की प्रक्रियाओं द्वारा आच्छादित हो जाती है।

महासागर के तल से ऊष्मा का चालन :

यह अनुमान लगाया गया है कि सागर तल में प्रतिशत ऊष्मा राशि का प्रवाह लगभग 50 से 80 ग्राम कैलोरी/से०मी०^2 होता है (हैलैन्ड और हेनसन 1930)। यह राशि सागर पृष्ठ द्वारा प्राप्य विकिरणों के दस हजारवें भाग से भी कम होती है और महासागरों के ऊष्मा बजट पर विचार करते समय इस राशि को सामान्यतया उपेक्षणीय माना जा सकता है। कुछ द्रोणियों में जहां गहरा जल लगभग स्थिर होता है और जहां ऊपर और पार्श्व से ऊष्मा चालन सम्भव नहीं है, वहां तल से चालित ऊष्मा ताप के वितरण में बहुत ही महत्वपूर्ण भाग ले सकती है, परन्तु अभी तक ऐसी किसी भी स्थिति के बारे में कुछ भी निश्चित ज्ञान नहीं है (4.3)।

गतिज ऊर्जा का ऊष्मा में रूपान्तरण :

सागर पृष्ठ पर वायु के प्रतिबल द्वारा महासागरों को संचरित गतिज ऊर्जा और ज्वारीय ऊर्जा का कुछ भाग घर्षणीय क्षय द्वारा ऊष्मा में रूपान्तरित हो जाता है। वायु द्वारा संचारित ऊष्मा सागर पृष्ठ द्वारा अनुमानित प्राप्य ऊष्मा के लगभग दस हजारवें भाग के बराबर होने के कारण नगण्य मानी जा सकती है। छिछले तटवर्ती जल में तेज ज्वारीय धाराओं के कारण ज्वारीय ऊर्जा का क्षय बहुत अधिक होता है, तथापि यह क्षय कुछ स्थानीय महत्व का हो सकता है। आयरिश चैनल में टेलर (Taylor, 1919) के अनुसार वह क्षय लगभग 0.001 ग्राम कैलोरी/(से०मी०)^2/मिनट या 1050 ग्राम कैलोरी/(से०मी०)^2/वर्ष होता है। यदि आयरिश चैनल की गहराई लगभग 50 मीटर ली जाय और यदि यही जल चैनल में ही पूरे वर्ष रहा हो तो ताप में वृद्धि औसतन 0.2°C होगी। इस प्रकार का प्रभाव हालांकि अभी तक स्थापित नहीं हुआ है और इस प्रकार के प्रभाव की आशा केवल छिछले जल में ही की जा सकती है, फिर भी सम्पूर्ण महासागर के सामान्य ऊष्मा बजट के लिये यह किसी महत्व का नहीं है। ज्वारीय ऊर्जा क्षय और महासागर के तल में चालन के कारण तापन के बारे में विवेचन स्वेर्ड्रुप (Sverdrup, 1929) ने किया है।

रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा तापन को पूर्णतया नगण्य माना जा सकता है।

ज्ञेय ऊष्मा के संवहन और जल वाष्प पर विचार उस समय होगा जब वायुमंडल और जल में ऊष्मा विनिमय के बारे में वर्णन किया जायेगा।

सागर पृष्ठ से प्रभावी पश्च विकिरण :

सागर पृष्ठ कृष्ण वस्तु की भांति, दीर्घ तरंग विकिरण उत्सर्जित करता है और निर्गत विकिरण की ऊर्जा सागर पृष्ठ के परम ताप की चौथी घात के समानुपाती होती है। सागर पृष्ठ को वायुमंडल या मुख्यतया जल वाष्प से साथ ही साथ दीर्घ
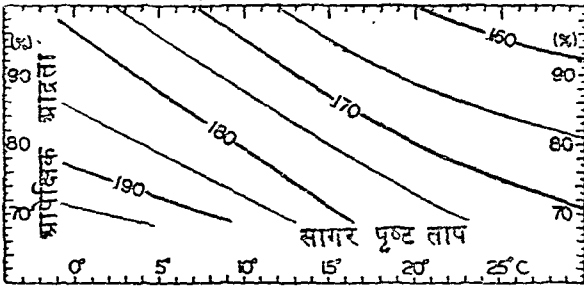
चित्र 25. निर्मल नभ को सागर पृष्ठ द्वारा ग्राम कैलोरी/(से०मी०)^2/मिनट इकाइयों में प्रभावी पश्च विकिरण जो कि सागर पृष्ठ के तापमान और कुछ मीटर ऊँचाई तक वायु की आपेक्षिक आर्द्रता के फंक्शन के रूप में निरूपित हैं।

तरंग विकिरण प्राप्त होते रहते हैं। प्राप्त दीर्घ तरंग विकिरण का कुछ अंश तो सागर पृष्ठ से परावर्तित हो जाता है, परन्तु अधिकांश जल के एक सेन्टीमीटर के थोड़े से भाग में ही अवशोषित हो जाता है, क्योंकि दीर्घ तरंग लम्बाइयों के लिये लोप गुणांक बहुत ही अधिक होता है। सागर पृष्ठ का 'प्रभावी पश्च विकिरण', पृष्ठ के ताप विकिरण और वायुमंडल के दीर्घ तरंग विकिरणों के अन्तर के रूप में दर्शाया जा सकता है, और यह प्रभावी विकिरण मुख्यतया सागर पृष्ठ के ताप और वायुमंडल में जल वाष्प की मात्रा पर निर्भर करता है। एन्गस्ट्रोम (Angstrom, 1920) के अनुसार वायुमंडल में जल वाष्प की मात्रा स्थानीय वाष्प दाब के समानुपाती है, जिसकी गणना यदि वायु का ताप ज्ञात हो तो आपेक्षिक आर्द्रता के द्वारा की जा सकती है। महासागरों में वायु के ताप और सागर पृष्ठ के ताप में विचलन इतना कम होता है कि सागर पृष्ठ के ताप और पृष्ठ के कुछ ऊपर वायु की आपेक्षिक आर्द्रता की सहायता से वाष्प दाब बहुत ही परिशुद्धता के साथ प्राप्त किया जा सकता है।

एन्गस्ट्रोम (Angstrom, 1920) द्वारा प्रकाशित एक सारणी में निर्मल नभ में विभिन्न तापों व विभिन्न वाष्प दावों पर एक कृष्ण वस्तु द्वारा प्रभावी पश्च विकिरणों के परिणाम एकत्रित किये गये हैं। इस सारणी की सहायता से यह बात ध्यान में रखकर कि कृष्ण वस्तु और सागर पृष्ठ के विकिरण में कुछ अन्तर होता है, चित्र 25 की रचना की गई है। इस चित्र में प्रभावी विकिरण सागर पृष्ठ के ताप के फंक्शन को 100 प्रतिशत से 70 प्रतिशत तक आपेक्षिक आर्द्रता के रूप में

आलेखित किया गया है, परन्तु उपरोक्त आलेख से निकाले गये परिणाम 10 प्रतिशत तक अशुद्ध हो सकते हैं क्योंकि यह आलेख अपूर्ण सूचनाओं पर आधारित है। तथापि, यह आलेख कुछ बहुत ही रोचक तथ्यों पर प्रकाश डालता है जैसे ऊँचे तापों (ऊँचे वाष्प दावों) पर वर्धित वायुमण्डलीय विकिरणों के कारण प्रभावी पश्च विकिरण बढ़ते हुए ताप के साथ धीरे धीरे घटते हैं। 0° ताप और 80 प्रतिशत आपेक्षिक आद्रता पर प्रभावी पश्च विकिरण 0.189 ग्राम कैलोरी/(से. मी.)^2/मिनट व 25° ताप और समान आपेक्षिक आद्रता पर 0.167 ग्राम कैलोरी/(से. मी.)^2/मिनट है। किसी दिये हुए ताप पर प्रभावी विकिरण बढ़ती हुई आद्रता के साथ वायुमण्डल से बढ़े हुए पश्च विकिरणों के कारण घटने लगते हैं। इस प्रकार 15° ताप और 70 प्रतिशत आपेक्षिक आद्रता पर प्रभावी विकिरण लगभग 0.180 ग्राम कैलोरी/(से. मी.)^2/मिनट और 100 प्रतिशत आपेक्षिक आद्रता पर लगभग 0.163 ग्राम कैलोरी (से. मी.)^2/मिनट हैं।

ऊँचे ताप पर एंगस्ट्रोम के आलेखों से प्राप्त प्रभावी पश्च विकिरण के मान वुन्ट के निम्नांकित मूलानुपाती सूत्र की सहायता से संगठित मानों से अधिक हैं।

$$Q_b = Q'(1-0.44-0.08\sqrt{e})$$

जहां Q' सागर पृष्ठ के समान तापीय कृष्ण वस्तु विकिरण और e मिलिवार इकाई में वायु का वाष्प दाब है। तथापि इस सूत्र में गुणांकों के संख्यात्मक मान निश्चित नहीं हैं और वे केवल तब ही काम में लाये जा सकते हैं जबकि e का मान 4 और 18 मिलीबार के बीच में हो।

सागर पृष्ठ के ताप और वायु की आपेक्षिक आद्रता में दैनिक और वार्षिक परिवर्तन महासागरों में बहुत ही कम होते हैं और इसलिये प्रभावी पश्च विकिरण निर्मल दिन में समय और वर्ष के मौसम पर निर्भर नहीं होते हैं, इसके विपरीत सूर्य और नभ से प्राप्य लघु तरंग विकिरणों में दैनिक और मौसमी परिवर्तन बहुत ही अधिक होते हैं।

मेघों की उपस्थिति में वायुमण्डल से आने वाले विकिरणों के बढ़ जाने के कारण प्रभावी पश्च विकिरण कम हो जाते हैं। मूलानुपाती सूत्र इस प्रकार लिखा जा सकता है :

$$Q = Q_0(1 - 0.083C)$$

जहां Q_0 निर्मल दिन में पश्च विकिरण और C, 1 से 10 तक के पैमाने पर मेघाच्छादितता है। मेघाच्छादितता में दैनिक और वार्षिक परिवर्तन, सम्बन्धित प्रभावी पश्च विकिरण में भी परिवर्तन उत्पन्न कर देंगे। मेघाच्छादितता में दैनिक परिवर्तन औसतन बहुत ही कम होते हैं और नगण्य माने जा सकते हैं, परन्तु कुछ क्षेत्रों में वार्षिक

परिवर्तन विचारणीय होते हैं। उपरोक्त समीकरण केवल औसत अवस्थाओं में ही लागू हो सकता है क्योंकि प्रभावी पश्च विकिरण में मेघों द्वारा उत्पन्न कटौती मुख्यतया मेघों के घनत्व और तुंगता पर निर्भर करती है। यदि पक्षाभ, स्तरी मध्य या स्तरी कपासी मेघों से नभ आच्छादित हो तो प्रभावी पश्च विकिरण लगभग $0.75Q_0$, $0.4Q_0$ और $0.1Q_0$ होगा।

समस्त अक्षांशों पर सूर्य से तथा नभ से आगत वार्षिक लघु तरंग विकिरण निर्गत पश्च विकिरणों से अधिक होते हैं। मोसबाई (Mosby 1936) के अनुसार 0° और 10° उत्तर व 60° और 70° उत्तरी अक्षांशों के बीच आगत वार्षिक अतिरिक्त विकिरण क्रमशः लगभग 0.170 ग्राम कैलोरी/(से. मी.)^2/मिनट और 0.040 ग्राम कैलोरी/(से.मी.)^2/मिनट होते हैं। ये अतिरिक्त विकिरण वायुमण्डल को दे दिये जाने चाहिये और इसलिये महासागर के ताप और लवणता के नियंत्रण के लिये, ऊष्मा और जल वाष्प का वायुमण्डल से विनिमय, विकिरण द्वारा प्रतिपादित अन्य प्रक्रियाओं के समान ही महत्वपूर्ण हैं।

महासागर के विकिरण वैशिष्ठ्य मानव के लिये बहुत ही अनुकूल हैं। सागर पृष्ठ आगत विकिरणों के एक बहुत ही थोड़े अंश को परावर्तित करता है और अधिकांश विकिरण ऊर्जा जल में अवशोषित होकर काफी गहराई तक मिश्रण की विधियों द्वारा वितरित हो जाते हैं और जब वायु सागर पृष्ठ से ठंडी होती है यह ऊर्जा वायुमण्डल को ऊष्ण करने के काम आती है। इस प्रकार महासागर मौसम पर ऊष्मास्थैतिक नियंत्रण रखते हैं। जल के तापमान के हिमांक से भी कम हो जाने से परिस्थितियां पूर्णतया परिवर्तित हो जाती हैं; इसलिये यदि और अधिक ऊष्मा की हानि हो तो हिम जमनी प्रारम्भ हो जाती है क्योंकि जब जल इस क्रान्तिक ताप को पार करता है तो उसके ऊष्मास्थैतिक वैशिष्ठ्य प्रतिकूल हो जाते हैं। सागरीय हिम वायु के बुलबुलों को अन्तर्हित कर श्वेत-भूरा रंग धारण कर लेती है और आगत विकिरणों का लगभग 50 प्रतिशत या अधिक भाग परावर्तित करने लगती है, और सतह यदि हल्की हिम या तुषासा से आच्छादित हो तो परावर्तन 65 प्रतिशत और ताजे शुष्क हिमाच्छादित में परार्वतन 80 प्रतिशत तक हो जाता है। दूसरी ओर हिमाच्छादित सतह कृष्ण वस्तु की भांति विकिरण उत्सर्जित करने लगती है, और इस प्रकार विकिरण प्राक्रियाओं से सम्बन्धित ऊष्मा बजट, खुले सागर की भांति अतिरिक्त न होकर, उस समय तक घाटे का बजट रहता है, जब तक कि पृष्ठ ताप इतना कम न हो जाये कि प्रभावी पश्च विकिरणों द्वारा हानि और आंशिक आगत विकिरणों के अवशोषण में संतुलन रहे। इसलिये हिमायन का तात्कालिक प्रभाव सागर सतह के ताप को और कम करना व हिम परत की मोटाई में वृद्धि करना है। हिम के स्पर्श से वायु ठंडी होकर जब प्रसारित होगी तब और अधिक हिम जमेगी है। इस प्रकार उच्च

अक्षांशों में हिमायन के साथ तापमान में थोड़ी सी कमी भी वायु के तापमान को शीघ्रता से कम कर देती है, और हिमाच्छादित क्षेत्रफल में वृद्धि कर देती है। दूसरी ओर, हिमाच्छादित सतह पर प्रवाहित वायु के ताप में थोड़ी सी ही वृद्धि हिमाच्छादित क्षेत्र की सीमाओं पर गलन प्रारम्भ कर देती है और एक बार प्रारम्भ हो जाने के बाद गलन बहुत ही शीघ्रता से उन्नति करता है। उपरोक्त तर्क के आधार पर यह ज्ञात किया गया है कि बारेन्टस सागर के हिमाच्छादित क्षेत्र वायुमण्डलीय परिसंचरण और धाराओं द्वारा लाये गये जल की मात्रा से ताप में थोड़े से भी परिवर्तन के सुग्राही संकेतक हैं (4.3a)। यह भी संगणित किया गया है, कि यदि मध्य और उच्च अंक्षाशों में तापमान कुछ अंश (डिग्री) बढ़ा दिया जाये तो, ध्रुवीय सागर हिमरहित महासागरों में परिवर्तित हो जायेंगे।

वायु मण्डल और सागर में ऊष्मा का विनिमय :—इकाई समय में सागर पृष्ठ के इकाई क्षेत्रफल द्वारा वायुमण्डल को दी गई ऊष्मा की कुल मात्रा बराबर है,

$$-c_p A \left(\frac{d\theta}{dz}+\gamma\right)$$

जहां c_p वायु की विशिष्ट ऊष्मा है, A भंवर चालकता है, $-d\theta/dz$ वायु की ताप प्रवणता है जो बढ़ती हुई ऊंचाई के साथ ताप के घटने पर धनात्मक होती मानी गई है और γ रुद्धोष्म क्षय दर है। सागर पृष्ठ के बहुत निकट $d\theta/dz$ की तुलना में γ को नगण्य माना जा सकता है। ऊष्मा चालकता गुणांक जो कि प्रयोग शाला में निर्धारित किया जा सकता है, के स्थान पर $c_p A$ रखा गया है क्योंकि वायु सदा विक्षुब्ध गति में ही रहती है (4.4)। विक्षुब्धता की अवस्था सागर पृष्ठ की दूरी के साथ परिवर्तित होती है क्योंकि पृष्ठ पर भंवरीय गति बहुत ही कम हो जाती है। परिणामतः स्थिर अवस्थाओं में जब प्रत्येक ऊर्ध्वाधर स्तंभ की अनुप्रस्थ काट से समान ऊष्मा ऊपर की ओर प्रवाहित हो रही हो सागर पृष्ठ पर ऊँचाई के साथ ताप शीघ्रता से बदलेगा और पृष्ठ से अधिक दूरी पर बहुत धीरे-धीरे बदलेगा। गुणनफल $-c_p A$ $d\theta_a/dz$ अचर रहता है और जैसे जैसे $c_p A$ ऊँचाई के साथ तीव्रता से बढ़ता है, $-d\theta_a/dz$ कम होना चाहिये।

महासागरों पर निम्नतम मीटर ऊँचाइयों पर वायु के ताप के शुद्ध माप अभी तक विस्तार से नहीं लिये जा सके हैं क्योंकि तापमान के सामान्य वितरण को जहाज के हल और मस्तूल अशान्त कर देते हैं इसलिये जहाज के ऊपर से जो ताप का माप लिया जाता है वह केवल अशान्त स्थितियों में ही ताप निरूपित करता है। तथापि जो भी प्रयोग इस दिशा में किये गये हैं वे ऊपर वर्णित सामान्य वितरण की ही पुष्टि करते हैं।

यदि सागर से वायुमण्डल में ऊष्मा का चालन होना ही है तो सागर पृष्ठ के कुछ ऊपर वायु सागर के पृष्ठ से ऊष्ण होनी चाहिये। ऐसी स्थिति में वायु नीचे से ऊष्मा प्राप्त करती है इससे वायु का स्तरीकरण अस्थिर हो जाने से वायु में क्षुब्धता तीव्र हो जाती है (4.5)। यदि सागर पृष्ठ वायु से बहुत ही अधिक ऊष्ण हो, जैसा शीत ऋतु में सागर पर शीतल महाद्वीपीय वायु प्रवाहित होने पर होता है, तो नीचे से वायु के तीव्र ऊष्णता प्राप्त होने के कारण तेज संवहन धारायें उत्पन्न होकर वायुमण्डल में प्रचन्ड अशान्ति और गर्जन के साथ तूफ़ान पैदा कर सकती है। यहां पर उद्देश्य ऊष्मा विनिमय के मौसम विज्ञान सम्बन्धी पहलू पर विचार करना न होकर इस बात पर जोर देना है कि सागर पृष्ठ से ऊष्मा का वायुमण्डल में चालन केवल उसी समय सम्भव होता है जबकि सागर पृष्ठ वायु से ऊष्ण होता है। एक प्रश्न यह भी हो सकता है कि क्या इसके विपरीत प्रक्रिया भी सम्भव है ? अर्थात सागर पृष्ठ पर ऊष्ण वायु के प्रवाह के कारण ऊष्मा की काफी मात्रा सागर पृष्ठ पर संचालित हो जाने से वायुमण्डल विक्षुब्ध हो जाना चाहिये परन्तु ऐसा नहीं होता है क्योंकि इन अवस्थाओं में वायु के नीचे की ओर से शीतल होने के कारण स्तरीकरण स्थिर हो जाता है, अतः क्षुब्धता और परिणामतः वायु की भंवरीय चालकता काफी कम हो जाती है।

औसतन यह पाया गया है कि सागर पृष्ठ वायु की अपेक्षा कुछ ऊष्ण रहता है। अभी तक इस बारे में विस्तार से अध्ययन नहीं किया गया है, परन्तु एन्गस्ट्रोम ने यह अनुमान लगाया है कि लगभग 10 प्रतिशत अतिरिक्त ऊर्जा वायुमंडल में संचालित होती है और बाकी की 90 प्रतिशत वाष्पीकरण में काम आती है। अन्य अनुमान भी उपरोक्त अंकों की पुष्टि करते हैं (4.6)। इस प्रकार महासागर के ऊष्मा बजट में ज्ञेय ऊष्मा की अपेक्षा वाष्पीकरण अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इसलिए वाष्पीकरण का अधिक विस्तार से वर्णन किया जायेगा।

सागर से वाष्पीकरण

वाष्पीकरण की प्रक्रिया—शुद्ध जल के समतल पृष्ठ पर वाष्प तनाव जल के ताप पर निर्भर करता है। लवणता भी तनाव को कुछ कम कर देती है, वाष्प तनाव और लवणता में मूलानुपाती सूत्र इस प्रकार है, (4.7) :—

$$e_s = e_d\,(1 - 0.000537S)$$

जहां e_s सागर जल पर वाष्प तनाव है, e_d समान तापीय आसुत जल पर वाष्प तनाव है, और S लवणता अंश प्रति मिल्ले की इकायों में है। खुले महासागरों में उपरोक्त सूत्र सन्निकटतः $e_s = 0.98e_d$ होता है सारणी 29 में 35.0‰ लवणता और दर्शाये तापों पर मिलीबार में वाष्प तनाव संग्रहित है।

जिस वायु में समान तापीय जल के वाष्प तनाव से कम वाष्प तनाव होता है वह नमी से असंतृप्त होती है, और वायु जिसमें वाष्प तनाव समान तापीय जल पृष्ठ के समान होता है, वह नमी से संतृप्त होती है। परम शुद्ध वायु में वाष्प तनाव संतृप्त मान से भी अधिक हो सकता है, परन्तु सामान्यतः वायु में नाभिकणों पर वाष्प सुद्रवित हो जाती है और इस प्रकार वाष्प तनाव का मान सम्बन्धित समान तापीय जल के बराबर हो जाता है। इन अवस्थाओं में वायु के वाष्प तनाव में वृद्धि नहीं की जा सकती और इसलिये मौसम विज्ञान में किसी दिये हुए ताप पर "अधिकतम वाष्प तनाव" शब्द का प्रयोग किया जाता है। अधिकतम वाष्प तनाव, जिस पर सुद्रवण प्रारम्भ हो जाये, प्राप्त करने के लिये या तो दिये हुए ताप पर वायु में और जल वाष्प मिलानी चाहिये और या दी हुई नमी पर वायु का ताप कम कर देना चाहिये। पिछली स्थिति में जिस ताप पर सुद्रवण प्रारम्भ हो जाय उस ताप को "ओसांक" कहते हैं।

सारणी 29

35‰ लवणता पर मिलीबार इकाइयों में जल का अधिकतम वाष्प तनाव

ताप (°C)	वाष्प तनाव (मिलीबार)	ताप (°C)	वाष्प तनाव (मिलीबार)
—2	5.19	16	17.85
—1	5.57	17	19.02
0	5.99		
1	6.44	18	20.26
2	6.92	19	21.57
		20	22.96
3	7.43	21	24.42
4	7.98	22	25.96
5	8.56		
6	9.83	23	27.59
7		24	29.30
		25	31.12
8	10.52	26	33.01
9	11.26	27	35.02
10	12.05		
11	12.88	28	37.13
12	13.76	29	39.33
		30	41.68
13	14.70	31	44.13
14	15.69	32	46.71
15	16.74		

वाष्पीकरण की विधि का विवेचन करते समय वाष्प तनाव की अपेक्षा विशिष्ट आद्रता पर विचार करना अधिक तर्क संगत है। विशिष्ट आद्रता, f, वायु की प्रत्येक इकाई मात्रा द्वारा अन्तर्हित जल वाष्प की मात्रा होती है। तब जल वाष्प

की कुल मात्रा, F, जो कि 1 वर्ग से. मी. क्षेत्रफल काट से ऊपर की ओर स्थानान्तरित हो रही है, $-A\, df/dz$ के बराबर होगी, जहां A भंवरीय चालाकता और $-df/dz$ विशिष्ट आद्रता की ऊर्ध्वाधर प्रवणता है, जो, यदि विशिष्ट आद्रता बढ़ती हुई ऊँचाई के साथ कम हो तो धनात्मक होती है। यदि वाष्प दाब e समीकरण में पुर:स्थापित कर दिया जाए तो समीकरण सन्निकटत: इस प्रकार होगा

$$F = -A\,\frac{0.621}{p}\,\frac{de}{dz},$$

जहां p वायुमण्डलीय दाब है। वाष्पीकरण के लिये पृष्ठ द्वारा आवश्यक कुल ऊष्मा

$$Q_e = -L_\theta\, A\,\frac{0.621}{p}\,\frac{de}{dz},$$

जहां L_θ पृष्ठ के तापन θ पर वाष्पायन की ऊष्मा है (4.8)।

वायुमण्डल को दी गई ज्ञेय ऊष्मा की मात्रा और वाष्पीकरण में काम आई ऊष्मा की मात्रा का अनुपात है (4.9)

$$R = \frac{Q_h}{Q_e} = \frac{c_p}{L_\theta}\,\frac{p}{0.621}\,\frac{d\theta_a/dz}{de/dz} = 0.66\,\frac{p}{1000}\,\frac{d\theta_a/dz}{de/dz}$$

अन्तिम परिणाम प्राप्त करने के लिये $c_p = 0.240$ और $L = 585$, के मान पुर स्थापित किये गये हैं। इस प्रकार अनुपात R मुख्यतया, सागर के निकट पृष्ठ वायु के ताप और आद्रता प्रवणताओं के अनुपात पर निर्भर करता है। इन प्रवणताओं को ठीक-ठीक मापना अत्यन्त ही कठिन है परन्तु इनके स्थान पर सागर पृष्ठ और उससे कुछ मीटर ऊपर ताप और वाष्प दाब से संबन्धित मानों को प्रतिस्थापित किया जा सकता है

$$R = 0.66\,\frac{p}{1000} \times \frac{\theta_w - \theta_a}{e_w - e_a}$$

बोवेन (Bowen, 1926) ने इस अनुपात को सर्व प्रथम एक दूसरी ही विधि से ज्ञात किया था इसलिए यह बहुधा "बोवेन अनुपात" कहलाता है।

R के मान जलवायु विज्ञान सम्बन्धी महासागरीय चार्टों की सहायता से परिगणित किये जा सकते हैं, परन्तु अभी तक इनका व्यापक अध्ययन नहीं किया गया है। 'यू. एस. वैदर ब्यूरो' द्वारा 1938 में प्रकाशित 'एटलस ऑफ क्लाइमेटिक चार्टस् ऑफ दी ओसन' नामक पुस्तक में दी गई सूचनाओं के आधार पर की गई गणना के अनुसार यह अनुपात महासागर के विभिन्न भागों में दूसरे भागों की अपेक्षा परिवर्तित होता रहता है। एक नियम यह है कि निम्न अक्षांशों में यह अनुपात कम रहता है जहां यह वर्ष भर निकटतया अचर रहता है परन्तु मध्य अक्षांशों में इसका

मान अधिक होता है, जहाँ शीतकाल में इसका मान 0.5 तक पहुँच जाता है और कुछ प्रदेशों में गर्मियों में इसका मान —0.2 तक घट जाता है। ऋणात्मक चिन्ह यह दर्शाता है कि ऊष्मा वायुमण्डल से सागर को संचालित हो रही है। औसतन इसका मान सब महासागरों के लिए लगभग 0.1 होता है, अर्थात् महासागर द्वारा विभिन्न विकिरण प्रक्रियाओं द्वारा प्राप्त अतिरिक्त ऊष्मा का लगभग 10 प्रतिशतांश ज्ञेय ऊष्मा के रूप में दे दिया जाता है, जबकि लगभग 90 प्रतिशतांश वाष्पीकरण के रूप में काम आता है (4.10)।

वाष्पीकरण से गुणधर्म सम्बन्धित कुछ बातें ऐसी हैं जिन पर यहां बल देना अत्यावश्यक है। यदि वायु से जल ऊष्ण है, तो सागर पृष्ठ पर वाष्प दाब वायु के वाष्प दाब से अधिक रहेगा और वाष्पीकरण हमेशा हो सकता है व इन परिस्थितियों में काफी सरलीकृत हो जायगा, क्योंकि निम्नतर परतों में अस्थिर स्तरीकरण के कारण वायु में पूर्ण क्षुब्धता उत्पन्न हो जायगी (4.11)। इस प्रकार जब ऊष्ण जल पर शीत प्रवाहित हो रही हो अधिकतम-वाष्पीकरण की आशा की जानी चाहिए। यदि वायु जल से अत्यधिक ठण्डी हो तो वायु जलवाष्प से संतृप्त हो सकती है, तथा जल पृष्ठों पर कुहरा या कोहरा बनने लग सकता है। ऐसा कुहरा शान्त, निर्मल रातों में पोखरों तथा छोटी झीलों पर अवपात के समय सामान्य होता है। जब वायु चलती है तो नमी ऊपर की ओर ले जाई जायगी परन्तु कुहरों की रेखाएँ और स्तम्भ झीलों या नदियों पर बहुधा दृश्य होते हैं तथा सामान्यतया "धुआँ" के नाम से वर्णित होते हैं। यह प्रक्रिया कभी-कभी तट के निकट देखी जा सकती है और खुले महासागर पर नहीं, क्योंकि ज्यों-ज्यों तट से दूरी बढ़ती है आवश्यक ऊच्च तापान्तर शीघ्रता से विलोपित होने लगता है।

जब समुद्र पृष्ठ वायु से ठण्डा होता है तब वाष्पन तभी हो सकता है जबकि वायु जल वाष्प से संतृप्त नहीं होती है। ऐसी स्थिति में क्षुब्धता घट जाती है तथा जब वायुमण्डल की निम्नतम परत के वाष्पांश का मान ऐसा हो जाय कि वाष्प दाब समुद्र पृष्ठ पर के दाब के बराबर हो तब वाष्पन रुक जाना चाहिए। यदि गर्म नम हवा ठंडे पृष्ठ के ऊपर प्रवाहित हो रही हो तो ऊष्मा स्थानान्तरण की दिशा बदल जाती है और सुद्रवण इस प्रकार से होने लगता कि सागर पृष्ठ वायुमण्डल को ऊष्मा देने की अपेक्षा इससे लेने लगता है। इस तथ्य के कारण यह प्रक्रिया तब ही सम्भव है जब वायु सागर से अधिक गर्म हो और इससे वायु की क्षुब्धता बहुत ही कम हो जावे, यह अनुमान किया जा सकता है कि जल का सुद्रवण अधिक महत्व नहीं रखता, परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि यदि परिस्थितियां प्रतिकूल हों तो यह प्रक्रिया हो सकती है और होती है। उपरोक्त परिस्थितियों में चालन और सागर पृष्ठ के साथ संस्पर्श के कारण वायु का ताप सागर पृष्ठ से काफी दूरी तक

ओसांक से कम हो जाता है। वायु में सुद्रवण होने लगता है तथा "अभिवहन कुहरा" उत्पन्न हो जाता है, इस प्रकार का कुहरा सागर में सामान्यतया देखा जाता है।
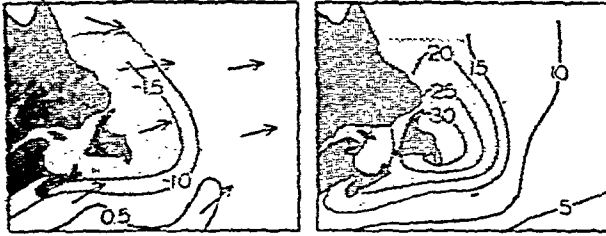
चित्र 26. दायें—समुद्री पृष्ठ तथा वायु ताप का अन्तर और मार्च, अप्रेल, तथा मई में न्यूफाउण्डलैण्ड के विशाल किनारो पर चलने वाली हवाओं की दिशा
दायें—उन्ही महिनों में कुहरे की प्रतिशत आवृत्ति

"एटलस ऑफ क्लाईमेटिक चार्टस् ऑफ दी ओसन" (1938), में नक्शों की सहायता से कुहरे या कोहरा की आवृत्ति और वायुमण्डल व सागर पृष्ठ के तापान्तर के बीच सम्बन्धों को दर्शाया गया है। उदाहरण के तौर पर, चित्र 26 में मार्च, अप्रेल और मई माह में न्यूफाउंडलैण्ड के ग्रान्ड बैन्क्स पर कुहरे की आवृत्ति, सागर पृष्ठ व वायुमण्डल के बीच तापान्तर और उस समय चलने वाली वायु की दिशा आलेखित है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वसन्त ऋतु में जब वायु जल से अधिक गर्म होती है, इस क्षेत्र में वाष्पीकरण सम्भव नहीं है परन्तु वर्षा और शीत ऋतु में जब जल अधिक गर्म होता है वाष्पीकरण भी काफी मात्रा में होना चाहिए।

शीत ऋतु में, मध्य व उच्च अक्षांशों पर वायु की अपेक्षा सागर पृष्ठ अधिक गर्म होता है, इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उपरोक्त स्थिति में वाष्पीकरण अधिकतम होगा। उपरोक्त निष्कर्ष सामान्य अनुभव के विपरीत प्रतीत होता है कि उष्ण जल की अपेक्षा ठंडे जल में वाष्पीकरण अधिक होगा, परन्तु यह विरोधाभास केवल आभासी है क्योंकि अधिकतम वाष्पीकरण उसी समय होता है जब जल पृष्ठ वायु से अधिक गर्म हो और शीत ऋतु में ऐसा ही होता है।

वाष्पीकरण का अवलोकन और संगणन—महासागर के विभिन्न भागों में वाष्पीकरण सम्बन्धी वर्तमान ज्ञान अंशतः अवलोकन और अंशतः सागर के ऊष्मा बजट सम्बन्धी संगणन पर आधारित है।

जहाज के ऊपर पलड़ों की सहायता से अवलोकित मान सागर सतह पर वास्तव में हो रहे वाष्पीकरण से बहुत अधिक पाये गये हैं, जो अंशतः शायद इन पलड़ों के स्तर पर वायु वेग, सागर पृष्ठ पर के वायु वेग से अधिक होने के कारण है, और अंशतः शायद इसलिये वायु और वाष्पन सतह के बीच वाष्प दाब में अन्तर पलड़े पर सागर सतह की अपेक्षा अधिक होता है। जहाज के ऊपर पलड़ों की

सहायता से लिये गये मानों और वायु वेग को घटा कर व वाष्प दाव को वढ़ा कर निकाले गये मानों का विश्लेपण करने के पश्चात वूस्त (Wüst 1936) ने यह निष्कर्ष निकाला कि अवलोकित मानों को सागर सतह पर हो रहे वाष्पीकरण के वास्तविक मानों में वदलने के लिये 0.53 से गुणा करना पड़ेगा।

ऊष्मा वजट के आधार पर वाष्पीकरण के सम्वन्ध में गणना करने के लिये हमें निम्नांकित समीकरण से विचार प्रारम्भ करना चाहिये, (4.12)

$$Q_s - Q_b - Q_e - Q_h + Q_v + Q_\theta = 0$$

अनुपात $R = Q_b / Q_e$ पुरस्थापित करने और वाष्पीकरण E को सेन्टीमीटर में वदलने के लिये Q_e को वाष्पीकरण की गुप्त ऊष्मा, L, से भाग देने पर; निम्नलिखित समीकरण, प्राप्त होगी

$$E = \frac{Q_s - Q_b + Q_v + Q_\theta}{L(1 + R)}$$

ऊष्मा बजट को निरुपित करने वाला यह समीकरण इस रूप में वाष्पीकरण की गणना करने के लिये बहुधा उपयोग में आने लगा है। यह सूत्र वाष्पीकरण का मान सीधे सेन्टीमीटर में दे देता है जबकि Q_s इत्यादि ग्राम कैलोरी में उस समयान्तर के लिये हैं जिसके लिये वाष्पीकरण की गणना करनी होती है।

स्वेरड्रुप (Sverdrup, 1937) ने महासागरों में वाष्पीकरण की गणना का एक दूसरा ही तरीका प्रस्तावित किया है जिसमें उन्होंने रूक्षपृष्ठ (खुरदरी सतह) पर क्षुब्धता के सम्वन्ध में तरल यांत्रिकी के आधार पर वाष्पीकरण का एक सूत्र प्रस्तावित किया है, जिसमें अंशतः वे गुणांक है जो प्रयोगशाला में ज्ञात किये जा सकते हैं और अंशतः सागर सतह पर वाष्प दाव के ऊँचाई के साथ परिवर्तन के गुणधर्म पर आधारित गुणांक हैं। इसी प्रकार के परन्तु कुछ अधिक जटिल सूत्र मिलर (Millar, 1937) और मोन्टगोमरी (Montgomery, 1940) ने भी प्रतिस्थापित किये हैं।

यथातत सूत्र आंकिक गणना के लिये उपयुक्त नहीं हैं, परन्तु 4 और 12 मीटर प्रति से. वायु वेग पर, औसत वार्षिक वाष्पीकरण निम्न साधारण समीकरण की सहायता से सेन्टीमीटर में सन्निकटतः ज्ञात किया जा सकता है;

$$E = 3.7\,(\bar{e} - \bar{e}_a)\,\bar{u}$$

जहां $\bar{e}_w$ मिलीवार इकाई में सागर के ताप और लवणता की सहायता से ज्ञात औसत वाष्प दाव दर्शाता है, $\bar{e}_a$ सागर पृष्ठ से 6 मीटर ऊपर वायु में वाष्प दाव है और $\bar{u}$ उसी ऊँचाई पर औसत प्रति सैकन्ड इकाई में वायु वेग है।

महासागरों से वार्षिक औसत वाष्पीकरण—महासागर के विभिन्न भागों में पलड़ों द्वारा लिये गये मापों के आधार पर, वूस्त (Wüst, 1936) ने यह ज्ञात किया है कि समस्त महासागरों में औसत वाष्पीकृत राशि लगभग 93 से०मी०/वर्ष है, और वह यह सोचते हैं कि यह संख्या 10 या 15 प्रतिशत के भीतर शुद्ध है। स्मिड्ट (Schmidt, 1915) ने वाष्पीकरण की गणना E के लिए पूर्वगत सूत्र की सहायता से की है जिसमें उन्होंने सम्पूर्ण सागर के लिये Q_θ और Q_v को उपेक्षणीय मान लिया है। स्मिड्ट ने R के उच्च मान लेते हुए और आगत विकिरण व पश्च विकिरणों के प्राप्य मानों के आधार पर यह अनुमान लगाया कि कुल वाष्पीकरण 76 से०मी०/वर्ष होता है। विकिरणों के अभिनव मापों पर आधारित पुनरीक्षण और $R=0.1$ लेते हुए की गई गणना का परिणाम 106 से०मी०/वर्ष है मोसबाई (Mosby, 1936)। यह मान ऊपरी सीमा है और 10 या 15 प्रतिशत अधिक हो सकता है, इसलिये यह प्रतीत होता है कि वूस्त के परिणाम लगभग ठीक हैं।

इस संदर्भ में यह काफी रुचिकर होगा कि महासागरों, भू-क्षेत्रों और सम्पूर्ण पृथ्वी पर हो रहे वाष्पीकरण और वर्षण सम्बन्धी कुछ आंकड़ों पर विचार किया जाय वूस्त (Wüst, 1936)। महासागरों में वाष्पीकृत कुल जल राशि 334,000 (कि.मी.)^3/वर्ष होती है जिसमें से 297,000 (कि०मी०)^3 समुद्र में वर्षण द्वारा वापस आ जाती है और चूँकि सागर में लवणता स्थिर रहती है इसलिये उपरोक्त राशियों में अन्तर, 37,000 (कि०मी०)^3 की जल राशि अपवाह के द्वारा सागर को प्राप्त होनी चाहिये। वर्षण के द्वारा भू-क्षेत्रों को प्राप्त कुल जल राशि 99,000 (कि०मी०)^3 है, जिसमें से लगभग एक तिहाई से कुछ अधिक 37,000 (कि०मी०)^3, राशि महासागरों में वाष्पीकरण के द्वारा और बाकी 62,000 (कि०मी०)^3 राशि भू-क्षेत्रों के भीतरी जल भंडारों या नम धरती में वाष्पीकरण से प्राप्त होती है। तुलना के लिये यह बतलाया जा सकता है कि बौल्डर बांध के ऊपर मीड झील की क्षमता लगभग 45 (कि०मी०)^3 है।

विभिन्न अक्षांश और देशान्तरों में वाष्पीकरण—सागर में पलड़े से अवलोकन की विधि द्वारा वूस्त ने विभिन्न महासागरों में विभिन्न अक्षांशों पर वाष्पीकरण का औसत मान निकाला है (सारणी 30)। महासागरीय धाराओं द्वारा स्थानान्तरित ऊष्मा की मात्रा को नगण्य मानते हुए ऊर्जा समीकरण की सहायता से भी उपरोक्त राशि का वार्षिक मूल्यांकन किया जा सकता है। इस प्रकार की एक गणना अटलांटिक महासागर के लिये, किम्बल (Kimball, 1928) द्वारा प्राप्त आगत विकिरण, अव-लोकित ताप और प्रभावी पश्च विकिरणों के निर्धारण के लिये, आर्द्रता के मानों के आधार पर की गई है। चित्र 27 में अटलांटिक महासागर के लिये 50° उत्तर और 50° दक्षिण में वूस्त के द्वारा संगणित औसत वार्षिक वाष्पीकरण और ऊर्जा समी-

कारण द्वारा संगणित सम्बन्धित मान दर्शाये गये है। दोनों में सहमति काफी संतोषप्रद है। विषुवत रेखीय प्रदेशों में कम वाष्पीकरण, जैसा कि दोनों वक्र दर्शाते हैं, का कारण इन प्रदेशों में अधिक विशिष्ट आद्रता और कम वायु वेग का होना है और यदि ऊर्जा समीकरण पर विचार किया जावे तो यह प्रक्रिया अधिक मेघाच्छादन के आधार पर समझाई जा सकती है। उपोष्णकटिबंधीय प्रतिचक्रवात क्षेत्रों में वाष्पीकरण स्पष्ट रूप से बहुत अधिक दिखलाई देता है, परन्तु दक्षिणी गोलार्द्ध में वाष्पीकरण के अधिकतम अवलोकित मान, गणनाओं द्वारा प्राप्त मानों की अपेक्षा विषुवत रेखा के अधिक समीप है। इस विसंगति का कारण यह हो सकता है कि उपोष्णकटिबंधीय प्रतिचक्रवात क्षेत्र एक वर्ष के काल में भूमध्य रेखा से दूर हट जाते हों और अवलोकन के लिये किये गये प्रयोग वर्ष काल में समान रूप से वितरित नहीं किये गये हों। पूर्वी प्रशान्त महासागर में 20° उत्तर और 50° दक्षिण अक्षांशों के मध्य होने वाले वाष्पीकरण की गणना के लिये मेकइवेन (McEven, 1938) ने भी ऊर्जा समीकरण की सहायता ली है। उनके द्वारा प्राप्त परिणाम वूस्त द्वारा समान अक्षांश के लिये प्राप्त परिणामों के बराबर हैं।
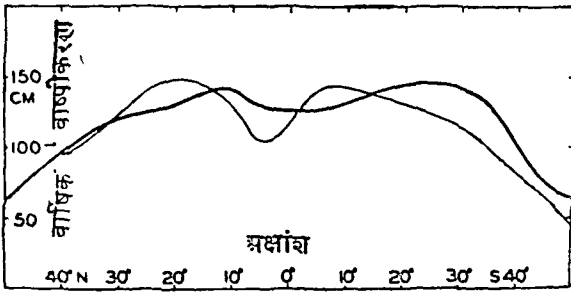
चित्र 27. अटलांटिक महासागर में 50° उत्तर और 50° दक्षिण अक्षांशों के बीच वार्षिक वाष्पीकरण। पतली रेखा वूस्त के अवलोकन पर आधारित है, और मोटी रेखा ऊर्जा समीकरण द्वारा संगणित मानों पर आधारित है।

ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न अक्षांशों में वाष्पीकरण के औसत वार्षिक मान पूर्णतया निर्धारित हो गये हैं, परन्तु वाष्पीकरण महासागर के पूर्वी व पश्चिमी भागों और ऋतुओं के साथ भी परिवर्तित होता रहता है। ये परिवर्तन वायुमंडल के परिसंचरण में बहुत ही महत्व रखते हैं क्योंकि जल वाष्प का संभरण, जो बाद में सुद्रवित होकर अपनी गुप्त ऊष्मा दे देता है, कुल ऊष्मा प्रदाय का बहुत बड़ा भाग निरूपित करता है। अभी तक इस बारे में विस्तार से कुछ भी ज्ञात नहीं है परन्तु यह सम्भव है कि महासागर के विभिन्न भागों में विभिन्न ऋतुओं के लिये कुल वाष्पीकरण का सन्निकट मान स्वेर्ड्रूप (Sverdrup, 1937) द्वारा प्रस्तावित और जेकब्स (Jacobs, 1942) द्वारा उपयोगित विधि द्वारा ज्ञात किया जा सकता है।

वाष्पीकरण में वार्षिक परिवर्तन—वाष्पीकरण में वार्षिक परिवर्तनों की परीक्षा ऊर्जा समीकरण द्वारा की जा सकती है (स्वेरड्रुप, Sverdrup 1940)

$$Q_a = Q_e\,(1 + R) = Q_s - Q_b + Q_\theta - Q_v$$

यदि ऐसी समस्त गहराइयों पर कुल ताप परिवर्तन ज्ञात हो जहां तापन और शीतलन की प्रक्रियाओं द्वारा ताप में परिवर्तन होते हैं तो राशि, Q_θ ,की संगणना की जा सकती है। पृष्ट पर होने वाले ताप परिवर्तनों की परीक्षा की जा चुकी है, परन्तु जल मंडलीय पृष्ठों के लिये बहुत ही कम आंकड़े उपलब्ध हैं, उनमें से सबसे अधिक विश्वसनीय हेलैन्ड और हेनसन (Hellend and Henson, 1930) द्वारा उत्तरी अटलांटिक महासागर के 47° उत्तर और 12° पश्चिम केन्द्रीय प्रदेश के लिये एकत्रित आंकड़े हैं। उस प्रदेश में कुल आगत विकिरण किम्बल (Kimball, 1928) के आंकड़ों से प्राप्त किये जा सकते हैं, पश्च विकिरण चित्र 25 की सहायता से ज्ञात किये जा सकते हैं, और धाराओं द्वारा स्थानान्तरण Q_r उपेक्षणीय माना जा सकता है। चित्र 28A में जो राशियां प्रदर्शित हैं वे इस प्रकार हैं—कुल वार्षिक अतिरिक्त विकिरण में परिवर्तन Q_r, जल के तापमान को बदलने के लिये कुल उपयोगी ऊष्मा में वार्षिक परिवर्तन Q_θ और उपरोक्त दोनों राशियों में अन्तर Q_a, जो कि वायुमंडल को दी गई कुल ऊष्मा की मात्रा निरूपित करता है। अन्तिम राशि का अधिकांश वाष्पीकरण के काम आता है और इसलिये Q_a, से सूचित वक्र सन्निकटतः वाष्पीकरण के वार्षिक परिवर्तन को निरूपित करता है जो वर्षा और शीतारम्भ में अधिकतम, गर्मियों में न्यूनतम और मार्च और फरवरी में क्रमशः गौण अधिकतम और न्यूनतम प्रदर्शित करता है। जून एवं जुलाई में वाष्पीकरण नहीं होता। वर्ष में कुल वाष्पीकरण लगभग 80 से. मी. होता है।
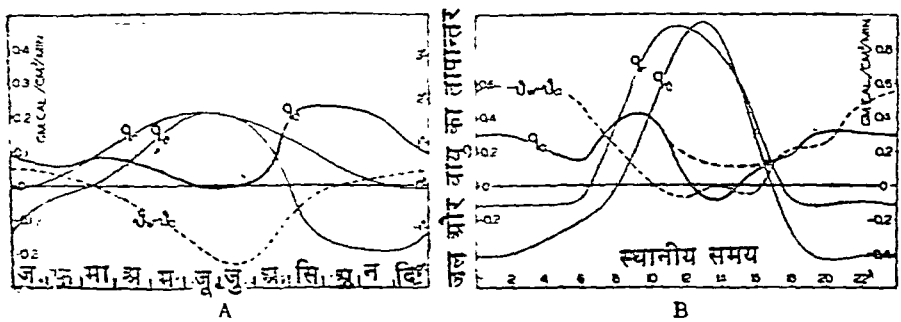
चित्र 28. (A) कुल ऊष्मा में वार्षिक परिवर्तन और उत्तर अटलांटिक प्रदेश (लगभग 47°N, 12°W) में वायुमण्डल को दी गई कुल ऊष्मा q_a. (B) अटलांटिक सागर में विषुवत रेखा के निकट सम्बन्धित दैनिक परिवर्तन (चिन्हों की व्याख्या के लिये संबन्धित मूल पाठ देखें)।

यह उदाहरण एक व्यावहारिक उपयोग निर्देशित करता है परन्तु विस्तार से अध्ययन करने के लिये पूर्ण आंकड़े अभी तक उपलब्ध नहीं हैं। वाष्पीकरण विधि के

सारणी 30

लवणता, S, वाष्पीकरण, E, और वर्षण P, अन्तर $E-P$ के 40° उत्तर और 50° दक्षिण अक्षांश के मध्य हर पांचवीं अक्षांश के लिये औसत मात्रा

(वूस्त के अनुसार)

अक्षांश	अटलांटिक महासागर				हिन्द महासागर				प्रशान्त महासागर				समस्त महासागर			
	S ‰	E (से.मी./वर्ष)	P (से.मी./वर्ष)	$E-P$ (से.मी./वर्ष)	S ‰	E (से.मी./वर्ष)	P (से.मी./वर्ष)	$E-P$ (से.मी./वर्ष)	S ‰	E (से.मी./वर्ष)	P (से.मी./वर्ष)	$E-P$ (से.मी./वर्ष)	S ‰	E (से.मी./वर्ष)	P (से.मी./वर्ष)	$E-P$ (से.मी./वर्ष)
40°N........	35.80	94	76	18					33.64	94	93	1	34.54	94	93	1
35...........	36.46	107	64	43					34 10	106	79	27	35.05	106	79	27
30...........	36.79	121	54	67					34.77	116	65	51	35.56	120	65	55
25...........	36.87	140	42	98					35.00	127	55	72	35.79	129	55	74
20...........	36.47	149	40	110	(35.05)	(125)	(74)	(51)	34.88	130	62	68	35.44	133	65	68
15...........	35.92	145	62	83	(35.07)	(125)	(73)	(52)	34.67	128	82	46	35.09	130	82	48
10...........	35.62	132	101	31	(34.92)	(125)	(88)	(37)	34.29	123	127	−4	34.72	129	127	2
5...........	34.98	105	144	−39	(34.82)	(125)	(107)	(18)	34.29	102	(177)	(−75)	34 54	110	177	−67
0...........	35.67	116	96	20	35.14	125	131	−6	34.85	116	98	18	35 08	119	102	17
5°S........	35.77	141	42	99	34.93	121	167	−46	35.11	131	91	40	35.20	124	91	33
10...........	36.45	143	22	121	34 57	99	156	−57	35.38	131	96	35	35.34	130	96	34
15...........	36.79	138	19	119	34.75	121	83	38	35.57	125	85	40	35.54	134	85	49
20...........	36.54	132	30	102	35.15	143	59	84	35.70	121	70	51	35.69	134	70	64
25...........	36.20	124	40	84	35.45	145	46	99	35.62	116	61	55	35.69	124	62	62
30...........	35.72	116	45	71	35 89	134	58	76	35.40	110	64	46	35.62	111	64	47
35...........	35.35	99	55	44	35.60	121	60	61	35.00	97	64	33	35.32	99	64	35
40...........	34.65	81	72	9	35.10	83	73	10	34.61	81	84	−3	34.79	81	84	−3
45...........	34.19	64	73	−9	34.25	64	79	−15	34.32	64	85	−21	34.14	64	85	−21
50...........	33.94	43	72	−29	33.87	43	79	−36	34.16	43	84	−41	33.99	43	84	−41

बारे में सामान्य रूप से विचार करते समय जो निष्कर्ष निकाले गये थे वे उपरोक्त परिणामों के अनुसार ही हैं कि वाष्पीकरण गर्मियों में न्यूनतम और वर्षा व शीतारम्भ में अधिकतम होता है।

वाष्पीकरण में दैनिक परिवर्तन—वाष्पीकरण में दैनिक परिवर्तनों की परीक्षा भी ऊपर वर्णित विधियों की सहायता से की जा सकती है, परन्तु वर्तमान आंकड़े केवल अटलांटिक महासागर में विषुवत रेखा के निकट स्थित चार 'मिटिओर' केन्द्रों के पास ही उपलब्ध हैं, डिफेन्ट, (Defant, 1932,) कुहलब्रोड्ट तथा रेगर (Kuhlbrodt, and Reger, 1938)। चित्र 28B में Q_r और Q_θ अंकित वक्र, चित्र 28A में अंकित सम्बन्धित राशियों के समान ही हैं, केवल दोनों राशियों का अन्तर, Q_a चौबीस घन्टों में ऊष्मा की कुल मात्रा दर्शाता है जो सन्निकटतः वाष्पीकरण के समानुपाती है। ऊष्ण कटिबन्धों में पाये जाने वाले दैनिक परिवर्तन विचारनीय रूप तक मध्य अक्षांशों पर पाये जाने वाले परिवर्तनों के समतुल्य हैं और दुहरे काल द्वारा लक्षित होते हैं, इन दुहरे कालों का मान मध्यान्ह के पश्चात् व रात्रि के प्रथम प्रहर में अधिकतम और सूर्योदय और मध्यान्ह से पूर्व न्यूनतम होता है। यह सम्भव है कि मध्यान्ह में दर्शाया मान Q_r और Q_θ के परम मानों में अनिश्चितता के कारण काफी बढ़ा कर प्रदर्शित किया गया है। कुल दैनिक वाष्पीकरण 0.5 से.मी. था परन्तु जिन चारों दिन यह परीक्षा की गई थी नभ निकटतया निर्मल या मेघरहित था इसलिये उपरोक्त मान वास्तविक औसत दैनिक वाष्पीकरण से कुछ कम है। वाष्पीकरण का दुहरा दैनिक काल केवल ऊष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों का वैशिष्ट्य प्रतीत होता है परन्तु मध्य अक्षांशों में केवल एक ही काल होता है तथा सम्भवतया रात्रि को ही वाष्पीकरण अधिकतम होता है।

पृष्ठ परत की लवणता और तापमान—समस्त महासागरों में पृष्ठ लवणता अक्षांशों के साथ समान रूप से परिवर्तित होती है। यह विषुवत रेखा पर न्यूनतम
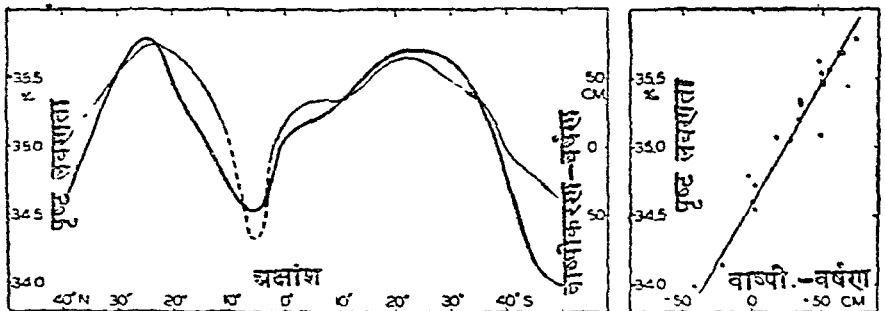
चित्र 29. (A) समस्त सागरों के लिये औसत पृष्ठ लवणता का मान (गहरी रेखा) और वाष्पीकरण ऋण वर्षण, E—P (हल्की रेखा) का अक्षांशों के विरुद्ध आलेखन। (B) पृष्ठ लवणता और वाष्पीकरण ऋण वर्षण को एक दूसरे के विरुद्ध आलेखित किया गया है। (वूस्त Wüst 1936, के अनुसार)।

होती है, 20^0 उत्तर और 20^0 दक्षिण अक्षांशों के पास यह अधिकतम होकर उच्च अक्षांशों की ओर घटने लगती है।

बृहत् सारणी 30 में (वूस्त Wüst, 1936 के अनुसार) तीन बृहत् सागरों और समस्त सागरों के लिये पृष्ठ लवणता, वाष्पीकरण, वर्षण और अन्तिम दोनों राशियों के अन्तर के औसत मान दिये गये हैं। इन मानों के आधार पर वूस्त ने यह दर्शाया है कि प्रत्येक महासागर के लिये एक प्रामाणिक मान से पृष्ठ लवणता का विचलन वाष्पीकरण, E, और वर्षण, P, के अन्तर, $(E-P)$, का समानुपाती है। चित्र 29 में पृष्ठ लवणता और अन्तर, $(E-P)$, को सेन्टीमीटर प्रति वर्ष इकाइयों में, अक्षांशों के विरुद्ध आलेखित किया गया है; और सम्बन्धित लवणता और अन्तर $(E-P)$, एक दूसरे के विरुद्ध आलेखित हैं। यदि 5° उत्तर पर पड़ने वाले मानों को छोड़ दिया जाय क्योंकि वे अन्य मानों से असहमति प्रकट करते है, तो सब मान एक सरल रेखा पर पड़ते हैं जो कि निम्न मूलानुपाती सम्बन्ध की सृष्टि करते हैं,

$$S = 34.60 + 0.0175\,(E - P)$$

वूस्त इस प्रकार के सूत्र के सम्बन्ध में कहते हैं कि यह मूलानुपाती सूत्र पृष्ठ लवणता के मुख्यतया तीन प्रक्रियाओं : वर्षण द्वारा लवणता में कमी, वाष्पीकरण द्वारा लवणता में बढ़ोतरी और मिश्रण प्रक्रियाओं द्वारा लवणता में परिवर्तन आदि द्वारा निर्धारित होता है। यदि पृष्ठ जल को स्थिर लवणता के जल में मिश्रित कर दिया जावे और यदि स्थिर लवणता को S_0 द्वारा और पृष्ठ लवणता को S द्वारा दर्शाया जावे तो मिश्रण प्रक्रिया के कारण लवणता में परिवर्तन, $(S_0—S)$ के समानुपाती होगा। वाष्पीकरण और वर्षण की प्रक्रियाओं द्वारा लवणता में परिवर्तन अन्तर $(E-P)$ के समानुपाती होना चाहिये; अर्थात्,

$$\delta S/\delta t = a\,(S_0 - S) + b\,(E - P) = 0$$

या

$$S = S_0 + k\,(E - P)$$

इस सूत्र का निर्धारण अनुभव पर आश्रित है इसलिये यह निष्कर्ष निकालना चाहिये कि पृष्ठ जल में सामान्यतया औसतन 34‰ लवणता वाले जल से मिश्रित होता है। यह मान सन्निकटत: 400 से 600 मीटर तक की गहराई पर लवणता के औसत मान को दर्शाता है इसलिये ऐसा प्रतीत होता है कि पृष्ठीय लवणता के सामान्य वितरण में ऊर्ध्वाधर मिश्रण बहुत ही महत्वपूर्ण है। उपरोक्त संकल्पना की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि विभिन्न सागरों के लिये लवणता के मानक मान अलग अलग पाये गये हैं। उत्तरी अटलांटिक और उत्तरी प्रशान्त महासागरों के लिये भी वूस्त ने समतुल्य सम्बन्ध प्राप्त किये हैं परन्तु स्थिरांक S_0 का मान उत्तरी अटलांटिक महासागर में 35.30‰ और उत्तरी प्रशान्त महासागर में 33.70‰ है।

600 मीटर गहराई पर सम्बन्धित औसत लवणता का मान क्रमशः 33.50‰ और 34.0‰ है । दक्षिण अटलांटिक और दक्षिण प्रशान्त के लिये वूस्त के अनुसार S_0 क्रमशः 34.50‰ और 34.64‰ है और 600 मीटर गहराई पर सम्बन्धित औसत लवणता दोनों महासागरों के लिये लगभग 34.50‰ है । पृष्ठ लवणता के वितरण के सम्बन्ध में विचार करते समय महासागरीय धाराओं के प्रभाव के बारे में कोई ध्यान नहीं दिया गया है, और औसत परिस्थितियों के लिये प्राप्त सूत्र यह संकेत करता है कि महासागरीय धाराओं द्वारा परिवहन गौण महत्व का होता है। परन्तु दूसरी ओर वाष्पीकरण और वर्षण में अन्तर, $(E-P)$ प्राथमिक महत्व रखता है और चूंकि यह अन्तर वायुमण्डल के परिसंचरण से सीधा सम्बन्ध रखता है, इसलिये यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पृष्ठ लवणता के औसत मान का नियंत्रण मुख्यतया काफी हद तक वायुमण्डलीय परिसंचरण के गुणधर्मों द्वारा ही होता है ।

चार्ट VI में पृष्ठ लवणता का सामान्य वितरण दर्शाया गया है, जिसमें वर्णित सामान्य लक्षण आसानी से पहचाने जा सकते हैं, परन्तु अधिक विस्तार के साथ चार्ट को समझने के लिये यह जानकारी होना आवश्यक है कि जल खंड समुद्री धाराओं द्वारा किस प्रकार प्रभावित होते हैं, इसलिये यहाँ इन बातों पर विस्तार से विचार करना सम्भव नहीं है ।

पृष्ठ लवणता में आवर्ती परिवर्तन—बहुत बड़े क्षेत्र में पृष्ठ लवणता में परिवर्तन मुख्यतया वाष्पीकरण और वर्षण के अन्तर, $E-P$ में होने वाले परिवर्तनों पर निर्भर करते हैं । बोह्नेक (Bohneck, 1938) के पृष्ठ लवणता के मासिक चार्ट की सहायता से उत्तरी अटलांटिक महासागर के 18° और 42° उत्तर अक्षांश क्षेत्र के लिये औसत मासिक मानों की गणना की गयी है जहाँ तटीय धाराओं के विलयन द्वारा उत्पन्न जटिलताओं से छुटकारा पाने के लिये इन गणनाओं में तटवर्ती क्षेत्रों को छोड़ दिया गया है । उपरोक्त गणनाओं के परिणाम पृष्ठ लवणता का अधिकतम मान 36.7‰ मार्च में और न्यूनतम 36.59‰ नवम्बर में दर्शाते हैं । मासिक परिवर्तन अनियमित हैं; परन्तु पूर्णरूपेण लवणता बसन्त ऋतु में वर्षा की अपेक्षा कुछ अधिक होती है ।

प्रसंवादी विश्लेषण के द्वारा निम्न परिणाम प्राप्त होता हैं :—

$$S(‰)=36.641+0.021\cos\left(\frac{2\pi}{T}t-80°\right)$$

और, इसलिये

$$\frac{\partial S}{\partial t}=0.021\frac{2\pi}{T}\cos\left(\frac{2\pi}{T}t-350°\right)$$

$\partial S/\partial t$ चूंकि $E-P$, के समानुपाती है, इसलिये यह निष्कर्ष निकलता है कि वाष्पीकरण का वर्षण पर आधिक्य जून के अन्त में न्यूनतम और दिसम्बर के अन्त में अधिकतम होता है। ये वार्षिक परिवर्तन वाष्पीकरण के वार्षिक परिवर्तनों से (4.13) सीधा सम्बन्ध रखते हैं, और इस कारण यह प्रतीत होता है कि किसी विचारनीय प्रदेश में पृष्ठ लवणता एक वर्ष के काल में मुख्यतया वाष्पीकरण के द्वारा ही नियंत्रित होती है। अधिक यथार्थ और व्यापक परीक्षा के लिये उपपृष्ठीय आँकड़ों की आवश्यकता है, परन्तु अभी तक उपपृष्ठीय गहराईयों पर लवणता में वार्षिक परिवर्तनों के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है।
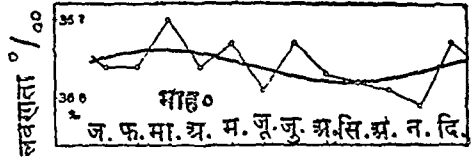
चित्र 30. उत्तरी अटलांटिक महासागर में 18° उत्तर और 42° उत्तर के बीच पृष्ठ लवणता में होने वाले वार्षिक परिवर्तन।

अटलांटिक महासागर के उत्तर पश्चिमी भाग में अधिक जटिल परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, जहाँ, जी० न्यूमेन (G. Newmann, 1940) के अनुसार न्यूफाउनलैंड और एजोर के मध्य लवणता में वार्षिक परिवर्तन का गुणधर्म विक्षोभ जैसा होता है जिस का प्रारम्भ न्यूफाउनलैंड के दक्षिण पश्चिम में होता है और जो पूर्व और दक्षिण पूर्व की ओर फैलता है। न्यूफाउनलैंड से दूर आयाम 0.37‰ होता है और 1 मार्च को यह आयाम अधिकतम मान धारण कर लेता है (कला कोण $-60°$ हो जाता है)। पूर्व और दक्षिण पूर्व की ओर आयाम कम होता जाता है और ऐसा लगता है कि जैसे विक्षोभ अवमंदित तरंग के रूप में आगे बढ़ रहा हो। न्यूमेन ने, यह मानते हुए कि यह अवमंदन मिश्रण प्रक्रिया के कारण होता है, सम्बन्धित मिश्रण गुणांकों का मान 2×10^8 और 5×10^8 (से. मी.)^2/सैकन्ड के बीच स्थिर किया।

खुले सागरों में जल की लवणता में दैनिक परिवर्तनों के आँकड़ उपलब्ध नहीं हैं परन्तु निष्कण्टक रूप से इन परिवर्तनों को बहुत ही कम माना जा सकता है, क्योंकि न तो वाष्पीकरण और न ही वर्षण प्रक्रियाओं में दैनिक परिवर्तनों की कोई आशा की जा सकती है।

पृष्ठ ताप—पृष्ठ ताप के सामान्य वितरण पर विचार विमर्श, वृत्त द्वारा लवणता के संदर्भ में बतलाई गई विधियों के आधार पर नहीं किया जा सकता, क्योंकि पृष्ठ ताप को नियंत्रित करने वाले उपादान बहुत ही जटिल हैं। इसलिये इस विवेचन को मूलानुपाती आंकड़ों के प्रस्तुतीकरण और कुछ सामान्य टिप्पणियों तक ही सीमित रखना चाहिये।

सारणी 31

अक्षांश समानान्तरों के मध्य महासागरीय जल का औसत पृष्ठ ताप

उत्तरी अक्षांश	अटलांटिक महासागर	हिन्द महासागर	प्रशान्त महासागर	दक्षिणी अक्षांश	अटलांटिक महासागर	हिन्द महासागर	प्रशान्त महासागर
70°-60°	5.60	....	....	70°60°	-1.30	-1.50	-1.30
60-50	8.66	....	5.74	60-50	1.76	1.63	5.00
50-40	13.16	....	9.99	50-40	8.68	8.67	11.16
40-30	20.40	....	18.62	40-30	16.90	17.00	16.98
30-20	24.16	26.14	23.38	30-20	21.20	22.53	21.53
20-10	25.81	27.23	26.42	20-10	23.16	25.85	25.11
10- 0	26.66	27.88	27.20	10- 0	25.18	27.41	26.01

सारणी 31 में अटलांटिक महासागर को छोड़कर जिसके लिये बोहनेक (Boheneck, 1938) द्वारा नये आँकड़े एकत्रित किये गये हैं, क्रूमेल (Krumell, 1907) के अनुसार महासागरों के विभिन्न अक्षांशों के लिये एकत्रित औसत ताप संग्रहित है। समस्त महासागरों में ताप का अधिकतम मान विषुवत रेखा के कुछ उत्तर में पाया गया है, यह लक्षण सम्भवतया दोनों गोलार्द्धों में वायुमंडल के परि-संचरण के गुणधर्म से सम्बन्धित है। अधिकतम ताप का क्षेत्र यानी ऊष्ण विषुवती ऋतुओं के साथ विचलित होती रहती है, परन्तु केवल कुछ ही क्षेत्रों में यह विचलन दक्षिण गोलार्द्ध की ओर किसी भी ऋतु में हो सकता है। बहुत ही अधिक स्थानान्तरण, स्कोट (Schotts, 1935) और बोहनेक (Boheneck, 1938), केवल उन क्षेत्रों में ही होता है जिन में प्रचलित पवन में परिवर्तनों के कारण वर्ष भर में पृष्ठ धाराओं में परिवर्तन होते रहते हैं; और इसलिये यह लक्षण भी वायुमंडलीय परिसंचरण के गुण-धर्मों से सम्बन्धित है। दक्षिण गोलार्द्ध में पृष्ठ ताप उत्तरी गोलार्द्ध की अपेक्षा सामान्यतया कम होता है, और यह अन्तर भी प्रचलित पवन के गुणधर्म में अन्तर के कारण और शायद हिमनदी आच्छादित दक्षिण ध्रुव महाद्वीप की दूर-दूर तक फैली ठंड के कारण हो सकता है।

महासागरों में पृष्ठ ताप का सामान्य वितरण, फरवरी और मार्च माह के लिये, चार्ट दो और तीन में दर्शाया गया है। दूसरी ओर यह वितरण विभिन्न जल खंडों के निर्माण और सागर धारा के गुणधर्मों से सीधे तौर पर इतना अधिक सम्बन्वित है कि इस विषय पर विस्तार से विचार विमर्श फिलहाल स्थगित कर देना चाहिये।

वायु और जल पृष्ठ के ताप में अन्तर—यह संकेत किया जा चुका है कि समस्त अक्षांशों पर हिमरहित महासागर अतिरिक्त विकिरण प्राप्त करते हैं और इस प्रकार वायुमंडल को जल वाष्प की ज्ञेय ऊष्मा या गुप्त ऊष्मा के रूप में ऊष्मा

महासागर द्वारा प्राप्त होती रहती है। सागर पृष्ठ का ताप, इसलिये औसतन, वायु के ताप से अधिक होना चाहिये। सागर में किये गये प्रेक्षणों से भी यही प्रतीत होता है; और महासागरों में सावधानी से निर्धारित वायुताप से भी यही निष्कर्ष निकाला गया है, कि वायु और सागर पृष्ठ के मध्य तापान्तर, नित्यचर्या जहाजों के प्रेक्षण से प्राप्त मानों की अपेक्षा अधिक होता है। यथावत् मान प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि वायु का ताप जलयान के वाताभिमुख पार्श्व की ओर ऐसे इलाके में मापा जाय, जहां भंवर प्रचलित न हो, और जहां वायु जलयान के किसी भी भाग के ऊपर से प्रवाहित होते हुए तापमापी तक नहीं पहुँचे। ताप के माप के लिये एक संवातित तापमापी कार्य में लाना चाहिये। 'मिटिऋोर' प्रेक्षणों (कुहल्ब्रोड्ट और रेगर, Kuhlbrodt & Reger, 1938) के अनुसार दक्षिण अटलांटिक महासागर के 55° दक्षिण और 20° उत्तर के मध्य स्थित अक्षांशों में वायु का ताप, पृष्ठ के ताप से औसतन 0.8° कम होता है, जहांकि 'नीदरलैंड मिटिरिओलोजिकल इन्स्टीट्यूट' द्वारा प्रकाशित 'एटलस ऑफ ओसनोग्राफिक एन्ड मिटिरिओलोजिकल आब्जरवेशनस्' इसी प्रदेश के लिये औसत अन्तर केवल 0.1° देता है। इस विसंगति का कारण यह है कि व्यापारिक जहाजों द्वारा निर्धारित वायुताप औसतन जहाज की ऊष्णता के कारण लगभग 0.7 डिग्री अधिक होते हैं। वायु का ताप नापने के लिये अन्य अभियानों पर विशेष पूर्वोपायों के साथ लिये गये प्रेक्षणों पर आधारित मानों और अन्तर $\theta_w - \theta_a$, के औसत मानों के परिणामों में काफी सहमति पाई गई है। वायु और सागर पृष्ठ के तापमानों के वर्तमान उपलब्ध एटलस, व्यापारिक जहाजों पर प्रत्यक्ष रीति से बिना किसी संशोधन के अनुप्रयोग किये प्रेक्षित मानों के आधार पर तैयार किये गये हैं। यह संशोधन काफी छोटा होता है और जलवायु विज्ञान सम्बन्धी अध्ययन में बहुत ही गौण महत्व रखता है, परन्तु किसी भी ऐसे विषय के अध्ययन के लिये जिसमें वायु और सागर पृष्ठ के ताप में यथावत् अन्तर की जानकारी चाहिये, वायु के ताप में इस व्यवस्थित त्रुटि का बोध होना अत्यावश्यक है।

'मिटिऋोर' प्रेक्षणों से प्राप्त वायु और पृष्ठ तापमान के बीच 0.8 डिग्री का अन्तर, समुद्र तल से 8 मीटर ऊँचाई पर वायु ताप के माप पर आधारित है। सागर पृष्ठ के बिल्कुल ऊपर वायु का ताप और जल के ताप का संपात होना चाहिये, और परिणामतः वायु का तापमान समुद्र के ऊपर स्थित वायु की परतों के भीतर प्रत्यक्ष रूप से कम होता जाता है। तीव्रतम कमी सागर पृष्ठ के निकट ही होती है, और कुछ ही मीटर से अधिक दूरियों पर यह कमी इतनी धीमी हो जाती है कि ताप के माप पर इस तथ्य का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता कि, ताप का माप सागर पृष्ठ से 6, 8 या 10 मीटर ऊँचाई पर लिया गया था। इसलिये जिस ऊँचाई पर जहाज के ऊपर से वायु का ताप प्रेक्षित किया गया हो, वह परिणामों की यथार्थता

पर वहुत ही कम प्रभाव डाल सकती है, और प्रेक्षण ऊँचाइयों में अन्तर के कारण उत्पन्न विसंगतियां तापमापी के अपर्याप्त उद्भासन के कारण उत्पन्न त्रुटियों की तुलना में नगण्य होती हैं।

यह कथन कि वायु का ताप जल के ताप से कम होता है केवल औसत स्थितियों के वारे में विचार करते समय ही ठीक है। किसी भी प्रदेश में अन्तर, $\theta_w - \theta_a$, सामान्यत: वर्ष में इस प्रकार परिवर्तित होता है कि शीतकाल में वायु का ताप जल पृष्ठ के ताप से वहुत ही कम होता है जवकि ग्रीष्म काल में यह अन्तर या तो वहुत ही कम हो जाता है या इसका चिन्ह ही वदल जाता है। वायुमंडलीय परिसंचरण के गुणधर्म और महासागरीय धाराओं के अनुसार भी यह अन्तर एक प्रदेश से दूसरे में परिवर्तित होता रहता है। ये परिवर्तन सागर के स्थानीय ऊष्मा वजट के लिये वहुत ही महत्वपूर्ण है, क्योंकि वायुमंडल और महासागर के वीच ऊष्मा का विनिमय अधिकतर ताप के अन्तर पर ही निर्भर करता है।

यह दर्शाया जा चुका है कि महासागर द्वारा पृष्ठ को दी गई ऊष्मा सामान्यतया शीतकाल में अधिक होती है, और ग्रीष्म में सम्भवत: नगन्य होती है। ऊष्मा विनिमय के इन वार्षिक परिवर्तनों के कारण; हमें यह आशा करनी चाहिये कि महासागरों की वायु महाद्वीपों की वायु की अपेक्षा अधिक गर्म होगी, परन्तु ग्रीष्म में विपरीत परिस्थितियों की आशा करनी चाहिये। इस कथन की सत्यता का प्रमाण 20° उत्तर और 80° उत्तर अक्षांशों के बीच 120° पूर्व याम्योत्तर के साथ पूर्णतया भूमि पर वहने वाली और 20° प० के साथ पूर्णतया महासागर के ऊपर प्रवाहित होने वाली वायु के ताप की गणना से स्पष्ट मिलता है; वोनहान, (Von Hahn, 1915) [4.13(a)]। जनवरी में 120° पू० की "भू याम्योत्तर के साथ वायु का औसत ताप—15.9° से.ग्रे. है परन्तु 20° प० की जल याम्योत्तर के साथ यह 6.3° से.ग्रे. है। जुलाई में तत्सम्वन्धित मान क्रमश: 19.4° और 14.6° होते हैं। इस प्रकार जनवरी में 20° उ० और 80° उ० के मध्य, जल याम्योत्तर का ताप जहां भू-याम्योत्तर से 22.2° अधिक है वहां जुलाई में यह 4 8° कम है। माध्य वार्षिक ताप जल याम्योत्तर के साथ 7° अधिक है।

पृष्ठ ताप में वार्षिक परिवर्तन :—किसी भी प्रदेश में पृष्ठ ताप में वार्षिक परिवर्तन कई घटकों पर निर्भर करते हैं, जिनमें प्रमुख हैं, विकिरण प्राप्ति में वर्ष भर में परिवर्तन, महासागरीय धाराओं का गुणधर्म और प्रचलित पवन। पृष्ठ ताप में वार्षिक परिवर्तनों के गुणधर्म एक इलाके से दूसरे इलाके में वदलते रहते हैं, परन्तु उनके कुछ सामान्य लक्षण इस प्रकार हैं। चित्र 31 में भारी वक्रों के द्वारा विभिन्न अक्षांशों पर अटलांटिक, हिन्द और प्रशान्त महासागरों में औसत वार्षिक पृष्ठ ताप सीमान्तर दर्शाया गया है। यह परास फरवरी और अगस्त माह में औसत तापान्तर

निरूपित करता है जो अटलांटिक महासागर के लिये बोहने की सारणी (Bohenes tables, 1938) और हिन्द और प्रशान्त महासागर के लिये स्कोट (Schott, 1935) द्वारा प्रकाशित चार्टों की सहायता से आलेखित किया गया है। इसी चित्र में पतली
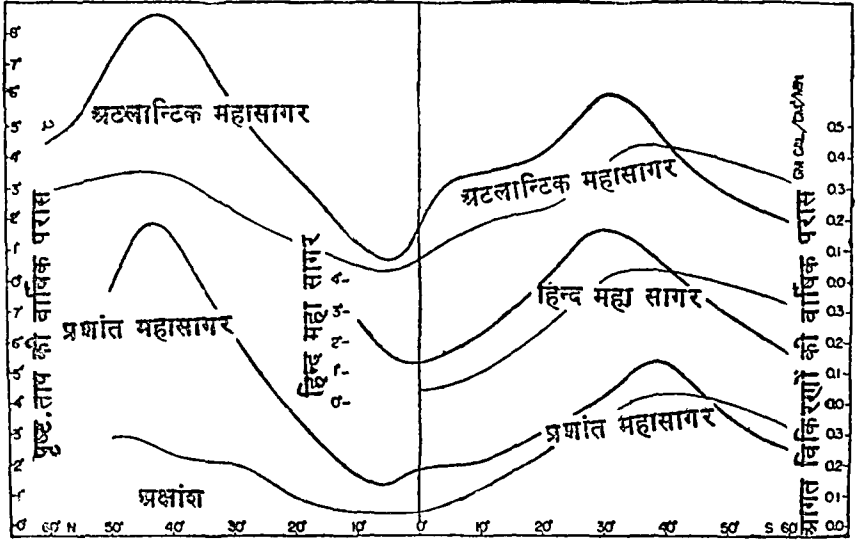
चित्र 31. विभिन्न सागरों के लिये वार्षिक पृष्ठ तापसीमान्तर का विभिन्न अक्षांशों के साथ आलेखन (भारीवक्र) और तत्सम्बन्धित विकिरण प्राप्ति परास (पतली वक्र)।

वक्र आगत विकिरणों की परास है जो कि किम्बल (Kimball 1928) के मानचित्रों से ली गई हैं। ये वक्र दो विशिष्ठ लक्षण रखते हैं। प्रथम ये यह दर्शाते हैं कि उत्तर अटलांटिक और उत्तर प्रशान्त महासागरों में पृष्ठ ताप सीमान्तर दक्षिण महासागरों की अपेक्षा अधिक है। द्वितीय ये यह दर्शाते हैं कि दक्षिण महासागरों में तापसीमान्तर स्पष्टतया आगत विकिरणों की परास से संबंधित है जहां उत्तरी महासागरों में ऐसा कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। उत्तरी महासागरों में तापसीमान्तर प्रचलित पवन के गुणधर्मो से सम्बन्धित है और विशेषतया इस तथ्य के साथ कि महाद्वीपों से महासागर की ओर चलने वाली ठंडी हवायें शीतकालीन ताप काफी कम कर देती हैं। विषुवत रेखा के निकट एक अर्धवार्षिक परिवर्तन विद्यमान है जो विकिरण प्राप्ति के अर्धवार्षिक आवर्तन काल से सम्बन्धित है परन्तु मध्य और उच्च अक्षांशों पर केवल वार्षिक परिवर्तन ही प्रबल होते हैं।

पृष्ठ परतों में ताप का वार्षिक परिवर्तन :—उपपृष्ठीय गहराइयों पर ताप का परिवर्तन चार घटकों पर निर्भर करता है (1) विभिन्न गहराइयों पर प्रत्यक्ष रूप से अवशोषित ऊष्मा राशी में परिवर्तन (2) ऊष्मा चालन का प्रभाव (3) जल संहति के पार्श्विक विस्थापन सम्बन्धी धाराओं में परिवर्तन (4) ऊर्ध्वाधर चाल का प्रभाव

आंकड़ों के उपलब्ध न होने के कारण उपपृष्ठीय गहराइयों पर सामान्य रूप से विचार नहीं किया जा सकता परन्तु प्रशान्त महासागर और अटलांटिक महासागरों में दो उदाहरणों के द्वारा कुछ प्रकृष्ठ गुणधर्मों की ओर संकेत करना ही सम्भव है। चित्र 32 A में इन चार महत्वपूर्ण घटकों का प्रभाव चित्रित है जिसमें मोन्टेरे खाड़ी, केलिफोर्निया में स्कोग्सबर्ग (Schogsberg 1936), पृष्ठ ताप और 25,50 और 100 मीटर गहराइयों पर ताप का वार्षिक परिवर्तन प्रदर्शित है। स्कोग्सबर्ग एक वर्ष को तीन भागों में विभाजित करता है :– डेविडसन धारा काल—नवम्बर के मध्य से प्रारम्भ होकर फरवरी के मध्य तक का काल; अपकूपिता का काल—फरवरी के मध्य से जुलाई के अन्त तक; और महासागरीय काल, जुलाई के अन्त से नवम्बर के मध्य तक। मोन्टेरे खाड़ी से परे की केलिफोर्निया धारा वर्ष के अधिकांश भाग में
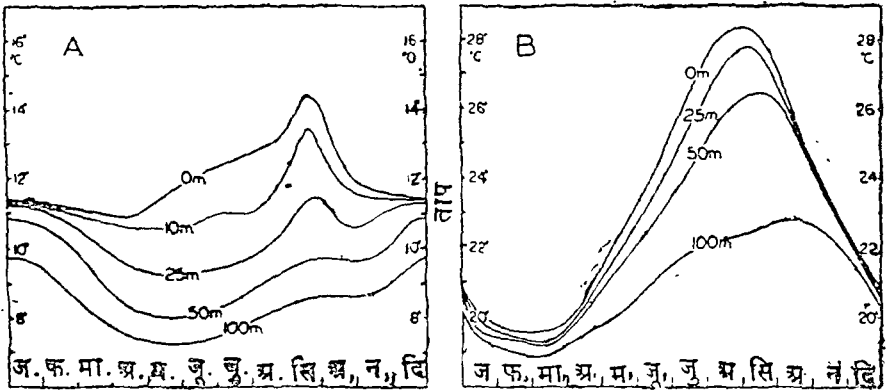
चित्र 32. (A) मोन्टेरे की खाड़ी केलिफोर्निया में विभिन्न गहराइयों पर ताप का वार्षिक परिवर्तन (B) जापान के दक्षिणी तट पर कूरोशियो में विभिन्न गहराइयों पर ताप का वार्षिक परिवर्तन।

दक्षिण की ओर बहती है परन्तु शीतकाल में नवम्बर के मध्य से लेकर फरवरी के मध्य तक 'डेविडसन धारा', या तट की ओर जल का उत्तरी बहाव विद्यमान रहता है (4.13b)। तट की ओर बहाव के इस जल का ताप अपेक्षाकृत अधिक और समरूप ताप द्वारा लक्षित होता है और ताप में वार्षिक परिवर्तन उपपृष्ठीय गहराइयों पर ऊष्ण जल के समान ही होते हैं। ऊपरी समपरत अपेक्षाकृत मोटी होती है जो कि इस तथ्य द्वारा स्पष्ट है कि 25 मीटर गहराई पर भी ताप पृष्ठ ताप के समान होता है और 50 मीटर गहराई पर ताप पृष्ट ताप से कुछ ही कम होता है। उत्तर पश्चिमी प्रचलित पवन के प्रभाव के कारण फरवरी के अन्त में तट पर फिर 'केलिफोर्निया धारा' पहुँच जाती है और ऊपरी परतें नीचे व निचली परतें ऊपर आ जाती हैं, इस प्रक्रिया को अपकूपिता कहते हैं (4.14)। अपकूपिता काल में तट के निकट जल की ऊर्ध्वाधर चाल कम ताप के जल को पृष्ठ की ओर ले आती है। परिणामतः ताप दी हुई गहराइयों पर अपकूपिता के प्रारम्भ होते ही घटने लगता है। यह घटाव चित्र 32 A में 25, 50 और 100 मीटर गहराइयों पर ताप की अधोमुखी उपनति के द्वारा दिखलाया

गया है; इन गहराईयों पर ताप का मान मई के अन्त में न्यूनतम हो जाता है। 25 मीटर गहराई की अपेक्षा सागर पृष्ठ पर ताप का अत्यधिक मान यह दर्शाता है कि केवल एक पतली परत ही विकिरणों के द्वारा ऊष्ण रहती है और प्रथम 10 मीटर गहराई पर ताप के परिवर्तनों से यह स्पष्ट है कि तापन का प्रभाव केवल प्रथम 10 मीटर गहराई तक ही सीमित है। अगस्त के अन्त तक अपकूपिता ज्यों ज्यों कम होकर समाप्त हो जाती है पृष्ठीय व उपपृष्ठीय दोनों गहराइयों पर ताप में तीव्र वृद्धि हो जाती है; ताप वक्र में सितम्बर माह में दर्शाई गई चोटियां तापन, चालन और तट की ओर बहने वाले जल के अन्तर्भेदन के परिणामस्वरूप हैं।

चित्र 32 B में जापान के दक्षिण तट पर स्थित कुरोशियों प्रदेश में ताप के वार्षिक परिवर्तन दर्शाये गये हैं जो एक दूसरा ही चित्र प्रस्तुत करते हैं (कोएन्यूमा Koenewma, 1939)। इन वार्षिक परिवर्तनों का गुणधर्म पृष्ठ से लेकर 100 मीटर गहराई तक समान रहता है; जिनका अधिकतम मान गर्मियों के पश्चात् या वर्षा के पहले और न्यूनतम मान शीतकाल के पश्चात् होता है, परन्तु ताप परास गहराई के साथ घटती है और बढ़ती हुई गहराई के साथ अधिकतम ताप उपरोक्त समय के बाद होता है। वक्रों के पथ से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये वार्षिक परिवर्तन पृष्ठ पर तापन और शीतलन प्रक्रियाओं के द्वारा होते हैं और इनका अधिक गहराइयों तक परिसंचरण चालन द्वारा होता है (4./4 A)। यह ठीक ही प्रतीत होता है परन्तु ये तापन और शीतलन प्रक्रिया में केवल आंशिक रूप से ही कुल विकिरण में परिवर्तन के कारण होती हैं और ये प्रक्रियायें शीत में सागर की ओर प्रवाहित होने वाली ठंडी और शुष्क वायु के कारण बहुत अधिक शीतलन पर भी निर्भर करती हैं (स्वेरड्रूप, Sverdrup, 1940)।

प्रेक्षित ताप परिवर्तन केवल तापन और शीतलन प्रक्रियाओं पर ही निर्भर करते हैं इस बात का पूर्णतया निश्चय करने के लिये किसी दिये हुए प्रदेश में इस बात की परीक्षा करनी आवश्यक है कि क्या जल का गुणधर्म पूरे वर्ष तक समान रहता है। उद्देश्य की प्राप्ति के लिये हेलैन्ड और हेनसन (Helland and Hansen 1930) ने एक विधि विकसित की है जो उन प्रदेशों पर ही लागू हो सकती है जिन प्रदेशों में ताप और लवणता में कोई निश्चित सम्बन्ध निर्धारित करना सम्भव हो (4.14b)। वह यह मान कर चले हैं कि ताप और लवणता के सम्बन्ध द्वारा संगणित ताप के मान से अधिक या कम ताप का मान, जल में तापन और शीतलन प्रक्रियाओं के परिणाम-स्वरूप होता है और उन्होंने इस विधि का उपयोग उत्तर-पूर्वीय महासागर में तीन प्रदेशों के लिये किया है। चित्र 33 विस्के की खाड़ी के एक प्रदेश के लिये, जिसका केन्द्र 47° उत्तर और 12° प० पर स्थित है, उनके द्वारा प्राप्त वक्र दर्शाता है। इन वक्रों का गुणधर्म, परास में कमी और अधिकतम ताप के समय का

हटाव स्पष्टतया इस बात की ओर संकेत करता है कि यहां ऊष्मा चालन की प्रक्रिया ही काम कर रही है। इस परिस्थिति में ऊष्मा में परिवर्तन निकटतया कुछ विकिरणों में परिवर्तन से सम्बन्धित हैं, वहां दूसरी और कुरोशियों में महाद्वीप की ओर से आने वाली हवाओं द्वारा शीतकाल में अधिक शीतलन प्रक्रिया के अतिरिक्त प्रभाव के कारण ताप और ऊष्मा में परिवर्तन बहुत अधिक होते हैं।

यह उदाहरण विभिन्न इलाकों में होने वाले विभिन्न प्रकार के ताप परिवर्तनों को बड़े ही सुन्दर रूप से चित्रित करता है, और इन परिणामों को भी बल प्रदान करता है कि प्रदेशीय तापन प्रक्रियाओं से सम्बन्धित ताप परिवर्तन केवल उसी समय वैध हैं जबकि आंकड़े विवर्तित धाराओं और ऊर्ध्वाधर चाल के प्रभाव से मुक्त हों।

पृष्ठ ताप के दैनिक परिवर्तन:—सागर पृष्ठ के दैनिक परिवर्तनों की परास औसतन 0.2—0.3 डिग्री से अधिक नहीं होती है। पूर्व प्रेक्षणों, विशेषकर ऊष्ण-कटिबन्धों से प्राप्त प्रेक्षणों, से कुछ अधिक मान प्राप्त किये गये थे, परन्तु नये और सावधानी से लिये गये प्रेक्षणों और उन पूर्व आंकड़ों के पुनर्परीक्षण जिनमें सन्देहात्मक प्रेक्षण निरसित कर दिये गये थे, के आधार पर यह दर्शाया जा सकता है कि दैनिक ताप परिवर्तनों की परास बहुत ही छोटी है। मैनार्ड्स ने (कुहल्ब्रोड्ट और रेगर Kuhlbradt and Reger 1938) (4.15) बहुत अधिक आंकड़ों की परीक्षा का सारांशिकरण यह कहते हुए किया है, कि "सामान्यतया निम्न अक्षांशों पर जल के
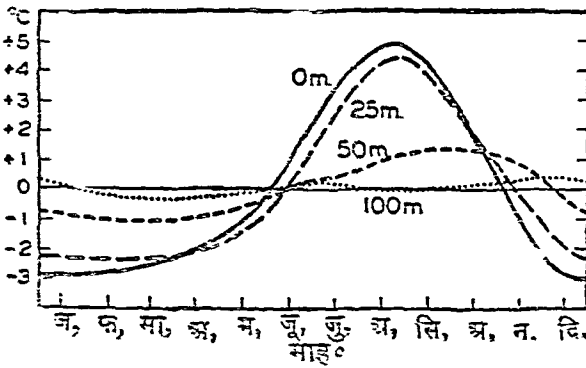
चित्र 33. लगभग 47° उत्तर और 12° पश्चिम में स्थित विस्के की खाड़ी में विभिन्न गहराइयों पर ताप के वार्षिक परिवर्तन।

ताप में दैनिक परिवर्तन एक साइन वक्र (Sine Curve) द्वारा निरूपित किये जा सकते हैं, जिसके चरम मान $2{:}30^h$ और 3^h के मध्य और $14{:}30^h$ और 15^h के मध्य एवम् परास 0.3° से 0.4° तक होती है। उच्च अक्षांशों पर चरम मान बाद में आ सकते हैं और परास इससे भी कम हो सकती है।" ऊष्णकटिबंधीय प्रदेशों में 'मिटिओर' प्रेक्षणों से केवल 0.2—0.3 डिग्री की परास प्राप्त होती है। 'मिटिओर' द्वारा प्राप्त आंकड़े और 'चैलेन्जर' द्वारा प्राप्त आंकड़े जिनका विवेचन वेगमान

(Wegemann, 1920) ने किया है, दोनों ही यह दर्शाते हैं कि विपुवत रेख ाके पास पृष्ठ ताप में दैनिक परिवर्तन कुछ असमामित हैं, ताप सूर्योदय के पश्चात् तीव्रता से बढ़ते हैं और सूर्यास्त के पश्चात् धीरे धीरे घटते हैं, परन्तु विपवुत रेखा से अधिक दूर स्थित प्रदेशों में वक्र कुछ अधिक समामिन बन जाते हैं।

कुछ तटवर्ती प्रदेशों के पृष्ठ ताप में दैनिक परिवर्तनों की परास में एक वर्ष में होने वाले परिवर्तनों की परीक्षा की गई है। ब्रिटिश आइल्स के चारों ओर 44 केन्द्रों पर डिकन्स (देखो वेगमान, Wegemann, 1920) ने ज्ञात किया कि औसतन दैनिक परास दिसम्बर में 0.20 डिग्री और मई में 0.69 डिग्री के मध्य बदलती रहती है। पृथक-पृथक केन्द्रों पर मध्यमान वार्षिक परास और माहवारी परास में परिवर्तन, उस इलाके के उद्भापण (एक्सपोजर) और उस गहराई, जिस पर कि माप लिये गये हैं, पर निर्भर थे। परास में ये वार्षिक परिवर्तन विकिरण प्रक्रिया द्वारा प्राप्त कुल दैनिक ऊष्ण राशि में वार्षिक परिवर्तनों के साथ निकट सम्बन्धित हैं।

सारणी 32

ऊष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में पृष्ठ ताप के दैनिक परिवर्तनों की परास

वायु और मेघाच्छादितता	ताप परास, से. ग्रे.		
	औसत	अधिकतम	न्यूनतम
(१) साधारण से ताजी समीर			
(अ) मेघाच्छादित नभ	0.39	0.6	0.0
(ब) निर्मल नभ	0.71	1.1	0.3
(२) शान्त या बहुत हल्की समीर			
(अ) मेघाच्छादित नभ	0.93	1.4	0.6
(ब) निर्मल नभ	1.59	1.9	1.2

ताप के दैनिक परिवर्तनों की परास मेघाच्छादितता और वायु वेग पर निर्भर करती है। ऊष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में प्रेक्षणों के द्वारा स्कोट (क्रूमेल Krumell 1907) ने मध्यमान और चरम मान ज्ञात किये हैं जो सारणी 32 में दर्शाये गये हैं। वेगमान ने भी 'चैलेन्जर' द्वारा प्राप्त आंकडों से समतुल्य परन्तु कुछ उच्च आंकिक मान प्राप्त किये हैं। दोनों परिस्थितियों में आंकिक मान कुछ त्रुटिपूर्ण हो सकते हैं परन्तु मेघाच्छादितता और वायु के प्रभाव के वैशिष्ठ्य स्पष्ट हैं। निर्मल नभ में दैनिक परिवर्तन की परास अधिक है परन्तु अधिक मेघाच्छादितता के साथ यह कम है, शान्त और हल्की समीर होने पर यह बहुत अधिक होता है परन्तु साधारण

या तेज वायु पर यह कम होता है। मेघाच्छादितता का प्रभाव तो इस प्रकार समझा जा सकता है कि बढ़ती हुई मेघाच्छादितता के कारण आगत विकिरण का दैनिक आयाम कम होता चला जाता है। वायु का प्रभाव कुछ अधिक जटिल है, परन्तु इसके मुख्य लक्षण यह हैं कि तीव्र वायु वेग पर तरंग गति पृष्ठीय परतों को पूर्णतया मिश्रित कर देती है और ऊष्मा जो कि ऊपरी कुछ मीटर गहराइयों में अवशोषित होती है काफी मोटी परत में वितरित हो जाती है जिससे ताप की परास काफी कम होती है, जहाँ दूसरी ओर शान्त मौसम में तत्सम्वन्धित तीव्र मिश्रण प्रक्रिया के नहीं हो पाने से ऊष्मा एक मोटी परत में वितरित नहीं हो पाती है परिणामत: पृष्ठ के निकट ताप की परास काफी अधिक होती है।

ऊपरी परतों में ताप का दैनिक परिवर्तन—सागर पृष्ठ के नीचे गहराइयों पर ताप के दैनिक परिवर्तन के बारे में ज्ञान बहुत ही कम है। ऐसी कल्पना की जा सकती है कि जिन गहराइयों पर दैनिक परिवर्तन प्रत्यक्ष होते हैं वे अधिकतर जल के स्तरीकरण पर निर्भर करते हैं। स्वतंत्र जल पृष्ठ के नीचे की ओर कम दूरी पर घनत्व में तीव्र वृद्धि ऊष्मा के चालन को उस हद तक सीमित कर देगी कि ताप के दैनिक परिवर्तन केवल सीमा पृष्ठ पर ही विद्यमान होंगे (4.15A)।

'मिटिओर' अभियान में ऊष्ण कटिबंधीय प्रदेशों के कुछ ऐसे केन्द्रों पर, जहां 70 मीटर मोटी समरूप परत मौजूद थी, प्रत्येक घन्टे के बाद पृष्ठ पर और 50 मीटर गहराई पर ताप प्रेक्षित किया गया था। डिफेन्ट (Defant, 1932) ने यह दर्शाया है कि ऐसी स्थितियों में उपपृष्ठीय गहराइयों पर ताप के दैनिक दोलन, अचर ऊष्मा चालकता की कल्पना द्वारा प्राप्त नियमों, (अगले पृष्ठ पर देखें) से सहमति प्रकट करते हैं। 50 मीटर गहराई पर दैनिक परिवर्तन का आयाम पृष्ठ आयाम के 1/20 भाग से भी कम हो गया था, और अधिकतम मान लगभग 6.5 घन्टे के बाद हुआ।

सामान्यतया सागर ताप में दैनिक परिवर्तन इतने कम होते हैं कि ये सागर में होने वाली भौतिक और जैव प्रक्रियाओं के लिये बहुत कम महत्व रखते हैं, परन्तु इन छोटे परिवर्तनों का ज्ञान वायुमंडल और सागर में होने वाले ऊष्मा के दैनिक विनिमय के अध्ययन के लिये अत्यावश्यक है। परन्तु वर्तमान समय में इस कार्य के लिये प्राप्त आंकड़े बहुत ही अपर्याप्त हैं।

ऊष्मा चालन प्रक्रियाओं द्वारा उपपृष्ठीय ताप में परिवर्तन का अध्ययन निम्न समीकरण द्वारा किया जा सकता है (4.16)

$$\frac{\partial \theta}{\partial t}=\frac{\partial}{\partial z}\left(\frac{A}{\rho}\frac{\partial \theta}{\partial z}\right), \qquad \text{(IV, 1)}$$

जहां ρ घनत्व और A भंवर चालकता है जो सामान्यत: गहराई और समय के साथ

परिवर्तित होती है। ताप के स्थानीय परिवर्तन को $\partial\theta/\partial t$ के रूप में लिखते समय हम यह मान कर चलते हैं कि ऊष्मा का चालन केवल ऊर्ध्वाधर दिशा में ही हो रहा है और अभिवहन नगण्य है। 'स्थानीय परिवर्तन' और 'अभिवहन', इन शब्दों को आगे (4.17) में समझाया गया है। यदि A/ρ स्थिरांक हो तो समीकरण (1) का समाकलन सरलता से किया जा सकता है, यदि औसत ताप गहराई का रैखिक फलन हो, और यदि पृष्ठ ($z=0$) पर ताप में परिवर्तनों को एक प्रसंवादी पदों की श्रेणी के रूप में निरूपित किया जाये तो :

$$\theta_0=\bar{\theta} + a_1 \cos(\sigma t - \alpha_1) + a_2 \cos(2\sigma t - \alpha_2) + \cdots\cdots, \quad \text{(IV, 2)}$$

जहां $\sigma=2\pi/T$ और T प्रथम प्रसंवादी पद का आवर्तकाल है। तब

$$\theta_z=\bar{\theta}+bz+a_1e^{-r_1 z}\cos(\sigma t - \alpha_1 - r_1 z) + a_2e^{-r_2 z}\cos(2\sigma t - \alpha_2 - r_2 z) + \cdots\cdots, \quad \text{(IV, 3)}$$

जहां

$$r_1 = \sqrt{\frac{\sigma\rho}{2A}}, \qquad r_2 = \sqrt{\frac{2\sigma\rho}{2A}} \;\cdots\cdot \quad \text{(IV, 4)}$$

इस प्रकार, प्रसंवादी पदों का आयाम घातीयता से गहराई के साथ तो घटता है और कला रैखिकता से बढ़ती है।

डिफेन्ट (Defant, 1932) ने यह दर्शाया है कि 12°38′ उत्तर अशांक्ष और 47°36′ पश्चिम देशान्तर में स्थित मिटिओर लंगर केन्द्र नं० 288 पर, ऊपरी समपरतों में दैनिक ताप परिवर्तनों ने स्थिर भंवर चालकता बताई है। पृष्ठ और 50 मीटर पर दैनिक पदों के आयाम क्रमशः 0.093 और 0.017 डिग्री थे, और कालान्तर 6.5 घन्टे था। ρ का मान 10.24 और $T=24$ घन्टे लेकर उसने आयाम में कमी और कला कोणान्तर द्वारा ज्ञात किया कि $A=320$ ग्राम/से.मी./सेकन्ड।

ऐसी स्थितियां, जिनमें ताप के वार्षिक परिवर्तनों की परीक्षा की जा चुकी है, आयाम में घटती और कला में परिवर्तन द्वारा प्राप्त A का मान अलग-अलग होता है, यह तथ्य संकेत करता है कि A समय और गहराई से स्वतंत्र नहीं है जैसा कि समाकलन पर विचार करते समय माना गया था। यदि भंवर चालकता गहराई के साथ परिवर्तित होती हो तो फ्लेजस्टेड (Flejsted, 1933) द्वारा विकसित विधि के अनुसार उसकी संगणना की जा सकती है, यदि ताप में आवर्त्ती परिवर्तन कई भिन्न गहराइयों पर, पृष्ठ और एक ऐसी गहराई h, के मध्य ज्ञात हो जहां वे समाप्त होते हों। उन्होंने निम्न सूत्र निकाला

$$\frac{A}{\rho} = \frac{n\sigma}{a_n^2 \frac{\partial \alpha_n}{\partial z}} \int_z^h a_n^3\, dz, \quad \text{(IV, 5)}$$

जहां a_n, n वां प्रसंवादी पद और α_n कलान्तर है।

फ्लेजस्टेड ने बिस्के की खाड़ी में होने वाले वार्षिक ताप परिवर्तनों की गणना उपरोक्त विधि के द्वारा की, जिनका निर्धारण हेलैन्ड और हेनसन द्वारा किया गया है (4.18)। उन्होंने ρ का मान 1.025 लेते हुए ज्ञात किया कि

गहराई (मीटर में)	... ...	0	25	50	100
आयाम, a_1, °C	... ...	3.78	3.24	1.24	0.23
कलान्तर, α_1	... ...	225.1°	235.2°	254.7°	289.3°
भंवर चालकता, ग्राम/से.मी./सेकन्ड		16.4	3.2	2.1	3.8

तथापि कुछ लक्षण यह दर्शाते हैं कि प्रेक्षित ताप परिवर्तन यह मान कर ही नहीं समझाये जा सकते कि भंवर चालकता केवल गहराई के साथ ही बदलती है, अपितु ऋतुओं के साथ परिवर्तनों पर भी विचार करना चाहिये। फ्लेजस्टेड ने इस प्रश्न की परीक्षा करते समय यह पाया कि वसन्त ऋतु में चालकता अधिकतम हो जाती है जबकि स्थिरता न्यूनतम होती है, परन्तु पूरे वर्ष में मान कम रहते हैं।

फ्लेजस्टेड की विधि, कुरोशियो में होने वाले वार्षिक ताप परिवर्तनों की गणना के लिये भी काम में लाई जा सकती है, जिसका विवेचन कोएन्यूमा (Koeneuma, 1939) ने किया है (4.19)। तथापि इस स्थान पर यह बतलाना आवश्यक है कि कुरोशियो क्षेत्र में अभिवहन पद (4.20) का मान बहुत अधिक है (स्वेरड्रुप Sverdrup, 1940) और इसलिये समीकरण (IV, 5) केवल उस समय ही सही होगा जबकि अभिवहन पद समय और गहराई पर निर्भर नहीं रहता है। ρ का मान 1.025 लेते हुए प्रसंवादी स्थिरांक और परिणाम निम्न होंगे :

गहराई (मीटर में)	... ...	0	25	50	100	200
आयाम, a_1, °C	... ...	4.26	3.97	3.49	2.09	0.71
आयाम, a_2, °C	... ...	0.58	0.49	0.44	0.39	0.14
कलान्तर, α_1	... ...	250.2°	253.5°	258.7°	271.8°	289.3°
कलान्तर, α_2	... ...	71.4°	81.0°	100.0°	135.5°	152.6°
भंवर चालकता, A_1, (ग्राम/से.मी./सेकण्ड)		78	34	23	22	29
भंवर चालकता, A_2, (ग्राम/से.मी./सेकण्ड)		58	43	39	32	26

भंवर चालकता की संगणना के लिये वार्षिक एवं अर्धवार्षिक दोनों ही कालों का उपयोग किया गया है, और अर्धवार्षिक परिवर्तनों के छोटे आयामों को दृष्टिगत रखते हुए उपरोक्त दोनों विधियों से प्राप्त A के मानों में सहमति सन्तोषप्रद समझी जानी चाहिये। आंकिक मान गहराई के साथ घटते हैं परन्तु आशातीत रूप से वे बिस्के की खाड़ी के मानों से बहुत ही अधिक होते हैं, क्योंकि कुरोशियो के उच्च वेग के कारण तीव्र क्षुब्धता उत्पन्न हो जाती है। भंवर चालकता में सम्भावित वार्षिक परिवर्तनों की अभी तक परीक्षा नहीं की गई है।

कुरोशियो प्रदेश में जहां धारा की गति अधिक होने और सम्बन्धित तीव्र क्षुब्धता के कारण ताप में परिवर्तन 300 मीटर गहराई तक प्रत्यक्ष दिखलाई देते हैं वहाँ विस्के की खाड़ी में से 100 मीटर पर बहुत कम होते हैं। इसलिये निर्भयता से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 100 मीटर गहराई से अधिक गहराई पर ताप में कोई वार्षिक परिवर्तन नहीं होते है।

विस्के की खाड़ी से परे और कुरोशियो प्रदेश में भंवर चालकता विपुवत रेखा के निकट ऊपरी समाङ्गपरतों की भंवर चालकता से काफी कम होती है। यह अन्तर इस तथ्य से समझाया जा सकता है कि उपरोक्त वर्णित प्रथम दो इलाकों में घनत्व गहराई के साथ बढ़ता है और जहाँ भी ऐसा होता है भंवर चालकता काफी बढ़ जाती है (4.21)।

घनत्व का वितरण

महासागरीय जल में घनत्व का वितरण दो विशेपताओं द्वारा लक्षित होता है। ऊर्ध्वाधर दिशा में स्तरीकरण सामान्यतया स्थायी होता है, (4.22), और क्षैतिज दिशा में घनत्व में अन्तर केवल धाराओं की उपस्थिति में ही रह सकता है। इसलिये घनत्व का सामान्य वितरण धाराओं के गुणधर्म से निकटतौर पर संबंधित है परन्तु यहां इस बात पर बल देना ही काफी है कि प्रत्येक महासागरीय प्रदेश में किसी विशेप घनत्व का जल जो सागर पृष्ठ से डूबता है, डूबकर उस गहराई पर फैल जाता है जहां पहले से ही उस विशेष घनत्व का जल पाया जाता है।

चूंकि सागर जल का घनत्व ताप और लवणता पर निर्भर करता है इसलिये वे सब प्रक्रियायें जो ताप और लवणता में परिवर्तन करती हैं घनत्व को भी प्रभावित करती हैं। पृष्ठ पर घनत्व जल के तापन, वर्षण में वृद्धि, हिम के पिघले जल और भूमि से अपवाह के द्वारा घटता है; और शीतलन, वाष्पीकरण और हिम जमने के कारण बढ़ता है। यदि पृष्ठ जल का घनत्व पृष्ठ के निचले स्तर से अधिक बढ़ा दिया जाय तो ऊर्ध्वाधर संवहन धारायें उत्पन्न होकर जल की एक समरूप परत बना देती है। जहां पर तीव्र शीतलन, वाष्पीकरण या हिमायन होता है ये ऊर्ध्वाधर संवहन धारायें अधिक से अधिक गहराई में उस समय तक प्रवेश करती रहती हैं जब तक कि घनत्व का पृष्ठ से लेकर तल तक एकरूप मान न हो जाये। इस स्थिति के संस्थापित हो जाने के बाद पृष्ठ जल के घनत्व में लगातार होने वाली वृद्धि के कारण सागर के तल (पैंदे) पर अधिकतम घनत्व का जल एकत्रित हो जाता है और यदि यह प्रक्रिया किसी ऐसे प्रदेश में हो रही हो जो दूसरे प्रदेशों से स्वतंत्र संचार रखता हो तो अधिक घनत्व वाला तलीय जल दूसरे प्रदेशों में फैल जाता है। जिन प्रदेशों में तलीय जल या गहरे जल का घनत्व पहले ही अधिक हो वहां जल डूब कर बीच की गहराइयों में फैल जाता है।

खुले महासागरों में निम्न और मध्य अक्षांशों पर जल का ताप इतना अधिक होता है कि कुछ प्रदेशों में अत्यधिक वाष्पीकरण के कारण जल की लवणता में वृद्धि के बावजूद भी जल का घनत्व कम रहता है। इन अक्षांशों में संवहन धारायें अपेक्षाकृत पृष्ठ के निकट बहुत ही पतली परतों तक सीमित रहती हैं और वे गहरे या तलीय जल की रचना नहीं पाती हैं। ऐसी रचना मुख्यतया उच्च अक्षांशों में हो सकती है जहां पर अधिकतर प्रदेशों में अत्यधिक वर्षण उन संवहन धाराओं के विकास को रोक देता है जो अधिक गहराइयों तक पहुंच सकें। वर्षण में यह आधिक्य इतना अधिक होता है कि गहरे और तलीय जल की रचना केवल दो स्थितियों में ही हो सकती है (1) यदि अधिक लवणता का जल धाराओं द्वारा उच्च अक्षांशों पर जाकर ठंडा हो जाये तथा (2) यदि अपेक्षाकृत अधिक लवणता का जल जम जाये।

पहली परिस्थिति उत्तरी अटलांटिक महासागर में दिखलाई पड़ती है जहां गल्फ स्ट्रीम का जल, जिसकी लवणता में निम्न अक्षांशों पर अत्यधिक वाष्पीकरण के कारण काफी वृद्धि हो जाती है, उच्च अक्षांशों में चला जाता है। ग्रीन लैण्ड और आइसलैण्ड के बीच इरमिन्गर सागर में और लेब्रॉडोर सागर में यह जल अंशतः ध्रुव की ओर से बहने वाले कम लवणता के शीतल जल में मिश्रित हो जाता है (4.23)। इस मिश्रित जल की लवणता अपेक्षाकृत अधिक होती है और जब शीत ऋतु में यह ठंडा होता है तो बर्फ के जमने से पहले ही सागर पृष्ठ से सागर तल तक संवहन धारायें विकसित हो जाती हैं। इस प्रकार उच्च लवणता और अधिक ताप वाले गहरे और तलीय जल की रचना होती है जिसका ताप हिमांक से कई डिग्री अधिक होता है (सारणी 82)। नोर्वेजियन सागर में भी एक समतुल्य प्रक्रिया होती है परन्तु वहां गहरे और तलीय जल का ताप हिमांक से कुछ ही विचलित होता है (4.24)।

उत्तर ध्रुवीय महासागर में दूसरी प्रक्रिया गौण महत्व की होती है। वहां पर पृष्ठ परतों की लवणता, उन प्रदेशों में बहुत ही कम होती है जहां हिमायन होता है, यह मुख्यतया साइबेरिया की नदियों द्वारा लाये गये जल की विशाल संहति के कारण होता है। उत्तर ध्रुवीय महाद्वीप के पास हिमायन के द्वारा तलीय जल की रचना बहुत ही महत्वपूर्ण होती है। उत्तर ध्रुवीय महाद्वीप से कुछ दूर स्थित प्रदेशों में वर्षण का आधिक्य पृष्ठ लवणता को कम बनाये रखता है, और इन प्रदेशों में शीत कालिक हिमायन इतना अधिक नहीं होता है कि वह पृष्ठ लवणता में संतोषप्रद वृद्धि करके तलीय जल की रचना कर सके, परन्तु उत्तर ध्रुवीय महाद्वीप को चारों ओर से घेरने वाले महाद्वीपीय मग्नतट भूमि के कुछ हिस्सों में द्रुत हिमायन के कारण शीत ऋतु में समरूप जल की रचना के फलस्वरूप जल का घनत्व मग्नतट भूमि जल से अधिक हो जाता है और इसलिये वह जल बह कर महाद्वीपीय ढाल

की अधिकतम गहराइयों तक पहुँच जाता है। जब यह जल नीचे डूबने लगता है तो इसमें अधिक ताप और लवणता वाला परिध्रुवीय जल भी मिश्रित हो जाता है और परिणाम स्वरूप तलीय जल का ताप हिमांक से कुछ अधिक होता है (4.25)। तलीय जल का सक्रिय उत्पादन अटलांटिक महासागर के दक्षिण में होता है, परन्तु यह प्रशान्त महासागर के उत्तर ध्रुवीय भाग में नहीं होता।

कुछ संलग्न पृथक पृथक सागरों में वाष्पीकरण इतना तीव्र हो सकता है कि साधारण शीतलन प्रक्रिया भी तलीय जल की रचना कर सकती है। यह परिस्थिति भू-मध्यसागर और लाल सागर में और कुछ हद तक केलिफोर्निया की खाड़ी में पाई जाती है जहां तलीय जल का ताप और लवणता पृष्ठ जल से अधिक होती हैं और तलीय जल की रचना पृष्ठ जल में अधिक वाष्पीकरण से होने वाली लवणता में अत्यधिक वृद्धि के कारण होती है। जहां पर ऐसे सागर खुले महासागरों से अभिसंचरित रहते हैं गहरा जल सिल के ऊपर से बह कर महासागरों में जल खंडों से मिश्रित हो जाता है और ऐसी गहराइयों पर फैल जाता है जहां तत्सम्बन्धित घनत्व का जल पाया जाता है (4.26)।

सामान्यतया उच्च अक्षांशों में अधिकतम घनत्व के जल की रचना हो जाती हैं और चूँकि यह जल डूब कर महासागरीय द्रोणियों में फैल जाता है इसलिये समस्त सागरों का गहरा और तलीय जल शीतल होता है। मध्य अक्षांशों पर स्थित केवल कुछ पृथक द्रोणियों में गहरा या तलीय जल अपेक्षाकृत ऊष्ण पाया गया है। संविरचना प्रदेश से फैलते समय तलीय जल भूगर्भ से कुछ ऊष्मा प्राप्त कर लेता है परन्तु यह ऊष्मा भंवर चालकता और धाराओं द्वारा उस प्रदेश से दूर ले जाई जाती है और ताप के वितरण पर इसका प्रभाव दिखलाई नहीं देता है।

जल का यह नीचे की ओर डूबना केवल उन प्रदेशों तक ही सीमित नहीं रहता जहां किसी विशेष घनत्व के जल की रचना हो जाती है परन्तु उन स्थानों पर भी यह सम्भव है जहां अभिसारी धारायें (अभिसरण) विद्यमान हों, तथा जल घनत्व पर निर्भर मध्यवर्ती गहराइयों तक डूब जाता है। सामान्यतया ऊपरी परतों का घनत्व ऊष्ण कटिबंधीय प्रदेशों से ध्रुवों तक बढ़ता है और इसलिये मध्य अक्षांशों में अभिसरण पर डूबने वाले जल की अपेक्षा उच्च अक्षांशों में अभिसरण पर डूबने वाला जल अधिक गहराइयों तक डूबता है।

स्पष्टतया अभिसरण दक्षिण ध्रुव प्रदेशीय अभिसरण है जो कि उत्तर ध्रुवीय महाद्वीप के चारों ओर देखा जा सकता है (चित्र 158)। इस अभिसरण पर डूबने वाले जल की लवणता कम होती है परन्तु इसका ताप भी कम होता है परिणाम स्वरूप इसका घनत्व अपेक्षाकृत अधिक होता है। यह जल अर्थात् दक्षिण ध्रुवीय

मध्यवर्ती जल गहरे जल के ऊपर प्रत्यक्ष रूप से फल जाता है और समस्त दक्षिणी महासागरों में 1200 मीटर और 800 मीटर गहराई के मध्य विद्यमान रहता है। उत्तर अट्लांटिक महासागर में तत्सम्बन्धित उत्तर ध्रुवीय अभिसरण का बहुत ही अल्प विकास होता है; जहाँ अटलांटिक उत्तर ध्रुवीय मध्यवर्ती जल वस्तुतः पाया ही नहीं जाता परन्तु प्रशान्त महासागर में उत्तर महासागर मध्यवर्ती जल प्रारूपिक रूप से विद्यमान रहता है।

मध्य और निम्न अक्षांशों में दो अभिसरण और पाये जाते है ये हैं, उप-ऊष्णकटिवंधीय और ऊष्ण कटिवंधीय अभिसरण। ये दोनों अभिसरण इतनी अच्छी तरह तो परिभाषित नहीं हैं जितने की दक्षिण ध्रुवीय अभिसरण, परन्तु इन अभि-सरणों पर उन क्षेत्रों के रूप में विचार करना चाहिये जहां अभिसारी धाराएँ विद्यमान हों। उप ऊष्ण कटिवंधीय अभिसरण उन अक्षांशों पर स्थित है जहां ऊपरी परतों का घनत्व ध्रुवों की ओर वढ़ता है। नीचे की ओर डूबने वाले जल का घनत्व विषुवत रेखा से यह जल जितनी दूरी पर होगा उतना ही अधिक होगा और इसलिये यह जल अधिक गहराइयों तक फैलता है।

विषुवत रेखीय प्रदेशों में जल का घनत्व इतना कम होता है कि तीव्र अभि-सरण के बावजूद भी पृष्ठीय जल नीचे की ओर किसी परिवोधक गहराई तक नहीं डूब सकता परन्तु पृष्ठ के कुछ ही नीचे कम गहराइयों पर फैल जाता है। इस हल्की ऊपरी परत और गहराई पर पाये जाने वाले अधिक घनत्व के जल के बीच एक तीक्ष्ण सीमा विकसित हो जाती है।

सागर में घनत्व वितरण के सामान्य लक्षणों पर विचार करते समय जल की अवरोही गति पर तो काफी वल दिया जा चुका है परन्तु कुछ ऐसे प्रदेश भी विद्यमान होने चाहियें जिनमें जल की आरोही गति प्रचलित हो क्योंकि नीचे की ओर डूवने वाली जल की राशि ऊपर की ओर आने वाली जल राशि के पूर्णतया समान होनी चाहिये। आरोही गति अपसारी धाराओं के क्षेत्रों में होती है, (अपसरण) जो कि समुद्र में किसी भी स्थान में विद्यमान रह सकता हैं परन्तु वास्तव में यह महाद्वीपों के पश्चिमी तटों के साथ स्पष्ट होता है जहां प्रचलित पवन पृष्ठ जल को तटों से दूर ले जाता है वहां पर उपपृष्ठीय जल अपकूपित हो जाता है जिसका वर्णन विशिष्ट क्षेत्रों के सम्वन्ध में विचार करते समय किया जायेगा। अपकूपिता अधिक घनत्व और कम तापीय जल को पृष्ठ की ओर ले आती है और जहां यह प्रक्रिया होती है उस तट की परिस्थितियों पर इस प्रक्रिया का प्रभाव दूर-दूर तक होता है, परन्तु जल केवल कुछ सौ मीटर गहराइयों से ही ऊपर की ओर उठता है। विशाल पैमाने पर आरोही गति केवल दक्षिण ध्रुवीय महाद्वीप के चारों ओर देखी जा सकती है, विशेषकर यह अटलांटिक महासागर के दक्षिण में जहां ऊपर की ओर आने वाला गहरा जल उस

जल का स्थान ग्रहण कर लेता है जो दक्षिण ध्रुव महासागरीय तलीय जल की रचना में योगदान करता है और उस जल का भी स्थान ले लेता है जो दक्षिण महासागरीय अभिसरण पर डूबता है ।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मध्य और निम्न अक्षांशों पर घनत्व का यह ऊर्ध्वाधर वितरण कुछ हद तक पृष्ट या उसके निकट विपुवत रेखा ग्रौर ध्रुवों के बीच क्षैतिज वितरण प्रदर्शित करता है । सामान्यतया यह भी स्पष्ट है कि किसी भी ऊर्ध्वाधर स्तम्भ में गहरा जल विभिन्न उद्गम प्रदेशों के जल से मिलकर बनता है ग्रौर यह जल कभी किसी उच्च ग्रक्षांश में पृष्ट पर विद्यमान था । ये सामान्यीकरण विभिन्न प्रदेशों में कुछ रूपान्तरण के साथ लागू किये जा सकते हैं जो कि धाराओं के गुणधर्मों पर निर्भर करते हैं ग्रौर जब विभिन्न सागरों पर विचार किया जायेगा इन रूपान्तरणों का भी विवेचन किया जायेगा ।

ताप ग्रौर लवणता का उपपृष्ठीय वितरण

ताप का सामान्य वितरण निकटरूप से घनत्व के वितरण से सम्बन्धित है । उच्च ग्रक्षांशों पर पृष्ठ से तल तक ताप कम होता है । अक्षांशों से फैलने वाले गहरे या तलीय जल अपना कम ताप ही बनाये रखते हैं, परन्तु मध्य और निम्न ग्रक्षांशों में एक ऊपरी ऊष्ण परत विद्यमान रहती है जिसकी मोटाई ग्रंशतः पृष्ठ पर तापन ग्रौर शीतलन प्रक्रियाग्रों पर ग्रौर ग्रंशतः महासागरीय धाराओं के गुणधर्मों पर निर्भर करती है । ऊष्ण जल की ऊपरी परत और गहरे जल को एक संक्रमण परत विभाजित करती है जिसके अन्दर ताप तीव्रता से गहराई के साथ कम होता जाता है । डिफ़ेन्ट (Defant, 1928) ने महासागर के इन दो विभिन्न भागों को वायुमंडल के ग्रनुरूप ही 'शोभमंडल ग्रौर समताप मंडल' नाम दिये हैं । शोभमंडल अपेक्षाकृत उच्च ताप वाली ऊपरी परतों को जो कि मध्य ग्रौर निम्न अक्षांश में पाई जाती हैं और जिनमें तीव्र धारायें विद्यमान रहती हैं और समताप मंडल शीतल गहरे और तलीय जल की समरूप संहति को कहते हैं । यह भेद साधारणतया लाभदायक पाया गया है विशेपकर जब निम्न ग्रक्षांशों की स्थितियों पर विचार किया जाता है, परन्तु यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि ये नाम वायुमंडल से ग्रपूर्ण ग्रनुरूपता पर ग्राधारित है और वायुमंडलीय समरूप मंडल के कुछ ही वैशिष्ठ्य महासागर के समरूप मंडल में पाये जाते हैं ।

अभी तक हम मुख्यतया एक ऐसे आदर्श महासागर पर विचार कर रहे थे जो कि उत्तर ग्रौर दक्षिण दोनों ओर उच्च ग्रक्षांशों तक फैला हुआ है । वास्तव में विशाल द्रोणियों से अभिसंचरण के कारण जो कि गहरे पानी की रचना में योगदान करते हैं, परिस्थितियां काफी जटिल हो सकती हैं जैसे कि भू-मध्य सागर में, परन्तु इन स्थितियों का विशेष रूप से वर्णन प्रत्येक प्रदेश के बारे में अलग-अलग विचार

करते समय किया जायेगा। हिन्द और प्रशान्त महासागर की अन्य दिशाओं, जो कि केवल एक ही ध्रुवीय प्रदेश के साथ प्रत्यक्ष रूप से अभिसंचरित हो, की परिस्थितियों में रूपान्तरण किया जायेगा परन्तु इस रूपान्तरण पर भी विचार बाद में किया जायेगा। यहां पर इस बात पर बल देना आवश्यक है कि ताप का सामान्य वितरण घनत्व के सामान्य वितरण के साथ निकट रूप से सम्बन्धित है और घनत्व का यह वितरण भी पृष्ठ घनत्व को बाहर से प्रवाहित करने वाले घटकों और गहरे सागर जल के परिसंचरण के द्वारा नियंत्रित होता है।

लवणता का सामान्य वितरण ताप के सामान्य वितरण से कहीं अधिक जटिल है। महासागरीय समताप मंडल में लवणता बिल्कुल समान होती है परन्तु शोभ मंडल में यह, वर्षण पर वाष्पीकरण की अधिकता से सम्बन्धित होने के कारण बहुत अधिक परिवर्तित होती है। पृष्ठ लवणता का वितरण जिस पर पहले ही विचार किया जा चुका है (4.27) सामान्यतया शोभमंडल में लवणता के वितरण का गुणधर्म है, जैसा कि चित्र 210 और 212 के ऊर्ध्वाधर काट से स्पष्ट है जिस पर बाद में विस्तार से विचार किया जायेगा।

महासागर के जल खंड

T—S आरेख (ता—ल आरेख)—जल खंडों का वर्गीकरण उनके ताप—लवणता गुणधर्मों के आधार पर किया जा सकता है, परन्तु वर्गीकरण में घनत्व का उपयोग नहीं किया जा सकता है, क्योंकि अलग-अलग ताप और लवणता वाले दो जल खंडों का घनत्व समान हो सकता है। जल खंडों के अध्ययन के लिये, हेलैन्ड—हेनसन (Helland—Hansen, 1916) द्वारा प्रस्तावित, ताप, लवणता,
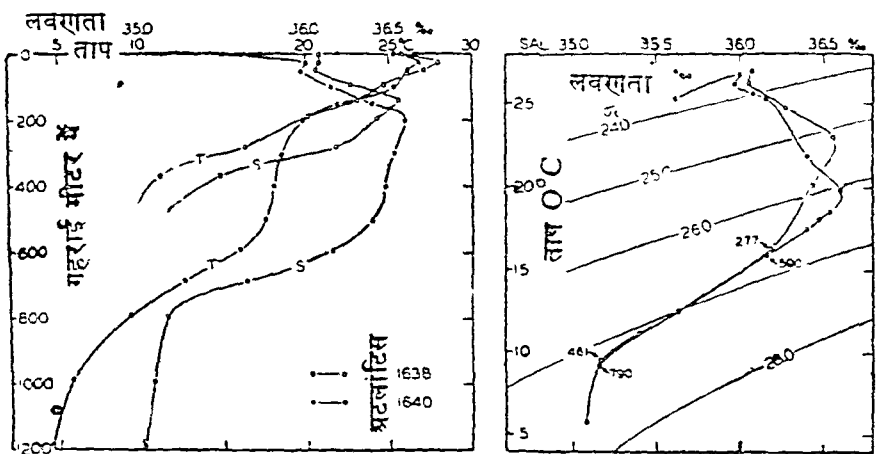
चित्र 34 (बायें) ओनस्लोव खाड़ी की गल्फ स्ट्रीम स्थित 'अटलांटिस' केंद्र नं० 1638 और 1640 पर ताप और लवणता को गहराइयों के विरुद्ध आरेखित किया गया है। (दायें) यही आंकड़े ता—ल आरेख (*T–S* आरेख) के रूप में, जिसमें σ_t वक्र भी दर्शाया गया है।

आरेख का उपयोग सुविधाजनक रहता है। हेलैंन्ड—हेनसन के अनुसार जब किसी दिये हुए प्रदेश में उप-पृष्ठीय जल के ताप और तत्सम्बन्धित लवणता एक दूसरे के विरुद्ध आरेखित किये जाते हैं तब सब बिन्दु सामान्यतया एक स्पष्ट वक्र पर पड़ते हैं जिसे ता—ल आरेख (T—S आरेख) कहते हैं और यह वक्र उस प्रदेश में उप-पृष्ठीय गहराइयों पर ताप और लवणता में सम्बन्ध प्रदर्शित करता है। पृष्ठीय आंकड़ों पर विचार नहीं किया जाता क्योंकि वार्षिक परिवर्तनों और स्थानीय रूपान्तरणों के कारण विसंगति आ जाती है।

किसी जल स्तम्भ में ताप और लवणता के तत्सम्बन्धित मान गहराई के अनुसार व्यवस्थित होते पाये गये हैं। प्रेक्षित मानों की गहराई भी ता—ल आरेख के साथ लिखी जा सकती है जो सागर पृष्ठ से गहराई के साथ होने वाले ताप और लवणता परिवर्तनों के बारे में भी सूचना देगी।

चूँकि वायुमंडलीय दाब पर जल का घनत्व जो कि σ_t (4.27A) द्वारा दर्शाया जाता है, केवल लवणता और ताप पर ही निर्भर करता है, (इसलिये) ता—ल आरेख में समान मानों के σ_t भी आरेखित किये जा सकते हैं। यदि एक सन्तोषप्रद विशाल पैमाना काम में लाया जाये तो ताप और लवणता के किसी भी सम्मिश्रण से संबंधित σ_t का वास्तविक मान ज्ञात किया जा सकता है परन्तु यदि छोटा पैमाना काम में लाया जाये तो, जैसा कि साधारणतया होता है, केवल सन्निकट मान ही प्राप्त किये जासकते हैं। σ_t वक्र के साथ सम्बन्धित ता—ल आरेख की प्रवणता (ढाल) तुरन्त ही स्तरीकरण की स्थिरता के बारे में एक प्रत्यय प्रदान करती है (4.27B)।

चित्र 34 की दाहिनी ओर एक T–S वक्र दर्शाया गया है। इसी चित्र में बाईं ओर ओनस्लोव खाड़ी की गल्फ स्ट्रीम स्थित 'अटलांटिक' केन्द्र न० 1638 और 1640 पर प्रेक्षित ताप और लवणता को गहराइयों के विरुद्ध आलेखित किया गया है और दाहिनी ओर ये ही मान ता—ल आरेख के रूप में दर्शाये गये हैं। प्रेक्षणों की गहराई सूचित की गई है। इन स्थितियों में, केन्द्र 1638 पर 277 और 461 मीटर गहराई के मध्य ताप लवणता के मान केन्द्र 1640 पर 390 और 790 मीटर के मध्य ताप लवणता के मानों से सहमति प्रकट करते हुए यह सूचित करते हैं कि दोनों केन्द्रों पर समतुल्य गुणधर्मों का जल विद्यमान रहता है, परन्तु ऐसा भिन्न भिन्न गहराइयों पर होता है।

ता—ल आरेख भौतिक समुद्र विज्ञान में एक बहुमूल्य साधन बन गया है। इस आरेख के द्वारा ताप लवणता वितरण के विशिष्ठ गुणधर्म सुविधा पूर्वक निरूपित किये जा सकते हैं और इस वितरण में अपवादों को सरलता से पहचाना जा सकता है। यह आरेख ताप और लवणता के निर्धारण में सम्भावित त्रुटियों को ज्ञात करने के लिये भी काफी काम में लाया जाता है (4.27C)।

जल खंड और उनकी रचना :—हेलैन्ड-हेनसन के मूल सुझाव के अनुसार, एक 'जल खंड' की परिभाषा ता—ल वक्र से दी जाती है परन्तु अपवादात्मक स्थितियों में जल खंड की परिभाषा केवल एक ही बिन्दु के द्वारा, अर्थात ताप और लवणता के एकाकी मानों के द्वारा भी दी जा सकती है। ऐसी अपवादात्मक स्थितियां उन द्रोणियों (बेसिन) में पाई जाती है जहां समरूप जल गहराई की काफी बड़ी परास तक विद्यमान हो। दूसरी ओर 'जल प्रकार' की परिभाषा ताप और लवणता के एकाकी मानों के द्वारा दी जा सकती है परन्तु सामान्यतया एक दिया हुआ जल प्रकार केवल सागर पृष्ठ के साथ ही विद्यमान रहता है परन्तु इसकी मोटाई नहीं होती। केवल कुछ अपवादात्मक स्थितियों में ही जिनका कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है, ये पद 'जल खंड' और 'जल प्रकार' अंतर्बदल किये जा सकते हैं परन्तु समुद्र विज्ञान सम्बन्धी साहित्य में ये पद बिना किसी भेद के जो कि यहां प्रस्तावित किया गया है काम में लाये गये हैं।

कई प्रदेशों में ता—ल वक्र सरल रेखा है या ये सरल रेखा के कई भागों से बने माने जा सकते हैं। प्राथमिक विचार से ही यह दर्शाया जा सकता है कि यदि सरल रेखा अंतिम बिन्दुओं द्वारा परिभाषित जल प्रकार को विभिन्न समानुपाती भागों में मिश्रित किया जाये तो परिणामस्वरूप लवणता और ताप में एक सरल रैखिक सम्बन्ध होना चाहिये। इसी प्रकार तीन विभिन्न प्रकारों के जल को मिलाने पर एक वक्र ता—ल सम्बन्ध प्राप्त होना चाहिये। दो सामान्य स्थितियों में क्रमिक मिश्रण ताप लवणता सम्बन्ध को किस प्रकार बदल देता है यह चित्र 35 में दर्शाया गया है। ये केवल औपचारिक नीति के विचार हैं, परन्तु कई दृष्टांतों में इस अवधारण को बल प्रदान करते हैं कि कुछ जल 'प्रकार' पाये जाते हैं और प्रेक्षित ताप लवणता सम्बन्ध अन्तिम बिन्दु (जल) प्रकारों के मिश्रण के परिणामों को निरूपित करते हैं। इस संकल्पना में हम पहले से ही यह मान कर चलते हैं कि जल प्रकार (जो अधिकतर जल खंड कहलाते हैं) लगातार नये होते रहते हैं क्योंकि यदि ऐसा नहीं होगा तो मिश्रण प्रक्रियाओं के कारण अन्त में समरूप जल की रचना हो जायेगी। परन्तु फिर भी ताप लवणता आरेख के गुणधर्मों को महासागर में हो रही अन्य प्रक्रियाओं द्वारा समझा जा सकता है।

सर्वप्रथम तो यह प्रेक्षित करना चाहिए कि खुले महासागरों में समरूप ताप और लवणता के जल खंडों की रचना बहुत ही कम अवसरों पर होती है। उच्च अक्षांशों पर जहां शीतकाल में संवहन धारायें सागर तल तक पहुँच जाती हैं, गहरे और तलीय जल का अधिकांश समरूप नहीं होगा क्योंकि कुछ वर्षों में पृष्ठ जल का घनत्व दूसरे वर्षों की अपेक्षा अधिक होगा और इस बात पर निर्भर करते हुए कि पृष्ठ सतह का घनत्व कितना बढ़ गया है संवहन धारायें विभिन्न गहराइयों तक

पहुँचेगी। परिणामस्वरूप इन प्रदेशों में भी तल की ओर घनत्व बढ़ता चला जाता है। तलीय जल समरूप नहीं होता और इसलिए एक विशेष ताप-लवणता सम्बन्ध दर्शाता है। इसकी ओर मध्य अक्षांशों में अभिसरण पर जल का नीचे की ओर डूबना भी एक जल संहति की रचना कर सकता है जिसका ताप लवणता आरेख पृष्ठ पर ताप और लवणता का क्षैतिज वितरण प्रदर्शित करता है, यह संकेत आइसोलिन (Isolin 1839) ने दिया था। चित्र 36 का ऊपरी भाग इस बिन्दु का चित्रण करता है। चित्र एक व्यवस्थित अनुप्रस्थ काट निरूपित करता है जिसमें समतापीय रेखायें और समक्षारीय रेखायें, जो कि सब समानान्तर हैं और पृष्ठ को काटती हैं, प्रविष्ट की गई हैं। σ_t वक्र आरेखित नहीं किये गये हैं परन्तु वे इन सम रेखाओं के समानान्तर हैं। यदि
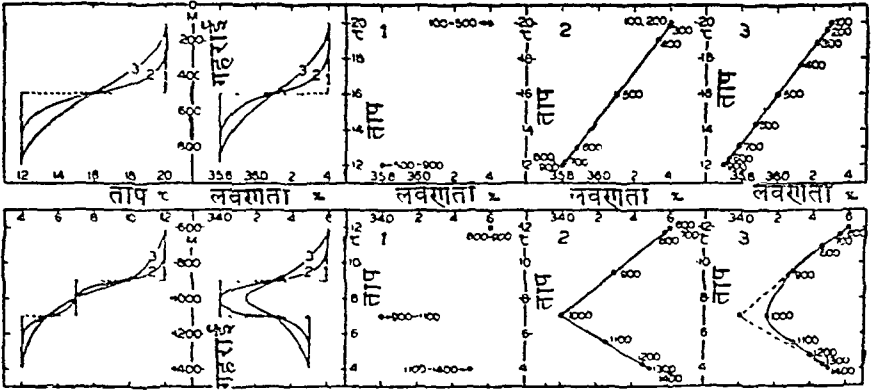
चित्र 35. जल प्रकारों के उर्ध्वाधर मिश्रण का आरेखित निरूपण। दाईं ओर मिश्रण के परिणामस्वरूप ताप और लवणता को गहराई के फंक्शन के रूप में प्रदर्शित किया गया है और तीन ताप लवणता आरेखों में प्राथमिक जल प्रकार (1) और क्रमिक मिश्रण से प्राप्त ता—ल सम्बन्ध (2 और 3) प्रदर्शित हैं।

रेखा a और b के मध्य का पृष्ठ जल नीचे की ओर डूबता हो और यदि डूबने वाला जल समान σ_t पृष्ठ पर स्थित हो तो उपरोक्त सूचित प्रणाली स्थिर रहेगी। और यदि मिश्रण समान σ_t पृष्ठ के साथ या उसके पार हो रहा हो तो भी यह स्थिर रहेगी। ये प्रक्रियायें एक ऐसे जल खंड की रचना में योगदान देंगी जो वक्र a और b के मध्य सदा समान ताप-लवणता सम्बन्ध अर्थात एक ऐसा सम्बन्ध जो कि सागर पृष्ठ के साथ पाया जाता है, प्रदर्शित करेगा। आइसेलिन के अनुसार उत्तर अटलांटिक महासागर के मध्य भागों में क्षैतिज ताप लवणता वक्रों और उत्तर अटलांटिक महासागर के बहुत बड़े क्षेत्रों में ऊर्ध्वाधर ता—ल वक्रों में बहुत अधिक समानता है; जो कि 200 और 80 ताप वाले जल के वैशिष्ठ्य है और उनके सुझाव के अनुसार डूबने और पार्श्व मिश्रण की प्रक्रिया ही जल खंडों की रचना के लिये मुख्यतया उत्तरदायी है इस संकल्पना का विस्तार से उपयोग जल खंडो और महासागरीय धाराओं के सम्बन्ध में विचार करते समय किया जावेगा।

तथापि, एक समतुल्य ताप लवणता सम्बन्ध अन्य प्रक्रियाओं द्वारा भी पुरस्थापित किया जा सकता है, जो कि चित्र 36 के निचले भाग में दर्शाया गया है। यहां पर यह मान कर चलते हैं कि *a* और *b* दोनों 'जल प्रकारों' की पृष्ठ पर रचना होती है। और ये दोनों जल प्रकार अपनी विशिष्ठ σ_t (वक्रों) के साथ साथ नीचे की ओर डूब जाते हैं इसके साथ यह परिकल्पना भी की गई है कि उप पृष्ठीय गहराइयों पर इन दोनों जल प्रकारों के मध्य मिश्रण प्रक्रिया होती है जहां दूसरी ओर पृष्ठ के निकट वाहरी प्रक्रियायें ताप लवणता वितरण को प्रभावित करती हैं इस प्रकार विभिन्न वक्र एक दूसरे को काटते हैं। उपपृष्ठीय गहराइयों पर इन परिस्थितयों
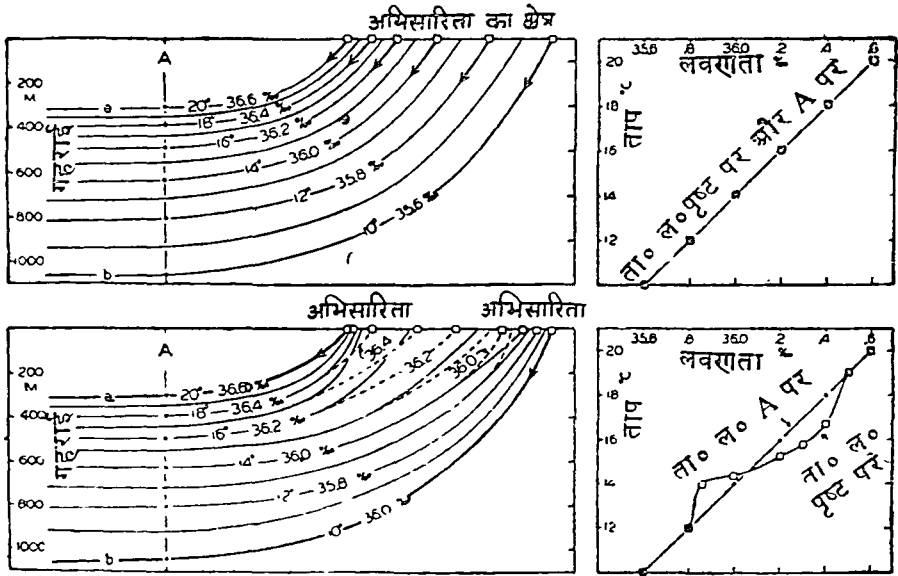
चित्र 36. (ऊपर) अभिसरण क्षेत्र में σ_t पृष्ठ (जो कि समानान्तर ताप लवणता आरेख पर संपातित हैं) के साथ जल के डूबने से वनने वाले जल खंडों का व्यवस्थित निरूपण। दाईं ओर का आरेख यह प्रदर्शित करता है कि अभिसरण प्रदेश में किसी भी जल खंड का एक ऊर्ध्वाधर ता—ल सम्बन्ध उस प्रदेश में पृष्ठीय क्षैतिज ता—ल सम्बन्ध से सहमति प्रकट करता है। (नीचे) अभिसरणों पर जल के डूबने से और बाद में मिश्रण प्रक्रियाओं से जल खंड की रचना का व्यवस्थित निरूपण दाईं ओर आरेख यह चित्रित करता है कि इस स्थिति में जल खंड का ऊर्ध्वाधर ता—ल सम्बन्ध क्षैतिज ता—ल सम्बन्ध के साथ सहमति प्रकट नहीं करता है।

में जो ताप लवणता सम्बन्ध प्राप्त होता है वह सर्वप्रथम वर्णित उदाहरण के समतुल्य है, परन्तु सागर पृष्ठ के साथ एक बिल्कुल दूसरा ही ताप-लवणता सम्बन्ध पाया जाता है। इस स्थिति में ताप लवणता सम्बन्ध पुरस्थापित करने के लिये मिश्रण की प्रक्रियायें σ_t पृष्ठों के उस पार होनी चाहिये, परन्तु उपपृष्ठीय गहराइयों पर σ_t पृष्ठों के साथ मिश्रण प्रक्रिया को अलग नहीं किया जा सकता है। अभी तक यह निर्णय करना असम्भव है कि कौनसी प्रक्रियायें अधिक महत्वपूर्ण हैं।

यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि जल जब वायुमण्डल के संस्पर्श में हो या ऊपरी पृष्ठों में होने वाले अवशोषण से ऊष्ण हो गया हो तब महासागरी जल अपने मूल वैशिष्ट्य बना लेते हैं और समय के साथ ये वैशिष्ट्य मिश्रण के कारण काफी परिवर्तित हो जाते हैं। यह या तो पार्श्व मिश्रण हो सकता है अर्थात् यह σ_t पृष्ठों के साथ साथ होता हो, या यह ऊर्ध्वाधर हो सकता है—अर्थात, यह σ_t पृष्ठों को पार करके होता हो।

जल खंडों के मध्य पार्श्व मिश्रण का एक उदाहरण कैलिफोर्निया तट के निकट पाया जाता है [स्वेरड्रुप और फ्लेमिंग Sverdrup and Fleming 1941] जहां पर तट के निकट उत्तर दिशा की ओर बहने वाले जल का ताप-लवणता सम्बन्ध तट से दूर दक्षिण दिशा की ओर बहने वाले जल के ताप लवणता सम्बन्ध से अत्यधिक भिन्न है (चित्र 199)। इन दो जल खण्डों के बीच एक मध्यवर्ती गुणधर्मों वाला जल पाया जाता है जिसकी रचना ऊर्ध्वाधर मिश्रण के द्वारा सम्भवतया नहीं हो सकती वरन् जिसकी रचना σ_t पृष्ठ के साथ पार्श्व मिश्रण के कारण ही हो सकती है। ऊर्ध्वाधर मिश्रण के द्वारा जल खंड में रूपान्तरण का उदाहरण दक्षिण अटलांटिक महासागर में पाया जाता है जहां दक्षिणी ध्रुव महासागरीय मध्यवर्ती जल उत्तर की ओर बहता है। अपने केन्द्र के निकट यह जल कम लवणता न्यूनतम के द्वारा लक्षित होता है परन्तु दक्षिण ध्रुव महासागर अभिसरण से जितना भी अधिक दूर कोई प्रदेश होता है यह न्यूनतम उतना ही कम उद्घोषित होता है (चित्र 210)। यह परिवर्तन सम्भवतया पूर्ण रूप से पार्श्व मिश्रण के द्वारा नहीं समझाया जा सकता परन्तु डिफेन्ट (Defant 1936) के अनुसार यह ऊर्ध्वाधर मिश्रण के परिणाम स्वरूप पूर्णतया समझा जा सकता है।

'जल प्रकारों' के फैलने और मिश्रण प्रक्रियाओं के अध्ययन के लिये वूस्त ने दूसरा ही तरीका पुरस्थापित किया है जिसे 'कर्नेस्चिच्ट विधि' कहते हैं जिसका अनुवाद होगा 'कोर विधि' (Core method)। जल की परत का कोर, परत का वह भाग होता है जिसके भीतर ताप या लवणता या दोनों ही अधिकतम मान प्राप्त कर लें। इस प्रकार अटलांटिक महासागर में भूमध्य सागर से बह कर आने वाले जल की लवणता बहुत अधिक होती है और अटलांटिक महासागर के बहुत बड़े भागों में इस जल का पता लवणता के द्वितीयक अधिकतम मान से लगाया जा सकता है जिसकी तीव्रता जिब्राल्टर के जल-संयोजक से बढती हुई दूरियों के साथ घटती जाती है। अधिकतम लवणता वाली परत को परत का कोर माना जा सकता है जिस पर भूमध्यसागर का जल फैलता है और कोर के अन्दर लवणता की कमी को मिश्रण प्रक्रियाओं का परिणाम माना जा सकता है। इस स्थिति में एक विशेष जल—प्रकार, भूमध्य सागरीय जल अटलांटिक महासागर में प्रवेश करता है और मिश्रण प्रक्रियाओं

के कारण अपने वैशिष्ट्य को खो देता है परन्तु इसका पता काफी वड़े क्षेत्रों पर लगाया जा सकता है। जल के इस फैलाव को एक ताप लवणता (T—S) वक्र द्वारा भी निरूपित किया जा सकता है जिसका एक अन्तिम विन्दु तो उद्गम प्रदेश में ताप और लवणता का मान दर्शाता है और दूसरा अन्तिम विन्दु उस प्रदेश में ताप और लवणता निरूपित करता है जहां उस विशेष जल के अन्तिम चिन्ह दिखाई देने वन्द हो जाते हैं। ताप लवणता वक्र को इस प्रकार परिभाषित करने के पश्चात् किसी भी इलाके में पाये जाने वाले जल के मूल प्रकार की प्रतिशत मात्रा ज्ञात की जा सकती है। अटलांटिक महासागर में कोर विधि वहुत ही सफल सिद्ध हुई है और विशेषकर यह उन परिस्थितियों में उपयोग में लाई जा सकती है जिनमें सुपरिभाषित जल उद्गम क्षेत्र के चारों ओर फैलता हो।

द्रोणी या थाले (वेसिनस्)

समुद्र विज्ञान शास्त्र में द्रोणी सागर जल से भरे उस अवनमन या गर्त को कहते हैं जो आंशिक रूप से भूमि या किसी समुद्राच्छन्न अवरोध द्वारा खुले सागर से अलग किया हुआ हो और जिसमें खुले सागर के साथ क्षैतिज परिसंचरण केवल थाले की अधिकतम गहराइयों से कम गहराई तक ही सीमित हो। खुले सागर में किसी थाले की प्रवेश गहराई को थाले की प्रवेश सीमान्त गहराई या सिल गहराई कहते हैं। इस स्थान पर प्रवेश का अर्थ थाले को सीमित करने वाले अवरोध में अवनमन से है और यह वात वतलाना अनावश्यक है कि अवरोध का कुछ भाग सागर तल से वाहर निकल रहा है या नहीं। थाले में जल का संलग्न सागर के साथ क्षैतिज परिसंचरण निम्नतम सिल गहराइयों से ऊपर समस्त स्तरों तक ही सीमित रहता है, परन्तु सिल गहराई के नीचे स्थित जल का नवीनिकरण केवल ऊर्ध्वाधर गति के द्वारा ही हो सकता है। इसलिये यह लगभग सव थालों का वैशिष्ठ्य है कि सिल गहराई से नीचे जल एक समान होता है और उसके गुणधर्म सिल गहराई पर पाये जाने वाले जल के समान ही होते हैं। सिल गहराई के नीचे पाये जाने वाले जल, जिसे थाले का जल या द्रोणी जल कहा जाता है, के गुणधर्म अधिकतर केवल खुले सागरों से जल के विनिमय पर निर्भर करते हैं।

सिल के पार अपवाहक थाले :—निचले अक्षांशों के अर्धशुष्क प्रदेशों के लगभग वन्द थालों में वाष्पीकरण, वर्षण और अपवाह (के द्वारा प्राप्त जल) से कहीं अधिक होता है और पृष्ठ जल की लवणता संलग्न खुले महासागर की लवणता से अधिक हो जाती है। वाष्पीकरण शीतकाल में अधिकतम होता है जबकि शीतकाल में महाद्वीपों की ओर से प्रवाहित शीतल वायु के प्रभाव से पृष्ठ जल का ताप कम हो जाता है। इसलिये शीतकाल में पृष्ठ घनत्व में वृद्धि के कारण ऊर्ध्वाधर संवहन धारायें उत्पन्न होकर, कुछ वर्षों में जव चरम स्थितियां विद्यमान हों, अधिकतम

गहराइयों तक पहुँच जाती हैं और तलवर्ती जल का नवीयन कर देती हैं। अधिक लवणता के कारण इस प्रकार निर्मित द्रोणी जल का घनत्व सिल के बाहर समान गहराई पर पाये जाने वाले जल के घनत्व से अधिक होगा और इसलिये तल ढलान के सहारे बहकर जल सिल के ऊपर से बाहर निकल जाना चाहिये। अंशतः सिल के उस पार अपवाह के द्वारा हुई क्षति और अंशतः वर्षण और अपवाह के ऊपर वाष्पीकरण के आधिक्य के कारण जल राशि में हुई कमी की पूर्ति करने के लिये किसी उच्च स्तर से बहकर महासागरीय जल थाले में अवश्य आना चाहिये। भूमध्य सागर, लाल सागर और कैलिफोर्निया खाड़ी के भीतरी भाग इस प्रकार के थालों के उदाहरण निरूपित करते हैं।

उपरोक्त वैशिष्ठ्य वाले थालों में जल को सदा उच्च लवणता और सामान्यतया उच्च आक्सीजन अंश के द्वारा लक्षित किया जाता है। जल की अन्तर्वाह और अपवाह राशि वर्षण और स्थलीय अपवाह के ऊपर वाष्पीकरण के आधिक्य पर निर्भर करती है, अपवाहित और अन्तर्वाहित जल का आयतन वाष्पीकरण के आधिक्य से कई गुना अधिक होता है। स्थिर स्थितियों में किसी दिये हुए समय में किसी प्रदेश में प्रवाहित होने वाली जल की कुल राशि, T_i, उतने ही समय में अपवाहित जल राशि, T_u, और अन्तर, D, जो कि वाष्पीकृत जल में वर्षित एवं स्थली अपवाहित जल के अन्तर के बराबर है, के योग के बराबर होनी चाहिये : $T_i = T_u + D$ साथ-साथ अन्तर्वाहित और अपवाहित धाराओं द्वारा ले जाये जाने वाले लवण की मात्रा भी बराबर होनी चाहिये। प्रथम सन्निकटन में (4.19) $T_i \bar{S}_i = T_u \bar{S}_u$, जहां $\bar{S}_i$ अन्तर्वाहित जल की औसत लवणता और $\bar{S}_u$ अपवाहित जल की औसत लवणता है। उपरोक्त सम्बन्ध से हमें निम्न सूत्र प्राप्त होते हैं :

$$T_i = D\,\frac{\bar{S}_u}{\bar{S}_u - \bar{S}_i},\quad T_u = D\,\frac{\bar{S}_i}{\bar{S}_u - \bar{S}_i} \qquad (IV, 6).$$

ऐसे गुणधर्मो वाले थालों में अन्तर्वाहित जल, जो कि संलग्न, खुले महासागरों से बहकर आता है, की लवणता अपेक्षाकृत अधिक होती है और इसलिये अन्तर $S_u - S_i$ काफी कम होता है। परिणामतः अन्तर्वाहित और अपवाहित जल का आयतन वर्षण पर वाष्पीकरण के आधिक्य से कहीं अधिक होना चाहिये।

उपरोक्त विचार केवल उस समय तक ही वैध हैं जब 'प्रवेश द्वार' इतना विस्तृत एवं गहरा हो कि वह अन्तर्वाह और अपवाह दोनों प्रक्रियाओं को होने दे। कैस्पियन सागर में कारावुगाज की खाड़ी एक ऐसे उदाहरण का निरूपण करती है जो कि एक बड़े जल प्रदाय के साथ सीमित परिसंचरण द्वारा इस प्रकार सम्बद्ध है कि क्रियात्मक रूप में अपवाह असम्भव है। यह खाड़ी कैस्पियन सागर से एक 60 मील लम्बी रोधिका द्वारा विभाजित है और इसका छिछला प्रवेश द्वार केवल कुछ

सौ मीटर विस्तृत है। (इस स्थिति में) लवणयुक्त जल का अपवाह इतना अधिक अवरोधित होता है कि वाष्पीकरण के आधिक्य के कारण 1902 में इस जल की लवणता सम्पूर्ण कैस्पियन सागर के जल की लवणता 12.7‰ की तुलना में 164‰ थी।
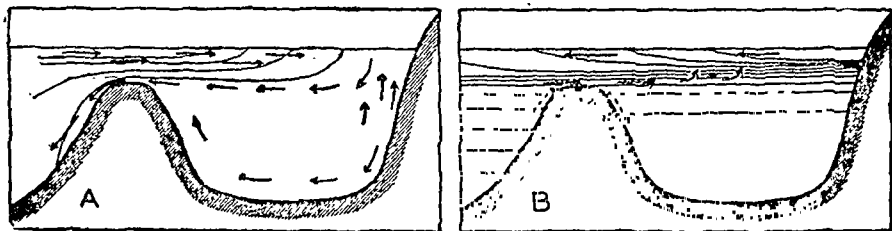
चित्र 37. (A) वे थाले जिनमें द्रोणी जल का स्थानीय निर्माण और सिल के पार अपवाह होता है (B) वे थाले जिनमें कम घनत्व वाले जल का पृष्ठीय अपवाह और सिल के पार अन्तर्वाहित अधिक घनत्व वाले जल द्वारा जल का यदाकदा नवीयन होता है।

इस चरम स्थिति से विपरीत कुछ ऐसी परिस्थितियां भी पाई गई हैं जिनमें पूर्ण वर्ष में वाष्पीकरण का आधिक्य शून्य है, परन्तु इन परिस्थितियों में मौसमी परिवर्तन इतने अधिक हो सकते हैं कि यदाकदा ऊर्ध्वाधर संवहन धारायें उत्पन्न होकर सागर तल तक पहुँच जाती हैं। आवश्यक लक्षण जिस पर बल दिया जाना चाहिये वह यह है कि इस प्रकार के थालों में जल का नवीयन ऊर्ध्वाधर संवहन धाराओं द्वारा होता है जो स्वयं थाले में ही विकसित हों तथा सागर के पृष्ठ से तल तक पहुंच जाती हों। इसलिये सिल गहराई तथा उससे निचली गहराइयों पर जल का घनत्व थाले के बाहर सिल गहराई पर पाये जाने वाले जल की अपेक्षा अधिक होती है और जल स्थिर नहीं रहता है।

सिल के पार अन्तर्वाही थाले :—उच्च अक्षांशों पर लगभग बन्द थालों में वर्षण और स्थलीय अपवाह वाष्पीकरण से अधिक होता है। इस प्रकार के थालों में कम लवणता और तत्सम्बन्धित कम घनत्व वाली पृष्ठ परत विकसित हो जाती है। वर्षण और स्थलीय अपवाह के आधिक्य के कारण अपेक्षाकृत स्वच्छ जल का पृष्ठ अपवाह होना चाहिये और लवण संतुलन कायम रखने के लिये अधिक लवणता वाला जल अन्तर्वाह होना चाहिये। बाह्य सागर से जल का विनिमय कम होता है क्योंकि अन्तर, $\bar{S}_u - \bar{S}_i$, अधिक है।

यदि यह अन्तर इतना अधिक हो कि अनुपात $\bar{S}_u / \bar{S}_i$, इकाई की तुलना में कम हो, तब समीकरण (IV, 6) द्वारा निरूपित सम्बन्धों को हम इस प्रकार लिख सकते हैं :

$$T_i = D\ \frac{S_z}{S_i},\ T_z = D\left(1 + \frac{S_z}{S_i}\right) \qquad (IV, 7)$$

जहां अब D का अर्थ वाष्पीकरण पर वर्षण और स्थलीय अपवाह के आधिक्य से है। इन परिस्थितियों में अन्तर्वाह इस आधिक्य का केवल कुछ अंश होता है और अपवाह क्रियात्मक रूप से इस आधिक्य के बराबर होता है।

इस प्रकार के थालों में बहुधा स्थिर जल पाया जाता है क्योंकि द्रोणी जल का नवीकरण केवल उस समय ही होता है जब अन्तर्वाहित जल का घनत्व थाले के जल के घनत्व से अधिक हो। सिल के बाहर की ओर अन्दर की अपेक्षा घनत्व अधिक तेजी से गहराई के साथ बढ़ता है। यदि बाह्य जल खंडों द्वारा सिल के पार अन्तर्वाहित जल का घनत्व इतना अधिक हो कि वह जल डूब कर थाले के तल तक पहुँच जाये तो थाले के जल का नवीकरण हो सकता है। चित्र 37 में व्यवस्थित रूप से बाह्य विनिमय के वैशिष्ट्य और दोनों प्रकार के थालों में जल का नवीकरण दर्शाया गया है।

थालों में गहरे जल के नवीकरण की द्रुतता सिल गहराई पर ऊर्ध्वाधर घनत्व प्रवणता के खड़े ढाल (Steepness) पर निर्भर करती है। यदि यह प्रवणता खड़ी ढालू हो तो यदाकदा विशाल विक्षोभ थाले को सिल गहराई से नीचे अधिक घनत्व वाले जल से भर देगा, और अनुवर्ती विक्षोभ केवल इतना अधिक होना चाहिये कि वह थाले के जल का नवीकरण कर सके। चरम स्थितियों में जल का नवीकरण केवल भयंकर विक्षोभ के द्वारा ही हो सकता है। ऐसे भयंकर विक्षोभों के बीच के अन्तराल में द्रोणी जल स्थिर हो सकता है, क्योंकि ऊपरी परतों के स्थायी स्तरीकरण में ऊर्ध्वाधर मिश्रण महत्वहीन होता है। तथापि विशाल विक्षोभों के बीच में कुछ मिश्रण प्रक्रिया होती रहती है जो द्रोणी जल के घनत्व को इतना कम कर देती है कि नये विक्षोभ के उत्पन्न होते ही पूर्ण नवीकरण सम्पन्न हो जाता है।

दूसरी ओर यदि सिल गहराई पर घनत्व प्रवणता कम हो तो छोटे से विक्षोभ के द्वारा ही बाह्य गहरा जल सिल के ऊपर से भीतर आ जाता है और बाह्य गहरे जल के अविरामी अन्तर्भेदन के कारण जल की स्थिरता समाप्त हो जाती है. यही प्रक्रिया ऊर्ध्वाधर मिश्रण के द्वारा भी होती है जो कि कम घनत्व प्रवणता के कारण कहीं अधिक प्रभावशील होती है।

सिल गहराई पर डूबने वाले जल का रुद्धोष्म तापन हो जाता है और इसलिये थाले के जल का निम्न ताप लगभग अचर रहता है। प्रभावी सिल गहराई—अर्थात् वह गहराई जिस पर थाले के बाहर निम्न ताप थाले के अन्दर ताप के समान होता है—औसतन वास्तविक सिल गहराई से कम होती है, (सारणी 87),

और बाहरी जल में घनत्व प्रवणता जितनी कम होती है वास्तविक और प्रभावी सिल गहराई में उतना ही अधिक अन्तर होता है। यदि अधिक घनत्व प्रवणता विद्यमान हों तो वे सदा पृष्ठ के निकट ही पाई जाती हैं; और यदि सिल छिछली हो तो सिल गहराई पर अन्तर्वाहक थाले में स्थिर जल रहने की सम्भावना है। काला सागर, बाल्टिक सागर और नार्वे के कई जोर्डस् इस प्रकार के थालों के उदाहरण हैं। (फ्लेमिंग और रेवेली, Fleming and Revelle, 1939 और स्ट्रूम, Strüm, 1936)।

सिल गहराई सिल के पार प्रवाह की दिशा पर भी अवधारण रखती है और प्रवाह की दिशा केवल वाष्पीकरण के आधिक्य या कमी पर निर्भर नहीं करती जैसा कि विवेचन प्रारम्भ करते समय विचार किया गया था। छोटी सिल गहराइयों पर वाष्पीकरण का आधिक्य या कमी ही विनिमय का गुणधर्म निर्धारित करता है, परन्तु अधिक सिल गहराइयों पर सिल के पार अन्तर्वाह का विकास लगभग सभी परिस्थितियों में हो जाता है। सिल गहराई के कुछ ऊपर महासागरीय जल स्वतंत्रता पूर्वक थालों के अन्दर और बाहर प्रवाहित होता है परन्तु सिल गहराई पर नियमानुसार यह औसत प्रवाह थाले में निर्देशित होता है क्योंकि द्रोणी जल का घनत्व, सीमित क्षेत्रों में अधिक प्रभावशाली ऊर्ध्वाधर मिश्रण के कारण, बाहरी जल के घनत्व से कम रहता है। मुख्य अन्तर्वाह और अपवाह तो कम गहराइयों पर ही होते हैं, तथापि जल बहुधा एक प्रवेश मार्ग से अन्तर्वाहित होता है और दूसरे से अपवाहित होता है। अमरीकी भूमध्य सागर के थाले इसका एक बहुत ही अच्छा उदाहरण है।

उच्च अक्षांशों पर स्थित बड़े थालों, उदाहरण के तौर पर नोर्वेजियन सागर और बेफिन की खाड़ी में हालांकि वर्षण वाष्पीकरण से अधिक होता है फिर भी उच्च लवणता वाले जल के जमने और अधिक शीतलन के कारण स्थानीय गहरे जल का निर्माण हो जाता है। ऐसे थालों में जिनको तीसरे प्रकार के थालों की श्रेणी में रखा जा सकता है, स्थिर जल नहीं पाया जाता है।

अध्याय 5

समुद्र में चर राशियों के वितरण का सिद्धान्त

अदिष्ट क्षेत्र

इस पर अत्यधिक बल देने की आवश्यकता नहीं है कि महासागर त्रिविमितीय है और गुण धर्मों का वितरण या गति का प्रकार आकाश (Space) में निरूपित करना आवश्यक है। इस उद्देश्य के लिये एक सुविधाजनक निर्देशांक पद्धति की आवश्यकता होती है। महासागर में कोई बिन्दु उसकी भौगोलिक अक्षांश और देशान्तर तथा उसकी समुद्र तल से गहराई द्वारा निर्दिष्ट किया जा सकता है। परन्तु यदि कोई छोटा क्षेत्र विचाराधीन हो तो उस क्षेत्र में भूपृष्ठ समतल माना जा सकता है और समुद्र तल पर क्षैतिज अक्षें लेकर और ऊर्ध्वाधर अक्ष नीचे की ओर धनात्मक लेकर साधारण समकोणीय निर्देशांक (पद्धति) को पुरस्थापित किया जा सकता है। 'समुद्रतल' का आशय वास्तविक समुद्रतल से नहीं है वरन एक आदर्श समुद्रतल से है जो वह धरातल है जिसके सहारे गुरुत्व का कोई घटक कार्य नहीं करता। दाब के वितरण पर विचार करते समय (5.1) वास्तविक और आदर्श समुद्रतल के अन्तर की और भी विस्तृत व्याख्या की जायगी।

महासागरीय आकाश में किसी दिये हुए धरातल की स्थिति पूर्ण रूप से निर्धारित हो जाती है यदि प्रत्येक अक्षांश और देशान्तर पर उस धरातल की आदर्श समुद्रतल से नीचे की गहराई ज्ञात हो। चार्ट के अन्दर यह धरातल समुद्र तल से नीचे समगहराई रेखाओं द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है जो कि सब मिल कर उस धरातल की स्थलाकृति का चित्र बना देती है। इस प्रकार समुद्र के अधः स्थल की स्थलाकृति चुने हुए गहराई अन्तर पर खींची गई समगहराई रेखाओं द्वारा बताई जाती है।

समुद्र का अध्ययन करते समय जिन राशियों का विचार किया जाना चाहिये वे या तो दिष्ट होती है या अदिष्ट। अदिष्ट राशि एक भौतिक राशि है जिसका परिमाण एक संख्या द्वारा, जो चुनी हुई इकाई पद्धति पर निर्भर करती है, पूर्ण रूप से निरूपित हो जाता है। अदिष्ट राशि के उदाहरण के लिये दाब, ताप, लवणता घनत्व तथा आक्सीजन अंश को लिया जा सकता है। दिष्ट राशि एक भौतिक राशि है जो परिमाण और दिशा द्वारा पूर्ण रूप से निरूपित होती है। किसी कण का वेग

किसी कण का त्वरण और किसी कण पर कार्य करने वाले बल, दिष्ट राशियों के उदाहरण हैं।

किसी दिष्ट राशि का परिमाण जैसे किसी कण के वेग की सांख्यिक मात्रा एक अदिष्ट राशि है। कोई भी दिष्ट राशि किसी निर्देशांक पद्धति की अक्षों पर उसके घटकों द्वारा निरूपित की जा सकती है और ये घटक अदिष्ट राशियें होते हैं।

कोई अविछिन्न तरल उस आकाश में जिसमें वह फैला हुआ है, प्रत्येक बिन्दु पर कई भिन्न-भिन्न गुणधर्मों द्वारा लक्षित होता है। किसी विशेष गुण धर्म का देशिक वितरण उस गुणधर्म का क्षेत्र कहलाता है। यदि वह गुणधर्म अदिष्ट राशि है तो वह क्षेत्र अदिप्ट क्षेत्र कहलाता हैं और यदि वह दिप्ट राशि है तो दिप्ट क्षेत्र महासागर के अन्दर कई अदिप्ट क्षेत्र हैं जैसे कि दाब क्षेत्र, ताप क्षेत्र और घनत्व क्षेत्र तथा कई दिष्ट क्षेत्र हैं जैसे कि गति का क्षेत्र, त्वरण का क्षेत्र आदि।

प्रथम बार क्षेत्र शब्द विद्युत चुम्बकीय बलों के वितरण का वर्णन करने के लिये दिप्ट क्षेत्र के लिये प्रयुक्त किया गया था। भौतिकी के प्रत्येक विद्यार्थी ने चुम्बक के ऊपर गते पर रखे हुए लोह चूर्ण द्वारा प्रदर्शित चुम्बकीय बल क्षेत्र देखा है। परन्तु यह प्रयोग क्षेत्र के केवल निश्चित लक्षणों को दर्शित करता है। यह एक समतल में चुम्बकीय बलों की दिशा बताता है परन्तु यह क्षेत्र के बल का देशिक वितरण अथवा उसका परिमाण नहीं बताता।

एक अदिप्ट क्षेत्र समअदिष्ट पृष्ठों द्वारा पूर्णरूपेण निरूपित किया जाता है यानी वे पृष्ठ जिन पर अदिष्ट राशि का वही सांख्यिक मान होता है। उदाहरण के लिये महासागर में ताप क्षेत्र पूर्ण रूप से निरूपित हो जायगा यदि समतापीय पृष्ठों का यथातथ रूप ज्ञात हो और उसी प्रकार यदि समदाब पृष्ठों का रूप ज्ञात हो तो दाब क्षेत्र पूर्ण रूप से प्रदर्शित हो जायगा। त्वामभी महासागर में समतापीय पृष्ठों अथवा अन्य समअदिष्ट पृष्ठों की वास्तविक समाकृति दर्शित करने वाले आकाशीय प्रतिरूप बनाना अव्यवहारिक है और इस प्रकार के प्रदर्शनों को प्रकाशित करना असम्भव होगा। व्यवहारिक उद्देश्यों के लिये प्रदर्शन के किसी अन्य रूप का चयन करना होगा। समअदिष्ट पृष्ठों और निर्देशांक पृष्ठों के बीच की प्रतिच्छेद रेखाओं को बताने की विधि विस्तृत रूप से प्रयुक्त की जाती है। समुद्रतल पर ताप का वितरण दर्शित करने वाला चार्ट इस प्रकार के प्रदर्शन का एक उदाहरण है। इस स्थिति में समुद्रतल एक मुख्य निर्देशांक पृष्ठ निरूपित करता है और समतापीय रेखाएँ उन रेखाओं को निरूपित करती हैं जिन पर समुद्र में समतापीय पृष्ठ समुद्र तल को काटते हैं। इसी प्रकार 1000 मीटर की गहराई पर ताप का वितरण बताने

वाला चार्ट उन रेखाओं को बताता है जिन पर समतापीय पृष्ठ 1000 मीटर गहराई वाले पृष्ठ को काटते हैं। जबकि ऊर्ध्वाधर काट में ताप का वितरण उन रेखाओं को बताता है जिन पर समतापीय पृष्ठ विचाराधीन ऊर्ध्वाधर पृष्ठ को काटते हैं।

समुद्रतल तल के नीचे भिन्न-भिन्न गहराइयों पर स्थित पृष्ठों में समतापीय रेखाओं की क्षैतिज चार्ट श्रेणी महासागर में ताप क्षेत्र को निरूपित करती है और समतापीय रेखाएँ बताने वाले ऊर्ध्वाधर काटों की श्रेणी उसी क्षेत्र का दूसरा निरूपण करती है।

दूसरी ओर निरूपण की सर्वथा भिन्न प्रणाली का उपयोग किया जा सकता है। जिन रेखाओं पर समतापीय पृष्ठ निर्देशांक पृष्ठों को काटे उनको बताने के बजाय समतापीय पृष्ठों को ही निरूपित किया जा सकता है और उन रेखाओं को बताया जा सकता है जिन पर समुद्र तल के नीचे भिन्न भिन्न गहराइयों के निर्देशांक पृष्ठ उस (समतापीय) पृष्ठ को काटे। इस प्रकार का चार्ट प्रस्तुत समतापीय पृष्ठ का स्थलाकृति चार्ट होगा। यथेष्ट संख्या के समतापीय पृष्ठों के लिये, मानों प्रत्येक डिग्री सेन्टीग्रेड के लिये इस प्रकार की स्थलाकृति चार्ट श्रेणी भी महासागर में ताप क्षेत्र का पूर्ण निरूपण करती है।

ये स्थलाकृति चार्ट निरपेक्ष स्थलाकृति चार्ट निरूपित करेंगे क्योंकि यह मानलिया गया है कि आदर्श समुद्र तल से नीचे की गहराई मालूम है। जबकि आदर्श समुद्र तल एक कल्पित तल है जो प्रेक्षणों द्वारा निर्धारित नहीं किया जा सकता और तमाम माप वास्तविक समुद्र तल से लेने पड़ते हैं। अतएव व्यवहार में महासागर में किसी पृष्ट की स्थलाकृति निरपेक्ष स्थलाकृति को नहीं वरन वास्तविक समुद्र पृष्ठ की अज्ञात आकृति से निर्देशित एक सापेक्ष स्थलाकृति को निरूपित करेगी। कई दृष्टान्तों में निरपेक्ष और सापेक्ष स्थलाकृति के अन्तर का विचार करने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि साधारणतया यह 1 मीटर से कम होती है। दृष्टान्त के लिये जब समतापीय पृष्ठ विचाराधीन हो तो इस अन्तर को नगण्य माना जा सकता है क्योंकि एक मीटर के किसी भाग के लिये ताप में परिवर्तन साधारणतया नगण्य होता है। दूसरी ओर जब समदाबीय पृष्ठ विचाराधीन हों, जैसा कि दाब क्षेत्र के विवेचन में विस्तृत रूप से समझाया जायगा, निरपेक्ष और सापेक्ष स्थलाकृतियों में सूक्ष्म अन्तर करना आवश्यक हो जाता है।

इन विषयों को स्पष्ट रूप से कहा गया है चूंकि यह बात समझ लेना अति आवश्यक है कि आकाश में वितरण पर सदैव विचार करना है जो समअदिष्ट पृष्ठों द्वारा पूर्ण रूप से वर्णित किया जा सकता है। यद्यपि इनके अत्यधिक जटिल रूप हो सकते हैं।

सम अदिष्ट पृष्ट गणितीय रूप में इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है।

$$ds = \frac{\partial s}{\partial x}dx + \frac{\partial s}{\partial y}dy + \frac{\partial s}{\partial z}dz = 0, \qquad (V, 1)$$

यहां S विचाराधीन अदिष्ट राशि है (ताप, दाप, घनत्व, इत्यादि इत्यादि) $\partial s/\partial x \cdot dx$ यह अदिष्ट राशि में dx दूरी पर परिवर्तन है, $\partial s/\partial y. \ dy$ यह dy दूरी पर परिवर्तन है और $\partial s/\partial z \cdot dz$ यह dz दूरी पर परिवर्तन है। किसी समअदिष्ट पृष्ठ पर यह परिणमित परिवर्तन (V,I) के अनुसार शून्य होना चाहिये।

इसी प्रकार ऊर्ध्वाधर काट में x–z समतल में समअदिष्ट वक्र इस तरह परिभाषित होते हैं।

$$\frac{\partial s}{\partial x}dx + \frac{\partial s}{\partial z}dz = 0, \qquad (V, 2)$$

बाद वाले समीकरण से समअदिष्ट पृष्ठ का ढ़ाल x दिशा में इस प्रकार प्राप्त किया जाता है,

$$i_{s,x} = \frac{dz}{dx} = -\frac{\frac{\partial s}{\partial x}}{\frac{\partial s}{\partial z}}$$

इसी प्रकार y दिशा में ढाल

$$i_{s,y} = \frac{\partial z}{\partial y} = -\frac{\frac{\partial s}{\partial y}}{\frac{\partial s}{\partial z}}$$

अब तक समअदिष्ट पृष्ठों का सामान्य रूप से विवेचन किया गया है। व्यवहार में इन पृष्ठों का इस प्रकार चयन किया जा सकता है कि किन्हीं दो पृष्ठों के बीच चर राशि के मान में समान अन्तर हो। ये पृष्ठ मानक समअदिष्ट पृष्ठ कहलाते हैं। ताप के लिये, प्रति एक डिग्री सेन्टीग्रेड ताप पर समतापीय पृष्ठ चुने जा सकते हैं; लवणता के लिये समक्षार पृष्ठ प्रत्येक $0.1‰$ के लिये और इसी प्रकार दूसरे गुणधर्मों के लिये भी किया जा सकता है। ये पृष्ठ आकाश को पतली तहों में विभाजित कर देंगे। प्रत्येक तह दोनों सीमा पृष्ठ के मध्य राशि के समान अन्तर द्वारा लक्षित होती है। इस प्रकार की तहें समअदिष्ट चादर कहलाती हैं। यह ध्यान में रखना चाहिये कि समअदिष्ट राशि इस चादर में स्थिर नहीं रहती है वरना उसका औसत मान स्थित रहता है। यह स्पष्ट है कि इन चादरों की मोटाई समअदिष्ट पृष्ठों के समकोणिक दिशा में अदिष्ट राशि की परिवर्तन की दर का निरूपण करती है। जहां ये चादरें पतली होती है वहां परिवर्तन अधिक होता है परन्तु जहां चादरें

मोटी होती है वहां परिवर्तन कम होता है। परिवर्तन की दर एक दिष्ट राशि द्वारा निरूपित की जा सकती है जिसकी दिशा समअदिप्ट पृष्ठ के अभिलम्ब हो और जिसका मान चादर की मोटाई के प्रतिलोमानुपाती हो। कम होने की दर को निरूपित करने वाला दिष्ट साधारण तौर पर प्रवणता (ताप प्रवणता, दाव प्रवणता), कहलाता है और वृद्धि की दर को बताने वाला दिष्ट आरोही कहलाता है। यदि अदिप्ट को S कहा जाय तो प्रवणता G और आरोह A निम्न समीकरणों द्वारा परिभाषित होते हैं, दिप्ट राशियें मोटे टाइप में छापी जाती हैं।

$$G = -\frac{ds}{dn}, \quad A = \frac{ds}{dn}$$

यदि क्षेत्र यथेष्ट संख्या के पृप्टों द्वारा निरूपित किया जाय तो ये पृप्ट वितरण की विशिष्टता बताने वाले प्रवणता और आरोहों को पूर्ण रूप से निर्धारित कर देंगे। अतः विशेष प्रकार के प्रवणता और आरोह के सदिश क्षेत्र अदिप्ट पृप्टों की प्रणाली द्वारा पूर्ण रूप से चित्रित किये जा सकते हैं परन्तु दूसरे प्रकार के सदिश क्षेत्र इस प्रकार चित्रित नहीं किये जा सकते।

गुण धर्मो के वितरण और समुद्री धाराओं में सम्बन्ध—किसी भी अदिष्ट राशि s (ताप, लवणता, दाब आवसीजन अंश, आदि आदि) पर विचार करें जिसका कि वितरण समय और आकाश में सतत हो ताकि उसे समय और तीन आकाश (*Space*) के निर्देशांको के फलन द्वारा निरूपित किया जा सके यथा $s=f(t,x,y,z)$; मानलो कि यह अदिष्ट राशि द्रव के पृथक-पृथक कणों का गुण धर्म समझी जा सकती है। एक गतिशील कण dt काल के बाद एक नये इलाके $x+dx$, $y+dy$, $z+dz$ में होगा जहाँ कि विचाराधीन अदिष्ट राशि का मान होगा $s+ds=f(t+dt, x+dx, y+dy, z+dz)$ अतएव कण विशेष के गुण धर्म s में dt समय में परिवर्तन हुआ ds यानी s के परिवर्तन की काल दर ds/dt है। यह काल दर क्षेत्र के लक्षणों द्वारा भी व्यक्त की जा सकती है। क्योंकि टेलर विस्तार के अनुसार

$$f(t+dt, x+dx, y+dy, z+dz) = f(t,x,y,z)+\frac{\partial f}{\partial t}dt + \frac{\partial f}{\partial x}dx + \frac{\partial f}{\partial y}dy + \frac{\partial f}{dz}dz$$

या चूंकि $s=f(t,x,y,z)$ है।

$$\therefore ds = \frac{\partial s}{\partial t}dt + \frac{\partial s}{\partial x}dx + \frac{\partial s}{\partial y}dy + \frac{\partial s}{\partial z}dz$$

dt का भाग लगा कर और यह मानकर कि $\frac{dx}{dt}, \frac{dy}{dt}, \frac{dz}{dt}$ वेग के घटक निरूपित करते हैं,

$$\frac{ds}{dt} = \frac{\partial s}{\partial t} + \frac{\partial s}{\partial x}v_x + \frac{\partial s}{\partial y}v_y + \frac{\partial s}{\partial z}v_z \qquad (V, 4)$$

दाईं ओर का पहला पद एक स्थिर इलाके में परिवर्तन दर निरूपित करता है यानी स्थानीय परिवर्तन दर । अन्तिम तीन पद मिल कर अभिवहन पद कहलाते हैं क्योंकि ये उन परिवर्तनों को निरूपित करते हैं जो धाराओं की उपस्थिति में होते हैं । यह सम्बन्ध केवल नियम निष्टता प्रतिपादित करता है और वितरण पर प्रभाव डालने वाली प्रकियाओं के विषय में कोई जानकारी नहीं देता, यह केवल यही बतलाता है कि किसी क्षेत्र में वैयक्तिक काल दर दो पदों का बना हुआ मान सकते हैं; स्थानीय काल परिवर्तन और अभिवहन ।

उपरोक्त समीकरण की सहायता से कतिपय मुख्य विषयों पर प्रकाश डाला जा सकता है । (1) किसी अदिष्ट राशि का वितरण स्थिर होता है—यानी समय पर निर्भर नहीं करता यदि स्थानीय परिवर्तन शून्य हो ($\partial s/dt=0$) (2) यदि कोई गति न हो या क्षेत्र समान हो अर्थात यदि $v_x = v_y = v_z = 0$ हो या $\partial s/\partial x= \partial s/\partial y=\partial s/\partial z = 0$ हो तो अभिवहन पद लुप्त हो जाते हैं । (3) जब वैयक्तिक परिवर्तन शून्य हो ($ds/dt = 0$), तो स्थानीय परिवर्तन अभिवहन के बराबर परन्तु विपरीत चिन्ह का होता है; (4) यदि किसी गुण धर्म का क्षेत्र स्थिर है ($\partial s/\partial t = 0$) और यदि वैयक्तिक काल परिवर्तन भी शून्य हो ($ds/dt = 0$) तो समीकरण (V, 4) निम्न प्रकार का हो जाता है,

$$\frac{\partial s}{\partial x}v_x + \frac{\partial s}{\partial y}v_y + \frac{\partial s}{\partial z}v_z = 0$$

जैसा कि समीकरण (V, 1) से तुलना कर या द्विविमितीय स्थिति की परीक्षा कर देखा जा सकता है, कि जब बहाव गुणधर्म के अदिष्ट पृष्ठों के सहारे हो तभी यह समीकरण परिपूर्ण होता है ।

समुद्र में संरक्षी सांद्रताओं का वितरण

अब तक जो विवेचन किया गया है वह प्रकृति में केवल नियम निष्ट है । यदि आगे और उन प्रक्रियाओं पर विचार किया जाय जो वितरण को बनाये रखती हैं अथवा जो वितरण में परिवर्तन करने का प्रयास करती हैं तो किसी समुद्र के पानी के निश्चित आयतन में नापने योग्य मात्रा में विद्यमान किसी अवयव का वर्णन करने के लिये सांद्रता पद को पुरस्थापित करना लाभदायक होगा । इस प्रकार ऊष्मांश, कुल नमक (जो कि लवणता द्वारा यथेष्ट यथार्थता से निरूपित किया जा सकता है), किसी अमुक योगिक की मात्रा तथा विलीन आक्सीजन अथवा दूसरी गैसे सांद्रता के रूप में बताई जा सकती हैं । और यही तैरते हुए जीवों के विषय में भी लागू होता है । सांद्रता एक अदिष्ट राशि है जो आकाश और काल में अविरत है अतएव उसका वितरण उन क्षेत्रों द्वारा निरूपित किया जा सकता है जिनके लक्षणों पर ऊपर विचार किया गया है ।

सांद्रता को उपान्तरित करने का प्रयास करने वाली प्रक्रियाओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। बाह्य प्रक्रियाएं जो कि तरल के सीमावर्ती पृष्ट पर ही क्रिया शील होती हैं तथा आन्तरिक प्रक्रियाएँ जो कि द्रव में किसी स्थान पर क्रिया शील होती हैं। सीमाओं पर सांद्रता निर्धारित करने के लिये बाह्य प्रक्रियाएँ महत्व की होती हैं और आन्तरिक प्रक्रियाएँ, सीमावर्ती मान के सहित, सारे द्रव में सांद्रता निर्धारित करती हैं।

संरक्षिक सांद्रता से आशय उन सांद्रताओं का है जो सीमावर्ती भागों को छोड़ कर, केवल विसरण अथवा अभिवहन द्वारा स्थानीय रूप से परिवर्तित होती हैं। ऊष्मांश और लवणता संरक्षित सांद्रता के दो प्रकृष्ट महान उदाहरण हैं। एक ऐसे घन पर विचार करो जिसके पृष्ट इकाई क्षेत्रफल के हों और जो निर्देशांक अक्षो के अभिलम्ब हों। x अक्ष के अभिलम्ब दो धरातलों के पार विसरण के कारण प्रति इकाई समय में क्रमश: $(A_x/\rho)_1\,(\partial s/\partial x)_1$ और $(A_x/\rho)_2\,(\partial s/\partial x)_2$ का परिवहन होगा। जहां गुणांक A_x और अवकलज $\partial s/\partial x$ दोनों ही x दिशा में परिवर्तित हो सकते हैं। यहाँ पर विसरण का गुणांक गतिमितीय रूप में (5.2) A/ρ की तरह आता है जहाँ A भंवरी विसरणीयता है क्योंकि सांद्रता प्रति इकाई आयतन में विद्यमान मात्रा के रूप में परिभाषित की गई है। इन परिवहनों में प्रति इकाई लम्बाई पर जो अन्तर $\partial/\partial x\,[(A_x/\rho)\,(\partial s/\partial x)]$ है वह इकाई आयतन में विसरण के कारण निवल परिवर्तन निरूपित करता है। यदि x दिशा में धारा बह रही हो तो अभिवहन के कारण भी सांद्रता में निवल परिवर्तन होगा। एक v_x वेग वाली धारा प्रति इकाई क्षेत्रफल से जो सांद्रता परिवहन करेगी वह sv_x के बराबर होगी और यदि यह परिवहन बहाव की दिशा में बदलता है तो प्रति इकाई आयतन सांद्रता में परिवर्तन $-\partial\,(sv_x)/\partial x$ होगा इसी प्रकार के विचार घन के दूसरे धरातलों के पार परिवहन के लिये भी लागू होते हैं और इस प्रकार सांद्रता में सम्मिलित स्थानीय परिवर्तन विसरण और अभिवहन को निरूपित करने वाले पदों का योग है

$$\frac{\partial s}{\partial t}=\frac{\partial}{\partial x}\left(\frac{A_x}{\rho}\frac{\partial s}{\partial x}\right)+\frac{\partial}{\partial y}\left(\frac{A_y}{\rho}\frac{\partial s}{\partial y}\right)+\frac{\partial}{\partial z}\left(\frac{A_z}{\rho}\frac{\partial s}{\partial z}\right)-\left(\frac{\partial\,(sv_x)}{\partial x}+\frac{\partial\,(sv_y)}{\partial y}+\frac{\partial\,(sv_z)}{\partial z}\right).$$

अन्तिम पद को इस प्रकार लिखा जा सकता है :

$$-v_x\frac{\partial s}{\partial x}-v_y\frac{\partial s}{\partial y}-v_z\frac{\partial s}{\partial z}-s\left(\frac{\partial v_x}{\partial x}+\frac{\partial v_y}{\partial y}+\frac{\partial v_z}{\partial z}\right)$$

परन्तु एक असम्पीड्य द्रव में कोष्टक के अन्दर वाले पदों का योग शून्य होता है (5.3)। समुद्र का जल असम्पीड्य माना जा सकता है अतएव

$$\frac{\partial s}{\partial t}=\frac{\partial}{\partial x}\left(\frac{A_x}{\rho}\frac{\partial s}{\partial x}\right)+\frac{\partial}{\partial y}\left(\frac{A_y}{\rho}\frac{\partial s}{\partial y}\right)+\frac{\partial}{\partial z}\left(\frac{A_z}{\rho}\frac{\partial s}{\partial z}\right)-\left(v_z\frac{\partial s}{\partial x}+v_y\frac{\partial s}{\partial y}+v_z\frac{\partial s}{\partial z}\right), \quad (V, 5)$$

अथवा शब्दों में : सांद्रता का स्थानीय काल परिवर्तन = विसरण का प्रभाव — अभिवहन का प्रभाव

समीकरण (V, 4) पर विचार करने से हमें प्राप्त होगा

$$\frac{ds}{dt}=\frac{\partial}{\partial x}\left(\frac{A_x}{\rho}\frac{\partial s}{\partial x}\right)+\frac{\partial}{\partial y}\left(\frac{A_y}{\rho}\frac{\partial s}{\partial y}\right)+\frac{\partial}{\partial z}\left(\frac{A_z}{\rho}\frac{\partial s}{\partial z}\right) \quad (V, 6)$$

अथवा शब्दों में : सांद्रता का वेयक्तिक काल परिवर्तन = विसरण का प्रभाव ।

व्यवहार में इन समीकरणों को काफी सरल करना होगा । उदाहरण के लिये एक द्विविमितीय निकाय पर विचार करो जिसमें वेग x दिशा में है, और जिसमें x दिशा में विसरण को नगण्य माना जा सकता है और जिसमें यह माना जा सकता है कि ऊर्ध्वाधर विसरण का गुणांक A/ρ स्थिर है । इस प्रकार के निकाय के लिये s के स्थिर वितरण का प्रतिबन्ध ($\partial s/\partial t=0$) इस प्रकार हो जाता है—

$$\frac{A}{\rho}\frac{\partial^2 s}{\partial z^2}=v_x\frac{\partial s}{\partial x} \quad (V, 7)$$

यह समीकरण डीफेन्ट, (Defant, 1929) और थोरेड, (Thorade, 1931) द्वारा स्थिर वितरण के लक्षण का अध्ययन करने के लिये प्रयुक्त किया गया है और डिफेन्ट, (Defant, 1936) द्वारा प्रेक्षित वितरणों से A/v_x के अनुपात की संगणना करने के लिये किया गया है ।

दूसरे उदाहरण के तौर पर, एक समान क्षेत्र पर विचार करें जिसके लिये $\partial s/\partial t=ds/dt$ और यदि यह मान लें कि $A_x = A_y = 0$ है तो उपरोक्त समीकरण इस प्रकार अवकारित हो जायगा—

$$\frac{\partial s}{\partial t}=\frac{\partial}{\partial z}\left(\frac{A}{\rho}\frac{\partial s}{\partial z}\right) \quad (V, 8)$$

यह ताप चालन के समीकरण को निरूपित करता है (5.4) । यह उल्लेखनीय है कि उपरोक्त परिभाषा के अनुसार ताप सांद्रता नहीं है परन्तु चूंकि ताप इकाई आयतन के ऊष्मांश $c\rho\theta$ के समानुपाती है, s का आशय ताप से भी हो सकता है ।

विचाराधीन समस्याओं की प्रकृति के अनुसार इन समीकरणों के अन्य सरल रूप किये जा सकते हैं [मोन्टगोमरी, Montgomery, 1939 और सेवरड्रूप Sverdrup, 1939]

असंरक्षित सांद्रताओं का वितरण

असंरक्षित सांद्रताओं से आशय मुख्यत: उन सांद्रताओं से है जिनका वितरण धाराओं द्वारा मिश्रण अथवा परिवहन के अलावा जैव-प्रक्रियाओं से प्रभावित होता है। उदाहरण के लिये यूफोटिक कटिबन्ध में पौधों द्वारा आक्सीजन के निर्माण से तथा स्वसन प्रक्रिया में आक्सीजन का क्षय हो जाने से आक्सीजन अंश परिवर्तित हो जाता है। फासफेट अथवा पौधों के अन्य पोष्टिक पदार्थों को जब पौधे काम में ले लेते हैं तो उनका अंश जल में से कम हो जाता है और जब कार्बनिक ऊतक विघटित होते हैं तो ये जल में पुन. विलीन हो जाते हैं। या किसी जाति के जीवों की संख्या उनके उत्पन्न होने की और उनके मरने की अथवा क्षय होने की दर के सम्बन्ध के अनुसार घटती या बढ़ती है।

जैव प्रक्रियाओं के कारण सांद्रता का स्थानीय काल परिवर्तन R द्वारा व्यक्त होगा। इस राशि को समीकरण (V,5) में दाईं ओर जोड़ कर इस प्रकार लिखा जा सकता है—

$$\frac{\partial s}{\partial t}=\frac{\partial}{\partial x}\left(\frac{A_x}{\rho}\frac{\partial s}{\partial x}\right)+\frac{\partial}{\partial y}\left(\frac{A_y}{\rho}\frac{\partial s}{\partial y}\right)+\frac{\partial}{\partial z}\left(\frac{A_z}{\rho}\frac{\partial s}{\partial z}\right)-\left(v_x\frac{\partial s}{\partial x}+v_y\frac{\partial s}{\partial y}+v_z\frac{\partial s}{\partial z}\right)+R. \quad (V, 9)$$

शब्दों में : सांद्रता का स्थानीय काल परिवर्तन = विसरण का गुणांक — अभिवहन + जैव प्रक्रिया।

यह समीकरण भी (V, 5) और (V, 6) की तरह सरल किया जा सकता है [सीवेल, (Seiwell, 1937), सेवर ड्रूप, (Sverdrup, 1939) और फ्लेमिंग (Fleming, 1941)]।

गतिज साम्यावस्था का सिद्धान्त

अनुभव यह बताता है कि भूमध्य सागरीय जलाशय से अपेक्षाकृत बड़े जलाशयों में औसत अवस्थाएँ एक वर्ष से दूसरे वर्ष में परिवर्तित नहीं होती। ताप का औसत वितरण प्रतिवर्ष अपरिवर्तित रहता है और यही बात औसत लवणता, आक्सीजन अंश और गोण अवयवों के अंश के लिये भी लागू होती है। यदि एक वर्ष से अधिक लम्बे कालान्तर विचाराधीन हों, मानलो दस वर्ष के काल, तो सम्भवत: भिन्न-भिन्न जातियों के जीवाणुओं की औसत संख्या भी अपरिवर्तित रहती है बशर्ते कि मनुष्य जैसा स्थलचर प्राणी अमुक जातियों को नष्ट करके अथवा अमुक जातियों की संख्या क्षय करके परिस्थितियों में परिवर्तन न करदे। ये अपरिवर्तित अवस्थाएँ उन नैमित्यों में जो सर्वथा स्थिति को विभिन्न दिशाओं में परिवर्तित करने का प्रयास करते हैं, एक सूक्ष्म गतिज साम्यावस्था की स्थिति निरूपित करती है।

संरक्षित सांद्रताओं पर विचार करते समय समुद्र के पृष्ठ के अलावा जहां वाह्य प्रक्रियाएँ सांद्रता को किसी स्तर पर रखने में योगदान करती है विसरण और अभिवहन संतुलित होते हैं। पृष्ठ लवणता के सामान्य वितरण का विवेचन करते समय इसका निर्देशन किया गया था (5.5)। इसका दो पदों पर निर्भर होना वताया गया, एक वह पद जो वाष्पीकरण और अवक्षेपण की वाह्य प्रक्रियाओं को निरूपित करता है और दूसरा वह जो विसरण और अभिवहन की आन्तरिक प्रक्रियाओं को निरूपित करता है। इसी प्रकार पृष्ठ ताप, विकिरण की प्रक्रिया द्वारा और वायुमण्डल से विनिमय द्वारा गर्म होने और ठंडा होने पर तथा ऊष्मा के चालन और अभिवहन पर निर्भर करता है।

अवपृष्ठ ताप और लवणता के वितरण के अध्ययन में, उन प्रक्रियाओं को जानना आवश्यक नहीं है जो कि पृष्ठ मान को वनाए रखती है लेकिन उन मानों को अनुभव द्वारा निर्धारित करना यथेष्ट है। यदि यह किया जाय और यदि विसरण की और धाराओं की प्रक्रिया ज्ञात हों तो ताप और लवणता का सामान्य वितरण संगणित किया जा सकता है। इसके विपरीत यदि ये वितरण ज्ञात हों तो विसरण और धाराओं के विषय में ज्ञान प्राप्त हो सकता है। समुद्र विज्ञान में केवल दूसरी प्रकार की विधि अपनाई गई है।

जव असंरक्षित सांद्रताएँ विचाराधीन हों तव, गतिज साम्यावस्था के सिद्धान्त में यह निहित होता है कि विसरण, अभिवहन और जैव प्रक्रियाओं के प्रभाव एक दूसरे को निरसर कर देते है। असंरक्षित सांद्रताओं में केवल घुली हुई गैसों की मात्रा वायुमण्डल के स्पर्श से अधिक प्रभावित होती हैं और अन्य असंरक्षित सांद्रताएँ वाह्य प्रक्रियाओं से व्यवहारिक रूप में अप्रभावित रहती हैं।

गतिज साम्यावस्था के सिद्धान्त का प्रयोग आक्सीजन के वितरण पर विचार करके समझाया जा सकता है। यूफोटिक कटिवन्ध के नीचे जो जैव प्रक्रियाएँ आक्सीजन अंश को प्रभावित करती हैं वो सर्वदा आक्सीजन का क्षय करती हैं और इसलिये विसरण तथा अभिवहन की प्रक्रियाओं को, क्षय को यथार्थ रूप से संतुलित करने के लिये आक्सीजन की उतनी ही पूर्ति करनी पड़ती है। इससे आगे और कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। हालांकि इस सुस्पष्ट विचार की उपेक्षा की गई है और कुछ लेखकों ने न्यूनतम आक्सीजन अंश की तह को न्यूनतम पूर्ति की तह माना है वूस्ट, (Wüst 1935), जवकि दूसरे लेखकों ने उसको अधिकतम क्षय की तह माना है वाटनवर्ग (Wattenberg 1938)।

यदि क्षय केवल निरपेक्ष आक्सीजन अंश पर निर्भर करता हो तो आक्सीजन के वितरण के आधार पर क्षय और पूर्ति की शीघ्रता निर्णीत की जा सकती है,

परन्तु क्षय आक्सीजन अंश से स्वतंत्र मालूम होता है जब तक कि यह लगभग शून्य न रह जाय, जोवेल (Zo Beil, 1940)। जब सारी आक्सीजन खतम हो गई हो तब क्षय और पूर्ति दोनों का मान शून्य होना चाहिये और इस सुस्पष्ट निर्णय की भी अवहेलना नहीं की जानी चाहिये।

कुछ दृष्टान्तों में आक्सीजन के वितरण और धारा के लक्षण के बीच सम्बन्ध हो सकता है। मानलो कि एक ऐसी क्षैतिज आन्तरिक सीमा है जो विपरीत दिशाओं में वहने वाली धाराओं को विभाजित करती है, विसरण केवल ऊर्ध्वाधर दिशा में होता है तथा विसरण का गुणांक Z से स्वतंत्र है। जब गतिज साम्यावस्था हो तो समीकरण (V, 9) इस प्रकार हो जाता है

$$\frac{A}{\rho}\frac{d^2s}{dz^2} = -R \qquad (V, 10)$$

चूंकि क्षय $-R$ के बराबर होता है और सर्वदा धनात्मक होता है इसलिये जब s, z के साथ अंकित किया जाय तो उसकी वक्रता धनात्मक होगी। चूंकि वक्रता सभी गहराइयों पर धनात्मक नहीं हो सकती इसलिये यह सम्भव है कि आक्सीजन अंश s सीमा पृष्ठ पर न्यूनतम होना चाहिये। इस प्रकार आक्सीजन के ऊर्ध्वाधर वितरण में न्यूनतम मान एक ऐसे सीमा पृष्ठ का संकेत करता है जिस पर कोई धाराएँ न हों, परन्तु इस प्रकार का न्यूनतम मान पूर्णतः भिन्न परिस्थितियों में भी उत्पन्न हो सकता है—सीवेल (Seiwell, 1937)।

इसी प्रकार का तर्क उक्त योगिकों (पदार्थों) के लिये भी सत्य है जो जीवों द्वारा अपने ऊतक बनाने के लिये पानी से हटाये जाते हैं और उपापचय उत्पाद अथवा जैव ऊतक के विघटन के फलस्वरूप पुनः विलय में लौटाये जाते हैं। इनमें साम्यावस्था तो बनी रहती है परन्तु कई स्थितियों में यह कहना कि आक्सीजन के समान ही अभिवहन और विसरण द्वारा पूर्ति होती है, सही नहीं है। क्योंकि जैव प्रक्रियाओं से, निवल पूर्ति हो सकती है ऐसी स्थिति में भौतिक प्रक्रियाओं द्वारा तदनुरूपी क्षय का कार्य सम्पादित होना चाहिये। इस प्रकार गहरी तहों में जैव पदार्थों के विघटन से फॉसफेट और नाइट्रेट पानी में मिलते हैं और विसरण तथा अभिवहन द्वारा हटाये जाते हैं।

जैव संख्याओं के विषय में भी इसी प्रकार के विचार आते हैं। यह विशेष रूप से बल पूर्वक कहा जा सकता है कि पानी के इकाई आयतन में विद्यमान जीवों की संख्या उन प्रक्रियाओं के विषय में जो कि जीवों की संख्या में परिवर्तन करने में कार्यरत होती हैं, कोई सूचना नहीं देती। उदाहरण के लिये डायटम की एक अल्प-संख्या डायटम चरने वाले जानवरों की उपस्थिति में बिना जैव संख्या बढ़ाये बहुत तेजी से विभक्त हो सकती है, दूसरी ओर डायटम की विशाल जैव संख्या जैव पदार्थों

के शीघ्र उत्पादन का चिन्ह् नहीं हो सकती, क्योंकि हो सकता है कि पानी में पोषक लवणों की कमी के कारण अधिक उपज असम्भव हो। 'जैव संख्या' और 'उत्पादन' शब्द विविध रूप से परिभाषित किये जाने चाहिये और उन्हें पृथक रखा जाना चाहिये। 'जैव संख्या' सांद्रता निरूपित करती है जब कि 'उत्पादन' उन प्रक्रियाओं में से एक को निरूपित करता है जो सांद्रता में परिवर्तन करते हैं।

वैयक्तिक और स्थानीय परिवर्तनों में संभ्रान्ति के विरुद्ध चेतावनी देना भी उपयुक्त होगा (5.6)। इस तथ्य के आधार पर कि स्थानीय जैव संख्या अपरिवर्तित रहती है यह नहीं कहा जा सकता कि उस पानी में भी जैव संख्या स्थित रहती है जो उस प्रेक्षण स्थल से होकर निकलता है—यानी यह कि वैयक्तिक काल परिवर्तन शून्य है। इसी प्रकार यदि अमुक इलाके में जैव संख्या में अचानक परिवर्तन परि-लक्षित होता है तो यह नहीं कहा जा सकता कि जो प्रक्रियाएँ उस इलाके में कार्यशील हैं उनसे शीघ्र वृद्धि हुई है क्योंकि यह भी समान रूप से सम्भव है कि एक दूसरे लक्षणों वाला नया जल खण्ड उस स्थान से गुजर रहा हो।

यदि बाह्य प्रभाव स्पष्ट हों, यदि विसरण की और अभिवहन की प्रक्रियाएं ज्ञात हों, और यदि जैविक और कार्बनिक रासायनिक प्रक्रियाएं पूर्ण रूप से बोधगम्य हों तो सब सांद्रताओं के वितरण का कारण वताया जा सकता है। तब केवल औसत वितरण को समझना ही नहीं वरन् तमाम आवर्ती और आभासी बेतरतीब परिवर्तनों का कारण वताना भी सम्भव होगा। यह एक दूरस्थ साध्य है परन्तु इसकी ओर कार्य करते हुए उपागम की विभिन्न विधियों की सीमावन्धियों का पूर्ण रूप से ज्ञान होना चाहिये।

इस प्रकार यदि पृष्ट सतहों पर आक्सीजन अंश, विसरण की प्रक्रियाओं, धाराओं और विघटन की आक्सीजन क्षय करने वाली प्रक्रियाओं का ज्ञान हो तो यूफोटिक कटिबन्ध से नीचे आक्सीजन अंश का पूर्ण वर्णन सैद्धान्तिक रूप से सम्भव है। दूसरी ओर केवल विघटन की प्रक्रियाओं की जांच द्वारा ही नहीं वरन् विसरण और अभिवहन द्वारा आक्सीजन पूर्ति की संगणना से भी आक्सीजन क्षय के विषय में जान-कारी प्राप्त की जा सकती है। अब तक यूफोटिक कटिबन्ध से नीचे आक्सीजन क्षय के विषय में हमारा सारा ज्ञान इसी प्रकार की संगणना पर आधारित है न कि किसी प्रकार के जैवरासायनिक प्रक्रिया के विचार पर।

गतिज साम्यावस्था, जिसकी महता पर जोर दिया गया है, तभी पाई जाती है जबकि विशाल जल खण्ड पर और लम्बे समय के लिये औसत दशाओं पर विचार किया जाय। वर्ष अथवा दिन के किसी समय में बाह्य और अन्तः प्रक्रियाओं में आवर्ती अथवा बेतरतीव परिवर्तन इस प्रकार हो सकते है कि अमुक समय पर कोई

साम्यावस्था नहीं रहती ($\partial s/\partial t \neq o$) पृष्ठ पर नियत अवधि में तापन शीतलन से अधिक होता है और शीतलन नियत अवधि में तापन से अधिक होता है। इसके फलस्वरूप पृष्ठ ताप में दैनिक और वार्षिक परिवर्तन होते हैं जो कि चालन की प्रक्रिया के द्वारा अधिक गहराइयों तक प्रेषित किये जाते हैं। सम्भव है कि इससे भी लम्बे आवर्तकाल हो सकते हैं जोकि सूर्य से प्राप्त ऊर्जा में कालिक परिवर्तन से सम्बन्धित हो लेकिन ये दीर्घकालिक परिवर्तन अल्प आयाम के होते है। कई क्षेत्रों में धाराओं के विचलन के कारण ताप में स्थानीय परिवर्तन होते हैं जो कि प्रकृति में आवर्ती होते हैं, यदि विचलन ऋतु से सम्बन्धित हों और अनावर्ती होते हैं यदि वे बेतरतीव घटनाओं से प्रत्यक्ष रूप में सम्बन्धित हों। ताप के वार्षिक परिवर्तनों का विवेचन करते समय (5.7) इन विभिन्न प्रक्रियाओं का प्रभाव समझाया गया था। इसी प्रकार का तर्क लवणता के आवर्ती और बेतरतीब परिवर्तनों के विषय में और असंरक्षित गुण धर्मों के परिवर्तन के विषय में भी लागू होता है।

जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट है कि समुद्र में सांद्रताओं के वितरण को बनाये रखने में अन्तर्ग्रस्थ तमाम प्रक्रियाओं के ज्ञान पर आधारित निगमन की विधि लगाना अब तक सम्भव नहीं हुआ है। इसके बजाय एक चक्करदार तरीका काम में लेना पड़ता है, जब कभी सम्भव हो प्रक्रियाओं का और उनके प्रभाव का विवेचन करो, यदि निर्धारित किया गया है तो वास्तविक वितरण का विवेचन करो, और या तो कार्यकारी प्रक्रियाओं के विषय में दूसरे स्रोतों से प्राप्त ज्ञान से इन वितरणों की व्याख्या करो या वितरण से इन प्रक्रियाओं के विषय में निर्णय निकालो। कुछ उदा-हरणों में उन प्रक्रियाओं पर जो सीमा मान को बनाये रखती हैं यथेष्ट विस्तार पूर्वक विचार किया जा सकता है लेकिन वैसे प्रेक्षित सीमा मान को बिना स्पष्टीकरण के मानना पड़ता है। यद्यपि तमाम परिस्थितियों में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि हम अविछिन्न माध्यम में सांद्रताओं पर विचार कर रहे हैं और यहां पर दिये गये सामान्य विचार सर्वदा लागू होते हैं।

अध्याय 6

समुद्री जल की रासायनिकी

यदि कार्बनिक या अकार्बनिक उद्‌गम का निलम्बित ठोस द्रव्य अपवर्जित कर दिया जाय तो समुद्री जल को जलीय घोल मान सकते हैं जिसमें विभिन्न प्रकार के ठोस और गैसें घुली हुई हैं। घुले हुए पदार्थों की रासायनिक प्रकृति और सांद्रता का निर्धारण निम्नलिखित कारणों से कठिन है: (1) घुले हुए पदार्थों में से कुछ जैसे कि क्लोराइड और सोडियम आयन अत्यधिक सांद्रता में विद्यमान है जब कि दूसरे, उदाहरण के लिये कतिपय धातु इतनी सूक्ष्म मात्रा में विद्यमान हैं कि उनका समुद्री जल में पता नहीं लगा है, यद्यपि वो समुद्री जीवों और लवण निक्षेपों में पाये गये हैं। (2) दो बृहत् घटक सोडियम और पोटेशियम का यथार्थ निर्धारण अत्यन्त कठिन है। (3) कतिपय दृष्टान्तों में सम्बन्धित पदार्थों जैसे कि फोसफेट और आर्सेनेट, कैल्सियम और स्ट्रॉन्शियम तथा क्लोराइड, ब्रोमाइड और आयोडाइड को पृथक पृथक करना वस्तुतः असम्भव है। इन स्थितियों में मिले हुए पदार्थ एक साथ निर्धारित किये जाते हैं और प्रायः इस प्रकार प्रकाशित किये जाते हैं मानो वे एक ही पदार्थ निरूपित करते हों यानी कैल्सियम और स्ट्रॉंशियम प्रायः कैल्सियम की तरह गणित किये जाते हैं और क्लोराइड, ब्रोमाइड और आयोडाइड को क्लोराइड की तरह।

समुद्री जल में घुले हुए पदार्थों की संश्लिष्ट प्रकृति के कारण, किसी भी अवयव की सान्द्रता निर्धारित करने के लिये प्रायः एक विशेष प्रकार की उन्नत तकनीक की आवश्यकता होती है। पुस्तकों में दी हुई मात्रक विश्लेषण की प्रमाणिक विधियां उनकी यथार्थता का यथेष्ट परीक्षण किये बिना साधारणतौर पर समुद्री जल के लिये प्रयुक्त नहीं की जा सकती। यह उन तत्वों के लिये और भी विशेष प्रकार से सत्य है जो कि अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में पाये जाते हैं क्योंकि अभिकर्मक पदार्थों में अशुद्धियों के रूप में पाये जाने वाले तत्व पानी में पाये जाने वाले तत्वों से कई गुना अधिक हो सकते हैं।

संविरचना की स्थिरता

सम्पूर्ण ठोसों की निरपेक्ष सांद्रता पर विचार किये बिना अधिक प्रचुर मात्रा में पाये जाने वाले पदार्थों के अनुपात वस्तुतः स्थिर रहते हैं। इस निष्कर्ष के महत्व पर अधिक बल देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इसी पर क्लोरीनता, लवणता और घनत्व के सम्बन्ध निर्भर करते हैं और इससे उन तमाम परिणामों की यथार्थता

जो कि घनत्व के वितरण पर आधारित हैं जहां कि घनत्व रासायनिक अथवा परोक्ष भौतिक विधियों जैसे कि विद्युत चालकता या वर्तनांक द्वारा निर्धारित किया जाता है। पानी की संविरचना (बनावट) में अपेक्षाकृत समानता फोर्चहेमर, नाटेरर तथा डिटमार के अनुसन्धान द्वारा संस्थापित की गई थी। यद्यपि फोर्चहेमर ने अनेक नमूनों का विश्लेषण किया फिर भी उसकी जांच अधूरी थी क्योंकि उसने प्रचुर मात्रा में विद्यमान कुछ तत्वों का निर्धारण नहीं किया। नाटेरर ने अधिक विस्तृत विश्लेषण किये परन्तु वह तो डिटमार ही था जिसने समुद्री जल की बनावट के अर्वाचीन ज्ञान की ठोस नींव रखी।

डिटमार (Dittmar 1884) ने एच. एम. एस. चेलेन्जर की दुनियां के चारों ओर की समुद्री यात्रा के समय एकत्रित किये गये तमाम महासागरों के पानी के 77 प्रतिनिधि-निदर्शों पर सतर्क निधारण किया। उसने हेलाइड्स, सल्फेट, मेग्नीशियम, कैल्सियम तथापोटेशियम का निर्धारण किया। उसने संमिश्र नमूनों में ब्रोमीन और क्लोरीन का अनुपात ज्ञात किया और कार्बोनेट का आगणन किया। ऋणात्मक और धनात्मक आयनों के रासायनिक तुल्यांक के योग से उन्होंने अन्तर द्वारा सोडियम की गणना की। इस विधि का अनुसरण इसलिये किया गया क्योंकि वह सोडियम का सीधा संतोष-जनक निर्धारण करने में असमर्थ रहा। डिटमार के कार्य के परिणामों ने यह सिद्ध कर दिया कि समुद्री जल की सापेक्ष बनावट में कोई सार्थक क्षेत्रीय अन्तर नहीं है। फलतः उसके औसत मान घुले हुए बृहत् अवयवों के अनुपात को निरूपित करने में प्रयुक्त किये जा सकते हैं। सारणी 33 में डिटमार के औसत मान वर्तमान काल में प्रयुक्त इकाइयों में दिये गये हैं और 19.00 ‰ की क्लोरीनता से सम्बन्धित है। विभिन्न आयनों का प्रतिशत भी बताया गया है।

1884 के बाद परमाणुभार के उपान्तरण ने डिटमार द्वारा प्रतिवेदित संख्यात्मक परिणामों को प्रभावित किया है। जैसा कि सारणी 33 में पुनः गणित मान में बताया गया है, इन परिवर्तनों के लिये शुद्धियां की जा सकती हैं (लाइमान और फ्लेमिंग Lyman and Flaming 1940)। बाद के अंकन में सोडियम अन्तरविधि से पुनः गणित किया गया है।

डिटमार के परिणामों की, विश्लेषण की वर्तमान पद्धतियों से प्राप्त परिणामों से जिन्हें सारणी के अन्तिम स्तम्भ में दिखाया गया है तुलना करना वड़ा रोचक है, इन दत्त सामग्रियों के उद्गम सारणी 35 में बताये गये हैं। सारणी को देखने से यह एकदम स्पष्ट है कि डिटमार द्वारा निर्धारित अधिकांश तत्वों के लिये मान में तनिकसा अन्तर है और बृहत् अवयवों की सूची में कुछ और आयन जोड़ दिये गये हैं। बद्ध कार्बन डाइ आक्साइड कार्बोनेट के बजाय बाइकार्बोनेट की तरह प्रतिवेदित की जाती है। स्ट्रॉन्शियम उसी रूप में दिया जाता बजाय कैल्सियम के साथ मिश्रण में, तथा फ्लोराइड और बोरिक एसिड और जोड़ दिये गये हैं।

सारणी 33.

डिटमार के समुद्री जल के ब्रहत् अवयवों के मान
(ग्राम प्रति किलोग्राम में, ‰)

आयन	मूल मान		पुनः गणित 1940 परमाणु भार		1940 के मान	
	Cl=19‰	%	Cl=19‰	%	Cl=19‰	%
Cl^-	18.971	55.29	18.971	55.26	18.980	55.04
Br^-	0.065	0.19	0.065	0.19	0.065	0.19
SO_4^{--}	2.639	7.69	2.635	7.68	2.649	7.68
CO_3^{--}	0.071	0.21	0.071	0.21	....	......
HCO_3^-	....	......	....	......	0.140	0.41
F^-	....	......	....	......	0.001	0.00
H_3BO_3..............	....	......	....	......	0.026	0.07
Mg^{++}...............	1.278	3.72	1.292	3.76	1.272	3.69
Ca^{++} } Sr^{++} }.............	0.411	1.20	0.411	1.20	0.400 0.013	1.16 0.04
K^+..................	0.379	1.10	0.385	1.12	0.380	1.10
Na^+.................	10.497	30.59	10.498	30.58	10.556	30 61
Total...............	34.311		3.4328		34.482	

समस्या की जटिलता को ध्यान में रखते हुए और विश्लेषणात्मक रासायनिकी के ज्ञान में महान अभिवृद्धि को देखते हुए डिटमार के और हाल ही में प्राप्त परिणामों के बीच निकट अन्यव वड़ा अद्भुत है। यद्यपि ये अन्तर कम है फिर भी ये सार्थक है अतः डिटमार के काम का महत्व इस बात में है कि उसने वृहत् अवयवों में अनुपात की स्थिरता को बताया न कि उससे इन अनुपातों के यथार्थ संख्यात्मक मान प्राप्त हुए।

सारणी 33 में संविरचना, पदार्थों का सम्वन्ध प्रमाणिक सांद्रता Cl=19.00 ‰ से तथा विभिन्न आयनों और कुल घुले हुए पदार्थों के अनुपात से वताई गई है। अधिकांश दृष्टान्तों में एक तीसरी विधि काम में लेना वांछनीय है यथा विभिन्न पदार्थों और क्लोरीनता या क्लोरोसिटी के बीच के अनुपात को वताना [6.1] ये अनुपात क्रमशः Cl अनुपात और क्लोरोसिटी घटक कहलाते हैं। Cl अनुपात किसी आयन अथवा पदार्थ की मात्रा प्रति इकाई (ग्राम) क्लोरीनता है और यह ग्राम प्रति किलोग्राम में सांद्रता को क्लोरीनता से या ग्राम प्रति 20° लीटर सांद्रता को क्लोरोसिटी से विभाजित कर प्राप्त की जाती है। Cl अनुपात को दी हुई क्लोरीनता से अथवा सम्वन्धित क्लोरोसिटी से गुणा करने पर क्रमशः ग्राम प्रति किलोग्राम में अथवा ग्राम प्रति लीटर में सान्द्रता प्राप्त होगी। मिलीग्राम-परमाणु इकाई में सांद्रता सदैव लीटर आधार पर होती है और यदि क्लोरोसिटी से विभाजित किया

जाय तो क्लोरोसिटी घटक प्राप्त होंगे। यह ध्यान देने की बात है कि यदि क्लोरोसिटी घटक को क्लोरीनता से गुणा किया जाय तो मिलीग्राम परमाणु प्रति किलोग्राम में सांद्रता प्राप्त होती है।

महासागरों में आपेक्षित संविरचना की समानता परिसंचरण और मिश्रण का परिणाम है। ये संक्रियाएं निरन्तर होती रहती हैं और किसी भी कारण से उत्पन्न संविरचना में क्षेत्रीय भिन्नताओं का निरसन करती हैं। विक्षोभ डालने वाले अभिकरण ऐसे परिवर्तन करते हैं जो कि विद्यमान पदार्थों की मात्रा के अनुपात में कम होते हैं। फलतः बृहत् अवयवों की सापेक्ष सांद्रता पर सार्थक प्रभाव नहीं डालेंगे। साथ ही विक्षोभ डालने वाली कई प्रक्रियाएं जो कि सापेक्ष संविरचना को रुपान्तरित करने का प्रयास करती हैं प्रतीवर्ती होती हैं। उदाहरण के लिये जीवों द्वारा कैल्सियम कार्बोनेट का स्राव, जो कि घोल में कैल्सियम की मात्रा कम करता है कुछ ऋतुओं में अथवा समुद्र के कुछ भागों में होता है परन्तु जीवों की मृत्यु पर दूसरे क्षेत्रों में कैल्सियम कार्बोनेट घुल सकता है। यद्यपि इस प्रकार की प्रक्रियाओं से कुछ क्षेत्रीय भिन्नताएं उत्पन्न हो सकती हैं। परन्तु इनके प्रभाव का अधिकांश रूप में मिश्रण द्वारा निराकरण कर दिया जाता है। व्यतिकरण मापी (6.2) और क्लोरीन अनुमापन से घनत्व के समांतर निर्धारण के आधार पर लोटे मॉलर (बेन, हिरसेकोर्न और मॉलर Bein, Hirsekorn and Möller 1935) ने यह बताया है कि उत्तरी एटलांटिक के जल खण्डो की संविरचना में बहुत कम व्यवस्थित अन्तर विद्यमान हैं लेकिन अब तक ये केवल विशिष्ट गुण धर्मों के जल खण्डों का अंकन करने के उन्नत तरीकों के रूप में ही सार्थक हैं।

जैसा की पहले ही बल पूर्वक कहा गया है संविरचना की स्थिरता अत्यन्त महत्व की है। यह क्लोरीनता, लवणता और घनत्व के परस्पर संबंधों का ही आधार नहीं है वरन् यह तमाम बृहत् अवयवों की सांद्रता के आगणन का साधन है जबकि उनमें से किसी एक की सांद्रता ज्ञात हो। साथ ही किसी क्षेत्र में समुद्री जलकी बनावट या भौतिक गुणधर्मों के अध्ययन के परिणाम साधारणतौर पर महासागर के किसी अन्य भाग के जल के लिये भी प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

कुछ विशेष क्षेत्रों जैसे कि बाल्टिक सागर, काला सागर और बड़ी नदियों के मुहानों से दूर के क्षेत्रों को छोड़ कर यह मानना आवश्यक नहीं है कि कोई जल विशेष स्थानीय प्रकार को निरुपित करता है जिसके कि गुण धर्म सामान्य समुद्री जल से भिन्न हों। फिर यह भी याद रखना चाहिये कि सारणी 33 में दिये हुए बृहत् अवयवों के लिये भी संविरचना निरपेक्ष रूप में स्थिर नहीं है। कई विभिन्न कारक जिनका कि बाद में विस्तार पूर्वक विवेचन किया जायगा हमेशा कार्य करते हैं और अपेक्षाकृत प्रचुरता को रुपान्तरित करने का प्रयास करते हैं। नदियें समुद्र में

पाये जाने वाले अनुपात से विशेष प्रकार से भिन्न अनुपात में घुले हुए पदार्थ लाती हैं तथा वे अवसादी द्रव्य भी लाती हैं जो घुले हुए अवयवों से कई प्रकार से क्रिया करता है। समुद्री बर्फ का बनना और पिघलना घुले हुए पदार्थों का उपान्तरित वितरण कर सकती है।

अब तक टिप्पणी मोटे रूप से समुद्री जल के उन अवयवों तक ही सीमित रखी गई है जो कि बड़े अनुपात या कम से कम स्थिर अनुपात में पाये जाते हैं। यदि हम उन तत्वों पर विचार करें जो कि अल्प मात्रा में विद्यमान हैं और जो समुद्री जीवों द्वारा काम में लिये जाते हैं तो स्थिर संविरचना की संकल्पना सामान्य रूप से सत्य नहीं है क्योंकि इन तत्वों की सांद्रता विशेष कर पृष्ठ के समीप बहुत अधिक परिवर्तित होती है। अब रासायनिक समुद्री विज्ञान का बहुत बड़ा भाग परिवर्तनशील अवयवों में दिक्काल के साथ परिवर्तन निर्धारण करने में निरत रहता है तथा उसमें प्रेक्षित वितरण को नियन्त्रित करने वाली प्रक्रियाओं से सम्बन्धित समस्याओं को हल करने में अधिक ध्यान दिया जाता है।

रासायनिक समुद्री विज्ञान में प्रयुक्त इकाइयें

रासायनिक समुद्री विज्ञान में अधिकांश संख्यात्मक परिणाम सांद्रता के रूप में व्यक्त किये जाते हैं यानी जल की एक विशिष्ट मात्रा में विविध अवयवों की मात्रा के रूप में। स्पष्टत: संहति और आयतन इकाइयों के कई संयोग सम्भव हैं और वास्तव में कई प्रकार की इकाइयें प्रयुक्त की गई हैं। संभ्रान्ति को दूर करने के लिये और विभिन्न कार्यकर्ताओं के परिणामों को सीधे एक दूसरे से तुलना करने के योग्य बनाने के लिये यह वांछनीय है कि रासायनिक समुद्री विज्ञान में परिणामों को प्रकाशित करने के लिये इकाइयों की एक मानकित पद्धति काम में ली जाय। ऐसी पद्धति भौतिक समुद्री विज्ञान के अन्तर्राष्ट्रीय संघ (1939) द्वारा प्रस्तावित की गई है।

समुद्री जल की मात्रा व्यक्त करने के लिये केवल दो इकाइयों का उपयोग करना है या तो (i) किलोग्राम या (ii) जल की वह मात्रा जिसका आयतन 20° C पर और एक वायुमण्डल दाब पर एक लीटर हो। बाद वाली इकाई L_{20} कहलाती है परन्तु इस विवेचन में वह केवल L से निर्दशित की जायगी। वह पद्धति जिसमें अवयवों की मात्रा प्रतिलीटर में विद्यमान मात्रा के रूप में प्रतिवेदित की जाती है "वरीय" से नामोदिष्ट होती है साथ ही वैकल्पिक रूप में प्रचुर मात्रा में विद्यमान पदार्थों को ग्राम प्रति किलोग्राम समुद्री पानी के प्रतिवेदित किये जा सकते हैं। लवणता और क्लोरीनता सर्वदा ग्राम प्रति किलोग्राम समुद्री पानी के रूप में प्रतिवेदित की जाती हैं। यह समझ लेना चाहिये कि यह प्रस्तावित पद्धति केवल साहित्य में विश्लेषणात्मक दत्त सामग्री को प्रतिवेदित करने में लागू होती है। विशेष समस्याओं के **विवेचन** में कोई भी योग्य पद्धति काम में ली जा सकती है।

विलीन पदार्थों की मात्रा व्यक्त करने के लिये दो प्रकार की इकाइयें प्रस्तावित की जाती हैं ; (i) संहति, आयतन अथवा दाव की भौतिक इकाइयां तथा (ii) निर्दशित तत्व के परमाणुओं की संख्या पर आधारित इकाइयाँ, ये तत्व आयन या अणु के रूप में एकाकी अथवा अन्य तत्वों के साथ संयोजन में विद्यमान हो सकते हैं। कतिपय स्थितियों में रासायनिक तुल्यांक की संख्या स्वीकार्य है।

सर्वसाधारण रूप में प्रयुक्त संहति की इकाइयां वे हैं जो मीटर प्रणाली में काम में ली जाती हैं और निम्नलिखित रूप में एक दूसरे से सम्बन्धित हैं :

1 टन $= 10^3$ किलोग्राम (कि. ग्रा.) $= 10^6$ ग्राम (g ग्रा.)
1 ग्राम $= 10^3$ मिलीग्राम (mg, मि. ग्रा.)
$= 10^6$ माइग्राम (μg)

निर्दशित तत्व की परमाणु संख्या का माप ग्राम परमाणु भार का भाग पदार्थ की मात्रा ग्राम, मिलीग्राम अथवा माइग्राम में देकर प्राप्त किया जाता है। अतः

1 ग्राम परमाणु (ग्रा. परमाणु) $= 10^3$ मिली ग्राम परमाणु (मि. ग्रा. परमाणु)
$= 10^6$ माइग्राम परमाणु (μg परमाणु)

ग्राम, मिलीग्राम या माइग्राम परमाणु को निर्दशित तत्व के ग्राम परमाणु भार से गुणा कर तत्सम्बन्धित संहति की इकाई में परिणित किया जा सकता है।

कुछ स्थितियों में (उदाहरण के लिये क्षारता और हाइड्रोजन आयन सांद्रता) सांद्रता को रासायनिक तुल्यांक के सापेक्ष प्रतिवेदित करना वांछनीय होता है। तब इकाइयें इस प्रकार होंगी।

1 तुल्यांक (वेलVal) $= 10^3$ मिली तुल्यांक (मिली वेल, milli Val)

समुद्री पानी में विलीन गैसों के आंशिक दाब व्यक्त करने के लिये मूल दाव इकाई भौतिक वायुमण्डल है (6.3)

1 भौतिक वायुमण्डल (atm) $= 760$ टोर (टोरीसेली)
$= 1.0133 \times 10^6$ डाइन प्रति से. मी.^{2}
$= 1.0133$ बार

आंशिक दाब टोर में व्यक्त किये जायेंगे

सभी आयतन की इकाइयां शुद्ध लीटर पर आधारित हैं। यानी 4° से.ग्रे. पर एक किलोग्राम आसुत जल का आयतन। जब आयतन इकाइयें प्रयुक्त होती है तो दाब

और ताप बताने चाहिये। विलीन गैसों की मात्रा जब मिलीलीटर में व्यक्त की जाती हैं तो वो 0° से.ग्रे. और एक वायुमण्डल दाब पर होनी चाहिए यानी प्रसामान्य दाब और ताप, N.T.P. पर।

ताप को प्रतिवेदित करने में सेन्टीग्रेड पैमाना प्रयुक्त करना चाहिये।

दत्त सामग्री को प्रतिवेदित करने के लिये उपयोग में ली जाने वाली भौतिक समुद्री विज्ञान के अन्तर्राष्ट्रीय संस्था द्वारा प्रस्तावित इकाइयें सारणी सं. 34 में दी गई हैं। यह ध्यान देने की बात है कि तमाम इकाइयें नामोदिष्ट तत्व की मात्रा पर आधारित हैं। यह तत्व या तो एकाकी (जैसे आक्सीजन या कैल्सियम) अथवा दूसरे तत्वों के साथ (जैसे फोसफेट-फोसफोरस) विद्यमान हो सकता है। चूंकि 20° लीटर समुद्री जल की मात्रा को व्यक्त करने के लिये मानकआयतन इकाई है अतएव कांच के बर्तन इस ताप पर अंशाकित किये जाने चाहिये और यदि व्यवहारिक हो तो माप और रासायनिक निर्धारण इसी ताप अथवा इसके सन्निकट ताप पर किये जायँ। यदि समुद्री जल के नमूने 20° C पर न हों तो कुछ शुद्धियें लगाना आवश्यक हो सकता है। इस प्रकार की शुद्धियें लगाने की विधियों का पूरा वर्णन और सम्बन्वित रूपान्तरण करने के लिये सारणियें अन्तर्राष्ट्रीय भौतिक समुद्री विज्ञान संस्था की रिपोर्ट में समाविष्ट है। अधिकांश स्थितियों में अल्प मात्रा में विद्यमान तत्वों के विश्लेषण की विधियों की यथार्थता को देखते हुए इस प्रकार की शुद्धियें न्याय संगत नहीं हैं।

जैसा कि पहिले ही कहा गया है कि बहुधा सापेक्ष सांद्रता को Cl अनुपात या क्लोरोसिटी घटक (6.4) के रूप में व्यक्त करना वांछनीय है। ये सम्बन्ध ज्ञात क्लोरीनता के जल में विद्यमान बहुल तत्वों की मात्रा निकालने में अथवा प्राकृतिक अभिकरण द्वारा, मलमूत्र से या औद्योगिक उच्छिष्ट से प्रदूषण द्वारा या अन्य अभिकरणों द्वारा बनावट में किये गये परिवर्तनों की जांच करने में काम में लिये जा सकते हैं।

समुद्री जल की संविरचना

अब तक समुद्री जल की संविरचना का विवेचन मुख्यत: डिटमार के मूल-भूत अनुसंधानों के परिणामों पर ही आधारित रहा है। उसके समय से समुद्री जल की बनावट के विषय में हमारे ज्ञान में अत्यधिक वृद्धि हुई है। विश्लेषण के उन्नत तरीके विकसित किये गये हैं फलत: अधिक यथार्थ मान प्राप्त किये जा सकते है। जिनका विवेचन पहले किया जा चुका है उनके अलावा अन्य तत्वों का पता लगाने तथा उनका निर्धारण करने के लिये परीक्षण विधियां विकसित की जा चुकी हैं। तथाकथित वनस्पति पोषक पदार्थों के अध्ययन पर विशेष बल दिया गया है यानी उन तत्वों पर जो कि समुद्र में वनस्पति वृद्धि के लिये अनिवार्य है परन्तु जो कि अल्प और परिवर्तन शील मात्रा में विद्यमान हैं। विभिन्न तत्वों का अध्ययन विस्तार पूर्वक और अधिकता

से किया गया है फलतः बृहत् अवयवों के अनुपातों में और अल्प मात्रा में विद्यमान तत्वों की मात्रा में क्षेत्रीय अन्तर के सम्बन्ध में अब बहुत् कुछ ज्ञात है। हालांकि डिटमार के कार्य के अलावा तमाम बृहत् अवयवों के कई नमूनों की बनावट का युक्तिपूर्ण अध्ययन नहीं हुआ है।

सारणी 34.

रासायनिक दत्त सामग्रियों को प्रतिवेदित करने में प्रयुक्त संक्षिप्त रूप और इकाइयें (भौतिक समुद्री विज्ञान की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था द्वारा प्रस्तावित योजना के अनुसार)

नामो दिष्ट पदार्थ	सक्षिप्त रूप	इकाई (व=वरीय, वै=वैकल्पिक)			
		मि. ग्रा. परमाणु L	मा. ग्रा. परमाणु L	मि. ली. N.T.P पर L	‰
अमोनिया-नाइट्रोजन	अमोनिया-N		व		
आर्गन	आर्गन	व			
आर्सेनेट-आर्सेनिक	आर्सेनेट-As		व		
आर्सेनाइट-आर्सेनिक	आर्सेनाइट-As		व		
बोरेट-बोरॉन	बोरेट-B	व			
कैल्सियम	Ca	व			वै
कार्बनडाइऑक्साइड	कार्बनडाइऑक्साईड	व			
	CO_2			वै	
क्लोरीनिटी (क्लोरीनता)	Cl				व
तांबा	Cu		व		
लोहा	Fe		व		
मैग्नीशियम	Mg	व			वै
मैंगनीज़	Mn		व		
नाइट्रेट-नाइट्रोजन	नाइट्रेट-N		व		
नाइट्राइट-नाइट्रोजन	नाइट्राइट-N		व		
नाइट्रोजन (गैस)	N_2	व		वै	
आक्सीजन (गैस)	O_2	व		वै	
फ़ॉस्फ़ेट-फ़ॉस्फ़ोरस	फ़ॉस्फ़ेट-P		व		
पोटैशियम	K	व		वै	
रेडियोऐक्टिव-पदार्थ					व
	S				व
सिलिकेट-सिलिकन	सिलिकेट-Si		व		
सोडियम	Na	व			वै
सल्फेट	सल्फेट-S	व			
	SO_4				
हाइड्रोजन-सल्फाइड	सल्फाइड-S	व			
	H_2S			वै	

अतः समुद्री जल की संविरचना की सारणी बनाने के लिये अनेक कार्य कर्ताओं द्वारा (जिन्होंने विभिन्न उद्गमों से प्राप्त नमूनों का परीक्षण किया है) प्राप्त परिणामों को मिलाना आवश्यक है। तमाम उपलब्ध दत्त सामग्री थोमसन और रोबिनसन (Thompson and Robinson, 1932) द्वारा एकत्रित की गई थी और अतिरिक्त संदर्भ आगे विवेचन में पाये जायेंगे। कुछ स्थितियों में जानकारी विस्तृत रूप में हैं परन्तु दूसरे तत्वों के लिये एक ही इलाके से प्राप्त जल पर केवल कुछ निर्धारण किये गये हैं। हम पहले बृहत् तत्वों की मात्रा का परीक्षण करेंगे यानी उन तत्वों का जिनका कि क्लोरीनता से वस्तुतः स्थिर सम्बन्ध है।

सारणी 35 में उन बृहत् आयनों का संकलन दिया गया है जो समुद्री जल में ज्ञात विलीन ठोस अवयवों का 99.9% भाग है। इन दत्त सामग्रियों के उद्गमों का लाइमेन और फ्लेमिंग (Lyman and Fleming, 1940) द्वारा विवेचन किया गया है। विभिन्न आयनों की सांद्रताएँ 19.00‰ क्लोरीनता के जल के लिये बताई गई हैं तथा Cl अनुपात भी बताये गये हैं। ये राशियें 19.00‰ क्लोरीनता के जल के लिये रासायनिक तुल्यांक प्रति किलोग्राम के रूप में तथा मिलीग्राम परमाणु प्रति 20° लीटर के रूप में भी व्यक्त की जाती हैं। क्लोरोसिटी घटक मिलीग्राम परमाणु की इकाइयों के लिये दिये जाते हैं। कार्बनडाइऑक्साइड बाइकार्बोनेट की तरह प्रतिवेदित की गई है। यह विधि दृढ़ यथार्थ नहीं है चूंकि समुद्री जल का बद्ध कार्बनडाइऑक्साइड अंश परिवर्तनशील है परन्तु जैसा कि कार्बनडाइआक्साइड पद्धति के विवेचन में आगे बताया जायगा, कार्बोनेट और बाईकार्बोनेट के रासायनिक तुल्यांक का योग किसी भी क्लोरीनता के लिये वस्तुतः स्थिर रहता है।

यह तत्काल स्पष्ट हो जाता कि हेलाइड्स (क्लोराइड, ब्रोमाइड और फ्लोराइड) का भार योग क्लोरीनता से अधिक है। आयोडाइड की मात्रा नगण्य है यदि ब्रोमाइड को क्लोराइड की तरह भी गणित किया जाय और फ्लोराइड को उपेक्षणीय मान लिया जाय चूंकि वह क्लोरीनता निर्धारण में भाग नहीं लेता है तो भी क्लोराइड तुल्यांक क्लोरीनता से 1.00045 गुणा अधिक है। इस आभासित विसंगति के कारणों का (6.5) पर विवेचन किया गया है।

लाइमेन और फ्लेमिंग (Lyman & Fleming, 1940) ने सारणी 35 में निरूपित विलीन ठोसों के लिये निम्नलिखित निरीक्षण मूलक समीकरण प्राप्त किया :

$$\Sigma‰ = 0.073 + 1.8110 \; Cl‰$$

इससे यह ज्ञात होगा कि 19.00‰ क्लोरीनता के जल में कुल विलीन ठोस 34.4816‰ है परन्तु क्लोरीनता से लवणता निकालने के समीकरण के अनुसार

सारणी 35— समुद्री जल के वृहत् अवयव ($Cl = 19.00‰$, $P_{20} = 1.0243$)

आयन	‰	Cl-अनुपात ग्रा./ इकाई Cl	तुल्यांक प्रति कि. ग्रा. समुद्रीजल	मि.ग्रा. परमाणु प्रति लीटर	क्लोरोसिटी घटक मि.ग्रा. परमाणु प्रति इकाई Cl	आप्तत्व
क्लोराइड Cl	18.9799	0.99894	0.5353	548.30	28.17_3	Dittemar (1884), Jacobsen and Knudsen (1940)
सल्फेट SO_4............	2.6486	0.1394	0.0551	(SO_4-S) 38.24	1.45_1	Thompson, Johnston, and Wirth (1921)
बाइ कार्बोनेट HCO_3^-	0.1397	0.00735[a]	0.0023	(HCO_3-C) 2.34	0.12_0	Revelle (1936)
ब्रोमाइड Br^-.........	0.0646	0.00340	0.0008	0.83	0.042_6	Dittmar (1884)
फ्लोराइड F^-..........	0.0013	0.00007	0.0001	0.07	0.003_6	Thompson and Taylor (1933)
बोरिक एसिड, H_3BO_3..	0.0260	0.00137[b]	c	(H_3BO_3-B) 0.43	0.022_1	Harding and Moberg (1934), Igelsurd, Thompson and Zwicker (1938)
योग...............			0.5936			
सोडियम, [d]Na^+.........	10.5561	0.5556	0.4590	470.15	24.15_5	By difference, Robinson and Knapman (1941)
मैगनिशियम Mg^{++}.....	1.2720	0.06695	0.1046	53.57	2.75_2	Thompson and Wright (1930)
कैल्सियम Ca^{++}.........	0.4001	0.02106	0.0200	10.24	0.526_2	Kirk and Moberg (1933); Thompson and Wright (1930)
पौटेशियम, K^+..........	0.3800	0.02000	0.0097	9.96	0.511_8	Tompson and Robinson (1932)
स्ट्रॉनशियम Sr^{++}.......	0.0133	0.00070	0.0003	0.15	0.007_7	Webb (1938)
योग.....................			0.5936			

कुल विलीन ठोस = 34.4816‰

अवयवों का योग (HCO_3^-, O^- की तरह और Br^-, Cl^- की तरह) = 34.324‰

लवणता ($S‰ = 0.030 + 1.805\ Cl‰$) = 34.325‰

a मिलीतुल्यांक प्रति किलोग्राम के लिये अनुपात = 0.1205

b बोरोन/क्लोरीन अनुपात = 0.000240

c बोरिक एसिड अवियोजित

d अन्तर से परिकलित सोडियम तुल्यांक के योग में

(6.6) लवणता 34.325‰ है। इस प्रकार विलीन ठोसों की कुल मात्रा लवणता से अधिक है। दूसरी ओर यदि लवणता की परिभाषा का उपयोग कर कुल ठोसों की मात्रा से यानी बाइकार्बोनेट को आक्साइड में परिणित कर और ब्रोमाइड को क्लोराइड में परिणित कर लवणता गणित की जाय तो हमें लवणता परिभाषा के अनुसार 34.324‰ प्राप्त होती है। यह सहमति न्यूनाधिक रूप में आकस्मिक मानी जानी चाहिये चूंकि विश्लेपणात्मक दत्त सामग्री में कई अनिश्चितताएँ हैं। फिर भी इनके मान में इस बात से विश्वास दृढ़ हो जाता है कि रोबिनसन और नेपमान (Robinson & Knapman, 1941) द्वारा प्रतिवेदित सोडियम और क्लोरीनता का अनुपात लाइमेन और फ्लेमिंग (Lyman & Fleming, 1940) द्वारा अन्तर से प्राप्त मान के साथ यथातथ सहमत है। यद्यपि सारणी बृहत् विलीन अवयवों के अधिकतम संभाव्य मात्राओं को निरूपित करती है फिर भी ज्यों ज्यों अतिरिक्त दत्त सामग्री उपलब्ध होती है इसमें परिवर्तन ससर्त है।

सारणी 35 में दत्त सामग्री गहरे जल के बजाय पृष्ठ जल के लिये अधिक विशिष्ट रूप से लागू होती है। बाईकार्बोनेट आयन और कैल्सियम दोनों ही गहरे जल में तनिक सी अधिक मात्रा में होंगे। इससे अधिक कुछ और यौगिक जो कि इस सारणी में सम्मिलित नहीं हैं जैसे कि नाइट्रेट और सिलीकेट, सारणी में बताये हुए ऋणायन और धनायन का संतुलन विक्षिप्त करने के लिये यथेष्ट मात्रा में विद्यमान हो सकते हैं। इस लिये Cl अनुपात को सूचक के रूप में लेना चाहिये न कि परम मान के रूप में। तो भी किसी भी स्थिति में जब परीक्षार्थ जल खुले समुद्र से लिया गया हो तो यह अनुपात दशमलव के अन्तिम स्थान में एक या दो से अधिक नहीं बदलेगा। असामान्य परिस्थितियों में जैसे कि अत्यधिक तनुकृत जल में अधिक विचलन पाये जा सकते हैं। परिभाषा के अनुसार शून्य क्लोरीनता पर लवणता शून्य नहीं है अतः विशिष्ट तत्वों के अनुपात के अत्यधिक तनुता पर अनन्त की ओर पहुंचने की आशा की जा सकती है। जबकि तनुकारी जलों में हेलाइड्स के अलावा अन्य पदार्थ हों। इसलिये अत्यधिक तनुकृत जल के क्षेत्रों में अध्ययन के लिये नदी के जल के लक्षण पर विचार करना चाहिये। चूंकि ऐसे क्षेत्रों में प्रदूषण समस्याएं बहुत मात्रा में आती हैं, प्रदूषण की प्रकृति और विस्तार के विषय में कोई निष्कर्ष निकालने से पहले किसी विशिष्ट कटिबन्ध के लिये विभिन्न तनुताओं के लिये सामान्य अनुपात निकालना आवश्यक होगा।

समुद्री जल में विद्यमान तत्व

अब तक समुद्री जल के बृहत् अवयवों पर ही विचार किया गया है। सारणी 36 में हाइड्रोजन और आक्सीजन के अलावा उन तमाम तत्वों को अंकित किया गया

है जो कि जल में विलीन ठोसों की तरह पाये जाते हैं। वो इस स्थिति में आयन की तरह नहीं दिये गये हैं वरन् वो विभिन्न तत्वों की मात्रा के रूप में दिये गये हैं जो कि 19.00‰ क्लोरीनता के जल में होते हैं। ये तत्व उनकी प्रचुरता के क्रम में जमे हुए हैं। पहले स्तम्भ में वे मिलीग्राम प्रति किलोग्राम के रूप में प्रतिवेदित किये गये हैं और दूसरे में मिलीग्राम परमाणु प्रति लीटर में। सुगमता के लिये 1940 के परमाणु भार और उनके व्युत्क्रम समाहित किये गये हैं। ये स्थिरांक भार इकाइयों को ग्राम परमाणु इकाइयों में तथा इनको विपरीत दिशा में वदलने के लिये आवश्यक हैं। वृहत् तत्वों के मान पहले की सारणियों में दिये हुए मानों के अनुरूप हैं और सामान्यतः पृष्ठ जल के लिये यथार्थ हैं। कई तत्वों के लिये सांद्रताओं की परास वताई गई है। निस्संदेह दूसरे तत्वों के लिये भी परास वतानी चाहिये परन्तु यथेष्ट परीक्षणों के अभाव में अथवा प्रतिवेदित दत्त सामग्रियों के विश्वास पर अनिश्चितता से ये समस्याऐं अनिर्णीत रह जाती हैं। कई तत्वों के लिये जो कि वहुत कम सांद्रता में विद्यमान हैं केवल एक या दो निर्धारण उपलब्ध हैं और कुछ स्थितियों में केवल अपरोक्ष आगणन किये गये हैं। अतः इन स्थितियों में सूचित मान विद्यमान राशियों का केवल क्रमांक निरूपित कर सकती है। छः सर्वाधिक प्रचुर तत्वों को छोड़ कर केवल कार्बन (CO_2 के घटक), सिलिकोन, नाइट्रोजन और फ़ासफ़ोरस यौगिकों का उनके वितरण का ठीक विचार करने के लिये यथेष्ट सम्पूर्णता से अध्ययन किया गया है। बोरोन, आयोडीन, लोहा, मैंगनीज, तांवा, सोना तथा रेडियम की मात्राओं के परिवर्तन पर कम सम्पूर्णता से अध्ययन किया गया है। कैडमियम, क्रोमियम कोवाल्ट, और टिन समुद्री जीवों की राख में पाये गये हैं अतः यह अन्तर्निहित है कि ये समुद्रा जल में होते हैं यद्यपि अव तक ये प्रत्यक्ष रूप से दर्शित नहीं किये गये हैं।

सारणी 36 में 44 तत्व पंजी कृत किये गये हैं और यदि हम हाइड्रोजन, आक्सीजन और अक्रिय गैसें निऑन, हीलियम और आर्गन और जोड़ दें तो हमें 49 तत्वों का योग प्राप्त होता है जो कि समुद्री जल में पाये जाने वाले जाने जाते हैं। और अधिक परीक्षण निस्संदेह अन्य तत्वों की उपस्थिति प्रदर्शित करेंगे। पृथ्वी की पपड़ी में उनकी सांद्रता की तुलना में विलीन ठोसों के उद्गम और सांद्रता की, कतिपय समस्याओं पर वाद में विवेचन किया जायगा।

निम्नलिखित संक्षिप्त विवेचन उन तत्वों तक सीमित है जो या तो अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में होते हैं या जिनका वितरण जैविक क्रियाओं से प्रभावित होता है। दूसरे भाग के तत्वों के लिये अतिरिक्त दत्त सामग्री अध्याय VII में दी गई है। सारणी 36 में उन तत्वों के लिये संदर्भ दिये गये हैं जिनका वर्णन पुस्तक में नहीं किया गया है। थॉमसन और रोविनसन (Thompson & Robinson 1932) द्वारा व्यापक विवेचन दिया गया है और दूसरे परिणाम गोल्डश्मिड्ट (Goldschmidt)

(1937) तथा वाटेनबर्ग (Wattenberg) (1938) द्वारा प्रकाशित किये गये हैं। तत्वों पर उसी क्रम में विचार किया गया है जिसमें वो सारणी में आते हैं।

क्लोरीन, जो कि क्लोराइड आयन की तरह पायी जाती है, सर्वाधिक प्रचुर आयन है और विलीन द्रव्यों का भार से लगभग 55 प्रतिशत भाग है। यह दूसरे हेलाइड्स के संयोग में क्लोरीनता निर्धारण के सिवाय बहुत कम नापी जाती है मानो तब ब्रोमाइड और आयोडाइड की इस प्रकार संगणना की जाती है मानो कि वो क्लोराइड हों। यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि हेलाइड्स के क्लोरीन तुल्यांक का क्लोरीनता से अनुपात 1.00345 (6.5) है। घनत्व संगणन के आधार की दृष्टि सेही नहीं वरन् वृहत् मात्रा में विद्यमान पदार्थों के मानक के संदर्भ में भी क्लोरीनता सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

सोडियम समुद्री जल में सर्वाधिक प्रचुर धनायन है परन्तु क्षार धातुओं के निर्धारण में अन्तर्गस्थ तकनीकी कठिनाइयों के कारण यह विरला ही सीधा निर्धारित किया जाता है। रोबिनसन और नेपमान (Robinson and Knapman, 1941) द्वारा प्राप्त क्लोरीनता से औसत अनुपात का मान 0.5556, लैमेन और फ्लेमिंग (Lyman and Fleming, 1932) द्वारा अन्तर से गणित मान से यथातत सहमत है। यह थोमसन और रोबिनसन (Thompson and Robinson, 1932) द्वारा दिये गये औसत मान (0.5509) से कुछ अधिक है परन्तु सीधे विश्लेपण द्वारा प्राप्त वेब (Webb, 1939) के मान 0.5549 से ठीक ठीक सहमत है। सोडियम : क्लोरीनता अनुपात नदी के मुंहानों के समीप उपान्तरित किया जा सकता है।

समुद्री जल का **मैंगनीशियम** अंश का अनुसंधान सुचारु रूप से विशेप कर थोमसन और राइट (Thompson & Wright, 1930) ने किया है। मैंगनीशियम प्राय मैंगनीशियम-अमोनियम-फोसफेट विधि के विशेष उपान्तरण से निर्धारित किया जाता है। मैंगनीशियम क्लोरीनता का अनुपात अधिक समान है।

गंधक समुद्री जल में सल्फेट आयन के रूप में विद्यमान है और इस रूप में प्राय: वेरियम सल्फेट की तरह अवक्षेपण से निर्धारित की जाती है। थोमसन, जोनस्टन और वर्थ (Thompson, Johnston and Wirth, 1931) द्वारा सल्फेट वितरण का विस्तृत अध्ययन किया गया है। कतिपय प्रथक्त द्रोणियों में होने वाली अप्रवाही स्थितियों में तथा पैंदों और उनके समीप के अवसादों में सल्फेट का कुछ भाग सल्फाइड आयन में परिणित हो सकता है। काले सागर और नारवे के कुछ फियार्डस में काफी मात्रा में सल्फाइड होता है और उसकी उपस्थिति कई इलाकों में प्रतिवेदित की गई है। सल्फेट : क्लोरीनता अनुपात नदी के जल से तनुता के कारण उपान्तरित हो सकता है जो कि साधारणतया अपेक्षाकृत सल्फेट में अधिक होता है।

सारणी 36

समुद्री जल में विद्यमान तत्व (विलीन गैसें अन्तर्निहित नहीं हैं ।)

तत्व	mg/kg Cl=19.00‰	mg परमाणु/L Cl=19.00‰	परमाणु भार	1/परमाणु भार	आप्तत्व
क्लोरीन	18980	548.30	35.457	0.02820	
सोडियम	10561	470.15	22.997	0.04348	
मैग्नीशियम	1272	53.57	24.32	0.04112	
गंधक	884	28.24	32.06	0.03119	
कैल्सियम	400	10.24	40.08	0.02495	
पोटेशियम	380	9.96	39.096	0.02558	
ब्रोमीन	65	0.83	79.916	0.01251	
कार्बन	28	2.34	12.01	0.08326	
स्ट्रॉन्शियम	13	0.15	87.63	0.01141	
वोरॉन	4.6	0.43	10.82	0.09242	
सिलिकन	0.02 -4.0	0.0007 -0.14	28.06	0.03564	
फ्लोरीन	1.4	0.07	19.00	0.05263	
नाइट्रोजन (योगिक)	0.01 -0.7	0.001 -0.05	14.008	0.07139	
ऐलुमिनियम	0.5	0.02	26.97	0.03708	
रूबिडियम	0.2	0.002	85.48	0.01170	
लिथीयम	0.1	0.014	6.940	0.14409	
फ़ास्फ़ोरस	0.001-0.10	0.00003-0.003	30.98	0.03228	
बेरियम	0.05	0.0004	137.36	0.00728	
आयोडिन	0.05	0.0004	126.92	0.00788	
आर्सेनिक	0.01 -0.02	0.00015-0.0003	74.91	0.01335	
लोहा	0.002-0.02	0.00003-0.0003	55.85	0.01791	

तत्व	mg/kg Cl=19.00‰	mg परमाणु/L Cl=19.00‰	परमाणु भार	1/परमाणु भार	आप्तत्व
मैंगनीज	0.001-0.01	0,00002-0.0002	54,93	0,01820	
तांबा	0.001-0.01	0,00002-0.0002	63,57	0,01573	
जस्ता	0.005	0.00008	65.38	0,01530	At Rins (1936)
सीसा	0.004	0.00002	207.21	0.00483	Boury (1938)
सिलिनियम	0.004	0.00005	78,96	0,01266	Goldschmidt and Stock (1935)
सीज़ियम	0.002	0.00002	132.91	0,00752	Watten berg (1938)
यूरेनियम	0.0015	0.00001	238.07	0.00420	Föyn *et al* (1939)
मॉलिब्डेनम	0.0005	0.000005	95.95	0.01042	Ernst and Hoermann (1936)
थोरियम	<0.0005	<0.000002	232.12	0.00431	Föyn *et al* (1939)
सीरियम	0.0004	0.000003	140.13	0.00714	Goldschmidt (1937)
चांदी	0.0003	0.000003	107.880	0.00927	Haber (1928)
वैनेडियम	0.0003	0.000006	50.95	0.01963	Ernst and Hoermann (1936)
लैन्थेनम	0.0003	0.000002	138.92	0.00720	Goldschmidt (1937)
इट्रियम	0.0003	0.000003	88.92	0.01125	Goldschmidt (1937)
निकल	0.0001	0.000002	58.69	0.01704	Ernst and Hoermann (1936)
स्कैनडियम	0.00004	0.0000009	45.10	0.02217	Goldschmidt (1937)
पारा	0.00003	0.0000001	200.61	0.00498	Goldschmidt (1937)
सोना	0.000006	0.00000002	197.2	0.00507	Haber (1928)
रेडियम	$0.2-3\times10^{-10}$	$0.8-12\times10^{-13}$	226.05	0.00442	Evans, Kip, and Moberg (1938)
कैडमियम					Fox and Ramage (1931)
क्रोमियम					Webb (1937)
कोबाल्ट					Thompson and Robinson (1932)
टिन					Thompson and Robinson (1932)

जमने की ग्रौर पिघलने की प्रक्रियाएँ सम्भवतः सापेक्ष सांद्रताओं को प्रभावित कर सकती हैं। (6.6) आगे

कैल्सियम, सोडियम अथवा मैग्नीशियम से काफी कम मात्रा में विद्यमान होता है परन्तु महासागर में इसके वितरण का कहीं अधिक पूर्ण रूप से अध्ययन किया गया है इसका मुख्य कारण यह है कि कैल्सियम समुद्री अवसादों में पाये जाने वाले कंकाल अवशेषों का वृहत् अवयव है। इस प्रकार के अवशेषों के जमाव से कैल्सियम जल से स्थाई रूप से पृथक हो जाता है परन्तु इस हटाव से यह आशय अनिवार्य रूप से अन्तर्निहित नहीं है कि कैल्सियम सांद्रता कम हो रही है चूँकि समुद्रों में वहने वाले नदियों के पानी से वहुत वड़ी आमद वनी रहती है। कैल्सियम क्लोरीनता अनुपातों में परिचायक अन्तर परिलक्षित हुआ है। वाल्टिक में ग्रिपेनवर्ग (Gripenberg, 1937a) ने यह वताया है कि उस अनुपात से जिस नदी जल ने समुद्री जल को तनुकृत किया है उसकी प्रकृति निर्धारित की जा सकती है और भी मोवर्ग और रेवेली (Moberg and Revelle, 1937) ने कैल्सियम : क्लोरीनता अनुपात में ऊर्ध्वाधर अन्तर की विद्यमानता प्रदर्शित की है। जिसका कारण वे पृष्ठ तहों में से जैव क्रियाओं के कारण कैल्सियम के हटाव को मानते हैं। कैलसियम की सांद्रता में अभिरुचि समुद्री जल में कैलसियम कार्वोनेट की विलेयकता के और अवक्षेपण और विलयन को नियन्त्रित करने वाले तत्वों के चारों ओर भी केन्द्रित रही है। कुछ क्षेत्रों में कैल्सियम कार्वोनेट वस्तुतः अकार्वनिक विधि से अवक्षेपित होता है और दूसरे क्षेत्रों में वह वस्तुतः विलीन होता है। इन समस्याओं के अतिरिक्त कैल्सियम सांद्रता का ज्ञान समुद्र में कार्वनडाइऑक्साइड पद्धति को समझने में भी महत्वपूर्ण है जिसका कि वाद में विवेचन किया जायगा। कैलसियम की मात्रा प्रायः सावधानी से नियंत्रित स्थितियों में उसे ओग्जेलेट की तरह अवक्षेपित कर और तत्पश्चात पोटेशियम परमेन्गनेट के साथ अनुमापन कर निर्धारित की जाती है। इस प्रकार की एक विधि का वर्णन कर्क और मोवर्ग (Kirk and Moberg, 1933) ने किया है।

वेव के अनुसार कैल्सियम के आगणन की इस विधि में स्ट्रॉन्शियम भी नीचे आ जायगा और इसलिये कैल्सियम की मात्रा स्ट्रॉन्शियम की तुल्य मात्रा के वरावर अधिक होगी। चूँकि कैल्सियम स्ट्रॉन्शियम का अनुपात वस्तुतः स्थिर है वेव का यह सुझाव है कि "कैल्सियम" का आशय स्ट्रॉन्शियम और वेरियम को कैल्सियम से स्थानान्तरित करने के वाद कैल्सियम से है। चूँकि इस स्थिति में वेरियम नगण्य है कैल्सियम का मान सीधे आयतन मिति विधि से प्राप्त होगा परन्तु जव ये राशियें तोल कर निर्धारित की जाती हैं तो इन्हे शुद्ध करना होगा (वेव (Webb, 1938) इस विवेचन में जो मान दिये गये हैं वे केवल कैल्सियम के लिये हैं और विश्लेषण दत्त सामग्री को स्ट्रॉन्शियम की उपस्थिति के कारण शुद्ध कर प्राप्त

की गई हैं। वेव द्वारा परिभाषित और सारणी 35 में दिये गये कैल्सियम और स्ट्रॉन्शियम के मानके अनुसार "कैल्सियम Cl अनुपात 0.0214 है।

पौटेशियम सर्वाधिक प्रचुर धनायन में चतुर्थ स्थान पर है और उसकी मात्रा सोडियम की मात्रा का केवल कुछ प्रतिशत है। पौटेशियम विरला ही सीधा निर्धारित किया जाता है परन्तु वस्तुतः उसका सम्बन्ध क्लोरीनता से स्थिर रहता है [थोमसन और रोबिनसन (Thompson and Robinson, 1932)]। फिर भी पौटेशियम अंश जैविक अभिकरणों से उपान्तरित किया जा सकता है। चूंकि कुछ जीव विशेष कर विशाल शैवाल पौटेशियम को काफी अंश तक सांद्रित कर देता है। नदी जल के साथ तनुता के कारण भी पौटेशियम से क्लोरीनता का अनुपात उपान्तरित हो सकता है। नदियों द्वारा समुद्र में लाये गये कोलायडीय और मृतिका के कणों के साथ पौटेशियम क्रिया कर सकता है और इससे दूर हट सकता है फलतः यह अभिकरण अनुपात पर प्रभाव डाल सकता है। समुद्री अवःस्थल पर वनने वाले कुछ खनिज जैसे कि ग्लूकोनाइट, में पौटेशियम होता है।

ब्रोमीन क्लोरीनता से ठीक स्थिर अनुपात वताती है और वस्तुतः तमाम ब्रोमाइड आयन की तरह विद्यमान है।

समुद्री जल में **कार्बन** का विवेचन इस तथ्य के कारण जटिल है कि यह केवल कार्वोनिक अम्ल और उसके लवण के रूप में ही नहीं पाया जाता वरन जीवित अथवा मृत कार्वनिक द्रव्य के अवयव के रूप में भी यह काफी मात्रा में पाया जाता है। मलवा निर्मित कार्वनिक पदार्थ या तो विवक्त रूप में या विलयन में हो सकता है। कार्वनडाइआक्साइड की विलेयकता जल के ताप और लवणता पर निर्भर करती है और वायुमण्डल से कार्वनडाइआक्साइड का विनिमय पृष्ठ पर होता है। पृष्ठ तहों में प्रकाश संश्लेपण कार्वनडाइआक्साइड की मात्रा कम करता है और श्वसन उसकी सांद्रता को वढ़ाता है। फलतः विद्यमान कार्वन की मात्रा, आया स्वतंत्र कार्वनडाइआक्साइड, वाइकार्वोनेट, या कार्वोनेट, का विचारणीय परास होगा। इन समस्याओं का विवेचन समुद्र में कार्वनडाइआक्साइड पद्धति पर विचार करने वाले अनुच्छेद में किया जायगा। सारणी 36 में दी हुई कार्वन की मात्रा इस कल्पना पर गणित की गई थी कि केवल वाइकार्वोनेट आयन ही विद्यमान थे। जैविक कार्वन जो कि संभवतः 2 से 3 मि. ग्रा. प्रति लीटर (0.15 से 2.25 मि. ग्रा. परमाणु/लीटर) के क्रम का है इसमें अन्तर्निहित नहीं था। जिन विधियों से विभिन्न कार्वन डाइ-आक्साइड अवयव तथा विवक्त और विलीन जैविक कार्वन निर्धारित किया जा सकता है उनका विवेचन आगे किया गया है।

स्ट्रॉन्शियम का विस्तार में परीक्षण नहीं हुआ है चूंकि उसे मात्रक रूप में निर्धारित करना अत्यन्त कठिन है। आक्सेलेट अवक्षेपण विधि से कैल्सियम के

निर्धारण में स्ट्रॉन्शियम कैल्सियम के साथ नीचे आ जाता है फलतः कैल्सियमः क्लोरीनता का अनुपात जो कि प्रायः समुद्री जल के लिये प्रतिवेदित किया जाता है वह कैल्सियम की तरह प्रतिवेदित कैल्सियम और स्ट्रॉन्शियम को निरूपित करता है। स्ट्रॉन्शियम कतिपय जीवों के चूर्णमय कंकाल का अवयव है।

बोरॉन समुद्री जल में आश्चर्य जनक उच्च सांद्रण में पाया जाता है और क्लोरीनता से स्थिर सम्बन्ध रखता है। वस्तुतः यह अविघटित बोरिक अम्ल के रूप में विद्यमान है। बोरॉन किस रूप में पाई जाती है इसके विषय में काफी अनिश्चितता है परन्तु निर्धारण की विधि बोरिक अम्ल से मानकित है और कम से कम उसके मान बोरिक एसिड की कतिपय सांद्रता के समतुल्य रूप में व्यक्त किये जा सकते हैं। समुद्री जल में बोरिक अम्ल का निर्धारण मेनीटोल की उपस्थिति में कास्टिक सोडा के अत्यन्त तनुकृत घोल के साथ अनुमापन पर आधारित है। हार्डिंग और मोबर्ग (Harding and Moberg, 1934) तथा इगेलस्रुड, थोमसन और ज़्विकर (Igelsrud, Thompson and Zwicker, 1938) द्वारा विधियों का वर्णन किया गया है। समुद्री जल में विद्यमान बोरोन की मात्रा कार्बोनेट संतुलन में काम की है और इस सम्बन्ध में इस पर बाद में विवेचन होगा। बोरोन कतिपय समुद्री जीवों द्वारा सांद्रित की जाती है।

सिलिकोन का अध्ययन विस्तार पूर्वक किया गया है क्योंकि यह डायटमों और अन्य सिलिका-स्रावी जीवों द्वारा उपयोग की जाती है। थोमसन और रोबिनसन (1932) द्वारा सारणीकरण के अनुसार सिलिकेट-सिलिकोन सौ गुने से भी अधिक परिवर्तित होते हैं अर्थात् (0.0007 से 0.11 मि. ग्रा. परमाणु/लीटर (0.02 से 3.0 मि. ग्रा./लीटर)। क्लाउज (1938) ने दक्षिणी महा सागर के गहरे जल में 0.14 मि. ग्रा. परमाणु/लीटर (4.0 मि. ग्रा. /लीटर) से कुछ अधिक मान प्राप्त किया। सिलिका-स्रावी जीवों के विकास के कारण पृष्ठ नमूनों में प्रायः यह मान कम होता है परन्तु सिलिकेट में गहराई के साथ उत्तरोत्तर वृद्धि होती है जो कि विलयशील सिलिकेट के घुलने के कारण मानी जाती है। फिर भी सर्वदा इस बात की संभावना है कि जल में कोलायडीय रूप में प्रस्तुत किसी योगिक में सिलिकोन होता है। नदी के जल में विलयन के रूप में अथवा कोलायडीय कणों के रूप में उच्च सिलिकोन अंश होता है। डायटम और रेडियो लोरिया-पंक में जीवों के सिलिकीय अवशेष होते हैं जो कि पृष्ठ के नजदीक विकसित हुए और उनकी मृत्यु के बाद पैंदे पर जमा हुए हैं। यद्यपि जैविक उद्गम के सिलिकीय निक्षेप विशाल क्षेत्रों में फैले हुए हैं फिर भी कंकाल अवशेषों का अधिकांश जीवों की मृत्यु के पश्चात विलीन हो जाता है। विलयशील सिलिकेट के रूप में विद्यमान सिलिकोन वर्ण मापीय मिति से निर्धारित की जाती है। यह विधि थोमसन और हौल्टन (1933) और वाटेनबर्ग

(1937) द्वारा वर्णित की गई है। चूँकि जल के नमूने तीव्र गति से काँच से पानी में गुलने वाले सिलिकेट के कारण संदूषित हो जाते हैं, अतः नमूनों का एकत्रित करने के तुरन्त बाद ही विश्लेषण किया जाना चाहिये। मोम लगे हुए पात्रों का उपयोग करना चाहिये और यह सर्वदा वांछनीय है कि ऐसी जरित बोतलें काम में ली जायं जो की भली प्रकार समुद्री जल से अपेक्षालित की गई हों। टोर्की और बेंथम (1936) ने मोलीब्डेट अभिकर्मक और कोलायडीय सिलिका के बीच अभिक्रिया की परीक्षा की और यह पता लगा कि वर्ण विकास विद्यमान सिलिकोन की मात्रा के समानुपाती नहीं है। विश्लेषण से पूर्व कोलायडीय सिलिका को क्षार से अभिक्रिया कराने पर यथार्थ मान प्राप्त होते हैं। समुद्री जल के साथ परीक्षणों ने यह बता दिया है कि कोलायडीय सिलिका जीर्णन पर शुद्ध विलयन में जा सकती है।

फ्लोरीन महासागरीय समुद्री जल में 1 मि.ग्रा./लीटर से कुछ अधिक सांद्रता में पाई जाती है। यह फ्लोराइड के रूप में विद्यमान है और थोमसन तथा टेलर (Thompson and Taylor, 1933), के कार्य के अनुसार इसका क्लोरीनता के साथ स्थिर अनुपात है। निर्धारण की विधि का इन लेखकों ने वर्णन किया है। समुद्र में फ्लोरीन की भूमिका के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं है।

नाइट्रोजन समुद्री जल में विभिन्न प्रकार के योगिकों में और स्वतंत्र विलीन नाइट्रोजन गैस, दोनों ही रूप में पाई जाती है। चूंकि यह जीवित द्रव्य का आवश्यक अवयव है, नाइट्रोजन जीवों और विविक्त तथा विलीन जैव द्रव्यों दोनों ही में जैवयोगिकों में 0.1 और 10.0 μ ग्राम परमाणु/लीटर मात्रा में पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त यह नाइट्रेट, नाइट्राइट और अमोनिया की तरह विद्यमान है। नेमी प्रेक्षणों में केवल अकार्बनिक नाइट्रोजन यौगिक निधारित किये जाते हैं। नाइट्रेट और नाइट्राइट-नाइट्रोजन वर्ण मापीय मिति से और अमोनिया या तो वर्ण मापीय मिति से (रोबिनसन और वर्थ (Robinson & Wirth, 1934) या आसवन के बाद सूक्ष्म अनुमापन से (क्रोग, 1934) निर्धारित की जाती।

नाइट्रेट विधि जिसका मूल में हारवे (Harvey, 1926) ने वर्णन किया वाटेनबर्ग (Wattenbarg, 1937) द्वारा दी गई है। राकेस्ट्रा (Rakestraw, 1936) और वाटेनबर्ग (Wattenbarg) ने नाइट्राइट निर्धारण की प्रक्रिया का वर्णन किया है। चूंकि अकार्बनिक नाइट्रोजन यौगिक परिवर्तनशील हैं अतः जल के नमूने एकत्रित करने के कुछ ही घंटों में विश्लेषण कर लेना चाहिये। बचाव करने वाले पदार्थो के उपयोग का NH_3 और NO_2 में परिवर्तन नहीं रोक सकना यह बताता है कि शुद्ध रासायनिक परिवर्तन अन्तर्निहित हो सकते हैं। अमोनिया संचयन में विलुप्त हो जाती है और नाइट्राइट कभी २ कम हो जाता है परन्तु कभी २ बढ़ भी जाता है। वह नाइट्रेट जो कि प्रचुर मात्रा में है इस प्रकार के अपेक्षाकृत बड़े परिवर्तन नहीं बताता है।

उनकी अपेक्षाकृत अल्प सांद्रता के कारण और जीवों द्वारा उनके उपयोग के कारण अकार्बनिक नाइट्रोजन यौगिक मात्रा में विस्तृत परास बताते हैं।

नाइट्रेट–N..............0.1–43.0 μg परमाणु/L, 1–600 μg/L

नाइट्राइट–N..............0.01–3.5 μg परमाणु/L, 0.1–50 μg L

अमोनिया–N.............0.35–3.5 μg परमाणु/L, 5–50 μg/L

महासागर में नाइट्रेट के वितरण का गहन अध्ययन किया जा चुका है और किया जा रहा है, चूंकि यह पादप प्लवक का उत्पादन सीमित कर सकता है जब कि वह पृष्ठ तहों में मिनिमल मात्रा में रह जाय। सैकड़ों मीटर की गहराई पर नाइट्रेट -नाइट्रोजन प्राय: अधःस्थल जल उच्चिष्ट बताता है। नाइट्राइट-नाइट्रोजन का अजीब वितरण है और प्रायः यह थर्मोक्लाइन में या उससे ऊपर अपेक्षाकृत पतले स्तर में पाई जाती है। अमोनिया के वितरण के विषय में कम ज्ञान है चूंकि यह इतनी तत्परता से नहीं नापी जा सकती जितने कि नाइट्रोजन के अन्य अकार्बनिक यौगिक परन्तु वस्तुत: यह सारे जल स्तम्भ में एक समान सी है।

नाइट्रोजन यौगिक समुद्र में नदियों द्वारा तथा अवक्षेपण द्वारा ले जाये जाते हैं। इनका अधिकतर भाग वायुमण्डल में विद्युत विसर्जन से यौगिकीकृत हुआ माना जाता है। सम्भवत: समुद्र में यौगिकीकृत नाइट्रोजन का कुछ भाग स्वतंत्र नाइट्रोजन के रूप में निकलता है और पुन: वायुमण्डल को लौटा दिया जाता है। पैंदे के अवसादों में प्रतिरोधक जैव मलवानिर्मित पदार्थों में जैव नाइट्रोजन का कुछ प्रतिशत होता है और इसका कुछ भाग सदैव के लिये पानी से हट जाता है चूंकि यह सब प्रकार के अवसादों अर्वाचीन अथवा जीवाश्म दोनों ही में पाया जाता है चूंकि जैव पदार्थों में कार्बन: नाइट्रोजन अनुपात अपेक्षाकृत स्थिर है जैव नाइट्रोजन प्रायः समुद्री अवसादों और जल में भी जैव पदार्थों की मात्रा के माप की तरह काम में ली जाती है। नाइट्रोजन यौगिकों का वितरण और नाइट्रोजन साइकिल का वर्णन अध्याय VII और XVIII में किया गया है।

ऐलुमिनियम समुद्री पानी में बहुत कम मात्रा में होता है। **कोलायडीय मृतिका** कणों में जो कि समुद्र में आते है, बहुत बड़ी मात्र में ऐलुमिनियम होता है, इसलिये किनारे के पास एकत्रित किये गये जल के नमूनों में ऐलुमिनियम पाया जा सकता है। परन्तु यह सब आवश्यक रूप से विलियन में नहीं है। सारणी 36 में दिये गये मान हेन्डलर और थोमसन (Haendler & Thompson, 1939) द्वारा प्रतिवेदित औसत मात्रा है। उनकी मात्रा 0.006 से 0.065 मि.ग्रा. परमाणु /L (0.16 से 1.8 मि.ग्रा /L की परास में रहती है और उसका औसत मान 0.02 मि.ग्रा. परमाणु /L (0.54 मि.ग्रा. /L) रहता है।

यद्यपि आरंभिक कार्यकर्ता (थोमसन और रोबिनसन, Thompson & Robinson 1932) **रुबिडियम** का पता नहीं लगा सके थे परन्तु गोल्डस्मिड्ट (Goldschmidt 1937) ने लगभग 0.002 मि. ग्रा. परमाणु /L (0.2 मि.ग्रा. /L) का मान प्रतिवेदित किया है। थोमस और थोमसन (Thomas & Thompson 1933) ने **लीथियम** अंश का परीक्षण किया है। उन्होंने इसका मान 0.014 मि.ग्रा. परमाणु /L (0.1 मि.ग्रि. /L) निकाला है।

फॉस्फोरस जो कि समुद्र में फ़ॉस्फ़ेट आयन की तरह विद्यमान है, जीवित जीवों का दूसरा आवश्यक अवयव है तथा समुद्र में इसका वितरण काफी हद तक जैविक अभिकरणों द्वारा प्रभावित होता है। नाइट्रोजन और सिलीकोन यौगिकों के अलावा फ़ॉस्फेट-फॉसफोरस उन पदार्थों में से माना गया है जो वनस्पति की उत्पति को सीमित करदे। अकार्बनिक फॉस्फोरस की सांद्रता वस्तुत: पृष्ठ तहों के लिये शून्य से लेकर अव:स्थल तहों के लिये लगभग 0.003 मि.ग्रा. परमाणु /L (0.090 मि.ग्रा. /L) तक परिवर्तित होती है। ये मान लवण त्रुटि से शुद्ध किये गये हैं। प्राय: नाइट्रेट नाइट्रोजन के वितरण की तरह इसमें भी अक्सर एक अध:स्थल उच्चिष्ट होता है। पृष्ठ तहों से पादप प्लवक द्वारा हटाया गया फॉस्फोरस जीवों की मृत्यु और अपघटन पर अधिकांश में विलयन में लौटा दिया जाता है। यह नदियों द्वारा पूरित किया जाता है और कुछ समुद्र से हटा लिया जाता है चूंकि अल्पमात्रा में यह अधिकांश समुद्री अवसादों में पाया जाता है। कतिपय छिछले क्षेत्रों में फॉस्फेटी संग्रन्थन पाये जाते हैं जिनमें कि फॉस्फोरस की उच्च सांद्रता होती है। इन संग्रन्थियों के उद्गम का तरीका अब तक ज्ञात नहीं है। यह सुझाया गया है कि कई क्षेत्रों में जल ट्राइकैल्सियम फॉस्फेट से अति संतृप्त होता है, इसलिये वह अकार्बनिक रीति से जमा हो जाता है (डाइट्ज, एमरी, और शेपर्ड, Dietz, Emery & Shepard 1942)।

फॉस्फेट-फॉस्फोरस वर्णमापीमिति से निर्धारित किया जाता है। यह विधि रोबिनसन और विर्थ (Robinson & Wirth 1935) और वाटेनबर्ग (Wattenberg 1937) द्वारा वर्णित की गई है। कूपर (Cooper 1938 a) ने लवण त्रुटि की मात्रा का विवेचन किया है। फॉस्फेट विश्लेषण नैमिक परीक्षणों की तरह किये जाते हैं और महासागरों में फॉस्फेट के वितरण का हमारा ज्ञान भली प्रकार व्यापक है। विवक्त और विलीन जैविक फॉस्फोरस के रूप में विद्यमान फॉस्फोरस की मात्रा के विषय में जो कुछ संकीर्ण ज्ञान हमारा है, उसका समुद्र में फॉस्फोरस चक्र के सम्बन्ध में अध्याय VII में विवेचन किया जायगा।

बेरीयम की मात्रा समुद्र में गोल्ड्स्मिड्ट (Goldschmidt 1937) द्वारा 0.0004 मि. ग्रा./L (0.05 मि. ग्रा./L) प्रतिवेदित की गई है। यह मान थोमसन और रोबिनसन (Thompson & Robinson 1932) द्वारा प्रतिवेदित मान से कम है।

बेरियम समुद्री जीवों में पाया जाता है और यह अधिकतर समुद्री अवसादों का अवयव है। कतिपय इलाकों में निक्षेपों में विशाल मात्रा में बेरियम सल्फेट संग्रन्थन और ग्रंथिका के रूप में होता है। इन संरचनाओं के बनने की प्रणाली अभी तक समझ से बाहर है।

मनुष्यों और स्थलीय जानवरों के कार्य-विज्ञान में महत्वपूर्ण भूमिका के कारण समुद्र में आयोडीन के वितरण और सांद्रता पर काफी ध्यान आकर्षित हुआ है। समुद्री उत्पादन आयोडीन-सम्पन्न-खुराक के महत्वपूर्ण श्रोत हैं। जिस रूप में आयोडीन समुद्री पानी में पाई जाती है वह अब तक भी साफ तौर पर नहीं समझा जा सका है परन्तु कम से कम उसका कुछ भाग आयोडीन और आयोडेट की तरह विद्यमान है। यह काफी अंश तक समुद्री वनस्पति द्वारा सांद्रित किया जाता है और कई वर्षों तक समुद्री घास-पात व्यवसायिक उत्पादन के श्रोत के रूप में प्रयुक्त हुआ है। समुद्री जल में और समुद्री जीवों में आयोडीन के वितरण और निर्धारण का क्लोस (Closs, 1931) और राइच (Reith, 1930) ने विवेचन किया है।

समुद्री जल के आर्सेनिक अंश का परीक्षण रोकेस्ट्रा और लुट्ज (Rakestraw & Lutz, 1933) ने किया है और वो 0.15 से 0.3 μ ग्राम-परमाणु/L (9 से 22μg/L) की परास में इसका मान प्रतिवेदित करते हैं। इस विस्तृत परास का कारण यह है कि जीव फ़ॉस्फोरस के स्थान पर आर्सेनिक का उपयोग कर सकते हैं। यह कई समुद्री रूपों के उत्तकों के अवयव के रूप में जाना जाता है। जिस यथावत रूप में आर्सेनिक समुद्री पानी में होता है वह अब तक अज्ञात है।

लोहा वनस्पति का अनिवार्य अवयव है और यह उन पदार्थों में माना गया है जो कि समुद्र में वनस्पति उत्पादन सीमित कर दे। परीक्षण बताते हैं कि कम से कम लोहे का कुछ भाग वास्तविक विलयन के रूप में अनुपस्थित है चूंकि यह परानिस्यन्दन द्वारा हटाया जा सकता है। कूपर (1937 b) ने यह बतलाया है कि फेरस और फेरिक लवणों के रूप में वास्तविक विलयन में लोहे की मात्रा 2μg/L से कम है जब कि तमाम विद्यमान लोहा उससे 10 गुना अधिक है। प्लवक में विद्यमान मात्रा जल के कुल लोहे की मात्रा का 16% तक हो सकती है। हारवे (1937) का विचार है कि डायटम कोलायडीय लोहे को अवशोषित कर उपयोग में लेने में समर्थ होता है। लोहा समुद्र में अपेक्षाकृत भारी मात्रा में कोलायडीय मृतिका कणों में लाया जाता है फलतः लोहे की विचारणीय मात्रा समुद्री अवसादों में पाई जाती है। कई दृष्टान्तों में अवसादों का लोह अंश आशा से भी अधिक होना, यह बताता है कि लोहा भौतिक, रासायनिक और जैविक अभिकरणों द्वारा जोड़ा जाता है। अभितट क्षेत्रों में पूर्ति के स्त्रोत के समीप कुल लोह अंश खुले महासागरों में पाये जाने वाले अंश से कभी २ अधिक होता है। विभिन्न रूपों में लोहे के निर्धारण की विधियों का

थोमसन और ब्रेमनर (Thompson & Bremner, 1935a और b) कूपर तथा राकेस्ट्रा (Cooper & Rakestraw, 1935) मानके और बीच (Mahnke & (Beach, 1936) ने वर्णन किया है।

मैंगनीज़ वस्तुतः समुद्री जीवों द्वारा सांद्रित किया जाता है। थोमसन और विलसन (Thompson & Wilson) (1935) ने 0.02 और 0.2 मि. ग्रा. परमाणु /L (1 और 10 मि. ग्रा./L) के बीच मान प्रतिवेदित किये हैं। गोल्ड्स्मिड्ट (Goldschmidt, 1937) द्वारा उद्‌धृत मान 4 मि. ग्रा./L है। मैंगनीज़ ग्रंथिकाओं के कारण जो कि विस्तृत रूप से विशेष प्रकार के समुद्री अवसादों में विशेष करके प्रशान्त महासागर में पाई पाती हैं, मैंगनीज़ में रूचि जागृत हुई है।

समुद्री जल में विद्यमान तांबे की मात्रा संम्भवतः 0.02 और 0.2μg परमाणु/L (1 से 10μg/L) के बीच रहती है (मार्कस् 1938, वाटेन बर्ग, 1938)। तांबा कई समुद्री जीवों का आवश्यक अवयव है और यह सीप के जीवन वृत्त का एक घटक माना जाता है। चूंकि पानी का अपेक्षाकृत उच्च ताम्र अंश ही लार्वा के यथावत विकास के लिये वस्तुतः आवश्यक है।

समुद्री पानी में रेडियोधर्मी तत्वों के अंश का विषय अधिक रोचक है चूंकि आग्नेय चट्टानों की अपेक्षा गहरे समुद्री अवसादों में रेडियम की प्रचुरता है तथा यह माना जाता है कि रेडियम की प्रचुरता पानी से रेडियम अथवा उसके पूर्वगामी तत्वों के अवक्षेपण के कारण होनी चाहिये। समुद्री पानी के रेडियम अंश का कई अन्वेषकों द्वारा विभिन्न प्रविधियों से अध्ययन किया जा चुका है परन्तु केवल अर्वाचीन काल में ही विधियों को विश्वसनीय परिणाम देने योग्य यथेष्ट रूप में परिष्कृत किया गया है। इवान्स (Evans), किप (Kip) और मोबर्ग (Moberg) (1938) तथा पीटरसन और रोना (Pettersson & Rona) फोयन इत्यादि (1939) के अध्ययन यह बताते हैं कि रेडोन प्रसर्जन प्रविधि द्वारा लगभग 35‰ की लवणता के समुद्री पानी में मापा गया रेडियम अंश लगभग 0.2 से 3×10^{-13} ‰ के बीच परिवर्तित होता है। कम मान पृष्ठ तहों में पाया जाता है और यह कहा जाता है कि जीव इस तत्व के वर्णात्मक हटाव के लिये उत्तरदायी है। कार्यकर्ताओं के दोनों वर्गों ने यह पाया है कि जीव अपने मुलायम ऊतकों में रेडियम को लगभग सौ गुना सांद्रित करते हैं। चूर्णमय ढाँचे जल की अपेक्षा में रेडियम : कैल्सियम अनुपात में वृद्धि बताते हैं। उपरोक्त उच्चतम मान यथा 3.0×10^{-13}, अवसादों से स्पर्शित पानी में पाया गया था (इवान्स्, किप और मोबर्ग, 1938) और प्रायः अधिक गहरे पानी का रेडियम अंश लगभग 1×10^{-13} ‰ है।

पेटरसन और उसके सहकर्मियों (फोयन, इत्यादि Foyn et al. 1938) ने रेडियम के पूर्वगामी तत्वों का अन्वेषण करने के महत्व पर बल दिया है चूँकि इस तत्व का अर्ध जीवनकाल अपेक्षाकृत कम है। यह केवल 1690 वर्ष है। इन तत्वों में से यूरेनियम और आयोनियम सम्भवतया सर्वाधिक महत्वपूर्ण है परन्तु अब तक केवल **यूरेनियम** का ही परीक्षण किया गया है। कारलिक (Karlik) (फोयन इत्यादि) ने महासागरों के विभिन्न भागों से एकत्रित कई नमूनों का विश्लेषण किया है और महासागरीय पानी के लिये 1.5×10^{-6} ‰ का औसत मान प्राप्त किया है। पृष्ठ जलों में अधिक गहराई वाले जलों से कुछ कम अंश होता है परन्तु कार्लिक (Karlik) इस दत्त सामग्री को किसी प्रकार का भेदमूलक हटाव सिद्ध करने के लिये यथेष्ट नहीं मानता। वाल्टिक (Baltic) समुद्र के तनुजल के अध्ययन ने यह बताया है कि यूरेनियम अंश लवणता का फलन है।

फोयन और रोना (Foyn & Rona) (फोयन इत्यादि) ने समुद्री पानी में **थोरियम** के लिये खोज की है परन्तु सर्वाधिक परिष्कृत विधियों से भी उसका पता नहीं लगा सके हैं। बहुत बड़े नमूनों का परीक्षण करने के बाद उन्होंने इस तत्व के लिये 0.5×10^{-6} ‰ की ऊपरी सीमा निर्धारित की है। पुरानी और वस्तुतः कम यथार्थ विधियों से ऊँचा मान प्राप्त हुआ है।

समुद्री अवसादों का रेडियम अंश और रेडियम तथा उसके पूर्वगामियों के निक्षेप से सम्बन्धित सिद्धान्त समुद्री अवसादन के अध्याय में विवेचित किये गये हैं।

कृत्रिम समुद्री जल बनाना

इस प्रकार के विलयन तैयार करना असम्भव है जो यथावत रूप में समुद्री जल के गुणधर्मो को दुहरा सके चूँकि (1) जिस रूप में समुद्री जल में प्रस्तुत तत्व होते हैं वे आयन (लवण) सर्वदा ज्ञात नहीं होते हैं। (2) वे तत्व जो समुद्री जल में अल्पमात्रा में पाये जाते हैं वे दूसरे यौगिकों में संदूषण के रूप में इतनी मात्रा में होते हैं जो उनकी मिलाने वाली मात्रा से कहीं अधिक होती है। (3) कई लवण जो कि काफी मात्रा में मिलाये जाने चाहिये आर्द्रता ग्राही होते हैं या उनमें मणिभीकरण का जल होता है इसलिये उन्हें यथार्थ मात्रा में तोलना कठिन होता है। इन लवणों के सांद्र विलयन तैयार कर, उनकी सांद्रता रासायनिक विश्लेषण से ज्ञात कर और विलयन का आवश्यक आयतन मिलाकर बाद वाली कठिनाई आंशिक रूप में दूर की जा सकती है।

यद्यपि समुद्री जल की तमाम भौतिक और रासायनिक गुणधर्मो को निरुपित करने वाले विलयन बनाना बड़ा रुचिकर होगा फिर भी ऐसा करना प्रायः आवश्यक नहीं है। कतिपय भौतिक और रासायनिक गुण धर्मों के अध्ययन में केवल अधिक प्रचुर आयनों को विलयन में मिलाना यथेष्ट होगा। दूसरे दृष्टान्तों में उदाहरण के

लिये जब रासायनिक विधियां मानकित की जाती हों तब केवल एक तत्व या आयन यथार्थ रूप में ज्ञात होना चाहिये और अन्य आयन सन्निकटता से। साथ ही समुद्री वनस्पति के साथ प्रयोगों में व्रहत तत्वों को निकटता से नियंत्रित करने की आवश्यकता नहीं है परन्तु साधारणतया जैविक रूप से आवश्यक तत्वों की, जो कि प्राय: अल्प मात्रा में विद्यमान है, सांद्रता जानना आवश्यक होगा। यदि सम्भव हो तो भौतिक और जैविक अध्ययन में सर्वदा प्राकृतिक समुद्रीजल काम में लेना चाहिये। परन्तु दूसरी स्थिति में कभी २ जल को कतिपय वनस्पति पोषकों से प्रचुर करना वांछित होता है (6.8)। रोजर्स (Rogers, 1938) ने विभिन्न उपरान्तरित विलयनों का विवेचन किया है जो कि समुद्री जानवरों पर प्रयोग के काम में आते हैं।

सारणी 37 में समुद्री जल की संविरचना के सन्निकट विलयन तैयार करने के तीन प्रस्तावित सूत्र दिये गये हैं। इनको 19.00‰ क्लोरीनता का विलयन उत्पन्न करने के लिये समंजित किया गया है। मेक्लेन्डोन इत्यादि (McClendon et.al, 1917) के योग में, जिसको कि काफी विस्तृत रूप से काम में लिया गया है समुद्री वनस्पति के लिये आवश्यक नाइट्रोजन, फॉस्फ़ोरस और सिलिकन होता है। इसके अतिरिक्त और तत्वों की भी आवश्यकता हो सकती है परन्तु सम्भवत: वे सर्वदा संदूषण के रूप में विद्यमान रहते हैं।

सारणी 37

कृत्रिम समुद्री जल के लिये सूत्र

(Cl = 19.00‰)

McClendon *et al* (1917)		Brujewicz (Subow, 1931)		Lyman & Fleming (1940)	
लवण	g/kg	लवण	g/kg	लवण	g/kg
NaCl	26.726	NaCl	26.518	NaCl	23.476
$MgCl_2$	2.260	$MgCl_2$	2.447	$MgCl_2$	4.981
$MgSO_4$	3.248	$MgSO_4$	3.305	Na_2SO_4	3.917
$CaCl_2$	1.153	$CaCl_2$	1.141	$CaCl_2$	1.102
KCl	0.721	KCl	0.725	KCl	0.664
$NaHCo_3$	0.198	$NaHCo_3$	0.202	$NaHCo_3$	0.192
NaBr	0.058	NaBr	0.083	KBr	0.096
H_3BO_3	0.058			H_3Bo_3	0.026
Na_2SiO_3	0.0024			$SrCl_2$	0.024
$Na_2Si_4O_9$	0.0015			NaF	0.003
H_3PO_4	0.0002				
Al_2Cl_6	0.013				
NH_3	0.002				
$LiNO_3$	0.0013				
योग	34.4406		34.421		34.481
जल सहित	1,000.0000	जल सहित	1,000.000	जल सहित	1,000.000

ब्रूजेविक्ज (Brujewicz) (सुबो Subow 1931) का तथा लैमन और फ्लेमिंग (Lyman & Fleming, 1940) के सूत्र में केवल वृहत तत्व हैं। अन्त में बताया गया योग सारणी 35 में दिये गये समुद्री जल से सम्बन्धित है। दूसरे सूत्र इस अध्याय के पहले के परिच्छेदों में दर्शित संविरचना के अनुरूप समायोजित नहीं किये गये हैं। तमाम स्थितियों में अभिकर्मकों की संदूषण के लिये परीक्षा की जानी चाहिये और यदि आवश्यकता हो तो उन्हें शुद्ध करना चाहिये।

समुद्री जल में विलीन गैसें

तमाम वायुमण्डलीय गैसें समुद्री जल में विलयन में पाई जाती हैं। वायु में सर्वाधिक प्रचुर गैसें आक्सीजन और नाइट्रोजन के अतिरिक्त समुद्री जल में कार्बनडाइ-ऑक्साइड विशाल मात्रा में विद्यमान है; मुख्यतः कार्बोनेट और बाई कार्बोनेट की तरह संयोजन में। विरली गैसों में अमोनिया, आर्गन, हीलियम और निऑन समुद्री जल में प्रतिवेदित की गई हैं और हाइड्रोजन निसंदेह बहुत कम मात्रा में विद्यमान है। विलीन आक्सीजन की अनुपस्थिति में हाइड्रोजन सल्फाइड विद्यमान हो सकती है और यह सम्भव है कि अप्रवाही जल में सड़ान कारी अपघटन के अन्य उत्पाद जैसे कि मिथेन हो सकती है।

जैव प्रक्रियाओं में उसके महत्व के कारण महासागर में विलीन ऑक्सीजन के वितरण का विस्तृत रूप से परीक्षण किया गया है। जल के जैव वृत्त के संकेतक होने के अलावा गहरे जल में ऑक्सीजन के वितरण का व्यापक लक्षण धाराओं के और मिश्रण प्रक्रियाओं के अध्ययन में सहायक है। कार्बनडाइऑक्साइड का वितरण भी समान रूप से जैविक महत्व का है। इसका विवेचन (6.9) से आरम्भ होता है। चूंकि नाइट्रोजन वस्तुतः रासायनिक रूप से अक्रिय है इसका अधिक विस्तार के साथ अध्ययन नहीं किया गया है। आरगन भी अक्रिय है और कभी नाइट्रोजन के साथ सम्मिलित करली जाती है जब कि विलीन गैसें गैस-मापीय विधि से निर्धारित की जाती हैं। हीलियम और निऑन की उपस्थिति राकेस्ट्रा, हेरिक और यूरे (Rakestraw, Herrick & Urry, 1939) द्वारा प्रतिपादित की जा चुकी है।

विलीन गैसों का निर्धारण

प्रायः विलीन ऑक्सीजन अंश विन्कलर (Winkler) विधि से निर्धारित किया जाता है जो कि विलीन ऑक्सीजन द्वारा मैंगनीस हाइड्रोऑक्साइड के ऑक्सीकरण पर आधारित है। जब अम्ल का योग किया जाता है तब ऑक्सीकृत मैंगनीज पौटेशियम आयोडाइड के साथ क्रिया करता है और (मूल रूप में विलीन ऑक्सीजन अंश की समतुल्य मात्रा में) आयोडीन को स्वतंत्र करता है जो सोडियम थायोसल्फेट के साथ अनुमापन से निर्धारित किया जाता है। यदि जल के नमूनों और अभिकर्मकों को

काम में लेते समय कुछ पूर्वावधान प्रेक्षित किये जायं तो विंकलर विधि अत्यन्त सरल है (थोमसन और रोबिनसन, Thompson & Robinson, 1939) कार्बन डाइऑक्साइड के निर्धारण से सम्बन्धित समस्याओं का (6.10) पर विवेचन किया गया है।

विलीन नाइट्रोजन सीधी रासायनिक विधियों से निर्धारित नहीं की जा सकती इसलिये गैसमापीय प्रविधि काम में लेनी पड़ती है। साधारणतया समुद्री जल के नमूने को अम्लीकृत किया जाता है और तमाम गैसें उसे उबालकर अथवा निर्वात कर वाहर निकाल दी जाती है। तव कार्बनडाइआक्साइड क्षार में और ऑक्सीजन क्षारीय पैरोगलोल में अवशोषित कर दी जाती है। बची हुई गैस कभी कभी "वायुमण्डलीय नाइट्रोजन" मानी जाती है यद्यपि वास्तव में उसके साथ मिली हुई दूसरी गैसें होती है, मुख्यत: आरगन। राकेस्ट्रा और एमेल (Rakestraw & Emmel, 1937) ने समुद्री जल के आक्सीजन और नाइट्रोजन अंश निकालने की विधि विकसित की। इसमें पहले गैसें वाहर निकाल ली जाती हैं और फिर कार्बनडाइऑक्साइड को पृथक कर लिया जाता है तब ऑक्सीजन को फॉसफोरस पर और नाइट्रोजन को पिघले हुए लीथियम पर अवशोपित कर लिया जाता है। इस प्रकार निर्धारित ऑक्सीजन अंश विंकलर (Winkler) विश्लेषण से मिलता है। संतृप्त जल नमूनों पर नाइट्रोजन निर्धारण फोक्स (Fox, 1907) के अनुसार संतृप्त मान से लगातार कम मान बताते हैं। आगे के अध्ययन (राकेस्ट्रा और एमेल 1934b) यह बताते हैं कि फोक्स की (Fox's) सारणी कुछ त्रुटी पूर्ण है। नाइट्रोजन के निकालने के बाद बची हुई गैसें "आरगन" मान ली जाती हैं।

हाइड्रोजन सल्फाइड की उपस्थिति उसकी लाक्षणिक गंध से पहचानी जाती है उसके निर्धारण की एक विधि गार्डर (Gaarder, 1916) द्वारा वर्णित की गई है। यद्यपि आम तौर पर यह हाइड्रोजन सल्फाइड कही जाती है फिर भी कम से कम इसका कुछ भाग स्वतंत्र गैस के रूप में नहीं वरन किसी क्षारक (वेस) के सल्फाइड या बाई सल्फाइड के रूप में होगा। कुछ कुछ कार्वनडाइआक्साइड पद्धति से तुलनीय हाइड्रोजन सल्फाइड पद्धति भी होनी चाहिये परन्तु इसकी अभी जांच नहीं हुई है।

अमोनिया के निर्धारण का विवेचन नाइट्रोजन यौगिकों पर विचार करने वाले परिच्छेद में किया गया है।

विलीन गैसों की सांद्रता प्रतिवेदित करने के लिये प्रयुक्त इकाइयें हैं मि.ग्रा. परमाणु/ली. या (मानक ताप और दाव पर गैस मिली./लीटर)।

कुछ स्थितियों में मानक सूखे वायुमण्डल के साथ संतुलन में उसी ताप और लवणता के पानी की तुलना में सांद्रता की अधिकता अथवा न्यूनता जानना रुचिकर होता है। ऑक्सीजन और नाइट्रोजन के लिये सांद्रता मान सारणी 38 और 39 में

दिये हुए हैं। यदि सांद्रता मान ज्ञात हो तो प्रतिशत सांद्रता गणित की जा सकती है। कुछ समस्याओं में दिए हुए जल के नमूने में विलीन गैसों का आंशिक दाव जानना वांछनीय होता है। इन मानों की गणना करने के लिये आवश्यक घटकों का विवेचन (6.11) पर किया गया है।

सारणी 38

समुद्री जल में ऑक्सीजन का संतृप्त मान (मि ली/ली)*
सामान्य शुष्क वायुण्डल से
(Fox, 1907)

क्लोरीनता (‰) / लवणता (‰) / ताप °से. ग्रे.	15 27.11	16 28.91	17 30.72	18 32.52	19 34.33	20 36.11
–2	9.01	8.89	8.76	8.64	8.52	8.39
0	8.55	8.43	8.32	8.20	8.08	7.97
5	7.56	7.46	7.36	7.26	7.16	7.07
10	6.77	6.69	6.60	6.52	6.44	6 35
15	6.14	6.07	6.00	5.93	5.86	5.79
20	5.63	5.56	5.50	5.44	5.38	5.31
25	5.17	5.12	5 06	5.00	4.95	4.86
30	4.74	4.68	4.63	4.58	4.52	4.46

*ऑक्सीजन का मि. ग्रा.—परमाणु प्रतिलीटर=0.08931×मि.ली./लीटर

सारणी 39

समुद्री जल में नाइट्रोजन का संतृप्त मान (मि ली. प्रति लीटर)*
मानक शुष्क वायुमण्डल से
(Rakestraw and Emmel, 1938b)

क्लोरीनता (‰) / लवणता (‰) / ताप °से. ग्रे.	15 27.11	16 28.91	17 30.72	18 32.52	19 34.33	20 36.13	21 37.94
0	15.22	15.02	14.82	14.61	14.40	14.21	14.01
5	13.43	13.26	13.10	12.94	12.78	12.62	12.45
10	12.15	12.00	11.86	11.71	11.56	11.42	11.27
15	11.04	10.92	10.79	10.66	10 53	10.39	10.26
20	10.08	9.98	9 87	9.76	9.65	9.54	9.43
25	9.30	9.21	9.11	9 02	8.92	8.82	8.73
28	8.89	8.84	8.72	8.62	8 53	8.44	8.35

*नाइट्रोजन का मि.ग्रा. परमाणु प्रति लीटर=0.08929×मि.ली. प्रति लीटर

समुद्र में विलीन ऑक्सीजन शून्य और 0.75 मि. ग्रा.—परमाणु/लीटर (लगभग 8.5 मिली./लीटर) के बीच **परिवर्तित** होती है। यद्यपि कम ताप और घने प्रकाश संश्लेषण के क्षेत्रों में यह अंश इस ऊपरी सीमा से बढ़ सकता है। नाइट्रोजन जो कि वस्तुत: जैव प्रक्रियाओं से अप्रभावित है 0.75 और 1.3 मि.ग्रा. परमाणु/लीटर से (8.4 और 14.5 मिली/लीटर) के बीच परिवर्तित होती है। महासागरीय जल में सकल कार्बनडाइऑक्साइड लगभग 1.5 और 2.5 मि. ग्रा. परमाणु कार्बन/लीटर (34 और 56 मिली/लीटर) के बीच परिवर्तित होती है। "आरगन" 0.2 और 0.4 मिली/लीटर के बीच परिवर्तित होती है और समुद्री जल में हीलियम और निऑन का अंश लगभग 1.7×10^{-4} मिली/लीटर है। बाद के मान वस्तुत: सान्द्रता मान प्रतिदर्शित करते हैं। हाइड्रोजन सल्फाइड जो कि जल में अपवादी स्थितियों में होती है, 1.0 मिली ग्रा. परमाणु गन्धक/लीटर (22 मिली/लीटर) से अधिक मात्रा में हो सकती है। (स्ट्रोम, Strom, 1936)

विलीन गैसों के वितरण को नियंत्रित करने वाले कारक : निम्नलिखित सामान्य कारक महासागरों में विलीन गैसों के वितरण को नियंत्रित करते हैं। (1) ताप और लवणता जो कि सान्द्रता निर्धारित करते हैं जबकि जल पृष्ठ पर है तथा वायु मण्डल से सन्तुलन में है (2) जैव क्रियाएँ जो कि ऑक्सीजन और कार्बन-डाइ-ऑक्साइड की सांद्रता पर काफी प्रभाव डालते हैं। (3) धाराएँ और मिश्रण प्रक्रियाएँ जो कि द्रव्य गति और भंवरीय विसरण के द्वारा जैव क्रियाओं के प्रभाव उपान्तरित करने का प्रयास करती है।

व्यक्तिगत गैसों को छोड़ कर या अवशोषित कर जब तक कि जल ठीक संतृप्त न हो जाय वायुमण्डल से स्पर्शित जल सन्तुलन की दशा में पहुँचने का प्रयास करेगा। यद्यपि स्पर्श का कटिबन्ध बहुत पतला होता है, फिर भी शीतलीकरण, वाष्पीकरण और हवा की क्रियाओं के कारण संवहनी गतियें विचारणीय मोटाई की तह को वायुमण्डल से सन्तुलन में ला सकती है। हेनरी के नियमानुसार किसी द्रव में गैस की सान्द्रता, m, गैस के आंशिक दाब p से और गैस और द्रव के लक्षण से सम्बन्धित है: $m=CsP$ सान्द्रता (अवशोषण) गुणाक Cs का सांख्यिक मान विलयन में गैस की सान्द्रता और उसका दाब व्यक्त करने वाली इकाई पर और गैस के रासायनिक लक्षण तथा जल के ताप तथा लवणता पर निर्भर करता है।

सारणी 40

मानक वायुण्डल की संविरचना

गैस	आयतन अथवा दाव का प्रतिशत	आंशिक दाव, टोर में
नाइट्रोजन...................	78.03	593.02
ऑक्सीजन	20.99	159.54
आरगन.......................	0.94	7.144
कार्बनडाइऑक्साइड...........	0.03	0.228
हाइड्रोजन, नियॉन, हीलियम...	0 01	0.088
	100.00	760.000

जल वाष्प के अपवाद के अलावा व्यावहारिक उद्देश्यों के लिये वायुमण्डल की आपेक्षिक सविरचना स्थिर मान सकते हैं (सारणी 40)। यह कार्बन डाइऑक्साइड के लिये दृढ़ता से लागू नहीं होता, जिसके अपेक्षाकृत आंशिक दाव में अल्प परिवर्तन उसकी विलयन में मात्रा पर और इससे हाइड्रोजन आयन सांद्रता पर और अन्य लक्षणों पर काफी प्रभाव डालते हैं। (6.12) जल वाष्प दाव की परिवर्तनशीलता के कारण सांद्रता हमेशा शुष्क वायुमण्डल से मानक दाव उदाहरण 760 टोरीसेली पर होना मानी जाती है। वायुमण्डलीय दाव में प्राकृतिक विचलन और क्षेत्रीय अन्तर नगण्य माने जाते हैं।

नाइट्रोजन और ऑक्सीजन के समान उन गैसों की विलेयकता, जो पानी के साथ अथवा उसमें विलीन लवणों के साथ रासायनिक क्रिया नहीं करती, ताप और लवणता की वृद्धि के साथ घटती है। विभिन्न लवणता के समुद्री जल में ऑक्सीजन और नाइट्रोजन की विलेयकता ताप की सामान्य परास के लिये फोक्स (Fox 1907, 1909) द्वारा अन्वेशित की गई थी। ऑक्सीजन के लिये फोक्स के मान अभी तक भी मान्य मानक हैं परन्तु नाइट्रोजन के लिये उसके मान राकेस्ट्रा और एमेल (Rakestraw and Emmel 1938b) के मान द्वारा अधिक्रमित किये गये हैं। कार्बनडाइऑक्साइड की विलेयता ऑक्सीजन और नाइट्रोजन की विलेयता से अधिक है चूंकि यह जल के साथ क्रिया करती है। कार्बनडाइऑक्साइड का कुछ भाग स्वतंत्र CO_2 और H_2CO_3 के रूप में विद्यमान रहता है परन्तु समुद्री जल में अधिकतर भाग कार्बोनेट और बाइकार्बोनेट के रूप में रहता है और उसी आंशिक दाव के लिये समुद्री जल का कुल CO_2 अंश आसुत जल अथवा प्राकृत लवण घोलों से अधिक होता है। स्वतंत्र CO_2 और H_2CO_3 का अंश ताप और लवणता की वृद्धि के साथ घटता है। कभी २ आरगन "वायुमण्डलीय नाइट्रोजन" में अन्तर्निहित

होती है और चूंकि उसकी विलेयता नाइट्रोजन से भिन्न होती है अतएव संतृप्तता गुणांक के मान अल्प से उपान्तरित होंगे। समुद्री जल में दूसरी गैसों के विषय में कुछ ज्ञान नहीं है। हालांकि हाइड्रोजन सल्फाइड और अमोनिया दोनों ही बहुत घुलनशील गैसें हैं और उनके संतृप्त मान इनके वितरण में कोई प्रमुख भाग अदा नहीं करते हैं।

सारणी 41 में ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, और कार्बनडाइआक्साइड के संतृप्तता गुणांक (अवशोषण गुणांक) का मान शुद्ध और समुद्री जल में विभिन्न तापों पर दिया गया है। ऑक्सीजन के लिये मान और उसी प्रकार आसुत जल में नाइट्रोजन के मान फोक्स (Fox 1909) से लिए गये हैं। नाइट्रोजन के लिये दूसरे मान राकेस्ट्रा और एमेल (Rakestraw and Emmel 1938b) से लिये गये हैं। कार्बनडाइऑक्साइड के लिये मान (बुच इत्यादि 1932), शून्य क्षारीयता के जल में कुल CO_2 के या समुद्री जल में स्वतंत्र CO_2 और H_2CO_3 के अनुरूप है। यह पाया गया है कि कार्बनडाइ-ऑक्साइड दूसरी गैसों की तुलना में अधिक घुलनशील और ऑक्सीजन लगभग नाइट्रोजन से दुगुनी घुलनशील है।

सारणी 41 से यह पाया जाता है कि आमतौर पर महासागरों में पायी जाने वाली क्लोरीनता की परास के अन्दर ताप, विलेयता को प्रभावित करने वाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुण धर्म हैं। (सारणी 38, 39 भी देखो)

समुद्र में विलीन गैसों के अध्ययन में यह आमतौर पर माना जाता है कि जल कण की कोई भी स्थिति क्यों न हो यह एक समय पृष्ठ पर हवा से संतुलन में रह चुका है। विलीन नाइट्रोजन अंश के अध्ययन में रोकेस्ट्रा और एमेल (Rakestraw and Emmel 1938a) ने यह पाया है कि गहराई का विचार किये बिना पानी वस्तुतः संतृप्त है (मानक वायुमण्डल के संदर्भ में) इसलिये यह मान्यता सही है और यह भी बताता है कि जैव क्रियाएं, जिनमें या तो नाइट्रोजन का यौगिकीकरण होता है या उत्पादन, सार्थक रूप से जल में गैस की सांद्रता पर प्रभाव डालने में यथेष्ठ नहीं हो सकती। चूंकि महासागरों के जल उनके जीवन वृत्त में जब वे पृष्ठ पर थे तब ऑक्सीजन और कार्बनडाइऑक्साइड से संतृप्त हुए मालूम होते हैं, उनके मान (ताप और लवणता से संगणित) और प्रेक्षित अंश में अन्तर उन परिवर्तनों का माप है जोकि जैव अभिकरणों द्वारा प्रभावित हुए हैं। कार्बनडाइऑक्साइड के वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों का विवेचन निम्नलिखित अनुच्छेदों में किया गया है और विलीन ऑक्सीजन के वितरण पर आने वाले अध्यायों में कई स्थानों पर विचार किया जायगा।

सारणी 41

जल में वायुमण्डलीय गैसों के संतृप्तता गुणांक (*Cs*)

760 टोर=1वायुमण्डल से संतुलन में ऑक्सीजन,[a] नाइट्रोजन,[b] तथा कार्बनडाइऑक्साइड[c] की सांद्रता मिली/लीटर तथा मिली ग्राम परमाणु प्रति लीटर

ताप	0°						12°						24°					
	O_2		N_2		CO_2		O_2		N_2		CO_2		O_2		N_2		CO_2	
क्लोरीनता (‰)	मि ली. /ली.	मि ग्रा. प. O/L	मि ली. /ली.	मि ग्रा. प. N/L	मि ली. /ली.	मि ग्रा. प. C/L	मि ली. /ली.	मि ग्रा. प. O/L	मि ली. /ली.	मि ग्रा. प. N/L	मि ली. /ली.	मि ग्रा. प. C/L	मि ली. /ली.	मि ग्रा. प. O/L	मि ली. /ली.	मि ग्रा. प. N/L	मि ली. /ली.	मि ग्रा. प. C/L
0	49.24	4.40	23.00	2.06	1715	77.0	36.75	3.29	17.80	1.59	1118	50.2	29.38	2.62	14.53	1.31	782	35.1
16	40. 1	3.60	15.02	1.73	1489	66.8	30. 6	2.75	11.56	1.33	980	44.0	24. 8	2.22	9.36	1.08	695	31.2
20	38. 0	3.40	14.21	1.64	1438	64.5	29. 1	2.61	10.99	1.26	947	42.5	23. 6	2.12	8.96	1.03	677	30.4

a Fox (1909).

b आसुत जल, Fox (1909) समुद्री जल Rakestraw and Emmel (1938b).

c Buch *et al* (1932), after Bohr. सांद्रताएँ स्वतंत्र CO_2 और H_2CO_3 निरूपित करती हैं ।

कार्बन डाइ ऑक्साइड पद्धति

यद्यपि समुद्री जल में कार्बनडाइऑक्साइड पद्धति से सम्बन्धित विस्तृत साहित्य विद्यमान है परन्तु लगभग 1929 से पहले के प्रकाशन मुख्यतः केवल ऐतिहासिक अभिरुचि के हैं। इनमें अन्तर्निहित समस्याओं के हल केवल कुल कार्बन डाइऑक्साइड तथा उसके समुद्री जल में विद्यमान विभिन्न रूपों के निर्धारण के लिये समुचित विश्लेषणात्मक विधियों के विकास तक ही नहीं वरन हाइड्रोजन आयन सांद्रता के अध्ययन के सिद्धान्त और विधियों तथा भौतिक रासायनिकी में कतिपय सामान्य सिद्धान्तों के विकास तक प्रतिक्षित रहे हैं। आगे आने वाले संक्षिप्त विवेचन में समकालीन सिद्धान्तों के केवल मुख्य लक्षण ही प्रस्तुत किये जायंगे। ये कई उद्देश्यों के लिये यथेष्ट हो सकते हैं परन्तु परीक्षण अभी तक समाप्त नहीं हुए हैं। विश्लेपण की विधियों के अधिक परिष्कृत करने की आवश्यकता है और कई स्थितियों में मौलिक स्थिरांक के मान अधिक यथार्थता से निर्धारित किये जाने चाहिये।

प्रारम्भ में समुद्री जल में कार्बनडाइऑक्साइड का अध्ययन करने वाले परीक्षण कर्ताओं ने उसी प्रकार की विधियों को काम में लेने का प्रयास किया जिस प्रकार की विधियें स्वच्छ जल के लिये प्रत्युक्त की जाती है जहां कि विशेष कर कार्बनडाइऑक्साइड स्वतंत्र कार्बनडाइऑक्साइड के रूप में विद्यमान है जिसे उवाल कर, निर्वात कर, या पानी के अन्दर से कार्बनडाइऑक्साइड रहित हवा के वुल वुले उठा कर, वाहर निकाला जा सकता है। इस प्रकार की विधियों को समुद्री जल के लिये प्रयोग में लेने से अस्थिर और परस्पर विरोधी परिणाम निकले। वाद में यह पाया गया कि सारी कार्बनडाइऑक्साइड वाहर निकालने के लिये जल में कोई दृढ़ अम्ल मिलाना चाहिये इससे यह आशय निकला कि कार्बनडाइऑक्साइड का कम से कम भाग किसी क्षारीय धनात्मक आयन के कार्वोनेट अथवा वाई कार्वोनेट के रूप में विद्यमान है। तव कुल कार्बनडाइऑक्साइड और कार्वोनेट तथा वाईकार्वोनेट आयन के रूप में विद्यमान राशि को निर्धारित करने की विधियां विकसित की गई। अव यह माना जाता है कि CO_2 समुद्री जल में निम्नलिखित रूपों में पाई जाती है। और यह कि किन्हीं दी हुई स्थितियों में सन्तुलन इस प्रकार होगा; CO_2 (विलीन)$\rightleftharpoons H_2CO_3 \rightleftharpoons HCO_3^-$(वाइ कार्वोनेट)$\rightleftharpoons CO_3^-$(कार्वोनेट)।

यदि समुद्री जल में प्रस्तुत गैसें किसी उपयुक्त विधि द्वारा वाहर निकाल दी जाय तो विलीन गैस के रूप में विद्यमान कार्बनडाइऑक्साइड भी निकल जायगी और सन्तुलन विस्थापित हो जायगा जव तक कि वस्तुतः सारी स्वतंत्र CO_2 और कार्वोनिक एसिड निकल जायंगे और सव वाइकार्वोनेट कार्वोनेट में परिवर्तित हो जायंगे। यदि कोई दढ़ अम्ल समुद्री जल में मिलाया जाय तो सन्तुलन स्वतंत्र CO_2 की ओर विस्थापित होगा; फलतः यदि यथेष्ट मात्रा में अम्ल मिलाया जाय तो

सारी CO_2 स्वतंत्र होकर निकलेगी और वह या तो रासायनिक या गैसमापी विधि से निर्धारित की जा सकती है। यदि कोई क्षारीय पदार्थ जैसे कि कॉस्टिक सोडा समुद्री जल में मिलाया जाय तो सन्तुलन कार्बोनेट की तरफ विस्थापित होगा और कार्बोनेट आयन की मात्रा में वृद्धि होगी। यद्यपि स्वतंत्र CO_2 का केवल थोड़ा सा भाग H_2CO_3 बनाने के लिये जलयोजित होता है फिर भी निम्न विवेचन में स्वतंत्र $CO_2+H_2CO_3$ कार्बोनिक एसिड की तरह सम्बोधित किया जायगा और H_2CO_3 लिखा जायगा।

उपरोक्त विवेचन से यह देखा जा सकता है कि समुद्री जल में कुल CO_2, गैसों के अक्रिय घोलों में घुलने के हेनरी के नियम को नहीं मानती। फिर भी वायुमंडल से स्पर्शित समुद्रीजल में कार्बन डाइऑक्साइड का आंशिक दाव हवा में के आंशिक दाव के साथ सन्तुलन कायम करने का प्रयास करेगा। यदि दाव बढ़ा दिया जाय तो विलयन में मात्रा बढ़ेगी और यदि दाव कम किया जाय तो CO_2 की मात्रा कम होगी। एक जल के नमूने में जो कि एक दिये हुए कार्बनडाइऑक्साइड दाव के साथ सन्तुलन में है, विद्यमान राशि कार्बनडाइऑक्साइड से बद्ध क्षार की सांद्रता पर और जल के नमूने के ताप और लवणता पर निर्भर करेगी। यदि ये अवयव स्थिर रखे जांय तो CO_2 का आंशिक दाव जल के कुल कार्बनडाइऑक्साइड अंश के मान के रूप में लिया जा सकता है।

समुद्री जल की हाइड्रोजन आयन सांद्रता (*p*H)। समुद्री जल प्रायः क्षारीय होता है। चूंकि H^+ और OH^- दोनों ही सन्तुलन में हिस्सा लेते हैं इसलिये कार्बन डाइऑक्साइड पद्धति को समझने के लिये इनकी सांद्रता का ज्ञान आवश्यक है, शुद्ध आसुत जल हाइड्रोजन और हाइड्रोऑक्सील आयन में विच्छेदित होता है।

$$H_2O=H^++OH^-$$
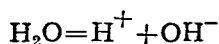
यदि सांद्रतायें रासायनिक तुल्यांक प्रति लीटर में व्यक्त की जाय तो आयनिक गुणन $[H^+]\times[OH^-]$ कुछ कुछ ताप के साथ परिवर्तित होता है परन्तु इसका मान 25°C पर 10^{-14} होता है (6.13)। शुद्ध जल या अन्य किसी विलयन में जिसमें H^+ और OH^- आयन की सांद्रतायें बराबर हों तो वह विलयन उदासीन कहलाता है। यदि H^+ की सांद्रता OH^- की सांद्रता से अधिक हो तो विलयन अम्लीय होगा और यदि कम हो तो क्षारीय। आयनिक गुणन ताप और लवण सांद्रताओं का ज्ञात फलन है, अतएव यदि $[H^+]$ या $[OH^-]$ ज्ञात हो तो दूसरा आसानी से निकाला जा सकता है। हाइड्रोजन आयन की सांद्रता को व्यक्त करने के लिये प्रायः लॉगेरिथ्मीय मापक्रम प्रयुक्त किया जाता है जहां, *p*H नार्मलता यानि तुल्यांकन प्रति लीटर में व्यक्त H^+ की सांद्रता के व्युतक्रम का लघुगणक है;

यह लवण अशुद्धि कहलाती है। सामान्यतः उदासीन लवण संकेतक के आभासित वियोजन स्थिरांक को बढ़ा देते हैं और इस प्रकार कम pH पाठयांक देते हैं। व्यवहार में सकेतक विलयन की सावधानी पूर्वक नियंत्रित राशि जल के नमूनों में मिलाई जाती है और इससे उत्पन्न रंग की या तो उन नलिकाओं के सेट से तुलना की जाती है जिनमें कि सकेतक की समतुल्य राशि ज्ञात pH के विलयन में है या नमूनों का परीक्षण द्विवर्ण मापी द्वारा किया जाय। समुद्री जल के नमूनों के pH मान निर्धारित करने की मान्य वर्ण मापी प्रवधि और लवण अशुद्धि के लिये लगाई जाने वाली शुद्धि तथा ताप के असर का वर्णन बुच (Buch, 1937) और बुच तथा नीनास (Buch and Nynas 1939) ने किया है। कार्बोनिक अम्ल के वियोजन स्थिरांकों पर ताप और दाब के परिवर्तन के प्रभाव के कारण समुद्री जल के नमूनों का मापा हुआ pH मान यथावत pH मान से भिन्न होता है (6.14)। ताप शुद्धि का परिमाण बुच (Buch 1937) द्वारा दिया गया है और pH पर दाब के प्रभाव का अध्ययन बुच और ग्रिपेनबर्ग (Buch and Gripenberg) (देखो बुच इत्यादि 1932) ने किया है।

समुद्र में pH का मान लगभग 7.5 और 8.4 के बीच होता है यानी हाइड्रोजन आयन सांद्रता 32×10^{-9} से 4×10^{-9} प्रति लीटर तक परिवर्तित होती है। उच्चतर pH मान साधारणतया पृष्ठ अथवा उसके समीप पाये जाते हैं। जहां जल वायुमण्डल की CO_2 से संतुलन में है वहां pH का मान 8.1 और 8.3 है परन्तु इससे उच्चतर मान हो सकता है जबकि पौधों की प्रकाश संश्लेशी क्रियाओं ने CO_2 का अंश कम कर दिया हो। यूफोटिक कटिबन्ध के नीचे जल में विलीन ऑक्सीजन के साथ pH का कुछ सम्बन्ध रहता है। ऐसे क्षेत्रों में जहां वस्तुतः सारी ऑक्सीजन खप गई हो और इसके परिणाम स्वरूप जहां कुल CO_2 अधिक है जैसा कि विषुवतीय और उत्तरी प्रशान्त में 800 मीटर के लगभग गहराई पर, वहाँ pH का न्यूनतम मान 7.5 के पास पहुँच जाता है। यह सीमान्त मान है क्योंकि इससे अधिक CO_2 नहीं बनाई जा सकती। न्यूनतम ऑक्सीजन तह से नीचे साधारणतया गहराई के साथ pH के मान में क्रमिक वृद्धि होती है। ज्वार कुंडों खाड़ियों और एस्चुरियों में होने वाली विलक्षण स्थितियों में pH उपरोक्त कथित मान से अधिक होता है। ओर भी तनुकृत जल में और उन एकीकृत द्रोणियों में जहां H_2S बनती है pH का मान 7.0 तक पहुँच सकता है या अम्ल की परास में भी जा सकता है।

क्षारता और कार्बन डाइऑक्साइड घटक

समुद्री जल में स्वतंत्र गैस अथवा बद्ध रूप में विद्यमान कुल कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा, जल में कार्बोनेट यौगिकों को विघटित करने के लिये तीव्र अम्ल डालने के बाद, गैस मापीय विधि से निर्धारित की जा सकती है। इस प्रकार

की विधि का वर्णन ग्रीनवर्ग, मोवर्ग और एलेन (Greenberg, Moberg, and Allen, 1932) ने किया है। कार्वनडाइऑक्साइड के घटक उदाहरण के लिये कार्वोनिक अम्ल (स्वतंत्र CO_2 सहित), वाई कार्वोनेट और कार्वोनेट के रूप में विद्यमान मात्रा—निर्धारित करने के लिये अनुमापन किया जाना चाहिये। एक दिये हुए समुद्री जल के नमूने के लिये *p*H को लगभग 4.5 तक घटाने के लिये आवश्यक तीव्र अम्ल (प्रायः HCl लगभग 0.01 नार्मल) की मात्रा कुल CO_2 से स्वतंत्र होती है। अम्ल की इस मात्रा की आवश्यकता उन दुर्वल अम्लों को स्वतंत्र करने के लिये होती हैं जिनके ऋणायन क्षारकीय धनायनों के साथ वद्ध हो गये हैं। अतएव यह नमूने में विद्यमान केवल दुर्वल अम्लों के ऋणायन की मात्रा का ही नहीं वरन् उनसे संतुलित धनायनों का भी माप है। यह राशि जव पानी के उस आयतन में, जिसका 20°C पर एक लीटर आयतन होता है, दुर्वल अम्लों के आयन स्वतंत्र करने के लिये आवश्यक हाइड्रोजन आयन की मिली समतुल्यांक संख्या (H^+ का मिली ग्राम-परमाणु) के रूप में व्यक्त की जाती है तो क्षारता कहलाती है। यह राशि **अनुमाप्य वेस, अतिरिक्त वेस, अनुमापन क्षारता,** और **वफ़र क्षमता** के नाम से भी सम्वोधित की गई है। भौतिक समुद्री विज्ञान के अन्तर्राष्ट्रीय संघ (1939) द्वारा **क्षारता** पद को मानक पदनाम माना गया है। यह ध्यान देने की वात है कि इस प्रकार परिभाषित पद का हाइड्रोआक्सील आयन सांद्रता से अथवा इस सत्य से कि समुद्री जल सामन्यतः क्षारीय होता है, कोई सम्वन्ध नहीं है।

क्षारता निर्धारित करने की कई विधियां सुझाई गई हैं और इनका वर्णन संक्षेप में थोमसन और रोबिनसन (Thompson and Robinson, 1932) और ग्रिपेनवर्ग (Gripenberg, 1937b) ने किया है। साधारण रूप में वे इन दो में से एक प्रविधि का अनुसरण करते हैं। या तो कार्वनडाइऑक्साइड की उपस्थिति में अनुमापन किया जाता है इस हालत में (end point) अन्त्य विन्दु लगभग 4.5 पर लिया जाता है या कार्वन डाइऑक्साइड को वाहर निकाल दिया जाता है। दूसरी स्थिति में उच्चतर *p*H, लगभग 7.0 प्रयुक्त किया जाता है। जव कार्वन डाइऑक्साइड वाहर निकाल दी जाती है तो अधिक मात्रा में कोई अम्ल मिलाया जाता है, विलयन को CO_2 से रहित करने के लिये उवाला जाता है और तव अतिरिक्त अम्ल अनुमापन से निर्धारित किया जाता है या सीधा नमूने पर मापन किया जा सकता है जिसे अनुमापन के समय क्वथनांक पर रखा जाता है। दूसरी विधि में समुद्री जल के नमूने में अम्ल की ज्ञात मात्रा डाल दी जाती है और तव *p*H निर्धारित किया जाता है (मिट्चिल और राकेस्ट्रा Mitchill and Rakestraw, 1933) इसमें यह अन्तर्निहित है कि सव विधियां क्षारता का वही मान देंगी, परन्तु आवश्यक रूप से यह स्थिति नहीं है और यह आशा की जाती है कि एक मानक विधि निश्चित की जायगी।

क्षारता : का क्लोरीनता से भली प्रकार स्थिर सम्बन्ध है। पृष्ठ जल के लिये क्षारता: क्लोरोसिटी घटक कई कार्यकर्ताओं द्वारा निर्धारित किया गया है और 0.120 के निकट पाया गया है जब कि क्षारता मिली ग्राम-परमाणु में व्यक्त की जाय। विशिष्ट क्षारता का पदनाम कुछ स्थितियों में प्रयुक्त हुआ है यह मि.ग्रा. परमाणु/L में व्यक्त क्षारता में ग्रा./कि.ग्रा. में व्यक्त क्लोरीनता का भाग लगाकर प्राप्त किया जाता है परन्तु इस प्रकार का मिश्रित अनुपात काम में नहीं लेना चाहिये। अधिक गहराई से प्राप्त जल में यह अनुपात ऊपर दिये हुए मान से अधिक हो सकता है और समुद्री तल (पेंदा) के समीप 0.125 की ऊपरी सीमा तक पहुँच जाता है—वाटेनवर्ग (Wattenberg, 1933)। खारे जल में, यदि नदी के जल में बद्ध कार्बोनेट योगिकों का आधिक्य है तो यह अनुपात अत्यधिक बढ़ जाता है। जब क्षारता : क्लोरोसिटी घटक औद्योगिक प्रदूषण के अध्ययन में सूचनांक की तरह काम में लिया जाय तो अप्रदूषित नदी जल से तनुकृत समुद्री जल के नमूनों में इस अनुपात में सांद्रता के साथ होने वाले सामान्य परिवर्तनों को पहले निश्चित कर लिया जाना चाहिये। मोबर्ग और रेवेली (Moberg and Revelle 1937) तथा वाटेन वर्ग (Wattenberg, 1936) के प्रेक्षणों ने यह बता दिया है कि समुद्री जल में गहराई के साथ Ca: *Cl* घटक में वृद्धि क्षारता: *Cl* घटक की वृद्धि के समतुल्य है। यह इंगित करता है कि क्षारता और कैल्सियम में परिवर्तन का उद्गम उभयनिष्ट है, उदाहरणार्थ Ca CO_3 का अवसादन अथवा विलयन। क्षारता : क्लोरोसिटी घटक के क्षेत्रीय परिवर्तन से सम्बन्धित और सामग्री 6.15 पर दी गई है।

चूँकि महासागरीय जल में क्षारता : क्लोरोसिटी घटक में परिवर्तन कैल्सियम: क्लोरोसिटी घटक के अनुरूपी परिवर्तन से सम्बन्धित है अतः क्षारता से जल का कैल्सियम अंश निम्न पद द्वारा संगणित किया जा सकता है :—

$$\text{Ca (mg-atoms/L)} = \frac{\text{क्षारता}}{2} + 0.465 \times \text{क्लोरोसिटी}$$

कैल्सियम के आगणन की यह विधि वाटेनबर्ग द्वारा काम में ली गई है (उदाहरणार्थ Wattenberg, 1936)।

यह देखा जा सकता है कि क्षारता : क्लोरोसिटी घटक की मात्रा 0.1205 वही है जो सारणी 35 में दी हुई है HCO_3^-: *Cl* घटक की है जब कि बाइकार्बोनेट कार्बोनेट के मिली ग्राम परमाणु प्रति लीटर में व्यक्त किया जाता है। इस अभिन्नता का कारण यह है कि सारणी को तैयार करते समय यह मान लिया गया था कि जल का *p*H ऐसा था मानो केवल बाइकार्बोनेट ही विद्यमान हो और इस प्रकार क्षारता के समतुल्य होगा।

समुद्री जल में कार्बन डाईआक्साइड पद्धति के विवेचन में घटकों की सांद्रता आम तौर पर मिली-मोल प्रति लीटर में दी गई है। ये कार्बन की मिली ग्राम-परमाणु प्रति लीटर के रूप में दी हुई सांद्रताओं के संख्यात्मक दृष्टि से समरूप है।

दुर्बल अम्लों के निम्नलिखित तत्वों वाले लवण समुद्र जल में पाये जाने वाले ज्ञात हैं। कार्बन, बोरोन, फ़ॉसफ़ोरस, आर्सेनिक, और सिलिकन। इन लवणों में से क्षारता के परिमाण पर प्रभाव डालने के लिये केवल कार्बोनिक और बोरिक अम्ल के लवण ही यथेष्ट सांद्रता में विद्यमान हैं। वर्तमान स्थिति में हम बोरिक अम्ल को नगण्य मान लेंगे जो क्षारता निर्धारण पर प्रभाव नहीं डालता और जो कार्बोनेट पद्धति में केवल उच्चतर pH पर ही विचारणीय है। तब क्षारता, बाइकार्बोनेट और कार्बोनेट आयन की सांद्रता के माप के रूप में ली जा सकती है और

$$[A] = [HCO_3^-] + 2\ [CO_3^=]$$

यहां कोष्टक में मोलर सांद्रताएँ यानी कार्बन का ग्राम परमाणु प्रति लीटर व्यक्त करते हैं। $[H_2CO_3]$, कास्टिक सोडा के साथ और $[CO_3^=]$ अम्ल के साथ सावधानी पूर्वक नियंत्रित अन्त्य बिन्दु को प्रयुक्त कर अनुमापन से निर्धारित किया जा सकता है। इस विधि का ग्रीनबर्ग मोबर्ग और एलेन (Greenberg, Moberg, and Allen 1932) ने वर्णन किया है। आगे यह बताया गया है कि H_2CO_3 या $CO_3^=$ में से एक की सांद्रता नगण्य होगी जब दूसरा अर्थपूर्ण मात्रा में विद्यमान हो। अतएव हम लिख सकते हैं :—

$$[\Sigma CO_2]=[H_2CO_3]+[HCO_3^-] \text{ और } [A]=[HCO_3^-]$$

या

$$[\Sigma CO_2]=[HCO_3^-]+[CO_3^=] \text{ और } [A]=[HCO_3^-]+2[CO_3^=]$$

इन समीकरणों में नापी हुई राशियों को स्थानापन्न कर दूसरे घटक निकाले जा सकते हैं।

इन विधियों द्वारा किये गये मापों पर आधारित कार्बनडाइऑक्साइड पद्धति के अध्ययन ग्रीन बर्ग, मोबर्ग और एलेन (Greenberg, Moberg and Allen 1932) तथा मोबर्ग, ग्रीनबर्ग, रेवेली, तथा एलेन (Moberg Greenberg, Revelle, and Allen 1934) द्वारा प्रतिवेदित किये गये हैं। चित्र 38 में दक्षिणी केलिफोर्निया के समुद्र तट से दूर किसी स्टेशन पर के कार्बनडाइऑक्साइड घटकों के अनुमापन से और सीधे गैस मापी विधि से गणित कुल कार्बनडाइऑक्साइड के और क्षारता के ऊर्ध्वाधर वितरण वक्र बताये गये है। दोनों विधियों से प्राप्त कुल कार्बनडाइऑक्साइड के मान भली प्रकार से एक दूसरे से मिलते हैं और गहराई के साथ सामान्य रूप से वृद्धि बताते हैं। ऊपरी तहों में $CO_3^=$ की काफी मात्रा है परन्तु यह २०० मीटर पर शून्य हो जाती

है और इस तरह से नीचे H_2CO_3 की मात्रा गहराई के साथ बढ़ती है । क्षारता ऊपरी 200 मीटर के लिये बताई गई है इससे नीचे यह HCO_3^- की मात्रा बताने वाले वक्रों के अनुरूप ही है । गहराई के साथ क्षारता की वृद्धि आंशिक रूप में ऊपरी तहों में $CaCO_3$ के जैविक अवसादन के कारण हो सकती है परन्तु इस क्षेत्र में यह मुख्यत: बढ़ती हुई लवणता से संगणित है ।

अब हम उन नियमों के विवेचन की ओर अग्रसर होते हैं जो विभिन्न कार्बन-डाइऑक्साइड घटकों, क्षारता, और CO_2 के आंशिक दाब के बीच संतुलन नियंत्रित करते हैं । अब तक यह मान लिया गया है कि क्षारता HCO_3^- और $CO_3^=$ आयनों के समतुल्यांकों और उनसे बद्ध धनायनों का माप है परन्तु अब इस संकल्पना को कुछ कुछ उपान्तरित करना आवश्यक है । हाईड्रोजन और हाईड्रोऑक्सील आयन को भी गणना में लेना चाहिये और उच्चतर *p*H's पर बोरिक अम्ल भी । चूंकि बोरिक अम्ल
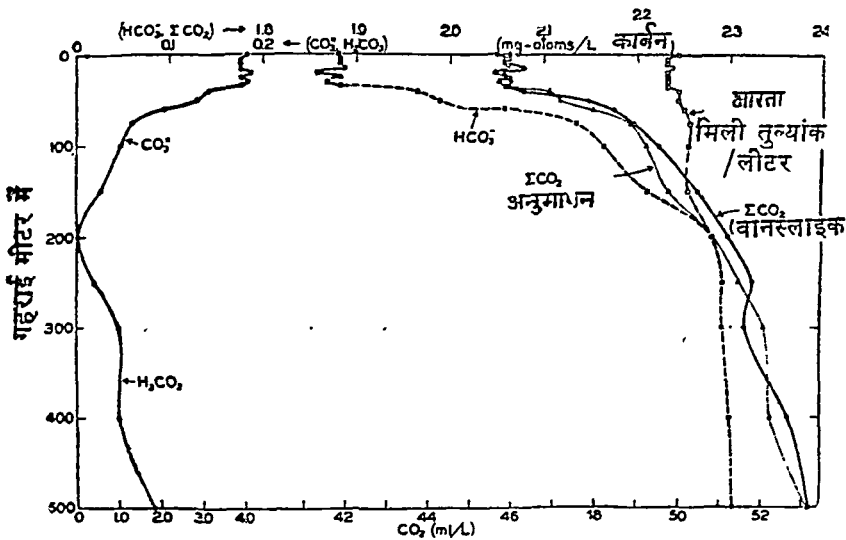
चित्र 38.—दक्षिणी केलीफोर्निया के समुद्र तट से दूर क्षारता और कार्बनडाइआक्साइड घटकों मे ऊर्ध्वाधर वितरण ।

दुर्बल अम्ल है इसलिये पहली वियोजन अवस्था पर ही विचार करना आवश्यक है । जो आयन हमारे उपयोगी हैं उनका संतुलन इस प्रकार लिखा जा सकता है

$$[A]+[H^+]=[HCO_3^-]+2[CO_3^=]+[H_3BO_3^-]+[OH^-]$$
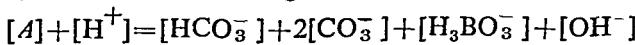
यदि हम कार्बनडाइऑक्साइड घटक से सीधे बद्ध बेस (क्षारता) के अंश को A_{CO_2} द्वारा लक्षित करें तो यह सम्बन्ध इस प्रकार लिखा जा सकता है बुच (Buch 1933a, b)

$$[A_{CO_2}]=[A]-\frac{K'_B \times [\Sigma H_3BO_3]}{[H^+]+K'_B}+[H^+]-\frac{K_w}{[H^+]},$$

यहां सब सांद्रताऐं ग्राम-परमाणु प्रति लीटर में हैं । K'_B, समुद्री जल में होने वाले किसी विशेष ताप और लवणता पर, बोरिक अम्ल का प्रथम दृष्य वियोजन स्थिरांक है और K_w समान स्थितियों में जल का आयनिक सांद्रता गुणन $[H^+] \times [OH^-]$ है । बुच (Buch 1938) के अनुसार समुद्री जल में 20° पर आयनिक गुणन निम्नलिखित समीकरण से संगणित किया जा सकता है ।

$$pK_w = 14.170 - 0.1517 \sqrt[3]{Cl} + 0.0083\ Cl.$$

pK_w प्रति इकाई डिग्री ताप वृद्धि के लिये लगभग 0.035 से कम होता है डोरसी (Dorsey, 1940) । पद pK_w का K_w के साथ वही सम्बन्ध है जो pH का $[H^+]$ के साथ है और यह आयनिक गुणन के व्युत्क्रम का लघुगणक है । यही परम्परा वियोजन स्थिरांकों को व्यक्त करने में प्रयुक्त की जाती है । बोरिक अम्ल की कुल सांद्रता $[\Sigma H_3BO_3]$ क्लोरोसिटी से प्राप्त की जा सकती है ।

$$[\Sigma H_3BO_3] = 0.0221 \times \text{क्लोरोसिटी} \times 10^{-3}$$

बुच के अनुसार बोरिक अम्ल का वियोजन स्थिरांक इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :—

$$pK'_B = 9.22 - 0.123 \sqrt[3]{Cl} - 0.0086\ Cl$$

जैसा कि चित्र 39 से स्पष्ट है उच्चतर pH's, पर A_{CO_2} प्राप्त करने के लिये क्षारता में समुचित संशोधन लगाना पड़ता है । इस चित्र में राशियें मिली समतुल्यांक प्रति लीटर में दी हुई हैं ।

चित्र 39.—हाइड्रोक्साइड बद्ध (A_{OH^-}) तथा बोरेट बद्ध ($A_{H_2BO_3^-}$) क्षारक की सांद्रता, 19.00‰ क्लोरीनता के जल में 20°C के ताप पर के फलन के रूप में

कार्बोनिक अम्ल के प्रथम वियोजन स्थिरांक के लिये समीकरण इस प्रकार है :—

$$\frac{[H^+] \times [HCO_3^-]}{[H_2CO_3]} = K'_1$$

और दूसरे के लिये

$$\frac{[H^+] \times [CO_3^=]}{[HCO_3^-]} = K'_2.$$

यहां कोष्टक मोलर-सांद्रता बताते हैं । निम्निलिखित सम्बन्धों को पुरस्थापित करने से

$$[A_{CO_2}] = [HCO_3^-] + 2[CO_3^=]$$

और $$[\Sigma CO_2] = [H_2CO_3] + [HCO_3^-] + [CO_3^=]$$

उपरोक्त समीकरणों से HCO_3^- और $CO_3^=$ को विलुप्त करना और उन्हें निम्निलिखित रूप में प्राप्त करना संम्भव है

$$\frac{[H^+] \times [A_{CO_2}]}{\left(1 + \frac{2K'_2}{[H^+]} \times [\Sigma CO_2] - \left(1 + \frac{K'_2}{[H^+]}\right) \times [A_{CO_2}]\right.} = K'_1$$

$$\frac{[H^+] \times \left\{\left(1 + \frac{[H^+]}{K_1'}\right) \times [A_{CO_2}] - [\Sigma CO_2]\right\}}{2[\Sigma CO_2] - [A_{CO_2}]} = K'_2$$

K_1' और K_2' के परिमाण निर्धारित करने के लिये व्यापक परीक्षण किये गये हैं। ये अध्ययन बुच, हारवे, वाटेन वर्ग, और ग्रीपेन वर्ग (Buch, Harvey, Wattenberg and Gripenberg, 1932) और मोवर्ग, ग्रीनवर्ग, रेवेली, और एलोन (Moberg, Greenberg, Revelle, and Allen, 1934) ने प्रतिवेदित किये हैं। बुच (Buch) और अन्य लोगों ने अधिक परिष्कृत विधियों और सिद्धान्तों का उपयोग करते हुए इस कार्य का अनुसरण किया है। बुच आदि (Buch *et al*, 1932) के अनुसार,

$$pK'_1 = 6.47-0.188 \sqrt[3]{Cl} \ \ 20°C \text{ पर}$$

ताप के लिये संशोधन निम्निलिखित पदों से संगणित किया जा सकता है।

$$20°C \text{ के समीप } \Delta pK_1' = -0.006\Delta\theta$$
$$5°C \text{ के समीप } \Delta pK_1' = -0.009\Delta\theta$$

मीटर में गहराई dz द्वारा व्यक्त द्रवस्थैतिक दाव का प्रथम वियोजन स्थिरांक पर प्रभाव इस प्रकार है,

$$\Delta pK_1' = -0.48\times10^{-4}\Delta z.$$

बुच Buch (1938) ने यह पाया कि समुद्री जल में 20°C पर कार्बोनिक अम्ल का द्वितीय वियोजन स्थिरांक निम्नलिखित समीकरण से संगणित किया जा सकता है।

$$pK_2' = 10.288 - 0.443 \sqrt[3]{Cl} - 0.0046Cl.$$

समुद्री जल में क्लोरीनता की सामान्य परास पर सरलतर पद यथेष्ट होता है—यथा,

$$pK_2' = 10.35 - 0.498 \sqrt[3]{Cl}.$$

ताप और दाब संशोधन इस प्रकार है :—

$$\Delta pK_2' = -0.011\Delta\theta \ (20° \text{ पर})$$
$$\Delta pK_2' = -0.012\Delta\theta \ (5° \text{ पर})$$
$$\Delta pK_2' = -0.18 \times 10^{-4}\Delta z.$$

ताप, लवणता, दाव, क्षारता और pH द्वारा व्यक्त किसी एक स्थिति के लिये A_{CO_2}, K_1' और K_2' गणित किये जा सकते हैं। इनसे कुल कार्बन डाइ ऑक्साइड और उसके विभिन्न घटक निम्नलिखित समीकरणों से संगणित किये जा सकते हैं रेवेली (Revelle, 1934)

$$[\Sigma CO_2] = \frac{[A_{CO_2}]}{1 + \frac{2K_2'}{[H^+]}} \times \left(\frac{[H^+]}{K_1'} + \frac{K_2'}{[H^+]} + 1\right)$$

$$[HCO_3^-] = \frac{[A_{CO_2}]}{1 + \frac{2K_2'}{[H^+]}}$$

$$[CO_3^-] = \frac{[A_{CO_2}]}{1 + \frac{2K_2'}{[H^+]}} \times \frac{K_2'}{[H^+]}$$

$$[HCO_3] = \frac{[A_{CO_2}]}{1 + \frac{2K_2'}{[H^+]}} \times \frac{[H^+]}{K_1'}$$

चित्र 40 में कार्वनडाइऑक्साइड घटकों के pH के साथ परिवर्तन दिखाये गये हैं। इनका मान $Cl=19‰$ के समुद्री जल के लिये $\theta=20°C$ और वायु मण्डलीय दाव पर उपरोक्त समीकरणों की सहायता से निकाला गया है। CO_2 घटक कार्वन के मि. गा.-परमाणु/L और CO_2 के मि. ली./L के रूप में दिये गये हैं।

कार्वनडाइऑक्साइड का आंशिक दाव विलयन में स्वतंत्र $CO_2+H_2CO_3$ (H_2CO_3 की तरह इंगित 6.16) की मात्रा से सम्वन्वित है।

$$p_{CO_2} = \frac{[H_2CO_3]}{c_s \times 10^{3}}$$

c_s (6.17) का मान ताप और लवणता तथा सांद्रता और आंशिक दाव को व्यक्त करने में प्रयुक्त इकाइयों पर निर्भर करता है।
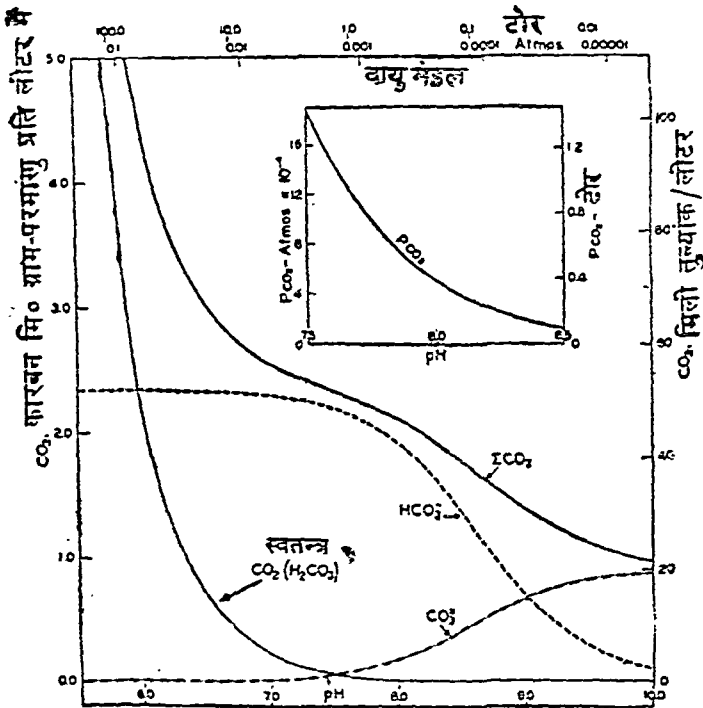
चित्र 40 $Cl=19.‰$ के समुद्री जल में 20°C पर कार्वनडाइऑक्साइड के घटक pH के और कार्वनडाइऑक्साइड के आंशिक दाव के फलनके रूप में

चित्र 41 में विभिन्न ताप और क्लोरीनता पर c_s के वक्र बताये गये हैं। यहां वो कार्बन के मि. ग्राम परमाणु प्रति समुद्री जलके लीटर में निर्दिष्ट स्थितियों में H_2CO_3 की मात्रा विलयन में निरूपित करते हैं जब कि CO_2 का आंशिक दाब 1 भौतिक वायु मण्डल (760 टोर) है 20° और 19 ‰ Cl पर $c_s = 34.2$ है यानी CO_2 का 1 वायु मण्डल का आंशिक दाब उस विलयन के साथ संतुलन में है जिसमें कार्बन के 34.2 मि. ग्रा. परमाणु स्वतंत्र $CO_2+H_2CO_3$ के रूप में हैं। ये आंकड़े बुच इत्यादि Buch *et al* (1932) से लिये गये हैं।

p_{CO_2} में दूसरे घटकों के साथ परिवर्तन चित्र 40 में बताये गये हैं। इनकी परास 0.01 से नीचे से लेकर 100 टोर से अधिक तक की है (0.1×10^{-4} से 1000×10^{-4} वायुमण्डल) समुद्री जल में साधारणतया पाई जाने वाली pH की परास पर उसका सम्बन्ध अन्दर वाले चित्र में दिखाया गया है। pH 7.5 और 8.3 के बीच p_{CO_2}, 1.4 से 0.15 टोर (18.0 से 2.0×10^{-4} वायुमण्डल) तक कम होता है। हवा में CO_2 का औसत आंशिक दाब लगभग 0.23 टोर होता है अत एव Cl = 19.0‰ के समुद्र के पृष्ट जल का 20° पर pH का मान 8.2 होगा यदि वो वायुमण्डल से संतुलन में हो। प्रकाश संश्लेशी जीवों के विकास के लिये समुद्री जल बहुत अनुकूल, माध्यम है। इसमें केवल CO_2 की काफी मात्रा ही नही होती वरन इसको काफी मात्रा में मिलाने अथवा कम कर देने से CO_2 के आंशिक दाब में और विलयन के pH में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता। ये दोनो ही जैविक वातावरण में महत्वपूर्ण गुणधर्म हैं (6.17) यदि प्रकाश संश्लेषण के उपलब्ध CO_2 को $H_2CO_3 + \frac{1}{2} HCO_3^-$, मान लिया जाय तो pH की 7.5 से केवल 8.5 तक वृद्धि के लिये *Cl*=19‰ के जल से कार्बन का 0.48 मि.ग्रा. परमाणु प्रति लीटर हटाया जा सकता है। आसुत जल में अथवा आरम्भ में 7.5 pH के शून्य क्षारता के अक्रिय लवण घोल में कुल CO_2 इस मात्रा की लगभग 1/7 होगी।
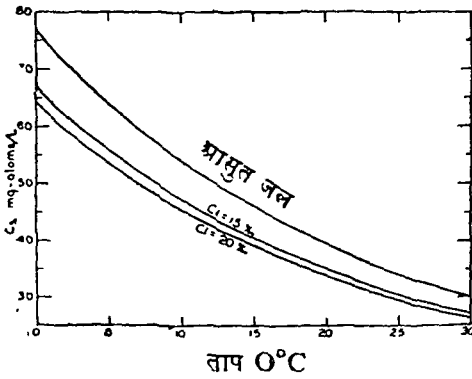
चित्र 41—समुद्री जल में कार्बन डाई ऑक्साईड का अवशोषण गुणांक, ताप और क्लोरीनता के फलन के रूप में

समुद्र जल की प्रतिरोधक क्रिया :—यदि शुद्ध जल में तीव्र बेस अथवा अम्ल की अल्प मात्रा मिलाई जाय तो प्रस्तुत H^+ और CH− आयनों की संख्या में विशाल

परिवर्तन हो जाता है परन्तु यदि यह अम्ल अथवा बेस ऐसे विलयन में मिलाये जायँ जिसमें दुर्बल अम्ल अथवा उसके लवण अथवा दुर्बल वेस अथवा उसके लवण हों तो ये परिवर्तन कम मात्रा में होते है। *p*H में परिवर्तन का यह दमन प्रतिरोधक क्रिया कहलाता है और इस प्रकार के विलयन प्रतिरोधक विलयन कहलाते हैं।

समुद्री जल में कार्बोनिक और बोरिक अम्ल अथवा उसके लवण होते हैं अत एव वह प्रतिरोधक घोल है। हम केवल कार्बोनेट पद्धति ही विचाराधीन लें। समुद्री जल में होने वाले तीव्र बेसों के कार्बोनेट और बाईकार्बोनेट लवण जल विश्लेपित होने की दिशा में कार्य करते हैं और लवण में सदा H^+ और OH^- दोनों ही आयन होते हैं। यदि कोई अम्ल मिलाया जाय तो कार्बोनेट बाईकार्बोनेट में और बाईकार्बो-नेट कार्बोनिक अम्ल में परिणित हो जाता है। परन्तु चूंकि कार्बोनिक अम्ल एक दुर्वल अम्ल है (केवल तनिक सा वियोजित होता है) अतः अपेक्षाकृत कुछ ही हाईड्रोजन आयन स्वतंत्र होते हैं। इसी प्रकार यदि एक तीव्र वेस मिलाया जाता है तो कार्बोनेट की मात्रा वढ़ती है परन्तु कार्बोनेट के जल विश्लेषण में निर्मित OH आयन केवल तनिक से वढ़ते हैं। जब हाईड्रोजन आयन की सांद्रता दुर्बल अम्ल वियोजन स्थिरांक के वरा-वर होती है यानी जब अम्ल की सांद्रता लवण के बरावर होती है तो प्रतिरोधक या वेस का प्रभाव सर्वाधिक होता है।

समुद्र और वायुमण्डल के बीच CO_2 का चक्र :— महासागर में और वायु-मण्डल में CO_2 के आंशिक दाब के परीक्षण क्रोग (Krogh 1904) और बुच (Buch 1939 a, b) द्वारा किये गये हैं। निम्नलिखित आन्तरिक परिवर्तन पृष्ठ तहों में pco_2 को बढ़ायेंगे अथवा घटायेंगे।

pco_2 को बढ़ायेंगे	**pco_2 को घटायेंगे**
1. ताप में वृद्धि	1. ताप में कमी
2. लवणता में वृद्धि (वाष्पीकरण)	2. लवणता में कमी
3. स्वशन क्रिया	3. प्रकाश संश्लेषण
4. $Ca\ CO_3$ का अवसादन	4. $CaCO_3$ का विलयन
5. पृष्ठ पर लाया गया गहराई का जल	

जब ताप, लवणता, क्षारता और *p*H ज्ञात हों तो पृष्ठ जल में CO_2 का आंशिक दाब यथेष्ट यथार्थता से संगणित किया जा सकता है परन्तु पहले इसके कि समुद्र और वायुमण्डल में CO_2 विनिमय की अच्छी समझ प्राप्त की जाय वायुमण्डलीय CO_2 के आंशिक दाव का कहीं अधिक विस्तृत अध्ययन किया जाना चाहिये। बुच (Buch 1939b) ने वायु के CO_2 अंश पर कई सीधे प्रेक्षण प्रतिवेदित किये हैं जो यह वताते हैं कि महाद्वीपीय और ऊष्णवलयिक वायु (pco_2=0.25 टोर) की तुलना

में ध्रुवीय वायु में CO_2 अपेक्षाकृत कम मात्रा में हैं (pco_2=0.23 टोर) यह सुझाया गया है कि निचले अक्षांशों में हवा महासागर से CO_2 में समृद्ध होती है और यह कि सामान्य वायुमण्डलीय परिसंचरण CO_2 को ऊंचे अंक्षाशों में ले जाता है वहाँ वह पुनः समुद्री जल में विलीन हो जाता है जो समय पर उसे पुनः विषुवत् रेखा की ओर लाता है।

समुद्री जल में आयनों की सक्रियता :—समुद्री जल में कार्बोनिक अम्ल के पहले और दूसरे आभासी वियोजन स्थिरांक तथा बोरिक अम्ल का प्रथम वियोजन स्थिरांक आसुत जल में के स्थिरांकों से बड़े होते हैं और बढ़ती हुई लवणता के *साथ बढ़ते हैं। यानी इन अम्लों की सांद्रता ऐसे विलयन में अधिक होती है* जिनमें लवण मिले हुए हों। इन प्रवंचनाओं को लेविस और रन्डाल (Lewis and Randall 1923) द्वारा पुरस्थापित और गणितीय रूप से डीबाई और हक्केल (Debye and Huckel) द्वारा विकसित सक्रियता के सिद्धान्त द्वारा समझाया जा सकता है। ऐसे विलयन में, जिसमें विद्युत अपघट्यों का मिश्रण हो, जैसे कि समुद्री जल, आयनों में परस्पर व्यतिकरण होता है अतएव उनकी सक्रियता अथवा स्वतंत्र रूप से किसी अभिक्रिया में भाग लेने की योग्यता काफी कम हो जाती है। सर्वाधिक रासायनिक निर्धारण किसी आयन की कुल सांद्रता मापते हैं न कि उसकी सक्रियता, फिर भी कतिपय भौतिक माप सक्रियता बताते हैं। उदाहरण के लिये विद्युत-वाहक-बल निर्धारण में हाईड्रोजन और अन्य आयनों की सक्रियता निहित है। इसी प्रकार अवाष्पशील यौगिकों के विलयन के वाष्प दाब का माप उसके विलायक की सक्रियता का संकेत है। समान स्थितियों में शुद्ध विलायक की तुलना में सक्रियता कम होगी। विलीन गैसों का आंशिक दाब उनकी सक्रियता का माप है।

सक्रियता गुणांक γ किसी आयन की सक्रियता α से निम्नलिखित उदाहरण की तरह सम्बन्धित है,

$$\gamma_{H^+} \times [H^+] = \alpha_{H^+}$$

इस प्रकार α_{H^+} ग्राम-परमाणु प्रति लीटर के रूप में व्यक्त हाईड्रोजन आयन की सक्रियता है और $[H^+]$ तत्वयोगमितीय सांद्रता।

समुद्री जल में कार्बनडाइऑक्साईड पद्धति के अध्ययन में, कुल CO_2, क्षारता और कार्बनडाइऑक्साईड घटक रासायनिक विधि से मापे जाते हैं अतएव ये मान तत्वयोग मितीय मान निरुपित करते हैं सक्रियता नहीं। दूसरी ओर हाईड्रोजन आयन की सांद्रता वर्णमापीय विधि से अथवा विद्युत मापीय विधि से निर्धारित की जाती है और ये विधियें सीधी हाईड्रोजन आयन की सक्रियता देते हैं। अतएव CO_2 घटकों को सम्बन्धित करने वाले समीकरणों में $[H^+]$ के स्थान पर α_{H^+} रखा जा सकता

था। अनन्त तनुता पर जहां कि सक्रियता गुणांक (γ) इकाई हो, प्राप्त **उष्मा गतिक** स्थिरांकों के विपरीत ये वियोजन स्थिरांक आभासित वियोजन स्थिरांक कहे गये हैं आभासित वियोजन स्थिरांक रंजक (′) लगा कर बताया जाता है उदाहरण के लिये K_2'. कार्वोनिक अम्ल के लिये ऊष्मा गतिकीय दूसरा वियोजन स्थिरांक इस प्रकार लिखा जा सकता है :—

$$K_2 = \frac{\alpha_{H^+} \times \gamma_{CO_3^=} \times CO_3^=}{\gamma_{HCO_3^-} \times [HCO_3^-]}$$

और यह आभासित वियोजन स्थिरांक से इस प्रकार सम्बन्धित है (मोवर्ग इत्यादि Moberg *at el* 1934)

$$pK_2 = pK_2' + \log \frac{\gamma_{HCO_3^-}}{\gamma_{CO_3^=}}$$

इसी प्रकार

$$pK_1 = pK_1' + \log \frac{\gamma_{H_2CO_3}}{\gamma_{HCO_3^-}}$$

$\gamma_{H_2CO_3}$ का मान शुद्ध जल में और उसी ताप पर समुद्री जल में CO_2 की अपेक्षिक विलेयकता पर और दोनों स्थितियों में पानी की सक्रियता पर निर्भर करता है

$$\gamma_{H_2CO_3} = \frac{c_o}{c_s} \times \frac{e_s}{e_o}$$

नीचे का लेख o अनन्त तनुता पर और नीचे का लेख *s* विचारणीय सांद्रता पर मान बताता है। c_o और c_s मान चित्र 41 से प्राप्त किया जा सकता है और c_s तथा e_o (वाष्प दाब) संगणित किये जा सकते हैं। (6.17).

pK'_1 और pK'_2 को ताप और क्लोरीनता से सम्बन्धित करने वाले निरीक्षण मूलक समीकरणों से हम जानते है कि 20° और शून्य क्लोरीनता पर ऊष्मा गतिकीय मान $pK_1 = 6.47$ और $pK_2 = 10.288$ हैं और 19.0‰ क्लोरीनता पर $pK'_1 = 5.97$ और $pK'_2 = 9.02$ है। इनका मान और $\gamma_{H_2CO_3}$ (इस स्थिति में 1.131) का मान स्थानापन्न करने से कार्वोनेट और वाईकार्वोनेट आयनों के सक्रियता गुणांक निर्धारित करना सम्भव है। उपरोक्त क्रिया निम्नलिखित मान देती है,

$$\gamma_{H_2CO_3^-} = 0.36, \gamma_{CO_3^=} = 0.019$$

इस प्रकार 19.00‰ क्लोरीनता और 20°C ताप पर के समुद्री जल में केवल वाई-कार्वोनेट आयन का लगभग एक तिहाई भाग और कार्वोनेट आयन का लगभग पचासवाँ भाग क्रियाशील है। इस पर $CaCo_3$ की विलेयता के सम्बन्ध में पुनः विचार किया जायगा।

ऐसे निरीक्षण मूलक समीकरण प्रस्तुत किये गये हैं जो pK'_1 और pK'_2 को क्लोरीनता के घनमूल से सम्बन्धित करते हैं। यह बताया गया है कि (बुच इत्यादि Buch *et, al* 1932, मोबर्ग इत्यादि Moberg *et, al* 1934) यदि क्लोरीनता के स्थान पर आयनों की सांद्रता, सांद्रता के माप के रूप में ली जाय तो समुद्री जल के अलावा अन्य लवण घोलों के लिये ये समीकरण सामान्यतः मान्य होते है । विभिन्न प्रकार के आयनों की मोल प्रति किलोग्राम विलायक जल में व्यक्त सांद्रता को उसकी संयोजकता के वर्ग से गुणा कर और फिर इन गुणनफलों के योग का आधा भाग लेकर विलयन की आयनिक सांद्रता (μ) प्राप्त की जाती है (लेविस और रेन्डेल Lewis and Randall, 1923, 6.18) लैमेन और फ्लेमिंग (Lyman and Fleming 1940) ने बताया है कि साधारण परास की सांद्रता में समुद्री जल की आयनिक सांद्रता निम्नलिखित व्यंजक से संगणित की जा सकती है।

$$\mu = 0.00147 + 0.03592 \, Cl + 0\ 000068 \, Cl^2$$

मोबर्ग इत्यादि (Moberg *et, al* 1934) ने उपयुक्त दत्त सामग्रियों का संक्षिप्त विवरण दिया है परन्तु कोई ऐसा संतोपजनक व्यंजक अभी तक विकसित नहीं किया गया है जो यह बताये कि किस प्रकार समुद्री जल में विभिन्न आयनों के सक्रियता गुणांक सांद्रता के साथ परिवर्तित होते हैं।

$CaCO_3$ **की विलेयता:** किसी विद्युत अपघट्य जैसे कैल्सियम कार्बोनेट की विलेयकता, **विलेयकता गुणन** की तरह व्यक्त की जा सकती है। विलेयकता गुणन आयनिक गुणन के समरूप है (यदि सांद्रताएं मोल प्रति लीटर में व्यक्त की जायें) जबकि विलयन ठोस लवण से संतुलन में है अतएव संतृप्त है। विलेयता गुणन का मान ताप पर, अन्य आयनों की सांद्रता पर (लवणता) तथा जलीय दाब पर निर्भर करता है। यदि किन्हीं दी हुई स्थितियों के लिये आयनिक गुणन विलेयता गुणन से कम है तो विलयन असंतृप्त है यदि आयनिक गुणन अधिक होता है तो विलयन अति संतृप्त है और यदि स्थायी नाभिक विद्यमान हों तो अवक्षेपण होता रहेगा जब तक कि आयनिक गुणन विलेयता गुणन के बराबर न हो जाय।

$CaCO_3$ की विलेयता गुणन k_{CaCO_3},' 20° पर आसुत जल में 5.0×10^{-9} है। 19.00‰ क्लोरीनता और उसी ताप के समुद्री जल में कैल्सियम अंश 10.23 मि. ग्रा. परमाणु /L है और pH 8 2 पर कार्बोनेट आयन की सांद्रता कार्बन की 0.26 मि. ग्राम–परमाणु /L है अतएव आयनिक गुणन है,

$$[Ca^{++}] \times [CO_3^{=}] = 10.23 \times 0.26 \times 10^{-6} = 2.66 \times 10^{-6}$$

जो आसुत जल में आयनिक गुणन से 530 गुणा अधिक है। यदि आसुत जल की विलेयता के तथ्य समुद्री जल के लिये लगाने हों तो आयन की सक्रियता पर ध्यान देना

आवश्यक है। यह बताया गया है (6.19) कि $CO_3^{=}$ आयन की सक्रियता लगभग 0.02 है और इस शुद्धि का पुरस्थापन दृप्य अतिसंतृप्तता को दस गुणा कम कर देता है चूँकि समुद्री जल में Ca^{++} आयनों की सक्रियता के कोई डेटा अब तक उपलब्ध नहीं है अतएव समुद्री जल में कैल्सियम कार्बोनेट और अन्य लवणों की आपेक्षिक संतृप्तता की परीक्षा करने के लिये आसुत जल के लिये निर्धारित विलेयता गुणन को लगाना असम्भव है।

अतएव Ca^{++} और $CO_3^{=}$ की सांद्रता का जो कि ठोस $CaCO_3$ के स्पर्श में रह सकती है, निरीक्षण मूलक रूप से निर्धारण आवश्यक है। रेवेली और फ्लेमिंग (Revelle and Fleming, 1934) ने 30^0 पर कार्य करते हुए और कुल CO_2 को कम कर CO_3 अंश को बढ़ाते हुए $CaCO_3$ का अरागोनाइट सुइयों और स्फेरुलाइट के रूप में अवक्षेपण प्राप्त किया। विलयन का कैल्सियम अंश सीधा निर्धारित किया गया था और $Co_3^{=}$ को pH, क्षारता और लवणता के मापों से परिकलित किया गया था। तीन प्रयोगों का औसत मान 30°C पर $K'_{CaCO_3}=2.4\times10^{-6}$ है। समुद्र में कैल्सियम कार्बोनेट की विलेयता पर वाटेनबर्ग ने कई अध्ययन किये हैं। उनकी सामान्य प्रक्रिया थी समुद्री जल में $CaCO_3$ के क्रिस्टल मिलाना और कतिपय दृष्टान्तों में p_{CO_2} को बढ़ाना। तब समुद्री जल को बन्द किये हुए फ्लास्कों में भर कर संतुलन होने तक हिलाया जाता था। जल का कैल्सियम अंश क्षारता मापों से परिकलित किया जाता था (6.20) और $CO_3^{=}$, pH निर्धारण से प्राप्त किया जाता था। वाटेनबर्ग और टिमरमेन (Wattenberg and Timmerman 1936), Cl=18.5 से 19.5‰ के समुद्री जल के लिये दृप्य विलेयता गुणन के निम्नलिखित मान देते हैं,

चित्र 42 Cl=19.00‰ और 20° पर के समुद्री जल में $[Ca^{++}]\times[CO_3^{=}]$ का आयनिक गुणन pH के फलन के रूप में। क्षैतिज रेखाएँ वाटेनबर्ग Wattenberg (0.62×10^{-6}) और रेवेली Revelle (3.2×10^{-6}) के अनुसार विलेयता गुणन सूचित करती हैं।

ताप °C	0	5	10	15	20	25	30	35
K'_{CaCO_3}	8.1	7.9	7.4	6.8	6.2	5.5	4.7	3.8×10^{-7}

30° पर वाटेनबर्ग का मान रेवेली और फ्लेमिंग द्वारा प्राप्त मान का केवल पाँचवां भाग है। अब तक इस अन्तर का कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। चित्र 42 में Cl=19.00‰ के समुद्री जल में 20° पर आयनिक गुणन, pH के साथ आलेखित किया गया है। इस ताप पर वाटेनबर्ग द्वारा प्राप्त मान यथा 0.62×10^{-6} यह बताता है कि 7.5 से ऊपर pH के सब मानों के लिये अतिसंतृप्तता विद्यमान है। वायुमण्डल से संतुलन में पृष्ट जल के लिये pH का मान लगभग 8.2 है तथा लगभग छः गुना अतिसंतृप्त है। दूसरी ओर रेवेली और फ्लेमिंग द्वारा प्राप्त K'_{CaCO_3} यदि 20° के लिये परिशुद्ध किया जाय तो 3.2×10^{-6} होगा जो कि यह बताता है कि पृष्ट जल इन परिस्थितियों में $CaCO_3$ से लगभग संतृप्त है। यह सम्भावना अति कठिन ज्ञात होती है कि पृष्ट जल इतना अधिक अतिसंतृप्त होगा जितना कि वाटेनबर्ग का मान बताता है। स्पष्टीकरण के तौर पर यह सुझाया गया है कि कैल्सियम कार्बोनेट स्वतंत्र आयन के रूप में विद्यमान न हो वरन् किसी संकर के रूप में अथवा सम्भवतः कोलायडीय कैल्सियम कार्बोनेट के रूप में विद्यमान हो। दूसरी ओर यह भी हो सकता कि K'_{CaCO_3} का निरीक्षण मूलक निर्धारित मान, संतुलन के अभाव में अथवा त्रुटिपूर्ण प्रयोगात्मक तकनीक के कारण, समुद्री जल के लिये प्रयुक्त न हों। इन विचार बिन्दुओं के निर्णय के लिये और अधिक अध्ययन किये जाने चाहिए।

स्मिथ (Smith 1940) ने बहामा के किनारे छिछले पानी में जो कैल्सियम के निक्षेप होते हैं उनका परीक्षण किया है। उसने क्षारता को काफी घटा हुआ पाया तथा मापन से आयनिक गुणन $[Ca^{++}] \times [CO_3^{=}]$ का आगणन किया। इस गुणन का न्यूनतम मान, जिसे वह विलेयता गुणन के आसपास मानता है, रेवेली तथा फ्लेमिंग और वाटेनबर्ग के मान के बीच में पाया गया।

वाटेनबर्ग (Wattenberg 1936) के अनुसार K'_{CaCO_3} 20° पर क्लोरीनता के साथ निम्न प्रकार से परिवर्त्तित होता है।

Cl, ‰	0	5	10	15	20
K'_{CaCO_3}	0.05	1.8	4.0	5.0	6.2×10^{-7}

अर्थात् समुद्री जल में $CaCO_3$ की दृष्य विलेयता गुणन क्लोरीनता के साथ बढ़ता है और ताप के साथ घटता है।

रेवेली (Revelle 1934) और वाटेनबर्ग (Wattenberg 1936) यह मानते है कि K'_{CaCO_3} के मान पर जलीय दाब का कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता है। अलबत्ता यह याद रखना चाहिये कि कार्बोनिक अम्ल के वियोजन स्थिरांकों में परिवर्तन होने के कारण, दाब जल में HCO_3^- और $CO_3^=$ की अपेक्षाकृत मात्राओं

को रूपान्तरित अवश्य करता है। अतएव कुल CO_2 और कैल्सियम अंश अपरिवर्तित रहने पर भी यदि जलीय दाब लगाया जाय तो जो जल पृष्ट पर संतृप्त है वह तनिक सा असंतृप्त हो जायगा। विलोमतः $CaCO_3$ से संतृप्त तलीय जल पृष्ट पर लाने से अतिसंतृप्त हो जायगा।

यद्यपि विभिन्न परिस्थितियों में K'_{CaCO_3} के मान के विषय में हमारा ज्ञान अपूर्ण और अनिश्चित है। फिर भी आयनिक गुणन पर परिस्थितियों में परिवर्तन का प्रभाव बताना सम्भव है और इस प्रकार उन अभिकर्मकों की समझ प्राप्त की जा सकती है जो अवक्षेपण अथवा विलयन की सहायता करते हैं। रेवेली (Revelle 1934) ने यह बताया है कि पृष्ट जल में लवणता और ताप की वृद्धि तथा p_{CO_2} यानी कुल CO_2 अंश का ह्रास ये तमाम आयनिक गुणन को बढ़ाने की ओर प्रवृत्त होते हैं और इस प्रकार अवक्षेपण में सहायता करते हैं। लवणता का प्रभाव अपेक्षाकृत कम है अतः उच्च और वृद्धिशील ताप के और सक्रिय प्रकाश संश्लेपण के क्षेत्र वे होंगे जहां $CaCO_3$ के अवक्षेपण की सर्वाधिक सम्भावना है। इसके विपरीत परिस्थितियां विलयन में सहायक होंगी।

गहन जल में ताप और लवणता की परास कम है और इसलिये p_{CO_2} में परिवर्तन का अत्यधिक प्रभाव पड़ेगा। वाटेनबर्ग (Wattenberg 1933) के अध्ययन के अनुसार अटलांटिक महासागर के गहरे जल वस्तुतः कैल्सियम कार्बोनेट से संतृप्त होते हैं। लाल मिट्टी के ऊपर वाले भाग तनिक से असंतृप्त होते हैं और जो भाग चूनेदार (ग्लोबी जेराइना सिन्धु पंक) जमावों के ऊपर हैं या तो वो संतृप्त हैं या तनिक से अति संतृप्त।

कतिपय प्रकार के दोनों अर्वाचीन और जीवाश्म चूनेदार अवसादी पदार्थ जैविक उद्गम का कोई प्रमाण नहीं बताते हैं। कभी २ ये "रासायनिक" जमाव माने जाते हैं। कुछ क्षेत्रों में ऐसी स्थितियें उत्पन्न करने में, जिनके परिणाम स्वरूप कार्बोनेट का प्रासंगिक अवक्षेपण होता है, अणुजीव निस्संदेह रूप से महत्वपूर्ण योग दान करते हैं।

ऊष्ण वलयिक समुद्रों में यह प्रक्रिया जल-बालू-उत्थान-जल के क्षेत्रों, प्रवाल भित्ति, लेगूनों और कच्छ वनस्पति अनूपों में होती है (फील्ड, Field 1932). यद्यपि अणुजीव, कैल्सियम कार्बोनेट को अवक्षेपण में सहायता करने वाली स्थितियें उत्पन्न कर सकते हैं फिर भी यह माना जाता है कि ये उपरोक्त सूचीकृत स्थितियों में केवल अवसादों के अन्दर और ऊपर प्रभावशाली अभिकर्मक हैं। स्मिथ (Smith 1940) ने यह पाया है कि ग्रेट बहामा के किनारे पर ऊष्णता और अत्यधिक वाष्पीकरण की स्थितियों में अवसादों द्वारा संभरित नाभिकों पर $CaCO_3$ का

अवक्षेपण होता है। ऐसा माना जाता है कि कतिपय गहन समुद्री अवसादों में सूक्ष्म विभाजित $CaCO_3$, फोरामिनी फेरा 6.21 के कोणों के टूटने में बनता है न कि स्वस्थाने अवक्षेपण से।

क्षारता, *pH*, और कार्बनडाइऑक्साइड घटकों का वितरण :—पूर्वगत विवेचन में यह मान लिया गया है कि क्षारता : क्लोरोसिटी घटक स्थिर है और उसका मान 0.1205 (मिली तुल्यांक प्रति इकाई *Cl*) संगणना में प्रयुक्त हुआ है। यह वाटेनबर्ग (Wattenberg 1933) द्वारा अटलांटिक महासागर में विशाल संख्या में किये गये प्रेक्षणों के औसत (मान) के तथा प्रशान्त महासागर की ऊपरी तहों के लिये रेवेली (Revelle 1936) द्वारा प्रतिवेदित मान के अनुरूप है। वाटेनबर्ग का मान प्रायः विशिष्ट क्षारता के रूप में दिया जाता है—उदाहरणार्थ मिली तुल्यांक प्रति इकाई क्लोरीनता के—इस स्थिति में यह 0.123 है। क्षारता को मापने के लिए कई विभिन्न विधियां अपनाई गई हैं (6.22) परन्तु इसका कोई निश्चित प्रमाण नहीं है कि वे सब समान मान देती हैं। अतः महासागरों के भिन्न भिन्न भागों से विभिन्न कार्यकर्ताओं द्वारा प्राप्त परिणामों की तुलना करना कठिन है। फिर भी वाटेनबर्ग (Wattenberg 1933) मिट्केल और राकेस्ट्रा (Mitchell and Rakesraw 1933), और रेवेली (Revelle 1936) के सब अन्वेषण यह बताते हैं कि पृष्ठ तहों की अपेक्षा में गहरे पानी में क्षारता: क्लोरोसिटी घटक कुछ अधिक होता है। इस घटक में वृद्धि प्रायः 0.005 तक की होती है। वाटेनबर्ग ने ठीक पेंदे पर एकत्रित किये हुए कई नमूनों का परीक्षण किया और इनमें उसने और भी बड़ा घटक पाया। पृष्ठ जलों में न्यून मान का कारण चूर्णदार कंकाल वाले जीवों द्वारा कैल्सियम कार्बोनेट का हटाना है। स्मिथ (Smith 1940) ने यह सुझाव दिया है कि कम से कम कुछ इलाकों में जब कि जल गर्म हो रहा हो और वाष्पीकृत हो रहा हो तो अकार्बनिक अवक्षेपण हो सकता है यदि उपयुक्त नाभिक विद्यमान हो। कैल्सियम कार्बोनेट जल स्तम्भ में डूबते हुए पुनः विलीन होता है अथवा नहीं यह इस बात पर निर्भर करता है कि जल इस यौगिक से किस मात्रा तक संतृप्त है। स्थलमण्डल तहों में उपापाचय क्रियाओं से CO_2 का उत्पादन विलयन में सहायक होगा। यह उत्पादन अवसादों में भी होता है और सम्भवतः यह पेंदे के ठीक ऊपर क्षारता में तीव्र वृद्धि का, जिसका कि पता वाटेनबर्ग द्वारा लगाया गया था, कारण बतलाता है। रेवेली (Revelle 1936) ने यह प्रमाण प्रस्तुत किया है जो यह बतलाता है कि उत्तरी प्रशान्त महासागर में क्षारता: क्लोरोसिटी घटक अटलांटिक की तुलना में अधिक है। इस अधिक क्षारता का कारण उत्तरी प्रशान्त (महासागर) के माध्यमिक और गहन जल में विलीन ऑक्सीजन अंश का कम होना माना जा सकता है। ऑक्सीजन अंश का न्यूनतर मान कार्बनडाइऑक्साइड के उच्चस्तर मान का और इस कारण कैल्सियम कार्बोनेट की अधिकतर विलेयता का द्योतक है। वाटेनबर्ग के आंकड़े यह बतलाते हैं उच्च अक्षांशों

में जहां चूनेदार कंकाल कम बहुल है अथवा नहीं है और जहां ऊर्ध्वाधर मिश्रण अधिक समान परिस्थितियें उत्पन्न करता है गहराई के साथ क्षारता: क्लोरोसिटी घटक में परिवर्तन काफी कम है। मोवर्ग और रेवेली (Moberg and Revelle 1937) ने यह इंगित किया है कि क्षारता में परिवर्तन पानी के कैल्सियम अंश में परिवर्तन के अनुरूप है। नदी जल में अपेक्षाकृत बड़े अनुपात में कैल्सियम कार्बोनेट होता है और विशिष्ट तनुता के क्षेत्रों में क्षारता : क्लोरोसिटी घटक में बड़ी वृद्धि होती है। यह समुद्री वर्फ के बनने और पिघलने से भी उपान्तरित हो सकती है। 6.23.

जल की लवणता और ताप तथा वायुमण्डल में कार्बनडाइ ऑक्साईड के आंशिक दाव पर निर्भर करते हुए वायु से स्पर्शित समुद्री जल का *p*H, 8.1 और 8.3 के बीच परिवर्तित होगा। अति तनुता के क्षेत्र में न्यूनतर मान हो सकते हैं स्थल मंडल तल में जहां वायुमण्डल के साथ कार्वनडाइऑक्साईड का विनिमय असम्भव है, *p*H उस सीमा तक परिवर्तित होगा जिस तक जल का CO_2 अंश जैविक क्रियाओं से उपान्तरित होता है। यूफोटिक जोन में सामान्यत: *p*H के उच्चतर मान पाये जाते हैं; इससे नीचे न्यूनतम ऑक्सीजन अंश की तह के अनुरूप वे न्यूनतम मान तक कम होते हैं और तव पुन: पैंदे की ओर वढ़ते हैं। यद्यपि लवणता में परिवर्तन *p*H पर प्रभाव डालते हैं परन्तु प्रवल कारक कुल कार्वनडाइ ऑक्साईड अंश या उसका आंशिक दाव है।

दुर्भाग्य से, कैलोरीमिति मापन से *p*H प्राप्त करने में प्रयुक्त स्थिरांकों में और तकनीक में अंतर के कारण विभिन्न कार्य-कर्ताओं के परिणामों की तुलना करना कठिन है। महासागर में *p*H के वितरण पर सर्वाधिक विस्तृत अध्ययन अटलांटिक महासागर में मीट्योर (वाटेनवर्ग Wattenberg 1933) का है और प्रशान्त महासागर में कारनेगी, (*Carnegie*) का है। पूर्वी अटलांटिक में अनुदैर्घ्य रूप रेखा के सहारे *p*H और विलीन ऑक्सीजन चित्र 43 में वताये गये हैं। सम रेखाओं का अविक साम्य सरलता से दिखाई देता है। इसी प्रकार के प्रतिरूप CO_2 अंश और उसके आंशिक दाव द्वारा भी वनाये जायंगे यद्यपि इस स्थिति में ये सम्बन्ध उत्क्रमित होंगे। *p*H के निर्धारण में जल का ताप और लवणता गोण महत्व के हैं। उत्तरी प्रशान्त में, जहां पर माध्य और अधिकतर गहराई पर अटलांटिक की तुलना में ऑक्सीजन अंश कम है, *p*H का मान कुछ न्यूनतर है और जहां ऑक्सीजन अंश कुछ दशांश मि. लीटर प्रति लीटर से कम हो जाता है वहां *p*H का मान 7.5 तक पहुँच जाता है। अप्रवाही द्रोणियों में [स्ट्रोम Ström (1936)] जहां H_2S की विशाल मात्रा विद्यमान होती है *p*H का मान 7.0 तक पहुँच सकता है। वायु से स्पर्शित जल का कुल CO_2 अंश मुख्यत: क्षारता पर—यानी लवणता पर—और कुछ हद तक ताप पर निर्भर करता है—वायु मण्डल में कार्वन डाइऑक्साईड के आंशिक दाव में क्षेत्रीय परिवर्तन इसमें कुछ परिवर्तन कर सकते हैं।
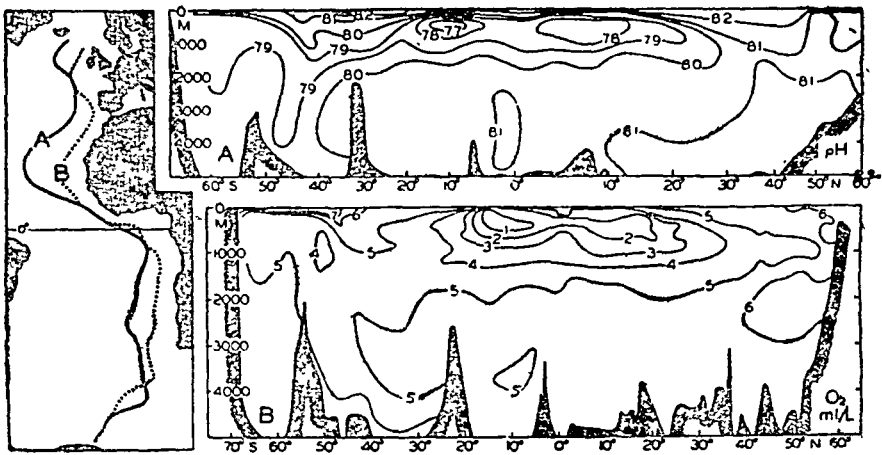
चित्र 43—अटलाँटिक महासागर के पूर्वी भाग में pH और विलीन ऑक्सीजन का वितरण तथा परिच्छेदों की स्थिति बांई ओर-मानचित्र में दिखाई गई है। दोनों परिच्छेदों में ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज पैमाने भिन्न भिन्न है। (वाटेनबर्ग के अनुसार)

पृष्ठ से नीचे कुल कार्बनडाइऑक्साईड अंश और इससे विभिन्न घटकों का परिमाण मुख्यतः प्रकाश संश्लेषण अथवा स्वशन के परिणाम स्वरूप कार्बनडाइ-ऑक्साईड अंश में परिवर्तन से निर्धारित होता है। यदि ताप, लवणता और गहराई और निम्न चरों—pH, क्षारता और p_{CO_2}—में से कोई दो ज्ञात हों तो पृष्ठ (6.24) पर दिये हुए समीकरणों की सहायता से तमाम घटक संगणित किये जा सकते हैं।

समुद्री जल में लवणों की विलेयता

समुद्री जल में कैल्सियम कार्बोनेट की विलेयता का परीक्षण कुछ विस्तार पूर्वक किया गया है परन्तु दूसरे अवयवों के विषय में अपेक्षाकृत बहुत कम ज्ञान है। समुद्री जल की जटिल प्रकृति के कारण तथा किसी आयन की क्रिया पर अन्य आयनो के प्रभाव के कारण, आसुत जल में किसी एक लवण के विलेयता गुणन को समुद्री जल के लिये प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। कूपर (Cooper 1937b) यह मानते हैं कि समुद्री जल में लोहे का अधिकांश भाग वास्तविक विलयन में नहीं होता वरन् किसी कोलायडीय रूप में विद्यमान होता है चूंकि हाइड्रोऑक्साईड का विलेयता गुणन अत्यन्त कम होता है। वाटेनबर्ग और टिमरमेन (Wattenberg and Timmermann 1938) ने समुद्री जल में मैग्नीशियम और स्ट्रॉन्शियम तथा मैग्नी-शियम हाइड्रोऑक्साईड की विलेयता का अध्ययन किया। सारणी 42 के आंकड़े उनके कार्य से लिये गये हैं। समुद्री जल में आभासित विलेयता गुणन में विशाल वृद्धि पर ध्यान देना रुचिकर होगा। इसका कारण भाग लेने वाले आयनों की क्रिया

में घटाव है। तुलना के लिये समुद्री जल (19.00 ‰ Cl, $\theta = 20^0$) के लिये pH 8.2 पर आयनिक गुणन संगणित किया गया है। कैल्सियम कार्बोनेट की आभासित अतिसंतृप्तता का पूर्वगामी पृष्ठों में विवेचन किया गया है। दूसरे लवणों का आयनिक गुणन उनके विलेयता गुणन तक नहीं पहुँचता है। 9.0 से अधिक pH पर $Mg(OH)_2$ का आयनिक गुणन विलेयता गुणन से अधिक हो जायगा और इससे CO_2 को हटाने से मैग्निशियम हाइड्रोऑक्साईड तथा कार्बोनेट का अवक्षेपण हो सकता है।

थोमसन और उनके सहयोगियों (उदाहरणार्थ इगेलरूड और थोमसन, Igelsrud and Thompson, 1936) ने समुद्री जल में कुछ लवणों वाले विलयन के विस्तृत प्रावस्था नियम का अध्ययन किया हैं परन्तु अब तक उन्होंने अपने परीक्षण प्राकृतिक जल तक नहीं बढ़ाये हैं।

ब्रहत अवयवों की विशाल विलेयता का कुछ संकेत समुद्री जल के जमने पर लवणों के पृथक होने के आंकड़ों से प्राप्त होता है। (6.25) इसी प्रकार के कुछ आंकड़े उसीगिलयो (थोमसन और रोबिनसन, Thompson and Robinson) के वाष्पायन अध्ययन से प्राप्त किये जा सकते है ये पुनः इस तथ्य को प्रकट करते हैं कि समुद्री जल कई अवयवों से यथेष्ट असंतृप्त है।

सारणी 42

कतिपय लवणों के आसुत जल में तथा समुद्री जल में विलेयता गुणन

(From Wattenberg and Timmermann 1938)

लवण	K आसुत जल	K' समुद्री जल S = 35‰, $\theta = 20^0$	आयनिक गुणन Cl = 19.0‰ $\theta = 20^0$ $pH = 8.2$
$CaCo_3$	0.5×10^{-8}	50×10^{-3}	270×10^{-3}
$MgCO_3.3H_2O$	0.1×10^{-4}	3.1×10^{-4}	0.14×10^{-4}
$SrCO_3$	0.3×10^{-9}	500×10^{-9}	39×10^{-9}
$Mg(OH)_2$	1.0×10^{-11}	5×10^{-11}	0.02×10^{-11}

समुद्री जल का उप-अपचयन विभव

उप-अपचयन विभव एक रासायनिक निकाय का दूसरे निकाय को उप-चयन करने की योग्यता का माप है। यह सामान्यतः प्राकृत हाईड्रोजन विद्युदग्र की अपेक्षा में वोल्ट में व्यक्त किया जाता है। वे पदार्थ अथवा विलयन जिनका विभव अधिक

होता है न्यूनतर विभव वाले पदार्थों को उपचयन करने के योग्य होते है। यद्यपि प्राणधारी जीवों में उप-अपचयन पर विचारणनीय कार्य किया गया है फिर भी जल में प्रचलित परिस्थितियों के विषय में बहुत कम ज्ञात है। कूपर (Cooper 1937a) ने समुद्री जल में विभव को केवल ऑक्सीजन के आंशिक दाब तथा जल के *p*H से सम्बद्ध माना है। अल्प ऑक्सीजन अंश की स्थिति में अथवा जब हाईड्रोजन सल्फाईड विद्यमान हो तो जल में विलीन कार्बनिक यौगिकों पर विचार करना आवश्यक होता है। उप-चयनकारी अथवा अपचयनकारी स्थितियों पर दो भागों में विचार करना चाहिये, नाम के लिये विभव के रूप में व्यक्त **तीव्रता** तथा **क्षमता** अथवा निकाय का संतोलन जो कि उल्लेखनीय रूप से विभव को परिवर्तित किये बिना पदार्थ के विशिष्ट भाग को उपचयन अथवा अपचयन करने की योग्यता का माप है। उप-अपचयन निकाय का संतोल हाईड्रोजन आयन सांद्रता में प्रतिरोधक क्षमता के कुछ समरूप है। उप-अपचयन विभव सामान्यतः विद्युत मिति विधि से निर्धारित किया जाता है यद्यपि कतिपय स्थितियों में विशेष वर्णमापी सूचक प्रयुक्त किये जा सकते हैं। (माईकेलिस Michaelis 1930 हेविट Hewitt 1937)

जीवों के लिये वातावरण का उप-अपचयन विभव महत्वपूर्ण है। तथाकथित वातजीवी जीवाणु सूक्ष्म-एयरोफाइल्स की अपेक्षा उच्चत्तर विभव पर बढ़ता है और ऑक्सीजन-इतर जीवाणु केवल कम विभव पर ही रह सकता है। अतः अवरुद्ध जल अथवा कीचड़ में जहां ऑक्सीजन नही होती है तथा विभव कम होता है केवल ऑक्सीजन—इतर रूप ही रह सकते है। यह विभव भूवैज्ञानिक महत्व का भी है चूंकि अवसादों के कतिपय अवयवों के लक्षण प्रचलित उपचयनकारी अथवा अपचयन कारी स्थितियों से निर्धारित किये जायंगे (6.26).

समुद्री जल की संविरचना को प्रभावित करने वाले अकार्बनिक अभिकरण

वायुमण्डल के साथ विनिमय, नदी जल का अन्तर्वाह, समुद्री बर्फ़ का जमना और पिघलना तथा जैविक क्रियाएँ वे घटक है जो समुद्री जल में पदार्थों की परम और आपेक्षिक सांद्रताओं को उपान्तरित कर सकें। जैविक प्रक्रियाओं तथा विभिन्न तत्वों के वितरण पर उनके प्रभाव पर अध्याय VII में विचार किया गया है।

वायुमण्डल के साथ विनिमय : महासागरों में लवणता का वितरण और इस प्रकार बृहत् तत्वों की सांद्रताएं जिन अभिकरणों द्वारा पोषित की जाती है उनका वर्णन अन्यत्र किया गया है परन्तु एक पहलू पर इस समय विचार करना आवश्यक है। समुद्र पर और उसके किनारों पर निरन्तर वायु में फुहार चलती रहती है और चूंकि फुहार विलीन लवणों सहित समुद्री जल के वास्तविक कण निरुपित करती है

यह प्रक्रिया समुद्र से लवण हटाने की क्रिया विधि प्रदान करती है। फुहार का एक बहुत बड़ा भाग निस्संदेह रूप से पुनः जल में गिरता है अथवा वर्षा से पुनः अन्दर लाया जाता है। (कोल्हर Köhler 1921) फिर भी स्थल की ओर बहने वाली हवायें उनके लवण अंश को अपने साथ ले चली जायंगी जो कि सीधा पृथ्वी पर जमा हो सकता है अथवा वर्षा के द्वारा नीचे लाया जा सकता है। समुद्र के समीप क्लोराईड अंश पर जैकब (Jacobs 1937) के परीक्षणों ने प्रति घन मीटर वायु में क्लोराईड की सांद्रता 0.07 और 0.5 मि.ग्रा. के बीच प्रकट की है। यह मात्रा वायु के वेग के साथ बढ़ती है और तटीय हवाओं के साथ सर्वाधिक होती है।

समुद्र में नदियों द्वारा लाये गये विलीन पदार्थों का बहुत बड़ा भाग "चक्रीय लवण" होता है यानी वह लवण जो वायुमण्डल द्वारा अन्तर्देशीय भागों में ले जाया जाता है और तब वहां जमा किया जाता है अथवा वर्षा और हिम द्वारा नीचे लाया जाता है। (क्लार्क Clarke 1924, नोफ Knoph, 1931)।

उपरोक्त वर्णन के अनुसार वायुमण्डल और महासागर में नमक के विनिमय के अतिरिक्त विलीन गैसों और नाईट्रोजन यौगिकों का भी विनिमय होता है जो कि वायुमण्डल से स्पर्शित समुद्री जल में विद्यमान इन पदार्थों की मात्रा को उपान्तरित कर सकता है। जो घटक गैसों के विनिमय पर प्रभाव डालते हैं उनका वर्णन अन्यत्र किया गया है। वायुमण्डल और महासागर के बीच पानी के विनिमय का वर्णन अध्याय IV में किया गया है।

वर्षा के जल में नाईट्रोजन यौगिकों की अपेक्षाकृत उच्च सांद्रता होती है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि ये यौगिक वायुमण्डल के अवयवों से विद्युत विसर्जन द्वारा निर्मित किये जाते हैं। इस प्रकार वायुमण्डल या तो प्रत्यक्ष रूप से वर्षा द्वारा अथवा अप्रत्यक्षरूप से पृथ्वी से अपवाह द्वारा महासागर को यौगिकीकृत नाईट्रोज न की कुछ मात्रा प्रदान करता है। यौगिकीकृत नाईट्रोजन की मात्रा में यह वृद्धि अवसादों में कार्बनिक नाईट्रोजन के अभाव से अथवा समुद्र में नाईट्रोजन यौगिकों के अपघटन द्वारा गैसीय नाईट्रोजन के स्वतंत्र होने से, संतुलित होती है यह अब तक ज्ञात नहीं है।

समुद्री जल की संविरचना पर नदियों का प्रभाव : स्थल से अपवाह अपक्षालन चक्र का ही भाग है। स्थल पर के अवक्षेपण में केवल चक्रीय लवण, विलीन वायु-मण्डलीय गैसें और नाईट्रोजन यौगिक ही होते है। यह जल चट्टानों पर क्रिया कर ठोस पदार्थ के यांत्रिक रूप से टुकड़े करने और उनमें से अधिक विलयशील अवयवों को निष्कर्षित करने में योगदान करता है। विभिन्न विलीन पदार्थों की प्रकृति और

मात्रा उन चट्टानों और मिट्टी पर निर्भर करती है जिनसे समुद्र की ओर जाते हुए जल संपर्क में आता है। चूंकि अवक्षेपण ऐसे जल द्वारा किया जाता है जिसकी लवण सांद्रता तो कम होती है परन्तु कार्बनडाइऑक्साईड यौगिकों की सांद्रता अपेक्षाकृत उच्च होती है अतएव वह इस प्रकार के पदार्थों को विलीन करने में समर्थ होता है जो यदि समुद्री जल से संपर्क में होते तो न घुलते। विलीन पदार्थों के अतिरिक्त नदियें कोलायडीय अथवा विविक्त पदार्थ अत्यधिक मात्रा में समुद्र में ले जाती है। इस मलवे का समुचित भाग तट के समीप समुद्री पैंदे पर जमा हो जाता है और सूक्ष्म पदार्थों का अधिकांश भाग जब समुद्री जल के साथ मिश्रित होता है तो स्कंदित होता है और जम जाता है, समुद्री जल कोलायडीय और सूक्ष्म प्रकीर्ण (विभाजित) पदार्थों के साथ विभिन्न प्रकार से क्रिया करता है और इनमें से कुछ क्रियाऐं विलीन अवयवों की आपेक्षिक संविरचना पर प्रभाव डाल सकती हैं। अवसादी मलवे और समुद्री जल के विलीन अवयवों में अन्त:क्रिया इस प्रकार उपविभाजित की जा सकती है: (1) अवसादों के अवयवों का विलयन (2) अवसादों पर अधिशोषण (3) आयनिक विनिमय और (4) नये पदार्थ बनाने वाली क्रियाऐं। इन प्रक्रियाओं के महत्व के विषय में बहुत कम ज्ञान है।

समुद्र में खाली होने वाली नदियों द्वारा अपवाहित स्थल क्षेत्र के परिमाण से, और नदी जल में विलीन लवणों की संविरचना से, क्लार्क (Clarke 1924) ने यह आकलित किया है कि नदियें समुद्र में प्रतिवर्ष 2.73×10^9 मीटरी टन विलीन पदार्थों का अंश दान करती हैं। विभिन्न नदीं तंत्रों के जल की संविरचना को विलीन पदार्थों के कुल संभरण की तुलना में भारित कर उसने नदी जल की, सारणी 43 में बताई हुई औसत संविरचना प्राप्त की। समुद्री जल में विलीन ठोस पदार्थों की संविरचना से तुलना करने पर व हेलाइडस् निर्दिष्ट हों तो ज्ञात होगा कि तमाम प्रतिवेदित पदार्थों का आधिक्य है। अतएव नदी जल का प्रभाव समुद्री जल में विलीन ठोसों की आपेक्षिक संविरचना को उपान्तरित करना होगा। सम्भवत: कार्बन डाइऑक्साईड और नाइट्रेट का अपेक्षाकृत एक विशाल अनुपात चक्रीय माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त यह स्मरण रखना चाहिये कि चक्रीय लवण जोकि फुहार के रूप में वायु-मण्डल में ले जाये जाते हैं और तब जो जमीन पर जमा हो जाते हैं अथवा अवक्षेपण द्वारा नीचे जमीन पर लाये जाते हैं संकलन में ग्राहित होंगे। यदि हम यह मान लें कि नदी जल में सारा क्लोराइड चक्रीय है तो जिन अनुपातों में दूसरे तत्व समुद्री जल में पाये जाते हैं उन्हें उपान्तरित करना आवश्यक है। यह शायद ही सम्भव है कि यह मान्यता पूर्णरूपेण सत्य है, परन्तु यह ऐसे मान दे सकती हैं जो कि सत्य के अधिक समीप हैं। इस प्रकार चक्रीय लवण के लिये समजित नदी जल की औसत संविरचना सारणी में दी गई है।

सारणी 43

नदी और समुद्री जल में विलीन ठोसों की प्रतिशत संविरचना

आयन	नदी जल भारित औसत	समुद्री जल	नदी जल (चक्रीय लवणों रहित)
$CO_3^{=}$	35.15	0.41 (HCO_3^-)	35.13
$SO_4^{=}$	12.14	7.68	11.35
Cl^-	5.68	55.04	0 00
NO_3^-	0.90	....	0.90
Ca^{++}	20 39	1.15	20.27
Mg^{++}	3.41	3.69	3.03
Na^+	5.79	30.62	2.63
K^+	2.12	1.10	2.02
$(Fe,Al)_2O_3$	2.75	....	2.75
SiO_2	11.67	....	11.67
Sr^{++}, H_3BO_3, Br^-	....	0 31	....
	100.00	100.00	89.75

यह नहीं ज्ञात है कि विलीन ठोसों का योग समुद्री लवणों की आपेक्षिक संविरचना में क्रमिक परिवर्तन करता है अथवा कुल लवण अंश या लवणता में कोई क्रमिक परिवर्तन करता है। किसी भी हालत में दोनों प्रक्रियाएँ अत्यन्त धीमी गति की होनी चाहिये। विलीन ठोसों की कुल मात्रा जो प्रति वर्ष नदियों द्वारा लाई जाती है वह महासागर में विलीन कुल ठोसों का अनंत सूक्ष्म भाग, 5.4×10^{-8} है। यह सूक्ष्म भाग भी नेट लाभ निरुपित नहीं करता चूंकि ऐसी कई प्रक्रियाएँ हैं जो विलयन से पदार्थ हटा लेती हैं। कतिपय तत्व समुद्री अवसादों में एकत्रित होते हैं और या तो भौतिक क्रियाओं द्वारा अथवा जैविक क्रियाओं द्वारा अवक्षेपित होते हैं। यह कैल्सियम और मैग्नीशियम कार्बोनेट के लिए जो चूर्णदार निक्षेप बनाते हैं और सिलिकन के लिए जो कि कार्बनिक सिलिकीय निक्षेपों में पाई जाती है (रेडियो लेरिया तथा डायटम पंक) विशेष प्रकार से सत्य है। नदियों द्वारा समुद्र में लाये गये मिट्टी के कणों पर अधिशोषण द्वारा अथवा उनसे आयनिक विनिमय द्वारा सोडियम और पोटैशियम विलयन में से हटाये जा सकते हैं। अलवत्ता दूसरी स्थिति में कोई दूसरा तत्व तुल्यांकी मात्रा में जल में छोड़ दिया जायगा। "इस समस्या के दूसरे पहलुओं पर समुद्री अवसादों और भूरसायन के साथ विचार किया जायगा। परन्तु यह स्वीकार करना होगा कि समूद्री जल की संविरचना के परिवर्तन के विषय में बहुत सारे प्रश्नों का समाधान अब तक नहीं हुआ है। इन पर विचार करते समय यह भी सोचना चाहिये कि जल की मात्रा भी परिवर्तित हो रही हो। मुख्यतः तमाम नदी जल चक्रीय होता है। परन्तु यह भी ज्ञात है कि भूमिगत उद्गम का मैग्मज

जल निरन्तर पृष्ठ जल में मिलता रहता है। इसके अतिरिक्त हिमटोपों द्वारा निरुपित जल परिवर्तनशील हो सकता है। गोल्डस्मिड्ट (Goldschimdt 1933) ने परिगणित किया है कि भूपृष्ठ के प्रत्येक वर्ग सेन्टीमीटर के लिए 273 लीटर जल निम्न प्रकार से विभाजित रूप में है :–

समुद्री जल..................................	268.45 ली,
शुद्ध जल..................................	0.1 ली,
प्रायद्वीपीय हिम..................................	4.5 ,,
जल वाष्प..................................	0.003 ,,

कुल मिला कर और लम्बे अर्से के लिये महासागर पर उसके प्रभाव का विचार करने के लिए नदि जल की औसत संविरचना ही लाभ दायक होती है परन्तु विशिष्ट परीक्षणों का उन प्रभावों से सम्बन्ध होता है जो कि विभिन्न नदियां डालती हैं और जिनके विलीन ठोस संविरचना और सांद्रता में औसत मान से बहुत भिन्न हो सकते हैं। आँकड़े क्लार्क (Clarke 1924) अथवा समान उद्गमों से प्राप्त किये जा सकते हैं। उदाहरण के तौर पर कई अमरीकी बड़ी नदियों के लिए मान सारणी 44 में दिये गये हैं।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्तिगत नदियों की संविरचना औसत मान से काफी भिन्न हैं। इस प्रकार कोलम्बिया नदी में क्लोराईड की मात्रा कम है और कोलोरेडो नदी में अधिक तथा दूसरी नदी में सोडियम और सल्फेट औसत से अधिक और कैल्सियम और कार्बोनेट औसत से कम हैं। अतएव तनुता का क्लोरोसिटी घटक पर क्या प्रभाव होगा यह नदी जल के लक्षण पर निर्भर करेगा।

अब तक हमने नदी जल में केवल अधिक प्रचुर तत्वों पर ही विचार किया है। निस्संदेह तमाम तत्व समुद्र में या तो विलयन के रूप में या सूक्ष्म विभाजित विविक्त पदार्थ के रूप में लाये जाते हैं। नदियों के मुहानों के समीप जहाँ प्रायः वनस्पति और जानवरों का अधिक उत्पादन होता है वह कभी कभी नदियों द्वारा लाये गये वनस्पति पोषकों के कारण माना जाता है। रीले (Riley 1937) ने यह पाया है कि मैक्सिको की खाड़ी में पृष्ठ समुद्री जल की तुलना में मिस्सीसिपी नदी जल में फॉस्फेट और नाइट्रोजन यौगिकों की उच्चतर सांद्रता होती है और इसका सीधा प्रभाव मुहाने पर जीवों की मात्रा पर पड़ता है। दूसरी ओर अटकिन्स (Atkins 1923) ने इङ्गलिश चेनल में अध्ययन से यह निर्णय निकाला है कि नदी जल का तात्कालिक उत्पादन पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है चूंकि अधिकांश पोषक तत्व नदियों में रहने वाले जीवों द्वारा काम में ले लिये जाते हैं।

सारणी 44

नदियों के जल में विलीन पदार्थों की प्रतिशत संविरचना

(दत्त सामग्री Clarke, 1924)

आयन	औसत	मिस्सि-सिप्पी नदी	कोलम्बिया नदी	कोलोरेडो नदी
$CO_3^{=}$	35·15	34.98	36.15	13.02
$SO_4^{=}$	12.14	15.37	13.52	28 61
Cl^-	5.68	6 21	2.82	19.92
NO_3^-	0.90	1.60	0.49	....
Ca^{++}	20 39	20.50	17.87	10.35
Mg^{++}	3.41	5.38	4.38	3.14
Na^+	5.79	8.33* (योग)	8.12	19.75
K^+	2,12		1.95	2.17
$(Fe,Al)_2O_3$	2 75	0.58	0.08	....
SiO_2	11.67	7.05	14.62	3.04
विलीन ठोसों का वार्षिक योगदान (मीटर टन)		100,000,000	19,000,000	13,416,000
लवणांश (ग्र./ली.)		0.166	0.0924	0.702

समुद्री जल की संविरचना पर समुद्री वर्फ के वनने और पिघलने का प्रभाव। समुद्री जल के हिमायन का प्रयोगशाला अध्ययन रिन्जर (Ringer) द्वारा किया गया था जिसके परिणाम क्रूमेल (Krummel 1907) तथा जोनस्टोन (Johnstone 1928) द्वारा प्रतिवेदित किये गये हैं। इन प्रयोगों में समुद्री जल प्रयोग-शाला में ठंडा किया गया था और आरम्भिक हिमांक के नीचे विभिन्न तापों पर वर्फ़ और अवक्षेपित लवण मातृद्रव से पृथक किये गये थे। 35.0 ‰ की लवणता का समुद्री जल- -1.91^0 से. ग्रे. पर जमना आरम्भ होता है। (6.27) सवसे पहले शुद्ध वर्फ के रवे अलग होते हैं और ज्यों ज्यों लवण जल की सांद्रता बढ़ती है अतिरिक्त वर्फ वनाने के लिये ताप को और अधिक कम करना पड़ता है। जैसे जैसे ताप कम होता है और लवण जल की सांद्रता वढ़ती है कतिपय विलीन लवणों की मात्रा विलेयता से अधिक हो जाती है। -8.2^0 पर Na_2SO_4 पृथक होने लगता है और अधिक ठंडा होने के साथ साथ पृथक होता रहता है। -23^0 पर NaCl के रवे वनना आरम्भ होता है। इसके अतिरिक्त $CaCO_3$ की कुछ मात्रा अवक्षेपित होती है। रिन्जर का (वर्फ के क्रिस्टल और अवक्षेपित लवणों सहित) "वर्फ" का और लवण जल का विश्लेपण जव कि ताप $-30°$ तक कम हो गया हो इस प्रकार है :

एक किलोग्राम समुद्री जल, आरम्भिक लवणता 35.05 ‰ से निम्न पदार्थ प्राप्त हुए :—

वर्फ के क्रिस्टल..................................	931.9 ग्रा.
NaCl के क्रिस्टल..............................	20.23 ग्रा.
Na_2SO_4 के क्रिस्टल...........................	3.95 ,,
$CaCO_3$ के क्रिस्टल............................	लेशमात्र
लवण	43.95 ,,

लवण जल में 23.31 ग्रा. जल और निम्न पदार्थ थे :

Na^+.....................	1.42 ग्रा.	Cl^-.....................	7.03 ग्रा.
Mg^{++}.....................	1.31 ,,	Br^-.....................	0.08 ,,
K^+.....................	0.38 ,,	$SO_4^=$.....................	0.03 ,,
Ca^{++}.....................	0.39 ,,		

इन आंकड़ों से यह तुरन्त देखा जा सकता है कि जब वर्फ और लवण जल का ताप −30° तक कम किया जाता है तो वर्फ में और लवण जल में लवणों की आपेक्षिक संविरचना मे उल्लेखनीय अन्तर होजाता है। यदि शीतलन को −50° तक जारी रखा जाय तो बर्फ और लवण क्रिस्टलों का और पृथक्करण होता है परन्तु फिर भी कुछ अत्यन्तसांद्रित लवणजल विद्यमान रहता है।

इन प्रयोगों से ऐसा प्रतीत होता है कि वर्फ बनने का समुद्री जल में लवणों की अपेक्षिक संविरचना पर काफी प्रभाव पड़ता है। लवण जल जिससे वर्फ बनता है वह एक दिशा में उपान्तरित होगा और यदि जिस जल से बर्फ़ बना है उसके अतिरिक्त दूसरे जल में बर्फ़ पिघलता है तो उसका प्रभाव विपरीत दिशा में होगा। फिर भी प्रकृति में बर्फ का बनाना इन प्रयोगशालाओं के प्रयोगों द्वारा पुनरुत्पादित नहीं होता। मानलो किसी क्षेत्र में जहां पैंदे की गहराई अधिक अथवा साधारण है सामान्य सविरचना का समुद्री जल पृष्ठ पर ठंडा किया जाता है। इसके परिणाम स्वरूप जो घनत्व में वृद्धि होती है उससे संवहन गति उत्पन्न होती है। यह गति चालू रहती है जब तक कि पृष्ठ जल हिमांक तक न पहुँच जाय और तब बर्फ बनने लगेगा। लवण जल अधिक सांद्रता का परन्तु वस्तुत: उसी ताप पर होने से नीचे डूबेगा और नया जल पृष्ठ की ओर तथा बर्फ से संपर्क में लाया जायगा। पहले पहल विछिन्न और लम्बे वर्फ के क्रिस्टल बनते हैं परन्तु जैसे जैसे हिमायन चालू रहता है ये एक मेट्रिक्स बनाते है जिनमें लवण जल की कुछ मात्रा यांत्रिक रूप से अन्तर्हित होती है। इस अवस्था में बर्फ के क्रिस्टल अपने आप में सम्भवत: "शुद्ध बर्फ" होते हैं। यदि हिमायन तेजी से होता है तो लवण जल बर्फ के निकाय के अन्दर पृथक पृथक छोटी कोष्ठिका में एकत्रित

हो जायगा और जैसे २ पृष्ठ के समीप वर्फ का ताप कम होता है अधिक वर्फ के क्रिस्टल वनते हैं, कोष्टिका आकार में छोटी होती है और कोष्टिकाओं में लवण जल की सांद्रता वढ़ती है (चित्र 16)। यह तव तक जारी रह सकता है जव तक कि ठोस लवण कोष्टिकाओं में क्रिस्टलीकृत हो जाय। इससे यह मालूम होता है कि समुद्री जल अथवा समुद्री वर्फ (वर्फ के क्रिस्टल तथा परिवद्ध लवण जल) में विलीन लवणों की संविरचना में आवश्यक रूप से कोई अपेक्षाकृत परिवर्तन नहीं होता है।

वर्फ की लवणता का उसी परिभाषा के अनुसार जो कि समुद्री जल के लिये लागू होती है, हिमायन की दर पर निर्भर होना वताया गया है। माम ग्रेन (Malmgren 1927) ने मोड खोज यात्रा द्वारा लिये गये प्रेक्षणों से नये वर्फ की लवणता और वायुताप के वीच सम्वन्ध वताते हुए निम्निलिखित औसत मान दिये हैं। यहां वायुताप हिमायन की दर के माप के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

हवा का ताप (°C)	वर्फ की लवणता (‰)
—16	5.64
—28	8.01
—30	8.77
—40	10.16

लवणताएँ पिघले हुए वर्फ के नमूनों पर किये गये क्लोरीनता निर्धारण पर आधारित हैं। पृष्ठ जल की लवणता लगभग 30‰ थी। हिमायन की दर का प्रभाव भी अप्रेल में लिये गये उन हिमवाह के नमूनों के विश्लेषण से वताया गया है जो पूर्व गामी नवम्वर में वनने आरम्भ हुए थे।

वर्फ के पृष्ठ से दूरी (से०मी०)	0	6	13	26	45	82	95
वर्फ की लवणता	6.74	5.28	5.31	3.84	4.37	3.48	3.17

गहरे वर्फ का न्यूनतर लवणांश उसका धीमी रफ्तार के साथ वनने से सम्वन्धित है जव वर्फ अधिकतम तीव्रता से वनता है तो उसकी लवणता उस जल के वरावर पहुँच जायगी जिससे वह वना है।

रिन्जर के प्रयोगों के अनुसार उस वर्फ के ठंडा होने से जिसमें लवण जल की कोष्ठिका अन्तर्विष्ट हो, अतिरिक्त वर्फ के क्रिस्टल वनते हैं और यदि ताप यथेष्ट रूप से कम किया जाय तो वर्फ के अन्दर लवण क्रिस्टल पृथक हो जाते हैं। अत्यन्त तीव्र हिमायन पर, लवण जल और लवण क्रिस्टल वर्फ के पृष्ठ पर एकत्रित हो सकते हैं जो —30° से —40° से० ग्रे० के ताप पर पृष्ठ को "आर्द्र" कर देता है और स्लेड गाड़ियों तथा स्काइंग करने वालों के विरुद्ध अत्यधिक घर्षण वढ़ा देता है।

इस प्रकार द्रुत गति से जमे हुए वर्फ में लवण जल वाले कोष्टक आकार में बड़े होते हैं अथवा संख्या में अधिक होते हैं। यदि ताप वढ़ता है तो कोष्टकों के चारों ओर का वर्फ पिघलता है और पृथक्कृत लवण क्रिस्टल पुनः विलीन हो जाते हैं परन्तु पूर्ण विलयन से पहले लवणजल के कोष्टक एक दूसरे से मिल सकते हैं जिससे लवण जल बर्फ में होता हुआ सीधा टपक सकता है। इन परिस्थितियों में कुछ ठोस लवण वर्फ में पीछे छूट जाता है और पिघलने से प्राप्त जल की संविरचना प्राकृत समुद्री जल से भिन्न होगी। दूसरी ओर यदि वर्फ का ताप 0° से'ग्रे. तक बढ़ाया जाय तो तमाम लवण विलीन हो जाते हैं, कोष्ठक इतने बड़े हो जाते हैं कि वर्फ सरन्ध्र हो जाता है, समुद्री पृष्ठ के ऊपर के वर्फ के हिस्सों से तमाम लवण जल टपक कर नीचे आ जाता है और खुला हुआ पुराना वर्फ पुनः शुद्ध हो जाता है और पेय जल के श्रोत के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

वेसे (Wiese 1930) का विश्लेपण यह वतलाता है कि जिन प्रक्रियाओं का वर्णन किया गया है वो लवणों की आपेक्षिक संविरचना को परिवर्तित करने में प्रभावकारी हो सकती है। उसने यह पाया कि जल की अपेक्षा बर्फ में सल्फेट और क्षारता घटक अधिक थे और नये जमने वाले वर्फ की अपेक्षा पुराने वर्फ में अधिक थे। यह वतलाया है कि सल्फेट की अल्प मात्रा, सम्भवतः Na_2SO_4 के रूप में विद्यमान जरण की प्रक्रिया में बर्फ में रही है और सम्भवतः $CaCO_3$ के आपेक्षिक मान परिवर्तित हुए हैं।

मामग्रेन (Malmgren, 1927) तथा स्वेरड्रूप (Sverdrup, 1929) द्वारा प्रतिवेदित मोड (Maud) खोज यात्रा के परिणाम वेसे (Wiese) के परिणामों के अनुरूप नहीं हैं। पिघलते हुए बर्फ से प्राप्त जल की अनुमापन से निर्धारित की गई क्लोरीनता नडसेन की जललेखीय सारणी की सहायता से घनत्व के प्रेक्षणों से संगणित क्लोरीनता से, व्यवस्थित रूप में उच्चतर थी। इस विसंगति का कारण यह माना गया कि समुद्री बर्फ में क्लोराईड्स का आधिक्य है परन्तु यह नडसन की सारणी का ऐसे जल के लिये प्रयुक्त करने से भी हो सकता है जो कि मुख्यतः आसुत जल से तनुकृत किया गया हो जैसा कि 6.26 पर समझाया गया है। यह तथ्य कि SO_4/Cl का अनुपात वर्फ और समुद्री जल में लगभग वही है (मेमग्रेन Malmgren 1927, 6.29) बाद की व्याख्या का अनुपोषण करता है और यह वतलाता है कि जमने और पिघलने की प्रक्रिया से अपेक्षिक सांद्रता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। फिर भी इस समस्या को हल नहीं माना जा सकता और यह इस क्षेत्र में और अधिक प्रयोग शाला खोज वथा प्रेक्षण के लिये अवसर प्रदान करता है।

महासागरीय जल की भू-रासायनिकी

महासागर की औसत लवणता 35‰ मानकर तथा उनका आयतन 1.37×10^9 km^3 (6.30) मान कर महासागरीय जल में विलीन ठोसों की कुल

मात्रा संगणित की जा सकती है। महासागरीय जल के लिए स्वस्थाने घनत्व 1.04 मानने से विलीन ठोसों की मात्रा 5×10^{16} मैट्रिक टन होती है। द्रव्य की यह अतिमात्र मात्रा सम्पूर्ण पृथ्वी पर सूखे लवणों की 45 मीटर मोटी अथवा वर्तमान स्थल क्षेत्र पर 153 मीटर मोटी परत बना सकती है। सारणी 45 के प्रथम स्तम्भ में अंकित मान को 1.42×10^{12} से गुणा कर किसी तत्व की टन में मात्रा प्राप्त की जा सकती है। परिवर्तनशील तत्वों के लिए आंकड़े सारणी 36 में सूचिवद्ध उच्चतर मान के तदनुरूप है। स्पष्ट रूप से ट्रेसर तत्वों की मात्रा भी अत्यधिक है और यदि निष्कर्षण की विधि आर्थिक दृष्टि से शक्य हो तो महासागर इन पदार्थों के "अनन्त स्रोत" का कार्य करेंगे।

प्रचलित सिद्धान्तों के अनुसार समुद्र में विलीन ठोस पदार्थों का अधिकांश भाग भू-पटल के अपक्षय से आरम्भ हुआ है। चट्टान की कितनी मात्रा का अपक्षय हुआ इस समस्या का विचार स्मिड्ट (Schmidt, 1933) ने निम्नरूप में किया है। भू-पृष्ट के प्रत्येक वर्ग सेन्टीमीटर के लिये 278 किलोग्राम समुद्र जल है अतएव प्रत्येक वर्ग सेन्टीमीटर के लिये महासागरीय जल में लगभग 3 किलोग्राम सोडियम है। आग्नेय चट्टानों का औसत सोडियम अंश 2.83 प्रतिशत है और अवसादी निक्षेपों में 1.00 प्रतिशत है। अपक्षय की प्रक्रिया में पदार्थ का कुछ अंश निक्षालित हो जाता है और गोल्ड स्मिड्ट के आकलन के अनुसार अवसादी निक्षेप की मात्रा (Y) आरम्भिक आग्नेय चट्टान (X) का जिसने उनको बनाया, 0.97 भाग है। अतएव,

$$Y = 0.97X, \quad \text{और} \quad 2.83X - 1.00Y = 100 \times 3.00$$

इससे हमे ज्ञात होता है कि भू-पृष्ट के प्रत्येक वर्ग सेन्टीमीटर के लिए लगभग 160 किलोग्राम आग्नेय चट्टाने अपक्षय हुई हैं। अतएव महासागर में जल के प्रति किलोग्राम के लिए लगभग 600 ग्राम चट्टाने अपक्षय हुई हैं। कुल सोडियम का 65 प्रतिशत समुद्री जल में एकत्रित हुआ है और 35 प्रतिशत अवसादी चट्टानों में निक्षेपित हुआ है। अतएव आग्नेय चट्टानों के ये 600 ग्राम समुद्र के अवयव तत्वों का शक्य संभरण करने वाले रहे हैं यद्यपि अधिकांश स्थितियों में इन पदार्थों का केवल कुछ ही भाग वास्तव में विलीन हुआ है अथवा विलयन में रहा है। चट्टान के अपक्षय की मात्रा 600 ग्राम लेकर और गोल्ड स्मिड्ट् (Goldschmidt's, 1937) की भूपटल की संविरचना के अनुसार, सारणी 45 में सूचीवद्ध तत्वों का संभरण प्राप्त किया गया है। चट्टानों के कई गोण अवयव इस सारणी में नहीं लिये गये हैं। समुद्री जल में विद्यमान प्रत्येक तत्व की मात्रा को उसके शक्य संभरण से विभाजित कर "विलयन में प्रतिशत" मात्रा प्राप्त की गई है। यह प्रक्रिया गोल्ड स्मिड्ट (Goldschmidt, 1937) द्वारा अनुगमित की गई है।

सारणी 45

समुद्री जल में और पृथ्वी की पपड़ी में विद्यमान तत्व

तत्व	समुद्री जल $S=35^0/_{00}$ (मि. ग्रा./कि. ग्रा.)	600 ग्राम चट्टान में शक्य संभरण (मि.ग्रा./कि.ग्रा. समुद्री जल के)	विलयन में प्रतिशतता
सिलिकन	4	165,000	0.002
ऐलुमिनियम	0.5	53,000	0.001
लोहा	0·02	31,000	0.0001
कैल्सियम	403	22,000	1.9
सोडियम	10,769	17,000	65
पोटैशियम	387	15,000	2.6
मैगनीशियम	1,297	1,3000	10
टाईटेनियम	....	3,800	?
मगनीज	0 01	560	0.002
फ़ॉस्फोरस	0.1	470	0.02
कार्बन	28	300	9
गंधक	901	300	300
क्लोरीन	19,353	290	6700
स्ट्रॉन्शियम	13	250	5
बेरियम	0.05	230	0.02
रुबीडियम	0.2	190	0.1
फ्लोरीन	1.4	160	0.9
क्रोमियम	p	120	?
जिरकोनियम	....	120	?
तांबा	0.01	60	0.02
निकल	0.0001	60	0.0002
वैनेडियम	0.0003	60	0.0005
टंग्स्टेन	....	41	?
लीथियम	0.1	39	0.2
सीरियम	0.0004	26	0.002
कोबाल्ट	p	24	?
टिन	p	24	?
जिंक	0.005	24	0.02
इट्रियम	0.0003	19	0.002
लेन्थेनम	0.0003	11	0.003
सीसा	0.004	10	0.04
मोलीब्डेनम	0.0005	9	0.005
थोरियम	<0.0005	6	0.01
सीज़ियम	0.002	4	0.05
आर्सेनिक	0.02	3	0.7

तत्व	समुद्री जल S=35%₀₀ (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)	600 ग्राम चट्टान में शक्य संभरण (मि.ग्रा./कि ग्रा. समुद्री जल के)	विलयन में प्रतिशतता
स्कैन्डियम	0.00004	3	0.001
ब्रोमीन	66	3	2000
बोरॉन	4.7	2	240
यूरेनियम	0.015	2	0.8
सिलीनियम	0.004	0.4	1
कैडमियम	p	0.3	?
पारा	0.00003	0.3	0.001
आयोडीन	0.05	0.2	25
चांदी	0.0003	0.06	0.5
सोना	0.0_56	0.003	0.3
रेडियम	0.0_96	0.0_66	0.05

p=present विद्यमान

सारणी 45 का परीक्षण यह बतलाता है कि विलयन में प्रतिशत मात्रा पर निर्भर करते हुए तत्वों को तीन श्रेणियों में एक त्रित किया जा सकता है : (i) गंधक, क्लोरीन, ब्रोमीन, और बोरॉन 600 ग्राम चट्टानों के अपक्षय से संभरित की जा सकने वाली मात्रा से अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। गोल्ड स्मिड्ट का यह मानना है कि ये तत्व प्राइमवल वातावरण में वाष्पशील यौगिकों के रूप में विद्यमान थे और ये महासागरीय जल में प्राचीनतम काल में संचित हो गये। (2) कैल्सियम, सोडियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम, कार्बन स्ट्रॉन्शियम, सिलीनियम, और आयोडीन जो कि अपेक्षाकृत विलयशील यौगिक बनाते हैं, ये पदार्थ समुद्री जल में शक्य संभरण से 1 प्रतिशत अधिक मात्रा में विद्यमान हैं (3) बाकी के तत्व, जो कि अल्प मात्रा में विद्यमान हैं।

यह बड़ी विचित्र बात है कि आग्नेय चट्टानों में सर्वाधिक प्रचुर तत्व सिलिकन, ऐलुमिनियम और लोहा (वास्तव में ऑक्सीजन सर्वाधिक प्रचुर मात्रा में है परन्तु उस पर यहां विचार करने की आवश्यकता नहीं है) समुद्री जल में अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में विद्यमान हैं। इस प्रकार समुद्री जल में तत्वों की सापेक्ष प्रचुरता भूपटल से विशेष रूप से भिन्न है। कतिपय अपवादों को छोड़कर तमाम तत्व विलयन में विद्यमान वास्तविक मात्रा से सम्भावना से कहीं अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। नदी जल की आपेक्षिक संविरचना समुद्री जल की आपेक्षिक संविरचना से भिन्न है और विलीन अवयवों के अतिरिक्त नदियें विशाल मात्रा में विविक्त पदार्थ समुद्र में लाती हैं जो यदि समुद्री जल इन पदार्थों से असंतृप्त होता तो ये विलीन हो जाते।

अतएव ऐसा जान पड़ता है कि स्वयं समुद्र में कार्य करने वाले ऐसे घटक हैं जो सम्भावना से विशाल मात्रा में पाये जाने वाले बहुत से तत्वों की सांद्रता को आवश्यक रूप से नियंत्रित करते हैं। ये घटक हैं, विलेयता, भौतिक-रासायनिक अभिक्रियाएँ और जैविक क्रियाएँ। हमारा वर्तमान ज्ञान यह निर्दिष्ट करने के लिये अपर्याप्त है कि कौन सी प्रक्रिया अथवा प्रक्रियाएँ अमुक तत्व की सांद्रता को निर्धारित करती है। अतएव निम्नलिखित विचार केवल संबद्ध घटकों के लक्षण बतलाते है।

कुछ तत्व ऐसी मात्रा में विद्यमान होते है कि उनके यौगिकों की विलेयता उनकी सांद्रता को सीमित कर दे। इन परिस्थितियों में नदियों द्वारा विलियन में समुद्र में लाई गई अतिरिक्त मात्रा, रासायनिक अवक्षेपण द्वारा, हटा दी जायगी। अन्य तत्वों की मात्रा भौतिक-रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा नियन्त्रित होती है जो अलवत्ता साधारण लवणों के अवक्षेपण की अपेक्षा में अधिक जटिल प्रक्रियाएँ हैं उदाहरण के लिए हम उन क्रियाओं को ले सकते हैं जो कि विलीन पदार्थो और नदियों द्वारा लाये गये कोलायडीय तथा विविक्त पदार्थो में हो सकती है। इन प्रक्रियाओं में आयनिक अविशोषण, वेस क्षार विनिमय और जटिल खनिजों का वनना अन्तर्विष्ट है। ऐसी क्रियाएँ उन आयनों को विलयन में से हटा सकती हैं जो कि कोलायडीय और विविक्त पदार्थो के अभाव में अवक्षेपित नहीं होगें। समुद्र में वहुत से तत्वों की सांद्रताएँ नियन्त्रित करने में जैविक क्रिया निसंदेह रूप में वड़े महत्व की है : चक्रीय क्रियाओं पर, जिनमें तत्व विलयन से हटाये जाते हैं परन्तु वाद में मेटावोली क्रिया द्वारा पुनः लौटाये जाते हैं, विचार करने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी जीवों द्वारा वनाये गये पदार्थो का कुछ भाग समुद्री जल पर गिर जाता है और निक्षेप का स्थाई भाग वन जाता है और इसलिए विलयन से हटा लिया जाता है। इस प्रकार नीचे ले जाये गये तत्वों की सांद्रता कम से कम आंशिक रूप में समुद्री जीवों की क्रिया द्वारा निर्धारित होती है। इस प्रकार निक्षेपित कंकाली ढाँचों और ऊपर दी कार्वनिक पदार्थो का लक्षण अध्याय VII और XX में विवेचित किया गया है। जीव विलयन में से ऐसे तत्वों को हटा लेते हैं जो अन्यथा अवक्षेपित नहीं होते और यदि परिस्थितियें ऐसी हैं कि इस पदार्थ का कुछ भाग अवसादों का स्थाई भाग वन जाता है तो यह स्पष्ट है कि जैविक क्रियाएँ जल की संविरचना को नियन्त्रित करने में महत्व पूर्ण भाग अदा करती हैं। कंकाली ढाँचे के केवल व्रहत अवयव जैसे कि कैल्सियम, कार्वन, सिलीकन आदि आदि ही नहीं वरन नाइट्रोजन, फॉसफोरस और अल्प सांद्रता में समुद्र में विद्यमान कई तत्व भी समुद्री जीवों द्वारा एकत्रित किये जाते हैं।

सातवां अध्याय

जीवधारी और सागर जल की रचना

समुद्री जीवधारियों की रासायनिक रचना

सागर जल में घुले हुए अवयवों की सांद्रता में परिवर्तन जीवधारियों के विकास, उत्तरवर्ती मृत्यु और उनके विच्छेदन द्वारा होते हैं। वस्तुत: जल से निष्कर्षित सब पदार्थ उपापचयात्मक क्रियाओं या जीवधारियों के विच्छेदन द्वारा घोल में वापस आ जाते हैं, परन्तु घोल से हटाये गये तत्व कुछ समय बाद और प्राय: जल स्तम्भ के किसी दूसरे ही भाग को वापस लौटाये जाते हैं। इस प्रकार ये रूपान्तरण विभिन्न समय और स्थानों पर विपरीत दिशाओं में हो सकते हैं। जैव अवशेष का एक छोटा अंश सागर तल में संचित रहता है अत: इस चक्र से लुप्त हो जाता है।

सागर जल के घोल में सम्भवत: समस्त रासायनिक तत्व होते हैं, यद्दपि अभी तक केवल लगभग पचास ही ऐसे तत्वों का पता लग सका है। समुद्री पौधों और प्राणियों में विभिन्न तत्वों की उपस्थिति के सम्बन्ध में विशाल आंकड़े उपलब्ध हैं, परन्तु दुर्भाग्य वश उपलब्ध सामग्री किसी एक भी जैव वर्ग के लिए पूर्ण नहीं है। या तो केवल कुछ ही तत्वों का पूर्ण निधारण हो चुका है, जैसे-आयोडीन, जिसके बारे में काफी अनुसंधान किया जा चुका है, या केवल जीवधारियों के कुछ अंशों, उदाहरण के तौर पर कंकाल संरचना का विश्लेषण हो चुका है।

विनोग्रादोव (Vinogradov 1935, 1937) ने जलज और स्थलज दोनों प्रकार के निम्नतर पौधों और प्राणियों का रासायनिक विश्लेषण संकलित किया है। उन्होंने लगभग ऐसे साठ तत्वों पर विवरण दिया है जो किसी एक या दूसरी जात (स्पीशीज) में पाये गये हैं। वेब और फैरों (Webb and Fearon, 1937) ने सामान्यता पाये जाने वाले उन्तालीस तत्वों का सारणीकरण किया है और उनको जीवों की आभासी महत्ता के आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया है :–(1) अठारह अचर तत्व (2) इक्कीस चर तत्व। इन वर्गों को भी तत्वों की विद्यमान सांद्रता के आधार पर उपवर्गों में विभाजित किया गया है। सात तत्वों को संदूषित रूप में सूचिकृत किया गया है। (सारणी 46)

प्रमुख अचर तत्व कार्बोहाइड्रेट, लाइपिड (चर्बी) और प्रोटीन के अनिवार्य अंग हैं। कुछ अचर तत्व जो अप्रमुख (गोण) या माइक्रो घटकों के रूप में वर्गीकृत

किये गये हैं, लाइपिड्स और प्रोटीन में सदा उपस्थित रहते हैं। यह सूची केवल समुद्र जीव पदार्थों के लिऐ ही न होकर पौधों और प्राणियों के लिये सामान्य रूप से लागू होती है। सारणी 46 और 36 की तुलना यह दर्शाती है कि जीवधारियों में पाये जाने वाले नौ तत्वों (तारांकित) का सागर जल में विवरण नहीं दिया गया है और सात तत्वों को (यूरेनियम, थोरियम, सीरियम, लेन्थेनम, इट्रियम, स्केन्डियम और रेडियम) जो कि सागर जल में पाये गये हैं वेब और फैरों ने सूचिकृत नहीं किया है। रेड़ियम का नाम तो उनकी सूची में जुड़ना ही चाहिये। (7.1)

सारणी 46

जीवधारियों के शरीर भार के प्रतिशत वितरण के आधार पर वर्गीकृत तत्व
(वेब और फैरों, 1937)

अचर (18)			चर(21)		संदूषित
प्रमुख 1–60%	अप्रमुख 0.05–1%	माइक्रोघटक <0.05%	अप्रमुख	माइक्रोघटक	
हाइड्रोजन कार्वन नाइट्रोजन आक्सीजन फॉसफोरस	सोडियम मेग्नीसयम सल्फर क्लोरीन पोटैशियम कैल्सियम आयरन (लोहा)	वोरोन फ्लोरीन सिलिकन मेन्गनीज कोपर (तांवा) आयडीन	टाइटेनियम* वेनेडियम जिन्क (जस्त) ब्रोमीन	लीथियम वेरीलियम* ऐलुमिनियम क्रोमियम* कोवाल्ट* निकल जरमेनियम* आर्सेनिक रुवीडियम स्ट्रोन्सियम मोलीव्ड्नम सिल्वर केडमियम* टिन* वेरियम लैड	हिलीयम आरगन सिलिनियम गोल्ड मरकरी विसमथ* थैलियम

*सागर जल के लिए अभी तक विवरण उपलब्ध नहीं है।

विभिन्न प्रकार के जीवधारियों के लिए तुलनात्मक आंकड़ों की कमी के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि उनकी रचना पर विचार इन तीन शीर्षकों के अन्तर्गत किया जाये :—कार्वनिक पदार्थ (मुख्यतया, कार्वोहाइड्रेट, लाइपिड्स् और

प्रोटीन्स), अकार्बनिक कंकाल संरचना, शरीर तरल के अकार्बनिक विलेयशील तत्व कार्बोहाइड्रेट, प्रोटिन्स और लाइपिड्स के अनुपात में बहुत अधिक परिवर्तन होने के बावजूद किसी भी एक प्रकार के जीवधारी की रचना अचर होती है, इसलिए सारणी 47 में दिए हुए औसत मानों का उपयोग विश्वास के साथ किया जा सकता है। लाइपिड्स और प्रोटीन्स के निर्वारण की कई विधियां हैं, (क्रमशः ईथर निष्कर्षण विधी और नाइट्रोजन के निर्धारण पर आधारित विधी) और इन मापों व प्रज्वलन के उपरान्त भार में कमी के आधार पर कार्बोहाइड्रेट की संगणना की जा सकती है। संहति और रचना की दृष्टि से अकार्बनिक पदार्थों की तुलना में कंकाल संरचनायें इतनी भिन्न होती हैं कि उन पर अलग से ही विचार करना चाहिये। शरीर तरल में घुले हुए अकार्बनिक तत्वों पर एक अलग ही वर्ग में विचार किया गया है क्योंकि रचना और सांद्रता की दृष्टि से आभासी तौर पर उनमें और परिसागरीय जल में बहुत अधिक अन्तर नहीं होता है, परिणामस्वरूप मूल नमूने में जल की उपस्थिति अकार्बनिक विलेयशीलों का मान कहीं अधिक बतलायेगी। आपेक्षिक संरचना में बहुत अधिक अन्तर कार्बनिक पदार्थों और कंकाल संरचनाओं में पाये जाते हैं, इसके फलस्वरूप यदि सागर जल वाले एक मिश्रित प्लैन्कटन नमूने का विश्लेषण किया जाय तो कार्बनिक पदार्थों और कंकाल संरचनाओं सम्बन्धी परिणामों पर किसी भी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ेगा, यदि यह विचार लिया जाय कि सोडियम या क्लोराइड के साथ साथ अन्य दूसरे तत्व भी उसी अनुपात में उपस्थित हैं जिस अनुपात में वे शरीर तरल या सागर जल में पाये जाते हैं।

सारणी 47

कार्बनिक पदार्थों की औसत रचना

(आंशिक रूप से रोजर्स के अनुसार 1938, Rogers)

प्रतिशत रचना				भारका आपेक्षिक अनुपात, C=100			
तत्व	कार्बो-हाइड्रेट	लाइपिड	प्रोटीन	तत्व	सागर जल	लाइपिड	प्रोटीन
O........	49.38	17.90	22.4	C.......	100	100	100
C........	44.44	69.05	51.3	P........	0.05	3.1	1.4
H........	6.18	10.00	6.9	N........	0.05	0.88	34.7
P........		2.13	0.7	S........	3150.0	0.45	1.6
N........		0.61	17.8	Fe......	0.07		0.2
S........		0.31	0.8				
Fe.......			0.1				

सारणी 47 में कार्वनिक पदार्थो के तीन वड़े वर्गो की औसत रचना (रोजर्स Rogers 1938) और सागर जल में पाये जाने वाले उनके अंगभूत तत्वों के आपेक्षिक अनुपात दिये गये हैं। आक्सीजन और हाइड्रोजन पर यहां विचार नहीं किया गया है और मान इस प्रकार निर्धारित किया गया है कि C=100 हो। C, S और Fe के मान सारणी 36 से लिए गये हैं और N और P के मान इन्गलिश चैनल के शीतकालीन मान हैं। (7.2) लाइपिड्स में फॉसफोरस सान्द्रित है और प्रोटीन्स में नाइट्रोजन और फॉसफोरस कार्वन की तुलना में वहुत अधिक वृद्धि प्रदर्शित करते हैं। वास्तव में सल्फर, (गन्धक) जो कि सागर जल में अपेक्षाकृत प्रचुरता से पाया जाता है, जैविक पदार्थो में लाइपिड्स और प्रोटीन्स का एक अप्रधान अंग है; यह तथ्य इस ओर संकेत करता है कि यहां निर्देशन के लिये उपयोग में लाया जाने वाला तत्व कार्वन स्वयम् ही बहुत वड़ी मात्रा में सांद्रित है। सारणी 47 में दिए गये मान सामान्यतया औसत मान है और समुद्री जीवधारियों के लिए कुछ कम या अधिक भी हो सकते हैं। यहां यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि कार्बोहाइड्रेट, लाइपिड्स और प्रोटीन्स के अनुपात में परिवर्तन उस समानुपात को भी रूपान्तरित कर देगा जिस समानुपात में ये तत्व जल से हटाये जायेंगे। जीवधारियों द्वारा सांद्रित कई दूसरे तत्व –उदाहरण के तौर पर I (आयोडिन) Fe (लोहा) और Cu (तांबा)–सम्भवतया कार्बनिक पदार्थो के एक भाग का निर्माण करते हैं यावे कंकाल संरचनाओं में पाये जाते हैं; क्योंकि यह कहना कठिन है कि परवर्ती समुद्र जल की तुलना में शरीर तरल में इतने अधिक सांद्र स्वतंत्र आयन किस प्रकार रह सकते हैं।

सारणी 48 में कुछ प्रकारके कंकाल संरचनाओं का विश्लेषण दिया गया है। प्रत्येक स्थिति में कुछ कार्बनिक द्रव्य होता है, जो पिण्डीय पृष्ठ वर्मो (लोबस्टर कारापेस) में अधिकतम होता है और यह फॉस्फेटिक ब्राचियोपोड खोल (शैल) के भी एक बड़े भाग का निर्माण करता है। वास्तव में सम्पूर्ण जीवधारियों में अकार्बनिक कंकाल संरचनाओं के अनुपात की परास काफी विस्तृत होती है और कुछ स्थितियों में तो ऐसी संरचनायें पूर्णतया पाई ही नहीं जाती हैं। पहले तीन उदाहरण तो चूर्णमय हैं (केलकेरियस टाइप) जिनमें $CaCO_3$ अधिक मात्रा में उपस्थित रहता है, परन्तु कुछ समूहों में $MgCO_3$ खोल के एक महत्वपूर्ण भाग का निर्माण करता है। लोबस्टर को सामान्यतया आर्थ्रोपोड का प्रतिनिधि माना जा सकता है, यद्पि छोटी आकृतियों में कार्बनिक पदार्थो का अनुपात कहीं अधिक होता है। लोबस्टर में फ़ॉसफेट की मात्रा विचार योग्य और ब्राचियोपोड खोल (शैल) में जिसमें कैल्सियम फॉसफेट प्रचुरता से होता है लोबस्टर से भी कहीं अधिक होती है। स्पाइक्यूल स्पंज आभासी रूप से शुद्ध जलयुक्त सिलिका होती है और इसे डायटम और रेडियोलेरिया-कंकालों का प्रतिनिधी माना जा सकता है। दूसरे विश्लेषण में सिलिका, लोहा और ऐलुमिनियम सम्भवतया मिट्टी और धूलकणों के द्वारा पुर:स्थापित

सारणी 48

कंकाल पदार्थों की प्रतिशत रचना

[क्लार्क और वीलर (Clarck and Wheeler) के मानों से दुवारा संगणित, 1922]

पदार्थ	फोरैमिनिफेरा (ओरविटोलिटस मारजिनेटिस)	कोरल (ओक्यूलिना डिफ्यूजा)	चूर्णमय काई (लिथोफिलम एण्टीलेरम)	लोवस्टर (होमारस स्पीशीज)	फॉसफेटिक ब्राचिओपोड (डसीनिरका लेमेलौसा)	सिलीकामय स्पंज (यूप्लेक्टेला स्पेसिओसा)
Ca	34.20	38.80	31.00	16.80	26.18	0.16
Mg.	2·97	0.11	4.36	1 08	1.45	0.00
CO_3	59.70	58 00	62.50	22.40	7.31	0.24
SO_4	. . . .	. . . .	0.68	0.52	4 43	0.00
PO_4	tr	tr	tr	5.45	34 55	0 00
SiO_2.	0.03	0.07	0.04	} 0.30	0.64	88.56
$(Al,Fe)_2O_3$.	0.13	0.05	0.10		0.44	0.32
कार्वनिक पदार्थ, इत्यादि	2.27	3 27	1.32	53.45	25.00	10.72

अशुद्धियां निरूपित करते हैं। ये विश्लेषण पूर्ण नहीं माने जा सकते हैं और कुछ अन्य परीक्षण कम मात्राओं में पाये जाने वाले अन्य तत्वों की उपस्थिति प्रकट कर सकते हैं। यह ध्यान में रखना चाहिये कि इन विश्लेपणों में से किसी में भी सागर जल में अत्यधिक प्रचुरता से पाये जाने वाले तत्व क्लोरीन और सोडियम नहीं दर्शाये गये हैं। ये तत्व घुलनशील यौगिकों की रचना करते हैं और इसलिये ये कंकाल संरचनाओं के उपयुक्त नहीं हो सकते। सारणी 48 में यह देखा जा सकता है कि समुद्री जीवधारियों की कंकाल संरचनाओं का विकास या उनका सागर में पुन: घुलना निम्न तत्वों की सांद्रता को प्रभावित कर सकता है—कैल्सियम, मेगनिशियम कार्वन (कार्वोनेट के रूप में), सल्फर, फॉसफोरस और सिलिकन। समुद्री जल में अपेक्षाकृत अधिक प्रचुरता से पाये जाने के कारण मेगनिशियम और सल्फर के वितरण से जैव क्रिया पर किसी भी परिवोधक प्रभाव की आशा नहीं की जा सकती है, परन्तु ऊपर वर्णित कुछ अन्य तत्व कुछ ऐसे लक्षण दर्शाते हैं, जो इस तथ्य को वल प्रदान करते हैं कि वे तत्व कंकाल संरचनाओं के महत्वपूर्ण अंग हैं, चाहे वे ऐसा अशंत: ही करते हों।

शरीर तरल में प्रचुरता से पाये जाने वाले तत्वों की आपेक्षिक सांद्रता सागर जल में उन तत्वों की सांद्रता से अधिक भिन्न नहीं होती है। (सारणी 49) यद्यपि कम प्रचुरता से पाये जाने वाले तत्वों के वारे में अधिक ज्ञान नहीं है परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि शरीर तरल के अकार्वनिक अंश को कुछ परिवर्तित सागर जल माना जा सकता है। इसलिए जीवधारियों का यह भाग सागर जल की रचना को

रूपान्तरित करने में कोई परिबोधक भाग नही ले सकता। यद्द्पि कार्बनिक विलेयशील पदार्थों की संरचना और सांद्रता प्रस्तुत समस्या के लिए कोई विशेष महत्व नहीं रखती, फिर भी इन परिगुणों का विस्तार से अध्ययन परिसारक (रसाकर्षण) दाव सम्बन्धित समस्याओं (अध्याय VIII) के संदर्भ में समुद्री जीवधारियों के और पार्यावरन के बीच विलेयशील पदार्थों और जल के विनिमय की प्रक्रिया के सम्बन्ध में किया जायेगा। इन क्षेत्रों की समीक्षा रोजर्स (Rogers 1938) ने की है।

सारणी 49

शरीर तरल की आपेक्षिक रचना

[सोडियम=100 के लिये संमजित, रोबर्टसन Robertson के आंकड़ों के आधार पर, 1939]

तत्व	सागर जल	ऐचीनस एसक्युलेन्टस (समुद्री अर्चिन)	होमोरास वलगारिस (लोबस्टर)	केन्सर पेगूरस (क्रेब)
Cl........	180	182	156	156
Na	100	100	100	100
Mg	12.1	12.00	1.5	5.7
SO_4 में S	8.4	8.5	2.2	6.7
Ca	3.8	3.9	5.0	4.8
K........	3.6	3.5	4.7	4.0

अभी तक केवल जीवधारियों के विभिन्न अंगों का ही विचार किया गया है परन्तु किसी एक सम्पूर्ण पौधे या प्राणी पर विचार करना भी रूचिकर होगा। चूंकि पौधे अकार्बनिक पदार्थों के प्रमुख उपभोक्ता होते हैं इसलिए कुछ महत्वपूर्ण समूहों जैसे डायटम और पेरीडिनियन्स के बारे में ज्ञान प्राप्त करना वांछनीय होगा, परन्तु इन आकृतियों का पूर्ण विश्लेषण अभी तक नहीं हुआ है। अब तक प्राप्त सूचनाओं का विवेचन नीचे किया जायगा। प्राणियों के सम्बन्ध में प्राप्त आंकड़े भी पूर्ण नहीं हैं परन्तु सारणी 50 में तीन उदाहरण दिए गये हैं। आपेक्षिक रचना Na=100 के लिए समंजित की गई है और तुलना की सुविधा के लिए सागर जल के अंग भी उसी प्रकार दिये गये हैं। सागर जल में उच्च अनुपात में प्रचुरता से पाये जाने वाले तत्व, जो कि कोपीपोड विश्लेषण से पाये जाते हैं, मूल नमूने में काफी मात्रा में सागर जल की उपस्थिति की ओर संकेत करते हैं। चूंकि आर्चीडोरिस में आन्तरिक संरचना केल्केरियस किस्म की होती है इसलिये उसमें केल्सियम की मात्रा अधिक होती है। परिणामतः उपरोक्त दो स्थितियों में कार्बनिक पदार्थों को बनाने वाले मुख्य तत्वों के अनुपात कम होते हैं। तथापि यह सुस्पष्ट है कि कार्बनिक पदार्थों के प्रमुख्य अंगों जैसे कार्बन, नाइट्रोजन और फासफोरस की सांद्रता सागर जल में इन तत्वों की आपेक्षिक सांद्रता की तुलना में कहीं अधिक होती है।

सारणी 50

जलचरों की आपेक्षिक रचना

(Na = 100 के लिये समंजित)

तत्व	केलेनस (कोपीपोड) विनोग्रादोव 1938	मत्स्य[a] (मछलियां) औसत	आर्चीडोरिस ब्रिटेनिका (न्यूडीब्रॉन्च) मेकेन्स और मास्टरर्स 1937–38	सागर जल	'सांद्रता कारक'		
					कोपीपोड	मत्स्य (मछलियां)	न्यूडीब्रॉन्च
Cl	194	....	180	180	1.1	....	1.0
Na	100	100	100	100	1.0	1.0	1.0
Mg	5.6	36	156	12.1	0.46	3.0	12 9
S	25 9	259	7.1	8.4	3.1	31	0.85
Ca	7.4	52	262	3.8	1.9	13.7	69
K	53.7	383	20	3.6	15	109	5.5
Br	1.7	....	....	0.6	....	....	3
C	1113	ca 4100	ca 480	0.26	4,300	15,800	1,850
Sr	....	....	11	0.12	....	....	92
Si	1.3	....	....	0.001[b]	13.000	....	....
F	....	....	69	0.01	....	....	6,900
N	280	1276	107	0.001[b]	280,000	1,276,000	107,000
P	24.1	256	6	0.0001[b]	241,000	2,560,000	60,000
I	0.04	....	....	0.0005	.80	....	....
Fe	1.3	1.3	0.23	0.0002[c]	6,000	6,000	1,000
Mn	....	0.0008	....	0.0001[c]	....	8	....
Cu	....	0.008	0.43	0.0001[c]	....	80	4,300

a. जौवेट और डेविस (1938) व क्लीमेन्टस् और हचिन्सन (1939) के विश्लेषणों के आधार पर
b. इन्गलिश चैनल में शीतकालीन मान
c. सारणी 36 की तुलना में उच्च मान

यदि इन प्राणियों में विभिन्न तत्वों की आपेक्षिक राशियों में इन्हीं तत्वों की सागर जल में पाई जाने वाली आपेक्षिक राशि का भाग दिया जाये तो 'सांद्रता कारकों' (सांद्रता घटकों) की एक श्रेणी प्राप्त होगी। ये आपेक्षिक राशियां सोडियम के संदर्भ में है परन्तु यदि इनको क्लोरीन के संदर्भ में किया जाये तो भी परिणामों पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा। मछलियों में फॉसफोरस के लिए इन सांद्रता कारकों की परास इकाई से लेकर 20 लाख तक होती है और इन तीनों स्थितियों में इनका मान नाइट्रोजन और फॉसफोरस के लिये अधिकतम होता है। यदि यह मान लियाजाये कि सब पदार्थों के वितरण की दर और जीवधारियों द्वारा उनके अवशोषण कीदर केवल प्रस्तुत आयनों की सांद्रता पर ही निर्भर करती है तो सांद्रता कारक उनके संचय के लिए आवश्यक समय का मान होंगे। अधिकतम सांद्रता कारक रखने वाले तत्व वे तत्व होंगे जो कि वृद्धि की दर को सीमित करते हैं सारणी 50 में संग्रहित आंकड़े यह संकेत करते हैं कि सागर में नाइट्रोजन और फॉसफोरस ही सीमित करने वाले तत्व हो सकते हैं, हालांकि यह ध्यान रखना चाहिये कि ये आंकड़े प्राणियों के बारे में हैं जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से तत्वों का भंडार पौधों से प्राप्त करते हैं। यदि सागर में विद्यमान सम्पूर्ण कार्बन को संदर्भ तत्व माना जाता तो केवल नाइट्रोजन और फॉसफोरस का ही घटक सार्थिक तौर पर सबसे बड़ा होता। परन्तु यह सुस्पष्ट है कि सागर में पाये जाने वाले मुख्य तत्वों की तुलना में कार्बन स्वयम् ही एक हजार गुणा से भी अधिक सांद्र है। सारणी 50 के अनुसार निम्न तत्वों की आपेक्षिक सांद्रता जैव क्रिया के कारण काफी प्रभावित होती है :—कार्बन, सिलिकन फ्लोरीन, नाइट्रोजन फॉसफोरस, आइरन, (लोहा) और कोपर (तांबा)। यदि विश्लेषण पूर्ण होते अथवा कुछ अन्य प्रकार के जीवधारियों का परीक्षण भी किया जाता तो शायद उपरोक्त सारणी में कुछ और तत्व सम्मिलित किये जा सकते थे।

सारणी 51
प्लैंक्टन जीवधारियों की आपेक्षिक संविरचना

तत्व	सागर जल	डायटम	पेरीडिनियन्स	कोपीपोड	सांद्रता कारक (कार्बन से संदर्भित)		
					डायटम	पेरीडिनियन्स	कोपीपोड
C	100	100	100	100	1	1	1
N	0.5[a]	18.2	13.8	25.0	36	28	50
P	0.05[a]	2.7	1.7	2.2	54	34	44
Fe.....	0.07[a]	9 6	3.4	0.13	137	49	2
Ca.....	1420	12.5	2.7	0.66	0.01	0.002	0.0005
Si	0.4[c]	93.0	6.6	0.13	232	19	0.3

(a) इंगलिश चैनल में शीतकालीन मान।
(b) सारणी 36 की तुलना में उच्च मान।

सारणी 51 में डायटम, कोपीपोड और पेरीडिनियन्स में पाये जाने वाले कुछ तत्वों की आपेक्षिक सान्द्रता दी गई है जो कि कार्बन=100 के मान द्वारा समंजित है। प्रकाश संश्लेषी आकृतियों के लिए आंकड़े विनोग्रादोव (Vinogradov 1935) के आंकड़ों से संगणित किये गये हैं और कोपीपोडस के लिए ये सारणी 50 में दिये हुए आंकड़ों के समान है। इन तीनों आकृतियों के लिए नाइट्रोजन और फॉसफोरस के सांद्रता कारक लगभग समान है। डायटम में सिलिकन का कारक अधिकतम होता है जबकि लोह (आयरन) की मात्रा अत्याधिक होती है जो ये भी सकेत कर सकते हैं कि ये तत्व वृद्धि की दर को भी सीमित करते हैं। पेरीडिनियन्स में नाइट्रोजन, फॉसफोरस और लोह केकारक लगभग समान होतेहै।

जैव क्रियाओं द्वारा जिन तत्वों का वितरण प्रभावित होता है उनके बीच अंतः सम्बन्ध

सागर में रहने वाले जीवधारियों की आपेक्षिक संविरचना के सागर जल से भिन्न होने के कारण उनकी वृद्धि सागर जल की रचना को रूपान्तरित कर देती है। जैव क्रियाओं द्वारा अकार्बनिक पदार्थो का पुनर्जनन अन्त में तत्वों को पुन: घोल को लौटा देगा, परन्तु सामान्यतया यह प्रभाव विपरीत दिशा में, विभिन्न समय पर, सागर जल के विभिन्न स्तम्भों में होता है। सारणी 50 और 51 यह प्रदर्शित करती हैं कि बहुत ही कम सान्द्रता में विद्यमान कुछ तत्व जैसे नाइट्रोजन, फॉसफोरस सिलिकन और आयरन, ऐसे तत्व हैं जिनकी अपेक्षाकृत सर्वाधिक राशि निष्काषित होती है। पौधों के पोषक कहलाने वाले इन तत्वों का वितरण जैव क्रिया द्वारा सबसे अधिक प्रभावित होता है, वस्तुत: इनकी सान्द्रता लवणता पर निर्भर नहीं करती और इन तत्वों को सामान्यतया, कुल घुले हुए ठोस के साथ स्थिर अनुपात रखने वाले तत्वों की तुलना में, विनाशी तत्व कहा जाता है।

पौधे अर्कावनिक पदार्थों के सर्वाधिक महत्वपूर्ण 'उपभोक्ता' है। उनकी क्रियाएँ सागर की ऊपरी परतों (यूफ़ोटिक जोन) तक ही सीमित रहती है, जहाँ उन्हें प्रकाश संश्लेषण के लिये काफी प्रकाश प्राप्त हो सकता है। तटवर्ती क्षेत्रों में यूफोटिक परतों की मोटाई केवल कुछ मीटर ही हो सकती है और खुले सागर में भी जहाँ जल की पारदर्शिता काफी अधिक होती है, पौधों की वृद्धि केवल कुछ सौ मीटर गहराई तक ही सीमित है। (अध्याय 16) यूफोटिक परत के नीचे रहने वाले प्राणी ककाल संरचनाओं के स्रोतों के लिये आवश्यक तत्व घोल से प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु पदार्थों का एक बहुत बड़ा भाग प्राणी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उन पौधों से प्राप्त करते हैं जो सागर पृष्ठ के निकट विकसित होते हैं। पौधों प्राणियों और वेक्टीरिया की उपापचय क्रियाएँ तत्वों को अर्कावनिक रूप में लौटा देती हैं। पुनर्जनन का एक अंश तो यूफोटिक परत में ही होना चाहिए, परन्तु जीवित या मृत विविक्त द्रव्य की गति सामान्यतया नीचे की ओर होती है, परिणामत: तत्व पृष्ठीय

परत से सतत स्थानान्तरित होते रहते हैं। अब तक किये गये वर्णन से यह प्रतीत होगा कि तत्व केवल पृष्ठीय परत से लगातार नीचे की ओर ही जाते रहते हैं और यूफोटिक क्षेत्रों में तत्वों के नवीयन के लिये कोई भी क्रिया कार्यरत नहीं है। अवक्षेपण और नदियां भी इन तत्वों की राशि में कुछ योगदान करती हैं, परन्तु यह राशि पृष्ठीय परत तक ऊर्ध्वाधर विसरण, अपकूपिता और संवहन द्वारा उलट-पलट आदि क्रियाओं से लाये गये तत्वों की अपेक्षा नगण्य होती है। जिन क्षेत्रों में ये क्रियाएँ कार्यरत होती हैं वहाँ पोषक पदार्थ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रहते हैं, ऐसे क्षेत्र बहुत बड़ी जीवसंख्या का पालन कर सकते हैं और खुले सागरों की तुलना में जहाँ पोषक पदार्थ बहुत कम मात्रा में उपलब्ध होते हैं ये क्षेत्र बहुत अधिक उत्पादक कहलाते हैं।

हार्वे के एक पुराने सुझाव के आधार पर रेडफील्ड (Redfield, 1934) ने यह दर्शाया कि सागर जल में प्रस्तुत नाइट्रेट में नाइट्रोजन और फॉस्फेट में विद्यमान फॉस्फोरस के बीच उनकी चरम सांद्रताओं के बावजूद भी एक स्थिर अनुपात होता है और जिस अनुपात में ये तत्व सागर में पाये जाते हैं जीवधारी उसी अनुपात में इन तत्वों को सागर से प्राप्त करके मृत्युपरान्त घोल को पुनः उसी अनुपात में लौटा देते हैं। कूपर (Cooper 1938 a) ने यह संकेत करते हुए इन तत्वों का एक रूपान्तरित अनुपात प्रस्तावित किया कि रेडफील्ड के फॉस्फोरस सम्बन्धित आंकड़े लवण त्रुटि के लिये संशोधित नहीं हैं। फ्लेमिंग (Fleming 1940) ने कुछ और आंकड़ों के परीक्षण के आधार पर प्लैन्कटन में नाइट्रोजन और फॉस्फोरस के बीच एक कुछ भिन्न ही सम्बन्ध प्रतिपादित किया। कार्बन के साथ अन्य दोनों तत्वों (N,P) का सम्बन्ध दर्शाने वाले ये एक आंकड़े सारणी 52 में संग्रहित हैं।

सारणी 52

प्लैन्कटन और सागर जल में C : N : P का अनुपात

सूचना का स्रोत	भार के आधार पर			परमाणुओं के आधार पर		
	कार्बन	नाइट्रोजन	फॉस्फोरस	कार्बन	नाइट्रोजन	फासफोरस
रेडफील्ड (1934) प्लैन्कटन	53.2	8.2	1	...	...	...
रेडफील्ड (1934) सागर जल	...	9.0	1	...	20	1
कूपर (1938 a) सागर जल	...	6.8	1	...	15	1
फ्लेमिंग (1940) फायटोप्लैन्कटन	42	7 0	1	...	...	...
फ्लेमिंग (1940) जूप्लैन्कटन	40	7.4	1	...	...	...
फ्लेमिंग औसत प्लैन्कटन	41	7.2	1	106	16	1

सागर जल में नाइट्रोजन और फॉस्फोरस के बीच अनुपात दर्शाने वाले उपरोक्त आंकड़े काफी शुद्ध हैं (चित्र 51), परन्तु चूंकि ये जैव क्रियाओं के निवल प्रभाव निरूपित करते हैं इसलिये भिन्न-भिन्न जीवधारियों के लिये अनुपात के बीच बहुत अधिक अन्तर पाया जा सकता है। तथापि ये अनुपात समुद्री जीवधारियों में तत्वों सम्बन्धी परिमाणों के क्रम की ओर संकेत करते हैं।

इन सम्बन्धों की उपयोगिता बढ़ाने के लिये इन तत्वों के साथ ऑक्सीजन को भी सम्मिलित करना चाहिए। सन्निकटन के लिये यह कल्पना की जा सकती है कि कार्बन के प्रत्येक परमाणु के ऑक्सीकरण के लिये ऑक्सीजन के दो परमाणुओं की आवश्यकता होती है और प्रकाश संश्लेषण में कार्बनिक पदार्थों में कार्बन का प्रत्येक परमाणु ऑक्सीजन की समान मात्रा निर्मुक्त करता है। गिब्सन के अनुसार नाइट्रोजन के ऑक्सीकरण और अवकरण को ध्यान में रखते हुए ऑक्सीजन की राशि में 25 प्रतिशत की वृद्धि कर देनी चाहिए, परन्तु यह घटक यहाँ पुरःस्थापित नहीं किया गया है : इसलिये

परमाणुओं के आधार पर : O:C:N:P = 212:106:16:1
भार के आधार पर : O:C:N:P = 109:41:7 2:1

यूफोटिक परत में फॉसफोरस का प्रत्येक मिलिग्राम जो कि प्रकाश संश्लेषण में काम में आता है के लिये उपरोक्त अनुपातों के अनुसार पौधों को 7.6 मिलिग्राम नाइट्रोजन (मुख्यतया नाइट्रेट के रूप में) और 76 मि.ली. CO_2 की आवश्यकता होगी और निर्मुक्त ऑक्सीजन का आयतन भी CO_2 के समान होगा। निचली परतों में जहाँ पुनर्जनन होता रहता है वहाँ 76 मि ली. ऑक्सीजन का उपयोग तदनुरूपी CO_2 N और P की राशियों को निर्मुक्त कर देगा। 5° से. ग्रे. ताप पर जल में ऑक्सीजन की संतृप्ति राशि का मान 7.0 मि०ली० प्रति लीटर है; इसलिये लगभग इस ताप के उपपृष्ठीय जल में उपस्थित ऑक्सीजन का यदि पूर्ण उपभोग कर लिया जाये तो यह आसानी से देखा जा सकता है कि NO_3 में N और PO_4 में P की मात्रा में वृद्धि क्रमशः लगभग 50 माइक्रोग्राम परमाणु/लीटर और (0.650 मि० ग्रा० /ली०) और 3.0 मि० ग्रा० परमाणु/ली० (0.090 मि० ग्रा०/ली०) होगी। ये राशियां सागर में अब तक पाये गये मानों की तुलना में सर्वाधिक हैं। यदि सागर पृष्ठ को छोड़ने वाला जल ऑक्सीजन से पूर्णतया संतृप्त और नाइट्रेट और फॉसफोरस रिक्त हो तो यह आशा करनी चाहिये कि गहरे जल में आक्सीजन क्षय और इन पदार्थों की राशि में कोई निकट सम्बन्ध अवश्य होगा। (संतृप्त मान और प्रेक्षित राशियों के बीच अन्तर)। निम्न अक्षांशों में उस जल के लिये जो पृष्ठ को छोड़ चुका हो ऐसा सम्बन्ध पाया जाता है, परन्तु उच्च अंक्षाशों पर डूबने वाला जल आक्सीजन से संतृप्त
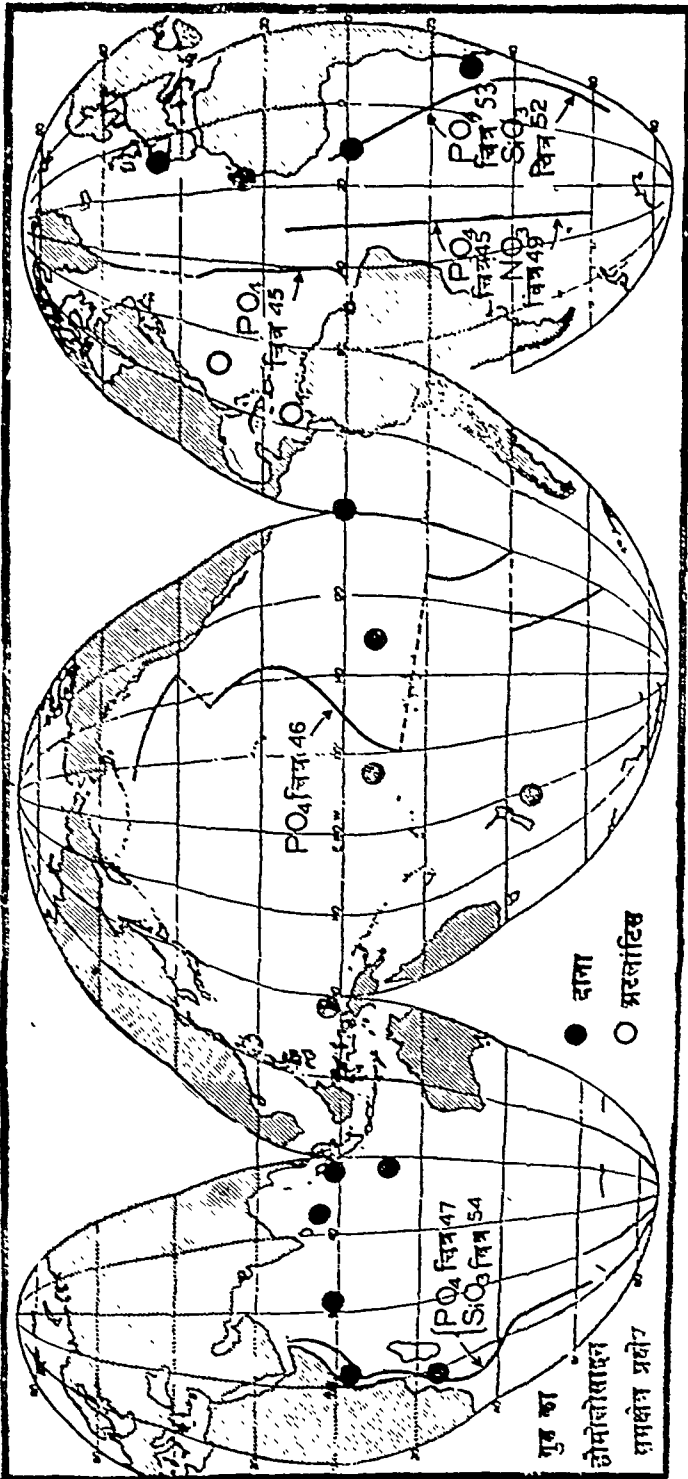
चित्र 44 :—महासागरों में फास्फेट, नाइट्रेट, और सिलिकेट के विवरण को दर्शाने के लिये प्रयुक्त ऊर्ध्वाधर अनुभाग और स्टेशनों की स्थितियें

होने के साथ साथ काफी पोषक तत्व भी रखता है, इसलिये आक्सीजन क्षय और पोषक तत्वों के बीच सम्बन्ध इस प्रकार होगा :—

$$\text{पोषक अंग} = V + \text{स्थिरांक} \times O_2 \text{ का क्षय}$$

जहां V पृष्ठ से नीचे की ओर डूबने वाले जल में एक चर राशि है। उपपृष्ठीय गहराइयों पर जिन क्षेत्रों में निम्नतम ऑक्सीजन अंग की एक अलग परत होती है, उन क्षेत्रों में नाइट्रेट और फॉसफेट की अधिकतम मान वाली परतें भी इस ऑक्सीजन निम्नतम परत के ऊपर या नीचे पाई जाती हैं।

कठोर 'अकार्बनिक' के काल संरचनाओं के लिये उपरोक्त व्याख्या आवश्यक रूप से लागू नहीं होती है। जीवधारी केल्सियम कार्बोनेट और सिलिका दोनों का उपयोग यूफोटिक परत या अन्य स्थानों पर करते हैं, परन्तु Ca,C (CO_3 के रूप में) और Si के उपयोग का अनुपात (माना फॉसफेट में पाये जाने वाले फॉसफोरस के संदर्भ में) जीवधारियों के गुणधर्म पर निर्भर करता है। जैसा कि पहले ही (7.3) संकेत किया जा चुका है Ca CO_3 पृष्ठ परतों से हटा दिया जाता है, यह Si O_2 के लिये भी लागू होता है। यद्यपि जिन क्षेत्रों में नाइट्रेट के रूप में N और फॉस्फेट के रूप में P कम होता है उन क्षेत्रों में सामान्यतया Si का क्षय होता है, परन्तु चूर्णमय (केल्केरियस) और सिलकामय (सिलीसियस) संरचनाओं का पुनः घोलन आवश्यक रूप से जीवधारियों के गर्भ भागों में पाये जाने वाले तत्वों के विघटन और पुनर्जनन के समानान्तर नहीं होता है। इसलिये सागर में Si के सामान्य वितरण में और फॉसफेट व नाइट्रेट के सामान्य वितरण में कुछ अन्तर होता है और Si और नाइट्रोजन व Si और P का अनुपात परिवर्तनीय होता है।

फॉसफेट, नाईट्रोजन के यौगिकों और सिलिकेट का सागर में वितरण

चित्र 44 में संकेतित तीन महासागरों में स्थित ईलाकों में फॉसफोरस का वितरण ऊर्ध्वाधर देशान्तर खण्डों के द्वारा दर्शाया जा सकता है। ये निरूपन ऊर्ध्वाधर वितरण के मुख्य लक्षण ही दर्शाने के लिए बनाये गये हैं इसलिए इनमें कई छोटी विषमताओं को छोड़ दिया गया है। अटलांटिक महासागर वाला खण्ड दक्षिण गोलार्द्ध में 'डिसकवरी' (डेकन Deacen, 1933), उत्तर अटलांटिक में 'अटलांटिस' (सैवेल, Seiwell, 1933) और उत्तरी ग्रीनलैन्ड के क्षेत्रों मे 'मिटिओर' (डिफान्ट, Defant et. al. इत्यादि, 1936) के आंकड़ो पर आधारित है। प्रशान्त महासागरीय खंड की रचना दक्षिण ध्रुवीय प्रदेशों में 'डिसकवरी' के प्रेक्षणों (क्लॉव्ज, Celowes, 1938) और कारनेगी (प्रेस में) के आंकड़ों के आधार पर की गई है।
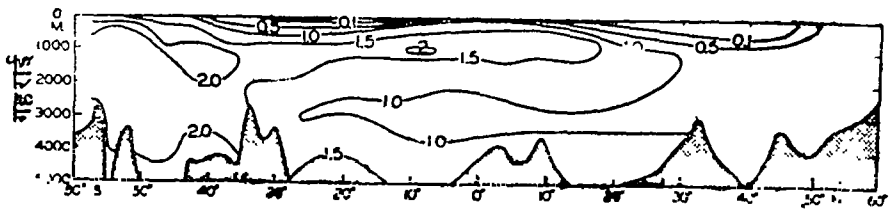
चित्र 45 : केन्द्रीय दक्षिणी ध्रुव महासागर में फॉसफेट वितरण का अनुलम्ब काट इकाई :-माईक्रोग्राम परमाणु फॉसफोरस प्रति 20° लीटर।

इन खंडों के परीक्षण और चित्र 48 और 49 में ऊर्ध्वाधर वितरण वक्रों के अनुसार फॉसफेट और नाइट्रेट का सामान्य वितरण चार विभिन्न परतों द्वारा लक्षित होता है (1) एक पृष्ठ परत जिसमें सांद्रता कम होती है और जो गहराई के साथ अपेक्षाकृत समरूप होती है (2) एक ऐसी परत जिसमें सांद्रता गहराई के साथ तीव्रता से बढ़ती है (3) एक अत्याधिक सांद्रता वाली परत जो 500 और 1500 मीटर गहराई के बीच कहीं भी पाई जा सकती है, और (4) एक मोटी तल परत जिसमें गहराई के साथ परिवर्तन अपेक्षाकृत कम होते है ।
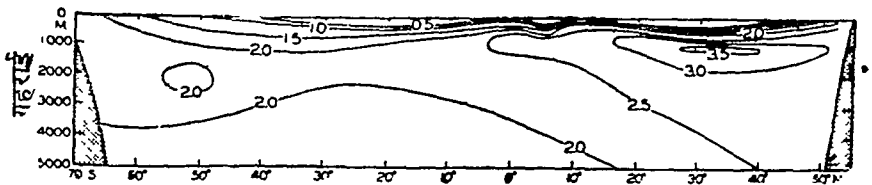
चित्र 46 :—प्रशान्त महासागर में फॉसफेट के वितरण का एक अनुलम्ब काट । इकाई माइक्रो ग्राम परमाणु फॉसफोरस प्रति 20° लीटर।

चित्र 45, 46 और 47 का परीक्षण यह दर्शाता है कि दोनों गोलार्द्धों में मध्य अक्षांशों पर पृष्ठ परत सबसे अधिक मोटी होती है,—अर्थात इन प्रदेशों में वर्धमान सांद्रता की एक सुस्पष्ट परत होती है, और प्रवणता बहुत ही अधिक होती है। विषुवत रेखीय और निकटवर्त्ती अपसरणों से सम्बद्ध पृष्ठ परत पतली और अधिक ढालू प्रवणता वाली होती है। यह विशिष्ठता चित्र 198 मे बहुत ही स्पष्टता से दिखलाई गई है जिसमें प्रशान्त महासागर में विषुवतरेखीय धाराओं के पार एक खंड चित्र में 300 मीटर गहराई तक गुणधर्मो का वितरण दर्शाया गया है। उच्च अक्षांशों में (लगभग 50° से ऊपर) जहां निम्न सांद्रता वाली पृष्ठ परत और तीव्र वर्धमान वाली परत पूर्णतया लुप्त हों, फॉसफेट के उच्च मान पृष्ठ पर ही पाये जाते हैं।
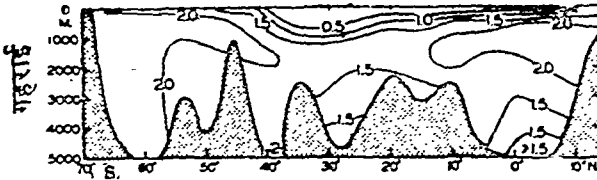
चित्र 47 :—पश्चिम हिन्द महासागर के एक अनुलम्ब काट चित्र में फॉसफेट का वितरण । इकाई : फॉसफोरस के माइक्रो ग्राम परमाणु 20° लीटर ।

अटलांटिक महासागर में फॉसफेट की उच्चतम मात्रा (लगभग 2 मा० ग्राम परमाणु प्रति लीटर), दक्षिण ध्रुव महासागर से उत्तर की ओर फैली हुई लगभग 1000 मीटर गहराई पर केन्द्रित मध्य परतों में पाई जाती है । 1000 मीटर या इससे अधिक गहराई के निकट फॉसफेट की सांद्रता में दक्षिण से उत्तर की ओर एक क्रमिक ह्रास पाया जाता है । फॉसफोरस की अत्यधिक सांद्रता वाली परत के निचे 0.1 मा० ग्राम परमाणु/लीटर की एक निम्नतम सांद्रता वाली परत दक्षिण दिशा की ओर फैली रहती है । दक्षिण ध्रुव महासागर में महासागर के उत्तरी भागों की अपेक्षा फॉसफोरस की मात्रा दुगुनी होती है । अटलांटिक महासागर के ऊपरी 50 मीटर के भीतर फॉसफेट के वितरण में प्रदेशीय अन्तर चित्र 217 में दर्शाये गये हैं । इस प्रकार के अन्तर प्लैंकटन के वितरण में काफी महत्वपूर्ण होते हैं । दक्षिण अटलांटिक महासागर के एक अनुप्रस्थ खण्ड में परिवर्तन चित्र 218 में दर्शाये गये हैं, इस चित्र में कम फॉसफेट मात्रा वाली पृष्ठ परत की परिवर्तनीय मोटाई प्रदर्शित है । प्रशान्त महासागर में फॉसफेट वितरण के कई ऐसे लक्षण होते हैं जो अटलांटिक महासागर में नहीं पाये जाते हैं और आशानुसार दक्षिण ध्रुव महासागर में भी प्रायः समान ही परिस्थितियां पाई जाती हैं । हालांकि प्रशान्त महासागर में अधिकतम मात्रा दक्षिण गोलार्द्ध में नहीं पाई जाती जैसा कि अटलांटिक महासागर में होता है, परन्तु विषुवत रेखा के उत्तर में जहाँ विद्यमान मात्रा दक्षिण ध्रुव महासागर में पाई जाने वाली मात्रा की दुगुनी होती है । (क्रमशः 3.5 मा० ग्राम परमाणु/लीटर और 2.0 मा० ग्राम-परमाणु/लीटर) इससे भी अधिक प्रशान्त महासागर में फॉसफेट की अधिकतम मात्रा वाली परत के नीचे कोई सुस्पष्ट निम्नतम मात्रा वाली परत भी नहीं पाई जाती । प्रशान्त के गहरे जल में अटलांटिक की तुलना में सामान्यतया अधिक फ़ॉसफ़ेट की मात्रा होती है । दोनों महासागरों में फॉसफेट के वितरण में पाये जाने वाले अन्तर के गुणधर्मों को गहरे जल के संचार के द्वारा समझा जा सकता है, कि प्रशान्त महासागर के जल में विलीन आक्सीजन की मात्रा द्वारा भी प्रदर्शित होता है । यह अन्तिम लक्षण मुख्यतया उत्तरी गोलार्द्ध में ही अधिक स्पष्ट दिखलाई देता है ।

हिन्द महासागर में फॉसफेट की मात्रा (चित्र 47) अटलांटिक महासागर की अपेक्षा अधिक परन्तु प्रशान्त महासागर की तुलना में कुछ कम है। दक्षिण अक्षांशों में मध्य अधिकतम मान अटलांटिक महासागर से सम्बद्ध है और विषुवत प्रदेशों में अधिकतम मान उत्तर प्रशान्त से सम्बद्ध है चूंकि यह जल में विलीन भिन्न आक्सीजन मात्रा से सम्बन्धित है। 40° दक्षिण के उत्तर में सब अक्षांशों पर लगभग 3500 मीटर गहराई पर यह निम्नतम मान सुस्पष्ट है।
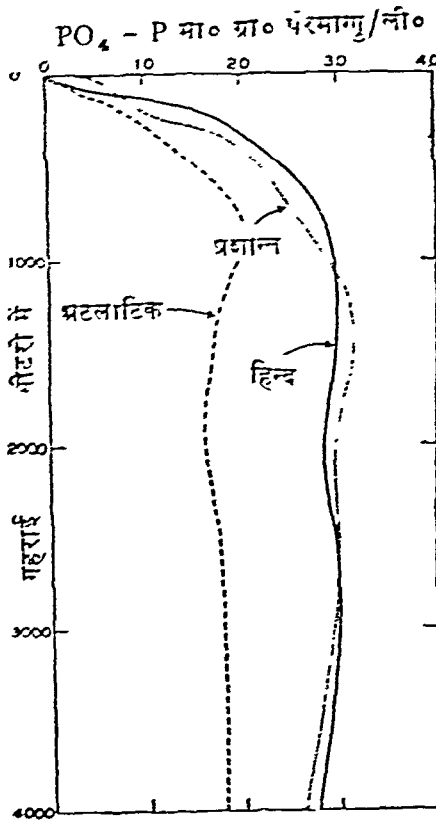
चित्र 48 :—चित्र 44 में दर्शाये केंद्रों से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर अटलांटिक, प्रशान्त और हिन्द महासागरों में फॉसफेट का उर्ध्वाधर वितरण।

चित्र 48 में तीनों महासागरों में फॉसफेट की सांद्रता में अन्तर निर्देशित है जो 'दाना' (थोमसन Thompson 1931) द्वारा पृथ्वी की परिक्रमा करते समय एकत्रित आंकड़ों और पूर्व उत्तरी अटलांटिक महासागर में 'अटलांटिस' (रेकेस्ट्राव और स्मिथ Reckestraw and Smith, 1937) के आधार पर चित्रित किया गया है। प्रत्येक सागर में छः केन्द्रों पर लिये गये प्रेक्षणों की औसत मान को लवण त्रुटि के लिए परिशुद्ध कर लिया गया है, (सम्बन्धित इलाके चित्र 44 में दर्शाये गये हैं) इसलिए विभिन्न खडों में दिये गये मानों की अपेक्षा ये मान कुछ अधिक हैं। यहां चरम मानों को अत्याधिक महत्व नहीं देना चाहिये क्योंकि इस चित्रण का उद्देश्य केवल तीनों सागरों में उर्ध्वाधर वितरण के लक्षण ही प्रदर्शित करना और इस बात को बल प्रदान करना है कि अटलांटिक महासागर की तुलना में हिन्द और प्रशांत महासागरों में फॉसफेट की मात्रा अधिक होती है। मध्य और निम्न अक्षांशों पर किसी विशेष केन्द्र से प्राप्त आंकड़े बहुधा एक सुस्पष्ट मध्यवर्त्ती अधिकतम दर्शाते हैं।

सागर के विभिन्न भागों में प्रेक्षणों की कमी के कारण फॉसफेट की तरह नाइट्रेट के खंड चित्र बनाना असम्भव है। 'दाना' (थोमसन, Thompson, 1931)
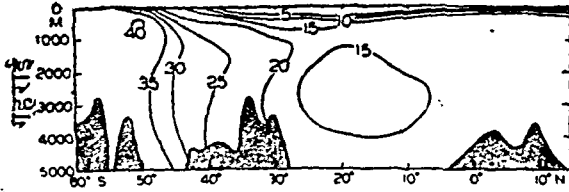
चित्र 49 :—केन्द्रीय अटलांटिक महासागर में नाइट्रेट वितरण का अनुलम्ब काट । इकाइयां :—मा० ग्राम परमाणु/लीटर ।

'डिसकवरी' (डिसकवरी रिपोर्ट Discovery reports 1932), डैकन (Deacon 1933) 'मिटियोर' द्वारा दक्षिण ग्रीनलैंड के दक्षिण में (डिफान्ट इत्यादि, 1936) और 'अटलांटिस' द्वारा नाइट्रेट के बारे में काफी आंकड़े एकत्रित किये गये हैं परन्तु अनुलम्ब काट चित्र बनाने के लिये ये आंकड़े पर्याप्त नहीं हैं । अटलांटिक महासागर के दक्षिणी भागों में नाइट्रेट वितरण के कुछ लक्षणों को दर्शाने के लिये चित्र 49 बनाया गया है । फॉस्फेट और नाइट्रेट के वितरण में आशानुसार ही विचारयोग्य साम्य है, यद्यपि नाइट्रेट के लिये मध्यस्थ अधिकतम सुस्पष्ट नहीं है । दक्षिण ध्रुव महासागर में नाइट्रेट बहुत अधिक मात्रा में पाया जाता है । उत्तरी अटलांटिक सागर से प्राप्त आंकड़े यह संकेत करते हैं कि नाइट्रेट के वितरण का गुणधर्म फॉस्फेट के वितरण के समान ही है—जैसे कि सान्द्रता दक्षिण गोलार्द्ध की अपेक्षा केवल आधी मात्रा में ही विद्यमान है ।
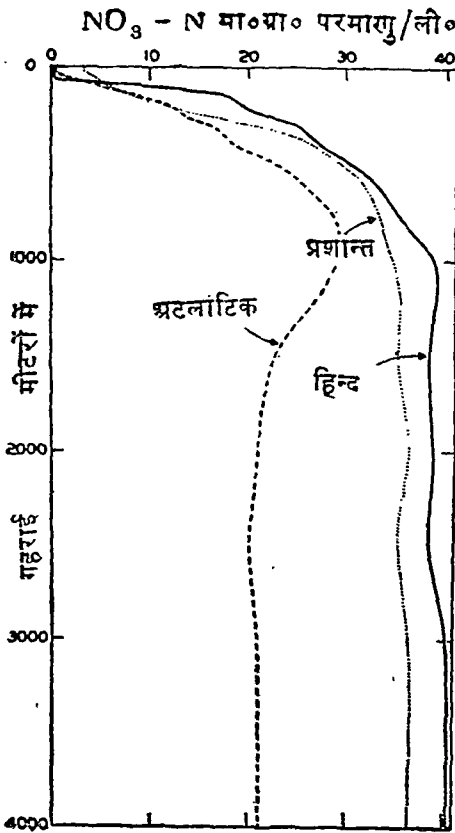
चित्र :—50 चित्र 44 में बताये हुए स्टेशनों से प्राप्त आंकड़ों पर आधारित अटलान्टिक, प्रशान्त, और हिन्द महासागर में नाइट्रेट का ऊर्ध्वाधर वितरण ।

'दाना' और 'अटलांटिस' के प्रेक्षणों के आधार पर तीनों सागरों के लिये नाइट्रेट के वितरण वक्र जिनकी फॉस्फेट के लिये दर्शाये गये वक्रों से तुलना की जा सकती है चित्र 50 में प्रदर्शित हैं । यहां पर चरम मानों पर अधिक ध्यान नहीं देना चाहिये, परन्तु ये वक्र

स्पष्टतया अटलांटिक महासागर की तुलना में प्रशान्त और हिन्द महासागर में उच्च नाइट्रेट मात्रा और ऊर्ध्वाधर वितरण के विशेष गुणधर्म को प्रदर्शित करते हैं। बीच के और निम्न अक्षांशों पर विशेष केन्द्रों से प्राप्त आंकड़े 300 मीटर और 1500 मीटर गहराई के बीच एक मध्यवर्ती अधिकतम दर्शाते हैं।

चित्र 51 :—तीनों सागरों में फॉस्फेट और नाइट्रेट के बीच सम्बन्ध। बिन्दु, चित्र 48 और 50 से लिये गये आंकड़ों का विशेष गहराइयों पर औसत मान निरुपित करते हैं और सरल रेखा कूपर द्वारा प्रतिपादित 'सामान्य' अनुपात निरूपित करती है।

इस तथ्य पर बार बार बल दिया गया है कि नाइट्रेट और फॉस्फेट की सांद्रता के वितरण में बहुत अधिक समानता है। चित्र 51 में यह सम्बन्ध चित्र 48 और 50 में प्रस्तुत फॉस्फेट और नाइट्रेट के औसत आंकड़ों को एक दूसरे के विरुद्ध आलेखित करके बहुत ही सुन्दरता से दर्शाया गया है। यह तुरन्त ही देखा जा सकता है कि दोनों पदार्थों के बीच एक सरल रैखिक सम्बन्ध है। सरल रेखा कूपर (1938a) द्वारा प्रस्तावित नाइट्रोजन और फॉस्फोरस का सामान्य अनुपात निरुपित करती है जो कि 15:1 परमाणु है। यदि नाइट्रेट और फॉस्फेट दोनों में से किसी एक की भी सान्द्रता ज्ञात हो तो दूसरे की सांद्रता उपरोक्त सम्बन्ध की सहायता से काफी परिशुद्धता के साथ निकाली जा सकती है, और जैसा कि पहले भी संकेत किया जा चुका है कि इन तत्वों की सान्द्रता और ऑक्सीजन क्षय के बीच एक सम्बन्ध पाया जाता है।

विभिन्न अकार्बनिक आकृतियों में नाइट्रोजन की मात्रा की परास (7.5) इस प्रकार है :—

NO_3-N = 0.1–4.3 मा० ग्राम परमाणु/ली. = 1–600 माइक्रो ग्राम/ली.
NO_2-N = 0.1–3.5 ,, = 0.1–50 ,,
NO_3-N = 0.35–3.5 ,, = 5.50 ,,

नाइट्रेट अकार्बनिक नाइट्रोजन का बहुतायत से पाया जाने वाला रूप है और जैसा कि चित्र 50 में दर्शाया गया है, नाइट्रोजन पृष्ठ और पृष्ठ के निकट सबसे कम मात्रा में और गहरे जल में काफी मात्रा में पाई जाती है। नाइट्राइट और ऐमोनिया जो सर्वदा अल्प सान्द्रता में पाये जाते हैं का वितरण नाइट्रेट के वितरण से इस प्रकार

भिन्न होता है कि इनके उच्च मान या तो थर्मोक्लाइन (Thermocline) में या उसके ऊपर ही पाये जाते हैं। छिछले पानी में नाइट्रेट पैंदे के निकट भी पाया जा सकता है, परन्तु सामान्यतया यह जल स्तम्भों में अनुपस्थित ही रहता है। गहरे जल में ऐमोनिया की मात्रा अपेक्षाकृत अल्प और समरूप होती है। राकेस्ट्रा (Rakestraw 1939) और रेड्फिल्ड और कीज (Redfield and keys, 1938) के आंकड़ों के अनुसार तट से दूर गहरे जल में इन पदार्थो की मात्रा कम होती है। केप कोड और बेरमूडा के बीच स्थित एक केन्द्र पर नाइट्राइट केवल 75 मीटर पर पाया गया और ऐमोनिया की मात्रा पृष्ठ और 4000 मीटर गहराई के बीच 0.3 से 0.6 माइक्रो-ग्राम-परमाणु प्रति लीटर के बीच अनियमितता से परिवर्तित होती पाई गई। वाशिंगटन और कनाडा के पश्चिमी तट के निकट रोबिन्सन और वर्थ के अनुसार (Robinsons and Wirth 1938 b) ऐमोनिया की औसत मात्रा पृष्ठ के समीप सर्वाधिक (1.5 मा. ग्रा.-पर. प्रति लीटर) थी। मोबर्ग और फ्लेमिंग (Moberg and Fleming, 1934) के अनुसार दक्षिण केलिफोर्निया के निकट ऐमोनियाकी मात्रा में परिवर्तन अनियमित थे, परन्तु वे गहराई पर निर्भर नहीं करते पाये गये और ऐमोनिया की 0.2 मा. ग्रा. पर./लीटर मात्रा विद्यमान थी।
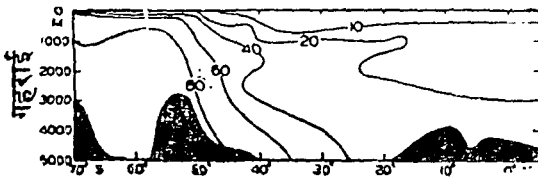
चित्र 52 : दक्षिण पूर्वी अटलांटिक महासागर में सिलिकेट के वितरण का एक अनुलम्ब काट। इकाई : सिलिकन के माइक्रो-ग्राम परमाणु प्रति 20^0 लीटर

महासागरों में सिलिकेट के वितरण सम्बन्धी प्राप्य आंकड़े तो नाइट्रोजन के आंकड़ों से भी कम हैं। 'डिसकवरी' ने दक्षिण अक्षांशों में काफी आंकड़े एकत्र किये हैं (क्लाउज Clowes 1938) और इन आंकड़ों में से ही कुछ के आधार पर दक्षिण अटलांटिक (चित्र 52) और हिन्द माहासागर (चित्र 54) के लिये अनुलम्ब काट तैय्यार किये गये हैं। चित्र 44 में इन ईलाकों की स्थितियां दर्शाई गई हैं। 'कारनेगी' ने उत्तर पूर्व और केन्द्रीय प्रशान्त माहासागर के लिये काफी आंकड़े एकत्र किये और अन्य वहुत से क्षेत्रों के फुटकर आंकड़े भी प्राप्य हैं, परन्तु अनुलम्ब काट के निर्माण के लिये ये सव आंकड़े अपर्याप्त हैं। वितरण में समानता और अन्तर स्पष्ट
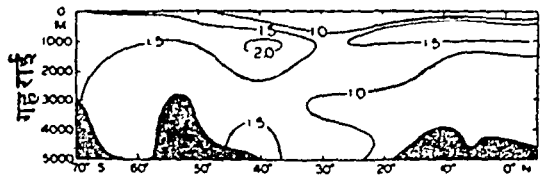
चित्र : 53 दक्षिण पूर्वी अटलांटिक महासागर में फॉसफेट वितरण का एक अनुलम्ब काट। इकाई : माइक्रो-ग्राम-परमाणु प्रति 20^0 लीटर।

करने के लिये सिलिकेट के अनुलम्ब काट (चित्र 53) और तत्सम्बन्धित फॉस्फेट के काट चित्रों (चित्र 47 और 53) का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहिए। यह स्पष्ट है कि सिलिकेट का ऊर्ध्वाधर वितरण फॉस्फेट और नाइट्रेट के ऊर्ध्वाधर वितरण से भिन्न है, चूंकि इसमें बीचमें 'अधिकतम' नहीं पाया जाता है और सान्द्रता नीचे की ओर सागर तल तक बढ़ती है। वितरण के प्रतिरूप में पाई जाने वाली इस भिन्नता पर पहले ही प्रकाश डाला जा चुका है। (7.6) अटलांटिक
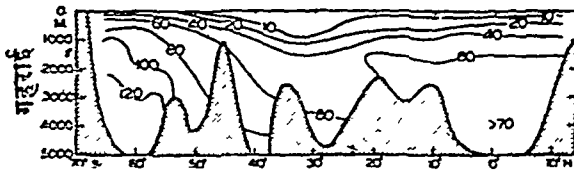
चित्र : 54 पश्चिम हिन्द महासागर में सिलिकेट के वितरण का एक अनुलम्ब काट चित्र। इकाई : माइक्रो ग्राम-परमाणु प्रति लीटर।

महासागर में (चित्र 52) दूरस्थ दक्षिण की अपेक्षा निम्न अक्षांशों पर पाये जाने वाले गहरे जल में सिलिकेट की मात्रा काफी कम होती है, परन्तु हिन्द महासागर (चित्र 54) में यह वैषम्य इतना अधिक नहीं है। चित्र 55 में प्रस्तुत आंकड़े यह संकेत करते हैं कि उत्तर प्रशान्त महासागर का जल सिलिकेट से बहुत ही सम्पन्न है और इसमें उपस्थित सिलिकेट की तुलना दक्षिण ध्रुव महासागर में उपस्थित सिलिकेट राशि से की जा सकती है। दक्षिण ध्रुव सागर प्रदेश में सिलिकेट बहुतायत से पाया जाता है और नाइट्रेट और फॉस्फेट भी काफी मात्रा में पाये जाते हैं। प्रशान्त महासागर के विपुवत रेखीक्षेत्र की ऊपरी परतों में सिलिकेट का वितरण चित्र 198 में विस्तार से दर्शाया गया है। 'दाना' ने सिलिकेट राशि का निर्धारण नहीं किया, इसलिये सिलिकेट के लिये फॉस्फेट और नाइट्रेट के समान तीनों महासागरों में ऊर्ध्वाधर वितरण वक्र प्रस्तुत करना असम्भव है। उत्तर प्रशान्त महासागरों में सिलिकेट की उच्च मात्रा चित्र 55 में दो वक्रों (थोमसन, थोमस और बार्नेस, Thompson, Thomas and Barenes 1934 और बार्नेस और थोमसन, Barenes and Thompson 1938) द्वारा दर्शाई गई है। 1000 मीटर से नीचे विद्यमान राशि (लगभग 170 मा. ग्रा. पर./ली.) दक्षिण ध्रुव महासागर से (क्लाउज, 1938 द्वारा) प्राप्त राशि से कुछ अधिक है। अटलांटिक और हिन्द महासागर में सिलिकेट की बहुत कम विद्यमान मात्रा के प्रदर्शन के लिये चित्र 52 में 36° दक्षिण और चित्र 54 में 2.5° उत्तर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर वक्रों की रचना की गई है।

चित्र 55 : हिन्दी उत्तर प्रशान्त औरन्दक्षिण अटलांटिक महासागरों के कुछ पृथक्-पृथक् ईलाकों में सिलिकेट का ऊर्ध्वाधर वितरण।

थालों में ऊपर वर्णित तत्वों का वितरण खुले महासागरों की अपेक्षा बिल्कुल ही भिन्न हो सकता है। जैसा कि अध्याय चार में बतलाया जा चुका है कि थालों में परिस्थितियां प्राय: स्थलाकृति, सिल गहराई से नीचे पाये जाने वाले जल के नवीयन और जल में विलीन ऑक्सीजन की मात्रा (वाहन) पर निर्भर करती है। पर्याप्त वायु मिश्रित थालों में जहाँ पृष्ठ पर अन्तर्वाहन हो, साधारणतया पोषक पदार्थों की कमी रहती है। उदाहरण के तौर पर भूमध्य सागर में सिल गहराई के नीचे फॉस्फेट और नाइट्रेट की मात्रा अटलांटिक महासागर की तुलना में कम है (थोमसन Thompson 1931)। पश्चिमी भूमध्य सागर में लगभग 1000 मीटर गहराई के नीचे फॉस्फेट और नाइट्रेट की अचर राशि क्रमश: 0.6 माइक्रो ग्राम-पर०/ली० और 11 मा० ग्रा०-पर० प्रति लीटर है जो कि खुले अटलांटिक में पाई जाने वाली राशि की लगभग आधी या आधी से भी कम है। अतएव भूमध्य सागर के सघन जल में जो सिल के ऊपर से बहकर उत्तर अटलांटिक के मध्यवर्ती जल में मिश्रित हो जाता है, पोषक तत्व अपेक्षाकृत कम होते हैं तथा यह जल पूर्व उत्तर अटलांटिक महासागर की मध्यवर्ती गहराई पर स्थित जल में फॉस्फेट और नाइट्रेट राशि को कम करने का प्रयत्न करता है।

इस तथ्य पर पहले ही प्रकाश डाला जा चुका है (7.7) कि जिन थालों में ऑक्सीजन की मात्रा कम होती है, जैसे लाल सागर, उन में नाइट्रेट और फॉस्फेट की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। स्ट्रोम (Strom 1936) के अनुसार नोर्वेजियन जोर्डस् के स्थिर जल में हाइड्रोजन सल्फाइड की अधिकता के कारण फॉस्फेट उच्च सान्द्रता में पाया जाता है और फॉस्फेट की अधिकतम राशि 10 मा० ग्रा० पर०/ली० हो सकती है।

पोषक तत्वों के वितरण को प्रभावित करने वाले कारक

गतिक साम्य का प्रत्यय (7.8) ऊपर वर्णित फॉस्फेट, नाइट्रेट और सिलिकेट

के विशाल पैमाने पर वितरण के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है। इस मान्यता पर वितरण अचल रहता है। स्थानीय परिवर्तन शून्य होते हैं ($\partial s/\partial t=0$), और विसरण के प्रभावों, अभिवहन और कुल जैव प्रक्रियाओं के बीच संतुलन होना चाहिये। यद्यपि गतिक साम्य का प्रत्यय केवल गहरे जल और सम्भवतया निम्न अक्षांशों की ऊपरी परतों के लिये ही प्रयुक्त होता है परन्तु उन ईलाकों में जहां ऋतु परिवर्तन स्पष्ट होते हैं, के ऊपरी कई सौ मीटरों के लिये, यह प्रत्यय वैध नहीं है।

पृष्ठीय परतों—अर्थात यूफोटिक जोन में जैव प्रतिक्रियाएँ सामान्यतया पोषक तत्वों का पूर्ण उपभोग कर लेती हैं, और यदि उपभोग की दर विसरण और अभिवहन के द्वारा प्रदाय की दर से अधिक हो जाये तो पोषक तत्वों की सांद्रता कम हो जायेगी। जिन ईलाकों में भौतिक परिस्थितियां शीतकाल में पौध क्रिया को सीमित कर देती हैं उन ईलाकों में यही उपरोक्त लाक्षणिक परिवर्तन वसन्त और ग्रीष्म काल में होता है। ऐसे ईलाकों में शीतकाल में विपरीत परिवर्तन होने लगता है जबकि विसरण और अभिवहन द्वारा पोषक तत्वों का प्रदाय उनके उपभोग से अधिक होता है और इस प्रकार यह क्रिया पृष्ठ के निकट और पृष्ठ पर पोषक अंशों की वृद्धि कर देती है। परिणामस्वरूप ऐसे ईलाके जहां ताप, प्रकाश तीव्रता और जैव या अन्य दूसरी प्रक्रियाएं वर्ष के किसी भाग में पौध वृद्धि के प्रतिकूल हो, उन ईलाकों में स्थित पृष्ठ परत में पोषक तत्वों के वितरण में बहुत बड़े ऋतु परिवर्तन पाये जा सकते हैं। पोषक तत्वों के उपभोग की मात्रा में उतार चढ़ाव के साथ साथ वर्ष भर में विसरण और अभिवहन के द्वारा उनकी प्रदाय मात्रा में भी परिवर्तन हो सकते हैं। उदाहरण के तौर पर भंवर विसरणशीलता का ऊर्ध्वाधर गुणांक, A_z, पोषक तत्वों की सांद्रता प्रवणता पर निर्भर नहीं करता परन्तु यह ताप वितरण और वायु की परिस्थितियों से प्रभावित हो सकता है। इससे भी अधिक महासागरीय धाराओं में विचलन से उत्पन्न परिवर्तन भी पोषक तत्वों के वितरण को प्रभावित करेंगे, यद्यपि ऊर्ध्वाधर अभिवहन से सम्बन्धित प्रभाव ही निसंदेह सुस्पष्ट हैं। पृष्ठीय अभिबिन्दुता के क्षेत्रों में निम्न पोषक तत्वों वाला जल यूफोटिक जोन के काफी निचली गहराइयों तक फैल जाता है। दूसरी ओर जहां पर अपबिन्दुता अर्थात उपकूपिता है उन क्षेत्रों में पोषक तत्वों से सम्पन्न जल पृष्ठ की ओर ऊपर आ जाता है। अपबिन्दुता खुले सागर में पाई जा सकती है जैसे विषुवत रेखा और भूमध्य प्रतिधारा की उत्तरी सीमा (7.9) पर या उन महाद्वीपीय तटवर्ती क्षेत्रों में जहां प्रचलित पवन के द्वारा उपकूपिता प्रेरित हो जाती (7.10) है। जिन तटवर्ती क्षेत्रों में उपकूपिता मौसम पर निर्भर करती हो या विरामी हो उन क्षेत्रोंमें पृष्ठीय जल में पोषक तत्व बहुत अधिक उतार चढ़ाव प्रदर्शित कर सकते हैं और उच्चतम पौध क्रिया काल में वास्तव में बढ़ सकते हैं। ऊपरी परतों में वार्षिक ताप चक्र पर विचार करते समय केलिफोर्निया की मोन्टेरे खाड़ी के लिये आंकड़े प्रस्तुत किये गये थे। जहां भंवर

प्रक्रियाओं द्वारा ताप चालन, उपकूपिता और धारा विचलन के द्वारा ताप परिवर्तनों का पता लगाया जा सकता है (चित्र 32 और 7.11)। मोन्टेरे खाड़ी में सिलिकेट वितरण के तत्सम्बन्धी आंकड़े चित्र 56 में (फेल्पस Phelpes 1937) दिये गये है। ताप परिवर्तनों के साथ समानता प्रदर्शित करने के लिये चित्र में सिलिकेट का पैमाना नीचे की ओर बढ़ता है। वसन्त और ग्रीष्म ऋतु में पृष्ठ परतों में होने वाले सिलिकेट के उपभोग के वावजूद भी उपकूपिता इन परतों में आभासी रूप से सिलिकेट की राशि को स्थिर बनाये रखती है, और 20 मीटर गहराई पर तो इस काल में वास्तव में सिलिकेट की मात्रा में वृद्धि होती है। यह ऋतु परिवर्तन इन्गलिश चैनल (चित्र 66) और फ्राइडे वन्दहगाह, वाशिन्गटन (चित्र 65) पर पाये जाने वाले परिवर्तनों से बिल्कुल भिन्न है जहां ग्रीष्म में शीतकाल की अपेक्षा सिलिकेट की सान्द्रता कम होती है। मोन्टेरे की खाड़ी में सितम्बर माह में होने वाला धाराओं का विचलन अपतटीय जल को तट की ओर ले आता है, यह प्रभाव ऊपरी परतों में सिलिकेट में तीव्र कमी और तत्सम्बन्धी ताप में वृद्धि के रूप में प्रतिबिम्बित होता है। ऐसा ही प्रभाव दिसम्बर माह में भी दर्शाई पड़ता है जबकि उत्तर की ओर बहने वाली तटवर्ती धाराएं उत्पन्न हो जाती हैं।

चित्र 56 :— केलिफोर्निया की मोन्टेरे खाड़ी में विभिन्न गहराइयों पर सिलिकेट की मात्रा में पाये जाने वाले मौसमी परिवर्तन सिलिकेट पैमाने में वृद्धि नीचे की ओर है।

उपरोक्त टिप्पणियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैव क्रियाओं द्वारा प्रभावित तत्वों के वितरण में मौसम परिवर्तनों की व्याख्या बहुत ही सावधानी से करनी चाहिये। सांद्रता में उतार चढ़ाव को केवल जैव क्रियाओं के कारण ही नहीं माना जा सकता जब तक कि अन्य आंकड़ों जैसे ताप और लवणता के प्रेक्षणों द्वारा यह प्रतिपादित नहीं हो कि अभिवहन और विसरण का प्रभाव नगण्य है। कुछ ऐसे इलाकों में जहां ग्रीष्म और शीत कालिक सांद्रताओं में काफी अधिक अन्तर पाया जाता है, उन ऊपरी परतों में होने वाले पोपक तत्वों के क्षय के आधार पर कार्वनिक पदार्थों के उत्पादन का निर्धारण किया गया है। जब तक पुनर्जनन और विसरण पर विचार नहीं किया जाये ऐसे निर्धारण अलिप्ष्ठ हैं और जिन क्षेत्रों में अभिवहन एक महत्वपूर्ण कारक हो, जैसे मोन्टेरे की खाड़ी, वहां ये अवैध होंगे। खुले महासागरों में पोपक पदार्थों के वितरण में मोसमी परिवर्तन का अभी तक व्यवस्थित अध्ययन नहीं

से यह ज्ञात होता है कि इन किस्मों को अलग करने के लिए विभिन्न विधियाँ काम में लाई गई हैं परिणाम स्वरूप विभिन्न किस्मों के लिए प्राप्त परिणाम सर्वदा तुलनात्मक नहीं हैं। निम्न विवरण में उन समस्त मृत या जीवित पदार्थों को "आणविक पदार्थ" शब्द द्वारा निर्दिष्ट किया गया है जो एक ऐसे सूक्ष्म फ़िल्टर के द्वारा अलग किये जा सकते हों जिसमें बड़े आकार के जीवाणु पार नहीं होते। यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि समुद्री जल में के जीवधारी, जीवाणुओं की संख्या और यहां तक कि जीवाणुओं के विकास में भाग लेने वाले अकार्बनिक तत्वों आदि में नमूनों को एकत्रित करने के पश्चात भी बहुत तीव्र परिवर्तन हो सकते हैं। इसलिए जब तक या तो आवश्यक अंशों का तत्काल ही पृथक्करण नहीं किया जाये या उपयुक्त परिरक्षियों का उपयोग नहीं किया जाये तब तक विभिन्न अंशों के विषय में प्राप्त परिणाम त्रुटिपूर्ण हो सकते हैं। कभी कभी बहुत कम मात्रा में प्रतिवेदित कार्बनिक आणविक पदार्थों की उपस्थिति को इन त्रुटियों के कारण माना जा सकता है।

पुटर (Pütter) की संधारणा (7.12) थी कि समुद्री पृष्ठवंशी जीवों (इनवर्टीब्रेट्स,) का पोषण सागर जल में घुले हुए कार्बनिक पदार्थों के द्वारा होता है। यह परिकल्पना उन प्रेक्षणों पर आधारित थी जो ये संकेत करते हैं कि प्लैंक्टन और आणविक मलबे के रूप में विद्यमान कार्बनिक पदार्थ से घोल में कई सौ गुणा कार्बनिक पदार्थ अधिक था। कुछ अन्य अन्वेषणों के आधार पर इन दोनों प्रकार के कार्बनिक पदार्थों के बीच अन्तर बहुत कम पाया गया क्योंकि घुले हुए कार्बनिक पदार्थों के पुराने निर्धारण अशुद्ध विधियों पर आधारित थे। क्रोग (Krogh, 1931) और बोण्ड (Bond 1933) द्वारा अतिरिक्त अध्ययन की समीक्षाएँ भी यह संकेत करती हैं कि प्राणी घुले हुए कार्बनिक पदार्थों का उपभोग नहीं कर सकते हैं। यद्यपि पुटर की परिकल्पना की मूल महत्ता अब समाप्त हो गई है, परन्तु घुले हुए कार्बनिक पदार्थों और उनके उपभोग की समस्या में इस परिकल्पना ने काफी रूचि उत्पन्न कर दी है, और अन्वेषणों ने यह दिखला दिया है कि यद्यपि प्राणी घुले हुए कार्बनिक पदार्थों का उपभोग नहीं करते परन्तु जीवाणु इन पदार्थों का उपभोग कर सकते हैं (7.13)।

यद्यपि इस समस्या के विषय में काफी विचार विमर्श व परिकल्पनाएं की गई हैं फिर भी अभी तक सागर में घुले हुए पदार्थों और आणविक पदार्थों में विद्यमान कार्बन की मात्रा के बारे में विश्वसनीय आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। जैव पदार्थों की थोड़ी सी मात्रा में कार्बन का निर्धारण करना बहुत ही कठिन कार्य है, विशेषकर जब लवण भी बहुत बड़ी मात्रा में उपस्थित हों। आणविक पदार्थों को अवक्षेपण या निस्यन्दन के द्वारा सान्द्रित करके सूक्ष्म दहन (माइक्रो कम्बस्चन) विधि से कार्बन के

निर्धारण की विधियां (वान ब्रान्ड Won Brand 1935) भी प्रस्तावित की गई हैं। घुले हुए कार्बन पदार्थों को लवणमुक्त करके उन्हें सान्द्रित करने की अभी तक कोई *भी विधि उपलब्ध नहीं है. परिणामस्वरूप विद्यमान विधि परमेंगनेट और* क्रोमेट जैसे ऑक्सीकारकों की उपस्थिति में आर्द्र दहन पर आधारित है। (वोन्ड, Bond 1933 क्रोग और कीज, Krogh and Keys, 1934) ऑक्सीकरण पर आधारित विधि में निम्न दो कठिनाइयां अन्तर्निहित हैं :—(1) सागर में विद्यमान कई अकार्वनिक लवण ऑक्सीकरण में वाधा उत्पन्न करते हैं और साधारणतया उच्च मान प्रदर्शित करते हैं (2) कार्वनिक पदार्थों के पूर्ण विनाश के वारे में अनिश्चितता वनी रहती है। कुछ कार्वनिक पदार्थ तो इस विधि के द्वारा पूर्णतया कार्वन डाई ऑक्साईड व जल आदि में संमपरिवर्तित हो जाते हैं कुछ अन्य दूसरे यौगिक आंशिक रूप में विघटित होते हैं और कुछ विल्कुल ही अप्रभावित रहते हैं। चूंकि घुले हुए पदार्थों की रासायनिक रचना अभी तक ज्ञात नहीं है इसलिये ऐसे निर्धारणों की परिशुद्धता का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। आर्द्र दहन पर आधारित निर्धारण केवल "उपभुक्त ऑक्सीजन की राशि बतलाते हैं, और जब इस राशि को नमूनों में प्रस्तुत जैव कार्बन में संपरिवर्तित करना आवश्यक हो तो अन्य अनिश्चित-ताएं उत्पन्न हो जाती हैं।

समुद्री जीवाणु विज्ञान के विकास ने सागर में कार्वनिक पदार्थो (आणविक और घुले हुए दोनों प्रकार के पदार्थ) के निर्धारण की समस्या के लिये एक नया उपागम प्रस्तुत किया है। यदि सागर जल को स्वच्छ कार्क युक्त वोतल में भरकर अन्धकार में रख दिया जाये तो बोतल में भारी संख्या में जीवाणुओं का विकास हो जायेगा और जल में घुली हुई ऑक्सीजन का उपपचयात्मक क्रियाओं में उपभोग होगा। यदि ऑक्सीजन पूर्णतया समाप्त नहीं होती है तो ऑक्सीजन की उपभुक्त मात्रा जीवाणुओं द्वारा प्रभावित कार्वनिक पदार्थों की मात्रा का माप है। यदि सागर जल को कोलायडल परिमाप के कणों को अलग करने वाले अतिनिस्यन्दक द्वारा छान लिया जाये और उसे अनछने समुद्री जल से आवपित किया जाय तो भी उस जल में बहुत बड़ी जीवाणु संख्या के विकास के लिये काफी कार्वनिक पदार्थ उपस्थित रहते हैं। इस समस्या पर कीज, क्रिस्टेनसन और क्रोग (Keys, Christenson and Krogh 1935) में विचार किया गया है और वेक्समेन और जोबेल (उदाहरण के तौर पर वेक्समेन और रैन, (Waksman Zo Bell and Ren 1936) और (जोबेल Zo Bell 1940) ने भी अपने अनेक प्रकाशनों में इसकी चर्चा की है। यद्यपि परीक्षण की यह दिशा अत्यन्त आशा जनक है फिर भी जीवाणुओं द्वारा ऑक्सीजन के उपभोग पर आधारित अध्ययन में काफी कठिनाइयां हैं और इससे अव तक प्राप्त परि-णाम निर्णायक नहीं हैं। यह प्रदर्शित किया जा चुका है कि ऑक्सीजन की उपभुक्त मात्रा ताप, समय और ठोस पृष्ठ आयतन अनुपात का फंक्शन है। (जोबेल और

एंडरसन, Zo Bell and Anderson 1936) जब तक इस गुण धर्म के अध्ययन के लिये प्रामाणिक विधियां स्थापित नहीं हो जाती हैं और विभिन्न इलाकों, गहराइयों और समय के साथ परिवर्तन का पूर्ण अध्ययन नहीं हो जाता तब तक केवल नीचे वर्णित कुछ सामान्य मात्रामूलक परिणामों पर ही विचार किया जा सकता है।

महासागरीय जल के अकार्बनिक यौगिकों में विद्यमान कार्बन की मात्रा 2.1 और 2.5 मिलीग्राम-परमाणु प्रति लीटर (25 से 30 मिलीग्राम/लीटर) के बीच है और यह राशि लवणता, ताप और जैव क्रिया के प्रभावों पर निर्भर करती है। क्रोग (Krogh 1933, 1934 a&b) ने सागर जल में विद्यमान जैव कार्बन की समीक्षा का सारांश दिया है। अपने बाद के कार्य में उसने अटलांटिक महासागर से लिये गये जल के ६ नमूनों के विश्लेषण का वर्णन किया है। वस्तुतः गहराई के साथ इसके मान में परिवर्तन नहीं पाया गया और क्रोग के मतानुसार औसत मान सब गहराइयों और महासागरों के लिये लागू होते हैं। कार्बन का औसत मान लगभग 0.2 मिली ग्राम परमाणु (2.05 मिली ग्राम) प्रति लीटर था जो कि अकार्बनिक रूप में उपस्थित कार्बन का लगभग दसवां भाग है। प्लैंक्टन राशि के आगणन से क्रोग ने यह अनुमान लगाया कि जल में घुला हुआ कार्बनिक पदार्थ आणविक कार्बनिक पदार्थों से लगभग तीन सौ गुना अधिक बहुतायत से पाया जाता है। ये मान खुले सागर में गहरे जल के लिये लागू होते हैं,—बोण्ड (Bond 1933) ने उच्च उत्पादन वाले तटवर्ती क्षेत्रों में परीक्षण किया और अलग ही मान प्राप्त किये। आर्द्र दहन पर आधारित उसके मूल आंकड़े उपभुक्त ऑक्सीजन के रूप में अभिव्यक्त हैं। क्रोग के आंकड़ों से उनकी तुलना करने के लिये यह माना गया है कि कार्बन के एक परमाणु के आक्सीकरण के लिये ऑक्सीजन के दो परमाणुओं की आवश्यकता होती है। इसके आधार पर पुन संगणित न्यूनतम, अधिकतम और औसत मान सारणी 53 में दिये गये हैं। यद्यपि घुले हुए पदार्थों के लिये बोन्ड के मान सम्पूर्ण कार्बन के लिये क्रोग द्वारा प्राप्त मानों के समान ही हैं परन्तु ये मान विचारणीय परास प्रस्तुत करते हैं। इससे अधिक यह टिप्पणी भी आवश्यक है कि आणविक पदार्थ अपेक्षाकृत अधिक बहुलता से पाये जाते हैं और ये कुल पदार्थों के दसवें भाग से लेकर एक तिहाई भाग का निर्माण करते हैं।

जीवाणुओं द्वारा ऑक्सीजन के उपभोग के अध्ययन के परिणामों का मूल्यांकन करना कठिन है क्योंकि विभिन्न प्रकार की तकनीकों का उपयोग किया गया है। कभी कभी तो जल को छान लिया गया था और कभी नहीं और कुछ स्थितियों में संवर्धन (कल्चर) को काफी समय तक रखा गया था। अनिस्पन्दित सागर जल में ऑक्सीजन उपभोग की अधिकतम राशि की परास 0.13 और 0.18 मिली ग्राम—परमाणु प्रति लीटर (1.5 और 0.2 मिली ग्राम /लीटर) है। ये राशि परमाणुओं के

अनुपात को 2:1 मानते हुए कार्बन की 0.07 से 0.009 मिली ग्राम—परमाणु प्रति लीटर राशि के समतुल्य है। ये मान सम्पूर्ण कार्बन के ऊपर वर्णित मानों के पाँचवें भाग से आधे भाग के बराबर हैं।

सारणी 53

फ्राइडे बन्दरगाह के निकट जल में जैव कार्बन

पदार्थ	कार्बन मिली ग्राम—परमाणु/लीटर इकाइयों में		
	न्यूनतम	अधिकतम	औसत
नेट प्लैंक्टन	0.008	0.06	0.03
नानो प्लैंक्टन	0.005	0.11	0.03
घुले हुए पदार्थ	0.13	0.25	0.20
कुल कार्बनिक	0.143	0.42	0.26

वाक्समैन और रेन (Waksman and Renn, 1936) ने यह ज्ञात किया है कि प्रयोगशाला में कार्बनिक पदार्थ के लगभग 50 प्रतिशत भाग का उपभोग जीवाणु कर लेते हैं और इस भाग का 60 प्रतिशत ऑक्सीकरण में और 40 प्रतिशत जीवाणुओं के कोष पदार्थों में संपरिवर्तित हो जाता है। इसलिए सागर जल में जैव कार्बन के इस विधि द्वारा प्राप्त मूल्यांकन रासायनिक विधियों से प्राप्त मानों के समान ही परिमाण में होते हैं।

ऊपर दिये गये ऑक्सीजन उपभोग के आंकड़े अपेक्षाकृत प्लैंक्टन से सम्पन्न क्षेत्रों में पृष्ठवर्ती जल से लिये गये थे। गहरे जल के नमूने इससे लगभग आधी ऑक्सीजन का उपभोग करते हैं। जैसा पहले ही प्रदर्शित किया जा चुका है (7.14) कि कार्बनिक पदार्थों में कार्बन, नाइट्रोजन और फॉस्फोरस के बीच अपेक्षाकृत स्थिर अनुपात रहता है। कुछ विधियों में इस तथ्य की सहायता ली गई है जिसमें कार्बनिक नाइट्रोजन (जेलडाल विधि द्वारा निर्धारित) का उपयोग कार्बनिक पदार्थों के मूल्यांकन के लिये किया गया
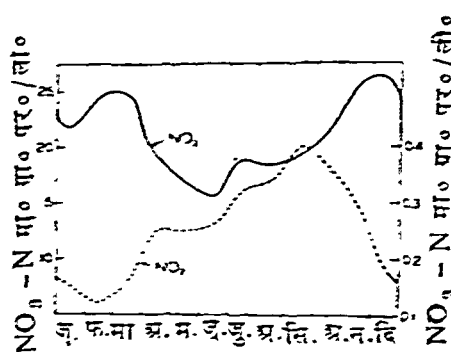
चित्र 57 :—वाशिंगटन स्थित फ्राइडे बंदरगाह में पृष्ठ जल पर नाइट्रेट और नाइट्राइट की मात्रा का वार्षिक चक्र।

है। सागर जल में कार्बनिक नाइट्रोजन और फॉस्फोरस की आपेक्षिक मात्रा ऊपर दी गई कार्बन की आपेक्षिक मात्रा से उचित सहमति प्रकट करती है। तलीय नमूनों के लिए कार्बनिक नाइट्रोजन की मात्रा ही कार्बनिक पदार्थों के मूल्यांकन के लिये विस्तृत रूप से काम में लाई गई है। (7.14) अवसादों में कार्बन और नाइट्रोजन का अनुपात जीवधारियों की अपेक्षा काफी अधिक पाया गया है। अनुपात में यह परिवर्तन यह संकेत करता है कि सागर के तल पर एकत्रित होने वाले ऊष्मसह मलवाद्रव्य से नाइट्रोजन का एक बहुत बड़ा भाग लुप्त हो जाता है।
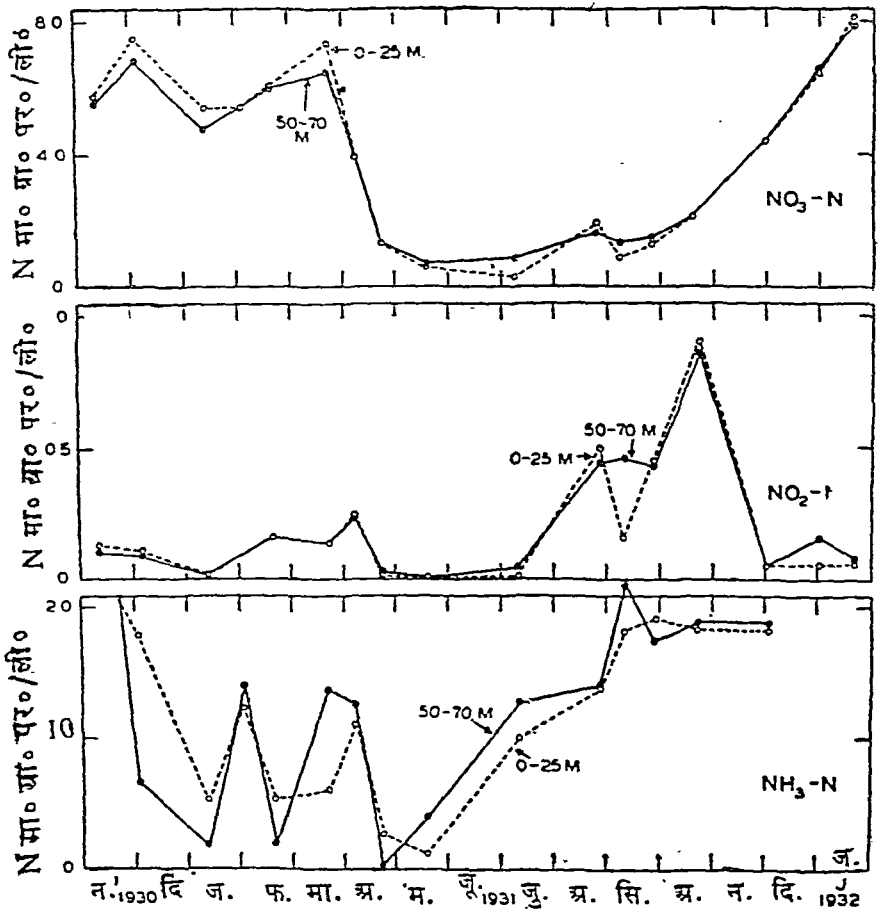
चित्र 58 :—नवम्बर 1930 से जनवरी 1932 के बीच इग्लिश चैनल की पृष्ठ परतों (0—25 मीटर) और तलीय परतों (50—70 मीटर) में नाइट्रेट, नाइट्राइट और ऐमोनिया की मात्रा में ऋतु परिवर्तन। (कूपर, Cooper 1937 b के आधार पर)

नाइट्रोजन के यौगिक और उनके ऋतु परिवर्तन:—कुछ तटवर्ती क्षेत्रों में नाइट्रेट, नाइट्राइट और ऐमोनिया के वितरण में ऋतु परिवर्तन की परीक्षा करने के लिये पर्याप्त आंकड़े उपलब्ध है। ऋतु परिवर्तनों के केवल कुछ चुने हुए उदाहरण ही

दिये जायंगे परन्तु अतिरिक्त संदर्भ उल्लेखित साहित्य में देखे जा सकते हैं। फाइफर और थोमसन (Phifer and Thompson, 1937) ने फ़्राइडे वन्दरगाह स्थित सेन जुआन चैनल की पृष्ठीय स्थिति के पांच वर्षों के अध्ययन के परिणाम दिये हैं। 1931 से 1935 के बीच के NO_3 और NO_2 के लिये मासिक मध्यमानों के औसत मान चित्र 57 में दर्शाये गये हैं। इस चित्र में NO_2 का पैमाना NO_3 के पैमाने का पचासवां भाग है। बसन्त और ग्रीष्म काल में पौधों द्वारा नाइट्रेट का उपभोग जव अधिकतम होता है तब नाइट्रेट सर्वाधिक प्रचुरता में पाया जाता है और उसके वाद नाइट्राइट की मात्रा घटने लगती है और जिस समय नाइट्रेट प्रचुरता में होता है नाइट्राइट की न्यूनतम राशि पाई जाती है। कूपर (Cooper 1937 b) ने नवम्बर 1930 से जनवरी 1932 के बीच इन्गलिश चैनल की पृष्ठ परतों (0—25 मीटर) और तलीय परतों (50—60 मीटर) में NO_3, NO_2 और NH_3 में ऋतु परिवर्तन (चित्र 58) दर्शाये हैं। तीनों अवयवों के पैमाने भिन्न भिन्न हैं यथा NO_3-N: NH_3N:NO_2—N= 8: 2: 1. सामान्यत: ये आंकड़े चित्र 57 में दिये गये आंकड़ों के समान चक्र बताते हैं। प्लैंक्टन के सर्वाधिक विकास काल में और उसके बाद ऐमोनिया की मात्रा में वृद्धि होती है और उससे संलग्न नाइट्राइट और फिर नाइट्रेट की मात्रा में भी वृद्धि होती है। यह संकेत करता है कि कार्बनिक पदार्थों से नाइट्रेट के पुनर्जनन के लिये नाइट्रो-

चित्र 59 :—मैन की खाड़ी में मई 1933 से सितम्बर 1934 काल के बीच में नाइट्राइट और नाइट्रेट के ऊर्ध्वाधर वितरण में ऋतु परिवर्तन। (राकेस्ट्रा, Rakestraw, 1936 b के आधार पर)
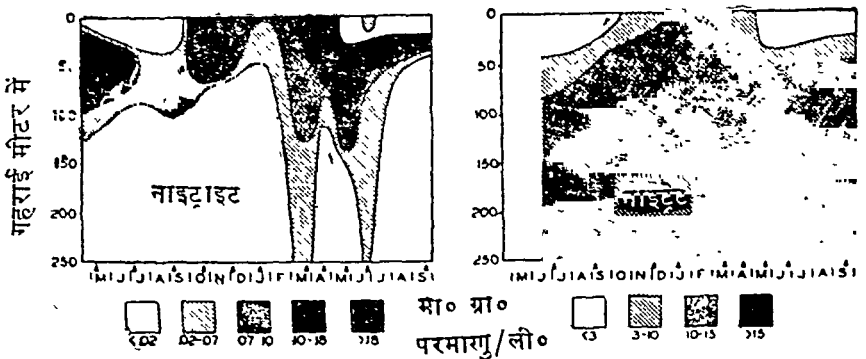
जन इन स्थितियों से गुजरती है। तथापि यह नोट करना चाहिये कि ऐमोनिया और नाइट्राइट की सांद्रता का मान कभी भी नाइट्रेट जितना अधिक नहीं होता है। इन्गलिश चैनल में कुल अकार्बनिक नाइट्रोजन यौगिक फ्राइडे वन्दरगाह की तुलना में सर्वदा वहुत ही कम रहते हैं। राकेस्ट्रा (Rakestraw, 1936) ने मैन की खाड़ी में एक वर्ष तक नाइट्राइट और नाइट्रेट के परिवर्तन के विस्तृत प्रेक्षण प्रस्तुत किये हैं, उनके आधार पर ही चित्र 59 की रचना की गई है। इन आंकड़ों के अनुसार ग्रीष्म

और पतझड़ में पृष्ठ के निकट जब नाइट्रेट की मात्रा न्यूनतम होती है तो नाइट्राइट सर्वाधिक प्रचुरता से पाया जाने वाला यौगिक होता है। ये आंकड़े यह भी प्रदर्शित करते हैं कि नाइट्राइट के उच्च मान अवश्य ही घनत्व के वितरण और इस प्रकार ताप के वितरण से सम्बद्ध है। यह चित्र 60 में दर्शाया गया है। (राकेस्ट्रा, (Rakestraw 1936) किसी स्पष्ट थर्मोक्लाइन के समय या तो नाइट्राइट इसके अन्दर या इसके ऊपर होती है। मैन की खाड़ी में ऐमोनिया के लिये भी ऐसे ही आंकड़े प्राप्य नहीं हैं परन्तु रैडफिल्ड और कीज (Redfield and Keys 1938) के अनुसार ये नाइट्राइट की राशि और जल में प्लैंक्टन की मात्रा से निकटतया सम्बन्धित हैं।

कार्बनिक आणविक पदार्थों में नाइट्रोजन का निर्धारण निस्पन्दन की सहायता से सान्द्रित या समाक्षेपित अवक्षेपन के द्वारा अलग किये गये पदार्थ पर किया जा सकता है (वान ब्रान्ड, Von Brand 1935) वान ब्रान्ड (1938) ने उत्तर पश्चिम अटलांटिक महासागर में पाँच महासागरीय केन्द्रों के लिये आणविक कार्बनिक नाइट्रोजन का निर्धारण किया है। सर्वाधिक परिवर्तनशीलता ऊपरी 400 मीटर में पाई गई। इन मानों की परास लगभग 0.07 और 1.3 माइक्रो ग्राम-परमाणु प्रति लीटर के बीच थी। उच्च मान प्रायः पृष्ठ पर या उसके पास पाये गये थे। आइसलैण्ड के निकट 5.2 मा० ग्रा० परमाणु प्रति लीटर जितने उच्च मान और मैन की खाड़ी के पृष्ठ मान 2.4 मा० ग्रा०-परमाणु/ली० पाये गये। (वान ब्रान्ड, 1937) 400 मीटर के नीचे मात्रा में परिवर्तन अनियमित और 0.07 से 0.21 मा० ग्रा०-परमाणु/ली० के बीच पाये गये। कूपर ने नेट प्लैंक्टन के रूप में इन्गलिश चैनल में लगभग 0.3 से 0.7 मा० ग्राम-परमाणु नाइट्रोजन/लीटर के मान प्राप्त किये। कूपर के नमूने में नानो प्लैंक्टन और मलवा नहीं था।
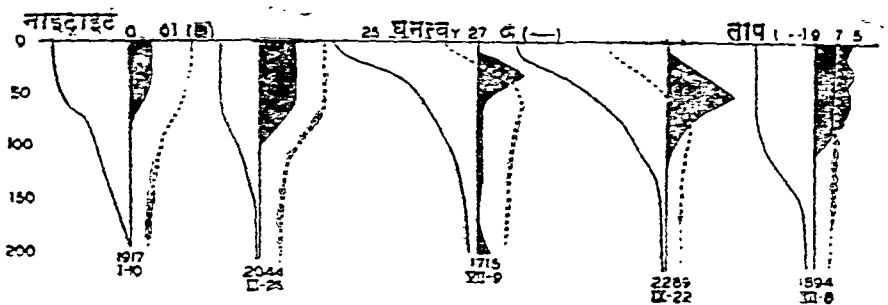
चित्र 60 :—नाइट्राइट का घनत्व (σ-t) और ताप से सम्बद्ध ऊर्ध्वाधर वितरण (राकेस्ट्रा Rakestraw, 1936 के अनुसार)

आणविक और घुले हुए दोनों प्रकार के पदार्थों सहित कुल कार्बनिक पदार्थों में उपस्थित कार्बनिक नाइट्रोजन का रोबिन्सन और वर्थ (Robinson and Wirth, 1934 a, b) ने अध्ययन किया है। अनिस्यान्दित महासागरीय जल के जेलडाल विश्लेषण में लगभग 7.2 मा० ग्राम-परमाणु/ली० कार्बनिक नाइट्रोजन सागर पृष्ठ पर प्राप्त हुई, मध्यवर्ती गहराइयों पर प्राप्त नाइट्रोजन इस मात्रा की लगभग आधी थी और तल की ओर इस मात्रा में कुछ वृद्धि पाई गई। तटवर्ती क्षेत्रों के पृष्ठ जल से प्राप्त मान खुले सागरों में से लिये गये नमूनों से प्राप्त मानों के दुगने थे। दक्षिण

केलिफोर्निया तट के समीप पृष्ठ परतों के लिये मोवर्ग और फ्लेमिंग (Flemings 1934) ने भी समान विधियो द्वारा कार्बनिक नाइट्रोजन का मान औसतन लगभग 10 मा० ग्राम-परमाणु/लीटर प्राप्त किया, अधिक गहराइयों पर उनके द्वारा ज्ञात मान इससे कुछ अधिक थे।

चित्र 57 और 58 यह प्रदर्शित करते हैं कि फ्राइडे बन्दरगाह पर लगभग 10 मा० ग्राम-परमाणु/लीटर NO_3—N ग्रीष्म में लुप्त हो जाती है और इन्गलिश चैनल में परिवर्तन भी लगभग समान ही हैं। चूंकि NH_3 और NO_2 अपेक्षाकृत बहुत ही कम मात्रा में विद्यमान रहते हैं इसलिये हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि नाइट्रोजन जीवधारियों, कार्बनिक मलवे, घुले हुए कार्बनिक यौगिकों या अन्य किसी अनजान अकार्बनिक रूप में सागर में पाई जाती है।

वान ब्रान्ड, राकेस्ट्रा और रेन (Von Brand. Reakestraw and Renn 1937, 1939) द्वारा समुद्री प्लैक्टन से नाइट्रेट के पुनर्जनन के सम्वन्ध में प्रयोगशाला में काँच के जारों में किये गये प्रयोग, यह संकेत करते हैं कि जैव पदार्थो से ऐमोनिया का निर्माण सम्भवतया बिना किसी मध्यरूप यौगिक के निर्माण के ही होता है। उनके एक प्रयोग के परिणाम चित्र 61 में प्रदर्शित हैं। इस प्रयोग में समुद्री जल में डायटम मिश्रित करके उसे अन्धकार में रक्खा गया था। लगभग चार माह के पश्चात आणविक नाइट्रोजन का बहुत बड़ा भाग NO_2 और NH_3 की मध्यस्थ स्थितियों में होता हुआ NO_3 में परिवर्तित हो गया था। उसके पश्चात जार में डायटम मिश्रित कर उन्हें प्रकाश में रखा गया। इससे NO_3 का सम्पूर्ण उपभोग हो गया। जार को दुवारा अन्धकार में रख कर उपरोक्त चक्र दोहराया गया।
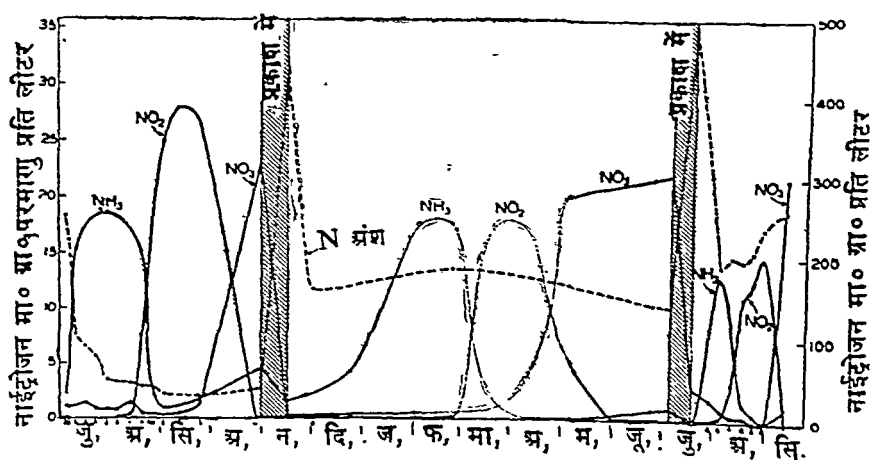
61 :– नाइट्रेट के खपत और प्रतिउत्पादन पर प्रयोग। जब माध्यम को प्रकाश में रक्खा गया तो वह डायटम से आवर्पित किया गया था। वान ब्रान्ड, राकेस्ट्रा और रेन 1939 से।

ये प्रयोग बहुत ही रूचिकर हैं, यद्यपि प्रयोगशाला में काँच के जार के अन्दर किये पुनर्जनन के ये प्रयोग सागर में होने वाली प्रक्रियाओं से काफ़ी भिन्न हैं। यह परिणाम प्रयोगशाला की विशिष्ठ परिस्थितियों से और इस तथ्य से कि प्रयोगों में जल भी वास्तव में कार्बनिक पदार्थों से सम्पन्न था, पूर्ण रूप से अनुमानित किया जा सकता है। NH_3 और NO_2 द्वारा प्राप्त अपेक्षाकृत उच्च मानों के लिये (NO_3 के समान) भी ये तथ्य ही उत्तरदायी हैं, और पुनर्जनन में NH_3, NO_2 और NO_3 के निर्माण की स्थितियां पूर्णतया स्पष्ट थी। (चित्र 57, 58) इससे अधिक यह नोट करना भी रूचिकर है कि आणविक पदार्थों में प्रस्तुत नाइट्रोजन, जो जीवाणु क्रिया की स्पष्टतम विरोधी है, में भी असामान्य रूप से वृद्धि पाई गई। प्रयोग के अन्त में लगभग 50 प्रतिशत नाइट्रोजन इस रूप में थी। सागर में नाइट्रोजन इस प्रकार 'व्यर्थ' नहीं जाती है। यह नोट करना भी अत्यन्त ही रूचिकर है कि माध्यम को प्रकाश में रखने पर यदि NH_3 या NO_2 प्रचुरता से हों या NO_3 के निर्माण से पहले, दोनों ही परिस्थितियों में डायटम काफी फले फूलेंगे। इस प्रयोग से इस सिद्धान्त को बल प्राप्त होता है कि समुद्री पौधे इन अकार्बनिक रूपों में से किसी भी रूप से समानता से नाइट्रोजन प्राप्त कर सकते हैं।

सागर में नाइट्रोजन चक्र :—सागर जल में रासायन बद्ध नाइट्रोजन जीवित जीवों, आणविक और घुले हुए कार्बनिक मूलक पदार्थों और ऐमोनिया, नाइट्राइट और नाइट्रेट के रूप में पाई जाती है। इन विभिन्न रूपों में पाई जाने वाली यह नाइट्रोजन राशि विभिन्न स्थानों पर परिवर्तित हो सकती है और ऊपरी स्तरों पर पाई जाने वाली राशि में ऋतु परिवर्तन भी हो सकते हैं। पौधों द्वारा काम में लाई जाने वाली नाइट्रोजन के रूपों का और कार्बनिक नाइट्रोजन को अकार्बनिक रूप में लौटाने वाले अभिकर्मकों का निर्धारण करने के लिये समुद्र में नाइट्रोजन चक्र पर काफी काम किया गया।

वनस्पति काल से पहले पृष्ठ परत में सर्वाधिक प्रचुरता से अकार्बनिक नाइट्रोजन नाइट्रेट के रूप में ही पाया जाता है, और गहरे जल में जहां ऐमोनिया औ नाइट्राइट की मात्रा नगण्य होती है यह स्थिति सर्वदा ही पाई जाती है।

NH_3, NO_2 और NO_3 (अध्याय 18) के अन्तः रूपान्तरण में और प्राणियों द्वारा उत्सर्जित, मलवा और अन्य घुले हुए कार्बनिक पदार्थों पर क्रिया करके कार्बनिक नाइट्रोजन के निर्माण में जीवाणुओं का बहुत बड़ा हाथ रहता है। समुद्री जीवाणुओं के शुद्ध संवर्धनों का अध्ययन यह प्रदर्शित करता है कि प्रयोगशाला परिस्थितियों में विभिन्न अन्तः रूपान्तरण सम्भव है, परन्तु इन प्रेक्षणों को समुद्र के लिये बहुत ही सावधानी से लगाना चाहिए क्योंकि सागर की प्राकृतिक परिस्थितियों में ये जीवाणु समान प्रक्रियाएं करने के योग्य न हों। सागर में नाइट्रोजन चक्र

से सम्बन्धित बहुत बड़े साहित्य की समालोचना कूपर (Cooper, 1937b) ने की है, जिसमें उन्होंने विभिन्न सम्भावित अन्त: रूपान्तरणों पर विचार किया है और उनमें से सर्वाधिक संभाव्य अन्त: रूपान्तरणों का चयन किया है। सामान्यतया यह विश्वास किया जाता है कि नाइट्रोजन सम्पन्न पदार्थों से ऐमोनिया का निर्माण होता है और फिर नाइट्राइट और नाइट्रेट में इसका रूपान्तरण होता है। ऐमोनिया का निर्माण प्रोटीन पदार्थों, ऐमीनो अम्लों, ऐमीनस्, और प्यूरिन यौगिकों जैसे यूरिया आदि के जल विश्लेषण के फलस्वरूप होता है या उन पर जीवाणुओं की क्रिया द्वारा होता है।

ऐमोनिया का नाइट्रेट में आक्सीकरण बहुत बड़ी मात्रा में ऊर्जा निर्मुक्त करता है और इसलिये इस प्रक्रिया को केवल सक्रियित करने की ही आवश्यकता है। निम्न लिखित अभिकर्मकों का सुझाव दिया गया है।

(1) सूर्य के प्रकाश से प्रेशित प्रकाश-रासायनिक आक्सीकरण। यह प्रक्रिया सागर जल में जोबेल (Zo Bell 1933) द्वारा सर्व प्रथम देखी गई, परन्तु कूपर के अनुसार इस प्रक्रिया को सक्रियित करने वाली लघु तरंगों के जल में तीव्रता से अवशोषण के कारण यह क्रिया जल में केवल प्रथम् एक दो मीटर गहराई तक ही प्रभावशाली है।

(2) जल में स्वतंत्र आक्सीजन के द्वारा पृष्ठ उत्प्रेरकों की उपस्थिति में रासायनिक आक्सीकरण। यह प्रक्रिया अज्ञात महत्व की है।

(3) जीवाणु आक्सीकरण। तलीय अवसादों में उपस्थित नाइट्रीकारी जीवाणुओं और जोबेल (Zo Bell, 1935b) द्वारा पृथक की हुई आकृतियों ने ऐमोनिया को नाइट्राइट में परिणित कर दिया। तथापि साधारणतया अवसादों में होने वाले विभव की अपेक्षा उपरोक्त परिणमन काफी उच्च आक्सीकरण अवकरण विभव पर होता पाया गया। काँच के जारों में समुद्री प्लैंकटन के विघटन का अध्ययन करने पर यह पाया गया कि ऐमोनिया का नाइट्राइट में रूपान्तरण हो जाता है परन्तु कोई भी नाइट्रीकारी जीवाणु पृथक नहीं किया गया। (वॉन ब्रान्ड, राकेस्ट्रा और रेन; Von Brand, Rakestraw, and Renn, 1937) यदि नाइट्रीकारी जीवाणु सागर जल में आसानी से नहीं पाया जाता है तो यह इस बात का निश्चित प्रमाण नहीं है कि ये सागर में अनुपस्थित हैं। यह स्पष्ट है कि कई समुद्री जीवाणुओं को संवर्धित करना कठिन है और इसलिये नई तकनीकों का विकास ही इनकी उपस्थिति निर्धारित कर सकेगा। केरी (Carey, 1938) ने यह दर्शाया है कि ये प्लैंक्टन से सम्पन्न जल से पृथक किये जा सकते हैं। नाइट्राइट की उपस्थिति, जो कि कभी कभी सागर तल के निकट पाई जाती है, जैसे कुछ ऋतुओं में इन्गलिश चैनल में, यह ऐमोनिया का आक्सीकरण या नाइट्रेट के अवकरण को सूचित करती है। यद्यपि अभी तक यह

प्रतिपादित नहीं हुआ है परन्तु ऐमोनिया के नाइट्राइट में आक्सीकरण में सबसे महत्वपूर्ण भाग सम्भवतया जीवाणुओं का ही होता है।

नाइट्राइट का नाइट्रेट में आक्सीकरण भी ऊर्जा विसर्जित करता है और ऐमोनिया के आक्सीकरण की भांति यहां भी शुद्ध रासायनिक या प्रकाश-रासायनिक प्रक्रियाएं ही महत्वपूर्ण हो सकती हैं। अन्त: रूपान्तरण करने वाले जीवाणु अवसादों में प्रचुरता से पाये जाते हैं, परन्तु जल स्तम्भ से उनका पृथक्करण बहुत ही कठिन है। उपयुक्त तकनीक का विकास इस समस्या का भी समाधान कर सकता है। कूपर ने संकेत किया है कि आक्सीजन से संतृप्त सागर जल में नाइट्राइट के साथ संतुलित नाइट्रेट का परिमाण अत्यधिक होगा। इसलिये जल स्तम्भ में नाइट्राइट की उपस्थिति इसके क्रियात्मक विकास का संकेत करती है जो केवल नाइट्रेट के पुनर्जनन की अन्त-र्कालीन स्थिति में पाया जाता है। ब्रान्ड की परिकल्पना (Brandt's hypothesis; 7.16) एक ऐसे समुद्री जीवाणु की खोज पर आधारित थी जो प्रयोगशाला परिस्थि-तियों में अनाइट्रीकरण में समर्थ थे। तथापि अब यह विचार किया जाता है कि सागर में प्रस्तुत परिस्थितियों में स्थायी नाइट्रोजन राशि में या तो बहुत ही कम या बिल्कुल ही हानि नहीं होती है, यद्यपि यह प्रदर्शित किया गया है कि NO_3 का NO_2 में अवकरण सम्भव है। यह अवकरण डायटम द्वारा भी किया जा सकता है जैसा कि शुद्ध संवर्धनों के प्रयोगों पर आधारित प्रेक्षणों में देखा गया है। (जोवैल, Zo Bell, 1937)

कार्बनिक फॉस्फोरस और फॉस्फेट में ऋतु परिवर्तन :—

कुछ तटवर्ती क्षेत्रों के लिये फॉस्फेट में ऋतु परिवर्तन प्रदर्शित करने के लिये पर्याप्त आंकड़े उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिये फ्राइडे बन्दरगाह, इन्गलिश चैनल और मैन की खाड़ी का चयन किया गया है।

चित्र 62 में लगभग चार वर्षों तक फ्राइडे बन्दरगाह में प्रेक्षित PO_4—P के मासिक मध्यमान के औसत मान दिये गये हैं। (फिफर और थोमसन, Phifer and Thompson, 1927) उच्चतम मान शीतकाल में और निम्नतम ग्रीष्म में पाये जाते हैं जबकि फाइटोप्लैंक्टन की वृद्धि बहुत अधिक होती है। N : P के मासिक अनुपात कूपर द्वारा प्रस्तावित सामान्य अनुपातों की तुलना में कुछ कम हैं, और वर्ष
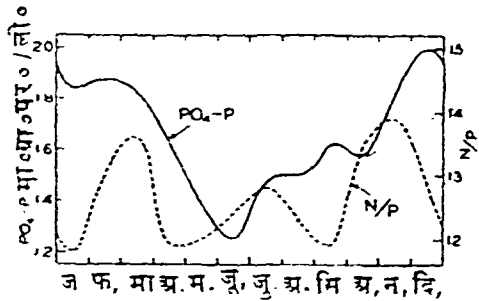
चित्र 62 :—वाशिंगटन स्थित फ्राइडे बन्दरगाह की पृष्ठीय परत में फॉस्फेट राशि में वार्षिक परिवर्तन और मासिक N/P अनुपात।

में उनका परिवर्तन यह प्रदर्शित करता है कि फॉस्फेट के समानुपात में अधिक नाइट्रेट उपभोग होता है। इस ईलाके में इन दोनों पदार्थों में से कोई भी उत्पादित फाइटो प्लैंकटन को सीमित नहीं कर सकता है। इन्गलिश चैनल में नवम्बर 1930 से जनवरी 1932 तक के लिये कूपर (Cooper, 1938b) के फॉस्फेट के आंकड़े चित्र 63 में PO_4-P के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। इस पिछले क्षेत्र में पृष्ठ में और तलीय परतों में पाई जाने वाली राशि में बहुत अधिक विभिन्नता नहीं पाई जाती है। फ्राइडे वन्दरगाह की तुलना में इन्गलिश चैनल में फॉस्फेट की काफी कम राशि पाई जाती है, यद्यपि दोनों के उच्चतम और न्यूनतम मानों के बीच अन्तर लगभग उसी क्रम का है; पहले क्षेत्र में यह अन्तर 0.5 माइक्रो ग्राम-परमाणु प्रतिलीटर और दूसरेक्षेत्र में 0.75 माइक्रो ग्राम-परमाणु प्रति लीटर है। सेन जुवान चैनल के 'न्यूनतम' मान इंगलिश चैनल के 'उच्चतम' मानों से भी अधिक हैं। नाइट्रेट के लिये भी अवस्था समान ही है। (7.17)
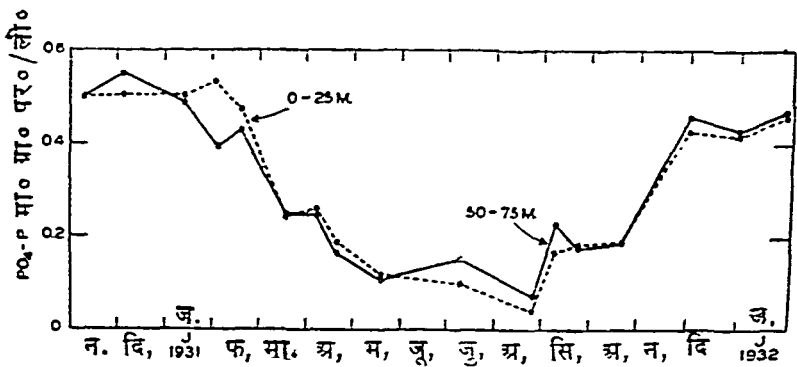
चित्र 63 :—नवम्बर 1930 से जनवरी 1932 के बीच इन्गलिश चैनल में पृष्ठ परतों (0 से 25 मीटर) और तलीय परतों (50 से 75 मीटर) पर फॉस्फेट राशि में ऋतु परिवर्तन।

कूपर (Cooper, 1938b) ने अठारह वर्षों के लिये इन्गलिश चैनल में फॉस्फेट के आंकड़े एकत्र किये हैं। चित्र 64 में प्लाई माउथ के निकट जल स्तम्भ में औसत PO_4—P के शीतकालीन उच्चतम मान आलेखित किये हैं। चूंकि शीतकाल में जल में फॉस्फेट की मात्रा आने वाली ग्रीष्म और ऋतु में संभाव्य उत्पादन का मापदण्ड है, इसलिये उसके आंकड़े 1929 या 1930 के पश्चात उर्वरता में कमी की ओर संकेत
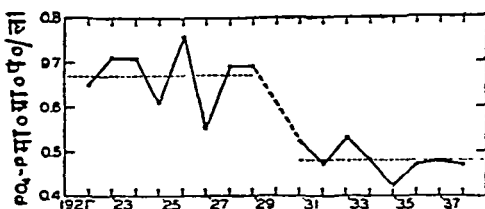
चित्र 64 :—1921-1938 काल में इंग्लिश चैनल में फॉस्फेट के लिये 'उच्चतम' मान।

करते हैं। ये परिवर्तन संचार के साथ सम्बद्ध माने जाते हैं जिसमें बेतरतीब या आवर्ती उतार-चढ़ाव हो सकते हैं।

उपरोक्त विवरण में ऋतु परिवर्तनों की चक्रीय प्रकृति पर बल दिया गया है और यह स्पष्ट है कि किसी भी प्रदेश में परिस्थितियों की आवृत्ति नहीं हो सकती है यदि यह परिवर्तन विक्षोभ जैसे संचार में स्थानान्तरण द्वारा लाया जाता है।

मैन की खाड़ी में PO_4—P और विभिन्न फॉस्फोरस कार्बनिक अंशों में वार्षिक परिवर्तन का अध्ययन रेडफील्ड, स्मिथ और कैचम (Redfield, Smith, and Ketchum, 1937) द्वारा किया गया है। एक वर्ष में पाँच नमूनों का पृष्ठ और तल के बीच विभिन्न गहराइयों पर एकत्रण किया गया था। इन नमूनों का PO_4—P, विलीन कार्बनिक P और कार्बनिक आणविक P के लिये विश्लेषण किया गया। प्राप्त परिणामों को सारणी 54 में संग्रहित किया गया है।

सारणी 54

मैन की खाड़ी में फॉस्फोरस वितरण के ऋतु परिवर्तन

फॉस्फोरस विभिन्न रूपों में	गहराई अंतराल (मीटरों में)	फॉस्फोरस माइक्रोग्राम-परमाणु/लीटर इकाइयों में				
		18 मई 1935	20 अगस्त 1935	8 नवम्बर 1935	26 फरवरी 1936	14 मई 1936
फॉस्फेट	0–60	0.60	0.68	0.65	1.03	0.64
	60–120	1.11	0.91	1.08	1.02	1.25
	120–180	1.31	1.22	1.25	1.11	1.51
	180–240	1.61	1.39	1.22	1.51	1.60
घुले हुए कार्बनिक	0–60	0.08	0.34	0 29	0.07	0.14
	60–120	0.02	0 29	0.31	0.14	0.36
	120–180	0.01	0.17	0.29	0.17	0.15
	180–240	0.00	0.20	0.37	0.03	0.10
आणविक कार्बनिक	0–60	0.15	0.10	0.10	0.05	0.12
	60–120	0.06	0.05	0.05	0 05	0.07
	120–180	0.04	0.03	0 08	0.03	0.02
	180–240	0.04	0.03	0.08	0.04	0.06
कुल (समस्त जल-स्तम्भ के लिए औसत)	0–240	1.26	1.36	1.44	1.31	1.51

एक ही इलाके से नमूनों के एकत्रण के बावजूद वर्ष भर में फॉस्फोरस की कुल मात्रा में होने वाले परिवर्तनों का कारण जल के संचार (अभिवहन) द्वारा भिन्न लक्षण जल का उस इलाके में आ जाना बतलाया गया है। सारणी 54 यह प्रदर्शित करती है कि आणविक फॉस्फोरस कभी भी कुल फॉस्फोरस का 10 प्रतिशत से अधिक निर्धारित नहीं करता, परन्तु घुला हुआ कार्बनिक फॉस्फोरस कभी-कभी अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में पाया जाता है, ऊपरी 60 मीटर में तो यह कुल PO_4—P के 50 प्रतिशत तक पहुँच जाता है।

सागर में कार्बनिक फॉस्फोरस के पहले के काम का सारांश कूपर (Cooper 1937 a) ने दिया है उसने इंग्लिश चैनल में लिये गये अवलोकनों के परिणाम भी दिये हैं। कूपर यह संकेत करता है कि कुल "कार्बनिक फॉस्फोरस" (आणविक और घुला हुआ दोनों) के कई निर्धारणों में सम्भवतया आर्सेनाइट-आर्सेनिक भी अन्तर्निहित है जो कि कार्बनिक पदार्थों के विघटन पर आर्सेनेट में आक्सीकृत तो किया जाता है परन्तु बाद में अवकरित नहीं हो पाता है। आर्सेनेट की वर्णमापीय निर्धारणों के प्रति प्रतिक्रिया फॉस्फोरस के समान ही होती है, और चूंकि आर्सेनेट के रूप में उपस्थित आर्सेनिक अकार्बनिक फॉस्फोरस निर्धारणों के विश्लेषण पर कोई भी प्रभाव नहीं डालता है इसलिये 'कार्बनिक फॉस्फोरस' का निर्धारण लगभग 0·2 माइक्रो ग्राम-परमाणु अधिक होगा (आर्सेनिक की सान्द्रता)। मैन की खाड़ी के निर्धारणों को त्रुटि के इस स्रोत के लिये निरसित कर लिया गया था।

आर्सेनिक के लिये परिशुद्धित नहीं किये गये 'कार्बनिक फॉस्फोरस' का औसत मान लगभग 0·4 माइक्रो ग्राम-परमाणु प्रतिलीटर (कूपर, Cooper 1937 a) होता है। आर्सेनिक से निरसित करने के लिये उपरोक्त मान को लाघव किया जाय तो यह मान मैन की खाड़ी में तत्सम्बन्धित औसत मान है।

रेडफील्ड आदि (Redfield, et al) द्वारा मैन की खाड़ी में आणविक और घुले हुए पदार्थों के उच्चतम मान इस प्रकार हैं:—

आणविक P : 0·21 मा० ग्राम—परमाणु/लीटर

घुला हुआ कार्बनिक P : 0·58 मा० ग्राम—परमाणु/लीटर

यदि इन मानों को जीवधारियों में N:P के अनुपात 16 से गुणा किया जाये तो नाइट्रोजन के उच्चतम तत्सम्बन्धित मान क्रमश: 3·4 और 9·3 मा० ग्राम परमाणु/लीटर होंगे जो नाइट्रोजन के लिये तत्सम्बन्धित निर्धारित मानों से निकट सहमति प्रकट करते हैं (7·18)

सागर में फॉस्फ़ोरस चक्र

सागर में फॉस्फोरस का चक्र नाइट्रोजन के समतुल्य ही है, अपवाद के तौर पर फॉस्फोरस के केवल एक ही अकार्बनिक रूप, फॉस्फेट, की उपस्थिति का ज्ञान है। जैसा की ऊपर प्रदर्शित किया गया है फॉस्फोरस जीवधारियों में आणविक और घुले हुए कार्बनिक पदार्थो के रूप में और फॉस्फेट की तरह उपस्थित रहता हैं। सम्भवतया पौधे केवल फॉस्फेट का ही उपभोग करते हैं, और विलीन कार्बनिक अंश, जो उत्सर्जित होने वाले पदार्थों या उपपचयात्मक क्रियाओं द्वारा उत्पन्न होने वाले कार्बनिक पदार्थ या कार्बनिक पदार्थों के विघटन से उत्पन्न होने वाले पदार्थ के रूप में प्रकट हो सकते हैं, फॉस्फेट के पुनर्जनन में केवल मध्यस्थ का कार्य करते हैं। अभी तक यह पूर्णतया ज्ञात नहीं है कि जीवाणुओं का इस प्रक्रिया में क्या हाथ है ?

प्रयोगशाला में प्लैंक्टन पदार्थों के विघटन के अध्ययन से कुछ रूचिकर परिणाम प्राप्त हुए हैं। कूपर (Cooper. 1935) ने सागर जल में ज्ञात फॉस्फोरस अंश के जूप्लैंक्टन और फाइटोप्लैंक्टन मिश्रित कर PO_4—P के उत्पादन की दर का निर्धारण किया। PO_4 डायटम पदार्थों की तुलना में जूप्लैंक्टन नमूने में तीव्रता से प्रकट हुआ। इससे भी अधिक जूप्लैंक्टन नमूने में उत्पन्न फॉस्फोरस की मात्रा नमूने में मूल रूप से उपस्थित PO_4 तथा मिलाये गये आणविक पदार्थों में प्रस्तुत फॉस्फोरस से भी अधिक पाई गई। यह बढ़ोतरी जल में मूल रूप से उपस्थित कार्बनिक फॉस्फोरस के द्वारा उत्पन्न हुई। डायटम प्रयोग में PO_4 की राशि मूल PO_4 तथा मिश्रित फॉस्फोरस पदार्थों के स्तर से अधिक पांच माह के अन्तराल के बाद भी नहीं हो सकी। PO_4 की प्रारम्भिक प्रतीति की दर तीव्र थी और जूप्लैंक्टन के प्रयोग में अन्तः रूपान्तरण लगभग दो सप्ताह में संम्पूर्ण हो गया। पौधों और प्राणी पदार्थों के व्यवहार में अन्तर के बारे में अभी तक कुछ भी नहीं समझा जा सका है। सीवेल और सीवेल (Seiwell and Seiwell. 1938) के अनुसार 22°C और 25°C ताप के बीच (सम्भवतया कूपर के प्रयोग के ताप से ऊँचा) जूप्लैंक्टन का विघटन इस प्रकार का था कि PO_4 का विकास मृत्यु के एक या दो दिन के बीच बहुत ही तीव्रता से हुआ। इस स्थिति के बाद बहुधा एक ऐसा काल आता है जिसमें सूक्ष्म जीवों द्वारा PO_4 का उपभोग प्रयोग में इसकी उत्पत्ति से भी अधिक होता है। इन प्रयोगों के आधार पर कभी कभी यह माना जाता है कि PO_4 का पुनर्जनन NO_3 की अपेक्षा अधिक तीव्रता से होता है। तथापि सागर के अन्दर इस सिद्धान्त के समर्थन के लिये अभी तक कोई भी प्रमाण प्राप्त नहीं हैं। ऋतु परिवर्तन दर्शाने वाले चित्रों की परीक्षा यह प्रदर्शित करती है कि NO_3 और PO_4 में उच्चतम और निम्नतम मान एक ही माह में पाये जाते हैं जो यह भी संकेत कर सकता है कि दोनों के उपभोग और पुनर्जनन की आपेक्षिक दर समान है। इससे भी अधिक,

शीतकालीन 'उच्चतम' से ग्रीष्म 'न्यूनतम' तक (कूपर, Cooper, 1956) इंग्लिश चैनल से PO_4 और NO_3 राशि में कमी के आधार पर प्लैंक्टन उत्पादन के निर्धारण के समान परिणाम ही प्राप्त होते हैं।

4 दिसम्बर 1930 से 26 अगस्त 1931 : NO_3—N में कमी =6·3 मा० ग्राम—पर०/लीटर

23 मार्च 1931 से 18 मई 1931 : PO_4—P में कमी =0 46 मा० ग्राम—पर०/लीटर

यदि इनके उपभोग का अनुपात 16 : 1 लिया जाये तो PO_4—P के समतुल्य NO_3-N की मात्रा 7·4 मा० ग्राम—पर०/लीटर होगी। जीवित जीवधारियों में इस राशि का केवल एक अंश ही उपस्थित रहता है इसलिये जल में पुनर्जनन के लिये उपलब्ध मलवा और घुले हुए पदार्थ बहुलता से उपस्थित रहते हैं। यदि PO_4 के पुनर्जनन की दर NO_3 की अपेक्षा तीव्र हो तो यह आशा की जाती है कि PO_4 मात्रा में कमी काफी कम होगी। यद्यपि सागर में पुनर्जनन के परम मानों के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है परन्तु इस बात का भी कोई प्रमाण नहीं है कि इनकी आपेक्षिक दरों में बहुत अधिक विभिन्नता है।

सारणी 54 में संग्रहित आंकड़ों के आधार पर रेडफील्ड, स्मिथ, और कैचम (*Redfield, Smith and Ketchum, 1957*) ने विभिन्न परतों में फॉस्फोरस के यौगिक किस प्रकार परिवर्तित होते हैं। यह अनुमान निम्न कल्पनाओं के आधार पर किया है :—

(1) फॉसफोरस का पूर्ण उपभोग ऊपरी 60 मीटर में ही होता है। (2) फॉस्फोरस का नीचे की ओर सारा परिवहन आणविक और अन्य जैव पदार्थों के नीचे बैठने के कारण होता है, और (3) ऊपर की ओर परिवहन भंवर विसरण के कारण होता है। उनकी परीक्षा से यह निष्कर्ष निकलता है कि विघटन और पुनर्जनन की प्रक्रियाएँ पूरे 240 मीटर लम्बे जल स्तम्भ में होती रहती हैं।

चित्र 65 वाशिङ्गटन स्थित फ्राइडे वन्दरगाह के पृष्ठ जल में सिलिकेट राशि का वार्षिक चक्र।

सिलिकेट में ऋतु परिवर्तन :—

सिलिकेटसिलिकन में ऋतु चक्रों का अवलोकन कई क्षेत्रों में किया गया हैं जिनमें से फ्राइडे वन्दरगाह और इन्गलिश चैनल का उदाहरण के रूप में चयन

किया गया है। प्रस्तुत आंकड़ों की तुलना NO_3—N और PO_4—P के सम्बन्धित आंकड़ों से की जा सकती है। चित्र 65 में फ्राइडे बन्दरगाह में लगभग चार वर्षों के प्रेक्षणों पर आधारित औसत मासिक मान प्रदर्शित किये गये हैं। उच्चतम मान शीत ऋतु में और न्यूनतम मान ग्रीष्म के आरम्भ में पाये जाते हैं। सिलिकन की परास 15 मा० ग्राम-परमाणु/लीटर है। SiO_3—Si, NO_3—N और PO_4—P की परास का समानुपात 20 : 14.7 : 1 है। इन्गलिश चैनल के आंकड़े (कूपर, Cooper, 1933) चित्र 66 में प्रदर्शित हैं। यह नोट करने योग्य है कि इन्गलिश चैनल में सिलिकन की सांद्रता फ्राइडे बन्दरगाह की तुलना में बहुत कम है, सामान्यतया यह केवल $\frac{1}{25}$ अंश ही है। 1931 में सिलिकन की परास लगभग 3.5 मा० ग्राम-परमाणु/लीटर थी और परास का अनुपात SiO_4—Si, NO_3—N और PO_4—P के लिए 7.6 : 13.7 : 1 था। दोनों क्षेत्रों में PO_4 और NO_3 के उपभोग की दर के अनुपात में काफी सहमति पाई जाती है परन्तु निष्कासित सिलिकन की मात्रा में बहुत बड़ा अन्तर है। इन ईलाकों में यह अन्तर प्लैंक्टन के गुणधर्म और प्लैंक्टन विकास अनुक्रम से सम्बन्वित है या नहीं यह अभी ज्ञात नहीं है। मोन्टेरे खाड़ी में SiO_3 के वितरण में ऋतु परिवर्तनों को चित्र 56 में प्रदर्शित किया गया था।
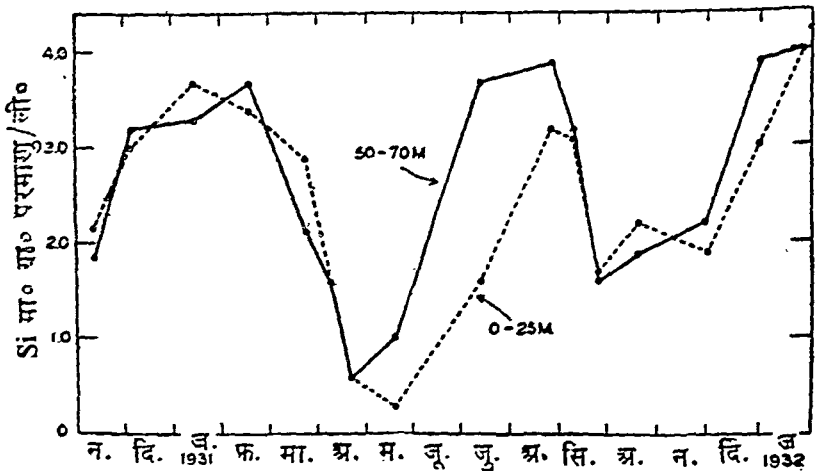
चित्र 66 :—नवम्बर 1930 से जनवरी 1932 के बीच इन्गलिश चैनल की पृष्ठ परतों (0 से 25 मीटर) और तली परतों (50 से 70) में विद्यमान सिलिकन की मात्रा में ऋतु परिवर्तन।

तटवर्त्ती क्षेत्रों में, नदियों द्वारा लाया गया सिलिकामय पदार्थों से सम्पन्न जल जिसमें सागर की तुलना में सिलिका की मात्रा कई गुणा अधिक होती है, सिलिकन की सांद्रता को काफी जटिल बना देता है, तनुकरन इसलिए सिलिकेट की सान्द्रता बढ़ाने का प्रयत्न करेगा। (हचिन्सन, Hutchinson, 1928)

सागर में सिलिका चक्र :—पृष्ठ परतों में सिलिका का क्षय जैव क्रियाओं और जीवधारियों या उनके कंकालों के डूबने का परिणाम है। डायटम या दूसरे

जीवधारियों द्वारा हटाई गई सिलिका उन जीवधारियों की मृत्यु के बाद पुनः घोल में आ जाती है या सागर तल में एकत्र हो जाती है। नाइट्रोजन और फॉस्फोरस चक्र के विपरीत जीवाणु शायद कंकाल संरचनाओं से सिलिकन के पुन: विलीन करने में प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लेते हैं। डूब कर तल की ओर जाने वाले कंकाल पदार्थ तलछट के स्थायी या अस्थायी अवयव की रचना करते हैं। उच्च अक्षांशों पर सिलिकामय अवसाद पाये जाते हैं जहां तल पर पाये जाने वाले पदार्थों में डायटम फ्रस्ट्यूल्स की मात्रा काफी अधिक होती है, अन्य इलाकों में रेडियोलारिन कंकाल अवसादों के एक बड़े भाग का निर्माण करते हैं। (अध्याय 20)

इङ्गलिश चैनल में सिलिका का वितरण PO_4 और NO_3 की अपेक्षा अधिक अनियमित है और विभिन्न परतों में पाई जाने वाली सिलिका की मात्रा में काफी *बड़ा अन्तर हो सकता है। बहुधा पृष्ठ के निकट और तल के ठीक ऊपर सिलिकन* के उच्च मान पाये जाते हैं। पृष्ठ के उच्च मान नदियों के जल के कारण और तल के निकट उच्च मान नीचे पड़े हुए कंकाली पदार्थों के पुन: विलयन के कारण होते हैं। स्पष्ट थर्मोक्लाइन के निकट घुले हुए सिलिकेट का संचय भी धीरे धीरे नीचे की ओर बैठने वाले मलवे के पुन: घोलन का प्रमाण है।

इङ्गलिश चैनल में शीत 'उच्चतम' और ग्रीष्म 'न्यूनतम' काल के बीच PO_4—P, NO_3—N और SiO_3—Si (कूपर, Cooper, 1933, 1938b) के मानो के अन्तर पर आधारित प्लैंक्टन उत्पादन यदि SiO_3 के आंकड़ों द्वारा निर्धारित किया जाय तो यह निर्धारण अन्य तत्वों के द्वारा किये गये निर्धारण का केवल $\frac{1}{15}$ भाग ही होगा। कूपर ने इस मान में इतनी कमी का कारण सिलिकन चक्र की तीव्रता बतलाया है। इन्गलिश चैनल और फ्राइडे बन्दरगाह पर उपभुक्त सिलिकन की मात्रा में अन्तर पर ऊपर विचार किया जा चुका है, और इन्गलिश चैनल में सान्द्रता के स्तर में कमी यह संकेत भी कर सकती है कि यह इन ईलाकों में डायटम उत्पादन को भी प्रभावित करती है।

किंग और डेविडसन (King and Davidson, 1933) ने यह ज्ञात किया कि SiO_3—Si की घोल में उपस्थित मात्रा प्रयोगशाला संवर्धनों को भी प्रभावित करती है। उन्होंने डायटम की मृत्यु के पश्चात घुले हुए सिलिकन की मात्रा में परिवर्तनों का अध्ययन करके यह ज्ञात किया कि डायटम को पूर्ण रूप से घुलने में लगभग पांच माह लगते हैं। समुद्री फायटो-प्लैंकटन का भी इस विधि से अध्ययन किया गया है और यह ज्ञात किया गया है कि उबाले हुए नमूने बिना उबाले नमूनों की अपेक्षा घुलने में अधिक समय लगाते हैं। घोलन प्रक्रिया को त्वरित कर देने वाले ऐन्जाइम्स के सम्भावित अस्तित्व का सुझाव इस पुस्तक के लेखकों द्वारा दिया गया है।

———

अध्याय 8

जैव पर्यावरण के रूप में सागर

पिछले अध्यायों में अकार्बनिक पर्यावरण की रचना करने वाले तत्वों, अर्थात् (1) स्वयम् सागर जल, और (2) महासागरीय वनस्पतियों, के भौतिक और रासायनिक पक्षों का वृत्तांत दिया गया है। विभिन्न जटिल जैव पदार्थों के इतिहास और उनके भविष्य पर, सागर जल के रासायनिक अंग और उसके भौतिक गुणों के साथ-साथ उसका वितरण, सांद्रता और चक्रिक परिवर्तन, सागर जल की गति और महासागरीय वनस्पतियां इत्यादि निर्णायक प्रभाव रखते हैं। इनमें ही विभिन्न प्रजातियों के परिवर्धन के रहस्य छिपे रहते हैं और यहां से ही सूक्ष्मतया संतुलित जीवन के पोषण और भविष्यगत परिवर्धन की सम्भावनाओं के बारे में ज्ञान प्राप्त किया जाना चाहिए।

समुद्री जीवधारियों को सागर के वर्तमान अस्तित्व का ही एक अंश मानना चाहिए। सागर जल में जिस प्रकार एक ओर तो संरक्षी और असंरक्षी (जैव क्रिया द्वारा परिवर्तनशील) लवण पाये जाते हैं, उसी प्रकार दूसरी ओर प्रचुरता से पाये जाने वाले विविध जीवधारी, जो कि अपने अस्तित्व के लिये सागर से संलग्न हैं, प्रजातीय या व्यक्तिश: दोनों ही रूप में सागर के अभिन्न अङ्ग हैं। लवणों की भांति जीवधारी भी सागर के प्राकृतिक नियमों से बद्ध हैं, और समुद्र विज्ञान के बहुत ही महत्वपूर्ण पहलुओं के लिये चिरस्थाई कार्बनिक और अकार्बनिक चक्रों का एक अङ्ग है। सान्द्रता में स्पष्ट परिवर्तन केवल चक्रों की कला में अन्तर्निहित प्रतिरूप या अन्य कई कारणों के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाले प्रतिरूपों का निरूपण करते हैं, जैसे कि समुद्री धाराएं और प्रक्रियाएँ।

सागर जल जिन प्राणियों के सम्पूर्ण शरीर पृष्ठ, खुली और आंशिक रूप से बन्द गुहाओं को पूर्णतया आच्छादित किये रहता है उन समस्त जीवधारियों को सागर पर्यावरण अतिसंसर्ग प्रदान करता है, उदाहरण के तौर पर सीलेन्टेरेटा प्राणी, इकाइनोडर्म्स और ट्यूनिकेट प्राणी। सागर जल गुणधर्मों में स्थिरता और घुले हुये लवणों की रचना और सान्द्रता के कारण सामान्यतया भूमि पर रहने वाले जीवों की तुलना में समुद्री जीवों ने पर्यावरण में होने वाले तीव्र परिवर्तनों से बचने के लिये उच्च विशिष्टता वाले आवरण या त्वचा और अन्य नियमित करने वाली प्रणालियों का विकास नहीं किया है। इससे यह अर्थ भी निकाला जा सकता है कि

सागर पर्यावरण में थोड़े परिवर्तन भी जीवसंख्या पर तुरन्त ही प्रभाव डाल सकते हैं। यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि इस गतिज पर्यावरण का एक अङ्ग होने के नाते जीवधारी स्वयम् ही इस पर्यावरण में जैव क्रियाओं से सम्बद्ध कुछ पदार्थ घटा या बढ़ा कर इसका रासायनिक गुणधर्म परिवर्तित कर देते हैं।

अगले कुछ अध्यायों में कुछ मापे जा सकने वाले पर्यावरण घटकों से सम्बन्धित ऐसे प्रपंचों जैसे कि वितरण, संचरण, अतिजीवन और विशिष्ट अनुकूलन आदि पर विचार किया जायेगा, परन्तु इससे पहले सामान्य प्रयोग सम्बन्धी कुछ तथ्यों पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है।

सागर पर्यावरण के भौतिक और रासायनिक गुणधर्म

समस्त जीवन के पोषण के लिये जल एक अनिवार्य अंग है। भार के अनुसार क्रियात्मक जीव द्रव्य (प्रोटोप्लाज्म) में लगभग 80 प्रतिशत जल होता है। यह सर्वाधिक क्षय घोलक (विलेयशील) है, और ऑक्सीजन व कार्बन डाई ऑक्साइड जैसी आवश्यक गैसों के साथ-साथ पौधों और जीवों के विकास के लिये आवश्यक खनिज पदार्थ भी इसमें घुले रहते हैं, और पौधों के भोजन के निर्माण में जल स्वयम् एक कच्चे माल का कार्य करता है।

जल का संरक्षण करने के लिये, भूपर्यावरण में रहने वाले जीवों ने अभेद्य आवरण या त्वचा और भूमि पर पनपने वाले पौधों ने जड़ें और पौधों के सम्पूर्ण विकासशील भागों में जल का संचरण करने वाली विशिष्ट प्रणालियों का विकास कर लिया है। उच्च ज्वार स्तरों को छोड़कर सागर पर्यावरण में डेसीकेशन (Decsication) की पूर्ण स्वतंत्रता होती है, इसलिये पौधों में जल के संरक्षण और इसके संचरण के लिये विशिष्ठ अंग नहीं होते हैं।

जल की उच्च ऊष्माधारिता और वाष्पन की उच्च गुप्त ऊष्मा भी जैव प्रक्रियाओं के लिये महत्वपूर्ण होती हैं, परिणामस्वरूप तीव्रताप परिवर्तन से पर्यावरण माध्यम में उत्पन्न होने वाले खतरे से उपरोक्त दोनों प्रक्रियाएँ छुटकारा दिला देती हैं। जल की उच्च पारदर्शिता के कारण, अपेक्षाकृत गहरी परतों के भीतर, जीवन का विकास सम्भव है और समुद्री जीवों में भी दिग्वलन और दृश्य इन्द्रियों का काफी विकास हो चुका है।

सागर जल एक प्रतिरोधित घोल है—अर्थात् अम्ल से क्षारीय और क्षार से अम्लीय परिवर्तनों का यह प्रतिरोध करता है (8·1)। मुख्यतया निम्न दो कारणों के कारण यह गुण समुद्री जीवों के लिये अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है :—(1) पी० एच० (*p*H) में होने वाले छोटे-छोटे परिवर्तनों से प्रभावित होने वाले जीवों के विकास को

अव्यवस्थित किये बिना ही कार्बोहाइड्रेट के संश्लेषण के लिये कार्बन डाई-ऑक्साइड के रूप में कार्बन प्रचुरता से उपलब्ध हो सकता है, और (2) उदासीन विलयन (घोल) की अपेक्षा थोड़े से क्षारीय वातावरण में कैल्सियम कार्बोनेट (या अन्य कैल्सियम लवण) का खोल बनाने वाले कई जीवधारी यह कार्य कहीं अधिक दक्षता से कर सकते हैं।

पर्यावरक माध्यम के आपेक्षिक घनत्व द्वारा प्राप्त आधार के कारण कई आकृतियों में विशिष्ट आधार वाली कंकाल संरचनाओं की कोई आवश्यकता नहीं रहती है इसके ज्वलंत उदाहरण हैं जेली फ़िश, अकवचित मोलस्का, अकवचित डाइनोफ्लेजेलेट और भारी कंकाल वाले समुद्री स्तनधारी जन्तु जो कि सागर पर्यावरक को छोड़कर अपनी वर्तमान भारी अवस्था में और कहीं भी जीवित नहीं रह सकते हैं। केब, सीपियों (क्लेम) और घोंघों आदि के कठोर कवच भी निस्सन्देह आधार का काम करते हैं, और विशेषकर कुछ बिलकारी और ज्वारान्तर आकृतियों में भी ऐसे आधार पाये जाते हैं, परन्तु ये कठोर भाग उन प्राणियों की रक्षा करने वाले खोल और खोदने, तैरने और सरकने वाले अंगों की माँसपेशियों को संलग्न करने वाले ढांचों के रूप में भी देखे जा सकते हैं।

सागर जल और शरीर में उपस्थित तरल :—जीवित कोशिकाओं के लिए सागर जल सर्वोचित पर्यावरण है, क्योंकि इसमें पौधों और जैव द्रव्य (प्रोटोप्लाज्म) की उत्पत्ति और पोषण करने वाले समस्त रासायनिक तत्व होते हैं। यह पहले ही बताया जा चुका है कि सागर जल काफी लवणों का घोल होता है. और यहां पर यह विचार करना भी महत्व पूर्ण है कि 'बाह्य माध्यम' के रूप में सागर जल का जीवधारियों के 'आन्तरिक माध्यम'-अर्थात शरीर में विद्यमान तरल (रक्त, सीलेमैंटा द्रव्य इत्यादि) के साथ क्या सम्बन्ध है। सागर के जल और समुद्री अकशेरुकी प्राणियों के शरीर-तरल में मुख्य लवणों के अनुपात के साथ साथ उनकी कुल सांद्रता भी प्राय: समान होती है।

पेन्टिन (Pantin, 1931) द्वारा संग्रहित और डेकिन (Dakin, 1933) द्वारा विस्तारित आंकड़ों के अनुसार, जो कि सारणी 55 में प्रदर्शित किये गये हैं, उपरोक्त रचनागत समानता केवल समुद्री जीवों तक ही सीमित न रह कर ताजे जल और भूमि पर पाये जाने वाले जीवों में भी रुपान्तरित रूप से पाई जाती है।

रसाकर्षण सम्बन्ध :—यह सर्व विदित है कि एक अर्ध पारगम्य झिल्ली (एक ऐसी झिल्ली जिसके पार केवल जल का ही बहाव सम्भव है, घुले हुए पदार्थों का नहीं) द्वारा पृथक भिन्न रसाकर्षण दाब वाले घोलों में झिल्ली के पार जल का बहाव कम सान्द्रता वाले घोल से अधिक सान्द्रता वाले घोल की ओर ही होता है। जीवों की

कोशिका झिल्ली भी एक ऐसी ही अर्ध-पारगम्य झिल्ली होती है, जिसमें यदि वाह्य रसाकर्षण दाव भीतर की अपेक्षा कम हो (अल्पवली) तो द्रव की गति बाहर की ओर और यदि बाह्य-माध्यम का रसाकर्षण दाव भीतर की अपेक्षा अधिक (अतिवली) हो तो द्रव की गति भीतर की ओर होती है। जब वाह्य और भीतर दोनों माध्यमों का रसाकर्षण दाव बराबर होता है तब वे दोनों माध्यम संमपरिसारी (आइसोटोनिक) कहलाते हैं।

रसाकर्षण दाब की संगणना हिमांक अवनमन के द्वारा की जा सकती है (8.2)। उपरोक्त गणना इस तथ्य पर आधारित है कि रसाकर्षण दाव में वृद्धि करने वाले लवण हिमांक को अवनमित कर देते हैं। 0°c के नीचे हिमांक अवनमन को $\triangle \theta_f$ के द्वारा निर्दिष्ट किया गया है, (8.3) परन्तु हम यहां इसे केवल $\triangle$ के द्वारा निर्दिष्ट करेंगे। 35‰ लवणता वाले सागर जल में घुले हुए पदार्थों के कारण हिमीकरण—1.91°c पर होता है। यानी $\triangle$ का मान 1.91° है। इसी प्रकार मानवीय रक्त का हिमांक -0.56°c है और तदनुरूप $\triangle$ का मान 0.56 है।

$\triangle$ के मान के आधार पर असमुद्री जल और समुद्री जीवों के शरीर-तरल के रसाकर्षण सम्बन्धों की बाह्य पर्यावरण के साथ तुलना सारणी 56 में की गई है जो डेकिन (Dakin, 1935) के आंकड़ों पर आधारित है, इस विषय के इतिहास और विस्तार से अध्ययन के लिए पाठक डेकिन की समालोचना पढ़ें।

सारणी में दिये गये कुछ उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि समुद्री अकशेरूकी प्राणियों का शरीर-तरल उनके द्रव्य पर्यावरण के साथ समपरिसारी (आइसोटोनिक) या लगभग इसके समान होता है, जबकि असमुद्री जल में पाई जाने वाली आकृतियों का शरीर तरल बाह्य, तनु माध्यम की तुलना में अतिबली (हाइपरटोनिक) होता है इसी कारण से अपने रसाकर्षण सम्बन्ध में समुद्री पर्यावरण, अपने निवासियों के शरीर तरल की उचित सान्द्रता के संधारण में, उतनी ऊर्जा व्यय नहीं कर पाता है जितनी कि असमुद्री जल पर्यावरण उपरोक्त कार्य के लिए अपने निवासियों पर व्यय करता है। अल्पवली जल की उपस्थिति में असमुद्री जल में पाये जाने वाले प्राणी बाह्य माध्यम से स्वतंत्र रह कर किस प्रकार सम रसाकर्षित अर्थात $\triangle$ का स्थिर मान स्थिति बनाये रखते हैं, इस बारे में यथार्थ प्रक्रम अभी तक अज्ञात है। (सारणी 56 में ईल ऐन्गयुइला ऐन्गयुइला के लवणयुक्त एवम् असमुद्री जल में $\triangle$ के मान देखो) उपरोक्त परिस्थितियों में इन प्राणियों के अस्तित्व के लिए रसाकर्षण द्वारा प्राप्त जल को गुर्दे एवम् अन्य उत्सर्जी अंगो द्वारा व्यय करने की आवश्यकता होती है। समुद्री अकशेरुकी जीवधारी भी केवल एक छोटीसी परास में ही रसाकर्षित तारतम्य सह (पोइकिल ओसमोटिक अर्थात बाह्य माध्यम के साथ $\triangle$ परिवर्तनशील हो) होते हैं, डेकिन (Dakin, 1935), इसलिए उनमें भी कुछ नियमित करने वाली (रेगुलेटरी)

सारणी 55

सागर जल और विभिन्न जीवों के शरीर तरल की रचना

(डेकिन, Dakin, 1933 और पेंटिन, Pantin 1931 के कार्य के अनुसार)

	आंकड़ों के द्वारा संगणित या संकलित	Na	K	Ca	Mg	Cl	SO_4
सागर जल	....	100	3.6	3.8	12.1	180	25.2
औरेलिया फ्लेविड्यूला	मेकलम (1926)	100	5.2	4.1	11.4	186	13.2
लिमुलस पोलिफेमस	मेकलम (1926)	100	5.6	4.1	11.2	187	13.4
अप्लीशिया लिमेसिना	बेथे (1929)	100	4.0	4.4	11.0	180	—
होमारस अमेरीकेनस	मेकलम (1926)	100	3.7	4.9	1.7	171	6.7
अकेन्थियास वुल्गारिस	मेकलम (1926)	100	4.6	2.7	2.5	166	—
कार्सिनस मीनास	बेथे (1929)	100	4.8	4.5	4.8	180	—
(कोड) गेंडस कोलारस	मेकलम (1926)	100	9.5	3.93	1.41	149.7	—
(पोलक) पौलासियस विरेन्स	मेकलम (1926)	100	4.33	3.10	1.46	137.8	—
मेंढक	मेकलम (1926)	100	11.8	3.17	0.79	135.6	—
श्वान	मेकलम (1926)	100	6.6	2.8	0.76	139.5	—

प्रणालियां होनी चाहिए। सागर में रहने वाले अकशेरुकी प्राणियों के लिये, केवल मुहाना क्षेत्रों को छोड़कर, सागर में लवणता की परास सम्भवतया रसाकर्षित तारतम्यसहता की सीमा के भीतर ही होती है। उदाहरण के तौर पर हेल्गोलैण्ड के जल में △1.72, और आर्नीकोला मैरीना अर्थात लुगवोर्म का आन्तरिक △1.7 होता है, परन्तु बाल्टिक जल में △0.77 के लिए इसी प्रजाति का आंतरिक △ मान 0.75 होता है।

यहा पर यह भी उल्लेखित कर देना चाहिये कि समुद्री जल में टीलिओस्ट (अस्थिमय) मछलियां निश्चित रूप से अल्पवली हैं और इसलिए यह प्रजाति शरीर-तरल को आवश्यक रसाकर्षण दाब पर रखने के लिने पंखिका में 'क्लोराइड़ कोशिका' के द्वारा क्लोराइड उत्सर्जित करती है कीज़ (Keys, 1933)। यह प्रक्रिया रक्त का रसाकर्पण दाब कम करने के लिए होती है जबकि असमुद्री जल में पाये जाने वाले जीवों के गुर्दे रसाकर्षण दाव को उच्च मान की ओर नियमित करते हैं। इस समूह के समुद्री प्राणी बाह्य माध्यम के रसाकर्षण दाब से काफी सीमा तक स्वतंत्र हैं। इस बात का प्रमाण सैलमन और ईल जैसी आकृतियाँ हैं; यद्यपि ये दोनों मछलियां व्यवहार में समरसाकर्षित होती हैं परन्तु ये अपना जीवन अंशतः अतिबली और अंशतः अल्पवली पर्यावरण में व्यतीत करती हैं। ऐलास्मोबैंक-अर्थात शार्क और रे (शंकुश मछली)-सागर जल के साथ समपरिसारी है, परन्तु इनमें रक्त का उच्च रसाकर्षण दाब सागर में पाये जाने वाले लवणों के कारण ही केवल न होकर यूरिया की अधिक मात्रा के कारण भी होता है। लवणता पर पर्यावरण घटक के रूप में विचार आगे किया जायेगा (8.4)।

पर्यावरण के अन्य गुणधर्म

रासायनिक और भौतिक गुणधर्मो के साथ-साथ पूर्णरूपेण सागर पर्यावरण में कुछ अन्य आवश्यक जैव गुणधर्म भी अन्तर्निहित हैं। ये स्वयम् सागर के परिमाण, उसकी गहराई और विस्तार के परिणामस्वरूप होते हैं।

सम्पूर्ण सागर पर्यावरण के विषय में विचार करते समय सर्वप्रथम हम जीवों के निर्वाह करने योग्य परिस्थितियों की विविधता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते हैं, लवणता की सान्द्रता मुहानों के जल के तनु मानों से लेकर खुले सागर में 37‰ तक परिवर्तित होती है, ताप—30° से हिमांक तक, प्रकाश तीव्रता-पृष्ठ पर देदीप्यमान सूर्य से लेकर गहरी परतों में परम और पूर्ण अन्धकार तक, और दाब-पृष्ठ पर वायुमंडल दाब से लेकर गहनतम सागरीय गहराई पर 1000 वायु-मण्डलीय दाब तक परिवर्तित होता है।

सारणी 56

कुछ समुद्री और असमुद्री जल प्राणियों के तत्सम्बन्धित बाह्य और आन्तरिक △ मानों की तुलना

(डेकिन (Dekin), 1935 के अनुसार*)

समुद्री प्राणी		
प्रजाती (स्पीशीज)	आन्तरिक माध्यम △°C	बाह्य माध्यम △°C
ऐनिलिडा		
आर्निकोला मैरिना	1.72	1.7
आर्निकोला मैरिना	0.77	0.75
मोलस्का		
ओस्ट्रिया एडुलिश	2.23	2.11–2.14
मिटिलस एडुलिश	2.26	2.11–2.14
आप्लीसिया वल्गारिश	2.16	2.11–2.14
आर्थ्रोपोडा		
होमारस ऐमेरिकानस	1.82	1.80
कैन्सर पेग्युरस	1.84–1.91	1.91
लिमाया स्क्विनिया	1.83	1.80
लिम्युलस पोलिफेमस	1.90	1.82
ट्यूनिकेटा		
फैलोसिया मेमुलाटा	2.08	1.98
टेलीओस्ट मछलियां		
लोफीयस पिस्कैटोरियस / मीरोनेमस कोटेशा	0.787	1.9
कौगर वल्गारिश	0.77	2.14
गाडुस एग्लीफिनस	0.74	1.92

असमुद्री जल प्राणी		
प्रजाती (स्पीशीज)	आन्तरिक माध्यम △°C	बाह्य माध्यम △°C
मोलस्का		
आनोडोन्टा साइग्नेनिया	0.09	
यूनियो पेक्टोरम	0.15	
लिमनाइआ स्टेग्नलिश	0.22–0.23	0 02–0.03
क्रस्टेशिया		
टेलफुसा फ्लुवैटाइल	1.17	
डाफनिया मेग्ना	0.2[illegible]–0.67	
पोटामोबियस अस्टाकस	0.80	
एरियोकिर सिनेन्सिस	1.09	
आस्टाकोप्सिस	1.1	
टेलीओस्ट मत्स्य		
साल्मो फारियो	0.57	
एन्ग्विला एन्ग्विला	0.62	
(सागर जल में)	0.73	1.87
बारबस फ्लुवैटाइलिस	0.50	
साइप्रिनस कार्पियो	0.50	
आनाबस टेस्टुडिनियस	0.64	
डिप्नोई मत्स्य		
एपिसेरैटोडस फोर्स्टरी	0.42	

*डेकिन ने नेपल्स प्रदेश से लिये कुछ प्रेक्षणों के आधार पर △ का मान 2.29° दिया है। साहित्य में बहुधा उद्धरित किये जाने वाले इन प्रेक्षणों को यहां पर छोड़ दिया गया है क्योंकि △ =2.29° बहुत ही उच्च लवणता (43.5 ‰) प्रदर्शित करती है जो सम्भवतया त्रुटिपूर्ण है। पश्चिमी भूमध्यसागर में अधिकतम लवणता 39. ‰ है और तत्साम्यन्धित △ का मान 2.14° है।

ये सीमायें काफी प्रभावोत्पादक हैं परन्तु फिर भी सागर पर्यावरण के काफी विस्तृत प्रदेशों मे समरूप परिस्थितियां पाई जाती हैं और इन विशाल क्षेत्रों की एकरूपता के कारण कई जीवधारी इन प्रचलित अपरिवर्तनीय परिस्थितियों के साथ सूक्ष्मतया समस्वरित हो जाते हैं। अतएव कुछ विशेष आकृतियों द्वारा लक्षित प्राणीप्रजातीय क्षेत्र पहचाने जा सकते हैं। दूसरी ओर कुछ अधिक प्रतिबन्धित क्षेत्रों, विशेषकर तटवर्त्ती क्षेत्रों में अन्य विविध परिस्थितियां पाई जा सकती हैं। ये परिस्थितियां तटरेखा के भौताकृतिकतत्व गुणधर्मों, तल की गहराई, तल की प्रकृति और स्थलाकृति, भू नदों के अन्तर्वाह, मौसम सम्बन्धी परिस्थितियों, इत्यादि पर निर्भर करती हैं। विशिष्ट अनुकूलित और सहिष्णु आकृतियाँ यहां प्रचुरता से पाई जाती हैं, चूंकि परिवर्तनशील परिस्थितियां और छिछली गहराई प्राथमिक भोजन के उत्पादन के लिये बहुत अनुकूल होती है, जिसका वर्णन अगले अध्यायों में किया जायेगा।

यहां यह नहीं भूलना चाहिये कि सागर में पाई जाने वाली लवणता, ताप और प्रकाश प्रवणतायें बहुत से ऐसे सवेदी प्राणियों के अनुकूल हैं, जिनमें या तो तैरने या अपने आपको अनुकूलतम परिस्थितियो में समंजित करने की योग्यता हो।

गहराई और प्रकाश :—खुले सागर की ऊर्ध्वाधर परास या गहराई में रहने वाले जीवों में, जैव प्रभाव के लिये विस्तृत रूप से प्रयोग में आने वाले, बहुत से लक्षण अन्तर्निहित हैं। तैरने वाले सूक्ष्म पौधों के उत्पादन के लिये प्राप्य यूफोटिक ज़ोन की बहुत बडी परास जिनमें मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। परन्तु जल की गहराई के परिणाम-स्वरूप पैदा होने वाली प्रकाश प्रवणता (गुण और मात्रा दोनों दृष्टियों से) में बहुत से प्राणी अनुकूलतम परिस्थितियों के लिये समजित हो जाते हैं, और यह घटक बहुत सी आकृतियों के प्रकाशवान क्षेत्रों से अन्धकार पूर्ण क्षेत्रों में दैनिक स्थानान्तरण के साथ सम्बद्ध है।

दाब :—सागर के वितलीय क्षेत्रों में दाब जीवन को छोड़ नहीं सकता है क्योंकि जल बहुत ही कम संपीड़ित होता है और शरीरोतक (बॉडी टिशू) का वाह्य दाब शरीर के आन्तरिक दाब के साथ संतुलित होता है। यद्यपि दाब चल आकृतियों की ऊर्ध्वाधर परास को सीमित कर देता है, तथापि कुछ यूरीबाथिक प्राणी वास्तव में गम्भीर रूप से प्रभावित नहीं होते हैं, और वे प्रायः 400 मीटर की ऊर्ध्वाधर गहराई तक घूम सकते हैं जो लगभग 40 वायुमण्डलीय दाब परिवर्तनों के समान हैं। मत्स्यभाला ह्वेल 800 मीटर गहराई के बीच घूम सकती हैं और शुक्राणु व्हेल भी सामान्यतया काफी गहराई तक नीचे की ओर जाती है क्योंकि उनका भोजन, स्कुइड, गहरे जल में बहुत बड़ी मात्रा में पाये जाते हैं।

जल गतियां :—सागर को एक ऐसे पर्यावरण के रूप में देखना चाहिए जिसका कि बहुत बड़ा भाग नियमित और अनियमित दोनों प्रकार के बहाव की

गतियों द्वारा सर्वदा प्रभावित रहता हो। इस संचार पर निम्न प्रमुख जैव प्रक्रियाएँ आधारित हैं :—(1) उपपृष्ठीय जल का ऑक्सीभवन (2) उपपचयात्मक क्रियाओं द्वारा विसर्जी पदार्थों का व्यासारण (3) पोषक तत्वों और पौधों व प्राणियों के विकास के लिये आवश्यक अन्य परिवर्तनीय तत्वों का व्यासारण (4) बीजाणु, अण्डाणु लार्वा और कई पूर्ण विकसित प्राणियों का व्यासारण। कुल मिलाकर जल के संचार से लाभ ही होते हैं, फिर भी कुछ विपरीत स्थितियां भी देखी गई हैं, जो केवल सयोगवश या कभी-कभी स्थायी भी हो सकती हैं। सयोगी विक्षोभ नियमित धाराओं के अमौसमी परिवर्तन के कारण हो सकते है जो कि दक्षिण अमेरिका के पश्चिमी तट से दूर एल नीनो' में उत्पन्न होते देखे गये है (8·5)। ऐसी स्थिति में सामान्यतया शीतल धाराओं को स्पर्श करने वाले इक्वेडोर और पेरु के तटों के साथ दक्षिण की ओर भूमध्य प्रतिधारा का ऊष्ण जल प्रवाहित होता है। इसके परिणाम-स्वरुप तटवर्त्ती क्षेत्रों में प्राणी जीवन पूर्णतया नष्ट हो जाता है फलस्वरूप सागर में पाये जाने वाले जीवों पर पोषित कुछ ग्वानो पक्षियों की भी मृत्यु हो जाती है। धारा प्रणालियों में निवास करने वाले जीव जब बह कर कम अनुकूल क्षेत्रों में आ जाते हैं तब भी स्थायी या अर्धस्थायी तौर पर इन क्षेत्रों में नियमित प्राणी जीवन नष्ट हो जाता है. उदाहरण के लिये गल्फ स्ट्रीम में रहने वाले जन्तु जब बहकर उत्तर के इन ठंडे क्षेत्रों में पहुँचते हैं, जहां ठंडे जल के मिश्रण के फलस्वरूप जल का ताप कम होजाता है, (या उच्च अक्षांशों में शीतलन के कारण) तब ठंड के कारण वे जीव नष्ट हो जाते हैं। तट जल जीवी आकृतियों का लार्वा बहुधा तट से दूर जल में या पूर्णतया विकसित प्राणी नहीं पाये जाने वाले क्षेत्रों, में बहकर चला जाता हैं। कभी-कभी पृष्ठ धारायें समुद्री या तट से दूर पाई जाने वाली अन्य आकृतियों जैसे कि सीलेन्ट्रेट वैलेला' और तटप्लावी घोंघा 'जेन्थीना' आदि के मृत शरीरों से तट-वर्ती क्षेत्रों को आच्छादित कर देती है।

सागर पर्यावरण का विस्तार :—पृथ्वी का वह भाग जिसमें प्राणियों और पौधों के रूप में जीवन सम्भव हो जीव मंडल कहलाता है। जीव मण्डल को तीन प्रमुख वासस्थानों या भागों में उपविभाजित किया गया है जिनको जीव चक्र (बायो सायकल) कहा जाता है। ये हैं :—भू, समुद्री और असमुद्री जल जीव चक्र। प्रत्येक में विशिष्ट प्रकार के पारिस्थितिक लक्षण और पौधों तथा प्राणियों के बीच साहचर्य लक्षण पाये जाते हैं। कुछ प्राणी प्रजातियाँ सरलता से समयानुसार एक दूसरे में स्थानान्तरित हो सकती हैं, यह सामन और ईल मछली में विशेषरूप से देखा जा सकता है।

पृथ्वी का 71 प्रतिशत भाग महासागरों द्वारा आच्छादित है। इस प्रकार महासागरों का क्षेत्रफल भूमि के क्षेत्रफल से ढ़ाई गुना अधिक है, परन्तु जीवन के

विकास के लिए स्थान के सम्बन्ध में विचार करते समय दोनों पर्यावरण अर्थात् भूमि और महासागरों के अपेक्षाकृत ऊर्ध्वाधर परास का भी ध्यान रखना चाहिये। इस आधार पर निर्धारित किया गया है कि भू व असमुद्री जल दोनों जीव चक्रों द्वारा प्रदाय कुल निवास योग्य स्थान की तुलना में सागर पर्यावरण लगभग 300 गुना अधिक स्थान प्रदान करता है, हेस, ऐली. स्मिड्ट (Hesse, Allee, Schmidt, 1937) क्योंकि जहां भूमि द्वारा प्रदाय स्थान या तो केवल धरातल पर ही या अधिक से अधिक कुछ फुट गहराई तक ही सीमित रहता है, वहां समुद्री वासस्थान जीवन के विकास की सम्भावना के लिए सागर पृष्ठ से लेकर कई मील गहरी वितलीय गहराइयों तक स्थान प्रदान करता है। असमुद्री जल चक्र इन दोनों चक्रो के केवल एक छोटे से भाग का ही निर्माण करता है। यहां पृथ्वी के आकाशीय भाग को एक अलग चक्र नहीं माना गया है क्योंकि पक्षी, कीड़े इत्यादि इसमें केवल अस्थायी रूप से यात्रा कर सकते हैं।

समुद्र के अध्ययन के साथ संलग्न कठिनाइयों के कारण तीनों जैव चक्रों में से समुद्र जीव चक्र के बारे में सबसे कम ज्ञान प्राप्य है।

सागर पर्यावरण का वर्गीकरण

सागर पर्यावरण और उसमें रहने वाले जीवो के अध्ययन के सरलीकरण के लिए पर्यावरण को भौतिक और रासायनिक गुणों और समजीवजात प्राणियों की प्रकृति के आधार पर सुविधापूर्वक प्रमुख और गौण प्रभागों में विभाजित किया जा सकता है। इन जैव विभागों का सीमांकन चित्र 67 में दर्शाया गया है जो कुछ
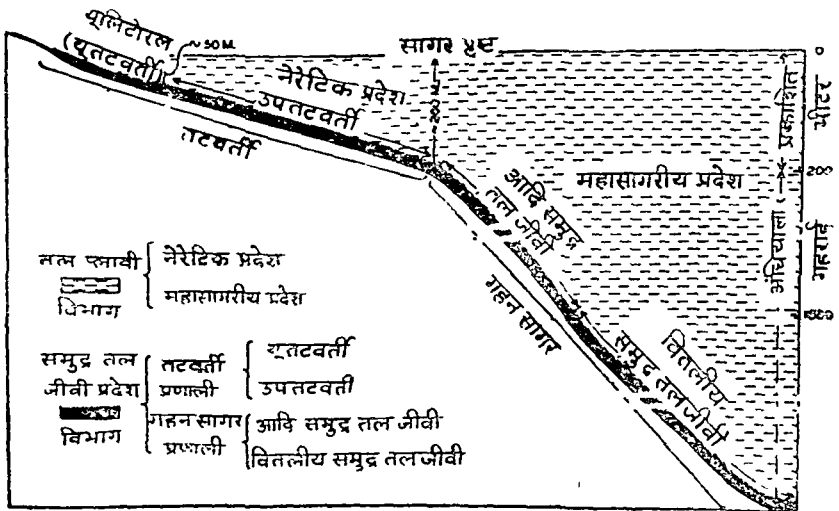
चित्र 67 :--समुद्री पर्यावरण के मुख्य भाग

स्थितियों में तो बिल्कुल स्पष्ट है परन्तु बहुधा इसमें काफी पारस्परिक व्याप्तता पाई गई है। यद्यपि प्रमुख प्रभाग भौतिक गुणों पर आधारित हैं और इन वासस्थानों के विशिष्ट उप-प्रभाग जैव और अजैव के आधार पर स्पष्टतया पहचाने जा सकते हैं, फिर भी इनके बीच कोई स्पष्ट सीमा निर्धारित नहीं है। सागर के दो प्रमुख प्रभाग क्रमशः समुद्रतल जीवी प्रभाग (बैन्थिक) और तलप्लावी (पेलेगिक) प्रभाग हैं। प्रथम के अन्तर्गत समस्त महासागरीय पृष्ठ तल आता है, और दूसरे में समस्त जल खंड समावेष्ठित हैं।

समुद्रतल जीवी जैव पर्यावरण और इसके विभाग

इस प्रभाग में बाढ़ग्रस्त ज्वार रेखा पर लहरों द्वारा आच्छादित तट से लेकर अधिकतम गहराइयों तक समस्त तल क्षेत्र सम्मिलित है। यह एक ऐसे विशिष्ट जीवन का पालन करता है जो न केवल तल क्षेत्र पर पोषित रहता है परंतु जो तल को भी काफी सीमा तक रुपान्तरित करने में सहयोग देता है। ऐकमैन (Ekman, 1935) ने जैव भौगोलिक दृष्टि से ऊर्ध्वाधर जोन सीमा का विवेचन किया है, और यहां पर हम मुख्यतया उसके द्वारा वर्णित विधि पर ही विचार करेंगे।

समुद्रतल जीवी प्रभाग को दो मुख्य प्रणालियों में विभाजित किया जा सकता है—अर्थात् तटवर्ती और गहन सागर प्रणालियां। इन दोनों प्रणालियों को विभाजित करने वाली रेखा की गहराई लगभग 200 मीटर, इस परिकल्पना के आधार पर मानी गई है, कि यह गहराई महाद्वीपीय मग्नतट भूमि (8.6) के बाह्य किनारे की निकटतम गहराई निरुपित करती है, लगभग यही गहराई सागर के प्रकाशित भाग से अन्धकारमय भाग को अलग करती है। तटवर्ती प्रणाली को भी दो प्रभागों—आतटवर्ती (यूलिटोरल) और उपतटवर्ती (सबलिटोरल) खण्डों में विभाजित किया गया है। गहन सागर प्रणाली को ऊपरी जोन (आदि समुद्र-तल जीवी) और निचला जोन (वितलीय समुद्रतल जीवी) में विभाजित किया गया है। समुद्रतल जीवी उप विभागों की सीमा निर्धारित करना अत्यन्त ही कठिन है, और चूंकि प्रत्येक आवश्यकता से मेल खाने वाली समरूप रेखायें सम्भव नहीं है इसलिए विभिन्न लेखकों ने इन सीमाओं को भिन्न-भिन्न गहराइयों पर निर्धारित किया है। सामान्य जैव अध्ययन के लिए ये सीमायें देशज पौधों की विशेषताओं और प्राणियों के वितरण पर आधारित होनी चाहिए और ये सीमायें ऐसी होनी चाहिए कि ये प्राणी जातीय और वनस्पतिजातीय परिवर्तन वाले क्षेत्रों को स्पष्टतया निर्धारित करे। इस प्रकार चित्रित जैव क्षेत्र, जीवसंख्या को प्रभावित करने वाले न्यूनाधिक सुस्पष्ट बाह्य पारिस्थितिक घटकों द्वारा काफी सीमा तक पूर्णतया लक्षित होंगे।

आतटवर्ती जोन उच्च ज्वार स्तर से लेकर लगभग 40 से 60 मीटर गहराई के बीच विस्तृत होता है। लगभग उस गहराई को जिस गहराई तक सर्वाधिक प्रचुर संयोजित पोधे विकसित हो सकते हों निम्नतम सीमा मान लिया गया है। इस गहराई से लेकर 200 मीटर गहराई तक (महाद्वीपीय मग्नतट क्षेत्र के किनारे तक) विस्तृत जोन उपसमुद्रतल जीवी जोन है। इन उपप्रभागों को विभाजित करने वाली सीमा रेखा की गहराई बहुत अधिक परिवर्तनशील है क्योंकि इस गहराई का निर्धारण प्रकाश संश्लेषण के लिए पर्याप्त प्रकाश के प्रवेश के द्वारा होता है। यह गहराई उच्च अक्षांशों पर अपेक्षाकृत छिछली और निम्न अक्षांशों पर गहरी होती है। आतटवर्ती जोन (यूलिटोरल जोन) के ऊपरी प्रभाग में उच्च और निम्न जल परा-काष्ठाओ द्वारा बद्ध अपेक्षाकृत स्पष्ट ज्वार-भाटान्तर कटिबन्ध या ज्वारान्तर प्रदेश सरलता से पहचाने जा सकते है। कुछ लेखक केवल इस छोटे से अंश को ही आतटवर्ती जोन मानते है और उनके अनुसार उपतटवर्ती जोन निम्न ज्वार स्तर से प्रारम्भ हो जाता है (जैसे देखिये गिस्लन, Gislen, 1930)। किसी दिये हुए क्षेत्र के लिये ज्वारान्तर प्रदेश की ऊर्ध्वाधर परास यद्यपि स्पष्टतया परिभाषित होती है परन्तु ज्वारीय परास के द्वारा निर्धारित होने के कारण संसार के विभिन्न भागो मे यह बहुत अधिक परिवर्तनशील हो सकती है (देखो अध्याय 14)। फंदी की खाडी के ऊपरी विस्तार मे इस जोन की ऊर्ध्वाधर परास 15 मीटर से भी अधिक हो सकती है जबकि 'गल्फ आफ मेक्सिको' मे यह 0.7 मीटर से भी कम है; और इटली के दक्षिण पश्चिम तट के साथ भूमध्य सागर मे यह परास और भी कम अर्थात् केवल 10 से 30 सेमी तक हो है। महासागरीय लहरों और महातरगों के लिए खुले हुए तटो की ऊपरी परास मे अन्तर्निहित अतिज्वारीय फुहाराच्छादित प्रदेश मे भी कुछ विशेष प्रतिरोधक प्राणियो की इधर उधर छितरी हुई जीव संख्या भी पाई जाती है जैसे आइसो पोड 'लिग्यीडा' जो भूमि पर रहने वाले जीवो के लक्षणो के विकास करने की प्रक्रिया मे संलग्न दिखलाई पड़ती है। प्राणियो की कई प्रजातिया तो केवल ज्वार भाटान्तर कटिबन्ध मे ही पाई जाती है और इस प्रदेश के भीतर भी उनके अधिकतम ऊर्ध्वाधर वितरण के अनुसार केवल एक स्तर तक ही सीमित रहती है—उदाहरण के तौर पर, 'लिग्यीडा' और गेस्ट्रो पोड 'लिटोराइना स्क्यूटेलेटा', 'एल. प्लेनेक्सिस', 'एकमाइया डिजिटालिस' और अन्य प्रजातियां जो मोन्टेरे की खाडी मे केवल 0.76 मीटर ज्वार-भाटान्तर स्तर से अधिक गहराई पर ही पाई गई (हेवाट, Hewatt, 1957)। इस प्रकार बाह्य घटको की अधिकतम परास वाले ज्वार-भाटान्तर प्रदेशों मे सागर के अन्यत्र पाये जाने वाले स्पष्ट समुद्रतलजीवी प्रदेशों की अपेक्षा विशिष्ट प्राणियों की ऊर्ध्वाधर परास अधिक प्रतिबन्धित होती है। कई प्रकार के चल प्राणी उच्च ज्वार के समय भोजन की तलाश मे ज्वार-भाटान्तर प्रदेश मे घूमते रहते है जैसे मत्स्य और क्रस्टेशिया प्राणी, और ग्रुनियन

नामक मछली तो रेत में अण्डे देने के लिए वसन्त ऋतु में ज्वार के साथ इस प्रदेश में आ जाती है।

अधोस्तर के प्रतिरूप के साथ परिवर्तित होने के कारण आतटवर्ती जोन कई प्रकार के जीवक्षेत्रों को जन्म देता है–उदाहरणार्थ पथरीला, रेतीला और दलदली क्षेत्र,–और ये क्षेत्र तटरेखा के वैशिष्ट्य और प्राप्य प्रकाश पर भी निर्भर रहते हैं। इनके ऊपर पाये जाने वाले जल की लवणता भी कुछ कम या बहुत ही अधिक कम हो सकती है। अचल तटवर्ती आकृतियों के प्रतिरूप और प्रचुरता के लिए ये परिवर्तन प्रत्यक्ष निर्णायक नियन्त्रक लक्षण हैं (देखिये शेलफोर्ड इत्यादि Shelford et. al 1935)। इस जोन में प्राथमिक भोजन तलप्लावी प्राणियों और संयोजित पौधों से प्राप्त होता है।

लाक्षणिक रूप से संयोजित पौधों की गहराई के आधार पर जैसे फ्यूकस, लामिनेरियन इत्यादि जोन निर्धारित किये जा सकते हैं परन्तु इस निर्धारण का सबसे बड़ा अवगुण यह है कि अधोस्तर के अनुकूल न होने और अन्य परिस्थितिक लक्षणों के कारण ये पौधे बहुधा काफी बड़े तटवर्ती क्षेत्रों में पाये ही नहीं जाते हैं, परन्तु इस सबके बावजूद भी यह वर्गीकरण स्थानीय रूप से लाभदायक हो सकता है।

हालांकि उपतटवर्ती और गहन सागर प्रणाली के बीच सीमा का निर्धारण लगभग 200 मीटर गहराई पर किया गया है, परन्तु एकमेन द्वारा प्राणी प्रजातियों सम्बन्धी संग्रहित आंकड़े यह सकेत करते हैं कि काफी विस्तृत ईलाकों में यह सीमा 200 मीटर से 400 मीटर के बीच निर्धारित की जा सकती है। उच्च अक्षांशों में ताप और प्रकाश जैसे महत्वपूर्ण घटक इस सीमारेखा को छिछले जल की ओर स्थानान्तरित कर देते हैं।

गहन सागर जल के ऊपरी प्रभाग को अलेक्जेण्डर अगासिज द्वारा प्रस्तावित शब्द 'आदि समुद्रतल जीवी' (आर्किबैन्थिक) प्रणाली द्वारा सम्बोधित करते हैं, परन्तु यह शब्द पूर्णतया उपयुक्त नहीं है क्योंकि इसके अनुसार समुद्रतल जीवी प्राणियों का प्रादुर्भाव इस स्थान से होना प्रारम्भ होता है। यह जोन 'महा-द्वीपीय गहन सागर' जोन भी कहलाता है, परन्तु इस शब्द से भी भ्रान्ति के बढ़ने की ही सम्भावना अधिक है क्योंकि कभी-कभी 'महाद्वीपीय प्राणी' शब्द का अर्थ तटवर्ती प्राणियों समेत प्राणियों के लिए उपयुक्त हुआ माना जा सकता है जब तक कि विशेषतया 'महाद्वीपीय ढाल' या 'गहन सागर' शब्द का उपयोग नहीं किया जाये। आदि समुद्र-तल-जीवी जोन का विस्तार उपतटवर्ती जोन से लेकर 800 मीटर से 1100 मीटर गहराई तक होता है।

आदि समुद्रतल जीवी प्राणाली के नीचे सम्पूर्ण गहन सागर प्रदेश को वितलीय समुद्रतल जीवी जोन (एबीसल-बैन्थिक जोन) कहते हैं। इस जोन में अपेक्षाकृत समरूप परिस्थितियाँ पाई जाती हैं। ताप अपेक्षाकृत कम परन्तु समरूप होता है, 5°C से लेकर —1°C तक; और यहां सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता रहती है। इस क्षेत्र में ऋतुओं का कोई प्रभाव नहीं होता है और इसलिए तटवर्ती क्षेत्रों में ऋतुओं से सम्बद्ध प्रपंच इस क्षेत्र में नहीं पाये जाते हैं। उच्च अक्षांशों में ऊर्ध्वाधर गति के कारण पर्याप्त संचार (8.7) के लिए ऑक्सीजन मिश्रित जल उपलब्ध हो जाता है, इसलिए खुले सागरों में स्थिर जल नहीं पाया जाता है। इस प्रदेश में पौधों का उत्पादन नहीं होता है और इस बात के बारे में अभी कुछ भी ज्ञात नहीं है कि स्वजीवी जीवाणु भोजन के निर्माण में कहाँ तक सहयोग देते हैं। प्राणी मांसभक्षी हैं जो मुख्यतया उन उत्सर्जित कार्बनिक पदार्थों पर पोषित हैं जो अपनी प्रारम्भिक *कार्बनिक अवस्था में जल में पाये जाने वाले पौधों पर पलते हैं। वितलीय ज़ोन और* आदि समुद्रतल-जीवी ज़ोन की ऊपरी सीमा यद्यपि स्पष्टतया विभाजित नहीं है परन्तु फिर भी वितलीय जोन की अपनी विशिष्ट जीव संख्या होती है, जिसका वर्णन अगले अध्याय में किया जायगा।

सागर तट से लेकर वितलीय गहराइयों तक समुद्रतल जीवी पर्यावरण तलछटी निक्षेप से थोड़ी या अधिक मात्रा में ढका रहता है, इस तलछटी निक्षेप को भूमिगत निक्षेप कार्बनिक या तलप्लावी सिन्धु पन्क और रक्तवर्ण मिट्टी में विभाजित किया जा सकता है। इस निक्षेप के सम्बन्ध में विस्तार से विचार बीसवें अध्याय में किया जायगा और वितरण की प्रकृति चित्र 253 में प्रदर्शित की गई है। जहां तक समुद्रतल जीवी प्राणियों के जीव विज्ञान का प्रश्न है इन सिन्धुपन्कों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुणधर्म उनका भौतिक विन्यास और उनमें पचने योग्य कार्बनिक पदार्थों की मात्रा है। गहन सागर में पाई जाने वाली समुद्रतल जीवी आकृतियों में से बहुत सी आकृतियाँ केवल उत्सर्जित पदार्थों पर आश्रित रहने वाली होती हैं और इसलिए इनका पोषण सागर तल की ओर जाने वाले तलप्लावी प्राणियों पर निर्भर रहता है। सागर तट से दूरस्थ क्षेत्रों में तलप्लावी भोजन की मात्रा कम होती है और वह मात्रा बढ़ती हुई दूरियों के साथ घटती है तथा बहुत ही गहरे जल वाले क्षेत्रों में पहुँचने वाली राशि डूबते समय होने वाले विभाजन के कारण कम होती जाती है। इस प्रकार तटवर्ती दलदल भोजन के मामले में बहुत ही सम्पन्न होता है और तट से दूर पाई जाने वाली रक्तवर्ण मिट्टी में सबसे कम भोजन पाया जाता है। यह अन्तर वास्तव में इन क्षेत्रों से एकत्रित प्राणियों में देखा जाता है (8.8)।

तलप्लावी पर्यावरण और इसके प्रभाग

समुद्रतल जीवी प्रभाग को ढकने वाला समस्त महासागरीय जल तलप्लावी भाग में सम्मिलित है। तलप्लावी भाग के दो क्षैतिज प्रभाग किये जा सकते हैं; खुला-सागर प्रदेश (महासागरीय) और अमितटीय (तटतल जीवी) प्रदेश।

महासागरीय प्रदेश में ऊपरी प्रकाशवान जोन और निचला अन्धकारमय जोन ये दो ऊर्ध्वाधर जोन होते हैं, जिनमें कोई स्पष्ट विभाजन सीमा रेखा नहीं है। इस सीमा का निर्धारण सुविधा के लिये 200 मीटर गहराई पर किया गया है, क्योंकि यह गहराई महाद्वीपीय मग्नतट भूमि से किनारे की गहराई से सम्बन्धित होने के साथ साथ तटवर्त्ती प्रणाली और तलप्लावी प्रदेश को निश्चयात्मक रूप से प्रकाशित क्षेत्रों में प्रदर्शित करती है। प्रकाश वास्तव में सागर पृष्ठ से लेकर धीरे धीरे नीचे की ओर गुण और मात्रा दोनों ही दृष्टियों से घटता रहता है और एक विशिष्ट गहराई के पश्चात् प्रकाश नीचे नहीं पहुंच सकता है, (8.9) और यह गहराई अक्षांशों, ऋतुओं, तैरने वाली मृत या जीवित प्राणियों की मात्रा और इसलिये तट से दूरी के साथ परिवर्तित होती रहती है। तलप्लावी पर्यावरण के लिये ये चर घटक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हैं—जैसा कि आगे बताया जायेगा।

महासागरीय प्रदेश के सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण उसके विस्तार और गहराई की परास का आधिक्य हैं। समतलजीवी प्रदेश के विपरीत यहां नियमानुसार जल अत्यधिक पारदर्शी होता है, जिसमें भूमिज विसर्जित पदार्थ या तो बिल्कुल ही नहीं होते या बहुत कम होते हैं। इस जल का रंग नीला होता है और यह 'नीले पृष्ठ' प्राणियों का पोषण करता है जिनके बारे में अध्याय 17 में विचार किया जायेगा। यद्यपि इस प्रदेश में सूर्य का प्रकाश तटवर्त्ती प्रदेश की अपेक्षा अधिक गहराई तक प्रवेश करता है परन्तु इस प्रदेश की परिभाषा में काफी गहराई तक पाया जाने वाला जल सम्मिलित कर लिया गया है जिसके परिणाम स्वरूप इस प्रदेश के गहरे भाग में प्रकाश नहीं पहुंचता है और बहुत गहरी परतों में केवल मांस-भक्षी या उत्सर्जित पदार्थों पर पलने वाले जीव ही पाये जाते हैं।

तट से दूर पाये जाने वाले जल की रासायनिक रचना अपेक्षाकृत स्थिर होती है। काल और आकाश (Space) में घटने बढ़ने वाले छोटे परिवर्तनों को छोड़कर लवणता समरूप से उच्च होती है और ऊपरी परतों में प्राणियों के पोषक पदार्थ अपेक्षाकृत कम और केवल कुछ ही प्रतिस्थापित पाये जाते हैं।

तटतल जीवी और महासागरीय प्रदेशों की उर्ध्वाधर विभाजन रेखा महाद्वीपीय मग्नतट भूमि के किनारे पर निर्धारित की गई है; इसलिये 200 मीटर गहराई से ऊपर पाया जाने वाला जल तटतलजीवी प्रदेश का ही निर्माण करेगा, कुछ ऐसी परिस्थितियों में तटतल जीवी प्रदेश सागर की ओर फैला हुआ होगा जिनमें कि महाद्वीपीय मग्नतट भूमि विस्तृत या संकड़ी हो, जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरीका के पूर्वी किनारे और दक्षिण अमेरीका के पश्चिमी किनारे पर पाया जाता है।

यद्यपि महासागरीय प्रदेश और तटतलजीवी प्रदेश के बीच सीमा का निर्धारण रासायनिक और जीव विज्ञान की दृष्टि से स्पष्ट नही है, परन्तु फिर भी तट के निकट पाये जाने वाले प्राणियों में कुछ ऐसे लक्षण पाये जाते है जो विशिष्ट महासागरीय प्रदेश, जहाँ सागर का रंग नीला होता है, में रहने वाले प्राणियों में नहीं पाये जाते है।

महासागरीय प्रदेश की अपेक्षा तटतल जीवी प्रदेश के रासायनिक अंग अधिक परिवर्तनशील है। लवणता कभी-कभी बहुत ही कम होती है वैसे यह प्रायः कम रहती है और लवणता में यत्रतत्रिक और ऋतु परिवर्तन भी होते है इसलिये प्राणियों का बहुत बड़ा समुदाय लवणतासह्य होता है—अर्थात् वह समुदाय लवणता की काफी बड़ी परास में भी जीवित रह सकता है। नदियों के जल के साथ सागर मे पोषक तत्व आते रहते है और यह विक्षुब्ध सागर जल को भी स्थिरता प्रदान करता है इसलिये नदियों का जल सागर की ऊपरी परतों में पौधों के विकास में समय-समय पर सहायता कर सकता है (8·10)। नाइट्रेट, फॉसफोरस इत्यादि पोषक तत्व तटवर्त्ती छिछले जल में प्रचुरता से विद्यमान रहते है क्योंकि गहन सागर या सागर के तल में जीवधारियों के विभाजन और पुनर्जनन मे उत्पन्न पदार्थों को ऊर्ध्वाधर धाराएँ सागर तल मे ऊपरी परतों में सुविधा-पूर्वक ले आती है (अध्याय 7)। यह सागर जल में पाये जाने वाले अत्यधिक आवश्यक भोजन डायटम, के निर्माण मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक है। इसलिये सागर के प्रत्येक इकाई क्षेत्रफल के हिसाब से महासागरीय प्रदेश की अपेक्षा तटतलजीवी प्रदेश कहीं अधिक उत्पादक है, जिसके परिणाम स्वरूप यह प्रदेश आम तौर से समुद्री जीवन के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण क्षेत्र है। यहां पर सर्वाधिक आर्थिक महत्तावाली मछलियों के सम्बन्ध मे विचार किया गया है क्योंकि अत्यधिक मात्रा मे उपलब्ध होने के साथ-साथ ये इस क्षेत्र के प्राकृतिक निवासी भी है।

अन्य जैव इकाइयां:—समुद्री पर्यावरण का उपरोक्त वर्गीकरण मुख्यतया अलग-अलग क्षेत्रों को स्पष्टतया परिगत करने वाले प्रमुख भौगोलिक, भौतिक, रासायनिक और जैव गुण धर्मों पर आधारित है। सागर तल में भिन्नता, तट से निकटता, गहराई और जल की अन्य भौतिक और रासायनिक स्थितियों इत्यादि के परिणाम स्वरूप इन विस्तृत क्षेत्रों में विभिन्न पारिस्थैतिक परिस्थितियां पाई जाती है।

पारिस्थैतिक वर्गीकरण में कार्य आने वाली प्राथमिक 'स्थलाकृतिक' इकाई 'जीवक्षेत्र' (बायोटोप) या ताख (नीचे) है जिसे इस प्रकार परिभाषित किया जाता है—"प्रमुख वासस्थानीय परिस्थितियों और इनको अंगीकृत करने वाले जीवित प्राणियों के समरूप क्षेत्र"। (हेस, ऐली और स्मिड्ट; Hesse, Ae, and

Schmidts, 1937) चूंकि प्रत्येक जीव क्षेत्र में पाई जाने वाली परिस्थितियां उस क्षेत्र के निवासियों से कुछ विशेष लक्षणों की उपस्थिती की मांग करती हैं इसलिये बहुधा जीवसंख्या में एक समधर्मी विकास पाया जाता है और जो जीव वास स्थान के अनुकूल नहीं होते वे उस जीव क्षेत्र से अलग हो जाते हैं। स्पष्टतया कुछ जीवधारी अन्य विशिष्ट प्रकृति के जीवधारियों की तरह किसी जीव क्षेत्र के विस्तार के साथ सीमित रूप से बाध्य नहीं होते हैं। इस प्रकार एक जीव क्षेत्र में कुछ सामान्य प्रकृति के प्राणी भी पाये जा सकते हैं जैसे कि सेफैगेपोडा प्रजाति के कुछ प्राणी और मछलियां जो कि एक विशिष्ट प्रकार के जीव क्षेत्र से दूसरे जीव क्षेत्र में स्वतंत्रता से घूम फिर सकती हैं। इसलिये एक जीव क्षेत्र जितना विशिष्ट बन जाता है उस क्षेत्र में रहने वाले प्राणियों में उतनी ही एकरूपता आ जाती है, इस प्रकार कई जीव क्षेत्रों में एक ही प्रजाति बहुत बड़ी संख्या में पाई जा सकती है। एक जीव क्षेत्र के भीतर पाई जाने वाली छोटी असंगतियों को 'फेसिज' कहते हैं। किसी विशिष्ट जीव क्षेत्र में पाये जाने वाले जीवधारियों की संख्या कई विशेष स्थितियों में तो उपयुक्त प्राप्त स्थान (space) द्वारा निर्धारित होती है अन्यथा बहुधा यह संख्या उस जीव क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले या धाराओं द्वारा उस क्षेत्र में बाहर से बहकर आने वाले पोषक तत्वों पर ही निर्भर करती है। किसी जीव क्षेत्र में पाया जाने वाला आकृति समुदाय 'बायोकोइनोसिस' (Biocoenosis) कहलाता है।

कुछ सामान्य गुण वाले जीव क्षेत्रों—जैसे कि तट से निकट पाये जाने वाले क्षेत्र और मुहानों में स्थित क्षेत्रों को जीव सीमाएं या बायोकोर कहते हैं।

प्रमुख जैव-प्रभागों में पाई जाने वाली जीव संख्या के सामान्य गुण

पिछले कई शीर्षकों के अन्तर्गत हमने समुद्री पर्यावरण के वर्गीकरण का अध्ययन किया है। भविष्य में वर्णन की सुविधा के लिए उपरोक्त प्राथमिक जैव प्रभागों में पाई जाने वाली समुद्री जीवसंख्या का व्यावहारिक और संक्षिप्त एक ऐसा विशाल वर्गीकरण करना वांछनीय है, जो जाति विकास या वर्गीकरण विज्ञान पर आधारित न होकर (जिसका वर्णन आगे इसी अध्याय में किया गया है) पूर्णतया कृत्रिम है और जो जीवधारियों के सामान्य पारिस्थैतिक वितरण, सामान्य जीवन विधियों और सामान्य संचलन की आदतों में समरूपताओं के संव्यूहन पर आधारित है।

उपरोक्त आधार पर सागर की जीवसंख्या को तीन बड़े प्रभागों में विभाजित किया जा सकता है—ये हैं नितल (बेन्थॉस), तरणशील (नेक्टन) और प्लैन्कटन, प्रथम तो समुद्रतल जीवी प्रदेश और अन्य दोनों तटतलजीवी प्रदेश के साथ सम्बद्ध हैं।

नितल प्राणियों (ग्रीक शब्द बेन्थॉस का अर्थ है गहरा या गहन सागरीय) में सागर तल पर पाये जाने वाले अचल, सरकने और बिल खोदने वाले प्राणी भी आ जाते हैं। इस समूह का निरूपण करने वाले प्राणी उच्च ज्वार-भाटान्तर स्तर से लेकर वितलीय गहराइयों तक पाये जाते हैं। नितल प्राणियों के तीन रूप हैं :—

(1) **अचल प्राणी**:—जैसे स्पंज, बर्नेक्लीज, सीपी (मसेल), शुक्ति, क्रायोनोइड, प्रवाल, हाइड्रोइड, ब्रोओजोआ, कुछ कीड़े, समुद्री खतपतवार, ईल घास और कई प्रकार के डायटम प्राणी।

(2) सरकने वाली आकृतियां (सरीसृप), जैसे कि कुछ घोंघे, क्रेब लोबस्टर, कुछ कोपीपोड, एम्पीपोड और मछलियां, और (३) बिल करने वाली आकृतियां; जैसे कुछ बड़ी सीपियां, कुछ क्रुस्टेशिया और एकीनोडर्मेटा प्रजाति के प्राणी।

नेक्टन (तरणशील) प्रभाग तट तलजीवी प्रदेश में समस्त तैर सकने योग्य प्राणियों से बना है।

इस समूह में लगभग सभी पूर्णतया विकसित स्कुइड, मछलियां, ह्वेल आदि ऐसे प्राणी आते हैं, जिनमें काफी विस्तृत क्षेत्रों में स्थानान्तरित होने की क्षमता हो। स्पष्ट है कि इस समूह में पौधे सम्मिलित नहीं हैं।

प्लैंक्टन (ग्रीक शब्द प्लैंक्टन का अर्थ है घूमने वाले) समूह में सागर के तटतल जीवी प्रभाग में तैरने वाले और वहमान (फ्लोटिंग) प्राणी आते हैं। इस प्रभाग के अन्तर्गत आने वाले पौधे और प्राणी दोनों ही सूक्ष्म या अपेक्षाकृत छोटे होते हैं, वे जल में निश्चेष्ट रहते हैं और धाराओं के साथ तैरते हैं इसलिये ये प्राणी प्रचलित जल गति पर निर्भर रहते हैं। कुछ प्राणी तो तैरने में कुछ उन्नति प्राप्त कर सकते हैं परन्तु उनके संचलन के अंग कमजोर और अकर्मण्य होते हैं। प्लैंक्टन को फायटो प्लैंक्टन और जूप्लैंक्टन नामक दो मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है, फायटो प्लैंक्टन के अन्तर्गत समस्त तैरने वाले पौधे जैसे डायटम, अयनोफ्लेगेलेट्स, कोकोलियोफोरस् और सारगैसम घासपात आते हैं। जूप्लैक्टन के अन्तर्गत (1) हमेशा तैरते रहनेवाले लाखों प्राणी, और (2) नितल और नेक्टन प्राणियों के असीमित अण्डे और लार्वा इत्यादि आते हैं। चूँकि प्लैक्टन और नेक्टन एक ही जीव क्षेत्र के भाग हैं और एक ही समुदाय के अंग हैं इसलिये यह वर्गीकरण मुख्यतया आपेक्षिक आकार तथा तैरने की गति पर निर्भर करता है, इसलिए यह पारिस्थैतिक सम्बन्धों के साथ भिन्नता प्रदर्शित करने में असमर्थ है।

इन तीनों पारिस्थैतिक समूहों के बारे में विस्तार से विचार अगले अध्यायों में किया जायेगा।

सागर में जीवन का विकास

अब हम जैव परिमंडल के रूप में समुद्री पर्यावरण के आपेक्षिक पुरावशेष की ओर संकेत करने वाले प्रेक्षणों की संक्षिप्त समिक्षा करेंगे। यह जानना सम्भव नहीं है कि सागर में जीवन का उद्भव कब हुआ, परन्तु शरीर द्रव्य (तरल) और सागर जल की रासायनिक रचना में समानता के आधार पर यह कल्पना की गई है कि सागर प्रारम्भ से ही लवणयुक्त रहा है और चूंकि पूर्वग (आदिम) जीवधारियों की द्रव्य पर्यावरण के साथ निकटता और इसमें विद्यमान तत्वों की मौलिक रचना का जीवधारियों में विद्यमान होना, पूर्वग जीवधारियों की उपपचयात्मक क्रियाओं की पद्धति और प्रमुख आयनों जैसे मेगनीसियम इत्यादि का आज भी कुछ रूपान्तरण के साथ जीवधारियों में उपस्थित होना भी उपरोक्त परिकल्पना की पुष्टि करते हैं। (सारणी 55) जीवधारियों के विकास और आदिम सागरों की रासायनिक रचना के बारे में उपरोक्त रोचक सम्वन्धों के विषय में कई परिकल्पनायें की गई हैं, परन्तु हम यहां सागर पर्यावरण के प्रभाव के इस रूप के वारे में अधिक विस्तार से विचार नहीं करेंगे। पियरसे (Pearse, 1936) ने इन प्रश्नों का उत्तर देने और सागर के भूमि पर प्राणियों के स्थानान्तरण के सम्बन्ध में समीक्षा लिखी है और इस सम्बन्ध में प्राप्य समस्त साहित्य को सूचिवद्ध किया है।

पृथ्वी पर विद्यमान वर्त्तमान जीवन के वितरण और पोषण में सागर का अत्यधिक महत्वपूर्ण सहयोग है। सागर स्वयम् भी प्रचुरता से आबाद है और यदि सागर में वाष्पीकरण, वर्षण और सागर और भूमि के बीच जल के बहाव का जल चक्र कार्य नहीं करते तो भूमि पर भी जीवन का विकास सम्भव नहीं हो सकता था। जैव परिमंडल की दृष्टि से केवल सागर ही कुछ सीमा तक आत्म निर्भर है, और एतिहासिक दृष्टि से सागर ने जीवन के विकास में एक वहुत वड़ा कार्य किया है।

भूमिज और असमुद्री जल में पाये जाने वाली प्राणी प्रजातियों की अपेक्षा समुद्री जीवन की अधिक अवस्था यह संकेत करती है कि उनका जन्म समुद्री जीवन से हुआ है अतएव यह इस तथ्य की ओर भी संकेत करते हैं कि प्राणी जीवन का मूल पर्यावरण सागर जल ही था। समुद्री जीव प्रजातियों की अवस्था, असमुद्री और भूमिज जीव प्रजातियों से अधिक है इस तथ्य का प्रमाण निम्न चार वातों पर निर्भर करता है :—(1) आधुनिक जीव प्रजातियों की सामान्य रचना

(2) सागर जल और शरीर तरल की रासायनिक रचना में समानता (3) जीवन का इतिहास और (4) पुरातत्व विज्ञान मे सम्बद्ध सम्बन्ध।

(1) सम्पूर्ण प्राणी जगत को कई छोटे छोटे प्रभागों में विभक्त किया गया है जिन्हें संघ या फायलम कहते हैं। प्रत्येक फायलम में ऐसे प्राणी रखे गये हैं जिनमें कुछ आधारभूत आकारिकीय समानतायें हों जो अन्य किसी फायलम में पाये जाने वाले जीवों में नहीं पाई जाती हों। इस प्रकार यह वर्गीकरण कृत्रिम न होकर एक प्राकृतिक वर्गीकरण की ओर संकेत करता है। प्रत्येक फायलम को कुछ प्रतिवन्धित परन्तु प्राकृत समूहों में विभाजित किया गया है जिन्हें श्रेणी या क्लास कहते हैं; यह भी कुछ अन्य छोटे प्रभागों में विभाजित है, विभाजन इस प्रकार है :—

फायलम (संघ)
  क्लास (श्रेणी)
    आर्डर (क्रम)
      फेमिली (कुल)
        जीनस (वंश)
          स्पीशिज (प्रजाति)

स्पीशिज अलग-अलग किस्म के प्राणियों से मिलकर बनती हैं, प्रत्येक स्पीशिज को विशिष्टता प्रदान करने वाले लक्षण अधिक आधारभूत नहीं हैं और ये लक्षण जीनस (वंशों) में पाये जाने वाले लक्षणों के आधुनिकतम लक्षण होते हैं। इसी प्रकार वंशों में पाये जाने वाले लक्षण कुल (फेमिली) में पाये जाने वाले लक्षणों से कम मौलिक होते हैं, और यही उच्च प्रयोगों में भी होता है।

समस्त उच्च या मुख्य प्रभागों अर्थात् प्राणी जीवन के संघ और श्रेणियां समुद्री समूहों की महान प्रचुरता को उद्भाषित करते हैं। समस्त सत्रह के सत्रह संघ (H. S. Pratt, 1933; एच. एस. प्राट के द्वारा 'मेन्युएल ऑफ इनवर्टीब्रेट एनीमल्स' में वर्गीकृत श्रेणियों के अनुसार) सागर में निरुपित किये जा सकते हैं, और उनमें से यदि समस्त नहीं तो बहुत बड़े भाग का उद्भव भी सागर में ही हुआ माना जा सकता है। निम्न पांच संघ तो पूर्णतया समुद्र में ही पाये जाते हैं:—टीनोफोरा, एकिनोडर्मेटा, पोरोनिडिया, बार्चियोपोडा और कीटोनैथा। कुछ लेखक सत्रह से कम संघ (फायलम) स्वीकार करते हैं परन्तु इससे केवल पूर्णतया समुद्री श्रेणियों (क्लासेज) की ही संख्या अधिक हो जाती है।

प्राट द्वारा दी गई अकशेरूकी प्राणियों की 47 श्रेणियों (जहां सब फायलम, उपसंघ, के नीचे श्रेणी नहीं दी गई हैं वहां उसे श्रेणी मान लिया गया है)

में से 21 या लगभग 43.7 प्रतिशत पूर्णतया समुद्री है और केवल तीन या लगभग 6.2 प्रतिशत पूर्णतया असमुद्री हैं। वर्टिब्रेटा उपसंघ (सब फायलम) में केवल एम्फीबिया श्रेणी के प्राणी असमुद्री है, जबकि अन्य चार कक्षाओं में समुद्री और असमुद्री दोनों प्रकार के पर्यावरण में रहने वाले प्राणी पाये जाते हैं। मछलियां मुख्यतया समुद्री और सरीसृप, चिड़िया और स्तनधारी (मैमल्स) प्रचुरता की दृष्टि से मुख्यतया भूमिज हैं। एम्फीबियस प्राणी उच्चतम असमुद्री प्राणियों का निरूपण करते हैं।

जहां तक मुख्य जाति विकासीय संघों का सम्बन्ध है ये प्रभाग समुद्री प्राणियों की प्रभावोत्पादक विभिन्नता प्रदर्शित करते हैं। तथापि सर्वाधिक प्रजातियां भूमिज पर्यावरण में ही पाई जाती हैं, ये केवल एक ही प्रतिबन्धित प्राणी समूह अर्थात् कीट पतंगों की विशाल प्रजातियों के कारण ही सम्भव है, जो केवल भूमि पर ही पाये जाते हैं।

बहुत से ऐसे प्रमुख प्राणी समूहों की सागर में उपस्थिति जो केवल सागर में ही पाये जाते हैं यह संकेत करती है कि समुद्री पर्यावरण में एक बार विकसित होने वाले समूहों को संरक्षित करने की महान प्रवृत्ति विद्यमान है।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि महासागर में समुद्री जीवन के वैविध्य के साथ साथ एक अन्य स्पष्ट पूर्वग तत्व है जो कि निरूपित प्राणी समूहों में संरचना की सरलता के द्वारा जाँचा जाता है। सागर में किसी अन्य स्थान की अपेक्षा प्राणी जीवन के विकास का सम्पूर्ण क्रम विद्यमान है, जिसके फलस्वरूप और सागर जल माध्यम के साथ जीवधारियों की पारस्परिकता और सम्बन्धों के कारण समुद्र विज्ञान सम्बन्धी प्रयोगशालाओं में हुए अध्ययन ने ही जीवन के विकास और पोषण से सम्बन्धित जैव समस्याओं के बारे में सर्वाधिक योग दिया है।

समुद्री पर्यावरण की आपेक्षिक समरूपता न केवल आकृतियों की विविधता को संरक्षण प्रदान करने में ही कार्यरत रही किन्तु भूमिज और असमुद्री जल की तुलना में सामान्यतया अधिक पूर्वग विशिष्टता को प्रतिधारित करने में भी सफल रही है। यह सत्य है कि सागर में निम्न आकृतियों के साथ बहुत से उच्चतया विकसित प्राणी भी पाये जाते हैं जो कि गुणधर्मों के अनुसार समुद्र मूलक कहे जा सकते हैं। सील, ह्वेल, कुछ सरीसृप, मछलियां और पक्षी उपरोक्त प्राणियों के अन्तर्गत आते हैं। इन समस्त प्राणी समूहों की प्रजाती का विकास लगभग पूर्णतया भूमि और असमुद्री जल स्थित वास स्थानों में हुआ है। सागर की ओर ये कुछ काल पहले ही प्रत्यावर्तित हुए हैं और अभी सागर जल की स्थितियों से पूर्णतया अनुकूल भी नहीं हो पाये हैं।

अस्थिमय (टीलिओस्ट) मछलियों के बारे में यह माना जाता है कि उनका वर्तमान अवस्था में विकास असमुद्री जल के भीतर हुआ है, परन्तु वास्तव में मूलरूप से ये सागर में ही विकसित हुई थी।

(2) शरीर तरल के साथ सागर जल के सम्बन्धों के बारे में पहले ही विस्तार से विचार किया जा चुका है (8.11)।

(3) अकशेरूकी प्राणियों के जीवन वृत्त का अध्ययन समुद्री जीवन के पुराव-शेषों पर प्रकाश डालता है। प्राचीन एतिहासिक काल में कुछ विशिष्ट प्रजातियों की लार्वा अवस्था, संरचना और आदतों की दृष्टि से, पूर्णतया विकसित प्राणियों की अपेक्षा सर्वथा भिन्न पाई गई है। कभी कभी किसी दूसरे समूह के पूर्णतया विकसित प्राणियों या दूसरे समूह के लार्वा अवस्था से पूर्णतया समानता रखने वाली लार्वा अवस्थायें अपने पूर्वजों के इतिहास पर प्रकाश डालती हैं। यह तथ्य चाहे प्रजातियों के वास्तविक इतिहास का पुनरावर्तन करता हो या नहीं करता हो, या पर्यावरण के साथ किसी विशिष्ट लार्वा के अनुकूलन को ही प्रदर्शित करता हो, उपरोक्त समा-नता को समझने के लिए इसका ज्ञान अत्यावश्यक है। सत्य चाहे कुछ भी हो, परन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि सभी समुद्री अकशेरूकी प्राणी एक प्रारम्भिक लार्वा अवस्था में पाये जाते हैं और संरचना की दृष्टि से यह लार्वा अवस्था अपनी पैतृकता के बारे में कुछ भी सुझाने में असमर्थ होती है, परन्तु ये लार्वा किसी दूसरे प्राणी समूह से आधारभूत समानता रख सकते हैं। उपरोक्त तथ्य के आधार पर लार्वा के प्रकार निर्धारित्त करना सम्भव है—उदाहरण के तौर पर ऐनेलिड और मोलस्का का 'ट्रोकोफोर' लार्वा और क्रसटेशियर समूह का 'नौपिलियस' लार्वा। (चित्र 80)

कुछ अग्रधर्षी समूहों में सागर को छोड़कर असमुद्री जल या भूमि पर बसने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। यह प्रवृत्ति क्रसटेशिया प्राणियों द्वारा प्रदर्शित की जाती है, इस समूह में, 'इरीओकैर' क्रेब युवावस्था में असमुद्री जल में बस जाता है, परन्तु पूर्णतया विकसित होने पर यह अण्डे देने के लिए सागर में लौट आता है।

भूमि पर रहने वाले, 'कार्डीसोभा', 'गेकार्सिनस', इत्यादि क्रेब भी सागर में स्वतन्त्र रूप से घूमने वाली लार्वा अवस्था में पाये जाते हैं।

(4) यह सर्वविदित है कि भूपृष्ट में प्राचीनतम फॉसिलमय चट्टानों में पाये जाने वाले फॉसिल मुख्यतया समुद्री मूलक होते हैं।

केम्ब्रियन युग (लगभग 50 करोड़ वर्ष पहले) में समुद्री प्राणी प्रचुरता से पाये जाते थे और जब कि आजकल समुद्र स्तर से ऊपर पाया जाने वाला भूभाग प्राचीन काल में समुद्रों के तटवर्ती तल का निर्माण करता था उसी समय इन

प्राणियों का फासिलीकरण हो गया था। उस समय कई अकशेरुकी प्राणी संघों का विकास हो चुका था और ट्राइलोबाइट और ब्राचियोपोड जैसी आकृतियाँ विशेष रूप से प्रचुरता से पाई जाती थी।

जीवन के विकास में समुद्री और भूमिज पर्यावरण के द्वारा मुख्य सहयोग की समीक्षा इस प्रकार की जा सकती है कि जहाँ समुद्री पर्यावरण ने विविध निम्न आकृतियों के प्राणियों के विकास और पोषण में बहुत बड़ा रोल अदा किया वहां अत्यधिक विशिष्ट भूमिज व संस्थानों ने कम विविधता के स्थान पर प्राणियों की संरचना को अधिक जटिल बनाने में योगदान दिया।

ज्वारान्तर क्षेत्र जहां ये दोनों पर्यावरण आपस में मिलते हैं एक माध्यमिक क्षेत्र है इस क्षेत्र में काफी उलट फेर सम्भव है, और प्राणियों का भूमि की ओर स्थानान्तरण सम्भवतया इसी क्षेत्र से हुआ होगा।

अध्याय 9

सागर की जीव संख्या

सागर के पादप समूह

सागर में भी भूमि की भाँति पौधे ही वास्तविक उत्पादक हैं—अर्थात् ये वे जीवधारी है जो जल में घुले हुए साधारण अकार्बनिक यौगिकों का विषम कार्बनिक पदार्थों के रूप में विस्तार करने की क्षमता रखते है। प्राथमिक भोजन के संश्लेषक समुद्री पौधों की अनुपस्थिति में, केवल कुछ तटस्पर्शी क्षेत्रों और उन मुहानों को छोड़कर जिनमें कि आणविक कार्बनिक पदार्थ सागर में आ सकते हों प्राणी जीवन नगण्य मात्रा में सम्भव है, अन्यथा सागर में प्राणी जीवन प्राय: असम्भव ही होता है।

समुद्री वनस्पतियों का 'सीमित वैविध्य', स्थलज वनस्पतियों को लक्षित करने वाली बहुगुणी विविधता की तुलना मे, एक बहुत ही महत्वपूर्ण विशिष्ट लक्षण है। इसके अलावा सागर और भूमि पर प्राथमिक भोजन का संश्लेषण करने वाले सर्वाधिक महत्वपूर्ण पौधों के बीच बहुत बड़ा वैषम्य है। यह विषमता पौधों द्वारा समुद्री पर्यावरण से मूल आवश्यकताओं की विभिन्नता पर निर्भर करती है, इसका अध्ययन हम आगे करेंगे। समुद्री प्राणी जीवन की प्रचुर विविधता की तुलना में समुद्र में पौधों की किस्मों की कमी भी प्रमुख है। यह कहना सत्य ही होगा कि प्राणी जगत मुख्यतया सागर से ही सम्बन्धित है, दूसरी ओर भूमिज पर्यावरण वनस्पती जगत का पालन करता है यद्यपि वनस्पती जगत का एक पूर्वग सदस्य अर्थात् काई सागर मे आश्चर्यजनक रूप से विकसित है।

समस्त प्रकाश संश्लेषी पौधों की प्रमुख आवश्यकता है, प्रकाश; और उपअधिष्ठान से संयोजन की सम्भावना केवल गौण महत्व ही रखती है। इस सम्बन्ध में कुछ आगे चलकर विस्तार से विचार किया जायेगा, परन्तु हम यहाँ केवल यह संकेत कर देना चाहते है कि प्रकाश और अधिष्ठान से संयोजन, ये दोनों ही कारक सागर के एक बहुत ही छोटे से भाग में एक साथ क्रियात्मक हो सकते है। समुद्र का वह छोटा सा अंग जिसमे अधिष्ठान से संयोजित पौधों तक प्रकाश प्रवेश कर सकता है—अर्थात् ज्वार-भाटान्तर कटिबन्ध—सागर तल का केवल दो प्रतिशत भाग ही होता है।

समुद्र तट से परिचित प्रत्येक व्यक्ति भूरे शैल वीड (रोक वीड), फ्यूक्स, हरी समुद्री लेट्यूस, उल्वा और ज्वारान्तर प्रदेश में गलीचे के रूप में आच्छादित अन्य कई निम्नस्तरीय पौधों को पहचानता है। ये पौधे या इनसे भी निम्नस्तरीय अन्य पौधे या पटलीकरणीय पौधे निम्न ज्वार के नीचे काफी दूर तक जहाँ भी संयोजन के लिये उचित आधार उपलब्ध हो विभिन्न गहराइयों तक फैल सकते हैं। दलदली या रेतीले तल केवल उसी परिस्थितियों में अधिष्ठान का कार्य कर सकते है जबकि इधर उधर छितरी हुई चट्टानें विवर्त्ती कणों के ऊपर निकली हुई हों, चूंकि मिट्टी को जकड़ने के लिये काइयों में वास्तविक जड़ें नहीं होती हैं। कुछ विशेष प्रकार की काइयां अपनी लम्बी पतली शाखाओं से मिट्टी को इस प्रकार जकड़ती हैं कि स्थापित मिट्टी के एक ढेले को ही पकड़ लेता है, इस प्रकार की काइयों का उदाहरण है 'कौलेपी' प्रजाती की काइयां। यदि लहरों और धाराओं द्वारा नियमित रूप से शैलखण्ड इधर-उधर स्थानान्तरित नहीं होते हों तो छोटे-छोटे शैल खण्ड भी पौधों को जकड़ सकते हैं। छोटी काइयों में से बहुत सी काइयां पौधों पर पोषित होने वाली उपरिरोही (एपीफाइटिक) किस्म की होती हैं, इनमें से कुछ तो प्राणियों पर भी पलती हैं और वे पराप्रयी (एपी जोइक) कहलाती हैं, परन्तु सामान्यतया समस्त संयोजित आकृतियाँ पाषाणोद्‌भिद (लिथोफाइट) होती हैं।

'नेरोमिस्टिस', 'पेल्गोफिकस' और 'मेक्रोसिस्टिस' जैसे बड़े कैल्प ज्वारान्तर क्षेत्र से कुछ दूर चट्टानी शैल भित्तियों पर पाये जाते हैं। तट से मीलों दूर जल वालू उत्थान शैल भित्तिओं और चट्टानों पर भी इनका विकास हो सकता है, परन्तु खुले तटों या चट्टानों के निकटस्थ प्रदेश में लहरों और महातरंगों का विनाशक यांत्रिक प्रभाव इस प्रकार की छत्रवृन्तित आकृतियों के विकास में बाधक होता है। इसलिये ये बड़े कैल्प बैड्स तट से दूर ऐसे स्थानों पर विशिष्ट पट्टियों या धब्बों के रूप में विकसित होते हैं, जहाँ जल का संचरण तो होता हो परन्तु अपघर्षण से होने वाली हानि की सम्भावना बहुत ही कम हो।

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि पर्याप्त प्रकाश की पहुंच के कारण सागरीय तलछट के एक छोटे से भाग में ही पौधे पनप सकते हैं। तट के निकटवर्ती इस क्षेत्र के अत्यधिक प्रकाशित होने के बावजूद भी दलदल, मिट्टी, शैल भित्तियों और कई अन्य प्रतिकूल लक्षणों के कारण यह क्षेत्र बड़े पौधों के विकास के लिये उपयुक्त नहीं है। इसलिये इस क्षेत्र में संयोजित समुद्री पौधों द्वारा उत्पादित पदार्थ की मात्रा बहुत ही कम होती है और वह कम मात्रा सम्पूर्ण समुद्री वासस्थान में विद्यमान प्राणियों के केवल एक छोटे से अंग का ही पोषण कर सकती है—इन सबके बावजूद भी कुछ अधिक प्रतिबन्धित तटवर्त्ती क्षेत्रों में संयोजित पौधे मुख्य उत्पादक हो सकते हैं। उदाहरण के तौर पर ईल घास। तलप्लावी और संयोजित

पौधों के इस प्रतिबन्धित उत्पादन के परिणाम स्वरूप प्राथमिक भोजन का उत्पादन केवल असंयोजित पौधों जैसे कि डायटम और डाइनोफ्लेजेलेट पौधों का ही कार्य रह जाता है जो आकार में छोटे होते हुए भी सागर में विशाल संख्या में पाये जाते हैं।

तदनुसार पौधों के उत्पादन का अध्ययन मुख्यतया इन सूक्ष्म प्लवमान आकृतियों से ही सम्बद्ध होना चाहिए। प्लवमान पौधों के इस विशाल समुदाय अर्थात् 'फ़ोयटोप्लैंक्टन' के पोषण के साधन और समंजन व अन्य प्राणियों के साथ इसके सम्बन्धों के बारे में वर्णन अगले अध्यायों में किया गया है। सर्वप्रथम तो मुख्य विषय से कुछ हट कर सागर के पूर्ण जैव 'सेटअप' को समझने के लिये सागर की अर्थ व्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण विभिन्न समूहों की संक्षिप्त समीक्षा करना आवश्यक है।

सम्पूर्ण वनस्पति जगत् चार मुख्य प्रभागों में विभाजित किया गया है, ये प्रभाग हैं—

थैलोफायटा, ब्रायोफायटा, टेरीडोफायटा और स्परमेटोफायटा। इनमें से केवल प्रथम और अन्तिम प्रभाग ही सागर में निरूपित हैं।

इन मुख्य प्रभागों को भी समुद्र जीवनशास्त्र के विशेषज्ञों के लिए अपरिहार्य कई गौण विभागों और उपविभागों में विभाजित किया गया है, परन्तु इन गौण प्रभागों का वर्णन हम केवल उसी समय करेंगे जबकि या तो ये समुद्री अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण हों या सागर सम्बन्धी प्रकाशित सामान्य साहित्य में उसका उल्लेख मिलता हो।

इस पुस्तक में केवल एक बहुत ही संक्षिप्त वर्गीकरण दिया जा सकता है। इस वर्गीकरण के विस्तार से अध्ययन के लिये पाठक वनस्पति शास्त्र की कोई भी अच्छी पुस्तक देख सकते हैं, या किसी विशिष्ट पौध समूह में रूचि रखने वाला पाठक इस सम्बन्ध में कोई भी अच्छा प्रकाशन देख सकता है। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण प्रकाशनों को संदर्भग्रंथ सूचि में सम्मिलित किया गया है और अन्य संदर्भ इन सूचि-कृत संदर्भो की सहायता से ढूंढ़े जा सकते हैं।

थैलोफायटा

इस वनस्पति प्रभाग के अन्तर्गत प्रायः समस्त समुद्री पौधे आते है, यह प्रभाग उन समस्त पूर्वंग पौधों से मिलकर बना है जिनके शरीर में वनस्पति गत अंग— अर्थात् वास्तविक जड़ें, शाखायें या पत्तियां या तो होती ही नहीं हैं या जिनका शरीर बहुत ही कम वनस्पतिगत समानता रखता है। इन सूकाय (थैलस) पौधों में

समुद्री काई या समुद्री फंजाई विशेषकर जीवाणु आदि बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। चूंकि जीवाणु स्वयं में ही एक विशिष्ट विषय का गठन करते हैं अतएव उनके बारे में विस्तृत वर्णन अध्याय 18 में किया जायेगा।

अधिकतर काइयों का रंग बहुत ही सुन्दर होता है और कभी-कभी तो ये बहुवर्णभासी भी होती हैं। रंज्यालवों के रंग सूर्य द्वारा प्राप्त ऊर्जा को अवशोषित करके कार्बनिक पदार्थों का संश्लेषण करते हैं। काइयों में पाये जाने वाले इन रंगों के प्रतिरूप और इन रंगों के सम्मिश्रण के आधार पर इन काइयों का नामकरण और निम्न श्रेणियों में इनका विभाजन किया गया है।

नील हरित काई (मिक्सोफाएसी)
हरी काई (क्लोरोफाएसी)
भूरी काई (फ़िओफाएसी)
लाल काई (रोडोफाएसी)

पीली-हरी काई (यह एक विभिन्न लेखकों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्गीकृत समूह है)।

सामान्यतया रंग ही पाँचों श्रेणियों को विभाजित करने वाले विशिष्ट लक्षण हैं, परन्तु इन पाँचों श्रेणियों को विभाजित करने वाले मूल लक्षण कोष संरचना और जीवन वृत्त के साथ सम्बद्ध हैं। आकार की दृष्टि से प्रत्येक समूह में विचारणीय प्रभेद पाया जाता है जिसके सामान्य लक्षणों के बारे में विचार श्रेणियों की समीक्षा करते समय किया जायेगा। कुछ नील हरित काइयों को छोड़कर प्रथम चार तो अधिष्ठित पौधे हैं, जबकि पीली हरी काइयां विशिष्टतया प्लवमान या प्लैंक्टोनिक आकृतियां हैं।

नील हरित काई (मिक्सोफाएसी)

इस श्रेणी के अन्तर्गत कुछ ऐसे छोटे और कम विकसित पौधे आते हैं जिनमें से कुछ तो केवल एक कोषीय हैं जबकि अन्य बहुकोषीय हैं। इन पौधों का रंग जल में प्रचुरता से प्राप्य विलेयशील रंजक फायकोसाएनिन के कारण नीला होता है। कुछ अन्तरस्थलीय जल संहतियों में एक नील हरित काई (एना देइना) के विशाल मात्रा में विनाश के कारण विलेय शील रंजक जल को गहरा नीला रंग प्रदान कर देते हैं। लाल सागर का नाम एक स्वतंत्र प्लवमान आकृति 'ट्राकोडेस्मियम एरीथ्रियम', जिसमें लाल रंग प्रचुरता से पाया जाता है, के कारण ही लाल सागर है। इस प्रकार नील हरित काई का रंग लाल हो सकता है। जहाँ अन्य पौधों की कोषभित्ती सैल्युलोज से बनी होती है वहाँ इस समूह के पौधों की

कोपभित्ती काइटिन की बनी होती है, इस प्रकार सागर में अत्यधिक मात्रा मे विशेष-कर क्रटेसिया समूह द्वारा उत्पादित काइटिन की मात्रा मे इस समूह के पौधे भी कुछ योगदान करते है । कुछ मिक्सोफाएसी पौधे आन्तरपादप होते हैं–अर्थात् ये पौधे अन्य पौधों के शरीर के भीतर साहचर्य मे रहते है—इस प्रक्रिया को 'सहजीवन' कहा जाता है । रीझोसोलेनिआ नामक एक डायटम के कोपों के अन्दर एक समुद्री प्रजाति 'रीचेलिआ इन्ट्रासैल्युलारिस' पाई जाती है ।

प्रजनन की विधि:—इस समूह में प्रजनन अलिंगी विखंडन के द्वारा सम्पन्न होता है । प्रसार की इस सबसे सरल विधी में एक पौधा दो कम आकार वाले पौधों में विभाजित होता है जो विभाजन के पश्चात् स्वयं भी विभाजित हो जाते है । कोपों की एक जंजीर बनाने वाली नील हरित काई सम्बन्धी कुछ विशिष्ट दृष्टान्तों मे ये जंजीरें 'होर्मोगोनिया' नामक छोटी जंजीरों में विभाजित हो जाती है । होर्मोगोनिया के कोपों के विखंडन से तन्तु लम्बाई पुनः बढ़ जाती है ।
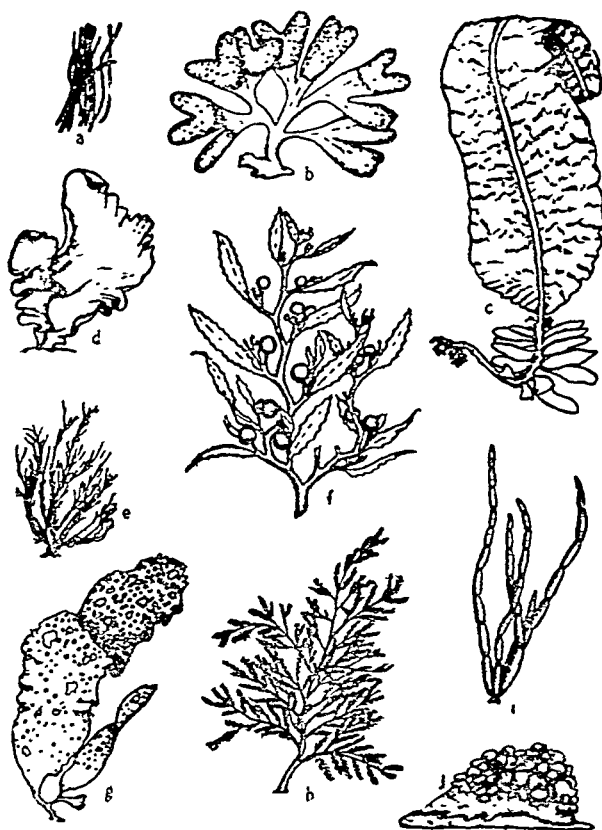
चित्र 68. विशिष्ट प्रकार की बहुकोषीय सागरीय काइयां : (a) ट्राइकोडेस्मियम (b) फ्यूकस (c) अलारिया (d) अल्वा (e) एक्टोकार्पस (f) सारगासम (g) रोडीमेर्नया (h) पोलीसाइफोनिया (i) सीटो साइफोन (j) लिथोथामनिऑन ।

विवरण—अन्य काई समूहों की तुलना में मिक्सोफाएसी साधारणतया सागर के लिए अधिक महत्वपूर्ण नहीं होती है। ये असमुद्री और खारे जल में विस्तार से वितरित रहती हैं। सागर में ये अधिकतर उष्ण जल में पाई जाती हैं, जहाँ पर श्लेष्मण सम्भव है। शान्त उत्तरी जोर्डस् के समीप पाई जाने वाली 'नोडुलेरिया स्पूमिगेना' नामक आकृति समय समय पर जल का बहुत बड़ी मात्रा में श्लेष्मण कर देती है। बोथनिया की खाड़ी में इस आकृति और कुछ अन्य इसी प्रकार की आकृतियों के कारण विचारणीय मात्रा तक जल का श्लेष्मण हो जाता है।

हरी काई (क्लोरोफाएसी)

इस श्रेणी के अन्तर्गत आने वाली काई का रंग हरा होता है। हरिताणु के रंजक दो प्रकार के पर्णहरिम, पर्णहरिम अ और ब और विभिन्न केरोटिनोइड के बने होते हैं। पर्णहरिम ब का पीला और नारंगी रंग पर्णहरिम के आधिक्य के कारण ढक जाता है। नील हरित काई की काइटिन से बनी कोषभित्ती के विपरीत इस पादप समूह की कोषभित्ति सैल्युलोज से बनी होती है, सैलूलोज एक कार्बोहाइड्रेट है जबकि काइटिन एक नाइट्रोजन युक्त पदार्थ है। सागर में पाई जाने वाली कुछ हरी काइयाँ—उदाहरण के तौर पर साइफोनेल्स की हेलिमेडा—केल्सियम कार्बोनेट की पपड़ी बना सकती हैं और इस प्रकार कुछ उष्ण सागरों में चूने के ढेर बनाने में वे योगदान दे सकती हैं। इन पौधों के जोड़ों पर चूने की पपड़ी नहीं जमती है इसलिये वे जल में स्वतन्त्रता-पूर्वक घूम सकते हैं।

इस श्रेणी के आकारिकीय लक्षणों में बहुत अधिक विविधता पाई जाती है। सामान्य आकृतियाँ तन्तुमय होती हैं जिनमें पट हो सकता है (जैसे यूरोस्पोरा) या जिनमें पट नहीं होता (जैसे कोडियम) या नली के रूप में (एन्टीरोमोर्फा) या चादर की आकृति वाली (अल्वा समुद्री लेट्यूस) इत्यादि कई प्रकार की आकृतियाँ पाई जाती हैं। (चित्र 68 d)

प्रजनन की विधि—प्रायः प्रत्येक स्थान पर पाई जाने वाली हरी काई, अल्वा, प्रजनन की सामान्य विधि का चित्रण करती है। लिंगी प्रजनन में दो परतों वाले चपटे पौधों का कोई भी साधारण कोषांश 'गेमेट' नामक द्विपक्ष्मी शरीरों की रचना कर सकता है, ये गेमेट जल में जोड़ों के रूप में बद्ध होकर साधारणतया एक तन्तुमय अवस्था प्राप्त करके कोष विखंडन विधि द्वारा विकसित हो 'स्पोरोफाइट' नामक एक नये पौधे का निर्माण करते हैं।

अलिंगी प्रजनन भी सम्भव है, जिसमें स्पोरोफाइट पौधे के साधारण कोष सूक्ष्म चतुर्पक्ष्मी बीजाणुओं (ज़ूस्पोर्स) की रचना कर सकते हैं (स्पोर्स साधारण

जननीय कोष होते हैं, इनमें और बीजों में मुख्यतया केवल इतना ही अन्तर होता है कि इनमें भ्रूण पौधा तैयार अवस्था में नहीं होता है।) ये जूस्पोर्स निरावेशन के पश्चात् 'गेमेटो फाइटस', अर्थात् वे पौधे जो 'गेमेट' उत्पन्न करते हैं, के रूप में विकसित हो जाते हैं। इस विधि को 'पीढ़ी परिवर्तन' (*alteration of generation*) कहते हैं और इस विधि के साथ कई प्रमुख कोशिकात्मक परिवर्तन सम्बद्ध है। तथापि अल्वा के प्रजनन में इन स्थूल लक्षणों (स्पोरोफाइट और गेमेटोफाइट पौधे) में प्रभेद करना सम्भव नहीं है अर्थात् ये समाकृतिक या समजात (होमोलोगस) हैं। अलिंगी प्रजनन संविभाजन के द्वारा भी सम्भव है, और इस प्रकार यह असंलग्न पौधों की रचना करता है।

प्रजनन काल में पित्रय पोधों को रंगहीन छोड़कर गेमेट और जूस्पोर्स के बड़े बड़े दल निर्मुक्त हो सकते हैं जो खाड़ियों के निश्चल जल को हरा रंग प्रदान करते हैं। इस काई और कई अन्य काइयों के प्रजनन अंग, बहुत से फिल्टर खाद्य पर आधारित पौधों के, भोजन का स्रोत है, और तटवर्त्ती पौधों के भोजन के बारे में अध्ययन करते समय इस तथ्य को अवश्य ध्यान में रखना चाहिये। काइयों की ये प्लवमान अवस्थायें और श्लेष्य ही जहाजों या अन्य जल के अन्दर डूबे हुए पदार्थों पर प्राथमिक झिल्ली की उत्पत्ति में योगदान करती है जो विकसित होकर एक गन्दी पपड़ी बना लेती है।

हरित काई का सागर में वितरण :—हरित काई मुख्यतया ऊपरी तटवर्त्ती क्षेत्रों में विशेषकर ज्वारान्तर क्षेत्र के निचले अधोभाग और 10 मीटर या अधिक गहराई तक फैले हुए उपज्वारान्तर प्रदेश में, अर्थात, एक पूर्णतया प्रकाशित निवास स्थान, में पाई जाती है। असमुद्री जल में पाई जाने वाली काई हरित काई से ही निकटतया सम्बन्धित है।

भौगोलिक वितरण के अनुसार हरित काई गर्म सागरो में प्रचुरता से पाई जाती है। काई विशेषज्ञों ने आर्कटिक महासागर में क्लोरोफाएसी (हरी काई) की दुर्लभता और उसके सीमित विकास के बारे में कई टिप्पणियां की है।

भूरी काई (फिओ फाएसी)

भूरी काई पूर्णतया समुद्र में ही पाई जाती है, असमुद्री जल मे यह कभी कभी बहुत ही कम मात्रा में पाई जाती है। यह स्पष्टतया सागर में पाये जाने वाले भूरे खरपतवार, जिनमें से कुछ तो आकार में बहुत ही बड़े होते हैं, के साथ मिली रहती है। इस श्रेणी रंजकों में. पीले और भूरे रंग का आवरण चढ़ा हरा क्लोरोफिल, ज्येन्थोफिल, कैरोटीन और फ्यूकोज्यैन्थिन मिले रहते हैं।

इस प्रकार की काई के पौधे स्पष्ट रूप से समुद्र के किनारों पर होने वाली उपज का ही एक भाग है, तथा इनको "कैल्प बेड्स" कहा जाता है। समुद्री खर पतवारों में आकार की दृष्टि से ये सबसे बड़े होते हैं और इनको समुद्री जंगल भी कहा जाता है, जिनके हिलते हुए छत्र के समान बिना फूलों वाले पौधों से समुद्र तट पर रहने वाली मछलियां अपना भोजन प्राप्त करती हैं और जलीय शत्रुओं से अपनी जान बचाने के लिये इनके बीच शरण पाती हैं। इन पौधों को ही उद्योगों के उपयोग में आने वाली सामग्री प्राप्त करने के लिये विशेष रूप से उगाया जाता है।

आकार और रचना की दृष्टि से भूरी काई विभिन्न रूपों में पाई जाती है। सूक्ष्म, नाजुक और तन्तुमय टहनियों वाले पौधे (एक्टौकार्पस, चित्र 68 e) ऊपर से खुरदरे खोखले और तश्तरियों जैसी जंजीरों वाले पौधे जो एक फुट या इससे भी अधिक लम्बे होते हैं (साइटोसाइफन, चित्र 68i) चौड़ी थैले वाले सूक्ष्मवृन्त पौधे (लामीनेरिआ, कोस्टेरिआ और आलेरिया, चित्र 68 c, जिनमें से कुछ तो दो मीटर तक लम्बे होते हैं) कई टहनी दार आकृतियां (फ्यूकस, एग्रेगिआ) और प्रशान्त महासागर के चर्ममय फ्रोंड (पुष्पपर्ण) वाले लम्बवृन्त विशाल पौधे (मेक्रोसाइस्टिस, नेरोसाइास्टस, पेल्गोफाइकस) इत्यादि बहुत से पौधे फिओफाएसी का प्रतिनिधित्व करते हैं।

समस्त थैलौफाइटा प्रजाति के पौधों में रचना की दृष्टि से भूरी काई सबसे अधिक उन्नत है। यदि हम केवल वाह्य ब्यौरे का ही उल्लेख करें तो 'नेरिओ-साइस्टिस' (चित्र 69) विशिष्ट विशाल भूरे खरपतवार के मुख्य लक्षणों को दिग्दर्शित करता है और अन्य समूहों के संरचनात्मक लक्षणों के समझने के लिये एक आधार प्रदान करता है।

'नेरिओसाइस्टिस' 35 मीटर या इससे भी अधिक लम्बा हो सकता है। यह पौधा अपनी छितरी हुई टहनीदार संरचना के द्वारा एक कठोर अधिष्ठान से संलग्न रहता है जिसे स्थापित्र (होल्डफार्स्ट) कहते हैं, किन्तु इस पौधे में वास्तविक जड़ें नहीं होती हैं। स्थापित्र से लम्बा वेलनाकार छत्रवृन्त जुड़ा रहता है, जिसका काफी बड़ा भाग खोखला होता है और यह एक दूरस्थ खोखले और बड़े वल्व के रूप में समाप्त होता है। छत्रवृन्त की भांति यह वल्व भी गैस से भरा रहता है और पौधे को उत्प्लावित करता है। दूरस्थ वल्व से फीतेनुमा फ्रोन्डस् (अपुष्प पर्ण) या पर्णदल जुड़े रहते हैं।
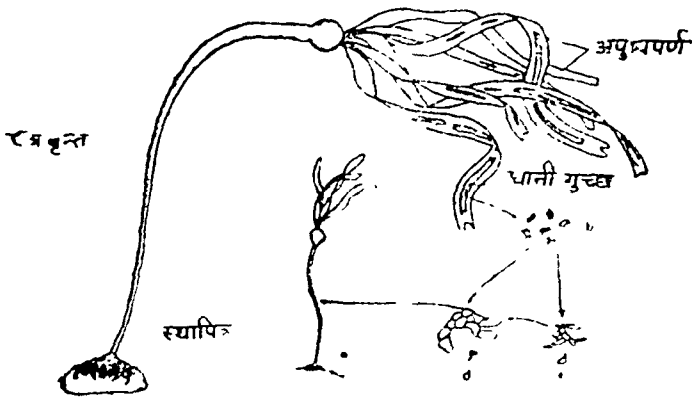
चित्र 69 :—'नेरिओसाइस्टिस' का जीवन चक्र और उसकी सकल संरचना (a) सोरोफाइट पौधा (b) तैरते हुए जूस्पोर्स (c) नर और (d) मादा गेमेटोफाइट पौधे (e) युवा सोरोफाइट

खोखला छत्रवृन्त और वल्ब पौधे के ऊपरी भागों को सागर पृष्ठ के निकट बनाये रखता है जिसके फलस्वरूप अपुष्प वर्ण सर्वदा अनुकूल प्रकाश परिस्थितियों में रहता है। बराबर आने वाली तूफानी लहरों और सागरीय धाराओं के प्रभाव से बचने के लिए अन्य विशाल काइयों की भांति इस काई के भी अंग दृढ़, लचीले और चिकने होते हैं।

प्रजनन की विधि :—भूरी काई के जीवन चक्र में कई पीढ़ी परिवर्तन सम्मिलित हैं। लेमिनारिएलीज पौव समूह, जिसके अन्तर्गत विशाल कैल्प आते हैं, में सामान्यतया होने वाले पीढ़ी परिवर्तन 'नेरियोसाइस्टिस्' के जीवन चक्र (चित्र 69) द्वारा प्रदर्शित किये जा सकते हैं। इसमें सोरोमाइट पौधा विशाल 'सोरी' या स्पष्ट फलन क्षेत्रों की एक श्रेणी उत्पादित करता है, यह फलन क्षेत्र फ्रौन्डस् की सम्पूर्ण लम्बाई पर अनुलम्बवत दिखलाई देते हैं। फ्रोन्डस् के दूरस्थ सिरों से प्रारम्भ होकर ये धब्बे परिपक्व होने के पश्चात् फ्रोन्डस् में एक खाली जगह (3 से 10 सेन्टीमीटर) छोड़ते हुए अलग हो जाते हैं। इन फलन क्षेत्रों से असंख्य रोमाभी बीजाणु (जूस्पोर्स) निकलते हैं, ये बीजाणु अनुकूल अधिष्ठान पर पहुंच कर तन्तुमय छोटे पौधों के रूप में विकसित हो जाते हैं जो कि गैमीटोफाइट अवस्था का ही अस्पष्ट रूप है। इस रीति से होने वाले पीढ़ी परिवर्तन 'विभिन्न रूपी' होते हैं। डिक्टाइओटेल्स जैसी कुछ भूरी काइयां 'समरूपी' पीढ़ी परिवर्तनों का विवेचन हरी काई अल्वा के सन्दर्भ में किया जा चुका है। यहां यह नोट करना भी सार्थक होगा कि 'नेरिओसास्टिस' में परिपक्व बीजाणुपुंज पूर्णतया झड़ने के उपरान्त डूब कर कैल्प बैड्स के तले में अनुकूल अधिष्ठान प्राप्त कर लेते हैं शायद यह प्रक्रिया ही

बीजाणुओं को संरक्षण प्रदान करती है। इस प्रकार अन्य बीजाणुधारी पौधों की 'सोरी' से निकलने वाले बीजाणुओं की भांति मुक्ति प्राप्त करने के बाद सागर पृष्ठ पर इधर उधर फैलने की अपेक्षा ये बीजाणु उन्मुक्ति के पश्चात् सागर तल पर या उसके आसपास एकत्र हो जाते हैं। हार्टगे (Hartge, 1928) के अनुसार बीजाणु चौबीस घंटे के भीतर ही अंकुरित हो जाते हैं। इनके अंकुरन के परिणामस्वरूप उत्पन्न पौधे नर या मादा पौधे हो सकते हैं और अण्डाणुओं के निषेचन के पश्चात् सोरोफाइट पौधों की वृद्धि प्रारम्भ हो जाती है।

'फ्यूकस' और 'सर्गासम' जैसी काइयों से मिल कर बनने वाले फ्यूकल्स नामक भूरी काई समूह का मुख्य पौधा सोरोफाइट ही होता है, परन्तु ब्लैडर का निर्माण करने वाली कप जैसी निधानियों की बीच स्पोर्स की भाँति गैमीटों का निर्माण होता है। जल में स्वतन्त्र रूप से मुक्त होने के पश्चात् ये पुनः संयुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार केवल कोशिका विज्ञान की दृष्टि से ही स्पष्ट पीढ़ी परिवर्तन होता है। फ्यूकस के अण्डजनन के संदर्भ में यह नोट करना काफी रुचिकर है कि अण्डजनन ज्वार के साथ तालबद्ध है। अर्थात् यह निम्न ज्वार में प्रकाश के उद्भासन के कुछ काल बाद होता है।

विवरण :—भूरी काइयों का सर्वाधिक विकास शीतल जल में होता है और इसलिए भूरी काई मुख्यतया उच्च अक्षांशों के चट्टानी किनारों पर पाई जाती है। फ्यूकल समूह का सदस्य 'सर्गासम' और कई अन्य काइयां ऊष्णकटिबन्ध और ऊपऊष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों की विशेपता है। टिल्डन (Tilden, 1935) के मतानुसार 'लेमीनेरिएल्स' की उत्पत्ति उत्तरी प्रशान्त और फ्यूकल पौधों की उत्पत्ति दक्षिणी प्रशान्त महासागर में हुई है। 'सर्गासम' या गल्फवीड की कई प्रजातियां विशाल मात्रा में सर्गासो सागर में पाई जाती हैं, वहां उत्पन्न होने के पश्चात् तटवर्ती क्षेत्रों से अलग होकर यह काई बहुगुणित और अपवाहित होती है। ब्लैडरों की सहायता से यह काई तैरती रहती है और वनस्पतियों की भाँति इसका विकास होता है, विच्छेदन द्वारा इसका प्रसार होता है और यह फल देने वाले अंगों का निर्माण नही करती है। इन अपवाहित संहतियों, अन्य काइयों और तटवर्ती प्राणियों से मिलकर एक विशिष्ठ पर्यावरण का निर्माण होता है।

चट्टानी ज्वारभाटान्तर क्षेत्रों में भूरी काई का ऊर्ध्वाधर वितरण बहुत सी कम उन्नत काइयों, जो विशेपकर फ्यूकल समूह की सदस्य होती हैं, का प्रदर्शन करता है। निम्नतम ज्वार स्तर के निकट माध्यम आकारीय, चर्ममय फ्रोन्डस् और छोटे छत्रवृन्तों वाली आकृतियां मिलनी प्रारम्भ हो जाती हैं और अगले 15

या 20 मीटर के भीतर इन आकृतियों में काफी वृद्धि होती है, अन्त में यूलिटोरल जोन के पश्चात् ये नहीं पाई जाती हैं।

इन लघुछत्रवृन्त आकृतियों के साथ ही विशाल लम्बे छत्रवृन्त वाले कैल्पस् मिश्रित रहते हैं जो सामान्यतया तट से कुछ दूर प्रचुरता से पाये जाते हैं और 30 मीटर गहराई तक फैले रहते हैं। प्रशान्त महासागर का एक विशाल कैल्प C मेक्रोसाइस्टिस' चीली के तट के निकट 80 मीटर गहराई से सागर पृष्ठ तक पहुंचता है (Hese, Allee and Schmidt, 1937), परन्तु उत्तरी प्रशान्त में इसका प्रचुरता से विकास लगभग 15 मीटर गहरे जल में ही होता है। इस वंश के कैल्पस् ऊष्ण कटिबन्धीय जल में नहीं पाये जाते हैं और एक समूह के रूप में ये – 20 से० से लगभग 25° से० तक तापमान वाले जल में पाये जाते हैं। कुछ प्रजातियां तो किसी भी तापमान पर पाई जा सकती हैं परन्तु लगभग सभी कैल्पस् ताप की एक छोटी परास में ही रह सकती हैं (Setchell, 1912)।

यहाँ पर एपीफाइट आंकृतियों जैसे तन्तुमय 'एक्टोकार्पस' का वर्णन भी कर देना चाहिये, जो विभिन्न गहराइयों पर पाये जाने वाले काइयों से संलग्न रहना पसन्द करती हैं।

लाल काई (रोडोफाएसी)

लाल रंग की प्रायः सभी काइयां सागर में ही पाई जाती हैं। समस्त समुद्री काइयों में रंग की दृष्टि से लाल काई सबसे अधिक सुन्दर काई है, और इस समूह में कुछ काईयां तो बहुत अधिक वर्णभासी होती हैं। कुछ सूक्ष्म आकृतियां तो सागर के सर्वसुन्दर स्थूल पदार्थो के अन्तर्गत आती हैं। व्यावसायिक दृष्टि से प्राणी क्रम गेलिडिएसी के अन्तर्गत आने वाली काईयां अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इस काई के कुछ सदस्य एगार का मुख्य स्रोत हैं।

रंज्यालव के रंगों में साधारणतया क्लोरोफिल के साथ जेन्थोफिल और केरोटीन के अलावा लाल फाइसोथ्राइन और कभी कभी फाइसो साएनिन भी होता है। पौधों का रंग लाल, जामुनी बैंगनी या कुछ सीमा तक भूरा या हरा भी होता है। छिछले जल में पाई जाने वाली प्रजातियों की अपेक्षा गहरे जल में पाई जाने वाली प्रजातियों का रंग, इन प्रजातियों के अधिक गहराई पर मृदु प्रकाश में संश्लेषण की कुशलता की क्षमता के कारण, अधिक रक्तवर्ण होता है। (गेल, Gail 1922)

साधारणतया आकार में भूरी काई से छोटी होते हुए भी लाल काई भूरी की अपेक्षा विविध आकृतियां और अनेक प्रकार प्रदर्शित करती हैं। समस्त प्रकार

की लाल काइयां बहुकोषी होती हैं, सरलतम आकृति तन्तुमय टहनियों से निर्मित होती है, जैसे 'पोलिसिफोनिया' (चित्र 68 h) जिसे कुछ अन्य तन्तुमय काइयों के साथ सामान्यतया 'समुद्री मॉस' (सी मॉस) कहा जाता है। विशाल चपटे आकार की लाल काइयों को रोकिमेनिया (चित्र 68 g) द्वारा समझा जा सकता है, जिसमें चौड़े फ्रोन्डस् काफी लम्बे हो सकते हैं। इसके बावजूद भी लाल काईयां केवल एक से दो मीटर तक ही लम्बी हो सकती हैं।

प्रजजन की विधियाँ:—कुछ प्रजातियों का जीवन चक्र बड़ा ही जटिल होता है इसलिये उनका वर्णन यहां नहीं किया जा सकता है। पूर्ण विवरण के लिए पाठकों को कीलिन (Kylin) रचित या अन्य सम्बन्धित साहित्य देखना चाहिये। कुछ अधिक विकसित काइयों की पीढ़ियों में एक नियमित आकारिकीय परिवर्तन होता है और सोरोफाइट व गेमोफाइट ऊपरी तौर पर एक जैसे ही दिखलाई देते हैं। यहां तीन प्रकार के पौधे उत्पन्न होते हैं, अर्थात्—एक नर और एक मादा गेमीटोफाइट और एक अलिंगी चतुर्बीजाणु पौधा। अन्तिम पौधा मादा पौधे पर पाये जाने वाले कार्पोबीजाणु के द्वारा उत्पन्न होता है। लाल काई का जीवन चक्र सामान्यतया 'पोलिसिफोनिया' द्वारा किया जाता है। कार्पोबीजाणु नर और मादा गैमीट दोनों से मिलकर बने होते हैं। अंकुरन के पश्चात् अलिंगी पौधे के चतुर्बीजाणुओं से लिंगी पौधे उत्पन्न होते हैं।

लाल काइयों के प्रजजन का सबसे महत्वपूर्ण वर्णनीय लक्षण यह है कि इनमें प्लवमान रोमाभी या फ्लेजिलैट बीजाणु या गेमीट नहीं पाये जाते हैं। यह लक्षण जल माध्यम में होने वाले जीवधारियों के प्रजजन से बिल्कुल ही मेल नहीं खाता है। यह विकिरण को और प्रजजन कोपों के अन्तिम मिलन को धाराओं पर आश्रित कर देता है जो केवल एक संयोग का विषय है।

विवरण:—भूगोलीय दृष्टि से रोडोफाएसी सागर में काफी विस्तार से वितरित है, परन्तु यह ऊष्ण सागरों में प्रचुरता से पाई जाती हैं। उनका ऊर्ध्वाधर वितरण यह दर्शाता है कि ये मृदु प्रकाश में विकसित होना अत्यधिक पसन्द करती हैं। कुछ प्रजातियां ज्वार भाटान्तर कटिबन्ध में भी पाई जा सकती हैं परन्तु इनका सर्वाधिक विकास उपज्वार भाटान्तर कटिबन्ध में ही होता है। हरी और भूरी काइयों के विकास के लिए प्रतिकूल गहराइयों में भी लाल काई प्रचुरता से पाई जा सकती हैं और भूमध्यसागर में तो ये 130 मीटर गहराई तक भी देखी गई हैं इस प्रकार छिछले जल से गहरे जल तक अभी तक वर्णित विभिन्न काई समूहों का ऊर्ध्वाधर वितरण क्रमशः इस प्रकार है हरी, भूरी और लाल काई; विभिन्न गहराइयों पर ये एक साथ भी पाई जा सकती हैं।

यहां यह वर्णन करना भी आवश्यक है कि कुछ लाल काइयां (जैसे नलीपोर्स) सागर मे कैल्सियम कार्बोनेट के अवक्षेपण में भी महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। उन्होंने भूगर्भीय रचना में भी काफी योगदान दिया है और अब भी वे इस रचना में योगदान कर रही हैं। इनमें विशेषकर कोरेलाइन (प्रवालाल) काइयां हैं जिसका एक विशिष्ट उदाहरण 'लिथोथेमनिएन' (चित्र 68 j) है। ये 73°5′ दक्षिण अक्षांश मे लेकर द 79°56′ उत्तर तक वितरित हैं (Tilden, 1933) और प्रत्येक खुले तट के तटवर्ती क्षेत्रों में चट्टानों और घोंघों इत्यादि पर विपुल पटलीकरण के रूप में दिखलाई देता है।

पीली हरी काई

जीवधारियों के इस विषमांग संकलन के उचित समूहीकरण या विभाजन की स्थिति के बारे में काफी मतभेद है और जैसा कि नीचे संकेत किया जायेगा कि इनमें से कुछ तो प्रकृति से ही प्राणी हैं। अत्यधिक महत्वपूर्ण समुद्री जीवों के बारे में विचार करते समय, सुविधा की दृष्टि से, हम यहां केवल उन्हीं नामों का उपयोग करेंगे जो कि जीवविज्ञान और समुद्र शास्त्र में काफी लोकप्रिय हैं। यहां पर वर्णित बहुत से सदस्यों का वर्णन तो प्राणी शास्त्र सम्बन्धी साहित्य में प्राणी संघ के अन्तर्गत भी किया गया है, परन्तु समुद्रशास्त्र सम्बन्धी अध्ययन में इन जीवों की वनस्पति सदृश्य भोजी प्रकृति (प्रकाश संश्लेषण शक्ति) के कारण इन जीवों को 'प्रारम्भ से' ही उत्पादकों में सम्मिलित करना बहुत ही सुविधाजनक रहता है। विभिन्न विभाजनों के विस्तार से अध्ययन के लिये पाठकों को फ्रित्स्च (Fritchs, 1935) और विभिन्न समूहों के विवेचन में सम्मिलित अन्य सम्बद्ध साहित्य पढ़ना चाहिये।

अब तक वर्णित समस्त काइयों के विपरीत पौधों या पौधों जैसे प्राणियों के इस संकलन के सदस्य मुख्यतया प्लवमान आकृतियाँ हैं और उनके बारे में विचार सागर की अर्थ व्यवस्था में उनकी महत्ता के आधार पर किया जायेगा।

डायटम :—यहाँ समावेषित समस्त पौधों का आकार बहुत ही सूक्ष्म होता है और बड़ी प्रजाति के एकाकी सदस्य एक बिन्दु के समान दिखलाई पड़ते है। समुद्र वनस्पति शास्त्र के कुछ लेखकों ने इन जीवों का भूरी काइयों के अन्तर्गत वर्णन किया है। इस जीव समूह का विस्तृत वर्णन हस्टड्ट (Hustedt, 1930) ने दिया है। रचना की दृष्टि से ये एक कोषीय जीव हैं परन्तु ये विभिन्न प्रकार की जंजीरों या समूहों की रचना कर सकते हैं। इन जीवधारियों को दिग्दर्शित करने वाली आकृतियों को चित्र 70 में निरूपित किया गया है। डायटम का एक विशिष्ट लक्षणउसका कवच या फ्रस्ट्यूल होता है जो कि पारभासी सिलिका का बना होता

है, और विभिन्न आकृतियों में रेखाओं, वृन्तों बिन्दुओं और गढ़ों द्वारा निर्मित यह कवच वास्तव में दर्शनीय होता है। ये कवच सिलिकामय तलछट के निर्माण में बहुत ही महत्वपूर्ण होते हैं और इन्होंने डायटोम मृत्तिका कहलाने वाले काफी विशाल फॉसिल्स निक्षेपों का निर्माण किया है।
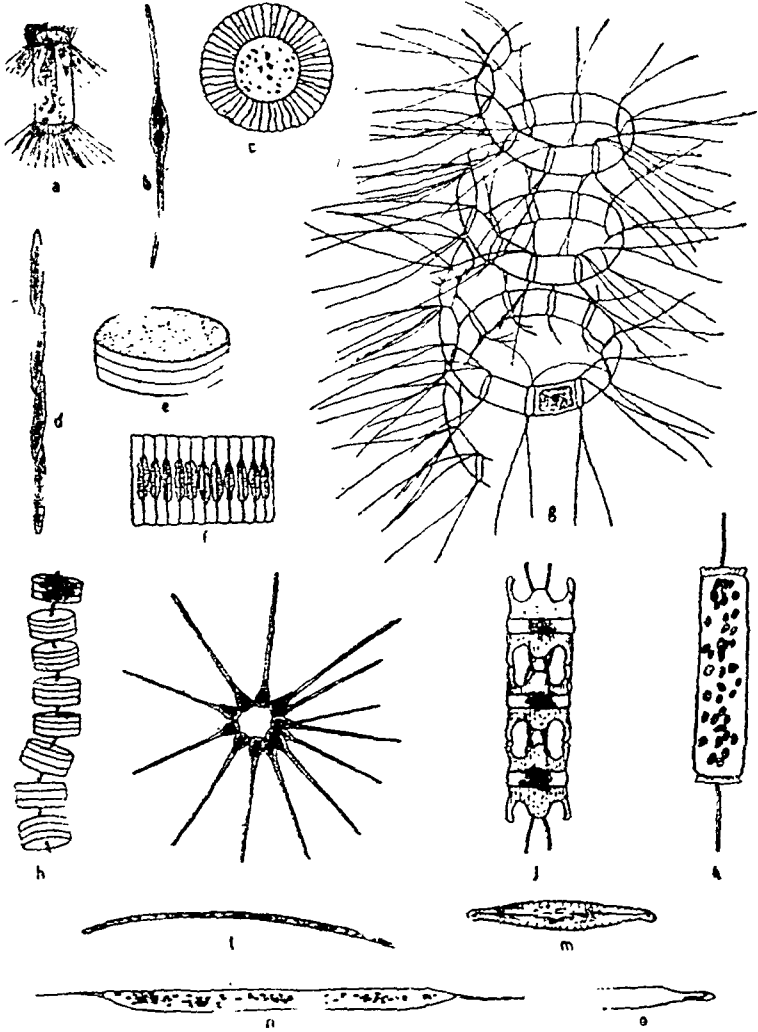
चित्र 70 :—डायटम के विभिन्न विशिष्ट प्रकार :—(a) कोरेथ्रोन (b) निट्ज़ेस्चिया क्लोस्टेरियम (c) प्लेन्कटोनैला (d) निट्ज़ेस्सिया सेरिआटा (e) कोस्सिनोडिस्कस (f) फ्रेगीलारिया (g) चैटोसेरस (h) थैलासिओसिरा (i) एस्ट्रियोनैला (j) बिदुलफिया (k) डिटिलम (l) थैलेसिओथ्रिक्स (m) नेविकुला (n,o) रिजोसोलेनिआ सेमीस्पिना (ग्रीष्म और शरदकालीन आकृतियां)

चूंकि एक समूह के रूप में ये पौधे सागर की अर्थव्यवस्था के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण जीव माने जाते है, इसलिए इनके बारे में हम विस्तार से विचार करेंगे, इस विस्तृत अध्ययन के अन्तर्गत इनके पोषण की विधियों, इनके आंकिक वैविध्य और आकारिकीय दृष्टि से इन जीवधारियों की उन सागरीय आवश्यकताओं, जिनका कि अगले अध्यायों मे वर्णन किया गया है, इत्यादि के बारे में विचार किया जायेगा।

डायटम की कवच संरचना (चित्र 71) एक ऐसे बक्से की तरह मानी जा सकती है जिसमें एक सरकने वाला प्रवेशी (टेलिस्कोपिक) ढक्कन लगा हो, क्योंकि यह कवच एक दूसरे से जुड़े हुए दो लगभग बराबर अर्धांगों से मिलकर बना होता है। इस बक्से के तले और ढक्कन का निर्माण करने वाले दोनों अंगों को 'वाल्व' कहते है और ये ग्रिडल की रचना करने वाली परस्पर व्याप्त पट्टियों से जुड़े रहते है। इस कवच के बड़े वाले अर्धांग को 'एपिथेका' और बड़े वाले अर्धांग में प्रवेशित छोटे अर्धांग को 'हायपोथेका' कहते है। प्रोटोप्लाज्म पूर्णतया कवच के अन्दर रहता है और उपपचयात्मक पदार्थों के विनिमय के लिये कुछ डायटमों के वाल्व में एक झिरी (राफे) और कुछ में छोटे छोटे छिद्र होते है।
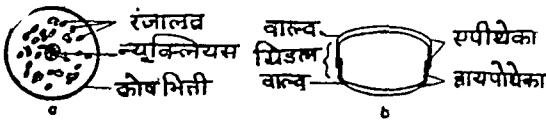
चित्र 71 : एक साधारण डायटम की सामान्य संरचना (कोस्मिनोडिस्कस) : - (a) वाल्व का दृश्य (b) कोष भित्ती का ग्रिडल-दृश्य काट।
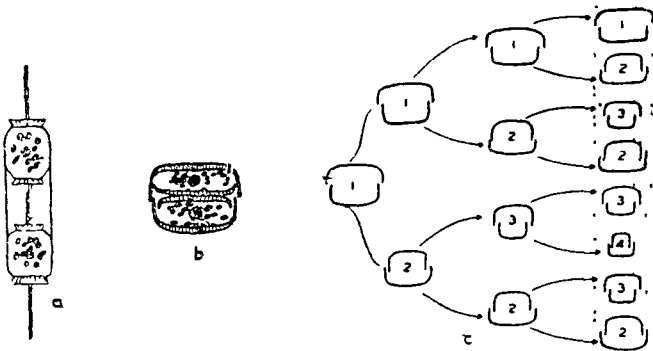
चित्र 72 :—डायटम में प्रजनन :-(a.b) कोष विभाजन (ग) कोष विभाजन के कारण तीसरी पीढी में आकार का ह्रास

डायटम में एक या अधिक रंज्यालव हो सकते है, जिनका रंग पीला मटमैला हरा या भूरा भी हो सकता है। डायटम में उपस्थित रंजक की प्रकृति के बारे में

विद्वानों में काफी मतभेद है, परन्तु ऐसा संकेत मिलता है कि 'डायटोमिन' नामक भूरा रंजक प्रचुरता के कारण अन्य सामान्य रंजकों को ढक देता है, यह भूरा रंजक भूरी काई में पाये जाने वाले रंजक फ्यूकोसिन के समरूप भी हो सकता है। आत्मीकरण का एक महत्वपूर्ण उत्पादन एक तेल होता है जो छोटी-छोटी बूँदों के रूप में बहुधा डायटम के भीतर दिखलाई पड़ता है।

प्रजजन की विधियाँ :—डायटम का प्रसार साधारणतया सरल कोष विभाजन के द्वारा होता है (चित्र 72a) यह विधि जीव संख्या को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्टतया अत्यधिक प्रभावित करती है। प्रथम तो यह अनुकूल परिस्थितियों में डायटम के विकास को त्वरित करने और बहुत बड़ी संख्या में डायटम के उत्पादन में सहायक है। दूसरे, जीवसंख्या के किसी एक प्रभाग में एकाकी डायटमों का सबसे बडा आकार कोष विभाजन की प्रक्रिया के कारण लगातार कम होता जाता है; आकारमें होने वाली यह कमी प्रोटोप्लास्ट (डायटम का जीवित प्रभाग) के विभाजन का परिणाम है, जिसमें अनुजात-कोषों में से एक का निर्माण तो बड़े वाल्व (हायपोथेका) और दूसरे की रचना छोटे वाल्व (एपीथेका) द्वारा होती है। विभाजन की इस प्रक्रिया में नये पूरक वाल्व इस भाँति निर्मित होते हैं कि वे पुराने पैतृक वाल्वों में पूर्णतया पैठ सके, अर्थात ये नवनिर्मित वाल्व हायपोथेका बन जाते हैं और पुराने डायटम का हायपोथेका इस प्रकार निर्मित अनुजात कोषों में से छोटे डायटम का एपीथेका बन जाता है। इस प्रकार कोष विभाजन द्वारा होने वाले
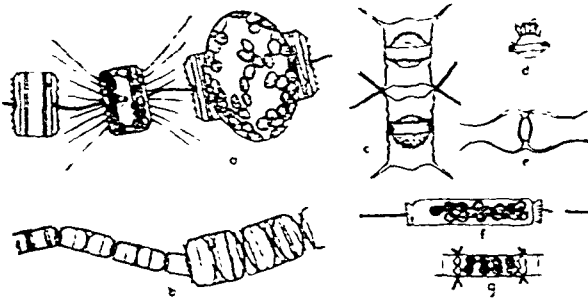
चित्र 73 :—डायटमों में प्रजनन :—(a) 'थैलासिओसिरा एन्टीवेलिस' में आक्सोस्पोर्स की रचना (ग्रान और एंगेन्ट के अनुसार) (b) 'मेलोसीरा न्यूम्यू लोइडा' में आक्सोस्पोर्स की रचना के बाद कोषाकार में वृद्धि (फ्रल्च के अनुसार) (c) मातृका कोष में सुप्त बीजाणु 'कैटोकेरोस वानहुर्की' (d) 'चेटोकेरोस डायटेमा' के सुप्त बीजाणु (e) 'चेटोकेरोस के सुप्त बीजाणु (f) 'डिटीलम' में माइक्रोस्पोर्स (g) 'केटोकेरोस डिडीमस' में सूक्ष्म बीजाणु (ग्रान और एगरट के अनुसार)

क्रमानुसार कई पीढ़ी परिवर्तनों में डायटम का आकार बिना किसी विघ्न के छोटा होता चला जाता है। इस आकार परिवर्तन का चित्रण चित्र 72 b में क्रमानुसार तीन पीढ़ियों के लिये किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि आकार में यह कमी केवल कुछ सीमा तक ही हो सकती है और उस सीमा की प्राप्ति के पश्चात् 'आक्सोस्पोर्स' (चित्र 73 a) की रचना के द्वारा डायटम को पुनः बड़ा आकार प्राप्त कर लेना चाहिये। यदि उस सीमा के पश्चात भी आक्सोस्पोर्स की रचना नहीं हो पाती है तो आकार में होने वाली इस लगातार असामान्य कमी के कारण डायटम की मृत्यु हो जाती है। आक्सोस्पोर्स की रचना में एक पेक्टिन झिल्ली से आच्छादित अलग अलग विभाजित वाल्वों से सूक्ष्म दृढ सिलिकामय अंग स्वतंत्र हो जाते हैं। जिसके फलस्वरूप पूर्ण आकार वाले नये वाल्वों की रचना के साथ डायटम के आकार में विकास सम्भव है। आक्सोस्पोर्स की रचना डायटम समूहों पर निर्भर विभिन्न विधियों द्वारा हो सकती है। उदाहरणार्थ, कई आक्सोस्पोर्स उत्पन्न हो सकते हैं और उत्पत्ति के पश्चात ये अन्य अक्सोस्पोर्स से भी जुड़ सकते हैं। तथापि सामान्यतया एक प्रकार का पुनः किशोरीकरण होता दिखलाई देता है। आक्सोस्पोर्स की रचना बहुत सी प्रजातियों में होती है, परन्तु प्रकृति मे ये बीजाणु बहुत ही कम संख्या में पाये जाते हैं।

डायटम सूक्ष्म बीजाणु (माइक्रोस्पोर्स, चित्र 73 b) भी उत्पादित कर सकता है। ये सर्व प्रथम मुरे, ग्रान और कई अन्य विद्वानों द्वारा देखे गये थे। इनके कवच के भीतर एक प्रोटोप्लाज्म का छोटा गोला होता है जो द्विपक्ष्मी बीजाणुओं के रूप में उन्मुक्त हो सकता है। इन आकृतियों की महत्ता के बारे में अभी तक कुछ भी ज्ञात नहीं है।

बहुत सी तल प्लावी तलतटजीवी प्रजातियों में विशिष्ठ संरचना वाले सुप्त बीजाणुओं का भी निर्माण होता है; जो विशेषकर कोपांशों के संघनन और सिलिकामय भारी भित्ती के जमाव के कारण केन्द्रिक होते हैं। इनका जन्म प्रतिकूल जीवन परिस्थितियों के प्रथम दर्शन होते ही प्रारम्भ हो जाता है और पुराने फ्रस्ट्यूल के भीतर ही कुछ काल तक इधर उधर बहकर या सागर तल में डूब कर ये उन प्रतिकूल परिस्थितियों से बच जाते हैं जो कुछ सागर तटों पर पोषक पदार्थों की कमी, अत्याधिक शीत या लवणता में कमी के कारण उत्पन्न हो जाती हैं। उत्तर ध्रुव महासागरीय संग्रह में सुप्त बीजाणुओं की उपस्थिति की सूचना ग्रान (Gran, 1912) ने दी थी।

सागरीय डायटम प्रजातियों की शीत और ग्रीष्मकालीन दोनों ही प्रकार की आकृतियों की सूचना भी दी गई है। यह द्विरूपता का एक सुन्दर उदाहरण है

जिसमें शीतकालीन रूक्ष आकृति को हम एक अनुकूल ऋतु से दूसरी अनुकूल ऋतु में अनुजीवन के साधन के रूप में देख सकते हैं। इन सबके बावजूद भी यह द्विरूपता मौसमी ताप परिवर्तनों के साथ होने वाले श्यानता परिवर्तनों के साथ संलग्न एक स्वाभाविक संमजन माना जा सकता है।

बहुत से डायटम सामान्यतया तटवर्ती क्षेत्र के तल में विकसित होते हैं, जहाँ वे किसी वृन्त के साथ संलग्न हो सकते हैं, या वे सागर तल में स्वतन्त्रतापूर्वक इधर उधर विसर्पित हो सकते हैं। ये समुद्रतलजीवी आकृतियां अत्याधिक विशिष्ठ नमूनों और भारी कवचों वाली आकृतियों की रचना करती हैं। डायटम अन्य पौधों और प्राणियों पर भी विशाल मात्रा में विकसित हो सकते हैं। तटवर्ती वंश 'लिक्मोफोरा' बहुधा तलतटप्लावी कोपिपोड पर पाया जाता है, और उत्तर ध्रुव सागर के शीतल जल में काफी दिनों तक रह चुकी ह्वेल की त्वचा पर पीले रंग का डायटम 'कोकोनेस नेटीकोला' बहुत ही विशाल मात्रा में विकसित हो जाता है और इसके फलस्वरूप इन नीली मछलियों का नाम सल्फर बोटम भी पड़ गया है।

डाइनोफ्लेजेलेटा :—संग्रहित रूप से बहुधा ये 'डायनोफ्लेजेलेटस' नाम से भी पुकारे जाते हैं। इस वैविध्यपूर्ण समूह के बारे में स्थान की कमी के कारण यहां पर्याप्त विवरण देना सम्भव नहीं है। (कृपया देखें Kofoid and Swezy, 1921; Kofoid and Skosberg, 1928; Fritsch, 1935) यह एक ऐसा जीव समूह है जिसका त्रुटिरहित सामान्यीकरण प्राय: असम्भव है। इस समूह के सदस्य सागर की अर्थव्यवस्था में बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इनमें एक बहुत बड़ी संख्या तो वनस्पतिसदृश भोजी सदस्यों की है जो समुद्री प्लेन्कटोन की उत्पत्ति में डायटम के पश्चात् दूसरे नम्बर पर आते हैं। इसलिए इनका सर्वोत्तम अध्ययन फायटो प्लेन्कटन के साथ ही किया गया है। अन्य सदस्य प्राणी सदृश भोजी या प्राणियों की भांति पोषक पदार्थ प्राप्त करने वाले हैं. ये आणविक भोजन अंतर्गहन करते हैं और अन्य कई विशिष्ठ लक्षण इनको स्पष्टतया प्राणी समुदाय में सम्मिलित करते हैं। कुछ अन्य मृतकोपजीवी अर्थात् मृत कार्बनिक पदार्थों पर जीवित रहने वाले हैं। उपरोक्त सभी प्रकार के डाइनोफ्लेजेटस् मलवे और निस्पंदित भोजन पर जीवित रहने वाले प्राणियों का पोषण करते हैं।

डाइनोफ्लेजेलेटस् प्रतिरूपतः एक कोषीय होते हैं, कुछ सैयूलोज की पट्टियों से कवचित होते हैं और बाकी अकवचित या नग्न होते हैं। प्रत्येक में संचलन के दो फ्लेजेलेट होते हैं जो कि वनस्पतिसदृश आकृतियों का एक महत्वपूर्ण लक्षण है, शायद जिसके फलस्वरूप ही कुछ सीमा तक ये जीव अपने आपको प्रकाश और घुले हुए पोषक पदार्थों की दृष्टि से अनुकूल परत के लिये समंजित कर सकते हैं। बहुत

से डाइनोफ्लेजेट्स संदीप्तिशील होते हैं, और ये ही सागर की विशिष्ठ देदीप्यमान संदीप्ति के लिये अधिकतर उत्तरदायी हैं।
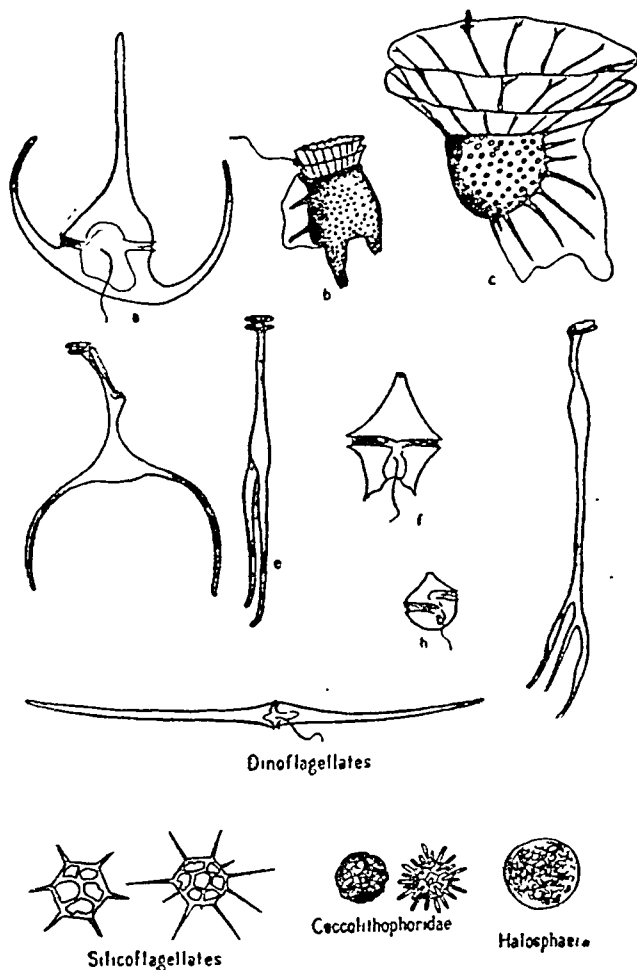
चित्र 74 :—डाइनोफ्लेजेलेस् और अन्य फायटोप्लेन्कटन जीवधारी :— (a) केरेटियम ट्राइपोस (b) डाइनोफाइसिस (c) आर्निथोसेर्कस (d, e) ट्राइपोसोलेनिया अग्र और पार्श्व दृश्य (f) पेरीडिनियम (g) एम्फीसोलेनिया (h) गोनिगोलेक्स (i) केरेटियम फ्यूसस ।

प्रजजन की विधियाँ:—डाइनोफ्लेजेलेट्स में प्रजजन मुख्यतया कोष विभाजन द्वारा होता है, जिसके फलस्वरूप कुछ परिस्थितियों में ये जीव एक दूसरे से जकड़ कर अदृढ़ जंजीर का निर्माण कर लेते हैं। कोष संरचना में अस्थाई परिवर्तन सामान्यतया इस जंजीर के विपरीत सिरों पर होते हैं। इस विभाजन प्रक्रिया में

आकार में क्रमिक ह्रास नहीं होता है जो कि डायटम के अनुजात कोषों का एक विशिष्ठ लक्षण है।

डाइनोफ्लेजेलेट्स समस्त महासागरों में पाये जाते हैं, परन्तु इसका सर्वोत्तम प्रजाति परिवर्धन गर्म सागरों में ही हो पाता है जहां बहुत ही विलक्षण अनेकों आकृतियां भी पाई जाती हैं। जीवाणुओं एवं अन्य कई निमित्तों द्वारा सैल्यूलोज परतों के विनाश केकारण ये सागर तल में एकत्र नहीं हो सकते हैं। इसके कुछ महत्वपूर्ण वंश के 'रेटियम', पेरीडिनीयम', 'डाइनोफाइसिस' और गोनिओलेक्स हैं।

फिओसाइस्टिस :—फिओसाइस्टिस एक तटतल जीवी भूरे रंग का पौधा है, जो नंगी आँखों को दिखलाई देने वाले गोलाकार 'पिड़ों' के एक श्लेपीय मंडल का निर्माण करता है। अत्यधिक मात्रा में पाये जाने के कारण यदाकदा ये पृष्ठीय जल को बिल्कुल भूरा कर देते हैं और सिल्क के बने प्लेन्कटन नेट में भी अवरोध उत्पन्न करने का कारण बन सकते हैं। इन मंडलों से निर्मुक्त होने वाले फ्लेजेलेट बीजाणुओं की रचना के साथ ही प्रजनन प्रक्रिया समाप्त होती है।

कोकोलिथोफ़ोराइड :—सागर में सूक्ष्मतम (5 से 10 माइक्रोन) स्वजीवी जीवधारियों में इस संघ की बाइफ्लेजेलेट (इस संघ की कुछ आकृतियां फ्लेजेलेट नहीं होती हैं) आकृतियां होती हैं। (चित्र 74) सामान्यतया ये साधारण नेट (जाली) की सहायता से नहीं पकड़ी जा सकती है क्योंकि ये आकृतियां जाली के छिद्रों में से सरलता से पार निकल जाती हैं, और इन जीवों को पकड़ने के पश्चात् भी बहुत ही सावधानी बरतनी पड़ती है अन्यथा इनका चूर्णमय परिरक्षी कवच जल में एक अपरिभाषित संहति छोड़कर घुल जाता है। इन आकृतियों के नाजुक अंग 'कोकोलिथ्स' या 'रादोलिथ्स' कहलाने वाली विभिन्न आकारों या प्रक्षेपों वाली गोलाकार कवचीय परतों या परिरक्षकों द्वारा परिरक्षित रहते हैं। 'चैलेंजर' द्वारा सागर जल में इन परिरक्षिक कवचों की विशाल मात्रा में खोज उन जीवधारियों की खोज के बहुत पहले ही की जा चुकी थी जिनके ये कवच अंग हैं; और इन जीवधारियों को इनके कवचों की खोज के बाद ही प्लेन्कटोन के जीवित भाग के रूप में पहचाना गया जहां वे तटतलजीवी प्रोटोजोआ के प्रोटप्लाज्मिक वलयकों या कैल्प और टेरीपोड प्राणियों के उदर में पाये गये। वैसे तो कोको-लिथोराइड जीवधारी खुले सागरों में ही पाये जाते हैं, परन्तु यदाकदा वे तटवर्त्ती क्षेत्रों में भी बहुत बड़ी संख्या में मिल सकते हैं; ग्रान (Gran 1912) के अनुसार ओस्लो जोर्ड के जल का रंग केवल इनके कारण दूधिया होता है जहां एक लीटर जल में लगभग 50 ने 60 लाख से भी अधिक संख्या में पाये जाते हैं। कुछ असमुद्री जल में भी पाये जाते हैं।

आकार में छोटे होने के बावजूद भी ये फिल्टर पोषित जीवधारियों के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण होते हैं और चूर्णमय तली तलछट के निर्माण में योगदान करते हैं। भूगर्भीय संरचना की दृष्टि से ये केम्ब्रीयन काल से ही पाये जाते हैं। इन जीवधारियों के सामान्य वंश हैं, 'कोकोलिथस', पोन्टा स्फैरा और रैब्दोस्फैरा।

हैलोस्फैरा :—हैलोस्फैरा हेट्रोकोफेल्स वंश का एक एक कोषीय सूक्ष्म पौधा है। (चित्र 74) कुछ लेखकों ने इनको हरी काइयों के अन्तर्गत सम्मिलित किया है। ये यदाकदा पृष्ठ पर वहमान प्लेन्कटोन में बहुत बड़ी मात्रा में पाया जाता है। 'होलोस्फैरा विराइड' अटलांटिक महासागर में प्रायः सर्वत्र पाया जाता है और यह गलफस्ट्रीम प्रणाली और दक्षिणी अक्षांशों में भी प्रचुरता से पाया जाता है, जहां 'डिसकवरी' द्वारा की गई जांच के अनुसार दक्षिणी महासागर में डायटम के उपरान्त हैलोस्फैरा ही दूसरा पूर्ण पौधा है। इस क्रम का दूसरा पौधा 'मेरीन्गोस्फैरा' भी समुद्री प्लेन्कटन में पाया जाता है।

ग्रान के अनुसार व्यवहारिक रूप से 'हेलोस्फैरा' ही एक ऐसा पौधा है जिसमें भूमिज पौधों का विशिष्ठ हरा रंग पाया जाता है। संख्या की दृष्टि से विशाल मात्रा में पाये जाने के बावजूद भी इसका प्रसार डायटम की भांति सरल कोष विखंडन प्रक्रिया द्वारा नहीं होता है, परन्तु अपने परम आकार की प्राप्ति के कुछ समय पश्चात् कोषांगों का रूपान्तरण ज़ूस्पोर्स में हो जाता है। ये ज़ूस्पोर्स या प्लवमान बीजाणु निर्मुक्त होकर किसी अज्ञात विधि द्वारा पुनः छोटे छोटे पिंडकों में रूपान्तरित हो जाते हैं जो धीरे धीरे बाहरी चूर्णमय झिल्लियों को झाड़ कर अपना सामान्य आकार प्राप्त कर लेते है। सुप्त बीजाणु भी उत्पन्न हो सकते हैं।

सिलिकोफ्लेजेलेटस् :—इन फ्लेजेलेटस् जीवधारियों (चत्र 74) का वर्णन बहुत ही संक्षेप में करना चाहिए क्योंकि बहुत ही कम मात्रा में पाये जाने के कारण सागर की अर्थ व्यवस्था पर कोई प्रभाव नहीं रखते हैं। तो भी लगभग सभी ठंडे सागरों से पाये जाने वाले प्लेन्कटन समुदाय के ये स्थाई सदस्य हैं, और इनकी तारों जैसी आकृति वाला खुला कवच इनके बारे में काफी रुचि उत्पन्न करता है। इनमें से बहुत से जीव तो समुद्री तलछट में पाये जाते हैं और इनका विकास समुद्री फोसिल्स के संग्रहों में देखा जा सकता है। टिन्टीनाइड प्राणियों की भोजन रसधानियों में इन जीवों की बहुधा उपस्थिति इस तथ्य को प्रदर्शित करती है कि ये जीव प्राणियों के भोजन में थोड़ा बहुत योगदान करते हैं।

सागर के उच्च पौधे

वनस्पति शास्त्र के दो मध्यम संघ अर्थात् मोसेस (ब्रायोफायटा) और फर्न्स (टेरीडोफायटा) सागर में नहीं पाये जाते हैं। इसके बावजूद भी

पौधों में उच्चतम किस्म के पौधे स्परमेटोफायटा के एन्जीयोस्पर्मस या पुष्पी पादपों की लगभग ३० प्रजातियां सागर में पाई जाती हैं। ये हाइड्रोचेरीटेसी के तीन और पोटेमोगेटीनेसी के छः वंशों से सम्बन्वित हैं आर्बर, (Arber, 1920)। इनका मूल स्रोत सागर नहीं है परन्तु इन पौधों ने असमुद्री जल से आकर सागर में अपने मंडलों का निर्माण किया है। इन पौधों की निकटतम बंधुता इसी कुल के असमुद्री जल में पाये जाने वाले सदस्यों एन्जीयोस्पर्मस के साथ है।

समुद्री का एन्जीयोस्पर्मस सर्वाधिक महत्वपूर्ण सदस्य ईल घास 'जोस्टेरा' (चित्र 75) है। बहते हुए जल के अनुकूलन के फलस्वरूप उत्पन्न लम्बी, पतली और घास जैसी लचकीली पत्तियों के बावजूद भी वनस्पति शास्त्र की दृष्टि से इस पौधे को घास नहीं कह सकते हैं। समुद्रतलजीवी काइयों के विपरीत 'जोस्टेरा' और इसके सम्बन्धियों के यथार्थ जड़ें होती हैं जो धरती के भीतर एक तने या रायजोम से जुड़ी रहती हैं और नरम उपअधिष्ठान में मजबूत पकड़ उत्पन्न करती हैं। पौधे उर्वर और अनुर्वर, दोनों ही प्रकार के होते हैं, और चूंकि ये पौधे साधारणतया 4 से 5 मीटर और कभी कभी 14 मीटर (Peterson 1918) तक गहरे जल में निमग्न रहते हैं, इसलिये पुष्पों का परागिकरण जल के नीचे ही धाराओं के द्वारा होता है। धागे जैसे परागकणों का घनत्व जल के घनत्व के समान ही होता है इसलिये वे सुविधापूर्वक इधर से उधर लाये लेजाये जा सकते हैं। ये पौधे चिरस्थायी भी होते हैं, रायजोम लम्बी होकर नई जड़ों और पत्तियों को जन्म देती हैं। 'जोस्टेरा मेरीना' यूरोप के तटों से लेकर उत्तरी अमेरीका एशिया माइनर और पूर्वी एशिया तक विस्तृत रूप से वितरित है। प्रचंड समुद्री लहरों से सुरक्षित तटवर्ती क्षेत्रों में इसका सर्वाधिक विकास होता है। एक सम्बन्वित वंश 'फायलोस्पाडिक्स' उत्तरी अमेरीका के लहरों से आक्रान्त पश्चिमी खुले तटों में ही सीमित है। अन्य वंश और वंश संसार के विभिन्न भागों में पाये जाते हैं। कुछ बहुत अधिक छिछले जल वाले क्षेत्रों जैसे कि डेनमार्क के जोर्डन् में 'जोस्टेरा' को समुद्री प्राणियोंके मलबा निर्मित भोजन का मुख्य स्रोत माना जाता है।
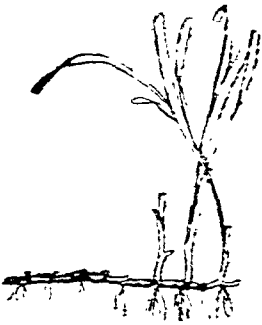
चित्र 75 :—ईल घास 'जोस्टेरा' की पत्तियां, वास्तविक जड़ें और रायजोम।

सागर की प्राणी संख्या

सागर के किसी एक ही प्राणीगत क्षेत्र में भिन्न प्राणी समूहों की विभिन्न प्रजातियां अन्तर्निश्रित पाई जाती हैं। इनमें से कुछ का स्वभाव और आवश्यकतायें समान हो सकती हैं, परन्तु अलग अलग प्रजातियों का बहुत बड़ा भाग सम्पूर्ण जटिल

कार्बनिक पार्यावरण पर अपना विशिष्ठ प्रभाव रखता है और इस पर्यावरण के अनुकूलन में प्रत्येक प्रजाति का हाथ होता है, इस प्रकार ये प्रजातियां इस सहचार्य का निर्माण करने वाली अन्य प्रजातियों पर अपना प्रभाव रखती है। जीवधारियों के आपसी सम्वन्धों पर विचार करते समय (अध्याय 18) इस विषय पर विस्तार से विचार किया जायेगा।

प्राणीजात की जटिलताओं को पर्याप्त रूप से समझने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक प्रजाति या प्रजाति समूहों के कार्यो पर अलग अलग विचार किया जाये, और प्रजातियों के भूगोलीय और उदग्र विस्तार को परिमित कर उसकी व्याख्या करने के लिये इन प्रजातियों का यथार्थ सारूप्य निर्धारित किया जाय। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक साधन सिस्टेमेटिक जीव विज्ञान अर्थात् वर्गीकरण विज्ञान प्रदान करता है अतः इस विषय का अध्ययन उपरोक्त उद्देश्य की प्राप्ति के लिये परमावश्यक है। इस प्रकार के अध्ययन का क्षेत्र अत्यन्त ही विशाल होने के बावजूद भी कुछ प्राथमिक समूहों का निर्माण करने वाली प्रजातियों का विशेप अध्ययन करके इस प्रकार कई विभिन्न अध्ययनों के परिणामों को समाकलित करने के पश्चात् प्राणिजात का एक पूर्णरूपेण चित्र प्राप्त किया जा सकता है। इस क्षेत्र में अब भी वहुत सा कार्य किया जाना है क्योंकि महासागरों के कई बड़े भागों में अभी तक केवल पृष्ठस्थ अनुसंधान ही किया गया है।

सागर में पाये जाने वाले प्राणियों का पूर्ण वर्णनात्मक विवेचन करने के लिए तो इस पुस्तक जैसी कई और पुस्तकें लिखी जा सकती हैं, परन्तु यहां हमारे उद्देश्य की प्राप्ति के लिये समुद्र विज्ञान और समुद्री जीव विज्ञान के अध्ययन के विकास में महत्व रखने वाले और विशिष्ट क्षेत्रों का चित्रण करने वाले प्राथमिक जैव प्रभागों और कुछ द्वितीयिक जैव प्रभागों का संक्षेप में विवेचन ही पर्याप्त होगा।

निम्नलिखित संक्षिप्त संग्रह में जहां भी किसी समूह के लिए प्रजातियों की संख्या दी गई वे अंक मुख्यतया प्राट और हीमेन (Pratt, 1935; Hyman, 1940) से लिये गये हैं। चित्र मुख्यतया अध्याय 17 में देखे जा सकते है।

समुद्री प्राणियों के अत्यधिक महत्वपूर्ण व्यवस्थित समूहों का संक्षिप्त वर्णन

अ. अकशेरूकी प्राणी

प्राणी संघ प्रोटोजोआ

प्रोटोजोआ आकार में बहुत ही छोटे या सूक्ष्म एक कोषिय जीवधारी हैं। सागर के तल में बहुत से एम्बोइड या रोमाभी, सरकने वाले या संलग्न प्रोटोजोआ

आश्रय प्राप्त करते हैं, परन्तु यहां हम मुख्यतया प्लैन्कटन में पाये जाने वाली तलतटप्लावी आकृतियों का ही वर्णन करेंगे।

मेस्टीगोफोरा श्रेणी

डाइनोफ्लेजेलेटा क्रम:—यदि व्यापक दृष्टि से देखा जाये तो यह समूह प्राणी और पौधे दोनों ही से मिलकर बना है, अतः यह एक सीमा स्पर्शी समूह है।

समुद्र की अर्थ व्यवस्था के लिए प्रोटोजोआ जीवों में श्रेष्ठ डाइनोफ्लेजेलेटा ही हैं, क्योंकि कई प्रकार के डाइनोफ्लेजेलेटा प्रकाश संश्लेषण कर सकते हैं। इन वनस्पति सदृश्य भोजी सदस्यों के बारे में विस्तृत विवेचन पौधों के संदर्भ में किया गया है और समुद्र विज्ञान सम्बन्धी अध्ययन में इनको फायटोप्लैंकटन में उचित रूप से सम्मिलित किया गया है। यहां पर प्राणि सदृश्य भोजी सदस्यों के केवल एक महत्वपूर्ण सदस्य 'नोक्टील्युका' (चित्र 225 g) का संक्षेप में वर्णन करना ही पर्याप्त होगा, जिनमें किसी जीव में भी रंज्यालव नहीं होते हैं। 'नोक्टील्युका' के नाजुक गोलाकार शरीर का रंग हल्का गुलाबी होता है और इसके स्पष्ट लचीले संस्पर्शक होते हैं। सर्वाधिक आकार केवल 1·5मि० मी० होता है परन्तु सरल कोष विभाजन प्रक्रिया द्वारा प्रजनन से जब इनका उत्पादन बहुत अधिक मात्रा में होता है तो संग्रहित होने के कारण ये तटवर्ती पृष्ठीय जल को गुलाबी रंग प्रदान करते हैं और वायु के प्रचलन के कारण सागर में स्पष्ट तैरते हुए गुलाबी रंग के धब्बे उसी प्रकार दिखलाई देते है जिस प्रकार कि तैरता हुआ 'टमाटर का सूप' दृष्टिगोचर होता है। 'नोक्टीलुका' एक भुक्खड प्रकार का जीव है जो डायटम जैसे आणविक भोजन और अन्य छोटे जीवधारियों पर आश्रित रहता है। समुद्र की संदीप्तिशीलता में भी यह आकृति महत्वपूर्ण योगदान करती है।

सार्कोडाइना श्रेणी

फोरामिनिफेरा क्रम : समुद्रविज्ञान की दृष्टि से इस क्रम में (और कुछ सीमा तक निम्नांकित दूसरे क्रम में भी) रुचि इसके सदस्यों की कंकाल संरचना के कारण है। फोरामिनिफेरा में कवच विविध भांति से बने होते हैं, जिसमें एक या अधिक कक्षों का विन्यास सरल रेखीय या सर्पिलाकार होता है। (चित्र 225 a) कुछ में भोजन पकड़ने के लिए जीव द्रव्य (प्रोटोप्लाज्म) से बने स्यूडोपोडिया के प्रक्षेप के लिए छिद्र बने होते हैं। कवच मुख्यतया कैल्शियम कार्बोनेट के बने होते हैं परन्तु सिलिका और काइटिन का उपयोग भी होता है, और कुछ समुद्रतलजीवी वालूमय आकृतियों में यह बाह्य पदार्थों से मिलकर एक पिण्ड के रूप में होता है। इस क्रम के सर्वाधिक सदस्यों का जीवन प्लैन्कटनमय

होता है, परन्तु सागर तल में पहुंच कर ये कवच ग्लोबीजेराइना सिंधु पंक का एक महत्वपूर्ण अंग बन जाते हैं, इस सिंधुपंक का नाम 'ग्लोवीजेराइना' नामक एक तलतटप्लावी वंश के सदस्यों की प्रचुरता के कारण ग्लोवीजेराइना सिंधुपंक रखा गया है। (9.1) फोरामिनिफेरा के कवच के फोसिल्स प्राचीन भूगर्भीय अवस्था के सूचक होने के कारण भूगर्भी स्तरों के अध्ययन में अधिक काम आते हैं, और इस प्रकार ये तैल-भूगर्भ शास्त्र के लिए बहुत ही लाभदायक हैं। कुछ फोरामिनिफेरा असमुद्री जल में भी पाये जाते हैं परन्तु विशाल संख्या में ये सागर में ही मिलते हैं जहां ये या तो विभिन्न गहराइयों पर उन्मुक्त तैरते रहते हैं या सागर तल में 6000 मीटर गहराइयों तक भी पाये जाते हैं। मुख्यतया ये गर्म सागरों में रहना पसन्द करते हैं। इस क्रम में लगभग 1200 प्रजातियां हैं जिसमें से 26 तलतटप्लावी हैं। फोरामिनिफेरा जीवों की एक अभिनव सूचि ईलिस और मेस्सिना (Ellis and Messina, 1940) में 18,000 के लगभग जीवित और लुप्त प्रजातियां संग्रहित हैं।

रेडियोलारिआ क्रम :—ये प्लैंकटन जीवधारी हैं जिनका कंकाल मुख्यतया सिलिका से मिलकर बनता है, परन्तु 'एकेन्थेरीया' एकेन्थ (स्ट्रोन्शियम सल्फेट) से बना होता है और समस्त जीवों में काइटिन का एक भीतरी सम्पुट होता है। विभिन्न प्रजातियों में ये सिलिकामय कंकाल अत्यन्त ही जटिल और बहुत अधिक भिन्न आकारों में पाये जाते हैं और ये सागर में मिलने वाले पदार्थों में सबसे सुन्दर होते हैं। (चित्र 225 e, f) डूबकर तली तलछट में मिलने के पश्चात ये कंकाल उस सिलिकामय रेडियोलारिन सिंधुपंक, का एक प्रतिरुप अंग बन जाता है जोकि प्रशांत महासागर के गहरे ऊष्ण कटिबंधीय जल के सागरतल में बहुलता से पाया जाता है। इस क्रम में लगभग 4400 प्रजातियां हैं जो सब की सब समुद्र में ही पाई जाती हैं।

सिलिएटा श्रेणी :

टिन्टीनोइनिआ उपक्रम :—टिन्टीनाइड नामक ये प्रोटोजोआ अधिकतर बहुत ही सूक्ष्म आकार के होते हैं, इनका आकार 'टिन्टीनोप्सिस नाना' के लिये 20 माइक्रोन से लेकर 'कीमेटोसाइलिस रोबुस्टा' के लिये 40 माइक्रोन तक के बीच में होता है।

इनके अग्रभाग में चक्राकार बालों जैसा सिलीया (रोम) होता है जिसकी सहायता से ये तैर सकते हैं। इनकी लोरिकाएँ या कवचाकृतियां नलीकाकार से लेकर कलशाकार संरचना तक हो सकती हैं, ये सरंचना प्राणी के रुप के आधार पर रूढ़िकृत तरीके से श्रावित होती है और रेत के कणों, डायटम के कवचों और

कोकोलिथ्स जैसे वाह्य पदार्थों को एकत्र कर एक पिण्ड का निर्माण कर सकती है। (चित्र 225 c, d) समय समय पर टिन्टीनाइड अत्यधिक संख्या में विशेषकर तटवर्ती क्षेत्रों में पाये जाते हैं, जहां ये सूक्ष्म प्लैन्कटन अर्थात् नानो प्लैन्कटन पर आश्रित रहते हैं। पर्यावरक अवस्थाओं में सूक्ष्म परिवर्तन की संवेदनशीलता के कारण मौसमी और अन्य परिवर्तनों के साथ इनकी संख्या में परिवर्तन होते हैं। लगभग 692 मुख्य प्रजातियां इस क्रम में हैं जो सब की सब समुद्री हैं। कॉफॉइड और कैम्पवेल (Kofoid and Campbell 1929) उदाहरण:—'फावेला', 'टिन्टीनोप्सिस', और 'टिन्टीनस'।

पोरीफेरा संघ

स्पंज बहुकोषीय प्राणी हैं, यद्यपि इसका संगठन सरल और अदृढ़ होता है, जिनके शरीरों में सहायता के लिये या तो सिलिया या कैल्सियम कार्बोनेट के स्पाइक्यूल जड़े रहते हैं, या सामान्य व्यावसायिक स्पंज की भांति तंतुमय कंकाल शल्क पदार्थ स्पोन्जिन का बना रहता है। समस्त स्पंज तलतट प्लावी होते हैं और लगभग सब के सब सागर में पाये जाते हैं, केवल इनका एक प्राणी कुल असमुद्री जल में पाया जाता है। ये प्रायः सागर के समस्त भागों और सब गहराइयों में पाये जाते हैं, सिलिकायम आकृति प्रायः गहरे जल में पाई जाती है। स्पंज उप-अधिष्ठान से संलग्न होकर विकसित होते हैं और ये अपना भोजन जल को अपने शरीर भित्ती के रंध्रों में ढकेल कर सूक्ष्म जीवधारी और विद्यमान मलवे के कणों को निस्पंदित करके प्राप्त करते हैं। इस संघ में लगभग 2500 प्रजातियां हैं, प्रायः सभी समुद्री हैं।

सीलेण्टेरेटा संघ

सीलेण्टेरेटा नलिकाकार पूर्वंग आकृतियां हैं जिनमें एक मुख को छोड़कर अविच्छिन्न शरीर भित्ती एक सरल पाचक गुहा को घेरे रहती है, इस मुख के चारों ओर भोजन पकड़ने के लिए संस्पर्शक लगे रहते हैं। यह समूह बहुरूपता का सुन्दर प्रदर्शन करता है, अर्थात् एक प्रजाति भिन्न भिन्न आकृतियों में मिल सकती है, ये भिन्न आकृतियां अचल आकृति से तरण मेड्यूसॉएड जैसी हो सकती हैं।

हाइड्रोजोआ श्रेणी :—इस श्रेणी में सामान्यतः सागर तट पर पाई जाने वाली चट्टानों और समुद्री खर पतवारों पर छोटे-छोटे गुच्छों के रुप में विकसित होने वाले हाइड्रोइडस आते हैं। इन टहनीदार पोलियों के छोटी जेलीफिशें या ओवेलिया जैसी मेड्यूसा मुकुलित रहती हैं। (चित्र 79) इस श्रेणी का एक प्राणी क्रम साइफोनोफोरा खुले सागरों की विशेपता है जो सागर में सुन्दर नीली

'वेलेला' (बाइ-दी-विन्ड सेलर) (चित्र 225b) और 'फाइसेलिया' (पुर्तगाली युद्ध-मानव) प्राणियों द्वारा निरुपित होता है, ये दोनों ही प्राणी अचल नहीं होते हैं। ये मण्डलों का निर्माण करने वाले प्लैन्कटन-मय मेड्यूसा हैं जो समस्त प्राणियों में सर्वाधिक बहुरुपता के विकास का प्रदर्शन करते हैं। हाइड्रोजोआ की लगभग 2700 प्रजातियां हैं।

साइफोजोआ श्रेणी :—इस श्रेणी के अन्तर्गत कुछ बड़े मेड्यूसा आते हैं जिनके घंटीनुमा उपांत में आठ दांतें या अरी होते हैं। विशाल जेलीफिशें भी इसी श्रेणी में सम्मिलित हैं, इनमें से कुछ जेलीफिशों का व्यास तो 2 मी. तक होता है। इस समूह में एक अत्यधिक अवरुद्ध अचल पोलिप अवस्था भी *विद्यमान रहती है। 200 प्रजातियों में समस्त ही समुद्री हैं। उदाहरण:—* 'ओरेलिया', 'साएनिआ'।

एन्थोजोआ श्रेणी :—इस श्रेणी के अन्तर्गत समुद्री एनिमोन, एल्सियोनेरिया और कोरल प्राणी आते हैं। इसमें मेड्यूसोइड अवस्था नहीं होती है और बहुत से पोलिप माण्डलिक होते हैं; कुछ प्राणी, विशेषकर, कोरल चूर्णमय कंकाल संरचनाओं के अवक्षेपण के कारण अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हैं, इन कंकाल संरचनाओं का काफी लम्बे काल तक संग्रहण के पश्चात् प्रवाल भित्ती और समान निर्माण कार्यो में महत्वपूर्ण उपयोग होता है। एन्थोजोआ की सभी 6100 ज्ञात प्रजातियां समुद्री होती हैं।

टीनोफोरा संघ

टीनोफोरा जेली जैसे विन्याश की चपटी पिण्डाकार आकृतियां हैं जिनमें तैरने के लिए सायुज्वित रोमों की आठ अरी पंक्तियां होती हैं। कुछ भोजन पकड़ने के लिए संस्पर्शकों का एक अनुगामी जोड़ा होता है। प्रचुरता से पाई जाने वाली पिण्डाकार आकृति सामान्यतया "कोम्बजेली" या "सी वाल्नट" (चित्र 226 a) कहलाती है। इसकी लगभग 80 प्रजातियां हैं जो सबकी सब समुद्री हैं। अंकात्मक दृष्टि से इसके महत्वपूर्ण वंश 'प्लुरोब्राचिया' और 'बेरोई' हैं।

प्लेटीहेल्मिन्थीस संघ

प्लेटीहेल्मिन्थीस फ्लेटवर्य या चपटे कृमि हैं, इनमें से अधिकांश सागर में पाये जाते हैं, ये या तो उन्मुक्त जीवन व्यतीत करते हैं या परजीवी होते हैं।

टर्बेलारिया श्रेणी :—इस श्रेणी के लगभग सभी सदस्य सागर तल में पत्थरों के नीचे या तरेडों में जीवन यापन करने वाले प्राणी हैं, जहां वे शरीर को ढ़कने वाले, रोमों की सहायता से घूम फिर सकते हैं।

नेमेरटाइना श्रेणी :—ये रिबन जैसे कृमि होते हैं जो कभी कभी एक अलग संघ के रूप में भी विवेचित किये जाते हैं। समुद्रतट प्लावी प्रजातियां या तो चट्टानों, काइयों, सीपियों इत्यादि में या बिलों में रहती हैं, जहां वे एक लम्बे शरकोश शुंड की सहायता से सूक्ष्म जीवधारियों को पकड़ कर भोजन प्राप्त करती हैं। इनमें असाधारण आकारीय परिवर्तन पाये जाते हैं, कुछ आकृतियां जहां केवल 5 मि० मी० लम्बी होती हैं वहां एक अन्य आकृति 'लिनस लोन्गीसिमस' फैलाने पर 25 मीटर लम्बी होती है, इसलिये यह आकृति अकशेरुकी प्राणियों में सबसे लम्बी है, तथापि इस धागे जैसी आकृति की संहति बहुत ही कम होती है। नेमेरटाइनस् की 52 प्रजातियां ज्ञात हैं इनमें से कुछ तो बहुत ही अधिक गहराइयों पर पाई जाती हैं जैसे कि—'पेलेगोनेमेर्टस' (को Coe 1926) इस संघ की प्लैन्कटनीय आकृतियां कुछ तो पूंछ और कुछ क्षैतिज तैरने में सहायक पंखों के रुप में उपान्तरित होती हैं। चित्र (228 c) नेमेरटाइनस् की लगभग 550 प्रजातियां हैं, समस्त ही समुद्री हैं।

नीमेथेल्मिन्थीस संघ

धागे या गोलाकार कृमि मुख्यतया परजीवियों के रूप में ही पाये जाते हैं परन्तु इनमें से कुछ प्लैन्कटन के रूप में भी मिलते हैं, और इनकी बहुत बड़ी मात्रा तल में सड़ने वाले मलबेमें पाई जाती है। इसकी लगभग 1500 प्रजातियां हैं, जिनमें से बहुत सी असमुद्री हैं।

ट्रोक्लीमिन्थीस संघ

रोटेटोरिआ श्रेणी :—(रोटीफेरा) ये सूक्ष्म समुद्रतलजीवी या प्लैन्कट्नीय जीवधारी हैं जिनमें भोजन एकत्र करने और तैरने के लिये रोमों का मण्डल होता है। ऊष्ण मौसम में तटतल जीवी प्लैन्कटन में ये बहुत ही अधिक मात्रा में पाये जा सकते हैं। रोटीफेरा प्राणियों की लगभग 1200 प्रजातियां हैं, जिनमें अधिकतर असमुद्री जल में रहने वाली हैं।

ब्राइओजोआ संघ

ये माण्डलिक प्राणी जो कि "समुद्री मेट्स' या "मांस प्राणी" कहलाते हैं, ज्वारभाटा कटिबन्ध और गहरे जल दोनों में ही ठोस पदार्थों की सतह पर परतों या लचकीले गुच्छों का निर्माण करते हैं। निम्न ज्वार के नीचे बहुत सी प्रजातियां कठोर, सीधी, जालीमय या टहनीदार मण्डलों का निर्माण करती हैं। प्रत्येक सूक्ष्म प्राणी की रक्षा करने के लिये एक चूर्णमय कंकाल होता है और सूक्ष्म भोजन एकत्र करने के लिए एक रोमानी संस्पर्शकों का मण्डल होता है। इसकी लगभग 300 प्रजातियां हैं, जिनमें से लगभग 35 असमुद्री हैं।

ब्राचियो पोडा संघ

ब्राचियोपोडा ऊपरी तौर पर द्विपुट मोल्सकस से मिलते जुलते प्राचीन अचल प्राणी हैं, परन्तु इनमें लगे हुए चूर्णमय या शुल्क कवच मौलस्क की भांति पार्श्विक रुप से लगे होने के बजाय पृष्ठ—प्रतिपृष्ठी लगे होते हैं, और ये प्राणी कवच के भीतर संलग्न नाजुक रोमाभी हाथों की सहायता से भोजन एकत्र करते हैं। इनका विकास सामान्यतया निम्न ज्वार क्षेत्र के नीचे तलतट जीवी प्रदेश में चट्टानों और कवचों से संलग्न रहते हुए स्थाई रुप से होता है। कुछ बिलों में रहते हैं। इसके समस्त सदस्य समुद्री हैं और सबके सब पूर्वजीवक और मध्य जीवक चट्टानों में फोसिल्स के रुप में बहुलता से पाये जाते हैं। लगभग 120 जीवित और 3500 फोसिल प्रजातियां ज्ञात हैं।

फोरोनीडिया संघ

फोरोनीडिया कृमि जैसे प्राणी होते हैं जो रेत या बालू के भीतर झिल्लीदार नलियों में रहते हैं और रोमाभी संस्पर्शकों के द्वारा भोजन एकत्र करते हैं। इनकी लगभग 12 समुद्री प्रजातियां हैं।

कीटोगनाथा संघ

कीटोगनाथा संघ के अन्तर्गत आने वाले कृमि जैसे अनेक परन्तु छोटे (अधिकाधिक 75 मि. मी. लम्बे) प्राणियों को जो पूर्णतः प्लैन्टोनीय होते हैं "एरो वोर्म" या "ग्लास वोर्म" कहते हैं। ये बहुत अधिक पार- दर्शक होते हैं और इनमें दृष्ट बिन्दु, एक पूँछ पंख और दो पार्श्विक पंख के साथ साथ काईटिन के बने जबड़े और भक्ष्य को पकड़ने के लिए दांत भी होते हैं। ये सागर पृष्ठ से लेकर बहुत अधिक गहराइयों तक पाये जाते हैं और सागरों में समस्त अक्षांशों में दूर दूर तक वितरित हैं। समस्त 30 ज्ञात प्रजातियां समुद्री हैं। 'सेगिटा' (चित्र 228 a) सर्वाधिक बहुलता से पाया जाने वाला वंश है।

एनेलिडा संघ

एनेलिडा समान खंडों की श्रेणी से मिल कर बने लम्बे शरीर वाले वास्तविक कृमि हैं।

पोलीकीटा क्रमः—ये समुद्री कृमि कई प्रकार के वृन्तों और विविध सुपरि-भाषित विशिष्ट शीर्ष संरचनाओं जैसे की आँखें, रोम गुच्छ इत्यादि अंगों, जो कि भोजन पकड़ने और जीवन यापन की आदतों के कारण बदलते रहते हैं के सहित सागर में बहुलता से पाये जाते हैं। इनका क्षैतिज और उदग्र विस्तार बहुत ही विशाल है। अधिकतया, ये समुद्रतल जीवी हैं जो सागर तल में बिल बना सकते या सरक सकते हैं, जैसे कि 'नेरेसिस', 'ग्लाईसेरा' और 'आरेनिकोला' में, या चूर्णमय या तन्तुमय

नलियों में अचल रहते हैं जैसे कि 'स्पीरोबिस' और 'सेब्रेला' में। टोमोप्टेरिस तलतटप्लावी है। (चित्र 228 b) इनकी लगभग 3500 प्रजातियां हैं जो लगभग सभी समुद्री हैं।

ओलिगो कीटा क्रम :—इसके अन्तर्गत केंचुए आते हैं जिनमें से केवल कुछ ही समुद्री हैं जो सागर तट के निकट रहते हैं।

इकाइयो रोडिया श्रेणी :—ये मांसल समुद्री कृमि हैं जिनमें वृन्तों के एक या दो जोड़े जाते हैं। ये अखंडीय होते हैं या पूर्णतः विकसित प्राणी में अस्पष्ट खंड होते हैं। ये तटवर्त्ती क्षेत्र में कीचड या बालू में बिल बना कर रहते हैं। इनकी लगभग 20 प्रजातियां हैं।

आर्थ्रोपोडा संघ

आर्थ्रोपोडा के अन्तर्गत आने वाले प्राणियों में एक खंडों वाले बहिः कंकाल से ऐसे उपांग जुड़े रहते हैं जोकि संचलन, भोजन और अन्य प्रक्रियाओं के लिये विभिन्न प्रकार से रुपान्तरित होते हैं।

क्रस्ट्रेसिया श्रेणी एंटो मास्ट्रेका :—यह प्राणी समूह पहले एक उपश्रेणी के रुप में जाना जाता था जिसमें सुविधा के लिए उच्च क्रस्ट्रेसिया या मेला कोस्ट्रेका प्राणियों को छोड़कर के छोटे पूर्वंग क्रस्टेसिया क्रमों और उप श्रेणियों में आने वाले प्राणियों को सम्मिलित कर लिया गया है।

क्लेडोसेरा उपक्रमः—समुद्री जल में इस क्रम की केवल कुछ प्रजातियां ही पाई जाती हैं। उदाहरण—'पोडोन', 'इवादने' कभी कभी ये तटतलजीवी प्लैन्कटन में महत्वपूर्ण होते हैं। ये प्राणी असमुद्री जल में बहुलता से पाये जाते हैं।

ओस्ट्राकोडा क्रमः—इस क्रम के अन्तर्गत प्रायः 2000 प्रजातियां आती हैं जो प्रायः सभी समुद्र में ही पाई जाती हैं, ये सागर तल और प्लैंन्कटन में जीवन यापन करती हैं। (चित्र 227, b)

सीरिपेडिया क्रम :—ये कड़िढयां (बार्नेक्लेस) हैं जिनके वयस्क सदस्यो का कवच चूर्णमय होता है, और ये समुद्रतलजीवी विशेषकर तटवर्ती प्राणी क्षेत्रों में स्थावर जीवन यापन करते हैं। ये कुछ अपवाहक पदार्थों या व्हेलों या अन्य प्राणियों के शरीर पर विकसित होते हैं, या ये स्वयम् ही जल में तैरने वाले लटकन का निर्माण कर लेते हैं। इनकी लगभग 500 प्रजातियां हैं जो लगभग सब की सब समुद्री हैं।

कोपिपोडा क्रम :—आकार की दृष्टि से छोटे होने के बावजूद भी (इनकी लम्बाई लगभग 0·3 से 8 मि. मी. तक होती है) समस्त समुद्री पदार्थों से इनकी मात्रा कहीं अधिक होती है, क्योंकि समस्त क्रटेशिया संघ के प्राणियों में ये ही सर्वाधिक प्रचुरता से पाये जाते हैं और ये सामान्यतया जूप्लैन्कटन के 70 प्रतिशत भाग का निर्माण करते हैं। कोपिपोड की लगभग 6000 प्रजातियां हैं जो प्रायः सभी समुद्र में पाई जाती हैं, जिनमें से 750 के करीब प्रजातियां प्लैन्कटानीय हैं और बहुत ही बड़ी मात्रा में पाई जाती हैं। कई दूसरी प्रजातियां समुद्रतलजीवी या परजीवी हैं। उन्मुक्त रहने वाली आकृतियों के तीन मुख्य क्रम हैं, केलेनोइडा (चित्र 227 c), साइक्लोपोइडा (चित्र 229 d) हार्पेक्टिकोइडा (चित्र 229 a) इनमें से प्रथम दो तो तलप्लावी और अन्तिम समुद्रतल जीवी हैं। अन्य एन्ट्रोमोस्ट्रेका और कुछ मेलेकोस्ट्रेका प्राणियों की भांति ये अपना भोजन कुछ उपांगों पर लगे सूक्ष्म सूकों की सहायता से एकत्र करते हैं। (9·2)

मेलेकोस्ट्रेका उपश्रेणीः—ये मुख्यतया समुद्रतल जीवी विशाल क्रस्टेसिया प्राणी हैं, कई प्राणियों में दृढ़ पंजें और मुँह में काटने वाले उपांग होते हैं।

मीसीडेसिया क्रमः—इसकी लगभग 300 समुद्री प्रजातियां हैं जो समुद्र तल पर या तल के निकट ही रहती हैं।

क्युमेसिया क्रमः—इसकी लगभग 400 प्रजातियां ज्ञात हैं, समस्त समद्री और समुद्रतल जीवी हैं।

यूफॉसिएसिया क्रमः—इन्हें सामान्यतया "क्रिल" कहते हैं और कुछ क्षेत्रों में तो ये प्लैन्कटन में और तल के निकट या तल पर बहुत ही प्रचुरता से पाई जाती हैं। कुछ लगभग 50 मि. मी. लम्बाई प्राप्त करके जूप्लैन्कटन के प्रमुख भाग का भी कभी कभी निर्माण कर सकते हैं। 85 प्रजातियां ज्ञात हैं, समस्त समुद्री हैं। उदाहरण 'यूफॉसिया', 'मेग्निक्टाफानस' (चित्र 227a)

एम्फीपोडा क्रमः—इसकी लगभग 300 प्रजातियां विभिन्न समुद्री प्राणी श्रेणी में पाई जाती हैं।

आइसोपोडा क्रमः—लगभग 3000 प्रजातियां ज्ञात हैं, ये मुख्यतः समुद्री हैं, समुद्र तल और वनस्पतियों या लकड़ी के अन्दर रहती हैं। उदाहरणः—'लिम्नेरिया', 'मुनोप्सिस' (चित्र 77 और 221)

स्टोमेटोपोडा क्रम :—इस क्रम में लगभग 200 प्रजातियां होती हैं, समस्त समुद्री और समुद्रतलजीवी हैं जो निम्न अक्षांशों के छिछले जल में सामान्यतया पाई जाती हैं।

डेकापोडा क्रम :—इसके अन्तर्गत केंकड़ें (क्रेब, लोबस्टर और स्राइम) आते हैं। तलजीवी और तल प्लावी दोनों ही क्षेत्रों में ये समान रूप से वितरित रहते हैं। लगभग 8000 प्रजातियों में अधिकांश समुद्री हैं।

आर्चनोइडा श्रेणी :—कई मकड़े जैसे प्राणी इस श्रेणी का सागर में भली-भांति निरूपण करते हैं, इन प्राणियों की लगभग 400 प्रजातियां समुद्री मकड़ों या पिक्नोगोनाइडस् और पांच प्रजातियां 'लिमुलस' या शाही केंकड़ों (किंग क्रेब) से निर्मित होती हैं। ये समस्त प्रजातियां तलजीवी हैं।

इन्सेकटा श्रेणी :—इस श्रेणी के अन्तर्गत तट से दूर रहने वाले कीट पतंगें आते हैं जो भोजन की तलाश में सागर पृष्ठ पर आ जाते हैं, केवल एक कीट अपने संपूर्ण जीवन काल में उपसमुद्री रहता है। उदाहरणार्थ—हेलोवेट

मोलस्का संघ

मोलस्का संघ के प्राणियों की विशेषता, इनके शरीर की रक्षा करने वाले चूर्णमय कवचों की अनन्त वैविध्यमय रचना और इनके पैरों और मैण्टल जैसे नाजुक अंगों में होने वाली रचनात्मक रूपान्तरण होती हैं। ये रूपान्तरण संचलन और भोजन पकड़ने की विधियों से सम्वद्ध हैं।

एम्फीनेडरा श्रेणी :—ये एक चपटे पैर की सहायता से सरकने वाले समुद्र तल जीवों काइटन प्राणी हैं। इन प्राणियो की लगभग 630 प्रजातियां हैं, और सभी समुद्री हैं।

स्केफोपोडा श्रेणी :—गजदन्त कवची ये प्राणी छिछले जल से लेकर 5000 मीटर गहराई तक तली कीचड़ में रहते हैं। समस्त 200 ज्ञात ऐसी प्रजातियां समुद्री हैं।

गेस्ट्रोपोडा श्रेणी :—इस प्रकार के अधिकतर प्राणियों का कवच सर्पिलाकार होता है और ये सरकने के लिए पैरों का उपयोग करते हैं। इस श्रेणी और पूर्ण वर्णित अन्य श्रेणियों की विशेपतया भोजन एकत्र करने वाली एक रेती जैसी 'रेड्यूला' होती है। कुछ गेस्ट्रोपोड प्राणी पूर्णतया प्लेन्कटोनिक होते हैं और पूर्णतया अकवचित भी हो सकते हैं। ये समुद्री टेरोपोड तथा देटरोपोड होते हैं (लगभग प्रत्येक की 90 प्रजानियाँ जिनके पैर तैरने के लिए उपान्तरित्त होते है। चित्र 228, d, f)। इसमें दूसरी प्रकार की प्रजातियाँ निम्न अक्षांशों के समुद्री जल में होने का महत्त्व रखती हैं। इस श्रेणी में लगभग 49000 प्रजातियां है जो विशेपकर समुद्री होती हैं।

पेलेसाइपोडा श्रेणी:—बड़ी सीपियों (क्लेमस), सम्बुकों (मुसेल्स) और शुक्तियों में एक कुल्हाड़े की आकृति जैसा पैर होता है जिसकी सहायता से ये प्राणी मिट्टी खोद सकते हैं। ये समुद्रतल जीवी प्राणी या तो अचल होते हैं या कीचड़, चट्टानों या लकड़ी में बने बिलों में रहते हैं। इनके कोमल अंग कोर कवचों से परिवेष्टित रहते हैं और इन प्राणियों के मुख तक भोजन रोमक पेशियों की प्रक्रिया द्वारा या कभी कभी लम्बे साइफनों की सहायता से जल में धारायें उत्पन्न करके पहुंचाया जाता है। इसकी लगभग 11,000 प्रजातियां हैं जिनमें से लगभग 4/5 भाग समुद्री प्रजातियां हैं।

सीफेलोपोडा श्रेणी:—स्कुइडों और 'डेविलफिशों' इत्यादि के पैरों में विभाजन द्वारा भक्ष्य को पकड़ने के लिये हाथों की रचना होती है। इन प्राणियों की सक्रिय परभक्षी स्वभाव के अनुसार इनमें प्रायः बहुत ही विकसित आंखें होती हैं, परन्तु गहन सागर में अन्ध आकृतियां भी पाई जाती हैं। 'नोटिलस' और अन्य सम्बद्ध आकृतियों में बहुत ही विकसित कवच होता है। सीफेलोपोडा समुद्रतल जीवी या तल प्लावी प्राणी हैं, जिनमें से कुछ बहुत ही गहरे जल में भी रहते हैं। 'आर्ची-टेइथाइस प्रिन्सेप्स' नामक विशाल स्कुइड जिसकी लम्बाई लगभग 16 मीटर और घेरा लगभग एक मी० लम्बा होता है, अकशेरुकी प्राणियों की विशालतम आकृतियों में से एक है। इसकी लगभग 400 प्रजातियां हैं तथा प्रायः समस्त समुद्री हैं।

इकाइनोडर्मेटा संघ

इकाइनोडर्मेटा संघ के प्राणियों में एक न्यूनाधिक कठोर कंकाल रचना चूर्णमय परतों से बनी होती है या प्रकीर्ण परतों के साथ शरीर भित्ती में कंटिकाएं सन्निहित रहती हैं। कई प्राणियों में रीढ या मेरु दंड होता है। समस्त प्राणी समुद्र में रहने वाले होते हैं और कुछ को छोड़ कर समस्त समुद्री कुकुम्बर समुद्रतलप्लावी हैं।

होलोथुरोइडा श्रेणी :—समुद्री कुकुम्बर मुख्यतया समुद्रतल जीवी होते हैं, केवल प्राणी क्रम पेले· जिओथुरिडा के सदस्य प्लेन्कटोनिक होते हैं। इनकी लगभग 650 प्रजातियां होती हैं, जिनमें कुछ अतलीय क्षेत्रों में रहते हैं।

ऐस्टेरोइडा श्रेणी :—'सी स्टार' सागर के तटवर्ती क्षेत्रों में स्पष्टतया पाये जाने वाले प्राणियों में से एक हैं परन्तु ये बहुत अधिक गहराइयों पर भी पाये जाते हैं। इनकी लगभग 1100 प्रजातियां ज्ञात हैं।

ओफुरोइडा श्रेणी :—इस श्रेणी के अन्तर्गत भंगुर तारों जैसे प्राणियों की लगभग 1600 से भी अधिक प्रजातियां आती हैं जिनका उदग्र और क्षैतिज विस्तार बहुत ही विशाल होता है।

इकाइनोइडा श्रेणी :—सागर में समुद्री आर्चिन और सेण्ड डोलरस की लगभग 600 प्रजातियां हैं, जिनमें से कुछ गहरे जल में रहती हैं।

क्राइनोइडा श्रेणी :—समुद्री लिलिज और समुद्री फेदर्स की लगभग 800 प्रजातियां ज्ञात हैं, जिनके वितरण का केन्द्र पूर्वी भारतीय जल है परन्तु ये अन्य सागरों में भी पाई जाती हैं। समुद्री लिलिज गहरे सागरों में रहती हैं और वृन्तों की सहायता से धरती में गडी रहती हैं, समुद्री फेदर्स अवृन्ती होते हैं और मुख्यतया छिछले जल में पाये जाते हैं। यह श्रेणी एक प्रायः लुप्त प्राणी समूह के अवशेष मात्रा द्रिग्दर्शित करती है, जिसकी लगभग 2000 फोसिल प्रजातियें ज्ञात हैं।

कोरडेटा संघ

कोरडेटा संघ के अन्तर्गत ऐसे प्राणी आते हैं जिनके जीवन चक्र की कुछ अवस्थाओं में पंखिका झिरियां और पृष्ठ रज्जु कहलाने वाली कंकाल अक्ष होती हैं।

ट्यूनिकेटा उप-संघ—ये कोरडेटा संघ के पूर्वग प्राणी हैं, जिनकी लगभग 700 प्रजातियां ज्ञात हैं जो समस्त ही समुद्री हैं।

लार्वेसिया श्रेणी :—(एपेण्डीक्युलारिया) कभी कभी प्रचुरता से पाई जाने वाली सूक्ष्म प्लेन्कटोनिक आकृतियां इस श्रेणी में आती हैं। उदाहरण :—'ओइकोप्लूरा' (चित्र 228e) और 'फ्रिटिलारिया'।

एसीडिएसिया श्रेणी :—'सिओना' और 'क्यूलियोलस' जैसे अचल एसीडियन प्राणी इस श्रेणी में आते हैं।

थेलिएसिय श्रेणी :—यह श्रेणी एकाकी और जंजीर के रूप में तैरने वाले तलप्लावी ट्यूनिकेट प्राणियों से मिल कर बनी है, ऊष्ण जल में ये प्राणी सागर पृष्ठ पर प्रचुरता से पाये जाते हैं। उदाहरण :—'सेल्पा' और 'डोलियोलम'।

कृमि जैसे एंटेरोप्नैस्ता और मत्स्य जैसे सीफैलोकोर्डेटा कुछ अन्य प्रोटोकोर्डेठ प्राणी हैं, ये दोनों ही आकृतियां रेत या कीचड़ में बिल बनाकर रहती हैं।

ब. कशेरुकी प्राणी

वर्टिब्रेटा उप-संघ (कशेरुक): —इस समूह में कशेरुकी या रीढ़धारी प्राणी आते हैं केवल एवीस् (पक्षी संघ) और मेमिलिया (पशु संघ) के अलावा समस्त प्राणी शीत रक्त प्राणी हैं।

साइक्लोस्टोमेटा श्रेणी :—हेगफिसेज और लेम्प्रे मत्स्य प्रकार के आकर हैं। परन्तु उनके पर का जोड़ा नहीं होता है। इनके बिनाजबड़ों का वृत्ताकार चूषण मुख होता है। पहले वाले सब समुद्री हैं जब कि दूसरे समुद्री और असमुद्री जल दोनों में रहते हैं।

इलासमो ब्रान्ची श्रेणी :—इन पूर्वंग मछलियों—शार्क, रे तथा काईमेरा कार्टीलेजी अंत:कंकाल सहित—के पर जोड़ी तथा नीचे वाला जवड़ा होता है। इस समूह में कई विशाल आकृतियें हैं जैसे कि वृहत् मेन्टा और व्हेल शार्क जो कि मत्स्यों में सबसे बड़ी 16 मीटर के लगभग लम्बी हो जाती है। लगभग ये सब समुद्री हैं।

पिसीज श्रेणी :—इस श्रेणी में असली मत्स्य अस्थि अंत:कंकाल, पर जोड़ी और गिल को आवृत करते हुए क्लोमछद वाले होते हैं। ये वृहत् वेग से तैरने के लिये लाक्षणिक रूप से सुप्रवाही होते हैं परन्तु इनमें कई प्रकार के विभिन्न बनावट में उपान्तरण पाये जाते हैं। उपरोक्त श्रेणी की तरह ये भी अधिकतर मांसभक्षी और अत्यधिक रेपेसियस होते हैं। अधिकांश मत्स्य समुद्री हैं और कुछ समुद्र तल जीवी हैं, परन्तु बहुसंख्यक तलप्लावी हैं जो कि छिछले और अगाध दोनों गहराइयों में रहते हैं।

रेप्टीलिया श्रेणी :—समुद्र में यह श्रेणी सर्पों और कछुओं द्वारा निरुपित होती है। ये हवा में श्वास लेते हैं अत: ये पृष्ठीय जल के निवासी हैं। कछुए प्राय: किनारों पर बालु तट पर अण्डे देने आते हैं। सर्पों के चूंकि बच्चे ही पैदा होते हैं अत: वे किनारों पर कम आश्रित रहते हैं। समुद्री सर्प हिन्द-पश्चिम प्रशान्त महा सागर और अमेरिका के ऊष्ण कटिबन्ध के जल में होते हैं। ये 1 से 2 मीटर की लम्बाई तक बड़े होते है और इनमें से कुछ काफी विषैले होते हैं। समुद्री कछुए ऊष्ण और उपऊष्ण कटिबन्धीय समुद्रों में पाये जाते हैं। इनके तैरने के लिये पैडल नुमा अंग होते हैं और कुछ काफी बड़े आकार के होते है। उदाहरणार्थ चर्मी कच्छप जो कि इस श्रेणी का सबसे बड़ा होता है 1000 पौंड तक का भार प्राप्त कर लेता है।

एवीज श्रेणी :—चिड़ियाओं की एक विशाल राशि भोजन के लिये समुद्र पर निर्भर करती हैं। इनमें से कुछ केवल धोंसला बनाने के लिये तथा बच्चे पालने के लिये ही भूमि पर आती है। एलबेट्रोसेज, पेट्रोल्स, कोरमोरेन्टस् तथा आोक इसके उपलक्षित उदाहरण हैं।

मेमेलिया श्रेणी :—ये ऊष्ण रक्तीय, श्वास लेने वाले प्राणी हैं जिनमें बाल और स्तन ग्रन्थियां होती हैं।

कार्नीवोरा क्रम :—इस क्रम के समुद्री सदस्य ऊदबिलाव और कुछ हद तक ध्रुव प्रदेशीय भालू हैं। समुद्री ऊदबिलाव केवल उत्तरी अमेरीका के पश्चिमी किनारों पर बहुत ही कम संख्या में पाये जाते हैं। जहां लुप्त होने से कुछ पहले तक इनका व्यावसायिक दृष्टि से शिकार किया जाता रहा था। परन्तु आजकल कठोर सुरक्षा नियमों के अन्तर्गत इनकी संख्या में संतोषजनक वृद्धि हो रही है। ध्रुवीय भालू केवल उत्तर ध्रुवीय प्रदेश में ही सीमित हैं जहां वे साधारणतया तैरते हिमखंडों पर या उसके निकट पाये जाते हैं।

पिन्नीपोडिया क्रम :—पिन्नीपोडिया क्रम के अन्तर्गत सील मछलियां और वॉलरस आते हैं जो सबके सब समुद्री होते हैं। सागरीय परिस्थितियों से अनुकूलन के फलस्वरूप इनके अंग पंखों जैसे होते हैं। इस क्रम में तीन प्राणी कुल है :—(1) ओटरीडाई के अन्तर्गत कानोंवाली सील मछलियां, समुद्री शेर (सीलायन) और फर सील आती हैं। इन प्राणियों में छोटे बाह्य कान होते हैं और पश्चपाद आगे की ओर घूम सकते हैं। (2) फोसीडाई:—ये पतली सीलें हैं जिनमें बाह्य कान नही होते हैं और न ही पश्चपाद आगे की ओर घूम सकता है। (3) ओडोबेनिडाई :—ऊपरी जबड़े में बहुत लम्बे भेदक दांतों वाले वौलरश इस प्राणी कुल के अन्तर्गत आते हैं। ये उत्तर ध्रुव महासागर में ही सीमित हैं।

साइनारिया क्रम :—साइनारिया के अन्तर्गत भारी शरीर वाले स्तनपाई प्राणी आते हैं जिनमें एक चपटी पूँछ होती है और अग्र अंग पैडलों की भांति होते हैं और पश्चपाद नहीं होते हैं। ये ऊष्ण जल में सागरीय तट के निकट रहते हैं जहां ये वनस्पतियों की पत्तियों पर आश्रित रहते हैं। संख्या की दृष्टि से इनकी मात्रा अधिक नहीं है। उदाहरण:—समुद्री गाय, मानाटीस, डुगोन्गस।

केटासिया क्रम :—इस प्राणी क्रम के अन्तर्गत समुद्री जीवन के लिए पूर्णतया रूपान्तरित सुप्रवाही शरीर और पंखों जैसे अग्रपाद व पूँछ वाली ह्वेल और डोलफिन आती हैं। इनमें पश्चपादों की कमी है।

मिस्टीसेटी उपक्रम :—ये वेलीन या ह्वेलबोन ह्वेल मछलियां हैं, जिनके मुख में वेलीन की लम्बी परतों की श्रेणियां लटकती रहती हैं। (चित्र 76 a) इनके घिसे हुए किनारे प्लैंटोनिक भोजन को छानने के काम आते हैं। उदाहरण:—पांखी ह्वेल (फिन ह्वेल), कूबड़ी ह्वेल (हम्प बेक्ड ह्वेल) और नीली ह्वेल। नीली ह्वेल सबसे विशाल प्राणियों में से हैं जिसकी लम्बाई लगभग 34 मीटर और भार 294,000 पौण्ड तक होता है।

ओडन्टोसेटी उपक्रम :—इस उपक्रम में दाँतदार ह्वेल मछलियां आती हैं। (1) स्पर्म ह्वेल जिनके निचले जबड़े में ही दाँत होते हैं (चित्र 76b) और (2) दोनों जबड़ों में दाँत वाली अनेक डोल्फियन और पोर्पोइज इत्यादि, इस प्राणी उपक्रम के सदस्य हैं।

चित्र 76:— (a), नीली ह्वेल—एक ह्वेल अस्थिमय ह्वेल (b), स्पर्म ह्वेल—एक दांतेदार ह्वेल।

समुद्री प्राणियों का प्रजनन और जीवन चक्र

जैव प्रक्रियाओं से सम्बन्धित व्यापक समुद्रशास्त्रीय अध्ययन या किसी विशेष जीव संख्या, या किसी एकाकी प्रजाति विशेष के पर्यावरण घटकों से सम्बद्ध अध्ययन में अन्तर्ग्रस्त जीवधारियों के जीवन चक्र का अध्ययन परमावश्यक है। केवल इस प्रकार ही इन समस्त जैव प्रक्रियाओं, जिनके द्वारा अनन्त पीढ़ी परिवर्तनों में भी जातियां सुरक्षित रहती हैं, को पूर्णतया समझा जा सकता है। सागर की अर्थ व्यवस्था, कीट विज्ञान, परजीवी विज्ञान और मात्स्यकी जैसे कुछ व्यावहारिक क्षेत्रों में जीवन चक्र के अध्ययन के उपयोग का बहुलता से प्रदर्शन हुआ है। किसी दी हुई जीवसंख्या में होने वाले घटाव-बढ़ाव की व्याख्या करने, प्राणियों के ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज स्थानान्तर को समझने और प्राणी वितरण की विधियों और उनके मार्गो का पता लगाने के लिए अनुसंधानकर्त्ताओं के पास प्रजनन की विधियों का ज्ञान और प्राणियों की विभिन्न विकासमान अवस्थाओं की पहचान एक मूल्यवान साधन है, क्योंकि उपरोक्त तीनों प्रपंच जीवधारियों के जीवन चक्र की विभिन्न अवस्थाओं से गहरा सम्बन्ध रखते हैं।

यहां यह संकेत करना आवश्यक है कि किसी एकाकी जाति के प्रसार का उसके वितरण के सन्दर्भ में अध्ययन करते समय हमें (1) जनन वितरण और (2) वन्ध्य वितरण, पर अलग अलग विचार करना चाहिये। जनन वितरण

ऐसे क्षेत्रों से सम्बद्ध है जिनमें परिपक्वता, अण्डजनन और डिम्भी विकास के अनुकूल पर्यावरक परिस्थितियां उपस्थित हों। ऐसे क्षेत्रों को जनन क्षेत्र या 'संवर्धन क्षेत्र' कहते हैं। बन्ध्य वितरण उन क्षेत्रों से सम्बद्ध हैं जिनमें उप-परिपक्व या पूर्णतया विकसित एकाकी प्राणी रह सके और कुछ अण्डजनन सम्भव हो परन्तु इन अण्डों का इन क्षेत्रों में सेवन सम्भव नहीं हो पाये या डिम्भों का विनाश हो जाता हो, इसलिए ऐसे क्षेत्रों में अन्य क्षेत्रों से उत्पादित पश्च-डिम्भों का बराबर पुनः संग्रहण होना चाहिये।

समुद्री प्राणियों के जीवन चक्र का अध्ययन करते हुए निम्न तीन रुचिकर तथ्यों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा जा सकता है : (1) ऐसे प्राणियों का बाहुल्य जो वयस्कावस्था में अचल, सरकने वाले या बिलों में रहने के बावजूद भी प्रारम्भिक जीवन में कुछ काल तक स्वतन्त्र रूप से तैर सकते हैं। (2) समुद्रतल जीवी और तलप्लावी दोनों प्रकार के ही प्राणियों द्वारा उत्पादित युवा प्राणियों की विशाल संख्या और (3) विभिन्न अकशेरुकी प्राणी समूहों के डिम्भो की मौलिक समानता। हम कवल प्रथम दो का ही वर्णन करेगें।

सागर में जीवसंख्या के अल्प सर्वेक्षण में मुख्यतया पूर्णतया विकसित प्राणी ही प्रत्यक्ष दिखलाई देते हैं, तो भी स्टारफिश, बार्नेक्लेज, क्लेम, केंकड़ों और विभिन्न प्रकार की मछलियों आदि के सूक्ष्म तरण डिम्भ पूर्णतया विकसित प्राणियों की अपेक्षा संख्या की दृष्टि से अत्यधिक मात्रा में उपस्थित रहते हैं। ये डिम्भ पूर्णतया विकसित होने से पहले ही या तो बहुत बड़ी संख्या में तरण या अचल जीवधारियों का भोजन बनकर उनका पोषण करते हैं, या फिर ये पर्यावरण की भौतिक या और रसायनिक प्रक्रियाओं द्वारा नष्ट हो जाते हैं।

प्रजनन के प्रकार :—प्रजनन के दृष्टिकोण से प्राणी या तो 'अण्डज' (ओविपेरस) या 'जरायुज' (विविपेरस) होते हैं। अण्डज आकृतियां अण्डे देती हैं और इन अण्डों का विकास मातृ शरीर के बाहर होता है, दूसरी ओर जरायुज आकृतियों में प्राणियों का जन्म पश्चभ्रूणीय जीवित अवस्था में होता है और युवा आकृतियों का पोषण माता करती है। कुछ अण्डज आकृतियों में एक बीच की अवस्था भी पाई जाती है जिसमें अण्डों का सेवन प्राणियों के शरीर के भीतर ही होता है, उदाहरण के तौर पर शार्क, पर्च और ब्लैनीज। डिम्भावस्था की उपस्थिति को सूचित करने के लिए कभी कभी 'डिम्भज' (लार्वीपेरस) शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। भ्रूण का पोषण अण्डे में योक (जर्दी) द्वारा होता हैं, परन्तु यदि डिम्भों में आकारिकीय अनुकूलन के फलस्वरूप अपना भोजन स्वयम् प्राप्त करने के लिए मुख और पाचन संस्थान हो तो भ्रूण का पोषण प्रत्यक्ष रूप से माता द्वारा भी हो

सकता है। यह तो आगे स्वयम् ही स्पष्ट हो जायेगा कि वहुत से समुद्री प्राणियों के जीवन में यह तथ्य कितना महत्वपूर्ण है।

समुद्री प्राणियों का एक वहुत बड़ा भाग अण्डज होता है, और इसी प्रकार के अण्डज प्राणियों में असाधारण विशाल संख्या में अण्डें उत्पन्न होते हैं। तथापि उत्पन्न अण्डें की संख्या किसी भी प्रजाति की मादा द्वारा संसेचन के पश्चात उत्पादित अण्डों की देखभाल और प्रदान पैतृक सुरक्षा से सम्बद्ध की जा सकती हैं। मादा जितनी अधिक देखभाल करती है अण्डों की संख्या उतनी ही कम होती है। अधिकांशतः अण्डजनन में अण्डें जल में निर्मुक्त कर दिये जाते हैं, जहाँ वे जल में निःस्रावित शुक्राणुओं द्वारा भाग्यवश संसेचित हो सकते हैं। उपरोक्त उदाहरणों में प्रजनन ऋतुओं में असंख्य अण्डों का उत्पादन होता है। किसी एकाकी प्राणी द्वारा प्रजनित अण्डों के संख्या सम्बन्धी निम्न उदाहरण, इन प्राणियों की असाधारण सुप्रजनता का चित्रण करते हैं।

अमरीकन शुक्तिः—	115,000,000	प्रशोत हेलीबट	3,5000,000
समुद्री हेअर (टेथीस)	478,000,000	कोड	4,400,000
'टेरेडो नेवेलिस'	>2,000,000	सनफिश (मोला)	300,000,000

चित्र 77:—अण्डों और डिम्भों की पैतृक परिचर्या।

उपरोक्त तथ्य के बावजूद भी यह बहुत पहले से ही ज्ञात है कि कुछ प्रजातियों द्वारा उत्पादित अण्डों की विशाल संख्या वास्तव में सागर में उपस्थित वयस्क प्राणियों से प्रत्यक्षतः सहसम्बन्धित नहीं है। इन प्रजातियों द्वारा डिम्भो या अण्डों का यह असंख्य उत्पादन बहुत बड़ी संख्या में होने वाले विनाश से इन जातियों की सुरक्षा का केवल एक उपाय मात्र है।

सम्पूर्ण समुद्री जीवसंख्या डिम्भावस्था में सन्तति को बहुत ही कम पैतृक संरक्षण प्रदान करती है, और वहुधा अण्डों की देख भाल भी नहीं की जाती है, इसके बावजूद भी सैकडों ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें भ्रूणावस्था और कभी कभी डिम्भावस्था में विभिन्न सीमा तक सन्तति को सुरक्षा प्रदान की जाती है। कई बड़े क्रस्टेसीया प्राणियों में विकासशील अण्डे स्रोत में से बालों जैसी संरचना द्वारा उदरीय अनुबन्ध से संलग्न रहते हैं। कुछ ऐनिलिडा प्राणी अण्डों को छत्रवृन्त या शरीर भित्ती से संलग्न करने के लिये एक चिपचिपे स्राव का उत्पादन करते हैं, जब कि कुछ अन्य प्राणी सन्तति को वयस्क डिम्भावस्था प्राप्त करने से पहले उसे भ्रूण कोष्ठ में रखते हैं, उदाहरण के लिये देखें 'स्पीरोबिस' (चित्र 77)। कई अन्य अकशेरूकी प्राणियों में भी भ्रूण कोष्ठ होते हैं उदाहरण के तौर पर आइसी-

पोड वुड ग्रिवल, 'लिमनोरिया' में काइटिम की पट्टियां अण्डों और युवा प्राणियों को ढके रखती हैं। वहुत से कोपिपोड प्राणी विकासमान अण्डों को झिल्ली मय कोष में (चित्र 77) रखते हैं। यहाँ कशेरुकी प्राणियों में नर पाइप मछली का नाम भी लिया जा सकता है जो विकासशील युवा सन्तति को अपने शरीर के पश्च भाग में वने विशिष्ठ खांचों में सुरक्षा प्रदान करती है। अन्य प्राणी अपने अण्डों को सुरक्षा प्रदान करने के लिये उनके ऊपर घूमते रहते हैं, जैसे कि स्लीपर शैल 'क्रेपिडुला', या ६ भुजा वाली स्टारफिश, 'लेप्टास्टेरिआस हेक्जेक्टिस', जो डिम्भावस्था प्राप्ति के पश्चात भी सन्तति को सुरक्षा प्रदान करती है। पैतृक परिचर्या के अन्य उदाहरणों का वर्णन विल्सन (Wilson, 1935) ने किया है।
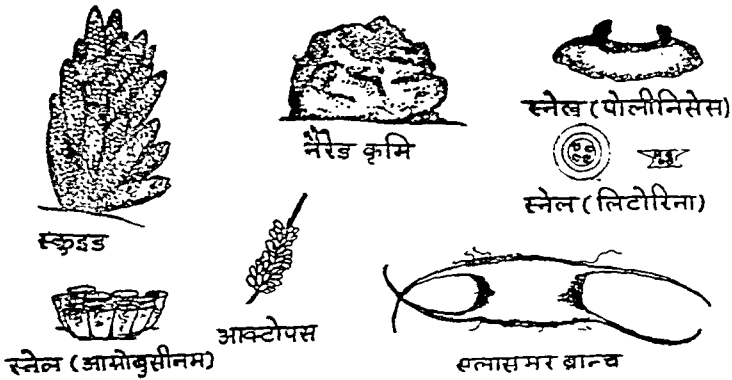
चित्र 78:—अण्डों और डिम्भों की रक्षा करने वाले विभिन्न प्रकार के अण्डखोल।

यह स्पष्ट है कि उपरोक्त परिस्थितियों में प्रदान पैतृक सुरक्षा के कारण अधिक संख्या में अण्डोत्पादन की आवश्यकता नहीं रहती है। तो भी कुछ ऐसी स्थितियों में जिनमें कि अण्डसेवन के सुरक्षित काल के पश्चात प्राणी एक अपेक्षा कृत लम्वे काल तक असहाय तलप्लावी अवस्था में रहता हो, उत्पादित डिम्भों की मात्रा वहुत ही अधिक होनी चाहिये। उदाहरण के तौर पर नीला केंकडा जो कि अण्डों के पकने तक उनकी रक्षा करता है, में अण्डसेवन के पश्चात तलप्लावी डिम्भों के विकास के कारण लगभग 20 लाख अण्डे प्रजनित करता है। (त्रुइट, Truitt, 1939) इसके विपरीत 'लिमनोरिया' अधिक से अधिक लगभग 25 अण्डों को जन्म देकर उन्हें उस समय तक एक प्रकोष्ठ में रखता है जव तक कि वे युवा हो कर काष्ठ के उन विलों में न रहने लग जायें जहाँ वे पैदा हुए थे। इस प्रकार ये प्राणी तलप्लावी संकटमय जीवन से वच जाते हैं। इन प्राणियों के तरणशील अस्तित्व पर विपत्ती युवावस्था में न आकर उस समय आती है जवकि उपविकसित प्राणी प्रजजन के पहले अपेक्षाकृत अधिक जीव संख्या वाले जन्म स्थान से कम जीव संख्या वाले स्थानों में संस्थापन के लिये स्थानान्तरित होते हैं। (जोन्सन, Johnson,

1935) यह तथ्य कि कुछ प्राणी अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक अण्डे उत्पादित करने के साथ साथ सन्तति को अधिक सुरक्षा भी प्रदान करते हैं इस बात का द्यौतक है कि पहले प्रकार के प्राणियों की युवा परिवर्धनशील सन्तति के विनाश की सम्भावना दूसरे की अपेक्षा अधिक होती है।

अन्त में यह वर्णन करना भी आवश्यक है कि संसेचन काल में अत्यधिक विकिरण और प्लवमान अस्तित्व के अन्य संकटों से होने वाली हानि को कम करने के लिये प्राणी अण्डें या तो सामूहिक मात्रा में या विभिन्न प्रकार के सुरक्षात्मक सम्पुटों में देते हैं। इन सम्पुटों की भी प्राणी कभी कभी, ऑक्टोपस की भाँति जो अण्डों की शत्रुओं से सुरक्षा करता है, रक्षा करते हैं। इस प्रकार के अन्य उदाहरण जीवन चक्र सम्बन्धी विवेचन में दिये जायेंगे।

परिवर्धन के विविध रूप

परिवर्धन मुख्यतया (1) प्रत्यक्ष और (2) अप्रत्यक्ष रूप से होता है। अण्डज प्रजातियों में प्रत्यक्ष परिवर्धन अण्डों में विद्यमान जर्दीयोक के अधिकोश द्वारा होता है, इस प्रकार का परिवर्धन मछलियों, सेफैलोपोडा संघ के प्राणी, कुछ नेमेरेटियन प्राणी, क्टेनशीयर संघ के प्राणी और कुछ अन्य प्राणियों में होता है। ऐसे परिवर्धन में युवा अण्डों से निकलने वाले प्राणी आकार को छोड़कर हर दृष्टि से अपने माता पिता जैसे ही होते हैं।

गहरे जल में पाये जाने वाले समुद्रतल जीवी प्राणियों में प्रत्यक्ष परिवर्धन ही सामान्यतया पाया जाता है, यह प्राणी स्वभाव का एक लाभदायक अनुकूलन प्रतीत होता है। डिम्भों को छितराने के लिये अत्यधिक गहराइयों पर पाई जाने वाली धारायें छिछले जल में प्रचलित जल धाराओं की अपेक्षा महत्वहीन होती हैं। पृष्ठीय परतों की विशिष्ठता सूक्ष्म प्लेन्कटोनिक जीवनका जिससे तटवर्ती तलप्लावी डिम्भ प्रत्यक्षतया भोजन प्राप्त करते हैं, प्रतिरूप गहरे जल में नहीं पाया जाता है, अतःएव यह अत्यन्त ही आवश्यक है कि युवा समुद्रतल जीवी प्राणी अपना भोजन प्रत्यक्षतया तली मलवा पदार्थो से ही प्राप्त करें। गहरे जल में उत्पन्न डिम्भों के भोजन प्राप्ति के लिये अगाध गहराई पार कर सागर पृष्ठ पर आने और पुनः समुद्रतल पर लौटने की सम्भावना प्राकृतिक रूप से ही अव्यावहारिक प्रतीत होती है। कुछ मध्यम गहराई पर पाये जाने वाले प्राणियों की युवा सन्ततियां उन प्राणियों की अपेक्षा अवश्य ही सागर पृष्ठ के निकट पाई जाती हैं, जहां भोजन प्रचुरता से मिलता है उदाहरण के लिये मछलियों में 'साइक्लोथोन' और झींगों मे 'एकेन्थेफाइरा' ऐसे प्राणी हैं।(Hjort, 1912)

उत्तर और दक्षिण महासागरों के समुद्रतल जीवी प्राणियों में सामान्यतया डिम्भावस्था नहीं पाई जाती है। जोर्ट और मुरे (Hjort 1912 and Murray

1913) के अनुसार यह तथ्य सम्भवतया कुछ वोरियल तथा उत्तर ध्रुवीय प्राणियों के स्थानीय एकत्रिकरण की ओर संकेत करता है, क्योंकि युवा प्राणियों का प्रत्यक्ष परिवर्धन उन्हीं प्राणी क्षेत्रों में हो जाता है जहां वे उत्पन्न होते हैं। संसेचन काल में विकिरण करने वाली धाराओं की अनुपस्थिति और संक्षिप्त तलप्लावी डिम्भावस्था में प्राणियों को प्राप्त सुरक्षा के कारण भी पूर्णतयता परिर्वधित प्राणियों का स्थानीय एकत्रिकरण हो सकता है।

'अप्रत्यक्ष परिवर्धन' उन प्राणियों में पाया जाता है जो कम जर्दी (योक) वाले अण्डे देते हैं, अतएव ऐसी स्थिति में या तो शीघ्र ही आत्मनिर्भर डिम्भों का विकास हो जाता है या जीवधारियों की मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार का परिवर्धन समुद्री अकशेरुकी प्राणियों की विशिष्ठता है, ये प्राणी अण्डों को सामान्यतया या तो जल में ही तैरने के लिये छोड़ देते है या संसेचन काल में उन्हें विशिष्ठ भ्रूण कोष्ठों में धारित किये रहते हैं। प्राणी प्रजातियों के समस्त गुण प्राप्त करने के पहले कई डिम्भावस्थाओं में से गुजरता है। इन डिम्भावस्थाओं में से अनेको—जैसे कि, 'एकीनोइडिया' और 'ओफ़ुरोइडिया' की डिम्भावस्था 'प्लुटेस'—को खोज के पश्चात एक भिन्न ही प्रकार का प्राणी माना गया था, लेकिन यह कुछ काल के पश्चात ही स्पष्ट हो पाया कि ये तो पूर्व ज्ञात प्रजातियों की एक डिम्भावस्था मात्र है। अधिकतया डिम्भों के चलन अंग रोमक (सिलिया) होते हैं, (कुछ प्रतिवाद भी हैं, जिनका वर्णन आगे किया गया है) प्रचलन के लिये ये रोमक तालवद्ध स्पंदन के द्वारा जल में जो गति उत्पन्न करते हैं वह प्राणी को जल में लटकाये रखने के लिये पर्याप्त होती है। कुछ प्राणी समूहों के पूर्णतया विकसित प्राणियों की संरचना में असमानता के वावजूद भी उनके डिम्भो की संरचना में आश्चर्यजनक समानता स्पष्टतया यह संकेत करती है कि उस समूह के प्राणियों का मूलस्त्रोत एक ही रहा होगा।

प्रारूपिक जीवन चक्र :—बहुत सी प्रजातियों के जीवन चक्र की खोज वीन अभी तक नहीं की गई है, परन्तु मुख्य मुख्य प्राणी समूहों के जीवन-वृन्त के प्रमुख लक्षणों का निर्धारण किया जा चुका है। यहां पर हम केवल उन्हीं प्राणी समूहों की समीक्षा करेंगे जो कि सामान्य समुद्र शास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हैं।

'प्रोटोजोआ' संघ के प्राणियों में प्रजजन द्विअंगी विखंडन के द्वारा होता है, जिसमें प्राणी का विभाजन दो अलग अलग प्राणियों में हो जाता है, ये नये प्राणी भी परिवर्धन के पश्चात विभाजित हो जाते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में इस विधि द्वारा वहुत ही अधिक मात्रा में प्राणियों का उत्पादन सम्भव है जैसा कि 'नोक्टीलुका' जैसी आकृतियों में देखा जा सकता है। वहुगुणित विखंडन के परिणाम-

स्वरूप इस प्राणी में गेमीट भी उत्पन्न होते हैं । ये गेमीट आपस में मिलकर युगलों का निर्माण करते हैं परन्तु इनके परिवर्धन के बारे में कुछ अधिक ज्ञात नहीं है । फोरामिनिफेरा और सम्भवतया रेडियोलारिया में भी एक चक्रीय पीढ़ी परिवर्तन पाया जाता है, जिसमें एक बार लिंगी और दूसरी बार अलिंगी प्राणी उत्पन्न होकर आकारिकीयता की दृष्टि से भिन्न प्राणियों को जन्म देते हैं । (मायर्स Myers, 1936)

टिन्टीनाइड प्राणियों में, जिनमें कि अनुप्रस्थ विखंडन पाया जाता है, लोरिका से अग्र अनुजात विलग हो जाता है और पश्च अनुजात पुरानी लोरिका के साथ ही रहता है ।(कोफाइड, Kofoid, 1930)

'स्पंज' में अलिंगी प्रजनन समुद्भवन या संविभाजन द्वारा और लिंगी प्रजजन गेमीटों के मेल द्वारा होता है. लिंगी प्रजजन के परिणामस्वरूप 'एम्फीब्लास्तुला' नामक एक स्वतंत्र प्लवमान फ्लेजेलेट डिम्भ उत्पन्न होता है, जो प्लवमान काल की समाप्ति के पश्चात सागर तल में बैठ कर पूर्णतया परिवर्धित स्पंज के रूप में विकसित होता है ।

कुछ स्पंज अलिंगी प्रजजन द्वारा 'गेम्पूल' नामक इकाइयों को जन्म देते हैं इनमें प्रतिकूल काल में बचने के लिये भारी सुरक्षा कवच होते हैं । गेम्यूलों की उत्पति के द्वारा होने वाला प्रजजन मुख्यतया असमुद्री स्पंजों में ही पाया जाता है, परन्तु कुछ समुद्री स्पंज भी गेम्यूलों की रचना करते हैं ।

'सीलेण्टेरेटा' प्राणियों के जीवन चक्र में लिंगी और अलिंगी दोनों ही प्रकार की प्रजजन प्रक्रियायें तात्कालिक महत्व रखने वाले लक्षण हैं । जनित्र कोषों के मेल के फलस्वरूप प्लान्युला नामक, लगभग एक मिलीमीटर लम्बा एक जंगम रोमाभी डिम्भ उत्पन्न होता है । (चित्र 80 C) 'प्लान्युला' में मुख और एटीरोन, जो कि डिम्भों की विशिष्ठता है, यद्यपि नहीं होते हैं; परन्तु फिर भी कोरल और एधीमोन्स जैसे सीलेण्टेरेटा प्राणियों का प्रसार करने के लिये पर्याप्त समय तक जर्दीनुमा भोजन (योक फूड) पर आश्रित रह सकते हैं । वोघन (Vaughan, 1919) के अनुसार कोरल प्राणियों का तलप्लावी काल एक दिन से लेकर दो या तीन सप्ताह तक हो सकता है । एक कठोर अधिष्ठान पर बैठने के पश्चात कोरल के 'प्लान्युला' और अन्य एन्थोजोआ प्राणियों में मुख और भोजन एकत्र करने के लिये संस्पर्शकों के विकास के बाद उनमें जनन अंगों का भी विकास हो जाता है । इनमें से कुछ में विखंडन या समुद्भवन के द्वारा क्रियात्मक अलिंगी प्रजजन भी होता है । बड़ी प्रवाल बस्तियों का निर्माण इस प्रकार केवल एक एकाकी कोरल द्वारा ही हो सकता है । इस विधि से उत्पन्न बड़े कोरल प्राणियों के कंकाल ही विशाल

प्रवाल सिरों की रचना करते हैं, जिनमें से कुछ का व्यास तो 3 मीटर या इससे भी अधिक होता है, और इनमें हजारों एकाकी पोलिप होते हैं। वॉघन (Vaughan, 1919) ने इस प्रकार की बस्तियों के निर्माण काल का भी अध्ययन किया है, और इनके अनुसार 50 मि० मी० व्यास की प्रवाल बस्ती (पोरिट एस्टोरोइड) का निर्माण चार वर्षों में होता है।

प्राणी श्रेणी हाइड्रोजोआ की कई जैली फिशों का जीवन वृत्त पीढ़ी परिवर्तनों का सुन्दर उदाहरण है, इसलिये यह उदाहरण प्राणी शास्त्र की प्रायः सभी पुस्तकों में सम्मिलित किया जाता है। 'ओबिलिया' जैसी आकृतियों की जैली फिश या मेड्यूसा नर या मादा दोनों ही अवस्थाओं में पाई जाती हैं और संसेचन के पश्चात ये 'प्लान्युला' डिम्भ के रूप में विकसित होने वाले अण्डों को जन्म देती हैं। यह 'प्लान्युला' शीघ्र ही सागर तल में बैठ कर हाइड्रोइड अवस्था की रचना करता है। इस चक्र को पोलिप के ऊपर विशिष्ठ संरचनाओं से उत्पन्न होने वाले अलिंगी मुकुल पूरा करते हैं उदाहरणार्थः—जंगज मेड्यूसा। स्थावर और तलप्लावी पीढ़ियों का यह परिवर्तन केवल 'ओविलिया' जैसे हाइड्रोजोआ के ही नहीं परन्तु विशाल स्काइफोजोआ 'ओरेलिया' जैसी अन्य आकृतियों का भी एक महत्वपूर्ण वैशिष्ठ्य है, जीवन वृत्त की दृष्टि से औरेलिया अवश्य ही कुछ भिन्नता प्रदर्शित करता है परन्तु इसकी विभिन्न अवस्थायें ओविलिया जैसी ही होती हैं। इस प्रकार के प्राणियों की सभी अवस्थाओं को सामान्यतया तट के निकट सीमित रखने में या प्लान्युला डिम्भों के समंजन के लिये किनारों या जलबालूउत्थान के निकटस्थ चट्टानों, कवचों या बड़े पैडों का अनुकूल उप-अधिष्ठान प्रदान कराने में स्थावर पीढ़ी एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण कड़ी है।
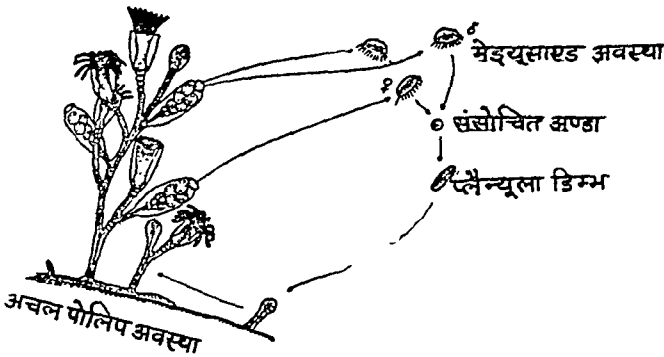
चित्र 79 :—'ओविलिया' नामक हाइड्रोजोआ जैली फिश का जीवन चक्र

विगेलो (Bigelow 1938) ने यह ज्ञात किया कि वेरमूडा के खुले सागर के तट से लगभग 10 मील दूर पाई गई मेड्यूसा में से लगभग 3 प्रतिशत के जीवन वृत्त

का प्रारूप ही स्थिर अवस्था के प्रारूप जैसा होता है। विकिरण (इधर उधर छितरने) की मात्रा तो वास्तव में प्रचलित जल धाराओं की दिशा और गति पर ही निर्भर रहती है। कुछ जंगज जैली फिश–जैसे कि 'एगलेन्था डिजिटालिस' और ट्राचिलीना प्राणी क्रम के कुछ अन्य सदस्य–ऐसी स्थावर अवस्था पर निर्भर नहीं हैं क्योंकि अनुजात मेड्यूसा का जन्म सीधे ही तलप्लावी अवस्था से हो जाता है।

खुले सागरों के माण्डलिक सीलण्टेरेट प्राणी—उदाहरण के तौर पर 'वैलेला' और 'फाइसालिया' "नील समुद्री प्राणीजात" के प्रतिनिधी हैं। उनका जीवन चक्र स्थावर अवस्था के विलोपन के साथ तट से दूर पाये जाने वाले जीवन के अनुकूल हो जाता है। 'प्लान्युला' डिम्भ मोड्यूसाकार अवस्था को जन्म देता है जिसके फलस्वरूप जटिल मण्डलों का निर्माण होता है।

समस्त 'टीनोफोर' प्राणी उभय लिंगी होते हैं, ये सीधे जल में अण्डे देते हैं, जहाँ, संसेचन के पश्चात ये अण्डें प्रत्यक्ष परिवर्धन द्वारा जंगज डिम्भावस्था में विकसित हो जाते हैं। 'साल्पा' में पाये जाने वाला एक परजीव प्राणी 'ग्रेस्ड्रोडम्' पारूपिक प्लान्युला डिम्भ पैदा करता है।

'एनेलीडा' प्राणियों को विशेषकर तटवर्ती समुद्रतलजीवी प्राणी जात में उनके महत्व के कारण, संक्षिप्त जीवन वृत्तों के इस अध्ययन में सम्मिलित करना आवश्यक हो जाता है। कुछ ऋतुओं में एनेलीडा के मांसभक्षी जंगज डिम्भ अस्थाई प्लेन्कटन के एक महत्वपूर्ण अंग का निर्माण करते हैं, और इन ऋतुओं में तटवर्ती जल में फायटोप्लेन्कटन के नियंत्रण पर विचार करते समय यह तथ्य भी ध्यान में रखना चाहिये। (9.3)

भूमि पर पाये जाने वाले उभयलिंगी एनेलिडा प्राणियों के विपरीत समुद्री एनेलिडा प्रायः एकलिंगी होते है। प्रजजन लिंगी और अलिंगी दोनों ही विधियों द्वारा हो सकता है, परन्तु, प्लेन्कटन में कभी कभी बहुलता से पाये जाने वाले अण्डों की संख्या जल में निर्मुक्त अण्डों के आधिक्य का परिणाम है, संसेचन के पश्चात ये अंडें रोमाभी जंगज डिम्भ ट्रोकोफोर में परिवर्धित हो जाते हैं, (चित्र 80b) प्लेन्कटन को छोड़ने से पहले ये तीन या चार खण्डों वाले सूक्ष्म कृमियों में रूपान्तरित हो जाते हैं। ट्रोकोफोर्स के कई विवर्त होते हैं, और इसकी मौलिक संरचना बहुत से प्राणियों, विशेषकर मौलस्का, नेमेरटीयन और चपटे कृमि (फ्लेट वोर्म) इत्यादि की संरचनाओं में प्रदर्शित है।
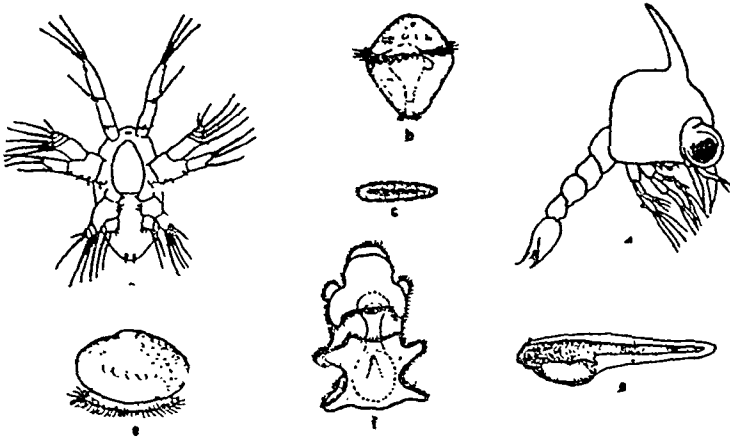
चित्र 80 :—कुछ विशिष्ठ समुद्री डिम्भ । (a) कोपिपोड लेत्रीडोसेरा का नौप्लीयस डिम्भ, (b) एनीलिड 'नेरैस अगसिज़ा' का ट्रोकोफोर डिम्भ (c) सीलेण्टेरेटा का प्लान्युला डिम्भ (d) 'पेकी ग्रेप्सस्' केंकडे का जोईया डिम्भ (e) प्रशान्त का वेलिगर डिम्भ (f) स्टारफिश का बाइपिनारिया डिम्भ (g) कोड डिम्भ जर्दी योक के थैले के साथ।

विशिष्ठ सुरक्षा के अन्तर्गत कई प्रारम्भिक अवस्थाएँ पार करने के पश्चात ही बहुत से समुद्र तलजीवी एनेलिडा प्राणियों के डिम्भ प्लेन्कटन में प्रवेश करते हैं। उदाहरण के लिये, छोटे ट्यूब वोर्म 'स्पिरोर्बिस' और अन्य सम्बन्धित आकृतियां पूर्वडिम्भीय अवस्था की विशिष्ठ सुरक्षा के लिये ओर्पक्युलम के नीचे एक विशेष भ्रूण कोष्ठ का विकास कर लेता है, उसके विपरीत स्केल वोर्म या पोलिनो में यह सुरक्षा परतनुमा पृष्ठ एलीट्रा द्वारा प्रदान की जाती है, कुछ अन्य स्थितियों में प्राणी संलग्न श्लेषी संहति के रूप में अण्डें देते हैं, (चित्र 78) जिसके द्वारा भ्रूण और डिम्भ कुछ सीमा तक सुरक्षित रहते हैं। स्थावर स्वभाव की प्राप्ति से पहले 'स्पिरोर्बिस' भ्रूण कोष्ठ में ट्रौकोफोर अवस्था गुजरने के पश्चात डिम्भ चौबीस से छत्तीस घंटों तक प्लेन्कटन में रहते हैं। अनुकूल अधिष्ठान प्राप्त न होने पर इस तलप्लावी अवस्था का जीवन काल बढ़ भी सकता है। "नेरैस अगसिजी" जल में उन्मुक्त अण्डजनन करता है, और तलप्लावनावस्था काल बारह से सोलह दिन या अधिक हो सकता है। एन. 'वेक्सीलौसा' में अण्डजनन समूहों में होता है।

'कीटोगनाथा' प्राणी या ऐरोवोर्म उभयलिंगी होते हैं परन्तु इनमें आत्म संसेचन नहीं होता है। जल में अण्डजनन के उपरान्त इन अण्डों का आत्म संसेचन विधि द्वारा जंगज डिम्भों में प्रत्यक्ष परिवर्धन हो जाता है, ये डिम्भ पूर्णतया परिवर्धित प्राणियों जैसे नहीं होते हैं।

समुद्र शास्त्र सम्बन्धी अध्ययन में कई स्थानों पर प्रमुखता से भाग लेने के कारण जिन 'क्रस्टेसिया' प्राणियों में हमारी विशेष रुचि हो सकती है उनमें से अधिकतर प्राणी स्पष्ट तलप्लावी डिम्भावस्था से गुजरते हैं।

'नौप्लियस' क्रस्टेसियन प्राणियों का सामान्य प्रारम्भिक डिम्भ है जिसमें भोजन प्राप्त करने और तैरने के लिये तीन युगल उपांग होते हैं।

कोपीपोड में नर और मादा दोनों अलग अलग होते हैं, जहां कुछ प्रजातियों में हर मौसम में नर और मादाओं का अनुपात कभी भी समान नहीं रहता है, वहां कुछ अन्य प्रजातियों में यह असमानता केवल मौसमी है, प्रजजन के पहले तो नर प्राणियों का बाहुल्य रहता है परन्तु प्रजजन के पश्चात नरों की संख्या मादाओं की अपेक्षा अधिक तीव्रता से कम होती है (दामास, Damas, 1905; फर्रान, Farran, 1927; केम्पवेल, Campbell, 1934)। प्लेन्कटन में पाये जाने वाले अत्यधिक महत्वपूर्ण कोपीपोड तो सीधे ही जल में अण्डे देते हैं, परन्तु फिर भी कुछ तलतटवर्त्ती और महत्वपूर्ण तलप्लावी प्रजातियां—उदाहरण के तौर पर 'आइथोना', 'पेरौचैटा' और कुछ अन्य प्रजातियां—संसेचन काल में अण्डों को भ्रूण कोष्ठों में रखते हैं (चित्र 77)। दोनों ही स्थितियों में अण्डों से विशिष्ठ आत्मनिर्भर 'नोप्लीया' उत्पन्न होते हैं। 'पेरोचैटा' एक अपवाद है क्योंकि इसका परिवर्धन एक अधिक जर्दी वाले अण्डे से होता है और यह 'नोप्लीया' अवस्था नहीं प्राप्त करता है (निकोल्स, Nicholls, 1934)। कोपीपोड में सामान्यतया छः क्रमिक 'नोप्लीय' अवस्थायें होती हैं जिनका पृथककरण काइटिन त्वचा के वास्तविक निर्मोचन द्वारा होता है। क्रस्टेसिया प्राणियों के कठोर अन्तःकंकाल का परिवर्धन नहीं होता है अतः निश्चित अवधि के उपरांत यह झड़ जाना चाहिए या इसका निर्मोचन आवश्यक है क्योंकि प्राणी का आकार इस कवच की अपेक्षा कहीं अधिक विशाल हो जाता है। क्रस्टेसिया प्राणियों में निर्मोकों की संख्या परिवर्तनीय है परन्तु कोपीपोड में प्रत्येक अवस्था की समाप्ति एक निर्मोक्क के निर्मोचन के द्वारा होती है और इन अवस्थाओं की संख्या स्थिर है। कोपीपोड में छठी नालीय अवस्था की समाप्ति पर सम्पूर्ण कायान्तरण के पश्चात् छः क्रमिक कोपीपोड (कोपीपोडाइट) की पहली अवस्था का उद्गमन होता है। कोपीपोड की छठी और अन्तिम अवस्था एक वयस्क प्राणी होता है, और ब्रिटिश आइल्स के जल में वसन्त ऋतु में प्रजजन के पश्चात् 'केलेनस फिनमार्चीनस' प्रजाति के प्राणी लगभग 28 दिनों में वयस्कता प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु कुछ अधिक उत्तरी अक्षांशों पर पाये जाने वाले प्राणी ग्रीष्म या शरद ऋतु में वयस्कता प्राप्ति में कहीं अधिक समय लगाते हैं।

समस्त तलप्लावी कोपीपोड प्राणियों में अभी तक केवल 'केलेनस फिनमार्चीकस' का ही पूर्णतया अध्ययन किया गया है, (ग्रान इत्यादि,

Gran et al. 1912) और यह तो बहुत पहले से ही ज्ञात है कि यह प्राणी शीतकाल गहरी जल परतों में व्यतीत करता है। इस प्रजाति में प्रजजन ग्रीष्म या वसन्त ऋतु के बोरियल जल में होता है और इस काल में दो या तीन पीढ़ियों का विकास होता है, जिनमें से प्रत्येक पीढ़ी एक या दो समजातों को जन्म दे सकती है। वर्षा के प्रारम्भ में प्रथम अण्डजनन से उत्पन्न होने वाली पीढ़ी शीघ्रता से वयस्क होती प्रतीत होती है, वयस्कता प्राप्ति के पश्चात् अण्डे जन कर इनकी मृत्यु हो जाती है। शीतकाल में पैदा होने वाली अन्तिम पीढ़ी का जीवनकाल अपेक्षाकृत लम्बा होता है, क्योंकि इस पीढ़ी के संग्रहण द्वारा ही तो यह प्रजाति जीवित रहती है। यह शीत संग्रह अपेक्षाकृत गहरे जल में पाया जाता है और पांचवी या छठी कोपीपोड अवस्था से निर्मित इस संग्रह की संविरचना एक रूप होती है। शीतकाल में इस संग्रह की प्राणी संख्या में कमी हो जाती है परन्तु वसन्त के आगमन के साथ ही प्राणी छठी कोपीपोड अवस्था (वयस्कता) प्राप्ति के पश्चात् पृष्ठीय जल में अण्डे देकर पहली पीढ़ी का प्रारम्भ करते हैं। निकोल्स (Nicholls, 1933) से प्राप्त चित्र 81 में क्लाइड सागर क्षेत्र में जीवसंख्या की प्रतिशत रचना में परिवर्तन प्रदर्शित हैं और तीनों मुख्य प्रजजन कालों की ओर भी संकेत किया गया है।
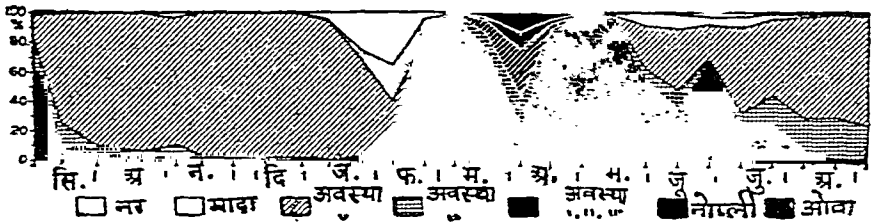
चित्र 81:—'केलेनस फिनमार्चीकस' की क्रमिक पीढ़ियां
(चित्र निकोलस से प्राप्त)

'केलेनस थिनमार्चीकस' का जीवन चक्र इस वंश के अन्य महत्वपूर्ण सदस्यों और शायद अन्य वंशों के सम्बन्धित सदस्यों की भी विशेषता प्रतीत होती है, परन्तु, चूंकि अभी तक केवल कुछ ही कोपीपोड प्राणियों का पर्याप्त अनुसंधान किया गया है, इस लिये जीवनचक्र में बहुत से परिवर्तनों की भी आशा की जा सकती है। यहां पर हम महत्वपूर्ण परजीवी कोपीपोड प्राणियों के जीवनवृत का वर्णन नहीं करेंगे परन्तु 'केलेनस' से तुलना के लिए एक स्वाश्रयी तलत टप्लावी विशिष्ठ आकृति 'तिस्बे फरकेटा' का वर्णन ही उद्देश्य प्राप्ति के लिये काफी होगा। संसेचन काल में 'तिस्बे फरकेटा' अण्डों को भ्रूण कोष्ठों में ही रखता है। 'केलेनस' की भांति इसमें छः नोप्लीय और छः कोपिपोडिड अवस्थायें होती हैं, परन्तु अण्ड जनन के दस दिन के भीतर ही ये प्राणी वयस्कावस्था प्राप्त कर

लेते हैं, और अण्डों के फूटने के केवल चौदह दिन के वाद ही नई पीढ़ी की मादा भ्रूण कोष्ठों में अण्डे दे देती है। सर्वाधिक उत्पादन काल में एक ही मादा लगभग पांच से लेकर आठ दिनो तक के अन्तर के वाद सात या आठ बार सहजात सन्ततियों को जन्म दे सकती हैं।

सागर की अर्थ व्यवस्था में एक अन्य महत्वपूर्ण समूह यूफॉसिया के प्राणियों की प्रजजन विधि अन्य कोपीपोड प्राणियों से भिन्न नहीं होती है, ये अपने अण्डे सीधे जल में ही छोड़ देते हैं परन्तु इनमें पीढ़ी परिवर्तन शीघ्रता से नहीं होता है और इनका जीवन काल अन्य कोपीपोडों की अपेक्षा कहीं लम्वा होता है। रूड (Ruud, 1932) ने दक्षिण ध्रुव महासागर के जल में यूफॉसिया सुपेर्वा द्वारा लिंगी परिपक्वता प्राप्त करने का काल लगभग २ वर्ष निर्धारित किया है। कुछ परीक्षण यह संकेत भी करते हैं कि सामान्यतया ये प्राणी समुद्रतल के सन्निकट रहते हैं और अण्डजनन काल में ये मण्डलों में एकत्र होकर सागर तल से ऊपर उठ कर पृष्ठीय जल में अण्डे देते हैं। धीरे धीरे तल की ओर डूबते हुए ये अण्डे 'नोप्लीय' अवस्था प्राप्त कर लेते हैं, इसके उपरान्त विभिन्न क्रमिक डिम्भावस्थाओं से गुजरते हुए ये प्राणी वयस्क होने के पश्चात कुछ समय के लिये पुनः पृष्ठ पर आ सकते हैं। 'थाइसोनोइसा इनरमिस' में क्रमानुसार निम्न अवस्थाएँ पाई जाती हैं—दो नोप्लीयस एक मेटानोप्लीयस, तीन केलीप्टोसिस, चौदह फरसिलिया, बारह क्राइपोटियर और वयस्क प्राणी। लेबोर (Lebour, 1926)। कुछ प्रजातियां संसेचन और नौप्लीया अवस्था काल में अण्डे भ्रूण कोष्ठों में रखती हैं जैसे 'नाइक्टीफेन्स कौचीआई'।

अन्य अधिकांश क्रस्टेसिया प्राणियों में संसेचन काल में अण्ड या तो विभिन्न भाँति के भ्रूण कोष्ठों में या उपांगों से संलग्न रहते हैं। बहुत अधिक जर्दी से भरे अण्डों में नोप्लीयस अवस्था अण्डे के भीतर ही समाप्त हो जाती है और अण्डे के फूटने पर जो परिवर्धित अवस्था निकलती है उसे जोइआ डिम्भ कहते हैं, सामान्यतया ऐसा केंकडों और अन्य सम्बन्धित आकृतियों में पाया जाता है, (चित्र 80d) जोइआ की भी कई विभिन्न अवस्थाऐं हो सकती हैं। धीरे धीरे तैरने वाले ये जोइआ डिम्भ मेगोलौपा अवस्था प्राप्त करके तल पर बैठने से पहले कई सप्ताहों तक प्लेन्कटन में रहते हैं।

लोवस्टर एक विशिष्ठ प्रकार के तलप्लावी डिम्भ, 'फाइलोसोमा' को जन्म देता है, यह डिम्भ अपने पत्तीनुमा शरीर के कारण प्लेन्कटन में तैरने के लिये विशेष रूप से अनुकूल हो गया है। (चित्र 229g) वार्नेक्लेज में अचल वयस्क के कवच के मेण्टल की गुहा से निर्मुक्त डिम्भ एक विशिष्ठ नोप्लीय अवस्था है जो कुछ सप्ताह तलप्लावन के पश्चात 'साइपरिस' डिम्भों में रूपान्तरित हो जाता है,

(चित्र 224l) तल पर बैठ कर अनुकूल अधिष्ठान से संलग्न होकर ये साइपरिस डिम्भ-वयस्क अवस्था में कायान्तरित हो जाते हैं।

अधिकांश द्वी वाल्व वाले (पेलेकाईपोड) मोलस्कस प्राणियों में नर और मादा दोनों ही प्रकार के प्राणी पाये जाते हैं, यद्यपि कुछ उभयलिंगी भी होते हैं, और कुछ उदाहरण के तौर पर शुक्तियों की कुछ प्रजातियां एक लिंगी भी होती हैं परन्तु ये वारी बारी से आपसमें लिंग परिवर्तित कर सकते हैं। यह प्रपंच कई अन्य प्राणियों में भी पाया जाता है। को, (Coe, 1940) इन प्राणियों में अण्डों का संसेचन प्राय: अण्डों के जल में झड़ने के पश्चात ही होता है परन्तु अण्डे सामान्यतया गिलों के पास बने हुए भ्रूण कोष्ठों में सुरक्षित रहते हैं, इन स्थितियों में प्राणी स्परमेटोजोआ को आवाही नाल द्वारा गिलों के ऊपर प्रवाहित रहने वाली जल धाराओं के साथ अन्दर ले लेता है। पहले तो एक रूपान्तरित ट्रोकोफोर डिम्भ की रचना होती है और इसके परिवर्धन के परिणाम स्वरूप 'वेलिगर' डिम्भ बनता है। (चित्र 80e) कुछ काल जंगजावस्था में रहने के पश्चात 'वेलिगर' डूबकर तल में बैठ जाता है।

'गेस्ट्रोपोड' साधारणतया उभयलिंगी होते हैं, इनमें संसेचन सामान्यतया आन्तरिक होता है, ये अण्डे ऐसे श्लेषमिक या झिल्लीमय प्रकोष्ठों में देते हैं जो चट्टानों या समुद्री खरपतवारों से लगे रहते हैं। कभी कभी अण्डे रखने के लिए छोटे आवरणों की भी रचना होती है, उदाहरण के लिये 'लिटोरिना' (चित्र 78)। ट्रोकोफोर और बेलिगर अवस्थायें इस आवरण के भीतर ही व्यतीत हो जाती हैं।

एचीनोडर्मेटा प्राणी में नर और मादा दोनो होते हैं, ये सीधे जल में ही अण्डे देते हैं जहां उनका संसेचन होता है। कुछ ऐसे अण्डे देते हैं जो डूबकर चट्टानों या अन्य पदार्थों के अपनी चिपाचिपी प्रकृति के कारण चिपक जाते हैं। बहुत से अन्य एचीनोडर्मेट प्राणियों, विशेषकर ध्रुव प्रदेश और गहरे जल में पाई जाने वाली प्रजातियां अण्डे भ्रूण कोष्ठों में रखती हैं, जहां अण्डों का संसेचन और प्रारम्भिक विकास होता है। प्रत्येक परिस्थिति में परिवर्धन अप्रत्यक्ष ही होता है, परन्तु अधिक जर्दी वाले अण्डों में तलप्लावी डिम्भ नहीं पाये जाते हैं। तो भी अधिकांश एचीनोडर्मेट प्राणियों में डिम्भावस्था पाई जाती है जिसका जीवन काल कई सप्ताह तक हो सकता है।

वयस्कावस्था में होने वाले कायान्तरण तितलियों की भांति ही पूर्ण होता है, इसलिये यह तथ्य आश्चर्यजनक नही है कि इन तलप्लावी डिम्भों की पैतृकता के ज्ञान से पहले इनको वयस्कों से बिलकुल असम्बन्वित एक अलग ही प्राणी मान लिया गया था। (चित्र, 80f,244,f,j) इसके विशिष्ठ डिम्भ हैं:—'वाइपिनेरिया'

(सी स्टार); 'एचिनोप्लुटस' (सी अर्चीन); 'ओफियोप्लूटस' (ब्रिटल स्टार) और 'ओरिक्यूलेरिया' (सी कुकुम्बर)। एचीनोडर्मेटा डिम्भ सागर की अर्थ व्यवस्था में केवल मामूली सा स्थान ही रखते हैं परन्तु इन डिम्मों में जीव विज्ञानगत रुचि सम्भवतः इस तथ्य की सार्थकता से संलग्न है कि इनमें से कुछ डिम्भ अधिकांश पूर्वग कोरडेट प्राणियों से कुछ सीमा तक सम्बन्धित प्रतीत होते हैं।

कोड, माकेरेल, हेलिबर्ट और सार्डिन जैसी अधिकांश मछलियां सीधे जल में ही अण्डे देती हैं, जहां अण्डों का संसेचन होता है और परिवर्धनशील डिम्भों का पोषण प्लवमान अण्डों की जर्दी के द्वारा होता है (चित्र 80 g)। हेरिंग मछलियां चिपचिपे अण्डे देती हैं, ये अण्डे छिछले जल में तल पर बैठकर तलवर्त्ती पदार्थों से संलग्न हो जाते हैं। गोविज, ब्लेनीज, स्कलपिन और कुछ अन्य मछलियां या तो अपने अण्डों को ठोस पदार्थों के साथ संलग्न कर देती हैं या उन्हें सागर तल पर छोड़ देती हैं जहां संसेचित होने तक उन अण्डों की सुरक्षा नर करता है। ग्रुनियन उच्च वसन्त ज्वार में लहर व्याप्त तटों की मिट्टी में अण्डों को बालू में बूर देती हैं। ये अण्डे लगभग दो सप्ताह तक यहां ही बुरे रहते हैं उच्च ज्वार के अगले क्रम की लहरें उन अण्डों को सागर में ले जाती है और फिर सागर में उनका संसेचन होता है। (थोमसन, Thompson, 1919; क्लार्क Clark, 1925)। शार्क और रे मछलियों में आंतरिक संसेचन होता है और युवा संतति या तो जीवित ही उत्पन्न होती है या 'मरमेड के पर्स' कहलाने बाले चर्ममय कोष्ठों में उत्प्लावन रहित अण्डों के रूप में सुरक्षित पैदा होती है (चित्र 78)।

उत्प्लावकता के आधार पर मछलियों के अण्डों को दो समूहों में रखा जा सकता है (1) तलप्लावी (2) डूबने वाले। 'डूबने वाले' अण्डे या तो तल पर ही दिये जाते हैं या ये डूबकर तल तक पहुंच जाते हैं; तलप्लावी अण्डे जंगज होते हैं अतः इस समूह में अन्तर्निहित हानियों के कारण ये बहुत ही बड़ी संख्या में पैदा होते हैं। बहुत से मात्स्यकी अनुसंधान इन तलप्लावी अण्डों की उत्पत्ति, विकिरण और उनसे पैदा होने वाले डिम्भों से सम्बन्धित हैं, क्योंकि इस प्रकार के अध्ययन से ही मछलियों के अण्डजनन की आदतों और व्यापारिक महत्व की कई मत्स्य क्षेत्रों के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त की जा सकती है (9·4)। सामान्यतया, मछलियों में परिवर्धन प्रत्यक्ष ही होता है, और वयस्क आकार की प्राप्ति के लिए कोई सामान्य कायान्तरण नहीं होता है। इसके बावजूद भी वयस्क और डिम्भ में बहुधा काफी सीमा तक असमानता पाई जा सकती है और कुछ स्थितियों में तो स्पष्ट कायान्तरण भी होता है। उदाहरण के लिए ईल के डिम्भ 'लेप्टोसेफालस' डिम्भ को पहले एक अलग ही प्रजाति मान लिया गया था। कई मछलियों के निश्चित प्रजजन क्षेत्र होते हैं जो उनके पोषण क्षेत्रों से बहुत ही दूर स्थित

होते हैं, और ईल व सेलमन मछलियों का स्थानान्तर उनकी प्रजजन सहज प्रवृत्ति से प्रत्यक्षतया सम्बद्ध है। (9·5)

गहरे जल में पाई जाने वाली कुछ मछलियों का प्रजजन स्वभाव पर्यावरण से अनुकूलन की ओर संकेत का एक सुन्दर उदाहरण है। यह तथ्य विचारणीय है कि विरल जीव संख्या वाली प्रकाशहीन अगाध गहराइयों में विपरीत लिंगी प्राणियों का उस सीमा तक पृथक्करण सम्भव है कि अण्डजनन काल में अण्डों का संसेचन मात्र एक आकस्मिक दैवयोग ही रह जायेगा। अगाध गहराइयों पर पाई जाने वाली कुछ मछलियों में ऐसी स्थिति से छुटकारा पाने के लिए नर मादा का पराश्री होता है, और स्थाई रूप से मादा के शरीर के संयुक्त परिसंचरण तंत्र के एक सुरक्षित उपांग की भांति विकसित होता है। (चित्र 231, C)

सागर के स्तनपाई (मैमेल) प्राणियों के जीवित युवा सन्तति उत्पन्न होती है, इस युवा सन्तति का कुछ काल तक पोषण मादा करती है। अन्य कुछ मछलियों की भांति ह्वेल और सील मछलियों का स्थानान्तरण भी अनुकूल प्रजजन क्षेत्रों के साथ सम्बद्ध रहता है। ह्वेल मछलियों में विकास शीघ्रता से होता है, ये लगभग दो वर्षों में ही लिंगी परिपक्वता प्राप्त कर लेती हैं और फिर प्रत्येक वर्ष एक बछड़े को जन्म देती हैं।

अधिकांश समुद्री प्राणियों में अण्डजनन की क्रिया स्वतः प्रकृत होती है, बोरियल जल की तो यह एक विशेषता है, एक ही प्रजाति के प्राणी बहुत बड़ी संख्या में एक साथ अण्डे देते हैं, जिसके फलस्वरूप ऐसी स्थितियों में मुख्य अण्डजनन काल का निर्धारण सुगमता से किया जा सकता है, चूंकि प्लेन्कटन में अण्डों और डिम्भों के बड़े बड़े दल अचानक ही दिखलाई पड़ते हैं और जल की गति के कारण धीरे धीरे व्यासृत हो जाते हैं। यह गुण विशेषकर शुक्तियों, कुछ सी कुकुम्बरों (कुकुमेरिया), नेरौड कृमि और बार्नेक्लेज द्वारा सुन्दरता से चित्रित किया जाता है।

(1) अण्डजनन और (2) क्रमिक अण्डजनन काल के उपरान्त जीवित रहने वाले डिम्भों की संख्या, उपरोक्त दोनों तथ्यों की सफलता की मात्रा पर ही, किसी जीवसंख्या का निर्माण करने वाले वयस्क और अल्पवयस्क प्राणियों की वर्ग श्रेणी की आंकिक संख्या में होने वाली असमानता निर्भर करती है। इस असमानता का सर्वोत्तम प्रदर्शन व्यापारिक महत्व की उन मछलियों में पाया जाता है जिनके बारे में काफी अनुसंधान किये जा चुके हैं। तथापि, जिन प्रजातियों में अल्पवयस्क और वयस्क प्राणियों की आयु उन्हें कई प्रजजन ऋतुओं में जीवित रखने के लिये काफी होती हैं उनकी जीव संख्या में उपरोक्त असमानताएं पाई जाती हैं।

उपरोक्त तथ्य का चित्रण करने के लिए हम एक ऐसी प्रजाति पर विचार करते हैं जिसके सदस्यों की आयु कई वर्ष है व उसके किसी भी एकाकी सदस्य की आयु शुद्धता से निर्धारित की जा सकती है और जिसका तुलनात्मक अध्ययन करने के लिये प्राणी की सब अवस्थाओं को सम्मिलित करने वाले नमूने उपलब्ध हों। अब हम यह कल्पना करते हैं कि इस प्रजाति की मामूली जीवसंख्या में 1930 के प्रजजन-काल में बहुत ही सफल अण्डजनन और तदुपरान्त डिम्भों की रक्षा हुई हो, 1931 में बहुत ही कम अण्डजनन और डिम्भ रक्षा, और 1932 में सामान्य अण्डजनन और डिम्भ रक्षा के पश्चात् 1933 पुनः एक अत्यधिक सफल वर्ष रहा हो। सन् 1931 की सम्पूर्ण जनसंख्या के अन्वेषण में अन्य आयु के प्राणियों की अपेक्षा 1930 की वर्ष श्रेणी के एक वर्षीय प्राणियों का असमानुपातिक आधिक्य रहेगा। अगले वर्ष (1932) जीवसंख्या में 1930 के प्रजजन काल में उत्पन्न दो वर्षीय प्राणी तो स्पष्ट बहुमत में पाये ही जायेंगे परन्तु इनके साथ 1931 के प्रजजन काल में उत्पन्न एक वर्षीय प्राणियों की संख्या इस काल के असफल प्रजजन की साक्षी भी देगी। इस प्रकार 1933 और उत्तरकालीन वर्षों में 1930 और 1931 की श्रेणियों की संख्या में कमी का अंकन और अन्य वर्ष श्रेणियों—उदाहरण के लिये, सामान्य वर्ष 1932 और अत्यधिक सफल वर्ष 1933—से उनकी तुलना की जा सकती है। (चित्र 82) जैसा कि चित्र 80 में निरूपित है 1930 और 1931 में उत्पन्न प्राणी 'प्रमुख वर्ष श्रेणी' का निर्माण करते हैं।
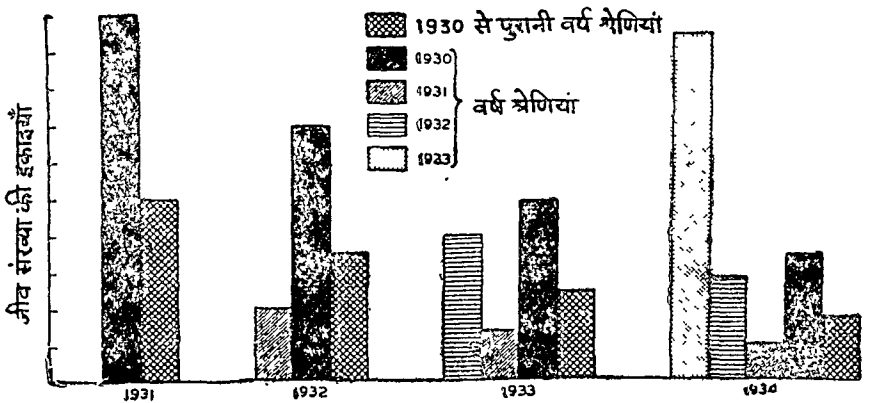
चित्र 80 :—जीवसंख्या की वर्ष श्रेणी संविरचना में होने वाले परिवर्तनों का व्यवस्थित चित्रण।

अण्डजनन की प्रकृति और आयुसमूहों के ज्ञान के साथ साथ वर्ष श्रेणियों के तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा किसी भी ऋतु में अण्डजनन और डिम्भों के अतिजीवन की सफलता की मात्रा सम्भाव्य पर्यावरक घटकों का विश्लेषण करने के लिये एक

साधन प्रदान करती है, क्योंकि किसी भी वर्ष श्रेणी में प्रवेश करने वाले प्राणियों की आपेक्षिक संख्या केवल उपरोक्त दोनों क्रान्तिक कालों (किसी भी ऋतु में अण्ड-जनन और डिम्भों के अतिजीवन का काल) पर निर्भर करती है। प्रजातियों के सामान्य जीवन-काल के उत्तरवर्त्ती वर्षों में वर्ष श्रेणियों में होने वाली कमी प्रायः इतनी विपत्तीमय नहीं होती है। जोर्ट इत्यादि (Hjort et. al., 1933) ने संकेत किया है कि किसी दिए हुए इलाके में विभिन्न वर्ष श्रेणियों में नोर्वे की हेरिंग मछलियों की औसत वृद्धि दर प्रत्येक वर्ष समान है और यह उन श्रेणियों की विद्यमान आपेक्षिक आंकिक संख्या पर निर्भर नहीं करती है। उपरोक्त तथ्य सम्भवतया यह भी संकेत करते हैं और जैसा कि व्यापारिक दृष्टि से पकड़ी गई मछलियों के मिश्रण से भी निरूपित होता है कि सागर में इन मछलियों की प्रत्येक अवस्था के विकास और अतिजीवन के लिए प्रकृति पर्याप्त भोजन उपलब्ध करती है। अलग अलग वर्ष श्रेणियों से सम्वद्ध एकाकी प्राणियों की संख्या में बहुत अधिक अन्तर हो सकता है, (1 से लेकर 30 तक), और यह अन्तर प्राणियों को उनके जीवन के प्रारम्भिक काल में नष्ट करने वाले कुछ घटकों या कार्यरत अन्य विभिन्न घटकों के परिणाम स्वरूप होता है।

सेलफिश और ह्वेल जैसी व्यापारिक महत्व की मछलियों का अध्ययन इनकी वर्ष श्रेणियों के विश्लेषण से गहरा सम्बन्ध रखता है। उदाहरण के तौर पर किसी भी एकत्रित प्राणी संग्रह में प्रवेश करने वाली मछलियों की दर और मृत्यु इत्यादि प्राकृतिक कारणों से इस संग्रह में होने वाली कमी की दर में प्रकृति संतुलन वनाये रखती है। सागर में मछलियों का निष्कासन इस संतुलन को अस्त-व्यस्त करके प्राणी संग्रह में इतनी कमी कर देता है कि इस कमी की पूर्ति प्राणियों के पुनर्भरण से भी नहीं हो सकती है, जिसके परिणाम स्वरूप इस प्रकार के संग्रह में मछली पकड़ना लाभदायक नहीं रहता है। किसी भी क्षेत्र में अत्यधिक मछली पकड़ने के परिणाम स्वरूप उस क्षेत्र से प्राप्त मछलियों के नमूनों में वड़ी आयु और विशाल मछलियों के अनुपात में कमी हो जाती है और प्रचुरता से विद्यमान 'वर्ष श्रेणियों' के सदस्यों की संख्या अन्य वर्ष श्रेणियों के सदस्यों के समान हो जाती है। इसलिए मात्स्यकी क्षेत्रों में 'वर्ष श्रेणियों' के अनुपात की प्रवृत्ति का रिकार्ड कसी मत्स्य संग्रह में होने वाली कमी के वारे में मूल्यवान सूचनायें प्रदान करता है। इस प्रकार की सूचनायें मत्स्य-संरक्षण सम्वन्धी व्यावहारिक नीति के निर्धारण और मात्स्यकी व्यवसाय की दृष्टि से सर्वोत्तम मछलियों को पकड़ने में सहायक होती हैं। यहां कार्यरत मात्स्यकी विज्ञान के सिद्धान्त समुद्री जीव-शास्त्र के लिये वहुत ही महत्वपूर्ण हैं। अधिक और पूर्ण विवरण के लिए पाठकों को जोर्ट इत्यादि (Hjort et.al, 1933), थोमसन (Thompson, 1937) और अन्य सम्वन्धित साहित्य देखना चाहिये।

मत्स्य जीवसंख्या की वर्ष श्रेणियों के विश्लेषण के आधार पर आने वाले वर्ष में पकड़ी जाने वाली मछलियों की सम्भाव्य प्रचुरता के बारे में पुर्वानुमान किये जा सकते हैं। अमरीका के मात्स्यकी ब्यूरो (U. S. Bureau of Fisheries) द्वारा किये गये अध्ययन जो कि व्यावसायिक मैकेरल मात्स्यकी का वैशिष्ठ्य है, उपरोक्त तथ्य का सुन्दर चित्रण करता है। सैटे (Sette 1931) ने मत्स्य जीव-संख्या की प्रत्येक 'वर्ष श्रेणी' के संदर्भ में पकड़ी हुई मछलियों में वर्ष श्रेणियों की आपेक्षिक प्रचुरता का विस्तार से अध्ययन किया है। किसी भी वर्ष पकड़ी हुई मछलियों में युवा 'वर्ष श्रेणियों' की आंकिक संख्या आने वाले वर्षों में समान मात्स्यकी परिस्थितियों के अन्तर्गत पकड़ी जाने वाली मछलियों के संगठन के लिये एक ठोस आधार प्रदान करती है। इस प्रकार की संगणना केवल उसी समय सार्थक होती है जबकि प्रभावी 'वर्ष श्रेणियों के सदस्यों की संख्या में होनेवाली कमी नियमित हो। किसी भी क्षेत्र में प्रवासी मछलियों के सम्बन्ध में विचार करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी अन्य स्थान पर उत्पन्न अज्ञात 'वर्ष श्रेणी' रचना वाली मछलियों के यत्रतत्रिक आगमन के फलस्वरूप उस क्षेत्र के 'वर्ष श्रेणी' अनुपात में अचानक ही परिवर्तन हो सकते हैं। मैकेरल मात्स्यकी जैसी व्यावसायिक मात्स्यकी की सफलता मुख्यतया उस क्षेत्र की जीवसंख्या में प्रभावी 'वर्ष श्रेणी' के सदस्यों की आंकिक संख्या द्वारा ही निर्धारित होती है। उपरोक्त अध्ययन के द्वारा यह ज्ञात हुआ कि 1923 की प्रबल 'वर्ष श्रेणी' के सदस्य ही वर्षों तक पकड़ी जाने वाली मछलियों में प्रचुरता से पाये गये यद्यपि पकड़ी जाने वाली मछलियों की संख्या प्रतिवर्ष कम होती जा रही थी, केवल मात्स्यकी में पुनः वृद्धि उसी समय अनुभव की गई जबकि 1928 में संसेचित सदस्य भी पकड़ में आने लगे।

अध्याय 10

समुद्र में प्रेक्षण और संग्रहण

समुद्र विज्ञानी जहाज और उनकी सुविधाएं

जलयान

समुद्र विज्ञान शोध के लिये एक अत्यन्त ही सुदृढ़ यात्रा योग्य जहाज की आवश्यकता होती है जोकि व्यावहारिक रूप से मौसम की प्रत्येक अवस्था में काम करने योग्य हो और किसी भी तूफान से टक्कर लेने की क्षमता रखता हो। समुद्रीय अन्वेषण में लगे हुए जहाजों का, उनके आकार और परिभ्रमण परास पर आधारित मोटे रूप से या तो महासागरीय, या तटीय प्रकार के जहाज में वर्गीकरण किया जा सकता है, परन्तु ये दोनों वर्ग सूक्ष्म रूप से परिभाषित नहीं हैं क्योंकि बड़े जहाज निकटवर्ती किनारे की छानबीन के लिये काम में लिए जा सकते हैं और अपेक्षाकृत छोटे पोत कभी कभी अपना परिचालन समुद्र में दूर तक करते हैं। आगे दिये गये विवरण में तटीय सर्वेक्षण, तथा मत्स्य-समस्याओं के अध्ययन के लिये काम में लिये गये जहाजों और उपकरणों का वर्णन नहीं किया जायगा, वैसे इस प्रकार के कार्य में मुख्यतया लगे हुवे जहाजों का कभी कभी समुद्र विज्ञान अन्वेषणों में उपयोग किया जाता है। व्यावहारिकता से छोटा या बड़ा, कैसा भी जहाज किसी विशेष प्रकार की छानबीनों के लिये काम में लिया जा सकता है परन्तु कदाचित ही कोई एक जलयान, यदि विशेष रूप से अभिकल्पित नहीं है तो सभी प्रकार के समुद्र विज्ञान कार्य के लिए उपयुक्त होता है। असार्वजनिक या लघु संगठनों द्वारा परिचालित समुद्र विज्ञान जलयानों की मुख्य आवश्यकताओं में से एक उनके परिचालन में किफायत है। इसका साधारणतया अर्थ है कि कम अनुरक्षण-व्यय का अपेक्षाकृत छोटा जहाज एक छोटे कर्मी दल द्वारा चलाया जा सकता है। राष्ट्रीय एजेन्सियों के या उनके द्वारा परिचालित जहाज जैसे **मिटिओर (जर्मनी) डिस्कवरी II (ग्रेट ब्रिटेन) और विलेब्रोर्ड स्नेलियस (नीदरलैण्ड्स)** आदि साधारणतया काफी बड़े होते हैं परन्तु बहुधा वे दुकाजी होते हैं। उदाहरणार्थ मिटिओर को सर्वेक्षण पोत तथा नौसेना प्रशिक्षण पोत की तरह काम में लिया गया था और स्नेलियस नीदरलैण्ड्स इस्ट इन्डीज में सर्वेक्षण कार्य के लिये विशिष्ट रूप से बनाया गया था।

सारणी 57

समुद्र विज्ञान शोध के काम में लिये गये प्रतिनिधि जहाज

जहाज का नाम	राष्ट्रीयता	संचालक	जलयान की किस्म	जलावतरण	समुद्र विज्ञान के लिये शुरूआत	कुल लम्बाई फीट	टन भार	अफसर और खलासी	वैज्ञानिक	संदर्भ
आर.आर.एस डिस्कवरी (II)	ग्रेट ब्रिटेन	उपनिवेश कार्यालय की खोज समिति	इस्पात का वाष्प पोत (जालपोत) (विशिष्ट)	1929	1930	234	2100 (Disp)	46	6	अर्डले और मेकिन्टोश (1936) Ardley and Mackintosh
एफ.ओरवी.एस. मिटिओर	जर्मनी	नौसेना जल सर्वेक्षणीय विभाग	सर्वेक्षण और प्रशिक्षण के लिये इस्पात का वाष्पपोत (गनवोट)	1915	1924	233	1200 (Disp.)	114	10	स्पीयेश Spiess (1932 a)
एच.एम.एस. वीले ब्रोर्ड स्नेलियस	नीदरलैंड्स	प्रतिरक्षा विभाग जल सर्वेक्षण अनुभाग	सर्वेक्षण के लिए इस्पात का वाष्प पोत (गनवोट)	1928	1929	204	1055 (Disp.)	84	6	पिन्के, Pinke, (1938)
आर.आर एस डाना (II)[a]	डेन्मार्क	समुद्र की छानबीन के लिये डेनिस आयोग	इस्पात का वाष्प पोत (जाल पोत)	1917	1921	138	360 (Gross)	14	8	स्मिड्ट Schmidt, (1929
आरमेयर हेनसन	नार्वे	भू-भौतिक संस्था, वर्जेन	लकड़ी का सहायक केच विशिष्ट	1912	1913	76	57 (Gross)	5	6	हैलैंड-हेनसन Helland-Hensen (1914)

c

कार्नेगी [b]	अमेरिका	वाशिंगटन की कार्नेगी संस्था का भू-चुम्बकत्व विभाग	लकड़ी का सहायक ब्रिगैनटी अचुम्बकीय	1909	1928[a]	155	568 (Disp.)	17	8	बॉअर पिटर्स, ऑल्ट फ्लेमिंग Baver, Peters, Ault. Fleming (1917)
अटलान्टिस	अमेरिका	वुडैस होल समुद्र विज्ञान संस्था	इस्पात का सहायक केच (विशिष्ट)	1930	1931	142	460 (Disp.)	17	5	इसेलीन Iselin, (1933)
इ. डब्ल्यू. स्क्रिप्स	अमेरिका	कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में समुद्र विज्ञान की स्क्रिप्स संस्था	लकड़ी का सहायक स्कूनर (यॉट)	1924	1938	104	140 (Disp.)	7	6	मोबर्ग और लाइमन Moberg and Lyman (1942)
कैटेलिस्ट	अमेरिका	वाशिंगटन विश्वविद्यालय की समुद्र विज्ञान प्रयोगशालाएँ	लकड़ी का मोटर-पोत विशिष्ट	1932	1932	75	94 (Gross)	5	9	थॉम्पसन Thompson (1937)

a. 23 जून 1935 को उत्तर-समुद्र में टक्कर से डूब गया।

b. 29 नवम्बर 1929 को एपिया, समोआ पर अग्नि तथा विस्फोट से नष्ट हो गया।

c. पहले एकमात्र वायु मण्डल विद्युत् तथा भू-चुम्बकत्व कार्य के लिये साज-सम्मान से लैस था।

समुद्र विज्ञान शोध के काम में लिये जाने वाले जलयानों के निम्नलिखित लक्षण वांछनीय है :—

1. सुदृढ़ तथा जलयात्रा योग्य, वृहत् परिभ्रमण परास, प्रयोगशाला कार्य के लिए स्थान और संग्रहण के लिये गोदाम,

2. समुद्र पृष्ठ के निकट यन्त्रों का इस्तेमाल सम्भव हो सके और जब समुद्री स्टेशनों पर ठहरा हो तो पवन संवहन कम हो सके इसके लिए निम्न शीर्षान्तिर,

3. परिभ्रमण परास में वृद्धि करने के लिए, तथा इन्जिन के बंद होने पर सुरक्षा की दृष्टि से पाल, और जब जहाज चल रहा हो तो डगमगाने और कम्पन को घटा कर जहाज पर काम करने की अवस्थाओं में सुधार के लिये पाल। समुद्री स्टेशनों पर ठहरा हुआ हो तो जहाज को स्थिर करने के लिए तथा जहाज को हवा के सम्मुख रखते हुवे अनुवात दूरी को घटाने के लिए अधिचलन पाल

4. विंच को लगाने तथा मछली फंसाने के जाल और निकर्षण पोत जैसे स्थूल उपकरणों को इस्तेमाल करने के लिए डेक पर पर्याप्त रिक्त स्थान।

सारणी 57 में कुछ प्रतिनिधि जहाजों को सूचीवद्ध किये गये है जो समुद्रविज्ञान अन्वेषण में बहुतायत से क़ाम में लिये गये है। जो राष्ट्रीय एजेन्सियों के है वे बड़े और कोई 200 फीट से अधिक लम्बे है, और उन पर भारी संख्या मे खलासी होते है, जब कि दूसरी ओर जो जहाज संस्थाओं के है और उन्ही के द्वारा चलाये जाते है वे साधारणतया 100 से 150 फीट लम्बे होते है तथा उन पर बीस से कम खलासी होते है। उन्नीसवी शताब्दी में समुद्र विज्ञान सम्बन्धी कार्यो के लिए केवल विशाल जलयानों के उपयोग की पद्धति ने असार्वजनिक संगठनों के लिए स्वतन्त्र तथा व्यवस्थित छानबीन करने में लगना असम्भव कर दिया। फिर भी नार्वे की भू-भौतिक संस्थान के जोर्न हैलैण्ड हेनसन को विश्वास हो गया था कि छोटे जलयान सार्थकता से काम में लिये जा सकते है और अपने विचारों के अनुरूप "आर मेयर हेनसन" जलयान का निर्माण किया। केवल 76 फीट लम्बे इस छोटे जहाज ने उत्तर एटलाण्टिक महासागर में व्यापक और गहन छानबीन की तथा हैलैण्ड हैनसन की थीसिस की बड़े सुचारु रूप से पुष्टि की। उसकी अग्रता का अनुकरण करते हुए दूसरी असार्वजनिक संस्थाओं ने छोटे जहाज खरीदे या बनाये जो किफायत से चलाये जा सकें।

विंचेस

समुद्र विज्ञान सम्बन्धी छानवीन के लिए उपयोगित विन्चेस बनावट में इतने भिन्न होते हैं कि किसी मानक अभिकल्प का वर्णन करना असम्भव है। विन्चेस के प्रकार और अभिकल्प न केवल अवेक्षित कार्य के लक्षण पर ही निर्भर करते हैं परन्तु जलयान के आकार, विन्चेस को लगाने के लिए उपलब्ध स्थान, साथ में ले जाने वाली तार-रस्सी की लम्बाई, तथा विंच को चलाने के लिए आवश्यक शक्ति पर निर्भर करते हैं। सारणी 57 में सूचिबद्ध जलयानों पर विन्चेस का लगाया जाना और उनका विवरण दिये गये संदर्भ में पाये जा सकते हैं।

तार रस्सी, जिसे विन्चेस ढोते हैं, की शक्ति के आधार पर विन्चेस तीन शीर्षक में वर्गीकृत हो सकते हैं।

गहराईमापन विन्चेस अपेक्षाकृत हल्के होते हैं। इनमें एक या बहु बलदार, छोटे व्यास के तार होते हैं और गहराईमापन तथा हल्के गियर से तली के नमूने प्राप्त करने के लिए अभिकल्पित हैं। कभी कभी वे अन्य प्रकार के समुद्र विज्ञान सम्बन्धी कार्य के लिए काम में लाये जा सकते हैं। बिजली से चलने वाला गहनसमुद्र के लिए गहराईमापन विंच का पार्कर, Parker (1932) ने वर्णन किया है।

जल सर्वेक्षणीय विन्चेस साधारण रूप से सुदृढ़ होते हैं। इनमें गहराईमापन विन्चेस से कुछ भारी तार होते हैं और जल प्रतिचयन साधनों, तापमापी और प्लेंक्टन जालों के इस्तेमाल करने के लिए अभिकल्पित हैं। जब से ध्वानिक गहराई-मापन विधियाँ आरम्भ हुई है तब से तार गहराईपन करने के लिए विशिष्ट रूप से अभिकल्पित विन्चेस इतने प्रचलित नहीं हैं अतः जल सर्वेक्षणीय विन्चेस काम में लिये जा सकते हैं जब तार गहराईमापन करना या तली से नमूना लेना आवश्यक हो।

अति विशाल और मजबूत केबल को ले जाने के लिए भारी विन्चेस मजबूती से बनाये जाते हैं। निकर्षक के लिये, जाल से मछली पकड़ने के लिये, गहरे पानी में लंगर डालने के लिए अथवा ऐसा कार्य जिसमें भारी उपकरण की आवश्यकता होती हो या जहां बड़े तनाव को सहने की क्षमता चाहिये वहां भारी विन्चेस का उपयोग किया जाता है।

विन्चेस का निर्माण न केवल इस्तेमाल किये गये तार-रस्से के आकार पर ही निर्भर करता है परन्तु उसकी लम्बाई पर भी निर्भर करता है, क्योंकि जिनमें कम मात्रा होती है उनका इतना बड़ा या मजबूत होना जरूरी नहीं है जितना कि

सहस्रों मीटर लम्बे तार-रस्से का इस्तेमाल करने वालों का जरूरी होता है। खुले समुद्र में अन्वेषण करने के लिए विन्चेस में कम से कम 5000 मीटर लम्बा केवल होना चाहिये और गहरे समुद्र में अध्ययन के लिए 10,000 मीटर से अधिक लम्बे केवल की आवश्यकता हो सकती है। कुछ ही सौ मीटर लम्बे तार रस्से वाले विन्चेस सस्ते वनाये जा सकते हैं और यदि आवश्यकता हो तो हाथ से भी चलाये जा सकते है। फिर भी, भारी विन्चेस तथा जिनमें अधिक मात्रा में तार होते हैं वे सदैव शक्ति से चलाये जाते हैं। डिस्कवरी II की भांति विन्चेस भाप से गैसोलिन या डीजल मोटर को सीधे विंच से जोड कर, अथवा किसी उचित यन्त्र रचना द्वारा मुख्य इन्जन से, या बिजली की मोटर आदि से चलाये जा सकते हैं। चलाने में किफायत तथा इसकी नम्यता के कारण, विन्चेस के लिए भाप कई तरह से एक अत्यन्त ही वाछनीय शक्ति का स्रोत है परन्तु केवल वाष्प-चलित जलयानो के लिये ही यह व्यवहारिक होती है। समुद्रविज्ञान विन्चेस अब प्रायः बिजली की मोटरों द्वारा चलाये जाते है। यह अनिवार्य है कि सभी प्रकार के विन्चेस की, विशेपकर उनकी जो जल प्रतिचयन साधनों तथा जालों के इस्तेमाल के काम में आते हैं; खींचने तथा अवतरण की चाल की पर्याप्त परास हो। वे ठीक ठीक और शीघ्रता से नियन्त्रित किये जाने योग्य भी होने चाहिये, जिससे यन्त्रों को पूर्व निर्धारित गहराई तक उतारा जा सके और जल से ऊपर सुविधाजनक तल तक जाँच करने के लिए या तार से निकालने के लिए उठाया जा सके। जल-सर्वेक्षणीय विन्च पर खींचने की अधिकतम दर लगभग 200 मीटर प्रति मिनट होनी चाहिये। विन्चेस को चलाने के लिए यदि बिजली की मोटरें काम में ली गई हों तो चाल नियन्त्रण रीओस्टेट की सहायता से किया जा सकता है। कुछ संस्थापनों में, चाल में घटाव मोटर की अश्व-शक्ति को भी घटा देती है परन्तु इस प्रकार की डिज़ाइन को टालना चाहिये क्योंकि भारी बोझ को धीरे-धीरे ही खींचना चाहिये।

डेक पर आरोपित बिजली की मोटरें जल सह होनी चाहिये और विन्चेस स्वयं ऐसे बने होने चाहिये कि उनमें सुगमता से तेल दिया जा सके तथा लवण जल के संक्षारण से आसानी से सुरक्षित किया जा सके, बड़ी मात्रा में तार-रस्सी वाले विन्चेस पर अत्यन्त ही लदान-योग्य कोर वाले ढोल होने चाहिये; अन्यथा जब विन्च तनावाधीन खिचाव करता है तब तार का पेकिंग कोर को गुल्ली से तुड़ा सकता है।

बड़ी मात्रा में तार-रस्सी वाले विन्च ढोल पर तार को शनैः शनैः तथा समानता से लपेटने के लिए किसी प्रकार के विस्तारक आवश्यक होते हैं। यदि ऐसे विस्तारकों का प्रवन्ध नहीं होता है तो तार असमानता से ढोल पर इकट्ठा हो सकता है और तार के वल टूट सकते हैं, तथा इससे भी अधिक गम्भीर बात

यह है कि इससे अधःस्थ कुण्डलियों के बीच में तार इस प्रकार खिसक सकता है कि जब तार को फिर से धीरे धीरे छोड़ा जाय तो वह बुरी तरह फँस जाय। विस्तारक हाथ से चलाये जा सकते हैं परन्तु साधारणतया ये विन्च के अभिन्न अंग होते हैं और यन्त्रचालित होते हैं।

जल सर्वेक्षणीय और गहराईमापन विन्चेस व्यावहारिक रीति से डेक पर पटरी के निकट रखे जाते है जहां वे आसानी से चलाये जा सकते हैं और जहां पर तार-रस्सी डेक तथा हल पर की बाधाओं को दूर कर सकती है। भारी विन्च, जो कि ज्यादा स्थूल होता हैं इस प्रकार लगाना चाहिये कि यह दृढ़ता से आलम्बित किया जा सके, भारी बोझ सह सके और जलयान की स्थिरता को प्रभावित न करे। छोटे जहाजों पर यह सामान्यतः डेक के नीचे पोत-मध्य में संस्थापित किये जाने हैं, या कभी कभी डेक तल से नीचे आधे डूबे हुए लगाये जाते हैं। भारी विन्च का घूर्णाक्ष साधारणतया जहाज़ पर आडा होता है।

तार रस्से तथा सहायक फिटिंग्स

समुद्र विज्ञान सम्बन्धी कार्य में उपयोगित तार-रस्सों के निम्नलिखित गुण-धर्म होने चाहिये :—

1. वे शक्तिशाली पदार्थ के बने होने चाहिए जिससे अपेक्षाकृत कम व्यास के रस्से काम में लिये जा सकते हैं और इस प्रकार विन्च का आकार कम हो जाता है।
2. वे लचीले होने चाहिये तथा एेंठने और उधड़ने वाले नहीं होने चाहिये।
3. वे संक्षारण प्रतिरोधी धातु के बने होने चाहिये जिससे दीर्घायु हो सके, और जल के नमूनों और पकड़े हुए प्लेंक्टन जीवों को संदूषित करने वाले पदार्थों से वंचित होने चाहिए।

अविकारी इस्पात के बलदार तारों से उपरोक्त आवश्यकताओं की पूर्ति भलीभांति पूर्ति हो जाती है। परन्तु यह मिश्रधातु महंगी होती है और व्यावहारिक रूप में कलईदार या जस्तीकृत इस्पात के तार सन्तोषजनक होते हैं फॉस्फर-ब्रॉंज और अलूमिनियम-ब्रॉंज के तार भी काम में लाये जाते हैं क्योंकि ये असंक्षारी होते हैं, परन्तु ये इस्पात के तारों की मजबूती की तुलना में लगभग आधे ही सुदृढ़ होते हैं और उनका जीवन सीमित होता है क्योकि उपयोग के साथ उनका मणिभी-करण होने लगता है और कमजोर होने लगते हैं। बहुत से तार-रस्सों के सन की गुल्ली होती है परन्तु ये इतनी सन्तोषजनक नहीं होती जितनी तार गुल्लियों की रस्सी, क्योंकि सन सिकुड़ सकता है और जब जल में डुबा हुआ हो तो टूट सकता है

और जब तक विशिष्ट रूप मे उपचरित न हो। इसके सड़ने की भी सम्भावना होती हैं। उच्च श्रेणी का सनी रस्सा, तुल्य व्यास के इस्पाती रस्से से लगभग दस गुना कम मज़बूत होता है।

इस्पात की शक्ति उसके संगठन तथा शोधन पर निर्भर करती हैं और यह 50,000 से 400,000 पौण्ड प्रति वर्ग इन्च के बीच होती है। तार रस्सी को बनाने के लिए उपयोगित इस्पात साधारणतया अपेक्षाकृत उच्च तनाव-क्षमता के होते हैं, रस्सी की तनाव क्षमता अलग-अलग तार के व्यास के घटने के साथ बढ़ती है। तो भी, छोटे परन्तु बड़ी संख्या में तारों से बने हुए रस्से की बृहत् शक्ति संक्षारण के लिये प्रस्तुत बृहत् पृष्ठ से विस्थिति होती है और कुछ हद तक घिस जाने के बाद अलग अलग तारों के टूटने की अधिक सम्भावना से विस्थिति होती है।

पियानो या संगीत तार के नाम से कहलाने वाला एकीय-बलदार तार अगाध गहराईमापन और तने-तार की माला रेखाओं के चलाने के काम में लाया जाता है (10·1)। यह तार अत्यन्त ही उच्च तनाव क्षमता का होता है, परन्तु सख्त होता है और यदि ऐंठन पड़ जाय तो टूट सकता हैं। जब बृहत् गहराइयों पर और तने-तार माला-रेखाओं में गहराई मापन करने पर तलीय नमूनों की आवश्यकता नहीं होती हैं तब तार सामान्यतया काट दिया जाता है क्योंकि इसे फिर से लपेटने में समय लगाना बेकार होता है। 0·8 मिली मीटर (नं० 21. B. और S गेज़ व्यास के पियानो तार की कर्षण शक्ति 240 पौण्ड होती है। उथले जल में लगभग 1000 मीटर से कम की गहराई के लिये गहराई मापन करने वाली मशीनों में काम आने वाले बलदार तार में 0·5 मि. मी. (न. 4 B और S गेज़) के दोहरे-जस्तीकृत, कसकर मरोड़े हुवे सात तार होते हैं। इस सप्त-बलदार तार की कर्षण-शक्ति 500 पौंड से अधिक होती हैं, यह सर्वथा लचीला होता है और अनेकों हल्के समुद्र विज्ञान गियर के इस्तेमाल करने के काम में लिया जा सकता है।

जल-सर्वेक्षणीय और भारी विन्चेस पर काम में लिये जाने वाले तार-रस्से साधारणतया या तो 7 × 7 अथवा 7 × 19 प्रकार के होते हैं। 7 × 7 की तार-रस्सी में छः बलदार तार होते हैं, और प्रत्येक सात-सात तारों का बना होता है जो एक केन्द्रीय बलदार क्रोड पर लपेटे हुए होते हैं और क्रोड स्वयम् में सात तार होते हैं। इसी प्रकार से 7 × 19 तार-रस्सा बना होता है परन्तु सात बलदार तारों में से प्रत्येक में उन्नीस तार होते हैं। 7 × 19 रस्से 7 × 7 किस्म के रस्से से तनिक भारी होते हैं और लघु व्यास के रस्से अत्यधिक मज़बूत होते हैं परन्तु अलक-अलग तारों का छोटा आकार अलाभकारी होता है। लगभग एक चौथाई

और एक आठवें इन्च के बीच के व्यास वाले 7×7 किस्म के रस्से समुद्र विज्ञान सम्बन्धी उपयोग के लिये काफ़ी लचीले होते हैं परन्तु बड़े रस्सों में वांछित लचीलेपन के लिये, यह आवश्यक हो जाता है कि भारी विन्च पर 7×19 का रस्सा काम में लिया जाय। सारणी 58 में 7×7 किस्म के जस्तीकृत इस्पात के रस्सों के लक्षण दिये गये हैं; ऐसे रस्से वायुयान डोरी के जैसे होते हैं।

कई प्रयोजनों के लिये यह सोचा जाता है कि तार-रस्से का कार्यकारी भार उसके कर्षण शक्ति के पांचवें भाग से अधिक नहीं होना चाहिये यानी अन्यांक पांच हो। समुद्री अन्वेषणों में इतने उच्च अन्यांक को बनाये रखना कभी कभी असम्भव होता है परन्तु यदि प्रत्याशित तनाव का पता हो तब तार का व्यास इतना होना चाहिए कि अधिकतम भार कर्षण शक्ति के आधे से कभी भी ज्यादा न हो। यदि तार पानी की सतह के निकट टूटता है तो मूल्यवान उपकरणों के न केवल खोये जाने का भय ही है परन्तु डेक पर काम करने वालो के लिये भी खतरा रहता है। काँसे से इस्पात में लचक ज्यादा होती है और जब काँसे के रस्से काम में लिये जांय तो अन्यांक किंचित ज्यादा होना चाहिये।

जब तार रस्सी की काफी लम्बाई पानी में छोड़ दी जाती है तो पानी में रस्सी का भार कर्षणशक्ति तक पहुंच सकता है और पांच के अन्यांक से अधिक हो सकता है, यहां तक कि जब कोई साज सामान रस्सी से नहीं लटकाया गया हो। सारणी 58 में दिये गये किस्म के तार पांच के अन्यांक से बढ़ जाते हैं जब 4000 मीटर से अधिक लम्बा तार पानी में लटकाया जाता है। जल के नमूने तापक्रम या और कोई प्रेक्षण हल्का साज-सामान से लेते समय जब रस्सी पर आकस्मिक तनाव नहीं होता है तो अन्यांक घटाया जा सकता है और कार्य क्षेत्र अधिक गहराइयों तक बढ़ाया जा सकता है। तो भी मछली पकड़ने में, मिट्टी निकालने में और तली अवसाद अभ्यन्तर लेने में तथा जब गहरे समुद्र में लंगर डालना हो, तब उपकरण ऐसा होना चाहिये कि वह तार रस्से के वजन के अतिरिक्त भारी कार्यकारी बोझ को सह सके। गहरे समुद्रों में प्रेक्षणों के लिये बढ़ाई गई कार्यकारी शक्ति गावदुमाकर तार रस्सों के उपयोग से प्राप्त की जाती है, जो मुक्त सिरे पर लघुतम व्यास के होते हैं और भीतरी सिरे की ओर व्यास भिन्न भिन्न अवस्था में बढ़ता है। तली पर उपकरण से काम करते समय फंसने का खतरा हो तो उपकरण और तार रस्सी के मध्य एक "कमजोर कड़ी" जोड़नी चाहिये। यदि भार रस्सी की कर्षण शक्ति तक पहुंचने लगेगा तो यह कड़ी अलग हो जावेगी और या तो सारे उपकरण को छोड़ देगा या युक्ति के किसी दूसरे भाग में तनाव का अन्तरण इस प्रकार हो जावेगा कि यह (तार) सुगमता से खिंचेगा।

सारणी 58

जस्तीकृत फोलादी वायुयान डोरी के लक्षण

(7 बलदार तार, प्रत्येक में 7 तार)

व्यास		प्रति 100 मीटर वायु में भार		करण शक्ति	
मिली मीटर	इन्च	किलो ग्राम	पौण्ड	किलो ग्राम	पौण्ड
3.18	1/8	3.6	8.0	610	1350
3.97	5/32	6.9	15.3	1180	2600
4.76	3/16	8.6	19.0	1450	3200
5.56	7/32	12.3	27.2	2090	4600
6.35	1/4	15.6	34.4	2630	5800
7.94	5/16	24.9	54.8	4200	9200
9.52	3/8	34.2	75.5	5900	13100
11.10	7/16	45.8	101.0	7400	16400
12.70	1/2	62.6	138.0	10,200	22500

जॉन ए. रोएब्लींग्स सन्स कं० ट्रेन्टन, न्यूजरसी के सौजन्य से आंकड़े प्राप्त

तार रस्सों के परिरक्षण के लिये बहुत से उपक्रम बाजार में उपलब्ध होते हैं। इनमें से कोई उपयुक्त है या नहीं यह तार रस्सी के उपयोग करने की रीति पर निर्भर करता है क्योंकि जो पपड़ियाने लगते है वे परिप्लावी जीवों के नमूनों और दूसरे संग्रहणो को संदूषित कर देंगे। इस्पात के रस्सों के परिरक्षण के लिए काम में लिया हुआ क्रैंक-केस-तेल का अपेक्षाकृत बारम्बार प्रयोग एक सन्तोष-जनक विधि है। रस्से को पहली बार पानी में डालने से पहले तेल लगाया जाता है और बाद में समय समय पर, विशेषकर, जब रस्सी को एक लम्बे समय के लिए काम में नहीं लेना हो।

जल सर्वेक्षणीय वीन्च पर काम में ली गई तार रस्सी चिकनी और ऐंठन रहित या विपथित टूटे तारों रहित होनी चाहिये जो भार या संदेशवाहकों के मार्ग को रोकने लगती है। तार रस्सी में जहां कहीं टूट या और कोई क्षति में जोड़ आवश्यक हो वहां एक लम्बे जोड़ से मरम्मत करनी चाहिये जिससे तार के व्यास में महत्वपूर्ण वृद्धि न हो तथा करण न शक्ति में कमी नहो। तार में जो ऐंठन बनते हों उन्हें कभी भी नहीं खींचना चाहिये परन्तु तार को अमरोड़कर, बलों को सीधा कर तथा उन्हें फिर से समरेखन कर, ऐंठन निकालनी चाहिये।

तार रस्सी को बाहर ले जाने के लिये चरखी की हमेशा आवश्यकता होती है। वे निर्बाध चलने वाली होनी चाहिये और इतने व्यास की होनी चाहिये कि उन पर से गुजरने वाला तार न खिंचे या सिकुड़े। जब तक कि परि-स्थितियां ही ऐसे आकार को अक्रियात्मक न कर दें, चरखियों का व्यास रस्सी के व्यास से कम से कम तीस गुना, और हो सके तो पचास गुना होना चाहिये। तमाम चरखियों के रोक लगी होनी चाहिये जिससे पहिये और चौखटे के मध्य तार का फिसलना रुक जाय।

प्रत्येक विन्च के लिए उपकरण का मुख्य भाग एक मीटर पहिया (चित्र 83) होता है जो जल में छोड़ी गई रस्सी की मात्रा (लम्बाई) नापता है। मीटर पहिया चरखी के साथ उपयुक्त परिधि का एक पहिया होता है जिसमें एक यंत्र लगा होता है जो परिक्रमणों की संख्या अंकित करता है। यंत्र इस प्रकार अभिकल्पित होता है कि डायल के दो पाठ्यांकों का अन्तर, अन्दर खिंचे हुए या बाहर जल में भेजे गये तार की मात्रा को सीधे मीटर. फैदम या फिट में. दे देता है। गहराई-मापन, के लिए और ताप मापने के लिए तथा जल के नमूने लेने के लिए मीटर पहिया बड़ी सावधानी से बनाना चाहिये और समय-समय पर घिसाई की जांच करनी चाहिये। पहिये का प्रभावी व्यास उसका स्वयम् का व्यास और तार रस्सी का व्यास जुड़ कर होता है। मीटर पहिया वल्ली या डेविट पर आरोपित किया जा सकता है जो तार को बाहरी ओर भेजता है अथवा यह विन्च पर विस्तारक में बनाया जा सकता है। यह पश्चादुक्त व्यवस्था ज्यादा सुविधाजनक होती हैं क्योंकि विन्च चाकक तव रिकार्डर को सदैव देख सकता हैं। यदि मीटर पहिया ऐसी स्थिति में होता है कि डायल सहज से नहीं दिखलाई पड़े तो लचीली चालमापी डोरी से चलित रेकार्डर ज्यादा सुविधाजनक स्थान पर आरो-पित किया जा सकता है। तार रस्से का मीटर पहिये पर से फिसलने को रोकने के लिए, सम्पर्क-कोण कम से कम 90 का होना चाहिये।

चित्र 83 डायल सूचकों और अविकारी फौलाद की चरखी के साथ मीटर पहिया।

तार रस्सा आरम्भ में विन्च से बाहर की ओर चरखी के द्वारा ले जाया जाता है और अन्त में वल्ली या डेविट से जोकि जहाज़ के पवन मुखी

भाग के ऊपर की ओर निकला हुआ होता है। भारी विन्च से निकला हुआ तार लगभग पोत-मध्य होना चाहिये क्योंकि जब मिट्टी निकालनी होती है तब या तो पाल से या शक्ति से जलयान को ढंग से चलाना पडता है जो केवल तभी सम्भव है जब कि तार रस्सी जलयान के मध्य के निकट लटकी चरखी से लटकाई जावे। जहाज के पार्श्व में टक्कर लगने से रोकने के लिए जहाज से बाहर जाने वाले शुरु के तार (लीड्स) की इस प्रकार व्यवस्था करनी चाहिए कि जब तार ऊर्ध्वाधर लटक रहा हो तो यह हल से कई फीट दूर रहे और साज-सामान के इस्तेमाल को सुविधाजनक करने के लिए यह आमतौर पर आवश्यक होता है कि हल से बाहर निकला हुआ एक कार्य करने के लिए प्लेट फार्म हो जहां दो मनुष्यों के लिये काफी बड़ा स्थान हो। भारी विच पर यदि तार रस्से कों गहरे समुद्र में लंगर डालने के काम लिया जाता है तो चरखिये इस प्रकार लगानी चाहिए कि रस्सी बाहर की तरफ और कमान के ऊपर से निकाली जा सके।

जहाज के डगमगाने या तली पर उपकरण के फंसने से तार रस्सी में अकस्मात तनाव आजाना उपकरण और तार दोनों के लिए खतरनाक होता है। इन तनावों का कुछ हद तक समकरण संचायकों के उपयोग से हो सकता है जो साधारणतया कुण्डलीनुमा कमानियें होती हैं जिनका एक सिरा सुरक्षित और दूसरा सिरा चरखी से नत्थी होता है जिससे होकर तार रस्सी गुजरती है। संचायक साधारणतया अनुसंशोधित किये जा सकते हैं जिससे कमानी के संपीडन और वितान को रस्सी में तनाव के माप की तरह काम में लिया जा सकता है। कुछ किस्म के (संचायक) बल्ली या डेविट के बाहरी सिरे पर मीटर पहिये से कस कर बंधे होते हैं या मुक्त सिरे से नत्थी सादी चरखी से बंधे होते हैं या डेविट अथाव विन्च के ये अभिन्न अंग हो सकते हैं। संचायक पर के खिचाव को, गहरे समुद्र में गहराईमापन करते समय भार के तली से टकराने की स्थिति ज्ञात करने के लिए काम में लिया जा सकता है और जाल से मछली पकड़ते समय तथा मिट्टी निकालते समय इस पर निगरानी रखनी चाहिए ताकि आकस्मिक खिचाव को विन्च पर ढील देकर कम किया जा सके। तार रस्सी के तनाव को मापने के लिए, विशिष्ट युक्तियां जो डाइनेमोमीटर कहलाती हैं, काम में ली जा सकती है।

जहाज पर की प्रयोगशालाएें

जहाज पर प्रयोगशालाओं की स्थिति, उनके लिए निर्दिष्ट स्थान, और लगाई गई सुविधायें आदि जहाज के आकार तथा स्वरूप पर तथा किये जाने वाली छानबीन के प्रकार पर निर्भर करती है। ये प्रयोगशालायें, डेक प्रयोगशालाओं और वैश्लेपिक प्रयोगशालाओं की तरह वर्गीकृत की जा सकती हैं। डेक प्रयोगशाला डेक पर खुलती हैं और कुछ समुद्र विज्ञान सम्बन्धी उपकरण को संचय करने के काम

में आती है। यहीं पर प्रतिवर्ती तापमापियों के पाठ्यांक लिये जाते हैं, जल प्रति-चयन युक्तियों से जल के नमूने खींचे जाते हैं और जल तथा प्लैंकटन जीव नमूनों के परिरक्षण तथा तैयार करने के लिए प्रारम्भिक कार्यवाई की जाती हैं। डेक प्रयोगशाला में रैंक होनी चाहिये जिनमें तार रस्सी से ज्योंहीं जल नमूनों की बोतलें निकाली जांय त्योंहीं उनमें रक्खी जा सके। ये रैंक इस प्रकार व्यवस्थित होनी चाहिये कि बोतलों को बिना हटाये तापमापी पढ़े जा सके और पानी के नमूने निकाले जा सके। काँच की उन बोतलों के लिए जगह होनी चाहिये जिनमें पानी के नमूने परिवाहित होते हैं, जिनमें कुछ रासायानक अभिकर्मक रक्खे जाते हैं और जैविक पदार्थ के परिरक्षण के लिये जिनमें घोल रक्खे जाते हैं। अभिलेख और लेबल तैयार करने के लिये एक बच भी बड़ी सुविधा होती है। ताजे व खारे पानी की टोंटी लगा हुआ एक बड़ा सिंक बहुत उपयोगी होता है और डेक जलरोधी होना चाहिये तथा उसमें निकास नालियां होनी चाहिये क्योंकि काँच की बोतलों को भरते समय जल बाहर गिरता है। समुद्र विज्ञान जलयानों पर डेक प्रयोगशालायें बड़ी परिसम्पत्ति होती हैं विशेष कर खराब मौसम में तथा रात्री में क्योंकि डेक पर ठीक प्रकाश होने पर काफी सन्तोषजनक कार्य किया जा सकता है।

वैश्लेषिक प्रयोगशालायें आमतौर पर डेक के नीचे स्थित होती हैं जहां काफी तो जगह होती है और जहां जहाज़ की गति न्यूनतम होती है। प्रयोगशाला में जहाज़ द्वारा पारेषित इन्जिन और मोटर के कम्पन, जहाज़ की डगमगाहट या तारत्व से भी कहीं ज्यादा कष्टदायक होती है और परिणाम स्वरूप इन्जिन को, जब क्रियात्मक हो, लचकदार कमानियों पर या रबर या कार्क पर आरोपित करना चाहिये। इन प्रयोगशालाओं में उपयोगित उपकरण सामान्यतया वैसे ही होंगे जैसे किनारों पर काम में लिये जाते हैं परन्तु बैंचें, संचय करने का स्थान, और उपकरणों को बेंच पर बांधने के तरीके समुद्र की किसी भी अवस्थाओं में काम करने के अनुकूल होने चाहियें। काम करने की बैंचें आमतौर पर इतनी ऊँची होती हैं कि कर्मचारी स्थान पर आबद्ध स्टूल या सीट पर बैठाया जा सकता है और इस प्रकार व्यवस्थित होता है कि वह स्वयम् को अपने पैरों से युग-बंध कर सकता है जिससे उसके हाथ मुक्त हो जावेंगे। कुछ स्थितियों में छल्लों पर आरोपित बैंचों की व्यवस्था की जाती है परन्तु अपेक्षाकृत समतल पृष्ठ के लाभ उसकी अस्थिरता से अक्सर कम हो जाते हैं। तमाम उपकरण के लिये उप-युक्त संचय खाने होने चाहिये जिससे महासमुद्र में उपकरण के बाहर गिरने या आपस में टकराने का खतरा नहीं हो। ब्यूरेट और दूसरे उपकरण जब काम में आ रहे हों तब बैंच से या स्थायी ब्यूरेट धारी से कसकर बांध देने चाहिये।

वैश्लेपिक प्रयोगशाला में वहते हुए स्वच्छ जल तथा आसुत जल के स्रोत का प्रवन्ध होना चाहिये। आसुत जल वड़ी वोतलों में रखा जा सकता है या हो सके वहां तक विशेप रूप से लगाई हुई कलाईदार टंकी में रखा जाय। लम्वे समुद्री पर्यटन में आसवन उपकरण की व्यवस्था आवश्यक हो सकती है। जव जीवधारियों की छानवीन करनी हो तव ठण्डा किया हुआ समुद्रीजल या वरफ का वक्स आवश्यक है। वरफ का वक्स, जीवाणु-परीक्षा के लिए पानी या अवसाद के नमूनों को परिरक्षण के लिये भी वांछनीय है।

जहाज़ की गति, उसके कम्पन, नमूनों को केवल इकट्ठा करने में लगने वाले समय तथा तंग जगह आदि से उत्पन्न अवांछनीय कार्य-अवस्थाओं के कारण जहाज़ पर प्रयोगशाला में काम आमतौर पर न्यूनतम रक्खा जाता है। तो भी कुछ ऐसे रासायनिक परीक्षण होते हैं जिनको, नमूनों को एकत्रित करने के तुरन्त वाद ही करना चाहिये और सामान्यतः उनको जहाज़ पर ही करने चाहिये। विश्लेपण की विधियां अध्याय VI में उल्लेखित हैं। लम्वे परिभ्रमण में अधिक काम जहाज़ पर ही करना आवश्यक हो सकता है परन्तु ऐसी स्थितियों में मौसम की अवस्थाओं के अनुकूल होने पर, या जव जहाज़ वन्दरगाह में हो या लंगर डाले हो, तव विश्लेपण किये जायं। जहाज़ पर जीव-विज्ञानीय कार्य लक्षण में सीमित होते हैं चूंकि वहुत से नमूने वाद में किनारे पर जांच के लिए परिरक्षित रह सकते हैं और क्योंकि जहाज़ की गति तथा उसके कम्पन सूक्ष्मदर्शियों का उपयोग वस्तुतः असम्भव कर देते हैं।

पानी, जीवधारियों या अवसादों के नमूने जिन्हें तट पर जांचना होता है वे आमतौप पर प्रयोगशाला में संचय नहीं किये जाते परन्तु ऐसे स्थान पर रक्खे जाते हैं जहां ताप के मान में विस्तृता न हो और न चरम ताप हो। उच्च तापों से वहुत सी वोतलों पर लगे हुए रवर (Rubber) के वाशर का विच्छेदन होने लगता है और इससे वाष्पन होने लगता है जो नमूनों को नष्ट कर देता है। घटते-वढ़ते ताप डाट को ढीला कर सकते हैं जिससे वाष्पन होने लगे और हो सकता है वोतलों को तोड़ भी दें। टूटने के खतरे के कारण हिमीकरण तापों को भी टालना चाहिए।

प्रेक्षण एवं संग्रहण

समुद्र मे स्थितियां

जहां प्रेक्षण किया जाय, उस भोतिक स्थल का पता होना चाहिये। जिस अधिक आवृति से अव प्रेक्षण लिये जाते हैं उससे नमूने लेने की स्थितियों का ठीक-ठीक मालूम होना आवश्यक हो गया अतः समुद्र में स्थितियों को ज्ञात करने की विशेप विधियां विकसित की गई है। स्थितियों का ठीक ठीक ज्ञान सर्वेक्षण कार्य में विशिष्ट रूप से आवश्यक है, जहां ध्वानिक गहराई मापन प्रणालियों के पुरस्थापन

भारी संख्या में गहराई मापन करना सम्भव कर दिया जिनको पैंदे की वास्तविक समाकृति दर्शाने के लिए परिशुद्धता से आलेखित करना चाहिए। अमरीकी तट और भू-पृष्ठीय सर्वेक्षण संस्था जैसी संस्थाओं द्वारा विकसित विशिष्ठ तकनीक अभी तक सामान्य समुद्र विज्ञान कार्य के लिए उपयोग में नहीं ली गयी हैं परन्तु विशेष समस्याओं के अध्ययन के लिये इन प्रणालियों को अपनाया जा सकता हैं।

जब भूमि दिखलाई पड़ती है जहाँ पहचानने योग्य लक्षणों का ठीक ठीक से पता लग जाता है वहाँ जहाज़ की स्थिति क्षैतिज कोणों तथा तटीय लक्षणों की सहायता से मालूम की जासकती है। जमीन के नहीं दिखाई पड़ने पर स्थिति के दिशाकोणों को खगोलीय दृष्टि या रेडियो दिशा निर्धारण दिशा कोणों से मालूम की जासकती है। इस प्रकार से स्थापित स्थितियों के बीच की स्थिति को किसी भी समय दूरत्व गणन विधि, यानी चले हुवे मार्ग और तय की हुई दूरी, से पता चलाया जाता है ऐसी विधियाँ बहुत से समुद्र विज्ञान सम्बन्धी कार्यों के लिये पर्याप्त होती हैं परन्तु जहाँ विशेष परिशुद्धता चाहिये, जैसे कि तट–दूर के सर्वेक्षण कार्य में, वहाँ इस प्रकार से मालूम की गयी स्थितियाँ गहराई मापन की आवृति और यथार्थता से संमेय नहीं होती हैं। कुछ अवस्थाओं में लंगर डाला हुआ जहाज या बोया को निर्देश-बिन्दु की तरह काम में लिया जाता है क्योंकि इनकी स्थिति को बारम्बार के खगोलीय प्रेक्षणों द्वारा यथार्थता से स्थापित की जासकती है। सन् 1923 से अमरीकी तट और भूपृष्ठीय सर्वेक्षण संस्था ने स्थिति निर्धारण के ध्वानिक विधियों से प्रयोग किये हैं और उनको उच्च कोटि की परिशुद्धता तक विकसित किये हैं। रेडियो ध्वानिकी परासन (साधारणतया आर. ए. आर. से निर्दिष्ट) में सर्वेक्षणी जहाज़ एक गहराई बम गिराता है जिसे बिजली या पलीते द्वारा फ़ायर किया जाता है। विस्फोट की ध्वनि जहाज पर लगे हाइड्रोफ़ोन द्वारा पकड़ ली जाती है और क्रोनो ग्राफ द्वारा अंकित करली जाती है। विस्फोट का आवेग, जो सभी दिशाओं में जाता है, तटीय स्टेशनों पर लंगर डाले हुए जहाज़ों और बायों, जिनकी स्थिति ठीक ठीक ज्ञात होती है, पर लगे हुए हाइड्रोफोन द्वारा पकड़ लिया जता है। हाइड्रोफोन रेडियो प्रेषी से जुड़े होते हैं और प्रत्येक हाइड्रोफोन पर प्राप्त ध्वनि आवेग रेडियो द्वारा सर्वेक्षणी जहाज तक प्रेषित किया जाता है जहाँ पहुंच के समय क्रोनोग्राफ पर स्वतः अंकित हो जाते हैं। चूंकि रेडियो संकेत के प्रेषण और प्राप्ति के लिये आवश्यक समय अत्यणु होता हैं अतः बम विस्फोटन और प्रत्येक हाइड्रोफोन से संकेत के वापसी के बीच का समय वह होता है जो पानी में ध्वनि आवेग को बम विस्फोटन केन्द्र से हाइड्रोफ़ोन तक पहुँचने में (समय) लगता है। पानी में ध्वनि वेग को ताप और लवणता के ज्ञात वितरण से संगणित किया जा सकता है (10.2) परन्तु तरंगे तल और पृष्ठ के मध्य परावर्तित होती है और घनत्त्व स्तरीकरण से विकृत हो सकती है इसलिये प्रभावी क्षैतिज वेग को स्थापित करने के लिये परीक्षण मूलक

प्रेक्षण आमतौर से कर लेने चाहिये। जब ध्वनि आवेग का वेग ज्ञात होता है तो बम और परिशुद्धता से ज्ञात हाइड्रोफोन की स्थिति के मध्य की दूरी सरलता से ज्ञात हो जाती है। दो या अधिक ऐसी दूरियों के ज्ञान से बम विस्फोटन की स्थिति हाइड्रोफोन से 100 मील के फासलों तक कुछ ही सैंकड़ों फीट के अन्दर मालूम की जा सकती है। रेडियो ध्वनिकी परासन बहुल अन्तराल पर मालूम किया जाता जबकि सर्वेक्षण पोत गहराई मापी डोर चला रहा होता।

जब विस्तृत सर्वेक्षण भूमि के अदृश्य होने पर किये जाते हैं तब लंगर डाले हुए बोया के मध्य की दूरी को सही सही मालूम करने के लिये तने हुए तारों की माला–रेखाऐं भी काम में ली जाती हैं। फौलादी पियानो तार को नियन्त्रित तनाव में रखकर तथा 140 मील लम्बे तार को ढोल से एक परिशुद्ध मीटर पहिये के ऊपर से लेजाकर तार को जल में भेज कर दूरियाँ मापी जाती हैं। जब 15–20 मील लम्बी लंगर डाले हुवे बोयो की कतार की दूरी नाप ली जाती है, तार काट दिया जाता है और छोड़ दिया जाता है। उपरोक्त रूपरेखित विधियों के संयोग से भूमि से अदृश्य स्थानों का अत्यन्त ही ठीक ठीक सर्वेक्षण किया जा सकता है जहाँ पर गहराइयाँ बोयो का ठीक से लगंर डालना असम्भव नहीं कर देती हैं। अमरीका के तट और भूपृष्ठीय संस्था द्वारा काम में ली गयी प्रणालियों का रुड़े, Rude 1938 और वीट्च तथा स्मिथ (Veatch & Smith, 1939) द्वारा वर्णन किया गया है।

ध्वानिक गहराई मापन

ध्वानिक गहराई मापन उपकरण के तीन मुख्य भाग होते हैं (i) ध्वनि आवेग के उत्सर्जन के लिये स्रोत (ii) जाने वाले और वापस आने वाले संकेतों के परिचयन अथवा अंकन के लिये उपकरण (iii) ध्वनि के समुद्र तली तक पहुँचने तथा प्रतिध्वनि के वापस जहाज तक आने में लगने वाले समय को मापने का कोई साधन। ध्वनि स्रोत दो सामान्य प्रकार के होते हैं: वे जो श्रव्य आवृति की ध्वनि उत्सर्जित करते हैं जो कि पानी में अदिशीय होती है या वे जो उच्च आवृति के कम्पन उत्सर्जित करते हैं जो कि अश्रव्य होते हैं तथा ये (स्रोत) पराश्रव्य कहलाते हैं। श्रव्य प्रकार के स्रोत साधारण उपयोग के लिये सन्तोषजनक होते हैं परन्तु छिछले जल में या अति असमान तली पर गहराई मापन के लिये दिशीय पराश्रव्य उपकरण काम में लेना चाहिये। श्रव्य प्रेपित्रों में यद्यपि दूसरी युक्तियां होती है परन्तु आम तौर से एक डायफ्राम होता है जो एक विद्युत् चुम्बक द्वारा कम्पित किया जाता है। पराश्रव्य–या पराध्वनिक प्रेपित्र का कार्य क्वार्टज क्रिस्टल के दाब विद्युत् गुण पर निर्भर करता है क्योंकि इन क्रिस्टल पर जब उच्च विद्युत् दाब लगाया जाता है तब

ये उच्च आवृति से कम्पन करने लगते हैं तथा चूंकि यह प्रक्रिया प्रतिवर्ती होती है, इसलिये लौटने वाली प्रतिध्वनि परिपथ में एक विद्युत धारा उत्तेजित करती है अतः एक ही युक्ति (सावन) ध्वनि प्रेषित और परिचायक का काम करती है। श्रव्य प्रकार के ध्वानिक गहराई मापक में जावक संकेत तथा वापसी प्रतिध्वनि एक निमज्जित माइक्रोफोन, जिसे हाइड्रोफोन कहते हैं, द्वारा ग्रहण किये जाते हैं।

ध्वनि आवेग के समुद्र तली तक पहुँचने और हाइड्रोफोन तक वापस आने के लिये आवश्यक समय को ज्ञात करने के लिये विविध युक्तियाँ काम में ली जाती हैं। अगाध समुद्र में गहराई मापन के लिये स्टॉप वाच की सहायता से समयान्तर निकालना परम सरल विधि है तो भी, यह विधि बहुत परिशुद्ध नहीं है और उथले जल में जहाँ समयान्तर कम होता है, व्यावहारिक नहीं है समयान्तर मापने के बहुत से उपकरण दृश्य संकेतों या दृश्य तथा श्रव्य संकेतों के संयोजन पर निर्भर करते हैं और कुछ युक्तियों में समयान्तर गतिमान् टेप पर स्वतः अंकित हो जाता है। व्यवहार में उपकरण को गहराई मापन के स्थिर ध्वनि वेग, (103) सामान्यतः 800 से 820 फैदम प्रति सेकण्ड (1463 और 1500 मीटर प्रति सै०) के बीच, के लिये समंजित कर लिया जाता है और इसलिये गहराई मापन की स्थिर ध्वनि वेग का उपयोग होने पर समयान्तर प्राप्त गहराई का प्रत्यक्ष माप होता है। परिशुद्ध कार्य में इस प्रकार ज्ञात की गयी गहराइयों को ताप और लवणता के ऊर्ध्वाधर विस्तार को ध्यान में रखते हुए समंजित कर लेना चाहिये। स्थिर चाल से परिक्रामी घूर्णक चकती की सहायता से समयान्तर साधारण रूप से मापा जाता है। यह चाल चकती पर के अंशाकनों और गहराई मापन के ध्वनि वेग से मालूम की जाती है। उदाहरणार्थ, चकती शून्य से 1500 मीटर तक पढ़ने के लिये अंशांकित की जा सकती है और यदि 1500 मीटर प्रति सैकण्ड की ध्वनि वेग के लिये निर्णीत हो तो चकती के एक घूर्णन में 2 सेकण्ड लगेगें यानी जब गहराई 1500 मीटर हो तो 2 सैकण्ड ध्वनि के तली तक पहुँचने और वापस आने का समय है। हर बार चकती के शून्य अंश पर आने पर जावक संकेत स्वतः सक्रियित हो जाता है। इस प्रकार के अगाध जल उपकरण में जब इयर-फ़ोन काम में लिये जाते हैं तो चकती की स्थिति उसी क्षण नोट कर ली जाती है जब वापसी प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। अंकित गहराई इस प्रकार के कई मापन का आमतौर से औसत निरूपण करती है। उथले जल (500 मीटर से कम गहरा) में काम करने के लिये जावक ध्वनि आवेग और वापसी प्रतिध्वनि द्वारा उत्प्रेरित दमक ज्योति संकेत का सामान्यतया उपयोग किया जाता है। ऐसे उपकरणो में ज्योति एक परिक्रामी भुजा पर होती है जो एक अंशांकित चकती के पीछे लगी होती है इस चकती पर एक वृत्ताकार दरार होती है जिसके आर-पार प्रकाश दिखाई देता है। हर बार जब प्रकाश गहराई मापनी के शून्य अंश पर से गुजरती है तब जावग ध्वनि आवेग स्वतः उत्सर्जित होता है, और वापसी प्रति

ध्वनि ज्योति को दमकाता है जिससे डायल पर के अंशांकनों से गहराई सूचित हो जाती है। स्व-चलित अभिलेखन युक्तियों में गहराइयाँ एक गतिमान् कागज पर अंकित हो जाती हैं और इस प्रकार से प्राप्त आलेख, तली की ठीक ठीक समाकृति निरूपित करता है। ध्वानिक अगाधतामापी की वनावट और परिचालन से सम्बन्धित विस्तृत विवरण, अन्तर्राष्ट्रीय जल सर्वेक्षणीय ब्यूरो द्वारा सामयिक रूप से प्रकाशित हाइड्रोग्राफिक रिव्यू में दिये गये है। अमरीकी तट तथा भूपृष्ठीय सर्वेक्षण संस्था द्वारा काम में लिये गये उपकरणों के वर्णन रुड़े (Rude, 1938) और वीट्च तथा स्मिथ (Veatch & Smith, 1939) ने किये है।

तार गहराई मापन

ध्वानिक विधियां जब से काम में आने लगी है, केवल मात्र गहराई मापन के उद्देश्य से अपेक्षाकृत बहुत कम तार गहराई मापन किये जाते है। समय समय पर इसकी परीक्षा की जानी चाहिये कि ध्वानिक उपकरण सफलतापूर्वक काम कर रहा है परन्तु बहुत से प्रायः समुद्र तलीय अवसादों के नमूनों को प्राप्त करने के स्पष्ट उद्देश्य से अब तार गहराई मापन किये जाते हैं। समुद्र तली से नमूने इकट्ठे करने के लिये उपयोगित उपकरण का भार बढ़ गया है अतएव पियानो-तार गहराईमापी मशीने अब अधिक पर्याप्त नहीं है इसके वजाय इस प्रयोजन के लिये जल सर्वेक्षणीय केवल और विंच या भारी विंच भी काम में लेने चाहिये। तार रस्सी के मुक्त सिरे पर या तली प्रतिचयन युक्तियों पर रक्खे गये भार की मात्रा केवल की शक्ति पर, पानी की गहराई पर (इसलिये पानी में उतारे गये तार के भार पर) और कई स्थितियों में प्रतिचयन युक्ति के प्रकार पर निर्भर करती है। जब भार स्वयन् पैंदें तक पहुँच जाता है तो संचायक' डाइनेमो मीटर तथा अन्य युक्ति की गति की सहायता से घटे हुए भार का परिचयन होना संभव होना चाहिये। विन्च यदि तुरन्त नहीं रोक दिया जाय तो तार रस्सी का पैंदे में ढेर लग जावेगा और जब वापस खींचा जावेगा तो बुरी तरह ऐंठ जायगा या उलझ जायगा। यदि लोहे के बाट काम में लिये गये हों तो जैसे ही वे पैंदें से टकरावें, तो छोडने की यन्त्र रचना से वे नाचे गिराये जा सकते हैं परन्तु यदि सीसे के बाट काम में लिये गये हों तो वे स्थायी रूप से बंधे रहते हैं। 5/32 इन्च की इस्पाती रस्सी से गहराईमापन के लिये 1000 मीटर से कम गहराइयों के लिये लगभग 50 पौण्ड का भार केबल के सिरे पर संलग्न करना चाहिये और इससे दुगनी मात्रा में सीसा लगभग 4000 मीटर गहराइयों के लिये चाहिये।

दाब मापने वाला अरक्षित प्रतिवर्ती तापमापी बाट से कोई 50 मीटर ऊपर गहराईमापन तार पर नत्थी कर तथा एक रक्षित प्रतिवर्ती ताप मापी के संयोजन से कभी कभी गहराई की परीक्षा करने के लिये काम में लिया जाता है (10.4)।

तलीय प्रतिचयन युक्तियां

समुद्र तली के अवसादों के नमूनों को एकत्रित करने के लिये काम में लाई जाने वाली युक्तियां पानी की गहराई, निक्षेप का स्वरूप और उपलब्ध तार रस्सी की मजबूती पर निर्भर करती हैं। कतिपय उपकरण जो नरम और संसजक अवसादों में काम के लिये उपयुक्त होते हैं वे मोटे दाने वाले या चट्टानी पदार्थ वाले पैंदें में प्रयुक्त नहीं किये जा सकते। इसी प्रकार अन्य प्रकार के उपकरण जो उथले जल में काम में लिये जा सकते हैं वे गहरे पानी में साधारण उपयोग के लिये बहुत भारी होते हैं। अवसादों की ऊपरी परतों के प्रतिचयन के लिये विधियां निकाली गयी हैं परन्तु मीटीयार अभियान, 1925-1927 के बाद से ही आन्तरिक नमूने प्राप्त करने के लिये ज्यादा जोर दिया गया है अब ऐसे उपकरण उपयोग में लिये जा रहे हैं जो कई मीटर लम्बे कोड़ लेंगे और इनसे भी लम्बे नमूने लेने योग्य उपकरणों का विकास करने के लिये काफ़ी मनन किया जा रहा है। समुद्र विज्ञान के अन्य कई क्षेत्रों में उपयोगित उपकरणों के प्रतिकूल, समुद्री अवसादों के नमूने लेने वाली युक्तियों का मानकीकरण नहीं हुआ है। प्रत्येक अन्वेषक अपने ही प्रकार का तली प्रतिचयक काम में लेता है परन्तु तमाम प्रतिचयक कुछ मूल डिज़ाइन पर आधारित होते हैं हफ, (Hough,1939) ने विभिन्न प्रकार के प्रतिचयकों का वर्णन किया है तथा उन्हें सूचि बद्ध किया है और एक सर्वांगंपूर्ण ग्रंथ सूची दी है।

समुद्र विज्ञान कार्य के लिये उपयोगित तली प्रतिचयक तीन सामान्य श्रेणियों में आते हैं ड्रेजेस (कर्षक बाल्टी), स्नेपर्स (सन्डासी) और गुदा निकालने वाली नलियां। प्रकृतिवादी निकर्षण पोत (चित्र 89) के आधार पर प्रतिरूपित परन्तु मजबूत पदार्थ से निर्मित तथा जालीनुमा जंजीर के थैले के साथ ड्रेज चट्टानों के नमूने प्राप्त करने के लिये काम में लाये जाते है, जहाँ समुद्र तली चट्टान खण्डों से आच्छादित हो या जहाँ ठोस शैल दृश्यांश होते हों। ठोस पैंदे के छोटे बेलनाकार ड्रेजेस कभी कभी अपेक्षाकृत उथले जल में असंघटित पदार्थ को इकट्ठा करने के लिये उपयोग में लिये जाते हैं। झाम की किस्म के सन्डासीनुमा प्रतिचयक अवसादों के पृष्ठस्थ परतों के नमूने लेने के लिये व्यापक रूप से काम में लिये गये हैं। तार यन्त्री (टेलीग्राफ) स्नेपर्स (सन्डासियां) व्यापक रूप से, विशेष कर सर्वेक्षणीय पोतों द्वारा नेमी तार-गहराई मापन कार्य में, प्रयुक्त किये गये हैं। इस अपेक्षाकृत साधारण युक्ति के उपयोग की कमी यह है कि यह अति अल्प नमूना लेता है। यही सिद्धान्त रोस स्नेपर में भी प्रयुक्त किया गया है जो अवसाद के सैंकड़ो घन सेन्टीमटर उठा लेता है। इस सामान्य प्रकार के अन्य प्रतिचयक समुद्र तल जीव जन्तुओं के प्रतिचयन के लिये बनाये गये हैं (चित्र 89 और 10.5)। झाम की तरह के प्रतिचयक का दोष यह है कि जब इसे पृष्ठ पर खींचना होता है तो इसकी अंतवस्तुएँ धुल सकती हैं। यह विशिष्ठ रूप से यथार्थ है जब उन क्षेत्रों में इसका उपयोग किया जाता है जहाँ

तली रेतीली होती है या अपरिष्कृत खण्ड होते हैं, चूंकि कल्लों में पकड़ा गया खण्ड उनके पूरी तरह से बंद होने में रुकावट डाल सकता है।

गुदा (भीतरी भाग) निकालने वाली युक्तियां (चि. 85) मुख्य रूप से लम्बी नलियां होती है जो अवसादों के भीतर तक या तो स्वयम् के संवेग से या फिर विस्फोटन के निरावेश से चली जाती हैं। पश्चादुक्त सिद्धान्त पिगोट, (Piggot, 1936) के गुदा निकालने वाले उपकरण में प्रयुक्त किया गया है। संवेग-प्रकार के गुदा निकालने वाले उपकरण बाटों के सहित लगभग 600 पौण्ड होते हैं। ये उपकरण लगभग 2000 मीटर तक की गहराइयों पर नरम अवसाद में से लगभग 5 मीटर लम्बी गुल्लियां निकाल लेते हैं (एमरी और डाइट्भ, Emery and Dietz, 1941) पिगोट की गुल्ली निकालने वाली नली 4000 मीटर से अधिक गहराइयों पर लगभग 3 मीटर लम्बी गुल्लियां निकालने के काम में ली गई है। मोटे दाने के निक्षेप में गुल्ली निकालने वाली नलियां लगभग 0·5 मीटर से अधिक विभेदन नहीं कर सकती।

चित्र—84 तली प्रति चयक संडासी प्रकार का

संवेगी गुल्ली प्रतिचयक जब तली तक पहुँच जाता है तो निर्बाध रूप से चल कर रुकने दिया जाता है। भेदन गहराई, उपकरण के भार अवसाद का लक्षण, नली के व्यास और काटने वाली नोक से निर्धारित की जाती है। गुदा निकालने वाली नली की किस्म और आकार जो किसी भी तार रस्सी पर काम में ली जा सकती है, को निर्धारित करने वाला कारक केवल उपकरण का वजन ही नहीं होता क्योंकि अधिकतम तनाव गुदा निकालने वाली नली को अवसाद से बाहर खींचते समय होता है और यह (तनाव) उपकरण के भार से कई गुना हो सकता है। एमरी डाइट्भ का प्रतिचयक 2 या 2.5 इन्च व्यास के जस्तीकृत लोहे के नल से बनाया जाता है। यह अपचायक युग्मन द्वारा एक लघु नल से जोड़ दिया जाता है जिस पर बाट रक्खे जाते हैं। पानी के वहाव के लिये अपचायक युग्मन छेददार होता है और कभी कभी इसमें गोलक वाल्व लगा होता है। काटने वाली नोक तीक्ष्ण होती है और स्वयं नली (के व्यास) से कुछ कम आन्तरिक व्यास की होती है ताकि आंतरिक दीवार घर्षण घट जाय और भीतरी लाइनर को पकड़े रक्खे जो दीवार घर्षण को
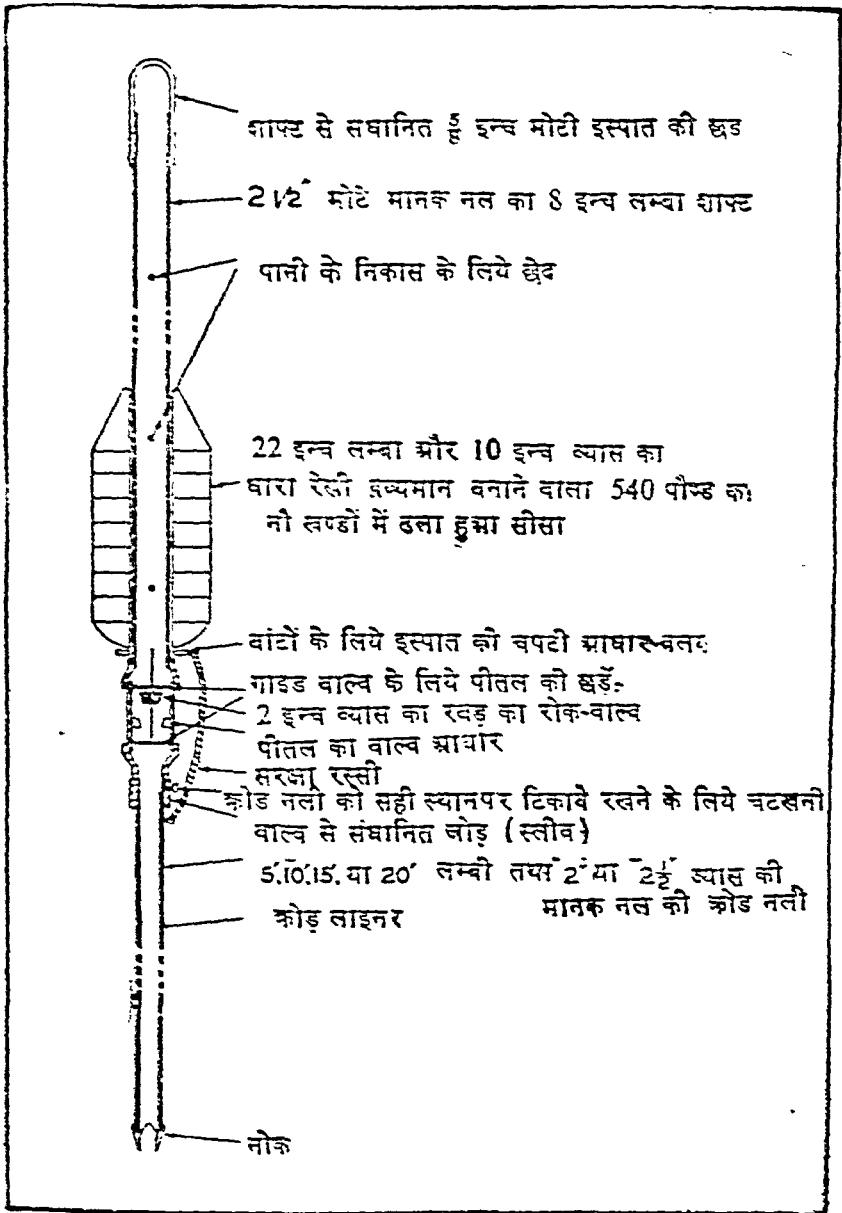
चित्र 85 फ्लरी-डाइव्ज क्रोड प्रतिचयक

और भी घटा देता है और गुल्ली नमूनों को निकालना सुविधा जनक कर देता है। भीतरी लाइनर वेल्लित धातु या सैलूलॉयड की चादरों के होते है और नल में निविष्ट कर दिये जाते हैं या वे धातु या काँच के नल के बने होते हैं जो नमूने के ले लेने के बाद काट दिये जाते हैं। कुछ गुल्ली युक्तियों में गुदा पकड़ने वाली नलियों की नोक पर उपकरण के तली से ऊपर उठाने पर गुल्ली को नली से बाहर फिसलने से रोकने के लिये एक गुल्ली पकड़न लगी होती है। गुल्ली नलियों की भेदन गहराई प्राप्त नमूनो की लम्बाई से प्राय: अत्यधिक होती है। गुल्ली नली के लक्षण तथा अवसाद के प्रकार पर आधारित कटाई की मात्रा लगभग 25 से 50 प्रतिशत के बीच परिवर्तित होती है। कुटाई की प्रकृति और नमूनों के स्तरीकरण पर होने वाले इसके प्रभावों की छान बीन एमरी तथा डाइट्ज़, (Emery & Dietz, 1941) द्वारा की गयी है। एकमेन की प्रारम्भिक डिज़ाइन पर आधारित और ट्रास्क (ह्यु, Hough, 1939) द्वारा विकसित, परन्तु फिर भी ऊपरोल्लेखित सामान्य प्रकार के छोटे उपकरण काफी हल्के (साज सामांन) गीयर पर काम में लिये जासकते है तथा इनसे 0,5 और 1,0 मीटर के बीच की लम्बाई के नमूने लिये जा सकते हैं।

तलो नमूनों का शोधन तथा देखरेख काफी हद तक बाद में किये जाने वाले परीक्षणों की प्रकृति पर निर्भर करती है (अध्याय XX)। कई उद्देश्यों के लिए नमूनों को रबर के वाशर लगे हुए चिनाई मर्तबानो में रखना पर्याप्त होता है कोई परिरक्षी या अतिरिक्त जल की आवश्यकता नहीं होती। बोतलों के बाहर लेबल लगा देने चाहिये क्योंकि यांत्रिक अपघर्षण तथा अणुजीव की सक्रियता, अवसाद नमूने से लगे हुए किसी भी कागज को नष्ट कर सकती है या अपाठ्य बना सकती है। गुल्ली के नमूने खंड में काटे जा सकते हैं और सावधानी पूर्वक बोतलों में रक्खे जा सकते हैं या सम्पूर्ण नमूना भीतरी लाइनर में रक्खा जा सकता है।

ताप-मापन

समुद्र विज्ञान सम्बन्धी कार्यो में तीन प्रकोर की ताप-मापन युक्तियों का उपयोग किया जाता है। मानक प्रकार के परिशुद्ध तापमापी काम में लिये जाते हैं, पृष्ठ का ताप ज्ञात करने के लिये जब पृष्ठीय जल का नमूना बाल्टी से लिया जाता है और स्थलमण्डल जल का ताप ज्ञात करने के लिए जब जल के नमूने ऊष्मा रोधित प्रतिचयन बोतलों द्वारा लिये जाते हैं (10·85)। स्थल-मण्डलीय तलों के ताप मापने के लिये काम में लिये गये तापमापी प्रतिवर्ती प्रकार के होते हैं और साधारणतया जल प्रतिचयन बोतलों पर लगे होते हैं जिससे ताप तथा लवणता या और किसी भौतिक या रासायनिक परीक्षणों के लिये पानी के नमूने एक ही तल से लिये जाते हैं। तीसरे प्रकार के तापमापी उपकरण वे

होते हैं जो लगातार अंकन करें जैसे तापलेखी और जो किसी नियत तल पर या समुद्र पृष्ट के निकट का ताप अंकित करने के लिए तटीय स्टेशनों पर और जहाज़ पर काम में लिये जाते हैं। गहराई के सतत फलन की तरह ताप को ज्ञात करने के लिए बहुतसी युक्तियों का आविष्कार हुआ परन्तु इनमें से अधिकांश किसी न किसी कारण से अक्रियात्मक या न्यून परिशुद्धता की सिद्ध हुई । स्पीलहॉस द्वारा विकसित गहन ताप लेखी (10.7) ने पूर्व डिजाइनों को अप्रभावी करने वाली बहुतसी बाधाओं को हल कर दिया
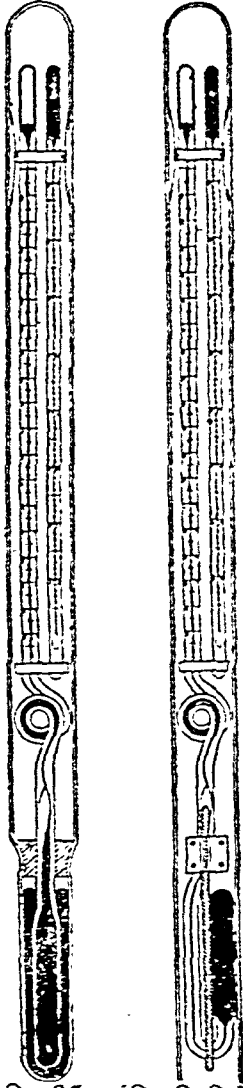
चित्र 86–समंजित स्थिति में यानी उत्क्रमण से पहले रक्षित और अरक्षित प्रतिवर्ती तापमापी । दाहिनी ओर समंजित तथा प्रतिवर्ती स्थिति में केशिका का संकुचित भाग दिखाया गया है ।

समुद्र के वैज्ञानिक अन्वेषण के लिए सेन्टीग्रेड पैमाना ही मानक पैमाना है । ताप के घनत्व और अन्य भौतिक गुण-धर्मों पर अपेक्षाकृत अत्यधिक प्रभाव होने के कारण तथा वृहत् गहराइयों पर ताप में अत्यन्त ही कम घट-बढ़ पाई जाने के कारण तापमान में उच्च मात्रा की परिशुद्धता आवश्यक होती है । पृष्ठीय ताप 0·05° सें. ग्रे. से कम तक सही सही होना चाहिये और कुछ परिस्थितियों में तो यह 0·01° से. ग्रे. से भी कम तक सही सही होना चाहिये । इतनी परिशुद्धता केवल भलीभांति बनाये गये तापमापी से ही प्राप्त हो सकती है जो सावधानीपूर्वक अनुसंशोधित हो तथा जिसकी समय समय पर पुनः परीक्षा की जाती हो । पृष्ठीय परतों की स्थितियों में बड़ी परिवर्तनशीलता होने के कारण वहां की परिशुद्धता के परिमाप इतने उच्च होना आवश्यक नहीं है ।

पृष्ठीय ताप या ऊष्मारोधित बोतल के साथ उपयोग के लिये रूढ़ प्रकार के तापमापी में (अरक्षित) खुला पैमाना होना चाहिये जो आसानी से पढ़ा जा सके तथा इसकी (पैमाने की) प्रत्येक डिग्री दसवें भाग तक विभाजित होनी चाहिये। पैमाने को, हो सके वहां तक, केशिका के काँच पर निक्षारित करना चाहिये। संतुलन शीघ्र हो इसके लिये तापमापी अल्प ऊष्मा धारिता का होना चाहिये; पैमाने पर कई अंकों पर अनुसंशोधन त्रुटियों के लिये किसी ज्ञात परिशुद्धता के तापमापी से तुलना कर इसकी (तापमापी की) जांच करनी चाहिये, और पारद-स्तम्भ तक पैमाने को निमज्जित कर इसे पढ़ना चाहिये। बाल्टी में लिये गये नमूनों से पृष्ठीय ताप के प्रेक्षण नमूना निकालने के तत्काल बाद करने चाहिए, अन्यथा, विकीरण, वाष्पन और संवाहन से पानी के नमूने का ठण्डा या गरम होने का ताप पर मापने-योग्य प्रभाव हो सकता है। इस प्रकार से लिये गये पृष्ठीय ताप, सन्निकटतः, ऊपरी 1 मीटर तक के पानी की स्थीतियां निरूपित करता है। जलयान पर से लिये गये नमूने हल के किसी निस्सरण मोरी से यथासम्भव दूर से प्राप्त करने चाहिए और यदि जलयान चालू हो तो अनुजल (वेक) के वंथित-पानी को टालने के लिए मोरा (गलही) के निकट से ही जल के नमूने लेने चाहिये। (ब्रूक्स Brooks, 1932)।

रक्षित प्रतिवर्ती तापमापी—प्रतिवर्ती ताप मापी (चित्र 86) आमतौर से जल प्रतिचयन बोतलों (चित्र 87) पर लगे होते हैं परन्तु वे प्रतिवर्ती फ्रेम में भी लगाये जा सकते हैं और स्वतन्त्र रूप से काम में लिये जा सकते हैं। नेगरेट्टी और झम्ब्रा (लन्दन) ने 1874 में सबसे पहले प्रतिवर्ती तापमापी को पुरःस्थापित किया था और तभी से वे इतने सुधारे गये कि ठीक से बनाये गये उपकरण अब 0·01° से. गे. के अन्दर तक सही सही होते हैं। 1873-1876 के चेलेन्जर अभियान में स्थलमंडलीय ताप न्यूनतम तापमापी द्वारा लिये गये थे जोकि उस समय के परम सन्तोषजनक उपकरण थे।

एक प्रतिवर्ती तापमापी विशेषरूप से दुमुहा तापमापी होता है। यह नियन्त्रित स्थिति में आवश्यक गहराई तक नीचे भेजा जाता है और इस स्थिति में इसमें एक बड़ा सा पारदागार होता है जो एक बारीक केशिका द्वारा ऊपरी सिरे पर एक छोटे बल्ब से जुड़ा रहता है। बड़े पारदागार के ठीक ऊपर केशिका संकुचित हो जाती और शाखाओं का रूप धारण कर लेती है जिसकी एक भुजा छोटी होती तथा इसके ऊपर तापमापी नली एक पाशनुमा मुड़ जाती है जहां से यह एकदम सीधी हैं तथा छोटे बल्ब में समाप्त होती है। तापमापी इस प्रकार बनाया जाता है कि नियन्त्रित स्थिति में पारद आगार को, केशिका को तथा बल्व के कुछ भाग को भर दे। संकुचन से ऊपर पारद की मात्रा ताप पर निर्भर रहती है और जब तापमापी 180° डिग्री घुमाकर प्रतिवर्तित होता है तो पारद स्तम्भ

संकुचन विन्दु पर टूट जाता है तथा नीचे की ओर आने लगता है डिमसे वल्ब और अंशांकित केशिका के कुछ भाग भर जाते हैं और इस प्रकार उत्क्रमण पर ताप सूचित करता है। तापमापी के प्रतिवर्ती होने के वाद यदि ताप वढ़ता है तो पारद संकुचन के परे वल से निकल जाता है और उस पारद को फंद में डालने के लिये केशिका में पाश, जो कि आम तौर से वढ़े हुवे व्यास की होती है को अभिकल्पित की जाती है। पाठ्यांक लेते समय आसपास के ताप और प्रतिवर्तन के समय के ताप के मध्य अन्तरों के परीणामी परिवर्तनों से पाठ्यांकों को सही करने के लिये एक छोटा सा मानक किस्म का तापमापी, "सहायक तापमापी" कहलाने वाला, प्रतिवर्ती तापमापी के स्पर्शी रखा जाता है। प्रतिवर्ती और सहायक तापमापी भारी काँच की नली में वन्द किये जाते हैं। प्रतिवर्ती तापमापी अगार को घेरने वाले भाग को छोड़कर आँशिक रूप से निर्वातित होता है, और अगार तथा घिराव के मध्य ऊष्मा सुचालक की तरह काम करने के लिये इस भाग को पारद से भर दिया जाता है। तापमापी को क्षति से वचाने के अलावा यह नली इस युक्ति का एक मुख्य भाग है क्योंकि यह तरल स्थैतिक दाव के प्रभाव को लुप्त कर देता है।

तापमापी को पढ़ने के समय का ताप और प्रतिवर्तन के समय के ताप, दोनों के अन्तर से होने वाले परिवर्तनों के लिये तथा अनुसंशोधन त्रुटियों के लिये प्रतिवर्ती तापमापी द्वारा दिये गये पाठ्यांक में संशोधन करना चाहिये। संशोधन के लिए शूमेकर द्वारा विकसित समीकरण समान्यतया काम में ली जाती है :—

$$\triangle T= \left[\frac{(T'-t)\,(T'+V_o)}{K}\right]\left[1+\frac{(T'-t)\,(T'+V_o)}{K}\right]+I$$

प्रतिवर्ती तापमापी के असंशोधित पाठ्यांक T', में बीजत: जोड़ने के लिये $\triangle T$ संशोधन है; t ताप है जव उपकरण पढ़ा गया, V_o छोटे वल्ब और केशिका का आयतन है $0°$ से.ग्रे. के अंश तक जबकि अंश केशिका के डिग्री इकाइयों में अभिव्यक्त की गई है और K एक स्थिरांक है जो पारद के सापेक्ष तापीय प्रसरण और तापमापी में उपयोग किये गये काँच के प्रकार पर निर्भर करता है। कई प्रतिवर्ती तापमापी के लिये K का मान 6100 होता है। I अनुसंशोधन शुद्धि है जो T' के मान पर निर्भर रहती है। जहां कहीं भी काफी संख्या में प्रेक्षणों को संशोधित करना हो वहां प्रत्येक तापमापी के लिये आलेख या सारणी तैयार करना सुविधाजनक रहता है और जिसमें किसी भी T' और t के मान के लिये, $\triangle T$ का मान प्राप्त किया जा सकता है जिसमें अनुसंशोधन शुद्धि भी शामिल होती है।

प्रतीवर्ती तापमापी अति साधारण रूप से जल प्रतिचयन बोतलों से नत्थी कर जोड़े से काम में लिये जाते हैं, परन्तु वे विशिष्ट प्रतिवर्ती फ्रेम में भी लगाये जा

सकते हैं जो या तो किसी संदेशवाहक द्वारा चलाई जाती है या इनमें नोदक बंटन होती है। तापमापियों को थामने वाली फ्रेम पीतल की नलियां होती हैं जो इस प्रकार कटी हुई होती हैं कि पैमाना दिखाई पड़ता रहे और जो अगार के चारों ओर छलनीनुमा होती हैं। नलियों के सिरे कुण्डलीदार कमानियों से सुसज्जित होते हैं या स्पंज रबर से पैक किये हुए होते हैं ताकि तापमापी दृढ़ता से पकड़ में रहे और उन पर ज्यादा तनाव न पड़े।

अरक्षित प्रतिवर्ती तापमापी—पूर्ववर्णित तापमापियों की डिज़ाइन के समान परन्तु खुली संरक्षी नली के प्रतिवर्ती तापमापी प्रतिचयन की गहराइयां मालूम करने के काम लिए जाते हैं। (चित्र 86) कांच और पारद की संपीड्यता में अन्तर होने के कारण दाब लगने पर तापमापी कृत्रिम "ताप" पाठ्यांक देता है जो ताप और दाब पर निर्भर रहता है यह लक्षण प्रतिवर्तन होने की गहराई मालूम करने के लिए उपयोग किया जाता है। इस अभिप्राय से उपयोगित उपकरण इस प्रकार से अभिकल्पित होते हैं कि तरल स्थैतिक दाब के कारण आभासी ताप वृद्धि लगभग 0.01° से० ग्रे० प्रतिमीटर हो। एक अरक्षित तापमापी सदैव रक्षित तापमापी से युग्मित कर दिया जाता है जिससे स्वस्थाने ताप T_w मालूम किया जाता है। रक्षित तापमापी के पाठ्यांकों में संशोधन कर जब T_w प्राप्त कर लिया जाता है तो अरक्षित तापमापी के पाठ्यांक T'_u में जोड़ने की शुद्धि निम्नलिखित समीकरण से प्राप्त की जा सकती है :

$$\triangle T_u = \frac{(T'_u + V_o)(T_w - t_u)}{K} + I$$

T'_u और t_u अरक्षित प्रतिवर्ती और उसके सहायक तापमापी के पाठ्यांक हैं, और I अनुसंशोधन शुद्धि है अरक्षित तापमापी के संशोधित पाठ्यांक, T_u और रक्षित तापमापी के संशोधित पाठ्यांक T_w, इन दोनों का अन्तर उत्क्रमण की गहराई पर तरल स्थैतिक दाब का प्रभाव निरूपित करता है। उत्क्रमण की गहराई इस व्यंजक से परिकलित की जा सकती है

$$D \text{ (मीटर)} = \frac{T_u - T_w}{Q\rho_m}$$

जिसमें Q पृथक तापमापी का दाब स्थिरांक है जो कि 0·1 किलोग्राम प्रति वर्ग से. मी. दाब के बढ़ने से आभासी ताप में वृद्धि को डिग्री में दिया जाता है और ρ_m उपस्थित जल का स्वस्थाने औसत घनत्व है। किसी भी सीमित क्षेत्र में काम करने के लिये विभिन्न सतहों में उपयोग के लिये मानक औसत घनत्व का सेट स्थापित करना आम तौर से पर्याप्त होता है। अरक्षित तापमापियों द्वारा प्राप्त गहराइयाँ, जब तापमापी को थामने वाली तार रस्सी जल में सीधी नहीं होती है, तब परम महत्व की होती हैं। जब क्रमिक प्रेक्षण किये जायें तो अरक्षित तापमापियों को

निम्नतम प्रतिचयन बोतल में रखना चाहिये और यदि सम्भव हो तो एक मध्यवर्ती बोतल पर और एक सेट के शिखर के निकट रखना चाहिए (10·5)। 1000 मीटर से कम की गहराइयों के लिये अरक्षित तापमापियों द्वारा प्राप्त गहराइयों में संभाव्य त्रुटि लगभग ±5 मीटर होती है और अधिक गहराइयों पर यह तार द्वारा नापी गई गहराई का 0·5 प्रतिशत होती है। मीटीयॉर अभियान में किये गये तार गहराई मापन, ध्वानिक गहराई मापन और अरक्षित तापमापियों द्वारा प्राप्त गहराइयों आदि के परिणामों का विस्तृत परीक्षण वुस्ट (Wust, 1933) ने दिया था।

विशिष्ठ युक्तियाँ :—उपरोक्त विधियों द्वारा मापे गये ताप दिक् और काल में विविक्त विन्दुओं पर प्रेक्षण देते हैं। प्रतिवर्त्ती तापमापियों से लिये गये स्थल मंडलीय प्रेक्षण में समय का क्षय बहुत होता है और यन्त्र तथा उपकरण व्ययकारक होते हैं। चुने हुवे तलों पर या गहराई के फलन की तरह लगातार प्रेक्षण प्राप्त करने हेतु कई युक्तियाँ सुझाई गई हैं। तटीय स्टेशनों पर और जहाजों पर लगातार अभिलेखन, समुद्र पृष्ठ पर या उसके निकट, पाने के लिए तापलेखी सामान्यतया काम में लिए जाते हैं। तापमापी का बल्ब, जिसमें आमतौर से पारद होता है, जहाज के हल पर या अन्तर्ग्राही नलों में से एक के अन्दर लगाया जाता है और एक बारीक केशिका द्वारा अभिलेखन यन्त्र से जोड़ दिया जाता है। अभिलेखन यन्त्र. कागज से आवृत घूर्णायमान पीपे पर ताप का अनुरेखण करता है तापलेखी द्वारा प्राप्त ताप के अभिलेखों की, किसी अन्य विधि से प्राप्त तापो से, तुलनात्मक जाँच अधिक कालान्तर पर करनी चाहियें।

विविध प्रकार के विद्युत प्रतिरोध तापमापी पानी में उतारने के लिये और लगातार पाठ्यांक देने के लिये अभिकल्पित किये गये परन्तु ये सन्तोषजनक सिद्ध नहीं हुए। स्पील्हॉस (Spilhaus, 1938, 1940) ने एक उपकरण बनाया जिसे 'गहनताप लेखी' कहते हैं और जिसे शुरू के 150 मीटर पानी गहराई में, जहाँ उल्लेखनीय ऊर्ध्वाधर परिवर्तन आमतौर से पाये जाते हैं, ताप को गहराई के फंक्शन की तरह अंकित करने के काम में लिया जा सकता है। ताप-सुग्राही भाग एक बूर्दान किस्म के अवयव को सक्रिय बना देता है जो एक धूमिल काँच की स्लाइड के सहारे टिके हुए कलम को चलाता हैं जो स्वयं दाब-अनुक्रियात्मक अवयव द्वारा चलता है। जैसे ही उपकरण पानी में नीचे उतारा जाता है और वापस ऊपर उठाया जाता है तो कलम दाब के हिसाब (इसलिये गहराई) से ताप को अनुरेखित करता है। इस युक्ति से विशेष लाभ यह है कि जलयान चालू होता है तब भी अधिक कालान्तर पर चलाया जा सकता है और इस प्रकार शुरू के 150 मीटर पानी में ताप वितरण के विस्तृत विवरण को शीघ्रता से प्राप्त किया जा सकता है। मोस्बे (Mosby 1940), ने एक यन्त्र बनाया है जो तापीयथाह मापी कहलाता

है और गहराई के विरुद्ध ताप को मापने के लिए है तथा जिससे गहन गहराइयों तक प्रेक्षण लिए जा सकते हैं। इन्वर-फौलाद की फ्रेम पर रखा हुआ 75 से. मी. लम्बा तापीय अवयव, विशेष रूप से शोधित पीतल का एक तार है जो कलम से नत्थी होता है और जो एक वृत्ताकार स्लाइड पर अनुरेखण करता है। जैसे ही यन्त्र पानी में नीचे उतारा जाता है स्लाइड नोदक की सहायता से धीरे-धीरे घुमाई जाती है।

जल प्रतिचयन युक्तियां

जल प्रतिचयन युक्तियां, जिनका वर्णन किया जावेगा, वे हैं जो भौतिक और रासायनिक अध्ययनों के लिए स्थल मंडल तल से नमूने लेने के लिए होती हैं। पादप प्लवक के परिगणन के लिए तथा जीवाणु-परीक्षा के लिए नमूने इन उपकरणों से प्राप्त किये जा सकते हैं परंन्तु इन उद्देश्यों के लिए विशेष रूप से अभिकल्पित प्रति चयक सामान्यतया काम में लिए जाते हैं। स्थल-मंडल तल पर संग्रहण के लिए जल प्रतिचयक ऐसा बनाया जाता है कि वह किसी भी इच्छित तल पर जलरोक बन्द किया जा सके और इस प्रकार बन्द हुआ नमूना उच्चतर सतह पर जल से संदूषित नहीं होता और जहाज पर बोतल को ले आने पर क्षरण होकर खो नहीं जाता है। गहरे पानी में उच्च दाब होने के कारण प्रतिचयन बोतलें 'खुली' नीचे भेजी जाती हैं और किसी वांछित तल पर संदेश वाहकों या नोदक बंटनों द्वारा बंद करदी जाती है। समुद्र पर काम शीघ्र हो इसके लिए जल प्रतिचयन बोतलें श्रेणीबद्ध काम में ली जाती हैं यानी, तार रस्सी पर एक से अधिक बोतल होती है जिससे एक ही पात्र वर्ग पर कई गहराइयों पर नमूने लिए जा सकते हैं। चूंकि, एक ही गहराई पर ताप और जल के नमूने लेना आवश्यक होता है इसलिये जल प्रतिचयन बोतलों में फ्रेम लगी होती है जिनमें एक या अधिक प्रतिवर्ती तापमापी रक्खे जाते हैं। पिटरसन-नानसन बोतल इसमें एक अपवाद है जो कि शुरू के (उपरी) कुछ सौ मीटर की गहराई के लिये काम में ली जा सकती हैं (10·6)। प्रतिचयन युक्तियां असंक्षारणीय पदार्थो से बनाई जानी चाहिये जो पानी के नमूनों का संदूषण न्यूनतम करें। बोतलें आम तौर से पीतल की बनी होती हैं जिनके भीतर चाँदी या टीन की चद्दर लगी होती है या किसी विशेष प्रलाक्षारस से लेपित होती हैं। नमूनों को निकालने के लिये उनमें एक निकास काक और एक वातायन होता है। बोतलें श्वेत रंग से लेपित होनी चाहियें ताकि खींचते समय स्पष्टतया दृश्य हो सके। कई प्रकार की प्रतिचयन बोतलें ईज़ाद की गयी हैं परन्तु ऊपर दिये गये सख्त काम करने की अवस्थाएं और वांछनीय लक्षणों ने सामान्य उपयोग में होने वाली किस्मों को केवलमात्र कुछ साधारण वरन् रुक्ष डिज़ाइन में घटा दिया।
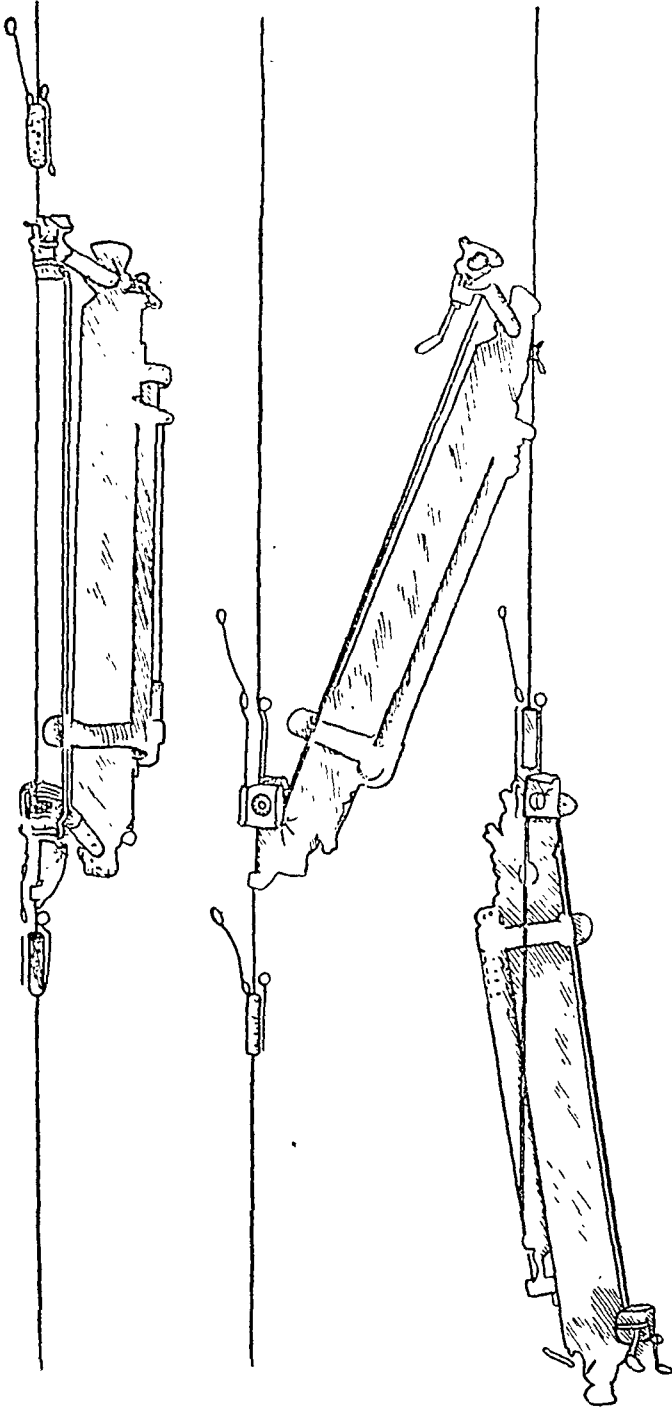
चित्र 87 :—नानसन प्रतिवर्ती जल बोतल। बायीं ओर : प्रतिवर्तन से पहले; प्रथम मेसेन्जर (सन्देशवाहक) छोड़ने के यन्त्र रचना को पहुंचता है मध्य में : बोतल का प्रतिवर्तन; प्रथम मेसेन्जर ने दूसरे को निर्मुक्त कर दिया दायीं ओर : प्रतिवर्तित स्थिति में।

कई प्रकार के समुद्र विज्ञान के उपकरणों को चलाने के लिये संदेशवाहक (मेसेन्जर) आवश्यक होते हैं। यद्यपि उनकी आकृति और आकार विभिन्न उपकरणों के लिये अलग-अलग होगी, परन्तु यथार्थता में वे भार (बाट) होते हैं जो बरमा द्वारा छेद कर बनाये जाते हैं ताकि रस्सी पर आसानी से फिसल सके। उनको हटाने या नत्थी करने के लिये वें या तो कब्जेदार होते हैं या कटवां। यात्रा की चाल मेसेन्जर के आकार तथा भार पर और तार के कोण पर (तार रस्सी का ऊर्ध्वाधर से बनाया हुआ कोण) निर्भर करती है। तार के कोई कोण न हो तो नानसन बोतलों में लगे हुए संदेशवाहक लगभग 200 मीटर प्रति मिनट से यात्रा करते हैं।

जल प्रतिचयन युक्तियाँ साधारणतया दो प्रकार की होती हैं। यह वर्गीकरण बंद करने की विधि पर आधारित होता है जो गट्टा-वाल्व या रबर में ही रखी हुई पट्टिकाओं द्वारा प्राप्त की जा सकती है। पहले प्रकार का उदाहरण एक है नानसन बोतल जो समुद्र विज्ञान सम्बन्धी कार्यो में बहुतायत से उपयोगित होती है। ऐकमन की बोतल दूसरी प्रकार की होती है।

नानसन बोतल (चित्र 87) दो गट्टा-वाल्व्स लगी हुई एक प्रतिवर्ती बोतल होती है जिसमें लगभग 1200 (*ml*) मिली लिटर द्रव समा सकता है। पीतल के बेलन के प्रत्येक सिरे पर लगे हुए दोनों वाल्व, बोतल को तार रस्सी से बांधने वाले शिकंजे से कसी हुई संयोजक छड़ द्वारा तुल्यकालिक रूप से चलाये जाते हैं। जब बोतल नीचे उतारी जाती है तो यह शिकंजा निचले सिरे पर होता है और वाल्व खुले हुए होते हैं ताकि पानी बोतल को पार कर सके। छोड़ने के कल-पूर्जे, जो तार रस्सी के चारों ओर होते हैं, बोतल को यथा स्थान थामे रखते हैं, परन्तु जब मेसेन्जर (सन्देशवाहक) रस्सी से नीचे भेजा जाकर छोड़ने वाली युक्ति से टकराता है तो बोतल गिर जाती है और 180° से उलट कर वाल्व को बंद कर देती है जो एक बंद करने की युक्ति द्वारा बंद रक्खे जाते हैं तथा संलग्न तापमापी को उलट देती है। बोतल को उलटने पर, मेसेन्जर एक दूसरे मेसेन्जर को मुक्त करता है जो नीचे जाने से पहले तार शिकंजे से नत्थी था। यह दूसरा मेसेन्जर अगली नींचे की बोतल को बंद कर देता है तथा तीसरे मेसेन्जर को मुक्त कर देता है, और इस प्रकार का क्रम चलता रहता है।

ऐकमन बोतल, जो भी श्रेणी बद्ध क्रम से चलाई जा सकती है, में एक बेलनाकार नली और ऊपर तथा नीचे रबड़ के गास्केट वाली पट्टिकाएं होती हैं। गतिमान् भाग तार रस्सी से नत्थी फ्रेम में लटकाये जाते हैं और जब उपकरण नीचे होता है तब पानी सरलता से बेलन को पार कर सकता है। जब मेसेन्जर से टक्कर होती है तो पकड़ छूट जाती है और बेलन 180° से पलट जाता

है, तदनुसार पानी के नमूने को बंद रखते हुए, सिरे की पट्टिकाएं वेलन के विरुद्ध कस कर दबती है। सिलिंडर (वेलन) पर प्रतिवर्त्ती तापमापी लगे होते हैं।

पेटरसन-नानसन की जैसी ऊष्मीय पृथक्कृत बोतलों (उदाहरणार्थ, देखिये मुरे और हजोर्ट Murray & Hajort 1912) में कई दृढ़ता से बद्ध संकेंद्री सिलिंडर होते हैं जिनमें से प्रत्येक के सिरा प्लेटे लगी होती हैं। जब ये प्लेटें बंद हो जाती हैं तो पानी के नमूनों की एक श्रेणी एक दूसरे के अन्दर पृथक हो जाती है। सबसे बाहरी सिलिण्डर और सिरा प्लेटें पीतल और एबोनाइट के बने होते हैं भीतरी सिलिण्डर पीतल और सेलुलोइड के बने होते हैं तथा सिलिण्डर और प्लेटें फ्रेम पर लगी होती हैं। खुली अवस्था में सिलिण्डर तथा ऊपरी और निचली सिरा प्लेटों के बीच जगह होती है परन्तु जब मेसेन्जर पकड़ से टकराता है तब सिलिण्डर तथा ऊपरी प्लेट नीचे की ओर खिसक जाते हैं, सिलिण्डर निचली सिरा प्लेटों के विरुद्ध दब जाते हैं और ऊपरी सिरा प्लेटें बोतल को बंद कर देती हैं। बोतल की अपनी बनावट के कारण उसे तार रस्सी के सिरे से नत्थी करना चाहिये। प्रतिचयन की गहराई पर का ताप सबसे अन्दर के सिलिण्डर में निविष्ट तापमापी द्वारा मालूम किया जाता है। रुद्धोश्म शीतायन तथा चरम स्थितियों में, ऊष्मा चालन के लिये संशोधन करना चाहिये।

मिटिऑर अभियान पर 4 लिटर धारिता की शीशा लगी प्रतिचयन बोतल न्यूनतम संदूषण से विशाल नमूने इकट्ठे करने के लिये उपयोग की गयी थी। यह बोतल तार रस्सी के सिरे से संलग्न थी, और बंद करने की यन्त्र रचना वैसी ही थी जैसी पृथक्कृत बोतल से लिये काम में ली गयी है। तापमापियों के लिये एक विशेप प्रकार के साज का प्रबन्ध होता था जो बोतल के बन्द होने पर उलट जाया करता है। वूस्ट (Wust, 1932)।

तार गहराई मापन और तली प्रतिचयन के सम्बन्ध में तल के बिल्कुल निकट से ताप और जल नमूनों का लेना बहुधा वांछनीय होता है और एक अतिरिक्त जांच के लिये गहराई को अरक्षित तापमापी से निकालना वांछनीय होता है। मेसेन्जर को तल तक पहुंचने की प्रतीक्षा को टालने के लिये, जिसमें सम्भवतः डेढ़ या ज्यादा घण्टे लगते हों, नोदक युक्तियों द्वारा सक्रिय किये गये विशेष प्रकार की प्रतिचयन युक्तियाँ प्रयुक्त की जाती हैं। (साउले, Soule, 1932; पारकर, Parker, 1932)। आमतौर से ये प्रतिवर्ती बोतलें होती हैं जिनमें मुक्ति-पिन नोदक से नत्थी होती हैं जब उपकरण नीचे उतारा जाता है नोदक पिन को यथा स्थान रखता है परन्तु ज्योंही खींचना शुरू होता है नोदक घूमने लगता है और पिन को निष्कासित कर देता है।

स्पिलहाउस, (Spilhaus 1940) ने छः छोटी वाल्व-बंद बोतलों का एक बहुगुण प्रतिचयक युक्तिबद्ध किया जो अलग अलग से पूर्व-निर्धारित गहराई पर छोड़ने वाली युक्तियों द्वारा जो तरल स्थैतिक दाब से सक्रिय होती है, बंद की जा सकती है। चालू जहाज से प्राप्त गहन ताप लेखी (10.7) के संयोजन से उपयोग करने के लिये इस उपकरण को अभिकल्पित किया गया था।

नानसन बोतलों या अन्य श्रेणीगत प्रतिचयन युक्तियों द्वारा जल के नमूने तथा ताप लेने की सामान्य विधि निम्न प्रकार से है। तार रस्सी को तनी हुई रखने तथा तार कोण को घटाने के लिये, तार रस्सी के सिरे पर एक अतिरिक्त बाट, आमतौर पर 50 से 100 पौण्ड का, नत्थी कर दिया जाता है जो कि रस्सी के आकार, गहराई जहाँ प्रेक्षण लेने हों; और सामान्य काम करने की अवस्थाओं पर निर्भर करता है। कुछ लम्बाई की रस्सी (25 से 50 मीटर) तब बाहर जल में भेजी जाती है ताकि जब पेंदे की बोतल नत्थी या अलग हो रही हो तो बाट जहाज से नहीं टकरायेगा और यदि बाट पैंदे से टकराता है तो बोतल को क्षति पहुंचने की सम्भावना भी घट जाए।

पात्र वर्ग का काम शुरू करने से पहले नमूने इकट्ठे करने की गहराई तय कर लेनी चाहिये। नियत स्थिति पर समंजित पहली बोतल, तब तार रस्सी से नत्थी कर दी जाती है, तापमापियों की जांच की जाती है और मीटर पहिया शून्य पाठ्यांक के लिये ठीक कर लिया जाता। जब आवश्यक लम्बाई का तार नीचे कर दिया जाती है तो दूसरी बोतल नत्थी कर दी जाती है। बोतलों के परिचालन के लिये मेसेन्जर (संदेशवाहक) दूसरी ओर उससे ऊपर की सभी बोतलों पर संदेशवाहक को छोड़ने के कल-पुर्जे पर लगाना चाहिये। किसी एक सांचे पर संलग्न बोतलों की संख्या तार की शक्ति तथा परिचालन की अवस्थाओं से निर्धारित होती है। एक ही बार में कभी कभी बारह या अधिक बोतलें काम में ली जाती हैं। तमाम बोतलों को उपयुक्त दूरियों पर नत्थी कर देने के पश्चात् वे अपेक्षित गहराइयों तक उतारी जाती हैं। चूंकि मीटर पहिया शून्य अंश पर समंजित किया गया था जब पहली बोतल नत्थी की गयी थी, अतएव सम्पूर्ण सांचा उतना ही नीचे उतारना चाहिये जितनी समुद्र पृष्ठ और बोतलों के नत्थी करने के स्थान के बीच की दूरी है। बोतलों को आवश्यक गहराईतक उतार लेने पर उन्हें वहां 10 मिनट तक रखना चाहिए जिससे तापमापियों का ताप उनके आस पास के ताप के बराबर हो जाये और तब मेसेन्जर (सन्देशवाहक) गिराना चाहिये। यदि बोतलें लगभग 500 मीटर से कम गहराई पर स्थित हैं उनकी ठीकठीक कृत्यकारिणी की जांच तार को स्पर्श कर हो सकती है क्योंकि जब मेसेन्जर बोतल से टकराता है तब झटकों का स्पर्श अनुभव होना आमतौर से सम्भव होता है। जब नमूने काफी गहराइयों से लिये जाते हैं या तार का कोण बड़ा होता है

तब झटकों के स्पर्श का ज्ञान होना असम्भव होता है और इसलिए वापस खींचने से पहले, मेसेन्जर को पातालीय बोतल तक पहुंचने के लिये पर्याप्त समय देना चाहिये। जब तार का कोण बड़ा होता है, मेसेन्जर की धीमी चाल दर को विचाराधीन रखना चाहिये। तार तब वापस खींच लिया जाता है और बोतलें निकाल ली जाती हैं तथा डेक की प्रयोगशाला में अपने अपने रैक में रख दी जाती हैं, बोतलों के प्रतिवर्ती स्थिति से उलटने को रोकने की पूरी पूरी सावधानी रक्खी जाती है क्योंकि प्रतिवर्ती तापमापी स्वयं को फिर से पाठ्यांक के लिये ठीक कर सकते हैं।

मेसेन्जर (संदेशवाहक) को छोड़ने से ठीक पहले तार के कोण को मापना या परिमापित करना चाहिये। जैसा कि आगे बताया जावेगा, तार के कोण का ज्ञान, नमूने की गहराई निर्धारित करने में उपयोगी होता है।

जल प्रतिचयन बोतलों से काम लेते समय कुछ उपसाधनों की आवश्यकता होती है। सुरक्षा के लिये साज सन्डासी का एक हल्का तार पटरी से नत्थी होना चाहिये। बोतल को काम करने के तख्ते पर चालक को दे देने के पहले ही यह तार बोतल पर लगा दिया जाता है और तब तक नहीं हटाया जाता जब तक कि बोतल तार रस्सी पर दृढ़ता से संवरित नहीं हो जाती। बोतल को निकालते समय भी यह नत्थी होता है। तार रस्सी को स्थिर तथा प्लेटफार्म के निकट रखने के लिये बड़े हुक का छोटा तार प्लेटफार्म के संलग्न होना चाहिये। जब यन्त्र रस्सी से नत्थी किये जाते या हटाये जाते हैं तब (हुक) अंकुश तार रस्सी पर रक्खा होता है। जब पोत पवन या पृष्ठीय धाराओं के साथ वहन करता है, तब तार सीधा नहीं लटकता है और कभी कभी इतनी दूर जाकर अनुचिन्ह बनाता है कि तार का कोण कम से कम 50° और 60° बनता है। इन अवस्थाओं में हुक को नत्थी करने के लिये तार रस्सी को नावहुक या कप्पी और लफ्ती द्वारा खींचना चाहिये।

ऊपरी परतों में गुणधर्मो के वितरण की वृहत् उदग्र प्रवणताओं के कारण, पृष्ठ के निकट प्रेक्षण अपेक्षाकृत कम फासलों पर और वृहत् गहराइयों पर बढ़ते हुए फासलों पर करने चाहियें। भौतिक समुद्र विज्ञान की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था ने 1936 में निम्नलिखित मानक गहराइयां प्रस्तावित की जिन पर प्रेक्षित अंक प्रत्यक्ष रीति से प्राप्त करने चाहियें या अन्य सतहों पर के वितरण से अन्तर्वेशन की रीति से प्राप्त करने चाहियें। अधःसीमा जल की गहराई या परिचालन की योजना से मालूम की जाती है। मीटर में मानक गहराइयां इस प्रकार हैं :

पृष्ठ; 10, 20, 30, 50, 75, 100, 150, 200, (250), 300, 400, 500, 600,(700), 800, 1000, 1200, 1500, 2000, 2500, 3000, 4000 और इसके बाद में 1000 मीटर के अन्तर से पैंदे तक।

लघु कोष्टक में दी गयी गहराइयां वैकल्पिक हैं। मानक गहराइयों पर प्रेक्षण करने के अतिरिक्त तल के सन्निकट से ताप और जल के नमूने लेना भी बहुधा वांछनीय हो जाता है। गहरे जल (समुद्र) के लिये आमतौर से इसका अर्थ है कि तल से लगभग 50 मीटर के अन्दर तक, परन्तु तली स्थलाकृति और काम करने की अवस्थाओं पर निर्भर करते हुए यह (पैंदे से दूरी) मामूली और छिछली गहराइयों में कहीं अधिक कम हो सकती है।

क्रमिक प्रेक्षणों का विश्लेषण और शोधन

ताप प्रेक्षण, लवणता निर्धारण, या अन्य विश्लेपण भारी संख्या में कर लेने के पश्चात् जो मान गलत है उनका निरसन आवश्यक होता है और आंकड़ों को ऐसे सरल रूप में रखना आवश्यक होता है कि वे समान लक्षण वाले आंकड़ों से आसानी से तुलनात्मक हो सके। प्रतिवर्ती तापमापियों द्वारा प्रेक्षण प्राप्त करने की विधियां स्वस्थाने ताप लेने हेतु संशोधित की जाती हैं और अरक्षित तापमापियों के पाठ्यांकों से नमूने लेने की गहराइयों को संगणित कर सकने की विधियों का वर्णन पिछले पृष्ठों में दिया गया है। क्लोरीनता अनुमापन और अन्य विधियों से लवणता मालुम करना अध्याय III में विवेचित है। इसके अतिरिक्त, अध्याय VI में सूचिवद्ध विधियों द्वारा पानी के नमूनों पर अनेकों रासायनिक परीक्षण और विश्लेपण किये जा सकते हैं। स्वस्थाने ताप और तापमापीय गहराइयों की गणना कर लेने के बाद, प्रेक्षित आँकड़े साधारणतया एक सारांश पत्र पर सूचिवद्ध किये जाते हैं जो प्रत्येक जल नमूने के लिये निम्नलिखित जानकारी बताते हैं :

हर एक प्रतिचयन यन्त्र की तार गहराई (समुद्र पृष्ठ और प्रतिचयन युक्ति के बीच तार रस्सी की लम्बाई), प्रत्येक सांचे के लिये तार कोण, स्वस्थाने ताप (रक्षित तापमापी के संशोधित पाठ्यांक या यदि दो तापमापी बोतल से नत्थी हों तो दोनों के पाठ्यांकों का औसत), अरक्षित तापमापी द्वारा संगणित प्रतिचयन की गहराई (ये तापमापी आमतौर से प्रत्येक बोतल पर नत्थी नहीं होते हैं), क्लोरीनता, लवणता या अन्य विश्लेषण जो किये गये हों।

क्रमिक समुद्र विज्ञानीय प्रेक्षणों के विश्लेपण का अगला कार्य प्रतिचयन की गहराइयों को स्थापित करना होता है। बड़ी मात्रा में व्यक्तिगत निर्णय काम आता है और सामान्य अनुभव, प्रेक्षण लिये गये क्षेत्र का ज्ञान और प्रत्येक यन्त्र के व्यवहार से परिचय आदि से ही केवल इस (व्यक्तिगत निर्णय) में सुधार हो सकता है। सामान्य प्रक्रिया जो अपनानी चाहिये वह किसी अंश में निम्नलिखित है : (1) यदि मीटर पहिये में कोई त्रुटि हो तो मीटर पहिये के पाठ्यांकों में आवश्यक संशोधन करना चाहिये; (2) यदि तार कोण 5° या कम हो तो प्रतिचयन की गहराई को, मीटर पहिये के संशोधित पाठ्यांकों द्वारा प्राप्त तार गहराइयों के वराबर लिया

जा सकता है; (3) यदि तार का कोण 5° से अधिक है तो उन सतहों पर जहां अरक्षित तापमापी काम में लिये गये थे, वहां तार गहराई और तापमापीय गहराई का अनुपात परिकलित किया जाता है। यदि तार कोण लघु था और सांचा (पात्रवर्ग) उथला, तो ये अनुपात व्यावहारिकता से स्थिरांक होंगे और किसी एक सांचे से प्राप्त अनुपात के औसत को तव, उस सांचे पर लगे हुए तमाम उपकरणों के लिये प्रतिचयन की गहराई पाने के लिये, प्रयुक्त किया जा सकता है। यदि तार कोण वड़ा या सांचा गहरा हो तो ये अनुपात आमतौर से वढ़ती गहराई के साथ वढ़ते हुए लगेंगे। यह वृद्धि सूचित करती है कि वृहत् गहराइयों पर रस्सी ऊर्ध्वाधर होने लगती है और ऐसी अवस्थाओं में तार गहराई के साथ वदलने वाला अनुपात काम में लेना चाहिये। चरम सीमा की अवस्थाओं में 'तार वक्र' आलेखित किये जा सकते हैं। तार वक्र, जो जल में तार का वना हुआ वास्तविक रूप है, तापमापीय गहराइयों से तार के कोण, और प्रतिचयन वोतलों के वीच तार की लम्वाई से, निर्मित होता है। तमाम स्थितियों में उपरोक्त प्रणाली से प्राप्त 'स्वीकृत गहराइयों' की यह मालूम करने के लिये जांच करनी चाहिये कि प्रतिचयन वोतलों के वीच की दूरियां उनके वीच में तार की दूरी के संगत हैं। शोधन की उपरोक्त विधि पहले से ही यह मान लेती है कि प्रेक्षण स्वयं वैध (मान्य) हैं। यदि किसी कारण से, तापमापियों ने ठीक ठीक काम नहीं किया या यदि प्रतिवर्ती वोतलें नीचे जाते समय वन्द हो गयी तो तापमापीय गहराइयां सही नहीं हो सकती हैं और अतएव परिणामों को त्याग देना चाहिये।

स्वीकृत गहराइयों का निर्णय हो चुकने के पश्चात्, प्रेक्षणों के विश्लेपणों का अगला कदम ऊर्ध्वाधर वितरण वक्रों का अनुरेखण करना होता है। एक ही आरेख में, प्रेक्षित गुणधर्मों में से एक, गहराई का फलन की तरह कई स्टेशनों पर अनुरेखित किया जा सकता है अथवा एक ही स्टेशन पर सकल प्रेक्षित गुणधर्म अनुरेखित किये जा सकते हैं। ऐसे वक्रों से उन नमूनों का, पता चलाना वहुधा सम्भव होता है जो तापमापियों का दोषपूर्ण कार्य करने के कारण या जल-प्रतिचयन युक्ति के समय से पूर्व वन्द हो जाने के कारण या जव वे ऊपर खींची गयी हो तो उनके क्षरण के कारण अशुद्ध है। ऊर्ध्वाधर वितरण वक्रों से निम्नलिखित आंकड़े लिये गये हैं: (1) मानक गहराइयों पर अन्तर्वेशित मान, और (2) कई स्टेशनों पर किसी नियत गुणधर्म के चुने हुए मान की गहराइयां। किसी गुणधर्म के वितरण का ऊर्ध्वाधर अनुभाग बनाने के लिये ये आंकड़े आवश्यक होते हैं।

ऊर्ध्वाधर वितरण वक्रों के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के अनुरेखण तयार करने की सामान्य कार्य प्रणाली रही है जो या तो आंकड़ों में त्रुटियों का पता लगाने का काम करते हैं या आंकड़ों के विशिष्ट लक्षण उपस्थित करने का

काम करते हैं। इनमें से परम सामान्य एक ताप-लवणता वक्र है ($T-S$ वक्र), जिनमें एक ही स्टेशन से प्राप्त ताप और लवणता के संगति मान एक लेखा चित्र में, ताप और लवणता को निर्देशांक लेकर अनुरेखित किये गये हैं और तब बढ़ती हुई गहराई के क्रम में एक वक्र से जोड़ दिये गये हैं। किसी भी क्षेत्र में $T-S$ वक्र का काफी निश्चित रूप होता है और इसलिये इस प्रकार के लेखाचित्र से प्रेक्षण की त्रुटियां कभी कभी पता लगाई जा सकती हैं। इस प्रकार के लेखा चित्रों के अन्य कई उपयोग अध्याय V में विवेचित किये गये हैं। जब कभी भी कोई दो प्रकार के प्रेक्षण एक दूसरे के विरुद्ध अनुरेखित किये गये हों तो समतुल्य बनावट अन्य क्रमिक आंकड़ों के लिये काम में ली जा सकती हैं। ऊर्ध्वाधर वितरण वक्रों से अन्तर्वेशित मान पढ़ लिये जाने के बाद, इन्हें भी इस प्रकार के आरेख पर दर्ज कर देना चाहिये और यदि किसी अन्तर्वेशित गहराई के संगति बिन्दु पूर्व निर्मित वक्र से आसंजित नहीं होते हैं तो ऊर्ध्वाधर वितरण की बनावट में कुछ समंजन आवश्यक हो सकता है।

घनत्व, आपेक्षिक आयतन असंगति और इन आंकड़ों पर आधारित अन्य गणना किये जाने के पूर्व मानक गहराइयों पर ताप और लवणता के अन्तर्वेशित मान प्राप्त किये जाते हैं (देखिये अध्याय III)। आंकड़ों की शुद्धता की जांच करने के लिये घनत्त्व का प्रत्येक स्टेशन पर ऊर्ध्वाधर वितरण और आपेक्षित आयतन असंगतियों का गहराई के फलन की तरह अनुरेखण करना बहुधा उचित होता है।

क्रमिक प्रेक्षणों से विभिन्न प्रकार के वितरण आरेख तैयार किये जा सकते हैं, जिनमें से बहुत से इस पुस्तक में और कहीं तथा विशेषकर अध्याय XV में दिये गये हैं।

क्रमिक समुद्र विज्ञान प्रेक्षणों की व्याख्या आंकड़ों की प्रकृति, दिक् और काल में प्रेक्षणों का वितरण, और अन्वेषण क्षेत्र के विशिष्ठ लक्षणों पर इतनी निर्भर करती है कि विश्लेषण की किसी "प्रणाली" को रूप देने की कोशिश करना असम्भव है। केवल समुद्र विज्ञान समस्याओं की जानकारी तथा विभिन्न प्रकार के आकड़ों की सार्थकता से ही किसी नियत छानबीन में लाभकारी प्रणाली का निश्चय किया जा सकता है। नये सिद्धान्तों और नये मतों का विकास प्रारम्भ के निष्कर्षों को अवैध कर दे परन्तु प्रेक्षित आंकड़े मान्य रहते हैं यदि उन्होंने परिशुद्धता के आवश्यक मानकों की पूर्ति कर दी है।

ज्वार-भाटा प्रेक्षण

गहराइयों और उठानों के लिये निर्देश-तल को स्थापित करने के लिये, गहराई मापन को स्थानीय निर्देश तल पर अपचयन के लिये अध्याय–II नौचालन में

उपयोग के लिये पूर्व कथित ज्वार भाटों की सारणियों को तैयार करने के लिये, तथा ज्वार-भाटीय घटनाओं के वैज्ञानिक-अध्ययन में वृद्धि करने के लिये, ज्वार-भाटों के प्रेक्षण आवश्यक होते हैं। समुद्र पृष्ठ के उतार-चढ़ाव से संबंधित ज्वार-भाटीय हलचलों का विवेचन अध्याय XIVमें दिया गया है जहां यह बताया गया है कि किसी भी इलाके में ज्वार की परास, ज्वार के लक्षण, और चन्द्रमा के ध्रुववर्त्तीय संक्रमण के संदर्भ से ज्वार-भाटे का समय आदि को अवलोकन से प्राप्त करना चाहिये जब पर्याप्त आंकड़े जमा हो जाते हैं तो उस इलाके में ज्वार-भाटों को विशेष परिशुद्धता से प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

मानक समय पद्धति से निर्दिष्ट कुछ कालान्तरों पर समुद्र पृष्ठ के उत्थापन के अनुक्रमित मापन, आवश्यक आंकड़े होते हैं और इन मापों से ज्वार-भाटे से संबंधित समुद्र पृष्ठ का उतार-चढ़ाव समय के फलन से अनुरेखित किया जा सकता है। इन सभी अध्ययनों में उत्थापन एक या अधिक तल से निर्देशित होने चाहियें जो कि ज्वार-भाटा अवलोकन के अन्य बिन्दुओं से परिशुद्ध समतलन से जोड़े या न जोड़े जा सकते हैं तल चिन्ह इसलिये आवश्यक होते हैं ताकि उत्थापन के माप, औसत समुद्र तल और अन्य निर्देश तल किसी स्वेच्छ मानक से निर्दिष्ट किये जा सकें। दो प्रेक्षण-स्थल पर यदि तल चिन्हों के बीच उत्थापनों में अन्तर ज्ञात हो, तो वास्तविक समुद्र तल का आदर्श समुद्र तल से विचलन प्राप्त किया जा सकता है (10.8)।

ज्वार-भाटे के उतार चढ़ाव को किनारे पर मापने की परम साधारण युक्ति "ज्वार भाटा गज" है। ज्वार भाटा गज एक मजबूत तख्ता होता है जो कि फुट और फुट के दसवें भाग में या मेट्रिक प्रणाली के अनुसार अंशांकित होता है और जो किसी स्थायी संरचना, जैसे शैलमय खड़ी चट्टान, सिमेन्ट का डॉक, या पाइलिंग (बड़ा ढेर) से दृढ़तापूर्वक बंधा हुआ होता है। उच्चतम ज्वार से ऊपर और ज्वार के नीचे तक रहने के लिये इसकी पर्याप्त लम्बाई होनी चाहिये। तल चिन्ह के हवाले से अंशांकन समंजित करने चाहियें ताकि यदि गज दुरुस्ती के लिये हटाया जाये तो पाठ्यांक किसी उभयनिष्ठ आधार से निर्दिष्ठ किये जा सकें। यदि प्रेक्षण प्रति घण्टे किये गये हों तो एक पूर्ण मेरीग्राम (ज्वार भाटा वक्र) बनाया जा सकता है परन्तु बहुत सी स्थितियों में प्रेक्षण (अवलोकन) केवल दिन के किसी चुने हुए समय पर ही किये जाते हैं या केवल पूर्ण ज्वार या भाटा ही नापे जाते हैं। समीपवर्ती प्रेक्षण स्थलों की स्थितियों की तुलना में इस प्रकार के बेतरतीब प्रेक्षण स्थानीय ज्वार भाटे के लक्षण को मालुम करने के लिये पर्याप्त होते हैं। सुरक्षित जल (समुद्र) में, जहां तरंगें छोटी होती हैं, ज्वार भाटा गज काफी परिशुद्ध होता है परन्तु खुले तट पर तरंगें और उल्लोल परिशुद्ध प्रेक्षण लेने में कष्टदायक हो सकते हैं (रूडे, Rude, 1928)।

उन इलाकों में जहां तरंगें कठिनाइयाँ उत्पन्न करती हैं वहां टेप गेज दृश्य अवलोकन के लिये काम में लिये जाते हैं। एक तरणिका कूप में लटकाई जाती है, सामान्यतया एक बड़ा नल होता है जिसमें ज्वार तल के नीचे छोटे द्वार होते हैं और तरणिका से नत्थी एक अंशांकित फीता (टेप) होता है जो एक गरारी पर से गुजरता है, फीते के दूसरे सिरे पर प्रतिभार होता है। तरंगों के कारण पृष्ठ का चढ़ाव-उतार का वृहत् रूप से विलोपन हो जाता है और तब टेप पर अंक, किसी स्वेच्छी तल के निर्देश से उपयुक्त कालान्तर पर पढ़े जा सकते हैं (रूडे, Rude, 1928)।

ज्वार तल का सतत स्वत: अंकन होने के लिये टेप गेज का सिद्धान्त अपनाया जा सकता है। अमरीकी तट और पृष्ठीय संस्था (रूड़े, Rude, 1928) द्वारा उपयोगित मानक स्वचलित गेज में तरणिका, जो एक कूप में लटकी होती है, तार से नत्थी होती है जो चूड़ीदार छड़ पर लगी हुई चरखी को घुमाता है। ज्योंही चरखी घूमती है, पेन्सिल में लगी एक कैरिज आगे पीछे चूड़ीदार छड़ के सहारे, गतिमान होती है यह छड़ कागज का पत्र लगे हुए-दक्षिणावर्ती चलित रोलर के समकोणी लगी होती है। कागज लगभग एक इन्च प्रति घण्टे के हिसाब से आगे चलता है और युक्ति इस प्रकार मेरीग्राम को स्वत: आरेखित कर देती है। गरारी का आकार और चूड़ीदार छड़ के अंतराल में परिवर्तन कर उपयुक्त लघुकरण प्राप्त किया जाता है। एक परिशुद्ध घड़ी प्रत्येक घण्टे एक विशेष निशान बनाती है और स्थिर पेन्सिल निर्देश रेखा का अनुरेखण करती है। अल्पावधि तरंगें वृहत् रूप से विलुप्त हो जाती हैं क्योंकि कूप में अवमन्दन होता है परन्तु कई मिनट तक ठहरने वाले जल दोलन और अशान्तता अंकित किये जाते हैं (10.9) मेरीग्राम से घंटेवार ऊंचाई और ज्वार तथा भाटे का समय और तल आसानी से पढ़े जा सकते हैं। मानक गेज में एक महीने के लिये पर्याप्त कागज होता है परन्तु घड़ियों को सप्ताह में एक बार लपेटना चाहिये तथा उपकरण की जाँच गेज या टेप से प्रतिदिन करनी चाहिये यह देखने के लिये कि यह (उपकरण) ठीक ठीक काम कर रहा है या नहीं तथा यह निश्चय करने के लिये कि कूप-तरणिका के छिद्र समुद्री शैवाल तथा डैट्रिट्स (मलवा) से मुक्त है। क्षेत्र टोलियों द्वारा काम में लिया-जा सकने वाला सुवाह्य अभिलेखन यूनिट इसी सिद्धान्त पर चलाया जाता है।

अभी तक वर्णन की गयी युक्तियाँ, केवल किनारों पर या ऐसे स्थानों पर जहाँ कुछ ठोस संरचना समुद्र पृष्ठ से ऊपर उठी हो, काम में ली जा सकती हैं। समुद्र के पैंदे पर काम में आने वाली कई प्रकार की दाब अभिलेखन युक्तियां अभिकल्पित की गयी हैं। कुछ में केवल दाब अवयव ही समुद्र पृष्ठ के नीचे रक्खा जाता है तथा अभिलेखन यन्त्र भूमि पर रक्खा जाता है; दूसरों में, जैसे किनारों से

दूर काम में ली जाने वाली युक्तियों में अभिलेखन का साधन उपकरण का अभिन्न अंग होता है जो कि समुद्र के पैंदे पर रक्खा जा सकता हो या लंगर द्वारा (समुद्र में) डाला जा सकता हो तथा एक या अधिक हफ्ते तक उसी स्थिति में छोड़ा जा सकता हो। इस प्रकार के खुले समुद्र के ज्वारभाटीय रिकार्डर प्रयोगिक अवस्था में ही है। विभिन्न प्रकार के रिकार्डर का विवरण हाइड्रोग्राफिक रिव्यू में पाया जा सकता है। खुले समुद्र में वालूचरों पर ज्वार भाटे के लक्षण लंगर डाले हुए जलयान से पुनरावृत्त तार या ध्वानिक गहराई मापन द्वारा मालूम किये जा सकते हैं, यदि इस प्रकार के प्रेक्षण समाश्वासनीय होने के लिये पैंदा काफी सपाट है।

गहरे समुद्र में लंगर डालना

एक ही इलाके में गुणधर्मों के ऊर्ध्वाधर वितरण पर पुनरावृत प्रेक्षण पाने के लिये और स्थल-मण्डलीय तलों पर धाराओं को मापने के लिये समुद्र विज्ञान पोत गहरे समुद्र में कभी कभी दिन में कुछ समय से लेकर दो दो हफ्तों तक लंगर डाले रहते हैं। घनत्व के वितरण से संगणित धाराओं की मान्यता की पुष्टि करने के लिये तथा ज्वार-भाटों से, आन्तरिक तरंगों और अन्य आवर्ती और अनावर्ती क्षोभ से संबन्धित जल की हलचलों के मापन के लिये, ऐसे प्रेक्षण किये जाते हैं। गुणधर्मों के ऊर्ध्वाधर वितरण में घटा-बढ़ी का ज्ञान, अवलोकन के एक ही सेट की सार्थकता स्थापित करने के लिये और आन्तरिक क्षोभ के लक्षण का विश्लेषण करने में मूल्यवान होता है।

धाराओं का परिशुद्ध मापन करने के लिये एक स्थिर आलम्बन विन्दु आवश्यक होता है। परन्तु सहस्त्रों मीटर की गहराई में लंगर डाले हुआ जहाज़ इस प्रतिवन्ध की पूर्ति नहीं कर सकता। जहाज़ न केवल अपेक्षाकृत बड़े चाप में ही झूलता है वल्कि यह केवल पर भी आरोहित होने लगता है और वापस निम्नतर स्तर पर पहुंच जाता है। इसके अतिरिक्त, लंगर नर्म पैंदे में आमतौर पर कुछ धंसने लगता है। एक से अधिक केवल द्वारा गहरे समुद्र में लंगर डालना अभी तक क्रियात्मक सिद्ध नहीं हुआ है जहां तक सम्भव हो, जलयान की हलचलों के धारा मापन पर प्रभाव को निरसन करने के लिये, केवल के तनाव को अंकित कर लिया जाता है, वायु और पृष्ठीय धाराओं की गति और दिशा के विस्तृत अंकन लिये जाते हैं। तथा कई खगोलीय स्थितियों को अंकित कर लिया जाता है। गुणधर्मों के ऊर्ध्वाधर वितरण में स्थानीय घटा-बढ़ी के लक्षण को मालूम करने के लिये पुनरावृत क्रमिक प्रेक्षण करते समय, लंगर डाले हुए जहाज़ की हलचल सार्थक नहीं होती।

अगाध समुद्र में सफलतापूर्वक लंगर डालने वाला प्रथम पोत अमरीकी तट और भूपृष्ठीय संस्था का स्टीमर 'ब्लेक' था जिसने 1888–1889 में लेफटीनेन्ट

जे. ई. पिल्सबरी के कमान में गल्फ स्ट्रीम के अध्ययन किये (पिल्सबरी, Pilsbury, 1891)। स्टीमर ब्लेक ने उनतालीस इलाकों में, जहां गहराई 4000 मीटर तक थी, लंगर डाले और धारायें मापी और स्थलमण्डलीय ताप निर्धारित किये। उत्तरी अटलान्टिक में वृहत् गहराई पर 'माइकल सार्स' और 'आरमेयर हेनसन' ने हेलैण्ड-हेनसन के निदेशन में लंगर डाले और अन्य जलयानों ने तब से कहीं वृहत् गहराइयों पर लंगर डाले। मिटियॉर (स्पीएस, Spiess, 1932b), विलेब्रोड स्नेलियस (पर्क्स पिंके में, Perks in Pinke, 1938) और अटलान्टिस (सियेवेल, Seiwell, 1940) आदि सभी पोत, कुछ घण्टों से लेकर कम से कम दो सप्ताह की अवधि तक 4500 मीटर से अधिक की गहराई में लंगर डाले हुए रहे हैं। अधिकतम गहराई जहां तक किसी पोत ने लंगर डाला है वह लगभग 5500 मीटर रही है, जिस पर 'मिटियॉर' पोत दो दिन लंगर डाले रहा।

जल में डाली गयी तार रस्सी के वजन के कारण अत्यन्त ही मज़बूत आरोहण के साज सामान और डेक फिटिंग्स की आवश्यकता होती है। तार रस्सी साधारणतया विशिष्ठ विन-ऐंठ प्रकार के गावदुमाकार वहु बलदार इस्पाती रस्सी होती हैं। कुछ के अपनी लम्बाई के कुछ भाग में सनी क्रोड़ होता है ब्लेक, मिटियॉर और स्नेलियस पोत पर उपयोगित रस्सी के मुक्त सिरे का व्यास लगभग $\frac{3}{8}$ इन्च था जो विन्च सिरे पर लगभग $\frac{5}{8}$ इन्च बढ़ गया था। तार रस्सी को पैंदे पर ऐंठने से बचाने के लिये लंगर के निकट सनी रस्सी, जंजीर या केवल उपयोग किये जाते हैं। विभिन्न प्रकार के लंगर, या तो एक जोड़ों में जिनका भार 400 से 500 पौण्ड के बीच होता है, काम में लिये गये हैं। लंगर या तो किसी अंश में अपवृद्ध पाल के मानक प्रतिरूप होते हैं या वे छत्रक प्रकार के होते हैं। लंगर के भार प्रत्यक्षता में इतने महत्त्वपूर्ण नहीं होते हैं। केवल 40 पौण्ड का डेनफोर्थ लंगर का उपयोग करते हुए पोत इ. डबल्यू स्क्रीप्स ने सफलतापूर्वक लगभग 1600 मीटर की गहराइयों में लंगर डाला। आरोहण आमतौर से वाष्प या शक्ति से चलित वृहत् व्यास की ढोल चर्खी से किया जाता है, तथा तार रस्सी तनाव में विन्च ढोल पर लपेटी जाती है। चूंकि तनाव कई टन से अधिक हो सकता है, तमाम फिटिंग्स मजबूत संरचना के होने चाहियें। आकस्मिक खिंचाव को ढीला करने के लिये तार रस्सी संचायकों के सहारे डाइनेमोमीटर के ऊपर से ले जाई जाती है, ब्रेक युक्ति के आरपार और बाद में एक बड़ी गरारी या गलही पर लगे रोलर के ऊपर से ले जाई जाती है। जल में भेजी गयी रस्सी की लम्बाई को मापने के लिये मीटर पहिया आवश्यक है। उपकरण और उनके उपयोग पहले ही दिये गये संदर्भ में वर्णित है।

जब गल्फ स्ट्रीम की तीव्र धारा में लंगर डाला तो ब्लेक ने दो या तीन का स्कोप (पानी की गहराई और पानी में डाली गयी रस्सी की लम्बाई का अनुपात)

काम में लिया परन्तु खुले समुद्र में लंगर डालते समय 1.1 और 1.6 के बीच के स्कोप काम में लाये गये। जितना अल्प स्कोप उतनी ही कम पोत की हलचल होगी, परन्तु पृष्ठीय धारायें और वायु तथा समुद्र आवश्यक स्कोप का निर्धारण करेगी।

धारा मापन

महासागरीय धारायें जटिल होती हैं क्योंकि जल की विशाल मात्रा वहन करने वाली मुख्य धाराओं पर अध्यारोपित, विषम भंवर धाराएं होती हैं जो बड़ी गहराइयों तक पहुँच सकती हैं, वात धाराएं होती हैं जो पृष्ठीय परतों तक ही सीमित होती हैं, और ज्वारभाटीय धारायें या आन्तरिक तरंगों से संबंधित धारायें होती हैं जो पृष्ठ और पैंदे के बीच सभी गहराइयों पर विद्यमान होती हैं परन्तु सामयिक रूप से जो बदलती रहती हैं। बहुत से दृष्टान्तों में मुख्य धारायें सीधे मापी नहीं जा सकतीं परन्तु दिशाओं और वेग से सम्बन्धित निष्कर्ष, घनत्व के प्रेक्षित वितरण के लिये द्रव गति विज्ञान के नियम के प्रयोग पर आधारित होने चाहियें। इस प्रकार के अध्ययन में उपयोगित विधियां अध्याय XIII में विवेचित हैं। यहां तो केवल प्रत्यक्ष प्रेक्षण की विधियों का विवेचन किया जावेगा और ये आसानी से दो समूह में वर्गीकृत की जा सकती हैं; (i) अपवहन प्रणालियां और (ii) प्रवाह प्रणालियां। इन तमाम प्रणालियों का श्रेष्ठ सारांश और उपयोगित उपकरणों का विवरण थोरडे, (Thorde 1933) द्वारा तैयार किया गया है।

वैज्ञानिक साहित्य में धारा का वेग सेन्टीमीटर प्रति सैकण्ड (से. मी./सै.) या यदा कदा मीटर प्रति सैकण्ड (मी./सै.) में दिया जाता है परन्तु नौचालन के प्रकाशनों में वेग नॉट्स में (समुद्री मील प्रति घण्टा) या समुद्री मील प्रति 24 घण्टा में कथित होता है। नॉट शब्द पाल वाले जहाजों के समय का है जब जहाज का वेग लकड़-लॉग, लॉग-डोरी और रेत घड़ी द्वारा मापा जाता था। शून्य अंक से दूरियां लॉग डोरी के स्पर्शी, गांठें लगी छोटी डोरियों द्वारा दिखाई जाती थी। पहली रस्सी पर एक गांठ, दूसरी पर दो और इसी क्रम से गांठें लगी होती थीं। लकड़-लॉग जहाज से फेंका जाता था, तब लॉग डोरी बाहर खींच ली जाती और ज्योंही शून्य का अंक रेल (पटरी) से गुजरता रेत घड़ी को शुरू कर दिया जाता था। जब घड़ी की रेत कम हो जाती थी, लॉग डोरी रोक दी जाती थी और निकटतम डोरी पर लगी गांठों की संख्या गिन ली जाती थी। रेत घड़ी और डोरियों के बीच की दूरियां, जहाज का वेग समुद्री मील प्रति घण्टा में देने के लिये समंजित कर ली जाती थीं; इस प्रकार गांठों की संख्या से इस इकाई में यानी नॉट्स में वेग हुआ।

धारा जिस दिशा में बहती है वही सदैव दिशा कहलाई, क्योंकि नाविक उस दिशा को जानने में रुचि रखता है जिधर धारा उसके पोत को ले जाती है। कम्पास

विन्दुओं (जैसे NNW, SE) द्वारा, और उत्तर की ओर जाने वाली धारा के लिये 0° (या 360°) और दक्षिण की ओर की धारा को 180° लेते हुए 0° से 360° तक अंशों में, या उत्तर या दक्षिण से पूर्व या पश्चिम जैसे [N60°W, S30°E] लेकर कर अंशों द्वारा, दिशा सूचित की जाती है।

अपवहन प्रणालियां

पृष्ठीय धाराओं की सामान्य दिशा की सूचना तैरती हुई वस्तुओं, जैसे लट्ठे, पोत के भग्न शेष, और मछुओं के औज़ार आदि के अपवहन से प्राप्त होती है। इस प्रकार जापानी मछुओं द्वारा उपयोगित कांच की गेंदें और नष्ट हुए चीन के जहाज़ों की रद्दी रस्सियां, कभी कभी अमरीका के पश्चिमी तट पर पाये जाते हैं, और इन जांच परिणामों से यह निष्कर्ष निकाला गया कि उत्तर प्रशान्त महासागर के आरपार पश्चिम से पूर्व की ओर धारा बहती है। दूसरा उदाहरण है अभागी पोत 'जीनेटे' के उपकरण और कागजात का जुलाई 1884 में ग्रीनलैण्ड के दक्षिणी पश्चिमी भाग से परे तैरती हुई बर्फ की चादर के वहन से पुनः प्राप्ति, यह पोत 77° 17′ उ. अक्षांश और 153° 42′ पू. देशान्तर में न्यू साइवेरियन द्वीप समूह के पूर्व-उत्तरपूर्व में बर्फ में जून 12, सन् 1881 के दिन नष्ट हो गया था। इन वस्तुओं की पुनः बर्फ में प्राप्ति ने स्थापित कर दिया कि पानी साइवेरिया से ग्रीन लैण्ड तक फैला हुआ है और चूंकि अवशेष तैरते हुए बर्फ के टुकड़े पर से उठाये गये थे, अतएव अपवहन का समुद्र के आरपार वेग निश्चित किया जा सकता है। बहुत से उदाहरणों में आकस्मिक अपवाहित वस्तुओं से धाराओं की जानकारी प्राप्त कर निष्कर्ष का निकालना अभी अपूर्ण है क्योंकि इलाका और समय जब अपवहन शुरू हुआ उसका पता नहीं है, न यह भी पता है कि खोज होने से पहले कितने समय तक वस्तु बालु तट पर पड़ी रही होगी। यह भी मालूम करना कठिन है कि इस प्रकार की वहन वस्तुऐं वायु द्वारा धकेल कर जल में कितनी दूरी तक चली गयी हैं।

इस प्रकार की अनिश्चितताओं से छुटकारा पाने के लिए एक शताब्दी से पूर्व अपवहन बोतलें पुनः स्थापित की गयी थी। ये रेत से भर कर भारी कर दीं जाती थीं ताकि पानी में लगभग निमज्जित रहे तथा ये सावधानी पूर्वक सील वन्द करदी जाती और केवल इनका थोड़ासा ही भाग जल की सतह के ऊपर हवा द्वारा प्रभावित होने के लिए रहता है। इनमें कार्ड रक्खे होते जो बोतल का नम्बर बताते, तथा जिनमें छोड़ने का समय तथा इलाका संस्थापन करते और पाने वालों से निवेदन होता कि बोतल को पाने का समय और स्थान कार्ड पर लिख दें तथा यही सूचना केन्द्रीय कार्यालय में भेज दे।

वायु का सीधा असर और भी कम हो इसके लिए अपवहन बोतलों के साथ कभी-कभी एक प्रकार का अपवहन लंगर लगाया जाता है, जैसे बोतल से लगभग एक मीटर नीचे लटकाया लोह पट्टी का क्रास के आकार का टुकड़ा। अन्य दृष्टान्तों में दो बोतलों का उपयोग किया जाता जिनमें से एक इतनी भारी कर दी जाती कि वह दूसरी के द्वारा ले जाई जाती तथा इन दोनों को जोड़ने वाले तार की लम्बाई लगभग एक मीटर होती। दो बोतलों से और भी प्रयोग किये गये हैं जिनमें से एक में कमजोर अम्ल होता जो निश्चित अवधि में एक धातु के डाट को संक्षारित कर देता और इस प्रकार बोतल समुद्र जल से भरने लगती। जब ऐसा हो जाता तो बोतलें पैंदे में डूब जाती जहाँ वे, लंगर की तरह काम करने वाला, धातु की चादर के टुकड़े द्वारा पकड़ली जाती। इस युक्ति का उत्तरी सागर के छिछले जल में उपयोग किया गया जहाँ मछुये तली-जाल व्यापकरूप से उपयोग करते हैं जिससे उन्हें बहुतसी बोतलें पुनः प्राप्त हो जाती है।

अपवहन-बोतल प्रयोगों के परिणामों के निर्वचन में कठिनाइयां आती हैं। साधारणतया, छोड़ने के स्थान से पाने के स्थान तक बोतल ने सीधा रास्ता नहीं अपनाया होता है और बोतल के सम्भावित अपवहन सम्बन्धित निष्कर्षों का नियन्त्रण, पृष्ठीय परतों में ताप और लवणता के वितरण की जानकारी से होना चाहिए। यदि बोतल जल में से उठाई गयी है या यदि पैंदे से कोई विशिष्ठ अपवहन बोतल लाई गई हो तो अपवहन के औसत वेग का काफी ठीक-ठीक अन्दाजा लगाया जा सकता है। बारम्बार बने हुए रेतीले किनारों से उठाई गयी बोतलों का भी अपवहन के वेग का अन्दाजा लगाने के लिए उपयोग किया जा सकता है। पूर्वीय उत्तर-सागर में किये गये अपवहन-बोतल प्रयोगों के परिणामों से टेट (Tait's) के निष्कर्ष (1930) सरल निर्वचन का एक उदाहरण देते हैं। लगभग 57° उ० अक्षांश और 4° पू० देशान्तर पर एक साथ फेंकी गयी कई बोतलें जटलैण्ड के तट पर पाई गई थी, जिनमें बहुत सी बोतलों के अपवहन की आमामी अवधि बीस दिनों की गुणज थी। टेट ने मान लिया था कि, जटलैण्ड से हटकर के समुद्र में एक भंवर है जैसा कि लवणता के वितरण से निर्दशित था, और भंवर में एक परिपथ को पूरा करने में लगभग बीस दिन लगते थे। यदि बहुतसी बोतलें इस भंवर में खींच ली गई और एक दो या अधिक परिपथ पूरा करने के बाद बाहर निकली तो बोतलों के बालूतट पर बहकर पहुंचने के समान कालान्तर का कारण पता चल जावेगा।

अटलान्टिक महासागर के मध्यवृतीय भाग, (डिफान्ट, Defant 1929, अ. II) और जापान के चारों ओर के समुद्र (उडा, Uda, 1935), जैसे अपेक्षाकृत विशाल महासागरीय क्षेत्रों में पृष्ठीय धाराओं के विषय में सूचना प्राप्त करने के लिए अपवहन बोतलें सफलता पूर्वक काम में ली गयी हैं। इंगलिश चेनल और उत्तरी सागर

(फुल्टन, Fulton, 1897, कारुथर्स, Carruthers, 1930, टेट, Tait, 1930,) जैसे विशेष बन्द समुद्रों में उन्होंने कई आंकड़े दिये परन्तु खुले समुद्र तट से दूर के भागों में कम सफल रहे (टिब्बी, Tibby, 1939)।

लघु कालान्तर पर धाराओं के विषय में सूचना प्राप्त करने के लिए भी अपवहन प्रणाली का उपयोग किया जा सकता है। पोतवृत से व्युत्पन्न धाराओं को इस विधि से मालूम की जाती है (10·10) और चौबीस घण्टे या चौबीस घण्टे के गुणज से औसत पृष्ठीय धारा प्राप्त होती है। एक लंगर डाले हुए पोल जैसे दीपनौका, से पृष्ठीय धारा या तो लकड-लॉग से (बोवडीट्च, Bowditch, 1934, अ. II) या अपवहन बोया से मालूम की जा सकती है, साधारण रूप से ऐसे पोत के नीचे, लंगर की तरह काम करने वाला एक "धारा क्रास" होता है। इस प्रकार का संवहन वोया "चेलेन्जर" पोत पर उपयोग किया गया था। पश्चादुक्त प्रणालियों से प्रेक्षण के स्थान पर पृष्ठीय धाराओं के तात्कालिक मान मिल जाते हैं।

भूमि के समीप प्रणालियां इस प्रकार से विस्तृत की जा सकती है कि किसी वस्तु का लम्बी अवधि में और लम्बी दूरियों तक विस्तारपूर्वक अपवहन निर्धारण किया जा सके। एक वहन बोये का पीछा एक पोत द्वारा किया जा सकता है, जिसकी स्थिति परिशुद्धता से, ज्ञात भू-चिन्हों पर बेयरिंग द्वारा स्थापित की जा सकती है या बोये पर एक मस्तूल लगाया जा सकता है और बोया की दिशा प्रेक्षित हो सकती हैं। तब किसी निश्चित इलाके से इसकी दूरी परास बोधक द्वारा मालूम की जा सकती है। दोनों ही विधियाँ सफलता पूर्वक प्रयुक्त हुई हैं। पश्चादुक्त को खुले महासमुद्र में एक बोये को लंगर डालकर दूसरे बोये को बहाकर और बेयरिंग को मालूम कर तथा वहन बोये की लंगर डाले हुए बोये की यथाशक्य निकटवर्ती जहाज से दूरी मालूम कर उपयोग में ला सकते हैं।

भूमि से अदृश्य उथले समुद्रों में बर्फ-अपवहन निर्धारण के लिए फिर भी एक दूसरी अपवहन प्रणाली का लाभपूर्वक उपयोग किया गया है। इस प्रणाली में एक बाट को पैंदे पर इतनी शीघ्रता से गिराया जाता कि तली के गारे में जाकर यह चिपक जाता है। जल में भेजने वाली रस्सी की लम्बाई और उसमें लगा समय अंकित किया जाता हैं और तब अधिक तार रस्सी भेजी जाती है जो बर्फ की तैरती पट्टिका, जिससे जहाज बँधा होता है, के अपवहन के अनुसार होती है। निश्चित अवधि के बाद तार रस्सी कस ली जाती है और भेजी गई कुल लम्बाई अंकित कर ली जाती है, ज्यों ही बाट पैंदे में गारे से बाहर खींचा जाता है। तार के रेशे की दिशा अंकित कर ली जाती है और इन आंकड़ों से बर्फ का अपवहन संगणित किया जा सकता है।

प्रवाह प्रणालियां

लंगर डाले हुए जलयान या तरणिका से उन निश्चल उपकरणों द्वारा धाराएं मापी जा सकती हैं जिनके स्पर्शी धारा बहती है, जो किसी प्रकार के नोदक को घुमाती हैं या दाब लगाती हैं जो विभिन्न विधियों से मापा जा सकता है। इन यन्त्रों का लाभ यह है कि प्रेक्षण केवल पृष्ठीय परतों की धाराओं तक ही सीमित होना जरूरी नहीं वरन् किसी गहराई तक के प्रेक्षण किये जा सकते हैं। प्रत्यक्ष कठिनाई तो उपकरण को किसी निश्चित इलाके में कायम रखने की होती है ताकि पानी का परम प्रवाह मापा जा सके न कि गतिमान यन्त्र के सापेक्ष प्रवाह मात्र को मापा जाय। उथले समुद्र में जलयान लंगर डाल सकता है ताकि पोत की गति इतनी कम हो कि वह उपेक्ष्य हो या ऐसी प्रकृति की हो कि वह विलोप हो सकती है। गहन समुद्रों में धारा मापन सर्वप्रथम लंगर डाले हुई नावों से किया गया था परन्तु बाद के वर्षों में अगाध-समुद्र में लंगर डालने की तकनीक में इतनी प्रगति हुई (10·11) कि मिटियॉर, आरमेयर, हेनमन और अटलांटिस जैसे पोत कई दिन और सप्ताह तक 4000 से 5000 मीटर तक की गहराइयों में लंगर डाले पड़े रहे। अन्य दृष्टान्तों में आपेक्षित धाराएं मन्द वहन पोतों से मापी गयी हैं।

जहाज़ को लंगर डालकर लम्बी अवधि के लिए रखना व्ययशील होता है और इसीलिए ऐसी युक्तियां विकसित हुई जिनसे स्वतः अंकन करने वाले धारा मापी लंगर से डाले जा सकते हैं जो एक बार में हफ्तों जल में छोड़े जा सकते हैं (10.12)। लंगर डाले हुए जहाज़ से चाहे कितनी ही दृढ़ता से वह स्थिति में रक्खा गया हो, समुद्र तली के सन्निकट धाराओं को सुरक्षा पूर्वक नहीं मापा जा सकता, क्योंकि जहाज से लटकाया गया उपकरण पैंदे से नियत दूरी तक, उल्लोल तथा ज्वार-भाटों से उत्पन्न गति के कारण नहीं रक्खा जा सकता। नानसन ने सबसे पहले इस कठिनाई पर विजय पाई जिसने एक तिपाई समुद्र तल तक उतारी और तिपाई के ऊपरी भाग (शिखर) से एक धारामापी लटकाया। बाद में यही विधि स्टेटसन (Stetson 1937), रेवेली और फ्लेमिंग (10.13) और रेवेली और शेपर्ड द्वारा काम में ली गई। बाद वालों ने तीन धारा मापी तिपाई के शिखर से लटकाये और इस प्रकार पैंदे से 2 मीटर से कम तक तीन सतहों पर धारा मापन एक साथ कर सके।

धारा मापी

धारा मापी डिज़ाइन में भिन्न होते हैं परन्तु तमाम नोदक या कप प्रकार के यन्त्रों में एक साधन होता है जिससे किसी नियत कालान्तर में नोदक या कप के परिक्रमा की संख्या गिनी जा सकती है, तथा धारा की दिशा में मीटर को अनुस्थापन करने के लिए एक पिच्छफलक होता है और इस दिशा को, या तो चुम्बकीय याम्योत्तर के

सापेक्ष कम्पास द्वारा या किसी निश्चित समतल के सापेक्ष (द्विसूत्री निलम्बन द्वारा) अंकन के लिए एक न्यूनाधिक जटिल यन्त्र संरचना होती है। दाव मापने वाले यन्त्रों में शायद, पिच्छफलक न लगा हो क्योंकि किसी प्रकार के लोलक के विक्षेप से दिशा मालूम हो सकती है। नोदकनुमा या कपनुमा यन्त्रों का लाभ यह है कि आमतौर से धारा के वेग, v, और प्रति मिनट परिक्रमा की संख्या, n, के मध्य एक रैखिक सम्बन्ध होता है :

$$v = a + bn,$$

जहाँ a और b स्थिरांक हैं जो प्रत्येक उपकरण के लिए और उस उपकरण में उपयोगित प्रत्येक नोदक के लिए अनुसंशोधन से निर्धारित करने चाहिए। उत्तम बेयरिंग में चलने वाले सुसंतुलित नोदक के लिए a लगभग 0·5 से०मी०/से० होता है, परन्तु 2 से०मी०/से० से कम आवेग की धारायें विश्वसनीय रूप से अंकित नहीं होती हैं। धारामुखी पृष्ठ पर पड़ रहा दाब, वेग के वर्ग के लगभग समानुपाती होता है। धारा के वेग और दाब मापी उपकरण के संकेत में वास्तविक सम्बन्ध को अनुसंशोधन द्वारा अभिनिश्चित करना चाहिए।

धारा की दिशा ज्ञात करने के लिए कम्पास (कुतुबनुमा) के उपयोग में एक हानि है कि फौलादी पोत के निकट कम्पास जहाज़ के चुम्बकत्त्व से अत्यधिक प्रभावित होगा। जहाज़ के चुम्बकत्त्व से विचलन 180° तक हो सकता है यानी जहाज़ के दाहिनी तरफ कुतुबनुमा पूर्णतया प्रतिवर्त हो सकती है। यह विचलन, जो गहराई के साथ शीघ्रता से घटता है, अक्षांश पर, जहाज़ के शीर्ष पर और धारा मापी की गहराई पर निर्भर करता है। यह समय के साथ बदलता हैं क्योंकि जहाज़ के चुम्बकत्त्व का वृहत् भाग अस्थायी होता है। जहाज़ के सभी ऊपरी भागों के लिए तथा मापन की सभी गहराइयों के लिए, इस विचलन को मालूम करना एक निराशा-जनक कार्य है, और इसीलिए फौलादी जहाज़ से 50 मीटर से कम की गहराइयों पर दिशायें मालूम करने के लिए कुतुबनुमा का उपयोग नहीं करना चाहिए। यहाँ तक कि लकड़ी से बने जहाज़ों से कुतुबनुमा द्वारा प्राप्त दिशाओं को सावधानी से जाँचना चाहिए, विशेषकर यदि गहराई 20 मीटर से कम है। ऊपरी परतों के लिए एक द्विसूत्री निलम्बन की सिफ़ारिश की गई जिसमें द्विसूत्री-फ्रेम के अनुस्थापन के सापेक्ष धारा की दिशा को अंकित करने का साधन हो, जो पुनः जहाज़ के शीर्ष (ऊपरी भागों) द्वारा निर्धारित की जा सकती है। लंगर डाली हुई नौका से पृष्ठ के निकट कुतुबनुमा यंत्र का उपयोग किया जा सकता है, विशेषकर यदि लंगर डालने के लिए सनी-रस्सी उपयोग की गई है न कि इस्पात की रस्सी या लंगर-जंजीर का उपयोग किया गया है।

सभी नोदक और कपनुमा उपकरणों की एक हानि यह होती है, कि वहन पदार्थ पेच की गति में अड़चन डाले या उसे पूर्णतया रोक दे। लम्बी अवधि तक एक

स्थिति में छोड़े जाने के लिए अभिकल्पित उपकरण को बहुल कालान्तर पर परिपूर्ण कृत्य कारिणी को सुनिश्चित करने के लिए जाँच करनी चाहिए। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि तार रस्सी पर जेली-फिश या उसके समान जीव-जन्तु पकड़ में आ सकते हैं और मेसेन्जर को गुजरने से रोक सकते हैं।

एकमन धारामापी (एकमन, Ekman, 1905, 1932) का, अपनी साधारणता और विश्वसनीयता के कारण, विस्तृता से उपयोग हुआ है और अभी भी हो रहा है। इस उपकरण का ब्यौरेवार विवरण नीचे दिया गया है। एकमन मीटर की परम हानि यह है कि केवल एक ही उपकरण तार से नत्थी किया जा सकता है और इसे प्रत्येक आवर्तकाल के बाद पाठ्यांक के लिए ऊपर खींचना पड़ता है जब नोदक परिक्रमा के लिए मुक्त कर दिया जाता है। अगाध गहराइयों में काम करना सुविधाजनक हो, इसके लिए एकमन ने अतिजटिल आवृति धारा मापी का निर्माण किया जिसका नोदक निर्मुक्त किया जा सकता है और मेसेन्जर (सन्देश-वाहक) द्वारा अवरुद्ध हो सकता है। इस प्रकार उपकरण के ऊपर खींचे जाने से पहले प्रेक्षण की श्रेणीमाला या तो एक ही गहराई पर या विभिन्न कई गहराइयों पर प्राप्त की जा सकती है, स्क्रीप की समुद्र विज्ञान संस्थान में सी०ए० जॉनसन ने एकमन मीटर के लिए उपान्तरित निलम्बन तैयार किया, ताकि एक ही तार से कई उपकरण नत्थी हो सकते हैं। प्रत्येक उपकरण का नोदक उसी विधि से निर्मुक्त और मेसेन्जर द्वारा अवरुद्ध हो सकता है जो नानसन की जल की वोतलों को काम लेने में उपयोग की जाती है और इस प्रकार लगभग एक साथ मापन कई गहराइयों पर प्राप्त हो सकते हैं।

लगातार अंकन करने वाले धारा मापियों के सुस्पष्ट लाभ हैं परन्तु वे जटिल हैं और व्ययशील हैं। अंकन युक्ति यान्त्रिक हो जिसमें घड़ी जैसे कलपुर्जों की आवश्यकता हो जो समुद्र जल में विश्वासपूर्वक कार्य करेंगे, या विद्युतीय हो जिसमें समुद्र जल से पृथक्करण की आवश्यकता होती है या फोटो युक्ति हो जिसमें जलरोक कक्ष की आवश्यकता हो जो दाव सहन कर सके और जिसमें फोटो-उपकरण वन्द होते हैं। विभिन्न डिज़ाइन के विस्तृत विवरण थोराड, (Thorade, 1933) ने दिये हैं। यहाँ तो केवल उन उपकरणों के अति महत्त्वपूर्ण लक्षणों का सारांश दिया गया है जो उपयोग में है या प्रयुक्त किये गये हैं।

एकमन धारा मापी (Ekman, 1905, 1932)

इस उपकरण के मुख्य भाग हैं, नोदक जिसकी परिक्रमा संख्या डायल के सेट पर अंकित होती है, कुतुबनुमा जिसके साथ मीटर के अनुस्थापन के अभिलेखन के लिए युक्ति हो, और पिच्छफलक जो उपकरण का अनुस्थापन करता है जिससे नोदक धारा

मुखी होता है (चित्र 88)। उपकरण का मुक्त झूलना, ऊर्ध्वाधर अक्ष पर गोली बेयरिंग में लगाकर, सुनिश्चित किया जाता है। इस अक्ष के ऊपरी सिरे पर अवतरण के लिए तार को बाँधा जाता है और उपयुक्त बाट (भार) अक्ष के नीचे नत्थी किया जाता है। उपकरण को जल में संतुलित रक्खा जाता है ताकि अक्ष लम्बरूप रहे। सावधानी पूर्वक संतुलित चार से आठ हल्के, पतले ब्लेड का नोदक एक मज़बूती संरक्षी वलय के अन्दर घूमता है परन्तु जाँच पड़ताल या परिवहन के लिए आसानी से हटाया जा सकता है। नोदक का अक्ष गोमेद बेयरिंग पर टैन्टेलम बिन्दुओं से चलता है। संरक्षी वलय के अन्दर एक उत्तोलक (लीवर) होता है जोकि सन्देशवाहकों द्वारा चलाया जा सकता है। जब लीवर अपनी निम्नतम स्थिति में हो तब नोदक अवरुद्ध होता है और इस स्थिति में उपकरण नीचे उतारा जाता है। जब वांछनीय गहराई तक (उपकरण) पहुँच जाता है तब लीवर को अपनी मध्य स्थिति में धकेल नोदक को विमुक्त करने के लिये संदेशवाहक भार गिराया जाता है; नोदक के चक्कर डायल के सेट पर अंकित हो जाते हैं। कई मिनटों के पश्चात् दूसरा सन्देशवाहक भार गिराया जाता है जो लीवर को उच्चतम स्थिति में धकेल देता है और नोदक को रोक देता है। बाद की किस्मों के उपकरण में जब उपकरण नीचे जल में उतारा जाता है तब नोदक में मेड्युसा जैसे जीव-जन्तुओं को फंसने से बचाने के लिए नोदक भी सामने से परिरक्षित होते हैं यह सामने की आड़ प्रथम मेसेन्जर द्वारा खोली जाती है।

धारा की दिशा एक सरल युक्ति द्वारा अंकित होती है जो साधारण व विश्वसनीय होती है। एक नली डायल बक्स के ऊपर से दंतीले पहिये के अक्ष पर लगी डिस्क तक होती है, दंतीला पहिया एक बार पूरा घूमता है जब नोदक एक सौ परिक्रमण पूरा करता है। यह नली लगभग 2 मिली मीटर व्यास की फॉस्फर-ब्रांझ की गेंदों से भरी होती है गेदों के आकार के अनुसार डिस्क में तीन दन्तुरतायें होती हैं। इनमें से एक दन्तुरता जब नली के नीचे से गुजरती है एक गोली इसमें गिर जाती है और डिस्क के चारों तरफ ले जायी जाती हैं, जब तक कि वह दूसरी नली में नहीं गिर जाती जो नीचे की ओर बढ़ती है और कुतुबनुमा के केन्द्र से ऊपर समाप्त होती हैं। कुतुबनुमा, जो आसानी से छड़ से, जिससे वह बंधी हुई होती है, हटाई जा सकती है, उसके अन्दर एक चुम्बकों का निकाय गोमेद पर चलने वाली एक पिन पर निर्बाद्ध झूलता है। चुम्बक बंधे हुए फ्रेम में एक छड़ होती है जो चौड़े, उल्टे *V* अक्षर के आकार की होती है। छड़ की एक भुजा के ऊपर का भाग द्रोणीकाकार होता है ताकि बक्स के ढक्कन के केन्द्र से गिरने वाली गोली इस द्रोणिका में लुढ़क जावे और बक्स के पैंदे में गिर जावे, जो छत्तीस खण्डों में विभाजित है प्रत्येक खाना (कक्ष) 10° के कोण के तदनुरूप होता है, और उ०, उ० 10^0 पू०, उ० 20^0 पू० इत्यादि। कुतुबनुमा दृढ़ता पूर्वक मीटर के पिच्छफलक से युग्मित होता है परन्तु कुतुबनुमा के

चुम्बक स्वयम् चुम्बकीय याम्योत्तर में समंजन कर लेते हैं। जिस खाने में गोली गिरती है वह पिच्छफलक की दिशा सूचित करता है यानी गोली गिरने के क्षण धारा की दिशा। आमतौर से कई गोलिकायें (शाट्स) एक प्रेक्षण के समय गिरती हैं चूंकि नोदक के प्रत्येक तैंतीस परिक्रमण पर एक गोली गिरती है। धारा की औसत दिशा, गेंदों के वितरण के अनुसार, भारित औसत की गणना कर ज्ञात हो सकती है। यदि अवलोकन की अल्प अवधि में विस्तृता से दिशा में परिवर्तन हुआ है तो औसत दिशा अनिश्चित होगी या यहाँ तक कि अनिर्धारित होगी इस हालत में नोदक की परिक्रमा से संगणित किया गया औसत वेग का कोई अर्थ नहीं होता है।
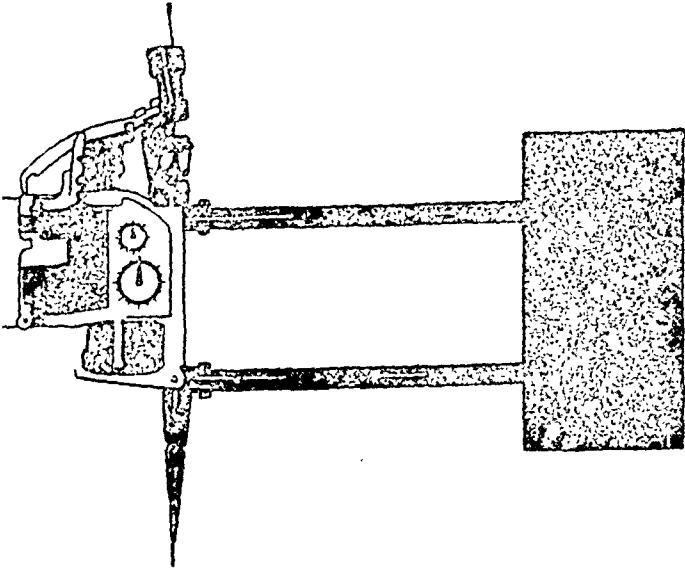
चित्र 88 : एकमन धारा मापी। मेसेन्जर, डायल और कुतुबनुमा दिखाई देते हैं। नोदक संरक्षी वलय द्वारा छिपा हुआ है।

एकमन आवृत्ति धारा मापी (एकमन, Ekman, 1926): इस उपकरण में नोदक सन्देश वाहकों द्वारा छोड़ा और रोका जाता है। जब नोदक रुक जाता है तीन गोलियाँ एक पात्र में से छोड़ी जाती हैं। एक गोली कम्पास बक्स (कुतुबनुमा) में गिर जाती है, जिससे नोदक के रुकने के समय की धारा की दिशा पता चल जाती है और दो गोलियां नोदक द्वारा घुमाये गये डायल की स्थिति से अन्य छिद्रों में ले जाई जाती हैं। गोलियों के गिरने वाले छिद्रों से डायल की स्थितियां मालूम की जा सकती हैं और इस प्रकार नोदक की परिक्रमा की संख्या प्राप्त हो सकती है। मेसेन्जर्स (संदेशवाहक) इस प्रकार बनाये जाते हैं कि जब उपकरण से टकरावें तो वे खण्डित हो जावें तथा दोनों खण्ड पात्र में आ जावें। यह प्रक्रम सैंतालीस बार दोहराया जा सकता है जब कि गिनी हुई गोलियों का संग्रहण समाप्त हो जाता है।

केरूथर्स अवशिष्ट धारा मापी (थोराड, Thorade, 1933): यह उपकरण एक लम्बी अवधि तक अवशिष्ट धारा मापन के लिए बनाया जाता है। कप की परिक्रमा को सीधे ही अंकन करने के लिए इसमें कोई साधन नहीं होता परन्तु कुछ ही चक्करों के बाद एक गोली छूटती है और एकमन की धारा मापी के कुतुबनुमा के समतुल्य कुतुबनुमा में गिरती है। छोड़ी गई गोलियों की संख्या से वेग मालूम किया जाता है। गोलियां एक बड़े बक्स में से मिलती हैं जिसमें 22,000 से अधिक गोलियां होती हैं। मापन काल के अन्त में कुतुबनुमा के छिद्रों में गोलियों की संख्या गिनली जाती है। इन आंकड़ों से तथा अनुसंशोधन के परिणामों से औसत वेग और दिशा मालूम की जा सकती है।

बॉह्नेक यान्त्रिक अभिलेखन धारा मापी (थोराड, Thorade 1933): इस धारा मापी में नोदक अनुप्रस्थ डायल के सेट को चलाता है जिनके खड़े घेरों पर उभरे हुवे अंक होते हैं। इसी प्रकार का डायल कुतुबनुमा के चुम्बक से लगा होता है। इन डायल के खड़े घेरों पर से टीन की पन्नी की एक पट्टी गुज़रती है तथा घड़ीनुमा मशीनी पुर्जो से एक चर्खी से दूसरी चर्खी पर लपेटी जाती है। पाँच या दस मिनट के अन्तर पर एक हथौड़ा टीन की पन्नी को डिस्क के घेरे पर उभरे हुए अंकों पर दबाता है, इस प्रकार डायल की स्थिति अंकित हो जाती है जो कि नोदक तथा कम्पास के चुम्बक द्वारा घुमाये जाते हैं। उपकरण एक द्विसूत्री फ्रेम द्वारा लटकाया भी जा सकता है और उस फ्रेम के अनुस्थापन के सापेक्ष दिशा का अभिलेखन हो सकता है। इस उपकरण का विस्तृत उपयोग नहीं हुआ है क्योंकि, सम्भवत:, जल में खुला रक्खे जाने वाले घड़ीनुमा मशीनी पुर्जो में लगी स्प्रिंग के लिए पदार्थ प्राप्त करना कठिन होता है।

विटिंग विद्युतीय अभिलेखन धारा मापी (विटिंग, Witting, 1923): इस उपकरण में नोदक द्वारा घुमाया जाने वाले पहिये के अक्ष पर दुशाखी लीवर को चलाने वाली एक अपकेन्द्री डिस्क होती है। एक अर्ध-जल रोधी जोड़ से दुशाखी (फार्क) का एक भाग वृत्ताकार बक्स में लाया जाता है जो पेट्रोलियम से भरा होता हैं तथा जहां यह चुम्बक को ऊपर नीचे ले जाता है। उठी हुई स्थिति में यह झूलने के लिये मुक्त रहता है और कोई विद्युत धारा निकाय में नहीं प्रवाहित होती। नीचे की स्थिति में फ्रेम जिससे चुम्बक बंधे हुए हैं एक कुंजी का काम करता है जो विद्युत परिपथ को, भीतरी ठोस सम्पर्क वलय और बाहरी सम्पर्क वलय, जो खण्डों में विच्छेदित है, के बीच सम्पर्क स्थापित कर बन्द कर देता है। एक विद्युत सुचालक भीतर के सम्पर्क वलय से युग्मित होता है और दूसरा सुचालक विभिन्न परिमाणों के प्रतिरोधों द्वारा खण्डों से जुड़ा होता है। विद्युत परिपथ का कुल प्रतिरोध, जिसमें (परिपथ में) विद्युत धारा लगभग स्थिर वोल्टता की एक संचायक बैटरी से दी

जाती है, इस पर निर्भर करता है कि जब नीचे ले जाई जाती है तो चुम्बक फ्रेम बाहरी वलय के कौन से खण्ड को छूती है यानी धारा की दिशा पर निर्भर करता है। अभिलेखन की उपकरण मिली अमेटर है जिसकी सुई विक्षेप को अंकित करती है जब चुम्बक नीचे की स्थिति में होता है। विक्षेपों के मध्य कालान्तर धारा वेग देते हैं और विक्षेपों का परिमाण दिशा बताती है।

स्वेरड्रप-डॉल विद्युतीय अभिलेखन कुतुबनुमा प्रकार का धारा मापी : (स्वेरड्रप और डॉल, Sverdrup and Dahl, 1926, स्वेरड्रप, Sverdrup 1929) यह उपकरण विटिंग धारा मापी के समतुल्य है सिवाय इसके कि यहाँ सम्पर्क वलय अर्ध-जलरोधी कक्ष में बन्द नहीं होते परन्तु एक अधोमुखी पीतल के बेलनाकार पात्र के शिखर पर व्यवस्थित रूप से होते हैं जो (पात्र) निमज्जिका-कोष्ठ का काम करता है। उपकरण को नीचे करने से पहले सिलिंडर में रक्खे एक कलश में पेट्रोलियम भरा जाता है। जब नीचे किया जाता है तब पेट्रोलियम सतह पर तैरता है और सम्पर्कों को समुद्र जल से बचाता है क्योंकि दाब में वृद्धि के साथ जल का तल बराबर ऊपर उठता जाता है। चुम्बक एक पिन पर आधारित होता है जो (पिन) ऊपर-नीचे होती रहती है ज्यों हीं नोदक घूमने लगता है। बिजली के तार लगाने की विधि विटिंग के धारामापी की विधि से कुछ भिन्न है परन्तु अभिलेखन सम रूप है।

स्वेरड्रप-डॉल विद्युतीय अभिलेखन द्वि-सूत्री प्रकार का धारामापी : इस धारा-मापी में उपकरण का पिच्छफलक सरकमा सम्पर्क को घुमाता है जो कि द्वि-सूत्री निलम्बन से दृढ़ता से युग्मित प्रतिरोधी वलय के सहारे आधारित है। नोदक द्वारा चलित एक कुंजी से विद्युत परिपथ बन्द होता है और खुलता है एवं नोदक की लगभग अस्सी परिक्रमाओं के लिए बन्द रहता है तथा लगभग बीस के लिए खुला रहता है। विद्युत-सम्पर्क "निमज्जिका कोष्ठ" के ऊपर सुव्यवस्थित होते हैं और एक अभिलेखन मिलीअमेटर अभिलेखन यन्त्र का काम करता है। आखीर के तीनों उपकरणों को केवल एक ही पृथक्कृत चालक चाहिए तथा निलम्बन तार दूसरे चालक का काम करता है।

ऑट विद्युतीय अभिलेखन धारामापी : (थोराड, Thorade, 1933) इस मीटर में धारा का वेग एक क्रोनोग्राफ पर अंकित होता है तथा जब नोदक नियत बार पूरे चक्कर लगा लेता है तो क्रोनोग्राफ पर विद्युत-चुम्बकीयता से एक निशान लग जाता है। दिशा लगातार अंकित नहीं होती परन्तु जब कभी भी जहाज पर कोई प्रेक्षक बटन दबाता है, तब यह (दिशा) एक किंचित जटिल व्यवस्था से एक डायल पर दिखाई जाती है। सभी विद्युतीय सम्पर्क पेट्रोलियम से भरे कक्षों में बन्द होते हैं। दो पृथक्कृत चालक आवश्यक होते हैं।

राउस्चेलबाक् विद्युतीय अभिलेखन धारा मापी: (राउस्चेलबाक्, Rauschelbach, 1926) यह उपकरण द्वि-सूत्री निलम्बन के लिये बनाया गया है। नोदक की प्रत्येक दस या बीस परिक्रमा पर हुए सम्पर्क द्वारा क्रोनोग्राफ पर वेग अंकित होता है, और दिशा भी उसी क्रोनोग्राफ पर अंकित हो जाती है, कई स्पर्शी खण्डों को इस प्रकार व्यवस्थित किये जाते हैं कि दिशा $\pm 1\cdot5^0$ की परिशुद्धता से प्राप्त हो जाती है। सम्पर्क प्रति पाँच या दस सैकण्ड से बन्द किये जाते और इस प्रकार धारायें काफी व्योरेवार अंकित हो जाती है। उपकरण में दो, सात-सात तार वाले केबल चाहिए।

पिटरसन फ़ोटो अभिलेखन धारा मापी: (ओ० पिटरसन, O. Pettersson 1913, एच० पिटरसन, H. Pettersson, 1915) जलरोधी बेलनाकार कक्ष के नीचे लम्बरूप अक्ष पर इस उपकरण का नोदक लगा होता है। सिलिडर के बाहर नोदक, न्यूनक गियर द्वारा, एक (प्रबल) मज़बूत चुम्बक को घुमाता है जो प्रेरण से ऐसे ही सिलिडर में रक्खे एक चुम्बक को घुमाता है। सिलिण्डर के चुम्बक के साथ एक चकती होती है जिसके घेरे पर पारदर्शक विभाजन होते है। पारदर्शक विभाजन वाली छोटी चकती कुतुबनुमा के साथ होती है ये दोनों चकतियां संकेन्द्रीय होती हैं। मृदु इस्पात का एक लघु सिलिंडर (बेलन) नोदक द्वारा घुमाये गये चुम्बकों से कम्पास के चुम्बक का परिरक्षण करता है। प्रत्येक आधे घण्टे से दोनों चकतियों की स्थितियों का एक फोटोग्राफ फिल्म पर चित्र ले लिया जाता है, यह फिल्म घड़ीनुमा यन्त्र से आगे बढ़ाई जाती है। घड़ीनुमा यन्त्र भी एक बिजली के बल्ब को जलाता और बुझाता भी है जिसके लिए शक्ति एक संचायक बैटरी से मिलती है। मीटर बोया के नीचे निलम्बन के लिए बनाया जाता है जो (बोया) समुद्र पृष्ठ से 10 मीटर और अधिक नीचे तक लंगर डाल कर रक्खा जा सकता है और दो सप्ताह के लिए छोड़ा जा सकता है।

इड्राक फ़ोटो अभिलेखन धारा मापी: (इड्राक, Idrac, 1931) इस उपकरण के कप लम्बरूप अक्ष पर लगे होते हैं और विद्युत सम्पर्क को चलाते हैं जो स्वेरड्रप-डॉल मीटर में उपयोगित पात्र के समरूप अधोमुखी बेलनाकार पात्र के शीर्ष पर रक्खे होते हैं। जब विद्युत परिपथ बन्द किया जाता है एक लैम्प प्रकाशमान हो जाता है और एक निशान फिल्म पर लग जाता जो अचर चाल से घड़ीनुमा यन्त्र द्वारा आगे बढ़ती रहती है। घड़ी-यन्त्र और केमरा एक जलरोधी सिलिण्डर में बन्द किये जाते हैं और संचायक बैटरी ऐसे ही सिलिण्डर में बन्द की जाती हैं। एक घण्टे में फिल्म पर लगे निशानों की संख्या से धारा का वेग प्राप्त होता है। दिशा लगातार अंकित होती रहती है। कुतुबनुमा के चुम्बक से नत्थी एक काली चकती होती है जिस पर एक श्वेत सर्पिल से जुड़े हुए दो श्वेत केन्द्रीय वृत बने होते हैं। सर्पिल पूरे 360 अंशों से बाह्य से भीतरी वृत तक जाता है।

केमेरा चकती के ऊपर आरोहित होता है जिसके साथ एक बारीक रेखा छिद्र होता है जिससे चकती की एक बहुत संकीर्ण पट्टी का फोटो चित्रण होता है साथ ही दोनों श्वेत वृत्त तथा श्वेत सर्पिल विन्दु समान प्रतीत होते हैं। यदि चुम्बकीय याम्योत्तर के सापेक्ष मीटर का अनुस्थापन स्थिर रहता है तो गतिमान फिल्म पर सभी विन्दु सीधी रेखायें बनावेंगे परन्तु यदि मीटर घूमता है तो केवल दोनों वृत सीधी रेखायें बनाते हैं और सर्पिल एक वक्र देता है जिससे मीटर का अनुस्थापन–यानी धारा की दिशा–प्राप्त होती है।

वीन्टर्स फोटो अभिलेखन धारा मापी (थोराड, Thorade, 1933): वीन्टर्स मीटर उन्हीं सिद्धान्तों पर बनाया गया है जिन पर पिटरसन मीटर बना है परन्तु गणना-युक्ति तथा कम्पास कार्ड के फोटो पाँच मिनट के अन्तर पर मिलते हैं। ज्योति के लिए शक्ति जलयान या तरणिका से प्राप्त होती है जिनसे मीटर निलम्बित होता है।

नानसन लोलक धारा मापी (नानसन, Nansen, 1906): यह उपकरण तिपाई पर आरोहित करने के लिए अभिकल्पित किया गया है और समुद्र नली के निकट बहुत मन्द धाराओं के मापन के लिए बनाया है। एक हल्का लोलक तनिक अवतल चकती पर दोलन करता है जो कि एक चुम्बक के साथ होती है और जो अंशांकित मोम-कागज से ढका होता है। लघु कालान्तर में एक घड़ीनुमा यन्त्र लोलक को नीचे उतारता है और जिसके तली में नत्थी एक बारीक स्टाइलस कागज पर धारा की दिशा और वेग सूचित करते हुए निशान लगाता है।

जेकबसन बुलबुला धारा मापी (जेकबसन, Jacobson, 1909): यह धारा मापी प्रकाश-पोतों जैसे जलयानो से उपयोगी होने के लिए बनाया जाता है। इसमें कोई नोदक या कुतुबनुमा नहीं होता परन्तु जिस जहाज़ से लोलक जल में नीचे किया जाता है उस जहाज़ के सापेक्ष में लोलक के विक्षेप का परिमाण और दिशा मापी जाती है। दोनों सिरों से खुले बेलनाकार पात्र लोलक की तरह काम में लिए जाते हैं। सिलिण्डर से तार छड़ से बंधा होता है जिसका अनुस्थापन झुकाव और झुकाव के समतल के हिसाब से गोले के खण्ड में बुलबुलों द्वारा देखा जाता है।

बुकानन—वालस्टन यान्त्रिक अभिलेखन रक्षा मापी (बुकानन—वालस्टन, Buchanan—Wollaston, 1925, 1930): इस उपकरण में धारा का वेग, दो छिद्रित चकतियों पर धारा द्वारा डाले गये दाब से अंकित होता है, दोनों चकतियां सदैव (शीर्ष) खड़ी रहती है और पिच्छफलक के द्वारा जो धारामुखी होता है। अभिलेखन यन्त्र एक जल रोधी पात्र में बन्द रहता है जो क्षैतिज रूप से लगा होता है और जब दोनों छेददार चकतियों पर दाब पड़ता है तो यह पात्र एक अनुप्रस्थ कक्ष

पर घूमता है। बैलनाकार पात्र का घूमना अंकित किया जाता है और पाँच मिनट के अन्तर पर कुतुबनुमा से दिशा सूचित हो जाती है। यन्त्र का लाभ यह है कि विक्षेपित वस्तुओं द्वारा बाधा पैदा होने के लिए कोई पेच नहीं होता है परन्तु यह मंद धाराओं के लिए सुग्राही नहीं होता है क्योंकि न्यूनतम वेग जिसका अंकन हो सकता है वह लगभग 12 से० मी० प्रति से० है।

धाराओं के अभिलेखों का विश्लेषण

पृष्ठीय धाराओं को निरूपित करने की विविध प्रणालियां आगे वर्णित हैं (10·14)। सामयिक लक्षण की धाराओं के लिए कई मामलों में यह आसान हो जाता है कि धाराओं के उत्तर-दक्षिण, तथा पूर्व-पश्चिम भागों को संगणित करना अथवा उन भागों को जो किसी और निर्देशांक पद्धति जैसे, तट के समकोणिक या समानान्तर, के अनुसार होते हैं। इन हिस्सों का संनादी विश्लेषण या और किसी प्रकार का साँख्यकीय शोधन सरलता से हो सकता है जिसके अनुवर्ती परिणामों को साधारण प्रक्रम से निरुपित किया जा सकता है (देखिये चित्र 145, 10·15) संनादी विश्लेपण का बहुतायत से उपयोग हुआ है और एक बहुत ही काम का यन्त्र है (थोराड, Thorade, 1933)।

जैविक नमूनों का संग्रहण और विश्लेषण

किसी भी क्षेत्र में जैविक अन्वेषण के दो मुख्य भाग होने हैं—

(1) वर्णनात्मक, (2) विश्लेषणात्मक।

वर्णनात्मक भाग मुख्य रूप से मौजूद जीवधारियों के प्रकार का निर्धारण तथा उनके जाति विकासीय सम्बन्धों के लिए होता है और उनके भौगोलिक और गहराई मापन वितरण की स्थापना करने के उद्देश्य से होता है। ऐतिहासिक दृष्टि से समुद्री बायोलोजी की यह अवस्था सब से पहले विकसित हुई और वास्तव में नये क्षेत्रों में यही प्रथम खोज-बीन रही। ज्यों-ज्यों जीवधारियों के विभिन्न समूहों तथा उनके वितरण का ज्ञान होने लगता है त्यों-त्यों ठीक-ठीक वर्णनात्मक कार्य का आपेक्षिक विस्तार धीरे-धीरे घटने लगता है परन्तु परिणामों का विनियोग सदैव जीव विज्ञान सम्बन्धी अध्ययनों का भाग रहेगा।

दूसरी यानी विश्लेषणीय अवस्था विशेष कर उन कारकों से सम्बन्धित है जो जीव संख्या के वितरण और विकास में, तथा पर्यावरण के कार्बनिक और अकार्बनिक कारकों से सम्बन्धित रहने वालों की जैव-किफ़ायत में, क्रियात्मक होते हैं। प्रकृति में प्रवर्ती कुछ कारक का, प्रयोगशाला में या क्षेत्र में नियन्त्रित प्रयोगों से अध्ययन किया

ज़ा सकता है, परन्तु प्राप्त सूचना को किसी हालत में विषम पर्यावरण स्थितियों के निर्वचन में लागू करना चाहिए क्योंकि ये (स्थितियां) समुद्र में पाये जाने वाले जीवधारियों के प्राणों को प्रभावित करती है। अतएव, प्रकृति के जन्तुओं तथा पौधों के प्रतिनिधि-निदर्शों का संग्रहण और इन निदर्शों (नमूनों) का विश्लेषण और निर्वचन (व्याख्या), वास्तविक सहसम्बन्धों को मालूम कर सकने के लिए एक परम महत्त्व का विषय हो जाता है।

प्रारम्भ से ही यह महसूस हो जाना चाहिए कि समुद्र से एकत्रित जीवधारियों का कोई निदर्श सही परिणाम के लिए केवल उस जीव संख्या का एक अति सूक्ष्म भाग है जो समुद्र में एक अति विशाल क्षेत्र को घेरती हो या उसका केवल सीमित हिस्सा हो, और जमाव बहुधा असमान होते हों। विभिन्न क्षेत्रों और ऋतुओं में कई नमूनों के केवल संग्रहण मात्र से ही जीव संख्या के सदस्यों का, उनके वितरण का, जीवन चक्रों का, और अन्तर-सम्बन्धों का एक सही-सही स्वरूप उपार्जित हो सकता है। जीवधारियों की प्रकृति आकार, गति योग्यता और निवास स्थान संग्रहण करने के उपकरण का प्रकार निर्धारित करते हैं।

समुद्रतलजीवी जीवधारियों का संग्रहण

ज्वारान्तर क्षेत्र में केवल साधारण उपकरण चाहिए परन्तु गहरे पानी में संग्रहण के लिए विभिन्न प्रकार के (निकर्षण) ड्रेज़ और जुरावे (पकड़ पट्टियां) काम में लिए जाते हैं। ड्रेज़ (चित्र 89 *b*) में मुख्य रूप से एक भारी आयताकार या तिकोनी लोहे की फ्रेम होती है जिसके सूत या तार पट्टी की थलीनुमा मच्छी पकड़ने की जाल, जीवधारियों को रोके रखने के लिए लगी होती है। धीरे-धीरे चलने वाले जहाज़ पर विन्च शक्ति से चलित तार के केबल द्वारा ड्रेज तली पर खींच कर ले जाया जाता है। जहाज़ पर ड्रेज़ को चलाने के लिए उपलब्ध उपकरण के आधार पर ड्रेज के आकार में बहुत हेर-फेर होता है। 15 मीटर या अधिक लम्बे जहाज़ पर और सामान्य गहरे पानी में उपयोग के लिए क्रियात्मक आकार की लगभग 1 मीटर की धरन (बीम) होती है। केवल स्थिर या मन्द गतिमान् जीवधारी पकड़ में आ जाते हैं, सूक्ष्म-रूप के जीवधारी भी इनमें शामिल होते हैं यदि वे अकस्मात बड़े प्राणियों या पौधों से लगे हुए होते हैं या अवसाद में होते हैं जो ड्रेज के आरोहण के समय जाल के छेदों में से होकर पूर्णरूप से धुल नहीं गया हो। मात्रिक अध्ययन की अपेक्षा गुणात्मक अध्ययन के लिए पदार्थ के संग्रहण में ड्रेज की अधिकतम उपयोगिता है।
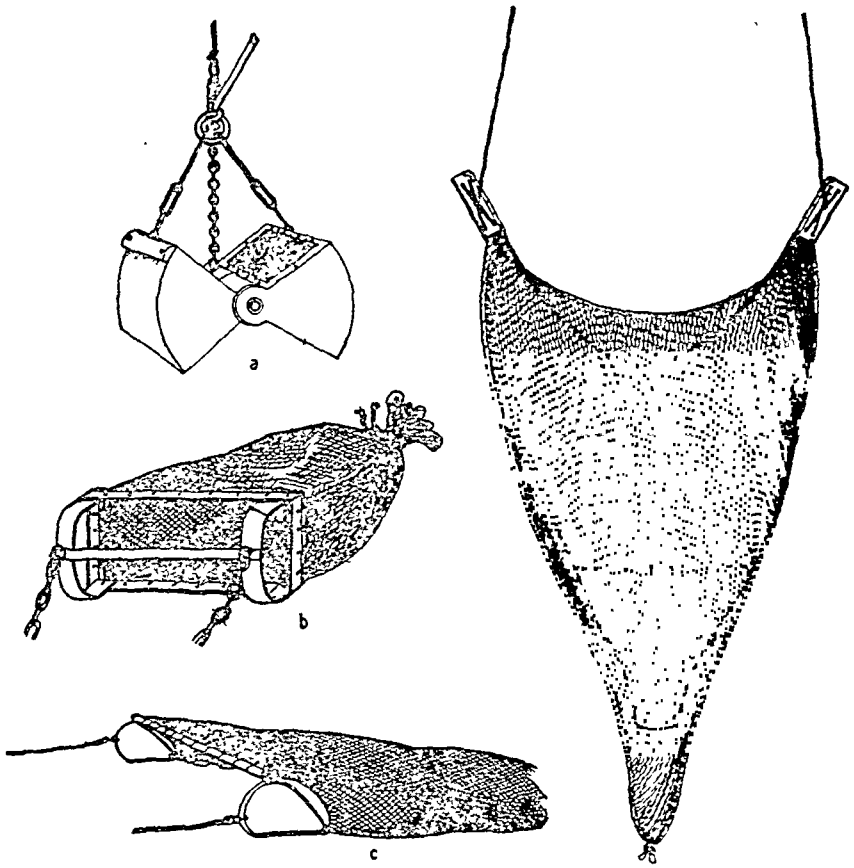
चित्र 89. जीवात्मक संग्रहरा के लिए साज-सामान :
(*a*) पिटरसन पकड़ पट्टी; (*b*) ड्रेज; (*c*) तल जाल; (*d*) ओट्टर-जाल.

समुद्रतलजीवी जीव को मात्रिक संग्रहरा के लिए दृष्टान्त उपकरण "पिटरसन-पकड़ पट्टी" है यानी तली प्रतिचयक जिसे पीटरसन, (Petersen, 1918) ने अपेक्षाकृत छिछले जल में समुद्रतल जीवी प्राणियों की मात्रिक छानबीन के लिए बनाया। इसमें धातु के बहुत भारी जबड़े (कल्ले) होते हैं जोकि अवरोहण के समय खुले रक्खे जाते हैं (चित्र 89 *a*)। जब (जुराब) पकड़ पट्टी पैंदे से टकराती है तो ढीला केबल क्लच पर तनाव डालता है जो (क्लच) कल्लों को खुला रखता है, जब जहाज़ के विंच द्वारा केबल कसकर वापस खींचा जाता है तब कल्ले अपने स्वयं के भार से तुरन्त बन्द हो जाते हैं और उन अचल जीवधारी सहित पदार्थ को बन्द कर लेते हैं, जो पैंदे के नपे हुए क्षेत्रफल, सामान्यत: 1 वर्ग मीटर, को घेरे हुए होते हैं जिस पर खुले हुए कल्ले अवरोहित होते हैं। पकड़े गये जीवधारी तली-अवसाद से छान लिए जाते हैं, वर्गीकृत कर लिए जाते हैं तथा एक संख्या के लिए गिन लिए जाते हैं जिससे समुद्र तल में नमूना लिए गये क्षेत्र के एक वर्ग मीटर में विद्यमान प्राणियों की किस्म

और संख्या की गणना हो सके। पकड़ पट्टियों का, सख्त या चट्टानी तलों पर या अगाध समुद्रों में सफलता पूर्वक उपयोग नहीं हो सकता।

छोटी सन्डासियां और क्रोड़ (गुदा) निकालने के साधन (चित्र 84, 85) फोरेमिनीफेरा और जीवाणु जैसे सूक्ष्म जीवधारियों के ही केवल मात्रक जैव-निदर्श संग्रह करने में उपयोगी होते हैं।

तरण जलचर का संग्रहण

व्यापारिक तौर से मछली पकड़ने में, निशाना लगाया जाने वाले प्राणियों के आधार पर जाल, थैली जाल, मच्छी फंसाने की ट्रेप, अंकुश, मत्स्य भाला आदि काम आने वाले विविध साधनों का उपयोग किया जाता है परन्तु यहाँ केवल मछली फंसाने वाली जाल का ही विवरण दिया जावेगा जो कि वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए गहरे समुद्री प्राणियों के संग्रहण में बहुतायत से काम में ली जाती है। तल जाल (बीमट्राल) तनिक ड्रेज की तरह बनी होती है परन्तु फ्रेम खोदने व खरोचने वाली नोक नुमा नहीं होती और इसके किंचित अधिक बड़ा द्वार कोई 15 मीटर तक, हो सकता है चूंकि यह तल में खोदने के लिये नहीं बनाया जाता है अतः इसे तेज चाल से रस्सी बाँधकर तल पर खींचा जा सकता है और इस प्रकार द्रुत गतिमान प्राणियों, जैसे मछलियां, समुद्री केकड़े आदि जो तल पर या तल के निकट रहते हैं को यह पकड़ में ले लेती है। गम्भीर सागरीय मछली फंसाने में 'ओटर ट्राल' (otter trawl) बहुधा काम में आता है। निवार-बोरी का मुख (द्वार) फैलाया हुआ रक्खा जाता है, तल जाल की तरह एक दृढ़ बरन से नहीं परन्तु द्वार के अभिमुख बाजुओं में नत्थी ओटर तख्तों द्वारा फैलाया हुआ रक्खा जाता है। (तल पर) खींचे जाने पर जल के प्रति-रोध से तख्ते बलकृत पृथक् हो जाते हैं (चित्र० 89d)। द्वार का विस्तार (पाट) 20 मीटर से 26 मीटर तक होगा और जाल 40 मीटर लम्बी होगी। एक लघु ओटर ट्रॉल (otter trawl) का माइकल सारस जलयान ने 5160 मीटर से अधिक गहराइयों पर मछलियां पकड़ने में सफलता पूर्वक उपयोग किया है।

रिंग ट्रॉल (Ring trawl) मुख्य रूप से, विशाल व्यास के मजबूत वलय से नत्थी अपेक्षाकृत मोटी परिप्लावी जीव-जाल होती है जिसके बांध कर खींचने के लिए आवश्यक एक रस्सी लगाम लगी होती है। (आगे देखिये).

परिप्लावी जीव संग्रहण

नाना प्रकार के जाल और अन्य उपकरण पादक प्लवक तथा भूप्लेन्कटन या पशु-परिप्लावी जीव के नमूने प्राप्त करने में काम में आते हैं। परिप्लावी जीव फंसाने का जाल स्पष्ट रूप से जॉनेस मूलर द्वारा 1846 में सर्व-प्रथम शुरू किया था और सभी प्लेन्कटन साधनों में से इसने विस्तृत उपयोग पाया है।

परिप्लावी जीव-जाल में धातु के वलय से नत्थी एक निस्पन्दन शंकु होता है जिसके द्वारा जाल पानी में खींची जाती है। साधारण जाल के कटाई के प्रतिरूप के लिए विस्तृत अनुदेश सीवेल, (Seiwell, 1929) ने दिये हैं। जाल बनाने वाला छानने का पदार्थ आमतौर से ऐसी कोटी का रेशमी-मगजी लगा कपड़ा होता है जिस प्रकार का कि आटा चालने (चून को विस्थापन) के काम में आता है। प्रति रेखी इन्च में जाल के छेद की संख्या के आधार पर इसमें 0000 से 25 तक अंक लगे होते हैं। वलयक इस प्रकार गुत्थे होते हैं कि छिद्र की आकृति सरलता से नहीं बदलती और इसीलिए वे सामान्य गुथाई से भिन्न हैं जहाँ वलयक बंधनकारी-चक्कर के रहित एकान्तरता से एक-दूसरे को क्राम करते हैं (चित्र 90) वलयकों के बीच के छिद्रों की विमिति विचार करने के लिये महत्त्वपूर्ण लक्षणों में होती हैं, क्योंकि ये ही छोटे से छोटे जीवधारी का आकार निर्धारित करते हैं जो जाली पर अटक सकते हैं (चित्र 90) मथे हुवे जल से तुलना कर, और फिल्टर-परिसंभरण प्राणियों के पेट की अन्तर्वस्तुओं की जाँच कर यह बार-बार बताया गया है कि प्लेन्कटन के बहुत से जीवित जीवधारी बारीक बुने हुये चलनी के कपड़े में से निकल जाते हैं। व्यवहार में पकड़े जाने वाले जीवधारी का न्यूनतम आकार निर्धारित कर लेना चाहिये तथा ऐसे आकार के लिए उपयुक्त मोटी से मोटी जाली का उपयोग करना चाहिए। सारणी 59 में मानक चलनी कपड़े के विभिन्न आकार की विमितियां संदर्भ के लिए दी हुई हैं। जल में काफी उपयोग के बाद छिद्र आकार कम होने लगते हैं, उपयोगित रेशमी धागे के गुण इस प्रकार हैं: मानक, X (अतिरिक्त भारी) XX (दुगुना अतिरिक्त भारी), XXX (तिगुना अतिरिक्त भारी)। भारी गुणों के धागे काम में लेने से छिद्र के आकार और किसी निश्चित कपड़े के प्रति इन्च में छेदों की संख्या में अल्प अन्तर ही होता

1 मि० मी०

चित्र नं० 90 : नं० 20 के निवार के कपड़े की बुनाई को बनाने के लिए अपवृद्ध कैमरा ल्यूसिडा रेखा चित्र; साथ ही उसी पैमाने पर चित्रित कुछ सामान्य परिप्लावी जीवधारियों की आकृति से तुल्य छिद्र की आकृति भी दी गयी है। जीवधारी अनुप्रथ कतार : कॉसीनो डीस्कस ग्रेनी, नॉप्लीयस III अवस्था अकार्शीया प्रारम्भिक सीपीं लार्वा, प्रोरो सेन्ट्रम मिकान्स, डायटीलम, डायनोफीसीस, कइटोसीरोस, सिरेटियम ट्राइपॉस लम्बरूप कतार; नीचे की ओर : फवेल्ला नॉप्लीयस I अवस्था; अकार्शीया, रटेनो सोमेल्ला सीरेटियम फुर्का!

कपड़े पर; कासीनो डीस्कस वाइलसी और रीभ्रो सोलेनीया सेमीस्पीना, आमतौर से दो विशाल डायटम।

है। स्ट्रामीन, जो 1 मि० मी० छिद्र का छानने का भारी पदार्थ होता है, विशाल जालों या मछली फंसाने की वलय जालों के लिए बहुधा उपयोग किया जाता है; परन्तु भारी वलयक कुछ अलाभी होते हैं क्योंकि जल में से खींचते समय ये अधिक प्रतिरोधी होते हैं। जाली के कॉड यानी आखिरी सिरे पर, गाढ़े निकर्षण को लेने के लिए एक वियोज्य जार, छोटी काँच की बोतल या किसी प्रकार की छोटी-सी छलनी रक्खी जाती है।

जहाज जब पूरे वेग से चल रहा हो तब उसके पीछे से खींचने के लिए हार्डी, (Hardy, 1936) ने एक निरन्तर प्लेन्क्टन रिकार्डर बनाया। मशीन अनिवार्य रूप से तारपीडो की आकृति की नली होती है जो लगभग एक मीटर लम्बी और आड़ी काट में वृत्ताकार या आयताकार होती है जब मशीन आगे खींची जावे तब जल के भीतर प्रवेश होने के लिए इसके अग्र भाग में एक छोटा-सा छिद्र होता है यह द्वार एक चौड़ी नाली (सुरंग) में प्रवाही होता है जिसके आर-पार रेशमी गॉज की लम्बी पट्टी एक चरखी से दूसरी चरखी पर शनैः शनैः लपेटी जाती है और जिसमें से होकर जल को जाना (पार करना) ही चाहिये इससे पहले कि वह (जल) नली के पिछले सिरे के छिद्र से होकर बाहर निकले। जल से प्लेन्क्टन को छानते हुए, गॉज लगातार संचायक चरखी पर निरन्तर लपेटा जाता है। मशीन के बाहर स्थित एक नोदक द्वारा लपेटन किया जाता है और इस प्रकार मशीन में जिस वेग से पट्टी लपेटी जाती है वह उस वेग से नियन्त्रित होती है जिससे सारी मशीन जल में से खींची जाती है, अतः वह निश्चित की गयी दूरी से सीधे सम्बन्धित होती है। विस्तृत क्षेत्रों पर वितरण और परिप्लावी जीवों के पुंजों के टुकड़ेपन का अध्ययन करने के लिए, मशीन का उद्देश्य मात्रिक और गुणात्मक निदर्श, देना ही है। इस मशीन का उपयोग, विस्तृतता से पृथक स्टेशनों पर मछली फंसाने के जाल से जहाँ-तहाँ लिये गये संग्रहण के अनुपूरक माना जाता है। समुद्र में जाल फेंकने से पूर्व समुद्री मछली खाने वाले मछुओं द्वारा जल में परिप्लावी जीवों के सामान्य प्रकार निर्धारित करने के लिये, एक छोटा और साधारण साधन तैयार किया गया (हार्डी, Hardy, 1936) है जो 'प्लेंक्टन सूचक' कहलाता है। यह 56 से० मी० लम्बी, 8.9 से० मी० व्यास की एक नली होती है, इसके दोनों सिरों पर 3.8 से० मी० के गाव दुमाकार द्वार (छिद्र) होते हैं। नली की अवकाशिका के आड़े छलनी-कपड़े की एक छोटी चकती प्लेंक्टन छन जाने के लिये रक्खी जाती है जब नाव के पूरे वेग के साथ नली जल में आगे खींची जाती है। चकती तेजी से हटाई जा सकती है और साफ़ दूसरी रक्खी जा सकती है, और इस प्रकार बार-बार सीधे ही कुल परीक्षण किये जा सकते हैं यह मालूम करने के लिये कि पादक प्लवक या पशु प्लवक के टुकड़े रुके हैं या नहीं (10.15)

सारणी 56.

मानक स्तर के ड्यूफोर रेशमी (धागा) निवार के औसत छिद्र आकृति

रेशमी धागा नं०	प्रति इन्च छेद	छिद्र की आकृति (मिली मीटर)	रेशमी धागा नं०	प्रति इन्च छेद	छिद्र की आकृति (मिली मीटर)
0000	18	1.364	10	109	0.158
000	23	1.024	11	116	0.145
00	29	0.752	12	125	0.119
0	38	0.569	13	129	0.112
1	48	0.417	14	139	0.099
2	54	0.366	15	150	0.094
3	58	0.333	16	157	0.086
4	62	0.318	17	163	0.081
5	66	0.282	18	166	0.079
6	74	0.239	19	169	0.077
7	82	0.224	20	173	0.076
8	86	0.203	21	178	0.069
9	97	0.168	25	200	0.064

जूप्लेन्कटन—विभिन्न प्रकार की जालों का मानकी करण करने के प्रयत्न ने कई सामान्य जालों की 'पकड़ शक्ति' को हेनसन की अंडजाल की पकड़ शक्ति से तुलना करने के योग्य बना दिया जिसे तुलना करने के उद्देश्य से 1.0 पकड़ शक्ति की मान ली गयी है कुन्ने, (Kunne, 1933) हेनसन जाल की तुलना में नानसन जाल की पकड़ शक्ति 0.87 पायी गयी यानी तुलनात्मक अवस्थाओं में मात्रात्मकता से इसने लगभग वही संख्या और उसी अनुपात में जन्तुओं को पकड़ा जो संख्या और अनुपात जन्तुओं का हेनसन जाल में होता है। मानक जाल ने, जो कि नानसन जाल का उपान्तरित स्वरूप है, बहुत कम मात्रा में जन्तु पकड़े, इसकी पकड़ शक्ति केवल 0.1 है, जब कि हेल्गोलेण्ड की लार्वाजाल की पकड़ शक्ति को 4.1 निर्धारित किया था। इस बात पर जोर देना चाहिये कि जब जीव-संख्या की संविरचना, खींचने का वेग और समुद्र की अवस्थायें तुल्य हों तो पकड़-शक्ति प्रत्येक जाल की गुरु परिप्लावी जीव जन्तुओं के पकड़ने की आपेक्षिक क्षमता बताती है। जब क्षेत्रकार्य में सूक्ष्म परिप्लावी जीव संग्रहण शामिल हो तब बारीक जालों का उपयोग (10.16) आवश्यक हो जाता है, यद्यपि उपरोक्त विधि से निर्धारित पकड़ शक्ति कम होती है। जालों के प्रकार, उनकी विमितियां (परिमाप) और अन्य विशिष्ट विवरण तथा हेनसन की अंडजाल के अनुसार पकड़ शक्ति (प० श०), आदि चित्र 91 में दिये गये हैं।
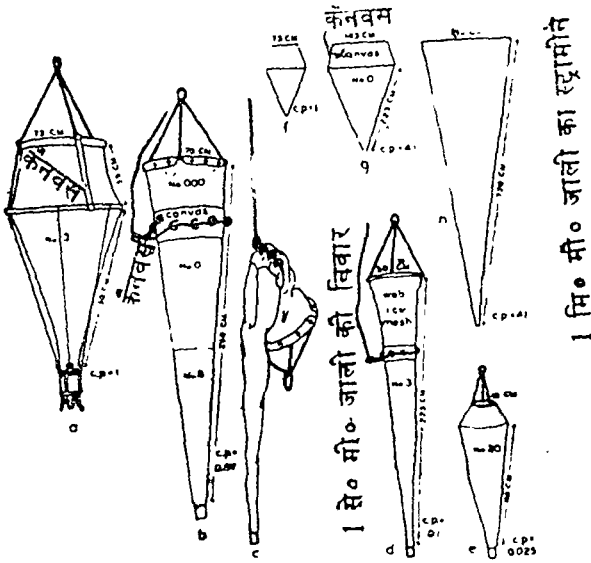
चित्र 91:—प्लेन्क्टन प्रकार के जाल, उनकी लम्बाई मुख-व्यास, निस्यन्दन पदार्थ का प्रकार और आपेक्षिक पकड़-शक्ति (प०श०) जैसा कि पाठ में व्याख्या की गयी है :

a से e तक एक ही पैमाने पर रेखाचित्रित हैं, f से h तक घटे हुये पैमाने पर
a. हेनसन अण्ड-जाल, b. नानसन खुली जाल, c. नानसन बन्द जाल, d. मानक जाल, e. माध्य एपस्टीन जाल, f. हेनसन अण्ड-जाल, g. हेल्गोलेन्ड लार्वाजाल, h. स्ट्रामीन की विशाल खड़ी जाल.

हेनसन की अंडजाल और एपस्टीन जाल द्वारा विशेषकर दृष्टान्तित रूण्डित (छिन्न) जालों के शीर्ष सिरे पर (अगले सिरे पर) लघु द्वार होता है ताकि जाल निस्यन्दक क्षेत्रफल और उसके मुख-क्षेत्रफल के अनुपात में वृद्धि हो जाय और साथ ही केनवस के शीर्ष-भाग द्वारा, जब जाल जल में खींची जा रही हो तो, प्रतिधावन न्यूनतम हो जाय ।

मानक तथा नानसन जालों से दृष्टान्तित कुछ जालें मेसेन्जर (संदेशवाहक) द्वारा बन्द की जा सकती हैं जो लगाम रस्सी (नियन्त्रण तार) को नियुक्त कर एक यन्त्र-संरचना को (चित्र 92) सक्रिय करता है और इस प्रकार तनाव सिकुड़न-तार में आ जाता है जो किसी वांच्छित गहराई पर, जाल के अगले सिरे को वन्द कर देता है । (चित्र 91 b, c) । इस प्रकार ऊपरी जल की परतों में रहने वाले जीवधारियों से संदूषण हुये बिना ही किसी भी स्थलमण्डलीय तल से प्लेन्क्टन जीव संख्या का नमूना प्राप्त करना सम्भव है ।

कभी-कभी एकल जालें जल मे वांछित गहराई पर क्षितिज रूप में खीची जाती है या एक ही बार में कई जल-स्तर के नमूने लेने के लिये तार पर निश्चित अन्तर पर जालों की एक श्रेणी रखी जा सकती है। सामान्यतया जाल एक निश्चित गहराई तक भेज दी जाती है और इसी तल पर मत्स्य-ग्रहण अवधि के पश्चात् यह उच्चतर स्तर की श्रेणी मे क्रमिक रूप से ऊपर उठाई जाती है जो प्रत्येक स्तर पर वापस अन्दर खींचने मे पूर्व उसी अवधि तक, मछली पकड़ने के लिये खोली जाती है और इस प्रकार एक ही जाल मे कई स्तरों का तिर्यक प्रतिचयन हो जाता है। प्रतिचयन की उपरोक्त विधियों में छाने गये जल की मात्रा का अन्दाजा लगाना कठिन होता है। यदि जाल क्षितिज रूप से या तिर्यक रूप मे खीचे जाने के बदले में लम्बरूप मे खीची जाय तो छाने गये जल की मात्रा का अधिक विश्वसनीय अन्दाजा हो सकता है।

लम्बरूप खिचाव में, वलय शीर्ष से लम्बे तारों द्वारा एक बाट मे कॉड (पिछला) सिरे को बांधकर जाल वांछित गहराई तक अवतरित की जाती है और तब ऊर्ध्वाधरता ऊपर उठाई जाती है जिससे काटे गये जलमार्ग के जल-स्तम्भ को छान देती है। तो भी, जाल के प्रतिरोध से, विशेष कर यदि वह बारीक जाली की बनी होती है या प्लेन्क्टन से आंशिक रूप मे बाधित हो गयी है, तो सदैव काफी मात्रा मे प्रतिधावन होता है। अतएव जाल मुख के व्यास के बराबर खुले विलय से जितना जल छनता है उससे किसी अंश मे कम ही जल निस्यन्दित होता है। इसलिए, जाल मुख के क्षेत्र को निस्यन्दित जल स्तम्भ के अनुप्रस्थ काट की तरह उपयोग करना हो तो पकड़े गये जीवधारियो की संख्या के अंक सदैव अल्पिष्ठ होते हैं। नियमानुसार भी जाल को यथार्थ रूप से ऊर्ध्वाधरत: घसीटना सम्भव नही है क्योंकि जिस नौका से इसका परिचालन होता है वह आमतौर से न्यूनाधिक विचलित हो जाती है जिससे घसीटना वास्तविक ऊर्ध्वाधर से किंचित लम्बा हो जाता है। साधारण जालों के उपयोग मे अन्तर्निहित ऐसी सग्रहण त्रुटियों के परिहरण के लिये कोई सुनिश्चित विधि प्रतीत नही होती है। कभी-कभी एक अभिलेखन मापी जाल के मुख मे रख दिया जाता है
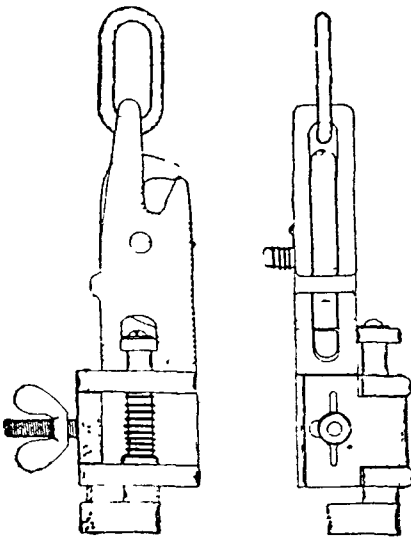
चित्र 92 :—स्थल मण्डलीय तलों पर जाल और उनके समतुल्य उपकरणों को बन्द करने के लिये रोक (ट्रिप) यन्त्र-रचना पिछला और बगली दृश्य।

ताकि जाल में जाने वाला जल एक छोटे से नोदक को सक्रिय कर देता है जो गणन यन्त्र-रचना से नत्थी होता है जब ठीक-ठीक अनुसंशोधित होता है, तब नोदक की परिक्रमा की संख्या को, जाल में से गुज़रे हुए पानी की मात्रा को सूचित करने के लिये मानली जाती है। इससे, इकाई जल के आयतन में, साधारणतया प्रति लीटर या प्रति घन मीटर, में जीवधारियों की संख्या परिकलित हो सकती है परन्तु विश्लेषण या निस्यन्दन में अपरिहार्य असमानताओं के कारण प्राप्त अंक ठीक मानते हुए भी आमतौर से केवल सन्निकटन हैं। तो भी, गहराई, जललेखी लक्षणों आदि के सम्बन्ध से प्लेंक्टन वितरण का चित्रण करने के लिये विद्यमान जीवधारियों की परम संख्या की जानकारी, चाहे कितनी भी वांछनीय हो, आपेक्षिक अंकों की जानकारी के अंशदान की तुलना में अधिक अंशदान नहीं कर सकती।

पूर्ण निस्यन्दन और यथार्थ विश्लेषण, विरलता से बसे हुये समुद्रों में अवश्य ही विशेष निकटता से किये जा सकते हैं, जब कि घने बसे हुवे समुद्रों में या, जैली-फ़िश जैसी या ऐपेन्डीक्यूलेरियन लवादों (गृहों) से निकली हुई, श्लेपीय वस्तुओं की उपस्थिति में, त्रुटियां और भी बढ़ जाती हैं। जल मापन युक्ति लगे हुए मोटे छेदों की जाल संग्रहण के लिए परम आदर्श सम्मिश्रण निरूपण करते हैं परन्तु वे अत्यन्त ही चयनात्मक होते हैं और आकृति के आधार पर ऐसा चयन जहां वांछनीय होता है केवल वहीं उनका उपयोग हो सकता है। उदाहरणार्थ बड़ी मछलियों के अण्डे या लार्वा के अध्ययन में। प्लेन्क्टन के पकड़ में परिवर्तनों के सांख्यिकी अध्ययन के लिये पाठक को विन्सर और क्लार्क, (Winsor and Clarke 1940) के कार्य, और उनकी संदर्भ सूचि में सम्मिलित संगत कार्यों के लिये निर्देशित किया जाता है।

परिप्लावी जीव के जाल संग्रहण में अन्तर्निहित अनिश्चितताओं को निष्प्रभावित करने के प्रयत्न में विभिन्न युक्तियां, (बोतलें और बाल्टियें), सुनिश्चितता से ज्ञात गहराई से जल की निश्चित मात्रा तथा उसके साथ उसकी प्लेन्क्टन जीवसंख्या को फंसाने के लिये, तैयार की गई हैं। जहाज़ पर से परिचलित तथा लम्बे होज़ पाइप से लेस पम्प, जिनके अन्तर्ग्राही पाइप इच्छित गहराई तक उतारे जा सकते हों, सफलता पूर्वक उपयोग किये गये हैं—विशेषकर स्वच्छ जल में लगभग 75 मीटर की गहराई से जीव संख्या के नमूने लेने के लिये। (बर्ज और जुडे, Birge & Juday 1922) इस प्रकार से कई श्रेणीगत गहराइयों से लिये गये जल की ज्ञात मात्रा बारीक जालों से निस्यन्दित हो सकती है, ज्यों ही पम्प से जल का निकास होता है, पम्प के भी एक जल मापी लगा होता है। कुछ उद्देश्यों के लिये ये विधियां श्रेष्ठ हैं परन्तु इनकी गम्भीर परिसीमाएं होती हैं क्योंकि ये केवल डायटम, डाइनोफ्लैजेलेटा, प्रोटोज़ोआ आदि जैसे, असक्रिय या अपेक्षाकृत मन्द गतिमान जीवधारियों के लिये उपयोगी, होती है, जो कि प्रचुर और किंचित एक समान वितरित होते हैं। द्रुत

गतिमान, विरल और असमानता से वितरित रूप सार्थक आंकड़े देने के लिये प्रयाप्त समानता से सम्भवतया नहीं पकड़ में आते हैं। जिस सुविधा से ऐसे नमूने लिये जा सकते हैं वह अधिक नमूनों को लेना और सम्भव कर देती है और यह लाभ कुछ अंश में प्रतिकूल लक्षणों को निष्प्रभावी कर देता है।

विशिष्ट अध्ययन के लिये उपयोग करने के सिवाय, पकड़े गये जूप्लेन्कटन को क्षेत्र में ही परिरक्षित रखना चाहिये। आमतौर से फार्मेलडिहाइड के (मान्यतः) उदासीन चार प्रतिशत घोल का इस काम के लिये उपयोग किया जाता है। जार (मर्तबान) में रक्खे लेबल पर संग्रहरण के आंकड़े, क्रमिक संख्या, तारीख, घण्टा, स्टेशन संख्या, गहराई जहाँ से नमूना लिया गया, और जाल का प्रकार तथा उसके परिचलन की विधि आदि सहित होने चाहिये। नमूनों का प्रयोगशाला में विश्लेपरण आमतौर से, भलिभांति मिश्रित नमूने के अशेप भाजक भाग में पाये जाने वाले तमाम वांछित स्पीशीज को गिनना और पहिचानना होता है। सम्पूर्ण निदर्श में पाये जाने वाले चुने हुए स्पीशीज की कुल संख्या इससे संगणित की जाती है। अन्त में, निदर्श लेते समय जाल द्वारा निस्यन्दित जल की मात्रा को सन्निकटतः निर्धारित करते हुए जल के प्रति घन मीटर में या समुद्र पृष्ठ के प्रति वर्ग मीटर में पाये जाने वाले विभिन्न स्पीशीज की संख्या, या विकास-अवस्थाओं आदि से जीव संख्या सूचित की जाती है। चूंकि जूप्लेन्क्टन द्वारा निरूपित कार्बनिक पदार्थो की कुल मात्रा का ज्ञान होना वांछनीय होता है, विशाल रूप की वस्तुयें, जैसे जेली फ़िश, पहले हटा ली जाती हैं और शेप मात्रा मिली लीटर में सूचित की जाती है। मात्रायें आमतौर से इन विधियों से प्राप्त की जाती हैं: (1) निथारने की विधि—यानी, अंशांकित सिलिडरों (बेलनों) में प्लेन्क्टन को बैठने देना और अवक्षेपित आयतन को नोट कर लेना। या (2) विस्थापन विधि—यानी सम्पूर्ण प्लेन्क्टन नमूने के तरल और प्राणियों को मिलाकर आयतन को मालूमकर लेना और फिर प्राणियों को छान कर अकेले तरल का आयतन मालूम करना, दोनों पाठ्यांकों का अन्तर प्राणियों का विस्थापन आयतन होता है। यदि इच्छा हो तो 'जलमुक्त' प्लेन्क्टन भी बाद में तोला जा सकता है। प्लेन्क्टन पदार्थ को सूचित करने के लिये बहुधा कई इकाइयों का उपयोग किया जाता है जिनका अध्याय XIX सा० 101, में (10.17) संक्षेपरण किया गया है और तुलना की गयी है।

पादप प्लवक :—नियमित नानसन हाइड्रोग्राफीय जल बोतल (चित्र 87) पादप प्लवक निदर्श संग्रहरण में बहुतायत से प्रयुक्त होती है या, यदि वृहत् निदर्श लेने हों तो 5 लीटर धारिता की ऐलन बोतल (चित्र 93) प्रयुक्त की जा सकती है। जब नानसन बोतल काम में ली जाती है, तो सामान्यतया 1, 10, 25, 40, 75, 150 मीटर या अधिक गहराई के तल से नमूने सीधे ही उतनी ही संख्या में साइट्रेट

बोतलों में थपथपा कर ले लिये जाते हैं, परिरक्षी उदासीन फार्मेलडिहाइड (बोतलों में) डाला जाता है और बोतलों को प्रयोगशाला में परीक्षण के लिये रख दी जाती है। संग्रहण जब ऐलन बोतल (या ऐसे ही बड़े संग्रहक) द्वारा उतनी ही गहराइयों पर से किये जाते हैं तब पकड़ी गयी वस्तुओं को नं० 25 के निवारी कपड़े की जाल से छानकर जल की थोड़ी सी मात्रा (100-150 मि० लीटर) में तत्काल ही गाढ़ी कर दी जाती है। निदर्श तब उपरोक्त विधि के अनुसार अध्ययन के लिये परिरक्षित किया जाता है।

चित्र 93 :—खाली करने के लिये पोज़ीशन में निस्यन्दन जाल के साथ ऐलेन पारद प्लवक बोतल।

जब क्षेत्र में ही निदर्श सान्द्र नहीं किया गया होता है तब प्रयोगशाला में विश्लेषण में सर्व-प्रथम ठीक-ठीक हिलाये गये नमूने के एक मापे हुए भाग (10–15 मिलीमीटर, प्लेन्क्टन की प्रचुरता के आधार पर) का अपकेन्द्रण होता है। पिपेट की सहायता से साफ तरल निकाल लिया जाता है और अपकेन्द्रण नलिका में नीचे बचे हुए जीवधारियों को शेष तरल के साथ, चौसर-रेखिक काँच की स्लाइड पर ले लिये जाते हैं। ये (स्लाइड) तब कवर-स्लिप द्वारा ढक दी जाती है और संयुक्त सूक्ष्मदर्शी से जीवधारी प्रगणित तथा पहचाने जाते हैं (ग्रान, Gran 1932), ये प्राप्त अँक, क्षेत्र में एकत्रित 1 लीटर समुद्र जल में प्रत्येक स्पीशीज की सांद्रता के परिकलन और रिपोर्ट करने का आधार बनाते हैं।

यदि निदर्श क्षेत्र में निस्यन्दन से सांद्र किया गया हो तो सांद्र निदर्श का एक भाजक भाग एक सेड्वीक-रेफ्टर गणन-सेल में रख दिया जाता है जिसमें नमूने का 1.0 मि० लीटर समा सकता है और जीवधारी उपरोक्त विधि से जाँचे और रिपोर्ट किये जाते हैं।

ऐसीटोन द्वारा पीत वर्णक का निस्सारण कर पादक प्लवक जीव संख्या का भी रासायनिक विधि से सुविधा पूर्वक विश्लेषण हो सकता है और जीव संख्या को वनस्पति-वर्णक इकाइयों के अंकों से सूचित की जा सकती है। इस विश्लेषण में डायटम एक जल की निश्चित मात्रा से निस्यन्दित किये जाते हैं और तब वर्णक ऐसीटोन की मापित मात्रा से निस्सारित किये जाते हैं। इससे परिणमित रंगित

चित्र 94 :—फ्रेम में केवल से नत्थी जीवाणु प्रतिचयन बोतल। ऊपर का मेसेन्जर काच की अन्तर्ग्राही नली को तोड़ता है और जब प्रतिचयक श्रेणी में उपयोगित हो, तो दूसरे मेसेन्जर को छोड़ता है।

एसीटोन की रंग मापीय विधि से एक स्वेच्छ मानक से तुलना की जाती है जो एक लीटर जल में 25 मिली ग्राम पोटाशियम क्रोमेट और 430 मिली ग्राम निकल सल्फेट को घुलाकर तैयार किया जाता है। मानक घोल का एक मिली मीटर एक 'वर्णक इकाई' के समतुल्य होता है। इस विधि के सम्पूर्ण विवरण के लिये तथा वनस्पति पोषकों के उपयोग से और आक्सीजन का उत्पादन और उपभोग से पारद प्लवक के अन्दाज लगाने की विधियों के लिये अध्याय 19 देखिये।

जीवाणु :—जीवाणु-निदर्श के संग्रहण एक विशिष्ट समस्या प्रस्तुत करते हैं, चूंकि इन्हें विसंक्रमित रूप से लेने चाहिये। चित्र 94 में प्रतिचयक फ्रेम में संयोजन काँच और रबर की भरन नली के साथ संग्रहण बोतल दिखलाई गयी है। यह नली इस प्रकार अभिकल्पित की जाती है कि जब काँच का अनुभाग तोड़ दिया जाता है, तब रबर का भाग, जो तना हुआ होता, अन्तर्ग्राही छिद्र के साथ, नली के दूरस्थ सिरे को बोतल तथा अन्य उपकरण से कुछ दूर पर प्रक्षेपण करता है (झोवेल, ZoBell 1941)। अनुर्वर बोतल में प्रवेश करने वाला समुद्र जल इस प्रकार जीवाणुओं द्वारा संदूषण से मुक्त रहता है जो (जीवाणु) अन्यथा प्रतिचयक उपकरण के पृष्ठ से बलात् प्रवेश कर सकते हैं। प्रतिचयक बोतल के स्थिति पर होते हुए, फ्रेम केवल से नत्थी होती है और वांछित गहराई पर मेसेन्जर, नली-तोड़न युक्ति को तोड़ता है। चूंकि बोतलें खाली उतारी जाती है, इस विधि से निदर्श लेने की गहराई जल के दाबों पर सीमित रहती है, जो बोतलों को तोड़ेंगे नहीं या डाट को अन्दर नहीं डालेंगे। इन कठिनाइयों से छुटकारा पाने के लिए रबर की बोतलों के उपयोग के प्रयोग प्रगति पर है। एकत्रित नमूनों का प्रयोगशाला में विश्लेषण नमूने के ज्ञात भाग को पोषक पदार्थ पर चढ़ाना होता है तथा मंडलों की अधिकतम संख्या जो बढ़ती है, को नोट करना होता है, यह मान लिया जाता है कि प्रत्येक मण्डल (कोलोनी) एकही जीने योग्य जीवाणु से आरम्भ हुई है। तब प्रति-चयन गहराई पर जल के प्रति लीटर में जीवाणु की संख्या परिकलित की जाती है।

एकत्रित जल या गारे (मिट्टी) के नमूनों में जीवाणु-जीव संख्या द्रुत गति से बदलती है जिससे यह आवश्यक हो जाता है कि स्वस्थाने जीवाणुओं की संख्या का

परम विश्वसनीय अन्दाज प्राप्त करने के लिये क्षेत्र में ज्यों ही नमूने लिये जाते हैं उनको शीघ्र ही प्लेट पर ले लेना होता है। उपयोग में लिया गया संवर्धन-माध्यम नमूने में जीने योग्य जीवाणुओं की अधिकतम संख्या में वृद्धि-अनुक्रिया को प्राप्त करने के लिये अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण होता है। झोवेल, (Zo Bell 1941).

तल-अवसाद से जीवाणु, क्रोड़ (गूदा) के केन्द्र से बिन खेड़ा पदार्थ के नमूने को अनुवरता पूर्वक हटाकर प्राप्त किये जाते हैं, किसी प्रकार की गूदा निकालने वाली युक्ति से क्रोड़ (गूदा) निकाला जाता है। (10.18).

प्लेन्क्टन प्रेक्षणों का निर्वचन

प्लेन्क्टन के क्षेत्रीय प्रेक्षण के निर्वचन के लिये यह स्मरण रखना चाहिये कि पृथक स्पीशीज की विभिन्न आवश्यकतायें जीव संख्या में अवयवों (तत्त्वों) का न्यूनाधिक पूर्ण परिवर्तन ला देते हैं, जब वाह्य कारक, विशेषकर ताप और पोषक, बसे हुए जल-खण्ड में परिवर्तित हो जाते हैं। जब इस प्रकार का जीवात्मक परिवर्तन किंचित सुआकारित जल-खण्ड स्थिर या गतिमान, में होता है तो वह 'पृथक जीव संख्या अनुक्रमण' के नाम से कहलाया जा सकता है। इसे जीव संख्या के उस परिवर्तन से संभ्रान्त नहीं करना चाहिये जो कि किसी निश्चित भौगोलिक अवस्था में जहाँ क्रमिक प्रेक्षण-श्रेणी ली गयी हो, अपनी जीव संख्या सहित बहने वाले भिन्न जल-खण्डों के अनुक्रम से होता है। इस प्रकार का परिवर्तन 'स्थानीय अनुक्रम' कहलाया जा सकता है। इन दो महत्त्वपूर्ण किस्म के परिवर्तनों के बीच प्रभेद करना बहुधा सम्भव नहीं होता है जो (परिवर्तन) अन्वेषणाधीन क्षेत्र की जीव संख्या में होता हो यद्यपि जैव-प्रतिचयन के साथ के जल-लेखी आँकड़े, जल की अवशिष्ट हलचलों की प्रकृति के विषय में जानकारी देकर, जैव-आँकड़ों के निर्वचन में प्रचुरता से मदद करेंगे। जीव संख्या में स्थानीव अनुक्रमों की, पृथक जीव संख्या अनुक्रमण की तुलना में अधिक आकस्मिक होने की सम्भावना है, चूंकि पश्चादुक्त जल-खण्डों के साधारण भौतिक विचलन की अपेक्षा जीवात्मक विकास पर निर्भर रहता है। पहला भी कभी-कभी मन्द हो सकता है जब पड़ौसी जीव संख्यायें केवल अभिवहन या पार्श्विक मिश्रण के प्रक्रम से मिश्रित या प्रकीर्णित हो जाती है।

जीव संख्या में स्थानीय अनुक्रम और पृथक जीव संख्या अनुक्रमण दोनों को समाविष्ट करने वाला एक उदाहरण रेडफील्ड, (Redfield 1939) के अभिनव प्रेक्षणों से (दृष्टान्तिक) सचित्रित होता है जो टेरोपॉड 'लिमासिना रेट्रोवर्सा' की जीव संख्याओं के इतिहास, मेन की खाड़ी (Gulf of Maine 10.19) में उसका प्रवेश और प्रवास पर किये गये हैं। अल्प व्यष्टियों की जीव संख्या पूर्व से अन्तर्वाही जल के साथ दिसम्बर मास में खाड़ी में दृष्टिगोचर होती है।

खाड़ी के भंवरीय परिसंचरण में पकड़े जाने पर वे विनाशिता से संख्या में धीरे-धीरे कम होने लगते हैं या अवशिष्ठ धाराओं द्वारा कुछ क्षेत्र से बाहर ले जाये जाते हैं। तो भी, कुछ जीवित बच रहते हैं और पांच माह में अधिकतम आकृति ग्रहण कर लेते हैं और वसन्त के आखरी दिनों में उनकी सन्तान सम्भवतः, दूरतट पर उत्पन्न होने वाले अल्प नमूनों के दूसरे धावे (चढ़ाई) के साथ मिल जाते हैं, जहाँ (दूरतट) प्रत्यक्षरूप से स्पीशीज का अपना, मुख्य प्रजनन केन्द्र होता है। खाड़ी में किसी स्थिर विन्दु पर लिमासिना की वहन जीव संख्या का आभास स्थानीय अनुक्रम को गठित करता है, जहाँ कि खाड़ी गतिमान जल में होने वाली संख्या में धीरे-धीरे कमी और आकृति में वृद्धि एक वैयक्तिक जीव संख्या अनुक्रमण निरूपित करते हैं।

संख्या में होने वाले परिवर्तन में किसी निश्चित स्पीशीज की विकास अवस्थाओं का अनुक्रमण हो सकता है। इसको ध्यान में रखते हुए यह नोट करना चाहिये कि कोई प्रेक्षित जीवात्मक अनुक्रमण दो कारणों से हो सकता है (1) पृथक जल-खण्ड में हुए भौतिक या रासायनिक परिवर्तनों (यानी जल के ताप या पोषक अवस्था में उतार या चढ़ाव) की विभिन्न जैव-अनुक्रिया के कारण स्पीशीज की संरचना में परिवर्तन हो सकता है। या (2) एक या अधिक स्पीशीज के व्यष्टिओं (वैयक्तिकों) के जीवन वृत्त में तैथिक रूप से विकसित अवस्थाओं के केवल मात्र कारण से और केवल समय के गुजरने के कारण, जीव संख्या की आपेक्षिक परिपक्वता में परिवर्तन हो सकता है। स्पीशीज का अनुक्रमण करने वाला पादप प्लवक में परिवर्तन बोरियल जल में चित्रित रूप से दिखाई पड़ता है जहाँ ग्रीष्म या वसन्त के आखरी दिनों में, प्रभावी रूप से डायटम प्लेन्क्टन में, डायटम की सांद्रता में सामान्यतौर पर घटाव होता है और डायनों फ्लैजेलेटाओं में साथ की या उत्तरवर्ती वृद्धि होती है। यहाँ, विशेष कर, दो कारक पृथक जल-खण्ड में क्रियात्मक हैं :

(1) ताप में वृद्धि (ऋतु की अग्रगति के कारण), तो ताप-प्रेमी डायनो फ्लैजेलेटाओं के अनुकूल होती है और (2) डायटम द्वारा वनस्पति पोषक में उस बिन्दु तक रिक्तीकरण होता है जो कि उनके प्रचुर प्रोद्भवन के लिये अधोनुकूलतम होता है परन्तु फिर भी डायनो फ्लैजेलेटाओं के लिये पर्याप्त है जो पोषक में और भी कमी करने योग्य होते हैं और उनकी गतियोग्यता से, अनुकूल प्रकाश स्थितियों के सम्बन्ध में कुछ अंश तक स्वयम् को समंजित करने योग्य होते हैं (10.20)। कुछ डायनो फ्लैजेलेटाओं (सिराहियम स्पेनीश, पेरीडीनीयम स्पीशीज प्रोरोसेन्ट्रम मिकान्स) की फॉस्फेट तथा नाइट्रेट की आवश्मकतायें प्रायोगिक रूप से अत्यन्त ही निम्न पायी गयी वारकर (Barker 1935)। विभाजन की अधिकतम दर नाइट्रोजन के दस

लक्ष के 0.1 भाग के साथ पहले ही पहुंच चुकी है और यह तत्व केवल 0.01 से 0.001 भाग प्रति दशलक्ष की न्यूनता पर सम्भवात्मक सीमाकारक गुणक है।

समय के लय से संबंधित एक प्रभावी (प्रधान) स्पीशीज की विकासात्मक अवस्थाओं के प्रतिशत रचना करने वाला जीवात्मक अनुक्रमण का सचित्र वर्णन, क्लाइड समुद्र क्षेत्र (10.21) के अपेक्षाकृत मन्दगति से बहे हुए जल में 'कैलेनुस फिन्मार्किकस' के जीवन-चक्र के अध्ययन में दिया गया है और जहाँ लोक स्ट्रीवन में क्रमिक विकासात्मक अवस्थाओं को और कैलेनुस के बच्चों के (अंडों) को, जो ऋतुओं पर्यन्त होने लगते हैं, खोजना सम्भव था (मार्शल, निकोल्स, और ओर्र, Marshall, Nicholls and Orr, 1934)।

अध्याय 11.

समुद्री धाराओं के सामान्य लक्षण

समुद्री धाराओं का सिद्धान्त अध्याय XII, XIII और XIV में दिया जायगा। इस अध्याय में धारायें अगणितीय रूप से विवेचित की जावेंगी, अंशतः अधिक यथार्थ विवरण की प्रस्तावना की भांति और अंशतः समुद्री धारायें और जल खण्डों के अध्याय के अध्ययन को उनके लिए सरल बनाने के लिए जो द्रव गति विज्ञान के सिद्धान्तों से पूर्ण रूप से परिचित नहीं है। समुद्री धारायें आसानी से तीन वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं : (1) वे धारायें जो समुद्र में घनत्व के वितरण से सम्बन्धित हैं (2) वे धाराऐं जो समुद्र पृष्ठ पर लगने वाला हवा के प्रतिबल से सीधे ही उत्पन्न होती है और (3) आन्तरिक तरंगों से संथित धाराऐं और ज्वार-भाटीय धारायें।

प्रथम श्रेणी मे महासागरों की प्रमुख विशाल पैमानीय धाराऐं आती है, जैसे गल्फ स्ट्रीम, कुरोशीओ, विषुवतीय धाराऐं, बेन्गुऐला धारा और ऐसी अन्य धारायें। ये सभी प्रकार की धारायें भारी मात्रा में जल का परिवहन करती है। जहाज़ से लिये गये प्रेक्षणों से पृष्ठ पर उनके पथ ज्ञात हो जाते हैं (11·1) और कुछ इलाकों में लवणता और कुछ इलाकों में स्थल मण्डलीय गहराइयों पर उनके लक्षण लंगर डाले हुवे जलयानों से किये गये धाराओं के प्रत्यक्ष मापन से, व्युत्पन्न किये जाते है, और कई अधिक इलाकों में लवणता और ताप के निर्धारणों से वे (लक्षण) अभिनिश्चित किये जाते है। ऐसे प्रेक्षणों से धाराओं के विषय में निष्कर्ग निकालने के लिये उपयोगित विधियों का विवेचन नीचे दिया जायगा।

वातोढ़ जल को एक ही दिशा में विशाल क्षेत्रों के ऊपर तक परिवहन करता हैं यदि वह एक ही दिशा से प्रचलित रूप से चलती है परन्तु ज्वार भाटों और आन्तरिक तरंगों से संथित धारायें या तो घूर्णमान होती है या प्रत्यावर्ती रूप से विपरीत दिशा में चलती है। यद्यपि ज्वार भाटीय धाराऐं उच्च वेग तक की धारायें हो सकती हैं फिर भी महासागरीय जल के परिसंचरण में वे प्रत्यक्ष महत्त्व नहीं रखती।

घनत्व के वितरण से सम्बन्धित धारायें—समुद्र में घनत्व के वितरण से सम्बन्धित धाराओं की प्रकृति की व्याख्या भौतिकी के कुछ सामान्य नियमों पर आधारित हो सकती है। इनमें से एक नियम का कथन है कि वस्तु का त्वरण वस्तु की प्रति इकाई संहति पर लगने वाले बलों के योग के बराबर होता है। तरल के

किसी भी भाग में लागू होने योग्य, यह नियम सूचित करता है कि यदि एक वस्तु एक समान गति से चलती है तो वस्तु पर कार्य करने वाले बल एक दूसरे को सन्तुलित करते हैं। भौतिकी का दूसरे नियम का कथन है कि तरल के अन्दर बल उस दिशा में लगता है जिधर तरल में दाब घटता है यानी 'दाब प्रवणता' की दिशा में। समुद्री धाराओं के और अधिक वर्णन के लिये; 'समदाबी' पृष्ठों और समतल पृष्ठों जैसे शब्दों को पुरःस्थापित करना सुविधा जनक होता है समदाबी पृष्ठ एक काल्पनिक पृष्ठ है जिसके स्पर्शी तरल में दाब स्थिर रहता है और समतल पृष्ठ एक काल्पनिक पृष्ठ है जिसके स्पर्शी गुरुत्व का कोई संघटक कार्य नहीं करता।

महासागर में दाब में अधोमुखी वृद्धि होती है और घटते हुए दाब के विरुद्ध कार्य करने वाला दाब प्रवणता इसलिये ऊर्ध्वमुखी होता है। यह लगभग इतना ऊर्ध्वाधर होता है कि क्रियात्मक रूप से प्रति इकाई संहति पर गुरुत्व जनित त्वरण को सन्तुलित करता है। यदि यह यथार्थता से गुरुत्व जनित त्वरण को सन्तुलित करता है तो समदाबी पृष्ठों का समतल पृष्ठों से संपात हो जाता है और पूर्ण स्थैतिक साम्यावस्था होने लगती है। वास्तविकता में महासागर में सपदाबी पृष्ठ समतल पृष्ठों के सापेक्ष अल्प-ढलवां, होते हैं परन्तु ढलान इतनी कम होती है कि स्थैतिक वन् साम्यावस्था होती है, अर्थात् किसी भी ऊर्ध्वाधर दिशा में दो समदाबी पृष्ठों के बीच की दूरी, यदि इस अन्तराल में घनत्व का वितरण ज्ञात हो, मालूम की जा सकती है। माना कि दो समदाबी पृष्ठों पर दाब क्रमशः p_1 और p_2 है, और माना कि ऊर्ध्वाधर दिशा में औसत घनत्व $\bar{\varrho}$ है। तब दोनों समदाबी पृष्ठों के बीच तदनुरूपी ऊर्ध्वाधर दूरी $h = (p_1 - p_2)/g\bar{\varrho}$ होती है, जहाँ g गुरुत्व जनित त्वरण है। अतएव दूरी वृहत् होती है जहाँ जल का औसत घनत्व कम होता है और इसके विलोमतः भी होता है।

यदि विभिन्न गहराइयों पर जल का घनत्व अधिक परिशुद्धता से ज्ञात हो तो पूर्ण स्थैतिक साम्यावस्था की स्थिति से अल्प विचलन मालूम किया जा सकता है। इन विचलनों से यानी समदाबी पृष्ठों के ढाल से, कार्य करने वाले बलों का विचार करते हुए समुद्री धाराओं के विषय में निष्कर्ष निकाला जा सकता है। परिभाषानुसार, एक समदाबी पृष्ठ के स्पर्शी दाब प्रवणता शून्य होती है और परिणामस्वरूप दाब के वितरण सम्बन्धित कोई बल ऐसे पृष्ठ के स्पर्शी कार्य नहीं करता है। यदि समदाबी पृष्ठ एक समतल पृष्ठ से सम्पातित होता है, तो गुरुत्व का कोई संघटक पृष्ठ के स्पर्शी कार्य नहीं करता और यदि जल स्थिर (शान्त) है तो वह स्थिर रहेगा। इसके विपरीत यदि एक समदाबी पृष्ठ समतल पृष्ठ के सापेक्ष ढालू होता है गुरुत्व का संघटक इसके (समदाबी) स्पर्शी कार्य करता है और जल स्थिर नहीं रह सकता। इसे ढलवां पृष्ठ के सहारे नीचे की ओर बहना चाहिये परन्तु ज्योंही यह गतिमान् होने लगता है, भू-घूर्णन के प्रभाव का विचार करना पड़ता है।

पृथ्वी पर किसी चर-वस्तु की गति को सुविधापूर्वक और परिशुद्धता से वर्णन करने के लिये भू-घूर्णन का विस्थापन बल (कोरीयोलिस बल) की पुरःस्थापना करना आवश्यक हो जाता है जो (बल) वस्तु की चाल के समानुपाती होता है और वेग के समकोणीय दिष्ट होता है—उत्तरी गोलार्ध में दायीं ओर तथा दक्षिणी गोलार्ध में बायीं ओर। इस बल के पुरःस्थापन के कारण की व्याख्या अध्याय XIII (11.2) में की गयी हैं। कोरीयोलिस बल (Correolis force) इतना दुर्बल होता है कि यान्त्रिकी की लगभग सभी समस्याओं (प्रश्नों) में इसकी उपेक्षा की जा सकती है क्योंकि अन्य (कार्य करने वाले) बल अत्यधिक बृहत् होते हैं, परन्तु जब महासागरों और वायुमण्डल पर विचार करना हो तो, चूंकि अन्य बल कम होते हैं, कोरीयोलिस बल अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हो जाता है।

जल की गति के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि यदि समदाबी पृष्ठ स्पर्शी कार्य करने वाला गुरुत्व का संघटक कोरीयोलिस बल द्वारा सन्तुलित हो जाता है तो जल की यह गति कहीं अधिक त्वरित नहीं होती है। गुरुत्व का संघटक अनुप्रवण दिष्ट होता है और इसलिये कोरीयोलिस बल को उन्नमन होना चाहिए। चूंकि कोरीयोलिस बल धारा के समकोणीय दिष्ट होता है, धारा ढलवां समदाबी पृष्ठ की सम्मोच्च रेखाओं का अनुसरण करती है। उत्तरी गोलार्ध में समदाबी पृष्ठ धारा की दिशा में देखने वाले प्रेक्षक के दायीं ओर ऊर्ध्वमुखी ढलवां होता है; दक्षिणी गोलार्ध में यह बायीं ओर ऊर्ध्वमुखी ढलवां होता है।

किसी निश्चित ढाल के लिये वेग का सांख्यिक मान :

$$v = g\frac{i_p}{1.458 \times 10^{-4} \sin \varphi}$$ है, जहाँ

g गुरुत्व जनित त्वरण है, i_p समदाबी पृष्ठ का ढाल है, 1.458×10^{-4} भू-घूर्णन का द्विकोणीय वेग है जिसमें एक सैकण्ड को समय की इकाई लिया गया है और φ भौगोलिक अक्षांश है। यदि त्वरण से० मी० प्रति वर्ग सैकण्ड में दिया हुआ है तो वेग से० मी० प्रति सैकण्ड में मिलता है या फीट प्रति सैकण्ड में यदि गुरुत्व जनित त्वरण फीट प्रति वर्ग सैकण्ड में दिया गया हो।

मध्य अक्षांशो में महा प्रबल पृष्ठीय धाराओं का भी वेग कदाचित् ही 100 से० मीटर/सै० (लगभग 2, नॉट) से अधिक होता है। 45° अक्षांश में समुद्र पृष्ठ का तद्स्थानी ढाल 1.05×10^{-5} होता है यानी पृष्ठ 10^5 से०मी० (1 कि०मी०) में 1 से०मी० या 10^5 मीटर (100 किलो मीटर) में लगभग 1 मीटर उतरता या चढ़ता है। ऐसा सरल ढाल सम्भवत् प्रत्यक्षरूप से अवलोकित नहीं हो सकता परन्तु एक समदाबी पृष्ठ का ढाल, दूसरे के सापेक्ष में निर्धारित हो सकता है यदि कई

गहराइयों पर दो पड़ोसी इलाकों में जलका घनत्व ज्ञात हो। समुद्र पृष्ठ सदैव समदाबी पृष्ठ माना जा सकता है और पृष्ठ के नीचे किसी भी गहराई पर एक समदाबी पृष्ठ के सापेक्ष में समुद्र पृष्ठ का ढाल घनत्व के वितरण से निर्धारित किया जा सकता है। यदि दो पड़ोसी स्टेशनो A और B पर समुद्र पृष्ठ और 1000 मीटर के बीच औसत घनत्व B की अपेक्षा A पर कम है, तो लगभग 1000 मीटर की गहराई पर समदाबी पृष्ठ और समुद्र पृष्ठ के मध्य दूरी B पर की दूरी की अपेक्षा A पर अधिक होती है। लगभग 1000 मीटर की गहराई पर के समदाबी पृष्ठ के सापेक्ष समुद्र पृष्ठ A से B की ओर अधोमुखी ढलवां होता है। यदि यह आपेक्षिक ढाल पर्याप्त परिशुद्धता से निर्धारित करना हो तो घनत्व पाँच दशमलव अंक तक ज्ञात होनी चाहिये जिसके अर्थ है कि लवणता निर्धारण में त्रुटियाँ 0.02‰ से बढ़नी नहीं चाहिये तथा ताप मापन मे त्रुटियां 0.02° से०ग्रे० मे नहीं बढ़नी चाहिये। लवणता और ताप मापन की परिशुद्धता में सुधार करने के कई प्रयासो के लिये यह एक कारण है।

आपेक्षिक ढाल से आपेक्षिक धारायें संगणित हो सकती हैं परन्तु हमारी इच्छा तो परम धाराएँ मालूम करना है। अतएव समदाबी पृष्ठों के परम ढाल मालूम करना आवश्यक है तथा ताप और लवणता के क्षैतिज तथा ऊर्ध्वाधर वितरण की सावधानी पूर्ण जांच से परम ढाल के मान्य निष्कर्ष बहुधा निकाले जा सकते हैं। इस प्रकार के परीक्षणों से उदाहरणार्थ यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विचाराधीन क्षेत्रों में 2000 मीटर की गहराई पर धाराएँ इतनी कमजोर होती हैं कि वे उपेक्षणीय होती हैं। इसका आशय यह है कि 2000 मीटर पर समदाबी पृष्ठ चौरस होता है और यह कि अन्य सारे समदाबी पृष्ठों के ढाल प्राप्त हो जाते हैं यदि इन ढालों को लगभग 2000 मीटर की गहराई पर के समदाबी पृष्ठ के नाम से निर्दिष्ट किये जाते हैं। समुद्र में दाब मापन की इकाई "डेसीबार" है, जो कि लगभग 1 मीटर ऊंचाई के जल स्तम्भ द्वारा लगने वाला दाब होता है। इसलिये लगभग 2000 मीटर की गहराई पर दाब लगभग 2000 डेसीबार होता है और अन्य समदाबी पृष्ठों के ढाल 2000 डेसीबार पृष्ट के नाम से निर्दिष्ट किया जा सकता है। किसी क्षेत्र से जब कई जल-लेखी स्टेशन उपलब्ध होते हैं तब प्रत्येक स्टेशन पर निर्देश-पृष्ठ और अन्य समदाबी पृष्ठ के बीच खड़ी दूरियां संगणित की जा सकती हैं। इन दूरियों को चार्ट पर आलेखित की जा सकती है तथा सम-उच्चता की रेखाऐं खींची जा सकती हैं जो निर्देश—पृष्ठ, जैसे 2000 डेसीबार पृष्ठ, के सापेक्ष वरित समदाबी पृष्ठ की स्थल रूपरेखा निरूपित करेगी।

ऐसे स्थलाकृति-चार्ट को तैयार करने के लिये आवश्यक अभिगणनाऐं सामान्य तौर से गतिक अभिगणनाऐं कहलाती हैं। इन अभिगणनाओं में खड़ी

दूरी को उस 'कार्य' से अभिव्यक्त करते हैं जो एक तल से दूसरे तल तक इकाई संहृति को गतिमान करने में किया जाता है या लाभान्वित होता है। कार्य को "गतिक-मीटर" इकाई में अभिव्यक्त करते हैं, जो कि इकाई संहृति को लगभग 1 मीटर के उत्थापन में कृत काम से निरूपित होता है जब गतिक-मीटर इस्तेमाल होते हैं, समदाबी पृष्ठो के भू-स्थितिज (गतिक) स्थलरूप रेखा के चार्ट तैयार किये जाते हैं। कन्टूर उन रेखाओं को निरूपित करते हैं जिनके साथ-साथ, गुरुत्व के विरुद्ध बिना कार्य करते हुए वस्तु चलाई जा सकती है और यदि कन्टूर 'गतिक दूरी' सम-रेखान्तर पर खींचे गये हैं तो इकाई संहृति को एक कन्टूर से दूसरे कन्टूर (समोच्च रेखा) तक गतिमान् करने में सदैव बराबर कार्य किया जाता है या लाभान्वित होता है। लघु क्षेत्र में, गतिक मीटर की इकाइयों में या साधारण मीटर अभिव्यक्त की गयी समोच्च रेखाओं के मध्य कोई प्रत्यक्ष अन्तर नहीं होता है परन्तु विशाल क्षेत्रों पर दोनों प्रकार के कन्टूर संपातित नहीं होते क्योंकि गुरुत्व जनित त्वरण अक्षांश के साथ बदलता है। मीटर प्रति सेकण्ड में धारा का वेग निम्न सूत्र से प्राप्त होता है :—

$$v = 10\frac{i_D}{1{\cdot}458 \times 10^{-4} \sin \varphi}$$

जिसमें i_D अनुप्रस्थ दूरी का गतिक मीटर प्रति मीटर में, या गतिक से० मी० प्रति से० मी० में अभिव्यक्त भू-स्थितिज ढाल है।

एक समदाबी पृष्ठ के स्थलाकृति चार्ट से, मानी गयी कल्पनाओं के आधार पर, अर्थात् समदाबी के स्पर्शी कार्य करने वाला गुरुत्व का संघटक कोरीयोलिस बल द्वारा सन्तुलित हो जाता है, धाराऐं इच्छानुसार प्राप्त हो सकती हैं। इस मान्यता पर धारा समोच्च रेखाओं के स्पर्शी निर्दिष्ट होती है यदि ये सम-रेखान्तरों पर खींची गई हैं तो पृष्ठ का ढाल समोच्च रेखाओं के मध्य क्षैतिज दूरी से प्रतिलोमानुपाती होता है और इसलिये वेग उसी दूरी से प्रतिलोमानुपाती होता है, अनुपात का गुणक अक्षांश पर निर्भर रहता है जैसा कि उपरोक्त सूत्रों से दिखाया गया है।

इस रीति से बनाये गये धाराओं के चार्ट चित्र ऐसे देते हैं जो केवल सन्निकटतः शुद्ध होते हैं। प्रथम तो, निर्देश—समदाबी पृष्ठ के वरण से त्रुटियां पुरः स्थापित हुई हों। इन त्रुटियों का टालना कठिन होता है क्योंकि ऐसे वरण के लिये न केवल समुद्र विज्ञान सम्बन्धी आंकड़ों तथा द्रव गति विज्ञान के सिद्धांतों से ही पूर्ण सुपरिचय आवश्यक होता है वरन् कुछ मात्रा में विवेक भी आवश्यक रहता है। दूसरे यह कि चूंकि कालान्तर में घनत्व का वितरण बदल जाता है इसलिये त्रुटियां पुरः स्थापित हो जाती हैं जिसका आशय यह होता है कि किसी गतिमान् जल-खण्ड का वेग सदैव

परिवर्ती होता है, यानी उपेक्षित त्वरण सदैव सर्वथा अविद्यमान नहीं होते हैं। तो भी यह सिद्ध किया जा सकता है कि त्वरणों की उपेक्षा कर संगणित वेग में त्रुटि कदाचित् ही कुछ प्रतिशत से अधिक होती है (11·3)। अधिक गम्भीर तो वे त्रुटियां हो सकती हैं जो समुद्र विज्ञान प्रेक्षणों को समकालिक मान लेने से पुरः स्थापित होती है। यह निर्विकल्परूप से मान लिया गया है कि कई इलाकों से समकालिक प्रेक्षण उपलब्ध थे परन्तु सामान्य रूप से उपयोग किये जाने वाले आंकड़े एक ही जहाज के परिभ्रमण से प्राप्त हुवे हैं जो स्टेशनों के पास हफ्तों या महिनों रहे हों। धाराओं के चित्र में होने वाली गंभीर विकृति को टालने के लिये प्रत्येक पृथक क्षेत्र के लिये काम समाप्त करने की अवधि निर्धारण करना वांछनीय होता है। तो भी, सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि स्टेशन जितने कम फासले पर हों, उनको अधिकृत किये जाने की अवधि उतनी ही अल्प होनी चाहिये और महासागर व्यापी धाराऐं उन स्टेशनों के द्वारा परीक्षित हो सकती हैं जो काफी फासले पर होते हैं और जो विभिन्न वर्षों और ऋतुओं में अधिकृत होते हैं।

तीसरे स्थान में, घर्षणात्मक बल की उपेक्षा की गई है। यह छूट गम्भीर नहीं होती है क्योंकि संचित अनुभव के अनुसार घनत्व से सम्बन्धित धाराओं पर घर्षण का प्रभाव कम होता है।

चौथे स्थान में यह मान लिया गया है कि, समदाबी पृष्ठ ढाल पूर्णरूप से घनत्व के वितरण पर निर्भर रहते हैं और सामान्य रूप से एक चौरस समदाबी पृष्ठ पाया जा सकता है जिसके नाम से सारे ढाल निर्दिष्ट हो सकते हैं। यह मान्यता सदैव ठीक नहीं होती है। बिना गति का पृष्ठ इतना ढलवा हो सकता है कि यह किसी समदाबी पृष्ठ से संपात नहीं करता परन्तु यह कठिनाई केवल गौण है। लघु क्षेत्र में बिना गति का पृष्ठ समतल समझा जा सकता है, और बिना गति की परत के सापेक्ष, समुद्र पृष्ठ या अन्य किसी समदाबी पृष्ठ का ढाल कोई क्रम से बढ़कर निकला जा सकता है। जब समुद्र पृष्ठ का ढाल न केवल विभिन्न घनत्वों के जल-खण्डों द्वारा ही नहीं होता है परन्तु जल का कुछ इलाकों में वास्तविक इकट्ठा होना और दूसरों में उसके हटने से होता है तब अति गम्भीर कठनाई उत्पन्न होती है। बाल्टिक सागर या बोथनिया की खाड़ी जैसे स्थल रूद्ध जलाशयों में वायु द्वारा पानी के जमा होने से समुद्र पृष्ठ में उल्लेखनीय ढलान आ सकते हैं, जैसाकि ज्वारभाटीय मापियों (11·4) द्वारा प्राप्त समुद्र तल के मानों से स्थापित हुआ है। खुले महासागर में, यह सुनिश्चित करना असम्भव होता है कि इस प्रकार का जमाव होता है या नहीं, परन्तु प्रेक्षित तथा संगणित धाराओं में कई दृष्टान्तों में जो समानता पाई गयी है, वह सूचित करती है कि जहां तक मुख्य धाराओं का सम्बन्ध है, जमाव महत्त्वपूर्ण नहीं होता है।

इतने निग्रह (अपवाद) किये गये हैं ताकि ऐसा प्रतीत हो कि मानों संगणित धाराओं का वास्तविक धाराओं से बिल्कुल नहीं या कम सम्बन्ध है। तो भी भाग्यवश बहुत-सी कल्पनाओं से केवल गौणत्रुटियां परिणामित होती है और प्रथम सन्निकटन में, धाराएँ एक निर्देश तल के सापेक्ष, समदाबी पृष्ठों की श्रेणी की मदद से समुचित रूप से निरूपित की जा सकती हैं। फ्लोरिडा के जल संयोजको में प्रेक्षित धाराओं और संगणित धाराओं में उत्तम समानता प्राप्त हुई है; (चित्र 184, अध्याय XV (11.5)। न्यूफाउण्डलैण्ड के ग्राण्ड बैंक्स में दूर के भागों में इन्टरनेशनल आइस पेट्रोल द्वारा संगणित धाराओं को हिमशैलों के बहाव के पूर्व कथन के लिये सफलता पूर्वक उपयोग किया गया है (11.6); और कई क्षेत्रों में संगणना के परिणामों की सीधे प्रेक्षित पृष्ठीय धाराओं, या संवहन बोतल प्रयोगों के परिणामों, से जांच की गयी है। उपरोक्त रूपरेखा की रीति, इसलिए, भौतिक समुद्र विज्ञान में मानक प्रक्रिया बन गयी है।

यह कहा गया था कि उत्तरी गोलार्ध में धारा इस प्रकार दिष्ट होती है कि समदाबी पृष्ठ, बहाव की दिशा में देखने वाले प्रेक्षक की दाहिनी ओर उन्नमन होते हैं तथा समदाबी पृष्ठों के मध्य दूरियां घटते हुए घनत्व के साथ बढ़ती है। यदि बिना गति का तल समुद्र पृष्ठ के निचे किसी दूरी पर हो, तब एक साधारण नियम निम्नलिखित है : उत्तरी गोलार्ध में हलका जल, धारा के बहाव की दिशा में देखने वाले प्रेक्षक की दाहिनी ओर होता है तथा घना जल उसके बायीं ओर रहता है। दक्षिणी गोलार्ध में हल्का जल (प्रेक्षक के) बायीं ओर और घना जल दाहिनी ओर रहता है।

जहाँ तक कि पृष्ठ के निकट जल का घनत्व सामान्यतया लवणता की अपेक्षा ताप पर अधिक निर्भर रहता है, 'हल्का' को 'ऊष्ण' से और 'घना' को 'शीतल' शब्दों से बदला जा सकता है। यदि घनत्व का वितरण या समुद्र पृष्ठ के नीचे विभिन्न गहराइयों पर या खड़े अनुभागों में ताप का वितरण दिखाने वाले चार्ट उपलब्ध हों तो ये नियम धाराओं की दिशाओं का तीव्र सर्वेक्षण अधिक सुविधाजनक कर देते हैं। सामान्य तौर से घनत्व का वितरण σ_t से, या आपेक्षिक आयतन की असंगतियों δ (11.7) से निरूपित करते हैं।

क्षैतिज दिशा में घनत्व में वृहत् अन्तर केवल महासागर की ऊपरी परतों में पाये गये अतएव केवल ऊपरी परतों मे ही समदाबी पृष्ठों के आपेक्षिक खड़े ढाल विद्यमान होते हैं। यदि अगाध तथा समरूप जल खण्ड मन्द गति मान हों, तो यह अर्थ निकलता है कि खड़े परम ढाल और तदनुरूपी द्रुत धाराएँ ऊपरी परतों तक ही सीमित रहती है। कुछ क्षेत्रों में धाराएँ जो घनत्व के वितरण से सम्बन्धित होती है, 500 मीटर या कम की गहराई पर उपेक्ष्य होती है (केलीफोर्नीया धारा,

विपुवतीय् प्रति धारा); दूसरे क्षेत्रों में 1000 या 2000 मीटर (कुरोशीयों, गल्फ स्ट्रीम) और वहुत कम क्षेत्रों में (अन्टार्कटिका ध्रुव-परिसर धारा) वे 3000 मीटर तक भी महत्वपूर्ण होती है। समुद्र पृष्ठ पर, गल्फ-स्ट्रीम में और कुरोशीयों में संगणित वेगों का मान 150 से.मी./सै. तक हो जाता है जो कि प्रेक्षणों से सहमत होते हैं।

सामान्य तौर से अगाध जल का प्रवाह घनत्व के वितरण से संगणित नहीं हो सकता जिसका मुख्य कारण यह है कि अगाध जल में क्षैतिज दिशा में घनत्व में अन्तर इतने अल्प होते हैं कि वे अभी भी पर्याप्त परिशुद्धता से निर्धारित नहीं हो सकते हैं। अगाध जल (समुद्रों) में गति से सम्वन्धित निष्कर्ष इसीलिए ताप और लवणता के वितरण पर सीधे ही आधारित होते हैं न कि दी गयी रूप रेखा की संगणनाओं पर।

धाराओं से जल का वहन संगणित वेगों से या सीधे घनत्व के वितरण से प्राप्त हो सकता है। विना-गति की परत निर्धारण में वहन की संगणना वहुधा उपयोगी होती है, क्योंकि किसी महासागरीय प्रदेश में परिवाहित जल की मात्रा लगभग उस मात्रा के वरावर होनी चाहिये जो उतनी ही अवधि में क्षेत्र से वाहर परिवाहित जल की होती है। (इनमें) अन्तर. एक ओर वाष्पन और दूसरी ओर स्थल से वर्षण तथा अपवाह के बीच के अन्तर के बराबर होना चाहिये। आमतौर से यह अन्तर धाराओं द्वारा परिवाहित जल खण्डों की तुलना में कम होता है। इसी प्रकार, किसी महासागरीय प्रदेश में धाराओं द्वारा ले जाये गये लवण की निवल मात्रा भी शून्य होनी चाहिये, यह एक तथ्य है जिसे स्वतन्त्रतापूर्वक, या जल के वहन के विचार के सहयोजन से प्रयुक्त किया जा सकता है (11.8)।

पूर्वगत् विवरण में कार्यकारण का कोई उल्लेख नहीं किया है। इसका कारण यह है कि कोई निश्चित घनत्व का वितरण कालान्तर में केवल अभी तक वर्णित प्रकार की धाराओं की उपस्थिति में अपरिवर्तित रह सकता है। अतएव समस्त जो कहा जा सकता है. कि घनत्व के वितरण और तदनुरूपी धाराओं के मध्य परस्पर सम्वन्ध होता है पर यह कहना असम्भव है कि "घनत्व में वितरण धाराओं को उत्पन्न करता है या धाराओं के कारण घनत्व में वितरण होता है"। कारणात्मक सम्वन्ध पाने के लिये, घनत्व के वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों.—जैसे शीतलन और तापन की प्रक्रियाएें और पवन का प्रभाव, पर विचार करना आवश्यक होता है। शीतलन और तापन की प्रक्रिया अध्याय IV में विवेचित की गयी थी और इस अध्याय में वायु के प्रभाव पर जोर दिया जावेगा।

हवाएें तथा समुद्री धाराएें उत्पन्न करने में हवा का द्वितीयक प्रभाव :

समुद्री धाराएें उत्पन्न करने में हवा का दुतरफा प्रभाव है। प्रथम स्थान में, समुद्र पृष्ठ पर हवा जो प्रतिवल डालती है उससे छिछले वातोढ़ का सीधा विकास

होने लगता है, दूसरे वातोढ़ द्वारा जल के परिवहन से घनत्व का वितरण परिवर्तित होने लगता है और तदनुरूपी धाराओं का विकास होने लगता है ।

वातोढ़ के लिए केवल घर्षणात्मक बल और कोरीयोलिस बल महत्वपूर्ण होते हैं । हवा समुद्र पृष्ठ पर प्रतिबल डालती है जिससे पृष्ठीय परत गतिमान् हो जाती है, और इसी प्रकार जल की प्रत्येक गतिमान् परत अगली नीचेवाली परत पर प्रतिबल डालती है । भंवर श्यानता के वृहत मान के कारण (11.9) निकटवर्ती परतों में वेग अन्तर कम होते हुवे भी पश्चादुक्त प्रतिबल उल्लेखनीय होते हैं । भंवर श्यानता को स्थिर मान कर ऐक्मेन ने वातोढ़ का सैद्धांतिक रूप से परिक्षण किया तथा निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले, जिनका सत्यापन काफी हद तक अनुभव से किया गया है । उत्तरी गोलार्ध में पृष्ठ पर वातोढ़ वायु के दाहिनी ओर 45° पर दिष्ट होता है । बढ़ती हुई गहराई के साथ हवा और धारा के बीच का कोण बढ़ता है तथा वेग घटता है यदि गहराइयों के समान्तर पर धारा को ठीक दिशा में बताने वाले तथा वेग के अनुसार उसकी लम्बाई वाले तीर से निरूपित किया जाय तो ये तीर एक सर्पिल सीढ़ी-कक्ष बनावेंगे जिसकी पेड़ियां संकरी होने लगती हैं जैसे ही गहराई में वृद्धि होने लगती है (चि. 121, अध्याय XIII) । इन तीरों के अन्तिम बिन्दुओं को यदि एक क्षैतिज-समतल पर प्रक्षिप्त किया जाय, तो वे एक लघुगणकीय सर्पिल पर फैलेंगें । दक्षिणी गोलार्ध में पृष्ठ पर वातोढ़ वायु के बायीं ओर विक्षेपित होता है परन्तु उसके अन्य लक्षण अन्य उत्तरी गोलार्ध के वातोढ़ के समतुल्य ही होते हैं ।

इससे यह पता चलता है कि पृष्ठीय धारा के ठीक विपरीत दिशा में बहने वाली धारा की गहराई सदैव मालुम की जा सकती है । स्थिर श्यानता की मान्यता से इस गहराई पर वेग का मान पृष्ठी पर उस के मान के अल्पाँश तक घट गया है और इस गहराई के नीचे धाराऐं नगण्य होती हैं । इसलिए ऐक्मेन इस गहराई को 'घर्षण प्रतिरोध की गहराई' कहता है । घर्षण प्रतिरोध गहराई के ऊपर की परत की मोटाई को स्थूल रूप से उस परत की मोटाई के बराबर समझी जा सकती है जो प्रचलित हवाओं के प्रभावाधीन इतने समुचित रूप से विलोडित होती है कि वह लगभग समांग होती है। घर्षण प्रतिरोध की गहराई, वर्धमान वायु वेग और घटते हुवे अक्षांश के साथ बढ़ती है । भूमध्य रेखा पर सैधान्तिक रूप से यह अनन्त हो जाती है । घर्षण प्रतिरोध गहराई, D, वायु वेग, W, और अक्षांश φ के बीच सम्बन्ध सन्निकटतः निम्न प्रकार से व्यक्त किये जाते हैं $D = 7.6W / \sqrt{\sin \varphi}$ । जब वायु वेग मीटर प्रति सेकण्ड में हो तो गहराई मीटर में प्राप्त होती है । इसी प्रकार, पृष्ठ पर वातोढ़ वेग सन्निकटतः $v_0 = 0.013W / \sqrt{\sin \varphi}$ होता है ।

वातोढ़ से कुल वहन, वायु के समकोणीय, उत्तरी गोलार्ध में वायु के दाहिनी तथा दक्षिणी गोलार्ध में बाँयी ओर दिष्ट होता है । यह वहन भंवर श्यानता के

लक्षण तथा उसके सांख्यिक मान से स्वतन्त्र रहता है और केवल वायु के प्रतिबल तथा अक्षांश पर निर्भर करता है।

जिस वातोढ़ का वर्णन किया गया है वह केवल खुले महासामर के खंडों में विकसित हो सकता है जहां हवा विस्तृत क्षेत्रों पर एक ही दिशा में और एक ही वेग से चलती है। किनारों के निकट तथा वायु विचलन क्षेत्रों के निकट हेर-फेर होने लगता है और हवा के गौण प्रभाव महत्वपूर्ण होने लगते हैं। उस हवा के विषय में विचार कीजिये जो उत्तरी गोलार्द्ध में वायु की ओर पीठ करके खड़े हुवे प्रेक्षक के दायीं ओर के किनारे के समान्तर चलती है और यह मान लीजिये कि जल का घनत्व गहराई के साथ बढ़ता है विशेषकर, चूंकि ताप घटता है। हवा के प्रत्यक्ष प्रभाव से हल्का और गरम पृष्ठीय जल किनारे की ओर परिवहन करने लगता है परन्तु चूंकि तट प्रवाह में रुकावट निरूपित करता है, हल्के और गरम पृष्ठीय जल का तट पर जमाव होने लगता है और किनारे की ओर ले जायी गई जल की मात्रा की पूर्ति के लिये कुछ दूरी पर शीतल एवं घने स्थलमण्डलीय जल को उठना चाहिए। परिणामस्वरूप घनत्व का वितरण परिवर्तित हो जाता है और गौण प्रभाव की तरह एक धारा उत्पन्न होती है जो हवा की दिशा की ओर इस नियमानुसार बहती है कि हल्का जल धारा के दायीं ओर होगा। (चित्र 106, अध्याय XIII) हवा के प्रतिबल पर, एवम् पृष्ठ की ओर उठने वाले जल के गर्म होने की तीव्रता पर आधारित एक स्थाई-दशा उत्पन्न हो सकती है।

यदि तट वायु दिशा के बायीं ओर होता है तो हल्का एवम् गरम जल तट से परे परिवाहित होता है तथा स्थल मण्डलीय शीतल एवम् घने जल मे बदल दिया जाता है। अपवेलिंग (upwelling) कहलाने वाली इस प्रक्रिया से घनत्व का वितरण परिवर्तित होने लगता है जिसके तदनुरूपी एक धारा होती है जो वायु की दिशा में प्रवाहित होती है। अनुभव से पता चलता है कि अपवेलिंग छिछली गहराइयों तक ही सीमित है और इसका प्रभाव 100 से 300 मीटर तक की गहराइयों तक अनुरेखित हो सकता है। अपवेलिंग की घटना का व्यापक रूप से अध्ययन हुआ है, आंशिक रूप में चूंकि पृष्ठ पर खींचा गया स्थल मण्डलीय शीतल जल के किनारों पर अत्यन्त ही प्रभावी होता है जहां अपवेलिंग होता है और आंशिकरूप में चूंकि अपवेलिंग जल में वनस्पति पोषक पदार्थों की विपुलता होती है। इन सम्बन्धों का विवरण और कहीं दिया गया है। यहां तो केवल इसी बात पर बल देने की आवश्यकता है कि अपवेलिंग हवा का सीधा प्रभाव है और गौण प्रभाव की तरह से, हवा की दिशा में और तट के समान्तर एक धारा उत्पन्न करता है।

खुले सागरों में समवृति दशाएँ पाई जाती हैं। महासागर में जहां वायुमण्डलीय प्रतिचक्रवात स्थित होता है, प्रचलित हवाऐं पृष्ठीय हल्के जल को प्रति

चक्रवात के केन्द्र की ओर वहन करने लगती है। इसी परिवहन के कारण, प्रतिचक्रवात के केन्द्र के निकट हल्के जल का संचय बनाए रक्खा जाता है, और घनत्व के इस वितरण के तदनुरूपी एक धारा होनी चाहिए जो हवा की दिशा में फिर से बहने लगे।

इस विवरण से यह स्पष्ट है कि महासागरों की धारा-पद्धतियों के लिये प्रचलित हवाऐं प्राथमिक महत्त्व की हैं। धाराओं और प्रचलित हवाओं को बतलाने वाले चार्ट की तुलना से इस महत्त्व का पता चल जाता है क्योंकि कई क्षेत्रों में दिशाओं का अति संपतन होता हैं। फिर भी, कुछ उल्लेखनीय अपवाद हैं जो मुख्य रूप से तटीय धाराओं को तट रेखा के साथ-साथ बहने की आवश्यकता के कारण होते हैं।

तो भी, सागरीय धाराओं को बनाये रखने में हवाओं के महत्त्व पर अत्यधिक बल देना अनुचित होगा क्योंकि समांग जल में पूर्णरूप से भिन्न पद्धति विकसित होने लगेगी। जो प्रतिरूप सागरों में होता है वह तापन एवं शीतलन, वाष्पन एवं अवक्षेपण की प्रक्रियाओं पर समानता से निर्भर करता है अर्थात् उन बाह्य कारकों पर निर्भर करता है जो पृष्ठीय परतों के घनत्व में परिवर्तन करने लगते हैं। चूंकि घनत्व के वितरण के वृहत् लक्षण प्रति वर्ष अपरिवर्तित रहते हैं, जिससे यह पता चलता है कि धाराऐं, स्थिर दशा बनाये रखने की नाजुक यन्त्र संरचना में आवश्यक सम्पर्क निरुपति करती हैं। माध्य स्थाई दशा पर अध्यारोपित अनेकों विक्षोभ हैं जिनमें से कुछ मौसम परिवर्तन से सम्बन्वित हैं और न्यूनाधिक समतुल्य रीति से प्रतिवर्ष पुनरावृत होते हैं, और कुछ अनियमित वायुमण्डलीय विक्षोभ से सम्बन्वित होते हैं तथा अपूर्वानुमेय होते हैं।

ज्वार-भाटीय धाराऐं— घनत्व के वितरण या हवा से सम्बन्वित धाराओं की तुलना में, ज्वार-भाटीय धाराऐं जल को अधिक दूरियों तक वहन नहीं करती। अखण्ड एव संकीर्ण जल संयोजकों में, **जहां अर्ध दैनिक ज्वार-भाटा ज्यादा प्रभावी होता है,** ज्वार-भाटीय धाराऐं प्रति छः घण्टे में अपनी दिशा उलट लेती हैं और जहां दैनिक ज्वार-भाटा विद्यमान होता है वहां ये धाराऐं प्रति बारह घण्टे में अपनी दिशा उलट लेती हैं। आमतौर से, खुले सागरों में ज्वार-भाटीय धाराऐं, कोरीयोली —बल के प्रभाव से घूर्णमान होती है, यानी, प्रति घण्टा धाराऐं दिशा और वेग दोनों में बदलती हैं। उत्तरी गोलार्ध में दिशा परिवर्तन दक्षिणावर्त होता है, दक्षिणी गोलार्ध में यह प्रवाम होता है।

जब ज्वार-भाटा अर्ध दैनिक होता है तब से लगभग बारह घण्टों में धारा एक घूर्णन पूरा करती है और जब यह दैनिक होता है तब लगभग चौवीस घण्टों में

पूरा करती है । अतएव बारह या चौबीस घण्टों में जल का निवल वहन शून्य होता है । सैद्धान्तिक रूप से ज्वार-भाटीय धाराओं को पृष्ठ से तल की ओर, सबसे नीचे के 20 से 30 मीटर को छोड़ कर एक ही दिशा में तथा एक ही वेग से बहनी चाहिए क्योंकि 20 से 30 मीटर तक वे तल के निकट तल-घर्षण से प्रभावित होने लगती है । इस निष्कर्ष की विशुद्धता का छिछले जल (उथले समुद्रों) में सत्यापन किया गया है परन्तु जांच के लिये अगाध समुद्रों से पर्याप्त प्रेक्षण उपलब्ध नहीं है ।

ज्वार-भाटे के लक्षण, पेंदे की गहराई, और तट की समाकृति पर निर्भर रहते हुवे ज्वार-भाटीय धाराएं एक इलाके से दूसरे इलाके में बदलती रहती हैं परन्तु किसी निश्चित इलाके में उतने ही नियमित रूप से पुनरावृत होती है जितने से ज्वार भाटे, जिनसे वे सम्बन्धित होती हैं । तो भी, खुले सागर में वे कम आसानी से अवलोकित होती हैं क्योंकि वे अन्य धाराओं पर अध्यारोपित होती हैं जो अनियमित ढंग से बदलती रहती हैं और जिन्हें तभी लुप्त किया जा सकता है जब प्रेक्षणों की लम्बी श्रेणी उपलब्ध हो । इन धाराओं के विषय में सूचनाऐं प्राथमिक रूप से उन क्षेत्रों से संग्रहित की गयी हैं जहाँ नौचालन में ये धाराऐं महत्वपूर्ण होती हैं ।

समुद्री जीव विज्ञानिक के दृष्टिकोण से ज्वार-भाटीय धाराओं का अति-महत्वपूर्ण पहलू यह है कि वे जल के विलोने में बहुतायत से अंशदान देती हैं । विशेषकर तटीय क्षेत्रों में, जहाँ धाराओं का वेग कई नॉट्स तक पहुंच सकता है ।

आन्तरिक तरंगों से सम्बन्धित धाराऐं आमतौर से ज्वारीय आवर्तकाल की होती हैं परन्तु ये धाराऐं वेग और दिशा में गहराई के साथ बदलती रहती हैं । खुले महासागर में ज्वारीय आराओं की अपेक्षा इनका वेग अति उच्चतर पहुंच सकता है तथा जिन्हे ये लगभग आच्छादित कर सकती हैं । खुले महासागर की आन्तरिक तरंगों तथा उन के साथ की धाराओं का अध्ययन अभिनव है तथा अभी भी बहुत कुछ जानकारी प्राप्त करनी है ।

ज्वारीय धाराऐं समदाबी पृष्ठ के ढालो में लयबद्ध परिवर्तनों द्वारा पोषित होती हैं । ज्वार का चढ़ाव-उतार, जोकि चाँद और सूरज की क्रिया से होता है, यह प्रदर्शित करता है कि जल लयबद्ध रूप से जमा होता है (पूर्ण ज्वार, उच्च जल) अथवा हटाया जाता है (भाटा, निम्न जल) । समुद्र पृष्ठ उच्च जल क्षेत्र से निम्न जल की ओर अनुप्रवण होता है और समुद्र पृष्ठ के नीचे के समदावी पृष्ठों का ढलान इसी प्रकार से होता है परन्तु छः घण्टों के पश्चात् अनुप्रवण की दिशा उलट जाती है । अतएव जल-कण सामयिक रूप से परिवर्ती बल के प्रभावाधीन चलते हैं और तद्नुरुप गति, लोलक के दोलन के तुल्य एक दोलक

गति होती है । इस तुलना में अन्तर केवल यह है कि कोरीयोलिस बल कणों को एक सरल रेखा के साथ-साथ आगे-पीछे ले जाने की अपेक्षा दीर्घवृत्तों में चलाता है जहां ऐसी दीर्घवृत्तीय कक्षाऐं सीमाओं द्वारा रुकती नहीं हैं ।

घनत्व के वितरण मे लयबद्ध परिवर्तनों द्वारा आन्तरिक तरङ्गों का वने रहना समझा जा सकता है जो घनत्व के वितरण और ताप के बीच सम्बन्ध के अनुसार समदाबी पृष्ठों के ढालों में लयबद्ध परिवर्तनों के बराबर होता है । एक आन्तरिक तरङ्ग में, मध्यवर्त्ती गहराई पर एक या अधिक समदाबी पृष्ठ समतल रहते हैं और समतल पृष्ठ के ऊपर या नीचे के समदावी पृष्ठों के ढाल विपरीत दिशाओं में होते हैं । तद्नुरूपी धाराऐं भी विपरीत दिशाओं में होती हैं और यदि विभिन्न आवर्त-काल की कई आन्तरिक तरङ्गें एक साथ उपस्थित हों तो धाराओं का एक जटिल प्रतिरूप मिलता है ।

इस संक्षिप्त विवरण से यह विदित होता है कि पूर्णरूप से आनुभविक आधार पर समुद्री धाराओं का ज्ञान प्राप्त करना व्यवहारिक रूप से असम्भव है । यदि इसे निस्पन्न करना ही है तो यह आवश्यक हो जावेगा कि लंगर डाले हुये जल-यानों से अनेकों इलाकों में लम्बी अवधि तक, और कई गहराइयों पर मापन किये जांय । ऐसे मापन द्वारा विभिन्न प्रकार की आवर्त्ती धाराओं का परीक्षण किया जा सकता है और औसतीकरण से वे विलोपित की जा सकती है तथा अन्य प्रकार की धाराओं का अध्ययन किया जा सकता है । तो भी कई समुद्र विज्ञान सम्बन्धी समस्याओं में आवर्त्ती धारा का ज्ञान कम महत्वपूर्ण होता है । धाराऐं, जो जल का लम्बी दूरियों तक वहन करती हैं वे महत्वपूर्ण होती हैं । घनत्व के वितरण से सम्वन्धित धाराऐं अधिक सुविधापूर्वक प्रेक्षित ताप तथा लवणताओं से, संगणित हो सकती है जिसके लिये प्रक्रिया की रूप रेखा इस अध्याय में दी गई है और जिसका ब्यौरेवार विवरण अगले अध्यायों में दिया जायगा; तथा वात-धाराओं की सैद्धां-तिक रूप से जांच की जा सकती है । समुद्र विज्ञान में द्रवगति विज्ञान के उपयोग का यह महत्व है, और यदि प्रेक्षित वितरण से सभी संभाव्य निष्कर्ष निकालने हों तो इस प्रयोग से परिचय की आवश्यकता है ।

अध्याय 12

स्थैतिकी तथा शुद्धगति विज्ञान

स्थैतिकी

मात्रक और विमिति

पिछले अध्यायों में विभिन्न मात्रक बिना किसी विशेष परिभाषा के उपयोग किये गये है, परन्तु अब मात्रक और विमिति दोनों की परिभाषा देना आवश्यक हो गया है। आंग्ल भाषा के अनुसार 'विमिति' (डाइमेन्शन) शब्द का उपयोग दो भिन्न अर्थों से किया जाता है। सामान्य भाषा में "एक वस्तु के आयाम" यह शब्द उस वस्तु के आकार के सम्बन्ध में होता है परन्तु भौतिकी में डाइमेन्शन्स (विमिति) के अर्थ होते है मूल वर्ग जिनसे भौतिक वस्तुओं, गुणधर्मों या प्रक्रियाओं का उल्लेख किया जाता है। यान्त्रिकी तथा द्रव गति विज्ञान में ये मूल विमितियां संहति, लम्बाई, और समय हैं जो क्रमशः M, L, और T से सूचित की जाती हैं। जब 'डाइमेन्शन' शब्द का उपयोग इस अभिप्राय से किया जाता है तो संख्यात्मक परिमाण का कोई संकेत लक्षित नहीं होता परन्तु इस संकल्पना पर बल दिया जाता है कि कोई भी भौतिक लक्षण या गुणधर्म, विमितियों जैसे कुछ वर्गों के शब्दों में वर्णित किये जा सकते। इसका स्पष्टीकरण उदाहरण सहित आगे किया जावेगा (12.1)।

मूल मात्रक :—भौतिकी में संहित, लम्बाई और समय के साधारण स्वीकृत मात्रक ग्राम, सेन्टीमीटर और सेकण्ड हैं; यानी मात्रायें सेन्टीमीटर-ग्राम-सैकण्ड (सि. ग्रा. से.) पद्धति में अभिव्यक्त की जाती हैं। समुद्र विज्ञान में इन मात्रक को बनाये रखना सदैव क्रियात्मक नहीं होता है क्योंकि ऊँचे संख्यात्मक मान के उपयोग से बचने के लिए गहराई को सेन्टीमीटर में न माप कर मीटर में मापना सुविधाजनक होता है। इसी प्रकार एक ग्राम के बजाय एक मेट्रीक टन को संहृति के मात्रक की तरह काम में लेना बहुधा व्यावहारिक होता है। सेकण्ड को काल का मात्रक वैसा ही रखते हैं। मीटर, टन और सैकण्ड पर आधारित मात्रक पद्धति वी. जेरक्नीस तथा उसके सहयोगियों (1910) द्वारा शुरु की गयी थी से. मी. ग्रा. से. पद्धति की तुलना में नये मात्रक ये हैं 1 मीटर$=10^2$ से. मी.,

1 मेट्रीकटन$=10^6$ ग्राम तथा 1 से.$=$1 से. । तापीय प्रक्रियाओं में 1° से. ग्रे. को मूल मात्रक की भांति मान लेना चाहिये ।

अभाग्यवश मी. ट. से. पद्धति का भी संगतपूर्वक उपयोग करना व्यावहारिक नहीं है । कई मामलों में परिणामों को प्रयोगशाला में प्राप्त परिणामों से, जो कि ऐसे मात्रकों में अभिव्यक्त किये जाते हैं, सरलता से तुल्य करने के लिए से.ग्रा.से. पद्धति को अपनाना ही लाभदायक होता है, या क्योंकि संख्यात्मक मान से.ग्रा.से. पद्धति में ज्यादा सरलता से काम में लिये जा सकते हैं । इसके अतिरिक्त जब क्षैतिज दूरियां मापनी होती हैं तो किलोमीटर, मानक मील या नाविक मील के समान वृहत् का मात्रक उपयोग करना वांछनीय होता है । अतएव, समुद्री विज्ञान में उस मात्रक को सूचित करना सदैव आवश्यक होता है जिसमे कोई भी मात्रा मापी गयी हो ।

व्युत्पन्न मात्रक :—स्थैतिकी में संहति M लम्बाई L और काल T के मात्रक के अलावा मात्रकों को तीन विमिति M, L, और T से, और इन विमितियों के लिए अपनाये गये इकई मानों से अभिव्यक्त किये जा सकते है । इस प्रकार, समय से विभाजित लम्बाई, वेग की विमिति होती है और LT^{-1} लिखी जाती है तथा सेंटीमीटर प्रति सेकण्ड अथवा मीटर प्रति सेकण्ड से अभिव्यक्त की जाती है । वैसे वेग और भी कई मात्रक से अभिव्यक्त किया जा सकता है जैसे नाविक मील प्रति घंटा (नाट्स) या मील प्रति दिन परन्तु विमिति अपरिवर्तित ही रहती हैं । वेग के परिवर्तन की दर त्वरण होता है और LT^{-2} इसकी विमिति होती है । बल, संहति तथा त्वरण का गुणनफल होता है और MLT^{-2} इसकी विमिति होती है ।

सारणी 60 में उपयोग में लिये जाने वाले बहुत से पदों की विमितियां दी गयी है। सारणी में कई पदों की समान विमिति है परन्तु प्रत्यय जिन पर ये पद आधारित हैं, भिन्न है । उदाहरणार्थ, काम को बल और दूरी के गुणनफल से परिभाषित करते है जबकि गतिज ऊर्जा संहति और वेग के वर्ग के गुणनफल से परिभाषित होती हैं परन्तु काम और गतिज ऊर्जा दोनों की विमिति ML^2T^{-2} होती है । इसी प्रकार पुरःस्थापित संकल्पनाओ के आधार पर एक ही पद विभिन्नता से परिभाषित किया जा सकता है । उदाहरणार्थ, दाब को कार्य प्रति इकाई आयतन, $ML^2T^{-2}L^{-3}=ML^{-1}T^{-2}$, से परिभाषित किया जा सकता है, परन्तु इसे बल प्रति इकाई क्षेत्रफल, $MLT^{-2}L^{-2}=ML^{-1}T^{-2}$ से बहुधा परिभाषित किया जाता है ।

सारणी 60

यांत्रिकी में उपयोगित पदों के मात्रक तथा विमितियां

पद	विमिति	से० ग्रा० से० पद्धति में मात्रक	मी० ट० से० पद्धति में मात्रक
मूल मात्रक			
संहति	M	ग्राम	मेट्रीकटन $=10^6$ ग्रा.
लम्बाई	L	से० मी०	मीटर $=10^2$ से.मी.
समय	T	सेकंड	सेकंड
व्युत्पन्न मात्रक			
वेग	LT^{-1}	से० मी०/से०	मी./से. $=100$ से.मी./से.
त्वरण	LT^{-2}	से० मी०/वर्ग से०	मी./वर्ग से. $=100 \frac{\text{से.मी.}}{\text{वर्ग से.}}$
कोणीय वेग	T^{-1}	1/से०	1/से.
संवेग	MLT^{-1}	ग्रा० से० मी०/से०	ट. मी./से. $=10^6$ ग्रा. $\frac{\text{से.मीं.}}{\text{से०}}$
बल	MLT^{-2}	ग्रा. से. मी./वर्ग से. $=1$ डाइन	ट. मी./वर्ग से. $=10^8$ डाइन्स
आवेग	MLT^{-1}	ग्रा. से. मी./से.	ट. मी./से. $=10^8$ ग्रा. $\frac{\text{से.मी.}}{\text{से.}}$
कार्य	ML^2T^{-2}	ग्रा. वर्ग से. मी./वर्ग से. $=1$ अर्ग	$\frac{\text{ट. वर्ग मी.}}{\text{वर्ग से.}}=1$ किलो जूल
गतिज ऊर्जा	ML^2T^{-2}	ग्रा. वर्ग से. मी./वर्ग से. $=1$ अर्ग	ट. $\frac{\text{वर्ग मी.}}{\text{वर्ग से.}}=1$ किलोजूल
सक्रियता (शक्ति)	ML^2T^{-3}	ग्रा. $\frac{\text{वर्ग से.मी.}}{\text{घन से.}}$ = अर्ग/से.	ट. $\frac{\text{वर्ग मी.}}{\text{घन से.}}=1$ किलोवाट
घनत्व	ML^{-3}	ग्रा./घन से.मी.	ट./घन मी. = ग्रा./घन से. मी.
आपेक्षिक आयतन	$M^{-1}L^3$	घन से.मी./ग्रा.	घन मी./ट. = घन से. मी./ग्रा.
दाब	$ML^{-1}T^{-2}$	ग्रा./से.मी./वर्ग से. = डाइन/वर्ग से.मी.	ट./मी./वर्ग से.मी. $=1$ सेंटीबार
गुरुत्व विभव	L^2T^{-2}	वर्ग से.मी./वर्ग से.	$\frac{\text{वर्ग मी.}}{\text{वर्ग से.}}=1$ गतिक डेसी मी.
गतिक श्यानता	$ML^{-1}T^{-1}$	ग्रा./से.मी./से.	ट./मी./से. $=10^4$ ग्रा/से.मी/से.
गतिमितीय श्यानता	L^2T^{-1}	वर्ग से.मी./से.	वर्ग मी./से. $=10^4$ वर्ग से.मी/से.
विसरण	L^2T^{-1}	वर्ग से. मी./से.	वर्ग मी./से. $=10^4$ वर्ग से.मी./से

भौतिकी के किसी समीकरण में तमाम पदों की विमितियां समान होनी चाहिए, या यान्त्रिकी से सम्बन्धित हो तो सभी पदों में मूल विमिति M, L और T के

घातांक समान होने चाहिये। उदाहरण के तौर पर यह कहना अशुद्ध होगा कि किसी वस्तु का त्वरण वस्तु पर लगने वाले बलों का योग होता है, क्योंकि त्वरण की विमिति LT^{-2} होती है जबकि बल की विमित MLT^{-2} होती है। समुचित कथन तो यह है कि वस्तु का त्वरण वस्तु की प्रति संहति पर लगने वाले बलों के योग के बराबर होता है। स्थिर घनत्व ρ, ऊंचाई h के जल स्तम्भ द्वारा उस इलाके में डाले गये दाब, जहां गुरुत्वजनित त्वरण g होता है का व्यन्जक एक परिशुद्ध कथन का उदाहरण है:

$$p=\rho gh.$$

यहां समानता चिह्न के दोनों ओर की विमितियाँ हैं :

$$ML^{-1}T^{-2}=ML^{-3}\times LT^{-2}\times L=ML^{-1}T^{-2}$$

भौतिकी में कुछ समीकरणों में आने वाले स्थिरांकों की विमितियां होती हैं और इसलिये उनका संख्यात्मक मान मूल विमितियों को निर्दिष्ट करने वाली विशेष इकाइयों पर निर्भर करेगा, जबकि अन्य स्थिरांकों के विमिति नहीं होती है अतएव वे इकाई की प्रणालियों से स्वतन्त्र रहते हैं। घनत्व की विमिति ML^{-3} होती है परन्तु 4° पर शुद्ध जल के घनत्व का संख्यात्मक मान केवल 1 (एक) होता है यदि संहति तथा लम्बाई की इकाइयां विशिष्ट प्रकार से चुनी गयी हों (ग्राम और से. मी. या मेट्रीक टन और मीटर)। इसके विपरीत, 4° से. ग्रे. पर शुद्ध जल के घनत्व के सापेक्ष किसी वस्तु का घनत्व आपेक्षिक गुरुत्व होता है तथा इसकी कोई विमिति नहीं होती (ML^{-3}/ML^{-3}), और इसीलिये उपयोगित मात्रक पद्धति का विचार न करते हुये आपेक्षिक गुरुत्व को उसी संख्या से अभिव्यक्त करते हैं।

गुरुत्व, दाब और संहति के क्षेत्र

समतल पृष्ठ :—आदर्श समुद्र पृष्ठ के नीचे जब ज्यामितीय लक्षणों का विचार करना हो तो सम ज्यामितीय गहराई के निर्देशांक पृष्ठ उपयोगी होते है परन्तु स्थैतिकी या गति विज्ञान जिसमें कार्य कारी बलों का विचार करना होता है वहां ये पृष्ठ सदैव ठीक नहीं रहते हैं। चूंकि कार्यकारी बलों में गुरुत्वाकर्षण-बल एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण बल को निरुपित करता है, **समतल पृष्ठों** को निर्देशांक पृष्ठों की तरह उपयोग करना सुविधाजनक रहता है; वे **पृष्ठ समतल पृष्ठ** कहलाते हैं **जो सर्वत्र गुरुत्व बल के अभिलम्ब होते** हैं। यह अभी बताया जावेगा कि ये पृष्ठ सम ज्यामितीय गहराई के पृष्ठों से संपातित नहीं होते हैं।

समतल पृष्ठों की परिभाषा से यह नतीजा निकलता है कि यदि गुरुत्वाकर्षण बल के सिवाय कोई बल नहीं लगे होते हैं तो संहति को समतल पृष्ठ के स्पर्शी कोई

कार्य (खर्च) न करके गतिशील की जा सकती है और एक इकाई संहति को एक पृष्ठ से दूसरे पृष्ठ तक गतिमान करने में किये गये अथवा लाभान्वित कार्य की मात्रा लिये गये मार्ग से स्वतन्त्र होती है।

इकाई संहति को साहुल सूत्र के स्पर्शी h दूरी तक चलाने के लिये आवश्यक कार्य w, की मात्रा होती है :

$$W=gh,$$

जिसमें g गुरुत्वजनित त्वरण है। कार्य प्रति इकाई संहति की विमिति L^2T^{-2} होती है और इसलिये संख्यात्मक मान केवल लम्बाई और समय के लिये उपयोगित इकाइयों पर निर्भर करते हैं। जब लम्बाई मीटर में तथा समय सैकण्ड में नापे जाते हैं तो कार्य प्रति इकाई संहति का मात्रक **गतिक डेसीमीटर** कहलाता है (जेर्कनीस तथा भिन्न सहयोगी, Bjerknes and different collaborators, 1910).

अब से आगे के विवरण में समुद्र पृष्ठ समतल पृष्ठ माना जावेगा। समुद्रतल से ऊपर या समुद्र-तल से नीचे किसी बिन्दु तक इकाई संहति को ले जाने के लिए आवश्यक कार्य या ले जाने से लाभान्वित कार्य **गुरुत्व विभव** कहलाता है, और मी. ट. से. प्रणाली में गुरुत्व विभव की इकाई एक गतिक डेसिमीटर होती है।

गुरुत्व विभव की व्यावहारिक इकाई **गतिक मीटर** होती है जिसके लिए प्रतीक D का उपयोग किया जाता है। जब समुद्र से सम्बन्धित विवरण करना होता है तब लम्बरूप अक्ष को घनात्मक अधोमुखी मान लिया जाता है। ज्यामितीय गहराई, z, पर समतल पृष्ठ का गुरुत्व विभव, अतः गतिक मीटर में निम्न होता है,

$$D=\frac{1}{10}\int_0^z gdz \qquad \text{(XII. 1)}$$

इसके विपरीत, किसी दिये गये समतल पृष्ठ की मीटर में ज्यामितीय गहराई होती है

$$z=10\int_0^D \frac{dD}{g} \qquad \text{(XII, 2)}$$

गुरुत्व जनित त्वरण अक्षांश और गहराई के साथ बदलता है, और इसीलिए मानक समतल पृष्ठों के बीच की ज्यामितीय दूरी निर्देशांकों के साथ बदलती है। उत्तरी ध्रुव पर 1000-गतिक-मीटर पृष्ठ की ज्यामितीय गहराई 1017.0 मीटर है परन्तु विषुवत रेखा पर यह 1022.3 मीटर है, क्योंकि g का मान विषुवत रेखा की अपेक्षा ध्रुवों पर अधिक होता है। इस प्रकार से समतल पृष्ठ और सम ज्यामितीय गहराई के पृष्ठ संपातित नहीं होते हैं। सम ज्यामितीय गहराई के पृष्ठों के सापेक्ष

समतल पृष्ठ ढलवां होते हैं, अतः गुरुत्व जनित त्वरण का घटक सम ज्यामितीय गहराई के पृष्ठों के स्पर्शी लगता है।

समुद्र अधस्तल की स्थल रूप रेखा सम गहराई रेखाओं यानी सम ज्यामितीय गहराई की रेखाओं द्वारा निरुपित की जाती है—परन्तु, इसे उतनी ही आसानी से सम गुरुत्व विभव की रेखाओं द्वारा भी प्रस्तुत किया जा सकता है। समोच्च रेखायें तब समतल पृष्ठ तथा अधस्तल के असमान पृष्ठ के बीच प्रतिच्छेदन की रेखायें निरूपित करती हैं। ये समोच्च रेखाएं सम ज्यामितीय दूरियों पर नहीं होंगी और इसीलिए सामान्य स्थलाकृतिक चार्ट से भिन्न होंगी, परन्तु उनके लक्षण ऐसे होगें कि एक दी हुई संहति को एक समोच्च रेखा से दूसरी समोच्च रेखा पर ले जाने के लिए आवश्यक कार्य नियत होगा। यदि समुद्र-तल अधस्तल के स्थलाकृतिक लक्षणों में बिना किसी परिवर्तन के (नीचे उतारा) घटाया जाय तो ये (समोच्च) रेखाएं नयी तटीय रेखाओं का भी निरुपण करेंगी, परन्तु ऐसा तभी होगा जब नया समुद्र-तल पूर्ण जल-स्थैतिक साम्यावस्था धारण कर ले तथा गुरुत्वाकर्षण बल के अभिलंब स्वयम् को समंजित कर ले।

समरुपत: कोई अदिश क्षेत्र समादिश पृष्ठों के स्थलाकृतिक चार्टों की श्रेणी द्वारा निरुपित किया जा सकता है जिसमें समोच्च रेखाएं समतल पृष्ठों तथा समादिश पृष्ठों के बीच प्रतिच्छेदन की रेखाओं का निरुपण करती हैं। ऐसे स्वरूप के चार्ट गुरुत्व विभव स्थलाकृतिक चार्ट या **गुरुत्व विभव रूप रेखा** के चार्ट कहलायेंगे तथा ये स्थलाकृतिक चार्टों से भिन्न होंगे जिनमें समोच्च रेखाएं उन रेखाओं का निरूपण करती है जिनके साथ-साथ विचाराधीन पृष्ठ की **गहराई** नियत होती है।

गुरुत्व का क्षेत्र :—पृथ्वी का आकर्षण बल तथा भू-घूर्णन से जनित अपकेन्द्रीबल, इन दोनों बलों का परिणामी बल गुरुत्व होता है, इस तथ्य का विचार करना आवश्यक नहीं है परन्तु गुरुत्व को लोलक के प्रेक्षणों द्वारा आनुभविक रूप से प्राप्त बल की तरह परिभाषित करना पर्याप्त होता है। और भी, विस्तृत (ब्यौरेवार) सर्वेक्षणों से गुरुत्व में जिन अल्प विषम परिवर्तनों का पता चलता है उनका विचार करना आवश्यक नहीं होता है परन्तु "नॉर्मल" (सामान्य) मान का मीटर प्रति सेकण्ड में उपयोग करना काफी होता है तथा जिसे हेल्मर्ट्स के सूत्र द्वारा समुद्र तल पर अक्षांश, φ, के फंक्शन से निरुपित किया जा सकता है :

$$g_0=9.80616\,(1-0.002644\cos 2\varphi+0.000007\cos^2 2\varphi).$$

इस प्रकार ध्रुवों पर नॉर्मल मान 9.83205 है और भू-मध्य रेखा पर यह 9.78027 है। g का नॉर्मल मान गहराई के साथ निम्न सूत्र के अनुसार बढ़ता है :

$$g=g_0+2{\cdot}202\times 10^{-6}z$$

सूत्र (XII, 1) से किसी दी गई गहराई z के लिये गतिक मीटर में भूस्थितिज प्राप्त हो जाता है :

$$D = \frac{g_0}{10} z + 0.1101 \times 10^{-6} z^2,$$

या सूत्र (XII, 2) से किसी नियत D के तदनुरूप गहराई प्राप्त हो जाती है :

$$z = \frac{10}{g_0} D - 0.1168 \times 10^{-6} D^2$$

प्रथम सन्निकटन में

$$D = 0.98z \quad \text{तथा} \quad z = 1.02D,$$

जिसका अर्थ यह है कि गहराई को मीटर में निरूपित करने वाली संख्या भूस्थितिज को गतिक मीटर में निरूपित करने वाली संख्याओं से केवल लगभग 2 प्रतिशत से विचलित होती है। इन दोनों इकाइयों में संख्यात्मक समानता का व्यापक उपयोग किया जावेगा, परन्तु यह सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि गतिक मीटर कार्य प्रति इकाई संहति का माप है न कि लम्बाई का माप। संपरिवर्तनगुणक, 0.98 और 1.02 अतः विशुद्ध संख्या नहीं हैं परन्त प्रथम की विमिति LT^{-2} और दूसरे की विमिति $L^{-1}T^2$ है।

गुरुत्व के क्षेत्र का सम्पूर्ण वर्णन गुरुत्व विभव के मानक अन्तरों के तदनुरूप समविभव पृष्ठों के कुलक की सहयता से किया जा सकता है। यदि भूस्थितिज का ऊर्ध्वाधर निर्देशांक की तरह उपयोग किया जाय तो ये (समविभव पृष्ठ) समान दूरियों पर होते हैं, परन्तु, यदि ज्यामितीय गहराई का उपयोग किया जाता है, तो समविभव पृष्ठों के मध्य की दूरी बदलती रहती है। यदि क्षेत्र को एक गतिक डेसिमीटर के अन्तर पर समविभव पृष्ठों द्वारा निरूपित किया जाय तो इन पृष्ठों की परिभाषा से यह पता चलता है कि गुरुत्व जनित त्वरण का संख्यात्मक मान इकाई चादरों की मीटर में ज्यामितीय मोटाई का व्युत्क्रम होता है।

दाब का क्षेत्र—समुद्र में दाब का वितरण स्थिर साम्यावस्था के समीकरण की सहायता से मालूम किया जा सकता है :

$$dp = k\rho_{s,\theta,p} g dz. \qquad \text{(XII, 3)}$$

यहां k एक संख्यात्मक घटक है जो उपयोगित मात्रक पर निर्भर रहता है, और $\rho_{s,\theta,p}$ जल का घनत्व है (12.2)

द्रव स्थैतिक समीकरण का विवेचन आगे गति-समीकरणों (12.3) के सम्बन्ध में किया जावेगा। अभी तो इतना ही बल देना काफी है कि जहां तक महासागर की स्थितियों से सम्बन्ध है, सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए, यह समीकरण यथातथ है।

गतिक मीटर में अभिव्यक्त भूस्थितिज को ऊर्ध्वाधर निर्देशांक की तरह पुरस्थापित किया जाय तो $10dD=gdz$ होता है। जब दाब **डेसिबार** में मापा जाता है (1 बार$=10^6$ डाइन प्रति वर्ग सेन्टीमीटर) तो घटक k के बराबर $\frac{1}{10}$ हो जाता है और समीकरण (XII, 3) इस प्रकार लघुकृत हो जाती है :

$$dp=\rho_{s,\theta,p}dD, \quad \text{या} \quad dD=\alpha_{s,\theta,p}dp,$$

जिसमें $\alpha_{s,\theta,p}$ आपेक्षिक आयतन है

चूंकि $\rho_{s,\theta,p}$ और $\alpha_{s,\theta,p}$ एक से अल्पमात्र भिन्न होते हैं, दाब में अन्तर लगभग उसी संख्या द्वारा डेसिबार में अभिव्यक्त किया जाता है जो गतिक मीटर में भूस्थितिज में अन्तर या मीटर में ज्यामितीय गहराई में अन्तर अभिव्यक्त करती है। सन्निकटत :

$$p_1-p_2=D_1-D_2=z_1-z_2$$

दाब क्षेत्र का समदाबी पृष्ठों के निकाय द्वारा सम्पूर्णरूप से वर्णन किया जा सकता है। भूस्थितिज का ऊर्ध्वाधर निर्देशांक की तरह उपयोग करके दाब वितरण समदाब रेखाओं को मानक तल पृष्ठों पर दिखाने वाले चार्ट-श्रेणी द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है या मानक समदाबी पृष्ठों की भूस्थितिज स्थलाकृति बताने वाली चार्ट-श्रेणी द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। मौसम विज्ञान में, निरुपण की प्रथम प्रणाली सामान्यतया मौसम मानचित्रों पर काम में ली जाती है जिनमें समुद्र-तल पर दाब वितरण समदाब रेखाओं द्वारा निरुपित किया जाता है। इसके अतिरिक्त समुद्र विज्ञान में समदाबी पृष्ठों की भूस्थितिज स्थलाकृति निरुपित करना व्यावहारिक पाया गया है।

दाब प्रवणता निम्न प्रकार से परिभाषित की जाती है

$$G=-\frac{dp}{dn},$$

जिसमें n समदाबी पृष्ठों के अभिलम्ब दिष्ट होता है (12.4) दाब प्रवणता के लक्षण **बल प्रति इकाई आयतन** के लक्षण होते हैं, क्योंकि दाब की बल प्रति इकाई

क्षेत्रफल की विमिति होती है। दाब की विमिति $ML^{-1}T^{-2}=MLT^{-2}\times L^{-2}$ होती है और दाब प्रवणता की विमिति $ML^{-2}T^{-2}=MLT^{-2}\times L^{-3}$। दाब प्रवणता को आपेक्षिक आयतन, $M^{-1}L^{3}$ से गुणा करने पर LT^{-2} विमिति का बल प्रति इकाई संहति प्राप्त हो जाता है।

दाब प्रवणता के दो मुख्य संघटक होते हैं : ऊर्ध्वाधर, जो समतल पृष्ठों के अभिलम्ब दिष्ट होता है तथा दूसरा क्षैतिज जो समतल पृष्ठों के समान्तर होता है। जब स्थिर साम्यावस्था विद्यमान होती है तब बल प्रति इकाई संहति की तरह अभिव्यक्त ऊर्ध्वाधर संघटक गुरुत्व जनित त्वरण द्वारा संतुलित हो जाता है। यह वह कथन है जो गणितात्मक रूप से द्रव स्थैतिक साम्यावस्था के समीकरण से अभिव्यक्त किया जाता है। विश्रान्त-निकाय में दाब प्रवणता का क्षैतिज-अंश किसी अन्य बल द्वारा संतुलित नहीं होता है, अतएव क्षैतिज दाब प्रवणता का होना सूचित करता है कि निकाय विश्रान्त नहीं है या विश्रांत नहीं रह सकता। क्षैतिज दाब प्रवणता, अतः, अत्यन्त ही छोटा होते हुये भी, गति की स्थिति के लिये महत्वपूर्ण होता है जबकि ऊर्ध्वाधर संघटक इस विषय में उपेक्ष्य होते हैं।

यह स्पष्ट है कि यदि समदाबी पृष्ठों का समतल पृष्ठों से संपतन होता है तो दाब वितरण के कारण गति विद्यमान नहीं होती है या विकसित नहीं हो सकती है। परिपूर्ण द्रव स्थैतिक साम्यावस्था की ऐसी स्थिति में अनुप्रस्थ दाब प्रवणता लुप्त हो जाती है। समुद्र पृष्ठ पर लगने वाला वायुमण्डलीय दाब यदि स्थिर है, समुद्र पृष्ठ आदर्श तल के संपाती हैं और यदि जल का घनत्व केवल दाब पर निर्भर करता हो, तो इस प्रकार की अवस्था विद्यमान होगी। इनमें से किसी भी प्रतिबन्ध की पूर्ति नहीं होती है। समतल पृष्ठों के सापेक्ष समदाबी पृष्ठ सामान्यतया झुके हुये होते हैं, और अनुप्रस्थ दाब प्रवणता विद्यमान होती है जो आन्तरिक बल का क्षेत्र बनाती है।

अनुप्रस्थ दाब प्रवणता की अपेक्षा समदाबी पृष्ठों के ढालों का विचार करके भी बल के क्षेत्र को परिभाषित किया जा सकता है। परिभाषा के अनुसार समदाबी पृष्ठ के साथ दाब प्रवणता शून्य होती है, परन्तु यदि इस पृष्ठ का समतल पृष्ठ से संपतन नहीं होता है तो गुरुत्व जनित त्वरण का एक संघटक समदाबी पृष्ठ के साथ लगता है और जल को गतिशील कर देगा या यदि स्थायी दशा हो गयी तो अन्य बलों द्वारा सन्तुलित हो जाना चाहिये। अतएव बल का भीतरी क्षेत्र समदाबी पृष्ठ के साथ लगने वाले गुरुत्वजनित त्वरण के संघटक की सहायता से भी निरूपित किया जा सकता है (12.5)।

दाब वितरण से संचित बल क्षेत्र की परिभाषा का ध्यान न रखते हुये इस क्षेत्र के पूर्ण वर्णन के लिये समतल पृष्ठों पर परम समदाबी या समदाबी पृष्ठों की

परम भूस्थितिज सम्मोच रेखाओं का ज्ञान होना चाहिए। सम्भवत: ये आवश्यकताएँ पूरी नहीं की जा सकती हैं। इसका एक कारण यह है कि समदाबी पृष्ठों की भूस्थितिज दूरियों का नाप वास्तविक समुद्र पृष्ठ से होना चाहिये जिसकी स्थलाकृति अज्ञात होती है। यह बताया जावेगा कि सभी कुछ जो कोई कर सकता है वह दाब-क्षेत्र को मालूम करना है, जो मौजूद होगा यदि दाब वितरण केवल समुद्र में संहति के वितरण पर निर्भर रहा हो। सम्पूर्ण दाब क्षेत्र का यह भाग **दाब का आपेक्षिक क्षेत्र** कहलायगा परन्तु इस बात पर विशेष बल नहीं दिया जा सकता कि **दाब का सम्पूर्ण क्षेत्र** इस सापेक्ष क्षेत्र से बना है और साथ ही ऐसा क्षेत्र जो वायुमण्डलीय दाब और पवन जैसे बाहरी बलों द्वारा बना रहता है।

इस कथन की *व्याख्या* करने के लिये एक मीठे पानी की झील का विचार किया जावेगा जो इतनी छोटी हो कि वायुमण्डलीय दाब में क्षैतिज-अन्तर की उपेक्षा की जा सकती है तथा गुरुत्व जनित त्वरण को अचर माना जा सके। प्रथम तो यह मान लिया जाय कि जल समांग है, जिसका अर्थ है कि घनत्व निर्देशांकों से स्वतन्त्र है। इसमें, किन्हीं दो समदाबी पृष्ठों के बीच की दूरी निम्नलिखित समीकरण से अभिव्यक्त की जाती है

$$\Delta h = \frac{\alpha}{g} \Delta p \qquad \text{(XII, 4)}$$

यह समीकरण केवलमात्र उल्लेख करती है कि समदाबी पृष्ठों के बीच की ज्यामितीय दूरी अचर होती है तथा दाब के आन्तरिक क्षेत्र को पूर्णरूप से परिभाषित करती है। दाब का सम्पूर्ण क्षेत्र झील के मुक्त पृष्ठ की समाकृति पर निर्भर रहता है यदि कोई हवा नहीं चलती है और इस प्रकार से झील के मुक्त पृष्ठ पर कोई प्रतिबल यदि नहीं पड़ता है तो परिपूर्ण द्रव स्थैतिक साम्यावस्था होती है, मुक्त पृष्ठ समतल पृष्ठ होता है, और, समरूपत:, सभी अन्य समदाबी पृष्ठ समतल पृष्ठों से संपातित में होते हैं। इसके विपरीत, यदि झील के आर पार हवा चलती है तो साम्यावस्था विक्षुब्ध हो जावेगी, झील के एक सिरे पर जल तल नीचा हो जायगा तथा दूसरे सिरे पर जल एकत्रित हो जायगा। मुक्त पृष्ठ फिर भी समदाबी पृष्ठ ही होगा परन्तु यह अब समतल पृष्ठ के सापेक्ष झुका होगा। तो भी, दाब का आपेक्षिक क्षेत्र, अपरिवर्तित रहेगा जैसा कि समीकरण (XII, 4) से निरूपित किया गया है, जिसका अर्थ है कि अन्य सभी समदाबी पृष्ठों की वही ज्यामितीय आकृति होगी जैसी मुक्त पृष्ठ की होती है।

इसी प्रकार से कोई चाहे तो विभिन्न घनत्व की परतों को पुर:स्थापित कर सकता है, और उसे पता चलेगा कि यही (उपरोक्त) तर्क प्रयोज्य होगा। यह विधि,

अतएव, तब भी लागू होने योग्य है जब कोई ऐसे द्रव की विवेचना करता हो जिसमें घनत्व गहराई के साथ निरन्तर बदलता हो। विभिन्न गहराइयों पर घनत्व के प्रेक्षणों की सहायता से दाब का आपेक्षिक क्षेत्र व्युत्पन्न किया जा सकता है और इसे स्वेच्छा से या प्रयोजन से वरित किसी समदाबी पृष्ठ के सापेक्ष समदाबी पृष्ठों की स्थलाकृति की सहायता से निरूपित किया जा सकता है। वरित निर्देश-पृष्ठ के सापेक्ष समदाबी पृष्ठों के ढाल से **आपेक्षिक** बल क्षेत्र व्युत्पन्न किया जा सकता है, परन्तु निरपेक्ष दाब-क्षेत्र और तत्स्थानी परम बल-क्षेत्र को मालूम करने के लिए एक समदाबी पृष्ठ के निरपेक्ष रूप का निर्धारण करना आवश्यक होता है।

इन विचारातों का सविस्तार वर्णन यहाँ दिया गया है क्योंकि निरपेक्ष दाब क्षेत्र तथा आपेक्षिक दाब क्षेत्र में अन्तर से पूर्ण रूप से अवगत होना आवश्यक होता है और यह जानना भी आवश्यक होता है कि इन क्षेत्रों में से प्रत्येक को निर्धारित करने के लिए किस प्रकार के आंकड़ों की जरूरत होती है।

संहति क्षेत्र :—महासागर में संहति-क्षेत्र का साधारणतया आपेक्षिक आयतन से वर्णन किया जाता है तथा निम्न समीकरण द्वारा अभीव्यक्त किया जाता है (12.6)

$$\alpha_{s,\theta,p}=\alpha_{35,0,p}+\delta.$$

आपेक्षिक आयतन क्षेत्र दो क्षेत्रों से बना हुआ सोचा जा सकता है। एक $\alpha_{35,0,p}$ का क्षेत्र तथा दूसरा δ का क्षेत्र।

पहला क्षेत्र साधारण लक्षण का होता है। $\alpha_{35,0,p}$ का क्षेत्र समदाबी क्षेत्रों के संपात में होते हैं, जिनका समतल पृष्ठों से विचलन इतना कम होता है कि क्रियात्मक प्रयोजनों के लिये $\alpha_{35,0,p}$ के पृष्ठों को समतल पृष्ठों के, या समान ज्यामितीय गहराई के पृष्ठों के संपाती माने जा सकते हैं। इसीलिये $\alpha_{35,0,p}$ के क्षेत्र का उन सारणियों की मदद से पूर्ण रूप से वर्णन किया जा सकता है जिनमें $\alpha_{35,0,p}$ दाब के फंक्शन की तरह दिया होता है तथा जिनमें दाब, भूस्थितिज, और ज्यामितीय गहराइयों के बीच औसत सम्बन्ध दिये होते है। चूंकि इस क्षेत्र को अचर क्षेत्र माना जा सकता है, संहति-क्षेत्र, आपेक्षिक आयतन की असंगति, δ से पूर्ण रूप से उल्लेखित होता है, जिसके निर्धारण की विवेचना पहले की गयी थी (12.7)।

संहति क्षेत्र असंगति पृष्ठों की स्थलाकृति द्वारा, या क्षैतिज चार्टों द्वारा या ऊर्ध्वाधर काट द्वारा, जिनमें अचर δ के वक्र दर्ज होते हैं, निरूपित किया जा सकता है, पश्चादुक्त विधि अति सामान्य होती है। यह सदैव ही ध्यान में रखना चाहिये

कि **स्वस्थाने** आपेक्षिक आयतन, असगंति, δ, और **स्वस्थाने** दाव पर मानक आपेक्षिक आयतन के जोड़ के बराबर होता है ।

सापेक्ष दाब-क्षेत्र :—किसी किस्म के दावमापी का उपयोग कर प्रत्यक्ष प्रेक्षणों से समुद्र में सापेक्ष दाव क्षेत्र का निर्धारण करना असम्भव होता है क्योंकि समुद्र पृष्ठ के नीचे दाव मापी की गहराई में केवल 0.1 मी० की त्रुटि क्षैतिज अन्तर, जो स्थापित हो जाने चाहिये, से अधिक बड़ी त्रुटियां पुरःस्थापित कर देगी । तो भी, यदि संहति क्षेत्र ज्ञात हो तो स्थिर साम्यावस्था के समीकरण से दाव का आन्तरिक क्षेत्र निर्धारित हो सकता है, यह समीकरण निम्नलिखित रूप की होती है ।

$$dp=\rho dD, \text{ अथवा } dD=\alpha.dp$$

समुद्रीय विज्ञान में पश्चादुक्त रूप अधिक क्रियात्मक पाया गया है परन्तु सभी तर्क पहले से निगमित परिणामों के लिये समान रूप से लागू होते हैं ।

पश्चादुक्त रूप का समाकलन करने पर

$$D_1-D_2=\int_{p_1}^{p_2} \alpha_{s,\theta,p}\, dp \qquad \text{(XII, 5)}$$

होता है । चूंकि $\alpha_{s,\theta p}=\alpha_{35,0,p}+\delta$ है इसलिये

$$(D_1-D_2)_s+\Delta D=\int_{p_1}^{p_2} \alpha_{35,0,p}\, dp+\int_{p_1}^{p_2} \delta dp \qquad \text{(XII,6)}$$

लिखा जा सकता है, जिसमें

$$(D_1-D_2)_s=\int_{p_1}^{p_2} \alpha_{35,0,p}\, dp$$

जो समदाबी पृष्ठ p_1 तथा p_2 के मध्य **मानक** भूस्थितिज दूरी कहलाता है तथा

$$\Delta D=\int_{p_1}^{p_2} \delta dp$$

समदाबी पृष्ठ p_1 तथा p_2 के मध्य भूस्थितिज दूरी की **असंगति** कहलाता है या संक्षेप शब्दों में भूस्थितिज असगति कहलाता है ।

समीकरण (XII,6) की व्याख्या इस प्रकार हो सकती है कि सापेक्ष दाब क्षेत्र दो क्षेत्रों से बना हुआ है: एक मानक क्षेत्र तथा दूसरा असंगतियों का क्षेत्र। मानक क्षेत्र

दो सर्वेक्षण के लिये निर्धारित किया जा सकता है क्योंकि समदाबी पृष्ठों के मध्य मानक भूस्थितिज दूरी तो दूरी ही निरूपित करती है यदि समुद्रीजल की लवणता 35‰ पर स्थिर रहती है तथा ताप 0° सेंग्रे. पर स्थिर रहता है। मानक भूस्थितिज दूरी बढ़ते हुये दाब के साथ घटती है, क्योंकि आपेक्षिक आयतन दाब के साथ घटता है, (घनत्व बढ़ता है), जैसा कि बेर्कनीस, Bjerknes (1910), की सारणी 7H से विदित होता है, जिसके अनुसार समदाबी पृष्ठ 0 और 100 डेसिबार के बीच मानक भूस्थितिज दूरी 97.242 गतिकमीटर होती है जबकि 5000 और 5100 डेसिबार के पृष्ठों के बीच तदनुरूपी दूरी 95.153 गतिक मीटर होती है।

इसके विपरीत किन्हीं दो मानक समदाबी पृष्ठों के बीच की मानक भूस्थितिज दूरी अक्षांश से स्वतन्त्र होती है परन्तु g बदलता रहता है इसलिये समदाबी पृष्ठों के बीच ज्यामितीय दूरी अक्षांश के साथ बदलती रहती है।

क्योंकि मानक क्षेत्र में सभी समदाबी पृष्ठ परस्पर समांतर होते हैं, इसलिये इस मानक क्षेत्र में अनुप्रस्थ बल के सापेक्ष क्षेत्र, का अभाव होता है। सापेक्ष बल क्षेत्र का, जो संहति के वितरण से संबंधित है, भूस्थितिज असंगतियों के क्षेत्र द्वारा सम्पूर्ण रूप से वर्णन किया गया है। अतः भूस्थितिज असंगतियों के द्वारा एक समदाबी पृष्ठ की स्थलाकृति दूसरे के सापेक्ष बताने वाला चार्ट, एक समदाबी पृष्ठ की वास्तविक भूस्थितिज स्थलाकृति दूसरे के सापेक्ष बताने वाले चार्ट के बराबर होता है। सापेक्ष दाबक्षेत्र का व्यवहारिक निर्धारण, इसीलिये, भूस्थितिज असंगतियों के निरूपण और संगणना तक समुचित हो जाता है, परन्तु निरपेक्ष दाब क्षेत्र केवल तभी मालूम किया जा सकता है यदि कोई एक समदाबी पृष्ठ की परम स्थलाकृति को स्वतन्त्र रूप से मालूम कर सके।

समीकरण (XII. 7) का मान निकालने के लिये असंगति, δ को निरपेक्ष दाब के फंक्शन की तरह जानना आवश्यक है। ताप और लवणता के प्रेक्षण से असंगति समाहित होती है परन्तु महासागरीय प्रेक्षण वास्तविक समुद्र पृष्ठ के नीचे ज्ञात ज्यामितीय गहराइयों पर ताप और लवणता की जानकारी देते हैं और ज्ञात दाब पर यह जानकारी नहीं देते हैं। एक कृत्रिम प्रतिस्थापन द्वारा इस कठिनाई को साध्यवश निष्प्रभावित की जा सकती है क्योंकि किसी दी गयी गहराई पर डेसिबार में अभिव्यक्त निरपेक्ष दाब का संख्यात्मक मान मीटर में अभिव्यक्त गहराई के संख्यात्मक मान के लगभग बराबर होता है जैसा कि निम्नलिखित तदनुरूपी मानों से स्पष्ट है:

मानक समुद्रदाब (डेसिबार)—1000 2000 3000 4000 5000 6000
सन्निकट ज्यामितीय गहराई (मीटर)—990 1975 2956 3933 4906 5875.

इस प्रकार ज्यामितीय गहराई के संख्यात्मक मान उसी गहराई पर मानक दाब के

संख्यात्मक मान से केवल 1 या 2 प्रतिशत विचलित होते है। यह समानता आकस्मिक नहीं है परन्तु दाब की क्रियात्मक इकाई, डेसिबार के चयन से हुई है।

इससे यह पता चलता है कि 1000 डेसिबार के दाब पर ताप 990 मीटर की ज्यामितीय गहराई के ताप के लगभग बराबर होता है या 6000 डेसिबार, के दाव पर ताप 5875 मीटर गहराई पर ताप के लगभग बराबर होता है। महासागर में ऊर्ध्वाधर ताप प्रवणता, विशेपकर वृहत् गहराइयों पर, कम होती है और इसीलिये यदि कोई δ की संगणना करने के लिये 990 मीटर पर के ताप की अपेक्षा 1000 मीटर पर के ताप का उपयोग करता है तो विशेप त्रुटि नहीं होती है। पड़ोसी स्टेशनों के लिये असगंतियों में **अंतर** इस प्रक्रिया से और भी कम प्रभावित होगा क्योंकि एक सीमित क्षेत्र में ऊर्ध्वाधर ताप प्रवणताऐं समरूप होंगी। दोनों स्टेशनों पर प्रेरित त्रुटि लग-भग समान होगी और अन्तर परम उपेक्षणीय मात्रा की त्रुटि होगी। इसलिये **मीटर में ज्यमितीय गहराई का निरूपण करने वाले अंकों को डेसिवार में निरपेक्ष दाब निरूपण करने वाले अंक** व्यवहार मे कोई मान सकता है। ताप लवणता के प्रत्यक्ष रीति से प्रेक्षित मान या अन्तर्वेशित मान जिस गहराई पर उपलब्ध होते है, यदि मीटर में उस गहराई की व्याख्या डेसिबार में **दाब** को निरूपित करते हुए की जाती है तो किसी नियत दाब पर परिशिष्ट में दी गई सारणियों द्वारा आपेक्षिक आयतन की असंगति की संगणना की जा सकती है। दो दाब के बीच आपेक्षिक आयतन की औसत असंगति को डेसिबार में दाब मे अन्तर (जो मीटर में गहराई में अन्तर के बराबर माना गया है) से गुणा करने पर विचाराधीन समदाबी जल विस्तार की गतिकमीटर में अभिव्यक्त भूस्थितिज असंगति प्राप्त होती है। इन भूस्थितिज असंगतियों के योग से किसी दिये गये दो दाबों के बीच की तदनुरूपी असंगति को कोई निकाल सकता है। सम्पूर्ण संगणना का एक उदाहरण सारणी 61 में दिया हुआ है।

दाब-क्षेत्र तथा संहति-क्षेत्र के बीच कुछ साधारण सम्बन्ध समादिश पृष्ठों (12.8) की समीकरणों तथा द्रवस्थैतिक समीकरण द्वारा व्युत्पन्न किये जा सकते है। ऊर्ध्वाधर रूपरेखा मे समदाब रेखाऐं ओर समघनत्व रेखाऐं निम्नलिखित समीकरणों से परिभाषित होती है;

$$\frac{\partial p}{\partial x}\, dx+\frac{\partial p}{\partial z}\, dz=0, \quad \frac{\partial \rho}{\partial x}\, dx+\frac{\partial \rho}{\partial z}\, dz=0$$

इसलिये समदाब रेखाओं तथा समघनत्व रेखाओं का झुकाव

$$i_p = -\frac{\partial p/\partial x}{\partial p/\partial z}, \qquad i_\rho = \frac{\partial \rho/\partial x}{\partial \rho/\partial z}$$

होता है।

सारणी 61

गतिक गहराई की असंगति की संगणना का उदाहरण

(स्टेशन पू० प० स्क्रीप्स *I*—8 अक्षांश 32°57′ उ, देशान्तर 122°07 प. फरवरी 17, 1938)

मीटर या डेसिबार	ताप 0°c	लवणता (°/₀₀)	σ_t	$10^5\Delta_{s,\theta}$	$10^5\delta_{s,p}$	$10^5\delta_{\theta,p}$	$10^5\,\delta$	ΔD	ΔD (गतिक मीटर)
0	14.22	33.25	24.81	315.0	—	—	315	—	—
10	13.72	.24	.91	305.5	—	0.3	306	.0310	.0310
25	.71	.24	.91	305.5	—	0.7	306	.0459	.0769
50	.35	.30	25.03	294.2	−0.1	1.3	296	.0752	.1521
75	9.96	.57	.86	215.2	−0.2	1.6	217	.0641	.2162
100	.38	.84	26.17	185.7	−0.3	2.0	187	.0505	.2667
150	8.82	.98	.37	166.5	−0.3	2.9	169	.0890	.3557
200	.48	34.09	.51	153.5	−0.3	3.7	157	.0815	.4372
250	.30	.16	.59	145.9	−0.4	4.6	150	.0768	.5140
300	7.87	.20	.69	136.4	−0.5	5.2	141	.0728	.5868
400	.07	.20	.80	125.9	−0.6	6.4	132	.1365	.7233
500	6.14	.26	.97	109.8	−0.7	7.2	116	.1240	.8473
600	5.51	.35	27.12	95.6	−0.8	7.9	103	.1095	.9568
800	4.65	.42	.28	80.4	−1.0	8.9	88	.1910	1.1478
1000	3.99	.44	.36	72.9	−1.2	9.8	82	.1700	1.3178
1200	.52	.52	.48	61.5	−1.4	10.3	70	.1520	1.470
1400	.07	.54	.54	55.8	−1.0	10.8	66	.1360	1.606
1600	2.69	.56	.59	51.1	−1.0	10.9	61	.1270	1.733
1800	.37	.59	.64	46.3	−1.0	10.8	56	.1170	1.850
2000	.13	.64	.69	41.6	−1.1	10.6	51	.1070	1.957
3000	1.62	.68	.76	35.0	−1.4	11.7	45	.4800	2.437
4000	.50	.70	.81	30.2	−1.7	14.1	43	.4400	2.877

द्रव स्थैनिक समीकरण

$$g\rho = \frac{\partial p}{\partial z}$$

के द्वारा

$$g\rho i_p = -\partial p/\partial x \qquad \text{प्राप्त होता है}$$

पश्चादुक्त दो समीकरणों से परिणाम निकलता है कि

$$\frac{\partial}{\partial z}(\rho i_p) = -\frac{\partial \rho}{\partial x} = i_p \frac{\partial \rho}{\partial z},$$

$$(\rho i_p)_2 - (\rho i_p)_1 = \int_1^2 i_p \frac{\partial \rho}{\partial z}.$$

यदि घनत्व वितरण को एकल चादरों से निरुपित किया जाता है, तो दायीं ओर के समाकल का मान निकाला जा सकता है।

$$(\rho i_p)_2 - (\rho i_p)_1 = \bar{i}_p(\rho_2 - \rho_1), \qquad \text{(XII, 8)}$$

जिसमें $\bar{i}_\rho$ के अर्थ एकल चादरों के औसत झुकाव से है। समदाबी पृष्ठ p_1 पृष्ठ p_2 के ऊपर होता है क्योंकि लम्बरूप अक्ष अधोमुखी धनात्मक होता है। जब घनत्व का औसत मान प्रेरित किया जाता है तो निचले पृष्ठ के सापेक्ष ऊपरी समदाबी पृष्ठ का झुकाव i_{p1-p2} होता है

$$i_{p1-p2} = -\bar{i}_\rho \frac{\rho_2 - \rho_1}{\rho}$$

आपेक्षिक आयतन असंगति का उपयोग करते हुवे तथा आपेक्षिक आयतन को एकाई के बराबर कर सन्निकटतः निम्न सम्बन्ध प्राप्त होता है

$$i_{p1-p2} = -i_\delta(\delta_1 - \delta_2). \qquad \text{(XII, 9)}$$

चूंकि δ गहराई के साथ घटता है इसलिये $(\delta_1 - \delta_2)$ धनात्मक होता है और एक समदाबी पृष्ठ का दूसरे के सापेक्ष झुकाव δ पृष्ठों के झुकाव से अभिमुख चिन्ह का होता है (12.9)। इस नियम से समदाबी पृष्ठ के झुकाव का एक अनुभाग में तुरन्त अनुमान लगाया जा सकता है जिसमें संहति क्षेत्र δ वक्रों से निरुपित किया गया हो।

एक अनुभाग में स्टेशनों की श्रेणी से प्राप्त आँकड़ों पर आधारित समदाबी पृष्ठों की रूपरेखाऐं प्रत्यक्षरूप से δ वक्रों के झुकाव के समरूप होती हैं जैसा कि अनुभाग में दिखाया गया है तथा उन्हीं आंकड़ों पर आधारित है, परन्तु यह सुस्पष्ट नियम बहुधा कम या नहीं के बराबर अवधान प्राप्त करता है।

समदाबी पृष्ठो की आपेक्षिक भूस्थितिज स्थलाकृति : किसी निश्चित क्षेत्र में कई महासागरीय स्टेशनों से यदि लवणता तथा ताप के ऊर्ध्वाधर वितरण के युगपत् प्रेक्षण उपलब्ध होते तो अवलोकन के समय के आपेक्षिक दाब वितरण को स्वेच्छा से या प्रयोजन से चुने गये किसी एक निर्देश पृष्ठ के सापेक्ष मानक समदाबी पृष्ठों की भूस्थितिज स्थलाकृति बताने वाले चार्ट श्रेणी द्वारा निरुपित किया जासकता था। उपरोक्त निवरण से यह स्पष्ट है कि ये स्थलाकृतियाँ सम्पूर्णरूप से भूस्थितिज असंगतियों द्वारा ही निरुपित की जाती हैं।

युगपत् प्रेक्षण, व्यवहार में उपलब्ध नहीं होते हैं परन्तु कई दृष्टान्तों में यह मान लेना अनुमेय होता है कि दाब वितरण के समयगत परिवर्तन इतने कम होते हैं कि किसी निश्चित अवधि में लिये गये प्रेक्षणों को युगपत् सोचा जा सकता है, क्षेत्र जितना छोटा हो, प्रेक्षण लेने का समयान्तर भी उतना ही अल्प होना चाहिये। चित्र 110 (12.10) तथा 204 (12.11) भूस्थितिज स्थलाकृतियों के उदाहरण निरुपित करते हैं। धाराओं से सम्बन्धित निष्कर्ष, जो इस प्रकार के चार्ट पर आधारित हो सकते हैं, आगे विवेचित किये जावेंगे।

भूस्थितिज स्थलरूप रेखाओं के चार्ट दो भिन्न विधियों से तैयार किये जासकते हैं। सामान्य विधि से, वरित निर्देश पृष्ठ के सापेक्ष किसी दिये गये पृष्ठ की असंगतियाँ चार्ट पर चित्रित की जाती हैं, और अदिश राशियों को प्रस्तुत करने के सामान्य नियमों के अनुसार आइसोलाइन खींची जाती है। इस प्रकार से समदाबी पृष्ठ श्रेणी की आपेक्षिक स्थल रूप रेखाएें तैयार की जा सकती हैं परन्तु इस विधि की एक हानि है कि प्रत्येक स्थलरूप रेखा को पृथक रूप से तैयार करना पड़ता है।

दूसरी विधि द्वारा आपेक्षिक स्थलाकृतियों की चार्ट श्रेणी क्रम से तैयार की जाती है जिसमें इस तथ्य का लाभ उठाया जाता है कि समदाबी चादर (जल-विस्तार) के भूस्थितिज मोटाई की असंगति, समदाबी चादर में औसत आपेक्षिक आयतन असंगति, $\bar{\delta}$, के अनुपाती होती है। इस प्रकार, यदि समदाबी चादर की मोटाई 100 डेसिबार हो तो, $\triangle D_{p_1-100}^{p_1} = 100\bar{\delta}$। इसके फलस्वरूप $100\bar{\delta}$ के वक्र, पृष्ठ $p_2=p_1$ के सापेक्ष में पृष्ठ $p=p_1-100$ की स्थलाकृति पृष्ठ निरुपित करते हैं और कोई निम्न प्रकार से विवेचना कर सकता हैं: पृष्ठ p_s-200 के स्थलाकृति की रचना, जिसमें p_s वरित निर्देश पृष्ठ है, p_s से p_s-100 की मोटाई की चादर में आपेक्षिक आयतन असंगति के सममान वाले वक्रों द्वारा की जाती है। पृष्ठ p_s-100 के सापेक्ष पृष्ठ p_s-200 की स्थलाकृति की रचना p_s-100 से

p_s—200 तक की मोटाई की चादर में आपेक्षिक आयतन असंगतियों द्वारा की जाती है और इन दोनों चार्टों के लेखाचित्रीय योग से (वी. जेर्कनीस और सहयोगी, V. Bjerknes and Collaborators, 1911) पृष्ठ p_s के सापेक्ष पृष्ठ p_s—200 की स्थलाकृति निकाली जाती है। यह प्रक्रम दोहराया जा सकता है और चार्ट तथा आपेक्षिक आयतन असंगतियों की अनुक्रमिक रचना द्वारा और लेखाचित्रीय योग द्वारा संहति और दाब के सम्पूर्ण क्षेत्र निरूपित किये जा सकते हैं।

इस विधि का ऋतुविज्ञान के क्षेत्र में विस्तृतता से उपयोग होता है परन्तु महासागरीय विज्ञान में सामान्यरूप से काम में नहीं ली जाती है चूंकि काफी भाग में विभिन्न वक्रों के निकाय लगभग परस्पर इतने समान्तर होते हैं कि लेखाचित्रीय योग कष्टप्रद हो जाता है। तो भी, यह विधि कदाचित् उपयोगी होती है और संहति के वितरण तथा दाब के वितरण के सम्बन्ध को स्पष्टरूप से बताने का इससे लाभ होता है। ये इस ज्यामितीय लक्षण को विशेषरूप से प्रस्तुत करते हैं कि समदाबी पृष्ठों के आइसोहिप्सिस अपने स्वरूप को, जब एक समदाबी पृष्ठ से दूसरे समदाबी पृष्ठ पर गुजरना होता है, केवलमात्र बनाये रखते हैं, यदि असंगति वक्र का स्वरूप आइसोहिप्सेस के समान होता है। क्षेत्र का यह लक्षण निकाय के गति विज्ञान में बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है।

दाब के पूर्ण क्षेत्र का लक्षण :—उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि दाब के सापेक्ष क्षेत्र के **अभाव** में समदाबी और समापेक्षिक आयतन के पृष्ठों को संपाती होना चाहिए। अतएव यदि किसी कारणवश एक समदाबी पृष्ठ, जैसे मुक्त पृष्ठ, समतल पृष्ठ से विचलित होता है तब सभी समदाबी तथा समापेक्षिक आयतन के पृष्ठों को समरूप विधि से विचलित होना चाहिये। मानलो कि एक समदाबी पृष्ठ विक्षुब्ध अवस्था में अविक्षुब्ध अवस्थाओं की स्थिति से Δh से.मी. की दूरी पर नीचे स्थित है। तब उसी ऊर्ध्वाधर के साथ-साथ सभी अन्य समदाबी पृष्ठ भी अपनी अविक्षुब्ध स्थिति से Δh की दूरी तक विस्थापित होते हैं। दूरी Δh अधोमुखी धनात्मक होती है क्योंकि धनात्मक z–अक्ष अधोमुखी होता है। किसी दी हुई गहराई पर अविक्षुब्ध अवस्थाओं के दाब को p_0 मानलो। तब विक्षुब्ध अवस्थाओं पर दाब $p_t = p_0 - \Delta p$ होता है, जिसमें $\Delta p = g\rho\Delta h$ और विस्थापन Δh को, विचाराधीन जल स्तम्भ में संहति की अधिकता या कमी के कारण माना जा सकता है।

यदि सापेक्ष दाब-क्षेत्र मौजूद होता है तो उपरोक्त विचार समानरूप से मान्य होते हैं। दाब का निरपेक्ष वितरण निम्न समीकरण द्वारा सदैव ही सम्पूर्ण-रूप से मालूम किया जा सकता है :

$$p_t = p_o - g\rho \triangle h$$

और इसीलिये पूर्णरूप से भी ज्ञात होगा यदि विचाराधीन जल स्तम्भ में संहति की अधिकता या कमी के कारण समदाबी पृष्ठों के ऊर्ध्वाधर विस्थापन, $\triangle h$, को निर्धारित किया जा सके। जब यह ऊर्ध्वाधर विस्थापन एक इलाके से दूसरे इलाके तक बदलता है तो एक अतिरिक्त क्षैतिज दाब बल मौजूद होता है तथा ऐसी स्थिति में निरपेक्ष समदाबी पृष्ठ सापेक्ष क्षेत्र के समदाबी पृष्ठों से ढलवां होते हैं। अतिरिक्त क्षेत्र को **ढलान** क्षेत्र कहा जा सकता है, और इस विश्लेषण से यह परिणाम निकलता है कि पूर्णदाब क्षेत्र आन्तरिक क्षेत्र तथा ढलान क्षेत्र से बना हुआ है। धाराओं के लक्षण की विवेचना करने में वह भिन्नता उपयोगी होती है।

σ_t पृष्ठों की सार्थकता

वायुमण्डलीय दाब पर समुद्र जल का घनत्व जो $\sigma_t = (\rho_{S,\theta,O} - 1) \times 10^3$, से अभिव्यक्त किया जाता है, बहुधा संगणित होता है तथा क्षैतिज चार्ट या ऊर्ध्वाधर खंडों में निरूपित किया जाता है। अतएव σ_t पृष्ठों की सार्थकता का अध्ययन करना आवश्यक है और ऐसा करने के लिये निम्नलिखित प्रश्न पर विचार किया जायगा : महासागर में विभिन्न स्थानों के बीच संहति के वितरण में बिना परिवर्तन किये क्या जल-संहतियों का विनिमय, हो सकता है ?

यही प्रश्न सर्वप्रथम वायुमण्डल के लिये भी सोचा जायगा जहां यह माना जायगा कि वायुमण्डल आदर्श, शुष्क गैस है। ऐसे वायुमण्डल में **विभव** ताप का अर्थ उस ताप से है जो वायु का होता यदि इसे (वायु) रुद्धोष्म प्रक्रिया से मानक दाब पर लाया गया होता। विभव ताप, θ, इस प्रकार से होता है

$$\theta = \theta' \left(\frac{p_0}{p} \right)^{\frac{x-1}{x}}$$

जहां दाब p पर ताप θ' है, p_0 मानक दाब है और $x = 1.4053$, आदर्श गैस की दो विशिष्ठ उष्मा का अनुपात (c_p/c_v) है। शुष्क वायुमण्डल में जहां ताप विन्यास में बदलता है और जहां ऊर्ध्वाधर प्रवणता रुद्धोष्म साम्यावस्था पर प्रवणता से भिन्न होती है वहाँ समान विभवताप के पृष्ठों की परिभाषा देना सदैव सम्भव होता है। इन पृष्ठों का एक लक्षण यह होता है कि ऐसे पृष्ठ के स्पर्शी ताप तथा दाब के वितरण में परिवर्तन किये बिना, वायु संहतियों का अदल-बदल हो सकता है।

दो वायु संहतियों को लीजिये, एक θ'_1 ताप तथा p_1 दाब का हो तथा दूसरा θ'_2 ताप और p_2 दाब का हो। यदि दोनों का एक ही विभव ताप हो तो

$$\theta'_1\left(\frac{p_0}{p_1}\right)^{\frac{x-1}{x}} = \theta'_2\left(\frac{p_0}{p_1}\right)^{\frac{x-1}{x}}$$

या

$$\theta'_1 = \theta'_2\left(\frac{p_1}{p_2}\right)^{\frac{x-1}{x}}, \quad \theta'_2 = \theta'_1\left(\frac{p_2}{p_1}\right)^{\frac{x-1}{x}}$$

पश्चादुक्त समीकरण बताता है कि यदि θ'_2, p_2 से प्रारम्भ में लक्षणित वायु संहति रुद्धोष्म प्रक्रिया से दाब p_1 पर कर दिया जाय तो इसका ताप θ'_1 हो जाता है और समरूपतः वायु संहति जो प्रारम्भ में θ'_1, p_1 से लक्षणित थी, यदि p_2 दाब पर लाई जाय तो उसका ताप θ'_2 हो जाता है। इस प्रकार, विनिमय से संहति के वितरण में कोई परिवर्तन नहीं होता है और ऐसे विनिमय के निकाय की या तो स्थितिज ऊर्जा अथवा एंट्रोपी पर कोई असर नहीं होता है। आदर्श गैस में विभव ताप के पृष्ठ इसीलिये समएंट्रापी पृष्ठ होते हैं।

महासागर के सम्बन्ध में प्रश्न यह सोचना है कि क्या वहाँ पर समरूप लक्षण के पृष्ठ पायें जा सकते है। माना कि भूस्थितिज गहराई D_1 पर एक जल संहति का अभिलक्षण लवणता S_1 तथा ताप θ'_1 से होता है तथा भूस्थितिज गहराई D_2 पर दूसरी जल संहति का लवणता S_2 और ताप θ'_2 से होता है। इन छोटी जल संहतियों का **स्वस्थाने** घनत्व $\sigma_{S_1,\theta'_1,D_1}$ और $\sigma_{S_2,\theta'_2,D_2}$ से अभिव्यक्त किया जा सकता है।

अब माना कि भूस्थितिज गहराई D_1 पर स्थित जल संहति रुद्धोष्मता पूर्वक भूस्थितिज गहराई D_2 तक पहुंचाई जाती है। इस प्रक्रम में जल संहति का ताप रुद्धोष्मता पूर्वक θ'_1 से θ_1 तक बदल जायगा तथा **स्वस्थाने** घनत्व $\sigma_{S_1,\theta_1,D_1}$ होगा। अन्य जल संहति रुद्धोष्मतापूर्वक D_2 से D_1 तक गतिमान करना उसके ताप को θ'_2 से θ_2 तक बदल देगा। यदि दोनों जल संहतियों का विनिमय होता है और यदि संहति वितरण को अपरिवर्तित रहना है तो निम्नलिखित दोनों ही प्रतिबंध पूरे होने चाहियें :

$$\sigma_{S_1,\theta_1,D_2} = \sigma_{S_2,\theta'_2,D_2}, \qquad \sigma_{S_1,\theta'_1,D_1} = \sigma_{S_2,\theta_2,D_1} \qquad \text{(XII, 10)}$$

तो भी ये प्रतिबन्ध केवल तुच्छ हालत में ही परिपूर्ण हो सकते हैं यानी जब $S_1 = S_2$, $\nu_1 = \nu_2$ और $D_1 = D_2$ होते हैं। इसका उत्तम चित्रण एक संख्यात्मक उदाहरण द्वारा होता है। निम्नलिखित संख्यात्मक लान को लीजिये

$S_1 = 36.01‰$ $\quad \theta'_1 = 13.73°$, $\quad D_1 = 200$ डाइन मीटर

$S_2 = 34.60‰$ $\quad \theta'_2 = 8.10°$, $\quad D_2 = 700$ डाइन मीटर

ये मान अटलांटिक महासागर में पाई जाने वाली अवस्थाओं का निरूपण करते हैं, परन्तु केवल लगभग 50° अक्षांश की दूरी पर।

200 और 700 डाइन मीटर भूस्थितिज गहराइयों के बीच ताप में रुद्धोष्म परिवर्तन 0.09° होता है और अतएव $\theta_1 = 13.82$, $\theta_2 = 8.01$। जेर्कनीस तथा उसके सहयोगियों के हाइड्रोग्राफिक सारणियों द्वारा पता चलता है कि

$\sigma_{S_1,\theta_1,D_2} = 30.24$, $\sigma_{S_2,\theta_2,D_2} = 30.24$ अन्तर 0.00

$\sigma_{S_1,\theta_1,D_1} = 27.97$, $\sigma_{S_2,\theta_2,D_1} = 27.92$ अन्तर 0.05

इस प्रकार से दोनों ही प्रतिबन्ध (XII 10) परिपूर्ण नहीं हुवे और दोनों जल संहतियों में विनियय संहति के वितरण में बिना परिवर्तन किये **नहीं हो सकता**।

यह भी देखा जायगा कि समान गहराई तथा **स्वस्थाने** समान घनत्व परन्तु भिन्न ताप और लवणता के दो जल संहतियों का मिश्रण उच्चतर घनत्व का जल बनाता है। यदि $D = 700$ डाइन मीटर पर क्रमशः $S_1 = 36.01‰$, $\theta'_1 = 13.82°$, और $S_2 = 34.60‰$, $\theta'_2 = 8.10°$, वाले जल के बराबर भाग मिश्रित किये जायं तो परिणामित मिश्रण की लवणता $S = 35.305‰$, और ताप $\theta' = 10.96°$ होगा। दोनों जल संहतियों का **स्वस्थाने** घनत्व ($\sigma_{S\theta', D} = 30.24$) समरूप था परन्तु परिणामिक मिश्रण का उच्चतर घनत्व 30.29 है। समरूपतः यदि $S_1 = 36.01‰$, $\theta'_1 = 13.73°$, $D_1 = 200$ डाइन मीटर तथा $S_2 = 34.60‰$, $\theta'_2 = 8.01°$, $D_2 = 200$ डाइन मीटर की जल संहतियों के बराबर भाग मिश्रित किये जाय तो यद्यपि दोनों जल संहतियों का घनत्व क्रमशः 27.97 और 27.92 है, फिर भी मिश्रण का स्वस्थाने घनत्व 27.98 होगा।

इस विवरण से निष्कर्ष निकलता है कि महासागर में कोई पृष्ठ विद्यमान नहीं होते हैं जिनसे स्पर्शी जल संहतियों का अदल-बदल या मिलाना हो सके जो संहति के वितरण में परिवर्तन रहित हो और इस प्रकार से निकाय की स्थितिज ऊर्जा और एंट्रोपी में परिवर्तन करे (सिवाय एक तुच्छ हालत में जब समक्षारी तथा समतापी पृष्ठ समतल पृष्ठों के संपतन में होते हैं)। तो भी, ऐसे लक्षण के पृष्ठों का कुलक विद्यमान होना चाहिये कि यदि इन पृष्ठों के साथ साथ अदल-बदल और मिलाना होता है तो स्थितिज ऊर्जा तथा एंट्रोपी में परिवर्तन अल्पतम हो। इन पृष्ठों के आकार का निर्धारण असम्भव है, परन्तु σ_t पृष्ठ इन प्रतिबंधों की सन्निकटतः तुष्टि करते हैं। पूर्वगत उदाहरण में, जो बहुत ही चरम अवस्थाओं का निरुपण करता है, दोनों जल-संहतियां एक ही σ_t पृष्ठ पर होती हैं ($\sigma_{t_1} = 27.05$, $\sigma_{t_2} = 26.97$)।

इस प्रकार, महासागर में σ_t पृष्ठ शुष्क वायुमण्डल में समएंट्रापी पृष्ठ के लगभग तुल्य माने जा सकते हैं और अतएव σ_t पृष्ठ समएंट्रापी-कल्प पृष्ठ कहे जा सकते हैं। नाम केवल सूचित करता है कि σ_t पृष्ठों के साथ-साथ जल संहतियों के अदल-बदल या मिलाने से जलराशी स्थितिज ऊर्जा और एंट्रापी में अल्प परिवर्तन होते हैं।

स्थिरता

σ_t का ऊर्ध्वाधर दिशा में परिवर्तन निकाय की ऊर्ध्वाधर **स्थिरता** के लगभग समानुपाती होता है। मानो कि जल संहति भूस्थितिज गहराई D_2 से भूस्थितिज गहराई D_1 तक ऊर्ध्वाधरतः ऊपर की ओर विस्थापित होती है। तब इस जल संहति के घनत्व और आसपास के जल (12.12) के घनत्व में अन्तर

$$\triangle\rho = 10^{-3}\,\triangle\sigma_t + \frac{\partial\varepsilon_{S,D}}{\partial S}\triangle S + \frac{\partial\varepsilon_{\theta',D}}{\partial\theta'}\triangle\theta' - \frac{\partial\rho}{\partial\theta'}\triangle\theta, \quad \text{(XII, 11)}$$

होगा, जिसमें $\triangle\sigma_t$, $\triangle S$, और $\triangle\theta'$ भूस्थितिज गहराइयां D_1 तथा D_2 के बीच σt, S, θ' में परिवर्तन का निरूपण करते हैं और जहाँ $\triangle\theta$ ताप में रुद्धोष्म परिवर्तन है। नये घिराव में जल संहित प्रत्यक्ष रूप से स्थिर रहेगी यदि $\triangle\rho=0$ है; यदि $\triangle\rho$ घनात्मक है तो यह अपने प्रारम्भिक स्थान पर वापस बैठ जायगा क्योंकि तब यह आस पास के जल से भारी हो जाता है; और ऊपर उठेगा यदि $\triangle\rho$ ऋणात्मक है क्योंकि तब आस पास के जल से यह हल्का हो जाता है। संहति का त्वरण $\triangle\rho/\rho$ के अनुपाती होता है। यदि हम भूस्थितिज की अपेक्षा ज्यामितीय गहराइयों का उपयोग करे तो तर्क अपरिवर्तित रहता है। यदि लघु ऊर्ध्वाधर दूरी $\triangle z$ के साथ-साथ विस्थापन जनित त्वरण $\triangle\rho/\rho$ के अनुपाती होता है, तब इकाई लम्बाई के ऊर्ध्वाधर दूरी के साथ साथ विस्थापन जनित त्वरण को $\triangle\rho/\rho\triangle z$ के समानुपाती होना चाहिये। निम्नलिखित पद को (हेसलबर्ग Hesselberg, 1918) ने "स्थिरता" के नाम से कहा है

$$E = \lim_{\triangle z\to 0} \frac{1}{\rho}\frac{\triangle\rho}{\triangle z} = \frac{1}{\rho}\frac{\delta\rho}{dz} \qquad \text{(XII, 12)}$$

घटक $1/\rho$, जो इकाई से थोड़ा ही भिन्न है, को छोड़ते हुवे, समीकरण (XII, 11) द्वारा प्राप्त होता है कि

$$E = 10^{-3}\frac{d\sigma_t}{dz} + \frac{\partial\varepsilon_{S,D}}{\partial S}\frac{dS}{dz} + \frac{\partial\varepsilon_{\theta',D}}{\partial\theta'}\frac{dv}{dz} - \frac{\partial\rho}{\partial\theta'}\frac{d\theta}{dz} \qquad \text{(XII, 13)}$$

जहाँ $\frac{d\theta}{dz}$ प्रति इकाई लम्बाई के ताप का रुद्धोष्म परिवर्तन है। यह पद छोटा होता है, और चूंकि ε के पद तथा लवणता और ताप के ऊर्ध्वाधर प्रवणता भी छोटे होते हैं अतएव, सन्निकटत:,

$$E' = 10^{-3} \frac{d\sigma_t}{dz} \quad \text{(XII, 14)}$$

सारणी 62.

माइकेल सार के स्टेशन सं० 44 पर स्थायित्व

(अक्षांश 28°37′ उत्तर देशान्तर 19°08′ पश्चिम, मई, 28, 1910)

गहराई मीटर में (m)	ताप (°C)	लवणता (‰)	σ_t	$10^8 E$	$10^5(d\sigma_t/dz)$
0	19.2	36.87	26.42	-440	-400
10	.31	.85	.38	-150	-200
25	.34	.83	.35	-13	-40
50	.24	.79	.34	610	600
75	18.65	.79	.49	390	375
100	.24	.78	.58	34	60
150	17.50	.56	.61	270	240
200	16.45	.40	.73	160	150
300	14.52	.02	.88	120	110
400	13.08	35.77	.99	150	140
500	11.85	.64	27.13	130	120
600	10.80	.54	.25	100	90
800	9.09	.39	.43	89	75
1000	8.01	.37	.58	84	80
1200	7.27	.42	.74	48	30
1400	6.40	.35	.80	39	12
2000	4.52	.15	.87	11.2	-1
3000	2.84	34.92	.86	7.6	1
4000	2.43	.90	.87	1.3	0
5000	2.49	.90	.87		

(हेसलबर्ग और स्वेरड्रूप, Hesselberg and Sverdrup 1914–15) ने सारणियाँ प्रकाशित की हैं जिनके द्वारा समीकरण (XII, 13) के पद निकाले गये हैं, अंक्षाश 28°37′ उ. तथा देशान्तर 19°08′ प. में 1910 की मई में अटलांटिक महासागर में दिये गये प्रेक्षणों के आधार पर ये लोग उदाहरण देते हैं (हेलेंड-हेनसन, Helland Hansen, 1930)। यह उदाहरण सारणी 62 में उद्धृत है जिसमें स्थिरता के यथार्थ मान $10^8 E$ शीर्षक के अन्तर्गत दिये गये हैं और समीकरण (XII, 14) से प्राप्त सन्निकट मान शीर्षक $10^8 d\sigma_t/dz$ के अन्तर्गत दिये गये हैं।

ये दोनो मान 1400 मीटर गहराई तक परस्पर काफी बराबर हैं। 50 मीटर से ऊपर घनात्मक मान अस्थिरता सूचित करते हैं।

हेसलबर्ग और स्वेरड्रूप ने भी समीकरण (XII, 13) के विभिन्न पदों के परिमाण-क्रम को संगणित किया है और यह बताया कि 100 मीटर की गहराई तक $d\sigma_t/dz$ स्थिरता की परिशुद्ध व्यञ्जक है परन्तु 100 और 2000 मीटर के मध्य ε वाले पदों को लेना पड़ सकता है तथा 2000 मीटर से और नीचे की गहराई पर सभी पद महत्वपूर्ण हैं। निम्नलिखित क्रियात्मक नियम दिये जा सकते हैं :

1. 100 मीटर की गहराई से ऊपर स्थिरता $10^{-3}\, d\sigma_t/dz$ से परिशुद्धता से अभिव्यक्त की जाती है।

2. 100 मीटर से नीचे यथार्थ समीकरण (XII, 13) के अन्य पदों के परिमाण की जाँच की जानी चाहिये यदि $10^{-3}\, d\sigma_t/dz$ का संख्यात्मक मान 40×10^{-8} से कम है।

स्थिरता को ऐसे ढंग से भी अभिव्यक्त किया जा सकता है जो गहरे समुद्र की स्थिरता पर विचार करते समय उपयोगी होता है :

$$E = \frac{\partial \rho}{\partial S}\frac{dS}{dz} + \frac{\partial \rho}{\partial v}\left(\frac{d\theta'}{dz} - \frac{d\theta}{dz}\right). \qquad \text{(XII, 15)}$$

यदि लवणता गहराई के साथ नहीं बदलती है $\left(\frac{dS}{dz} = 0\right)$, जैसा कि गहरे समुद्रों में बहुधा होता है तो :

$$E = \frac{\partial \rho}{\partial \theta'}\left(\frac{d\theta'}{dz} - \frac{d\theta}{dz}\right). \qquad \text{(XII, 16)}$$

यदि ताप गहराई के साथ घटता है तो इस समीकरण में राशियाँ, $\frac{\partial \rho}{\partial \theta'}$ ऋणात्मक $\frac{d\theta'}{dz}$ ऋणात्मक, तथा $\frac{d\theta}{dz}$ धनात्मक होती है परन्तु घनात्मक होती हैं यदि ताप गहराई के साथ बढ़ता है। स्तरीकरण सदैव ही स्थायी रहेगा यदि ताप गहराई के साथ घटता है या रूद्धोष्म की आपेक्षा अधिक मन्दता से बढ़ता है परन्तु उदासींन साम्यावस्था होती है यदि $\frac{d\theta'}{dz} = \frac{d\theta}{dz}$, और यदि $\frac{d\theta'}{dz} > \frac{d\theta}{dz}$ तो अस्थिरता पाई जाती है।

शुद्धगति विज्ञान

सदिश क्षेत्र

एक सदिश क्षेत्र को सम्पूर्ण रूप से तीन चार्ट-सेट द्वारा निरूपित किया जा सकता है, जिनमें से एक सदिश के परिमाण का अदिश क्षेत्र बताता है तथा दो ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज समतल में सदिश की दिशा बताते हैं। अदिश क्षेत्रों के तीन चार्ट-सेट द्वारा भी इसका पूर्णरूप से वर्णन किया जा सकता है जो मुख्य निर्देशाक्षों के साथ-साथ सदिश के संघटकों को निरूपित करते हों (वी. जेर्कनीज तथा विभिन्न सहयोगी, V. Bjerknes and different collaborators, 1911)। समुद्र विज्ञान में केवल वे ही सदिश उपयोगी होते हैं जो क्षैतिज होते हैं जैसे समुद्री धाराओं का वेग—यानी द्विविमितयी सदिश। ये सम्पूर्ण रूप से दो चार्ट-सेट द्वारा या दो वक्र-सेट सदिश रेखाओं के एक चार्ट द्वारा, जो तमाम विन्दुओं पर सदिश की दिशा बताती है, और समादिश वक्रों द्वारा, जो सदिश का परिमाण बताते हैं, निरूपित किये जा सकते हैं। चित्र 95 स्वेच्छ द्विविमितीय सदिश क्षेत्र का कार्य प्रदर्शी उदाहरण बताता है जहाँ यह क्षेत्र सदिशों की सूचित दिशा व परिमाण द्वारा तथा सदिश रेखाओं और परिमाण के समादिश वक्रों द्वारा निरूपित किया गया है।
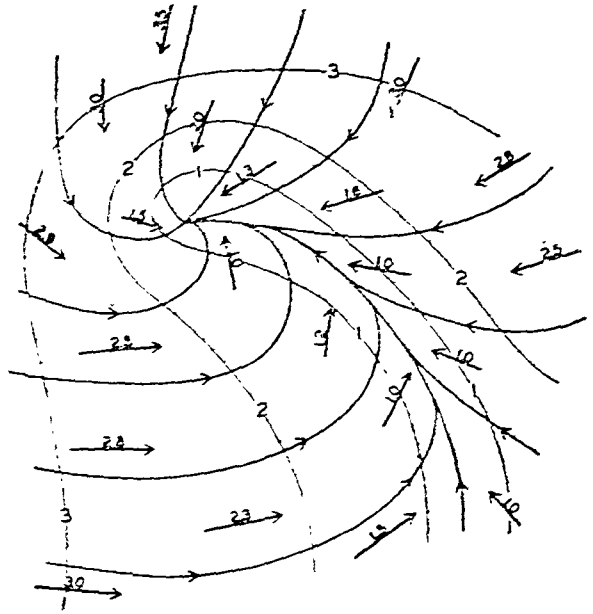
चित्र 95—सूचित दिशा व परिमाण के सदिश से और सदिश रेखाओं व समादिश वक्रों से द्विविमितीय सदिश क्षेत्र का निरूपण।

सदिश रेखाएँ विचित्र विन्दु या रेखाओं, जहाँ सदिश का परिमाण शून्य होता है, के सिवाय प्रतिच्छेद नहीं कर सकती। सदिश रेखाओं की शुरुआत या अन्त सदिश क्षेत्र में सिवाय विचित्र विन्दुओं पर के, नहीं हो सकती, और सदिश रेखाएं अविरत होती हैं।

द्विविमितीय सदिश क्षेत्र में सामान्यतम तथा सबसे महत्वपूर्ण विचित्रताएं चित्र 96 में बतायी गयी हैं। ये हैं (1) अपसरण के विन्दु (चित्र 96 A और C) या अभिसरण के विन्दु (चि. 96 *B* और *D*), जहाँ पर अनन्त सदिश रेखाएं

मिलती है; (2) उदासीन बिन्दु, जहां पर दो या अधिक सदिश रेखायें प्रतिच्छेदन करती हैं (चित्र 96 में *B* उदाहरण प्रथम श्रेणी का उदासीन बिन्दु बताता है जिसमें दो सदिश रेखायें प्रतिच्छेदन करती हैं—अर्थात् एक अतिपरवलयिक बिन्दु); और (3) अपसरण (चित्र 96 *G*) या अभिसरण (चित्र 96 *F*) की रेखायें, जिनसे अनन्त सदिश रेखायें अनंतस्पर्शत: अपसृत होती हैं या जिन पर अनन्त सदिश रेखायें अनंतस्पर्शत: अभिसृत होती हैं। गति-क्षेत्र में इन विचित्रताओं की सार्थकता की व्याख्या नीचे की जायगी।

सदिश क्षेत्रों के सभी लक्षणों का या सदिश क्रियाओं का, जो की जा सकती हैं, लिखना आवश्यक नहीं होता है परन्तु दो महत्वपूर्ण सदिश क्रियाओं का उल्लेख अवश्य करना चाहिये।
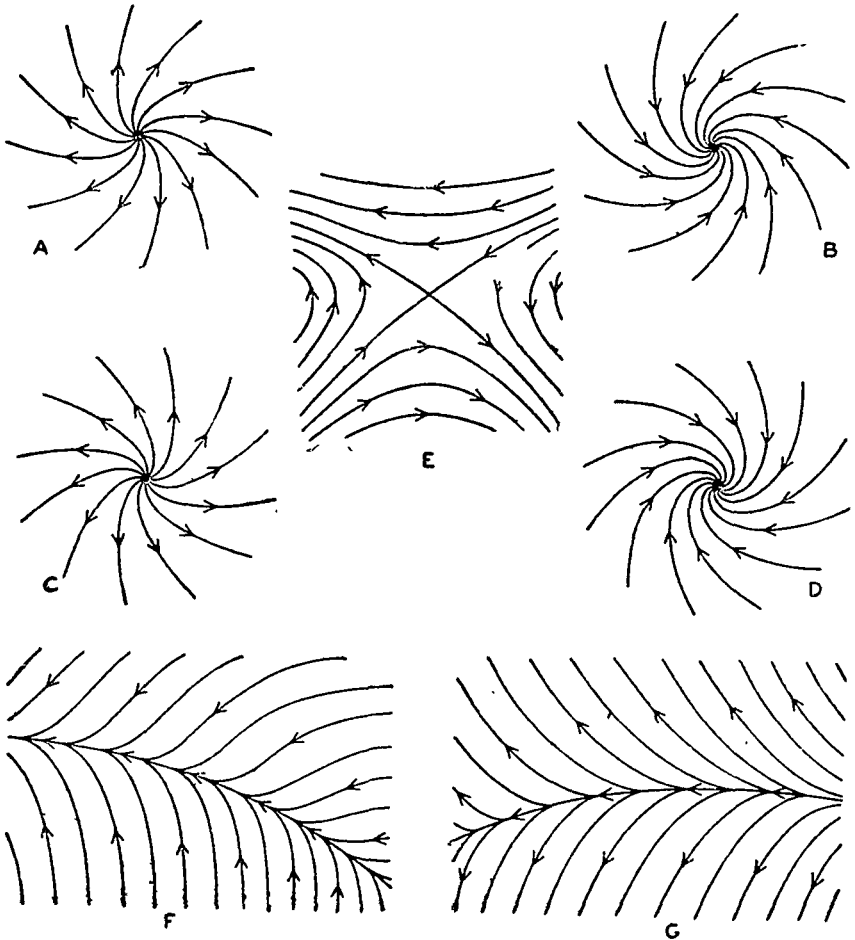
चित्र 96 द्विविमितीय सदिश क्षेत्र में विचित्रताऐं। *A* और *C* अपसरण के बिन्दु: *B* और *D* अभिसरण के बिन्दु; E, प्रथम श्रेणी का उदासीन बिन्दु (अतिपर बलयिक बिन्दु); *F*, अभिसरण की रेखा, और *G* अपसरण की रेखा।

मानलो कि सदिश A के संघटक A_x, A_y, और A_z. है। अदिश राशि

$$\text{div } A = \frac{\partial A_x}{\partial x} + \frac{\partial A_y}{\partial y} + \frac{\partial A_z}{\partial z}$$

सदिश की **अपसृति** कहलाती है।

सदिश जिसके निम्नलिखित संघटक होते हैं वह सदिश A का **कुंतल** या **भ्रमिलता** कहलाता है।

$$C_x = \frac{\partial A_z}{\partial y} - \frac{\partial A_y}{\partial z},$$

$$C_y = \frac{\partial A_x}{\partial z} - \frac{\partial A_z}{\partial x},$$

$$C_z = \frac{\partial A_y}{\partial x} - \frac{\partial A_z}{\partial y}$$

संवेग या वेग के क्षेत्रों की भ्रमिलता और अपसरण के निश्चित भौतिक अर्थ-निर्वचन होते हैं।

एक सदिश जिसका दिक् और काल में परिवर्तन होता है उसके दो निरूपणों का भी उल्लेख किया जायगा। निश्चित कालान्तर पर्यन्त किसी इलाके पर जो सदिश प्रेक्षित किया गया वह **केन्द्रीय सदिश आरेख** (चि. 97) द्वारा निरुपित किया जा सकता है। इस आरेख में तमाम सदिश एक ही बिन्दु से आलेखित हैं तथा प्रेक्षणकाल प्रत्येक सदिश पर सूचित है। यदा कदा सदिश के अन्तिम विन्दु वक्र द्वारा जुड़े होते हैं जिन पर प्रेक्षण-काल सूचित होता है तथा सदिश स्वयम् छूटे हुवे होते हैं। निरूपण के इस स्वरूप का सामान्यतः उपयोग होता है जब ज्वारधाराओं के जैसी कालिक धाराओं का विवेचन करना होता है। केन्द्रीय सदिश आरेख का मुख्य चार्टों में किसी दी गई दिशाओं से चलने वाली हवाओं की आवृति को सूचित करने के लिये भी विस्तृतता से उपयोग किया गया है। इस स्थिति में हवा की दिशा एक तीर द्वारा बतलाई गयी है, और उस दिशा से चलने वाली हवा की आवृति तीर की लम्बाई से बतलाई गयी है।
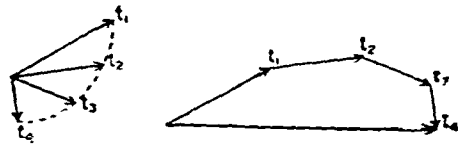
चित्र 97—केन्द्रीय सदिश आरेख द्वारा निरुपित सदिश का समय परिवर्तन (बायें) और क्रमिक सदिश आरेख (दायें)

यदि यह माना जा सके कि प्रेक्षण एकरूप सदिश क्षेत्र में किये गये थे, तब एक **क्रमिक सदिश आरेख** उपयोगी होता है। इस आरेख को प्रथम सदिश के

अन्तिम विन्दु से दूसरे सदिश को आलेखित कर वनाया जाता है, और इसी प्रकार आगे सदिश वनाये जाते हैं (चित्र 97)। जव वेग का विवरण करना हो तो अल्प समयान्तर में औसत वेग द्वारा होने वाले विस्थापन की संगणना की जा सकती है। जव ये विस्थापन क्रमिक सदिश आरेख पर आलेखित किये जाते हैं तो परिणामित वक्र एक करण का **प्रक्षेप-वक्र** वतायेगा यदि वेग क्षेत्र ऐसी एकरूपता का है कि प्रेक्षित वेग को प्रेक्षण-स्थान के सामिप्य में वेगों का निरूपक (प्रतिनिधि) माना जा सके। प्रथम सदिश के प्रारम्भ से आखरी सदिश के अन्त तक जो सदिश खींचा जा सकता है वह कुछ समयान्तर में सम्पूर्ण विस्थापन वताता है तथा समयान्तर से विभाजित होने पर यह विस्थापन अवधि के लिये **औसत** वेग होता है।

गति क्षेत्र और सातत्य समीकरण

गति क्षेत्र :—सदिश क्षेत्रों में गति क्षेत्र विशिष्ठ महत्व का होता है। गति क्षेत्र के लक्षणों में से कई का विवरण, उन वलों का विचार न करते हुये किया जा सकता है जो गति को उत्पन्न करते हैं या गति को वनाए रखते हैं और इन लक्षणों से शुद्ध गति विज्ञान-विषय की रचना होती है।

किसी निश्चित निर्देशांक-पद्धति के सापेक्ष करण का वेग, $v=dr/dt$ परिभाषित होता है जहाँ dr करण के प्रवाहित होने की दिशा में लम्वाई का अणवंश है। समकोणीय निर्देशांक-पद्धति में वेग के निम्न संघटक होते हैं

$$v_x = \frac{dx}{dt}, \qquad v_y = \frac{dy}{dt}. \qquad v_z = \frac{dz}{dt}.$$

वेग क्षेत्र का पूर्णरूप से वर्णन **लगरांज** या **ऑयलर** प्रणाली द्वारा किया जा सकता है। लगरांज प्रणाली में सभी गतिमान कणों के **निर्देशांक** समय के फंक्शन से, और प्राचल के तिगुने समूह के फंक्शन से निरूपित किये जाते हैं जो मिलकर सभी गतिमान् कणों का लक्षण वर्णन करते हैं। इस निरूपण से प्रत्येक करण का वेग, और अतएव, वेग क्षेत्र किसी भी समय व्युत्पन्न किये जा सकते हैं।

नीचे दिये गये विवरण में ऑयलर की अधिक सुविधायुक्त प्रणाली का उपयोग किया जायगा। इस प्रणाली में यह मान लिया जाता है कि तरल के तमाम कणों का वेग परिभाषित है। इस कल्पना के अनुसार वेग क्षेत्र का पूर्णरूप से वर्णन हो जाता है यदि वेग के संघटक निर्देशांकों तथा समय के फंक्शन की तरह निरूपित किये जा सके:

$$v_x = f_x\,(x,y,z,t),$$
$$v_y = f_y\,(x,y,z,t),$$
$$v_z = f_z\,(x,y,z,t),$$

दोनों प्रणालियों के मध्य लाक्षणिक अन्तर यह है कि लगरांज की प्रणाली सभी कणों द्वारा अपनाये गये पथ पर ध्यान केन्द्रित करती है जब कि ऑयलर की प्रणाली निर्देशांक विन्यास में प्रत्येक बिन्दु के वेग पर ध्यान केन्द्रित करती है तो भी, ऑयलर प्रणाली में त्वरण निकालने के लिये पृथक कणों की गति का विचार करना आवश्यक होता है। जो कण समय t पर बिन्दु $(x,y,z,)$ पर था और जिसके वेगसंघटक $fx\ (x,y,z,t)$ आदि थे वह कण समय dt के बाद बिन्दु $(x+dx, y+dy, z+dz)$ पर होगा तथा उसके वेग संघट $fx\ (x + dx, y + dy, z + dz, t + dt)$, आदि होंगे। टेलर-श्रेणी में विस्तार करने पर होता है कि

$$fx(x + dx_1, y + dy_1. z + dz_1, t + dt_1,)$$
$$= fx\ (x,y,z,t) + \frac{\partial vx}{\partial x}dx + \frac{\partial vx}{\partial y}dy + \frac{\partial vx}{\partial z}dz + \frac{\partial vx}{\partial t}dt$$

समय dt में वेग में परिवर्तन—यानी विचाराधीन पृथक कणों का त्वरण—के इसलिये निम्नलिखित संघटक होंगे :

$$\begin{aligned} \frac{dv_x}{dt} &= \frac{\partial v_x}{\partial t} + \frac{\partial v_x}{\partial x}v_x + \frac{\partial v_x}{\partial y}v_y + \frac{\partial v_x}{\partial z}v_z, \\ \frac{dv_y}{dt} &= \frac{dv_y}{\partial t} + \frac{\partial v_y}{\partial x}v_x + \frac{\partial v_y}{\partial y}v_y + \frac{\partial v_y}{\partial z}v_z, \\ \frac{dv_z}{dt} &= \frac{\partial v_z}{\partial t} + \frac{\partial v_z}{\partial x}v_x + \frac{\partial v_z}{\partial y}v_y + \frac{\partial v_z}{\partial z}v_z, \end{aligned} \qquad \text{(XII, 17)}$$

इस प्रकार, दो समय-अवकलजों से काम लेना पड़ता है : **पृथक (अलग-अलग)** समय-अवकलज, जो पृथक कणों का त्वरण निरूपित करता है तथा **स्थानीय** समय-अवकलज जो विन्यास में एक बिन्दु पर वेग का समयगत परिवर्तन निरूपित करता है तथा **स्थानीय त्वरण** कहलाता है। समीकरण (XII, 17) के आखरी पद बहुधा मिला लिये जाते हैं तथा **क्षेत्र त्वरण** कहलाते हैं।

उपरोक्त अभिवृद्धि न केवल वेग क्षेत्र का विचार करते समय ही प्रयोज्य होती है, वरन् दिक् और काल में परिवर्तन होने वाले गुण धर्म के किसी क्षेत्र का विचार करते समय भी प्रयोज्य होती है (12.13)। वेग क्षेत्र **स्थिर** रहता है जबकि स्थानीय समयगत परिवर्तन शून्य होते हैं :

$$\frac{\partial v_x}{\partial t} = \frac{\partial v_y}{\partial t} = \frac{\partial v_z}{\partial t} = 0. \qquad \text{(XII, 18)}$$

यह अवलोकित होना चाहिये कि जब पृथक त्वरण शून्य होता है यानी, जब

$$\frac{dv_x}{dt}=\frac{dv_y}{dt}=\frac{dv_z}{dt}=0, \qquad \text{(XII, 19)}$$

तो वेग क्षेत्र स्थिर होता है केवलमात्र यदि क्षेत्र त्वरण भी शून्य हो जाता है

सातत्य समीकरण :—आयतन $dxdydz$. का एक घन लो। पानी की मात्रा (संहति) जो इकाई समय में x अक्ष के समांतर भीतर की ओर प्रवाहित होती है वह $\rho v_x\, dydz$ के बराबर होती है, और संहति जो बाहर की ओर प्रवाहित होती वह

$$\rho v_x\, dydz + dxdydz\, \frac{\partial(\rho v_x)}{\partial x}$$

के बराबर होती है, यह कल्पना करते हुये कि ρ और v_x दोनों x अक्ष की दिशा में परिवर्तित होते हैं। x अक्ष की दिशा में प्रति इकाई आयतन तथा प्रति इकाई समय निबल अपवाह, अतएव, $\frac{\partial}{\partial x}(\rho v_x)$ होता है। समरूपतः y और z अक्षों के साथ साथ तत्स्थानी अपवाह क्रमशः $\frac{\partial}{\partial y}(\rho v_y)$ और $\frac{\partial}{\partial z}(\rho v_z)$ होता है। इकाई आयतन के घन में से निबल अपवाह इन पदों का योग है, परन्तु प्रति इकाई समय में इस अपवाह को प्रति इकाई समय घनत्व में कमी, $-\partial\rho/\partial t$. के बराबर भी होना चाहिये। प्रतिबन्ध

$$-\frac{\partial\rho}{\partial t}=\frac{\partial(\rho v_x)}{\partial x}+\frac{\partial(\rho v_y)}{\partial y}+\frac{\partial(\rho v_z)}{\partial z} \qquad \text{(XII, 20)}$$

की, तंत्र (System) की सातत्यता को बनाये रखने के लिये अतः सदैव ही पूर्ती होनी चाहिये। मौलिकता से महत्वपूर्ण यह समीकरण **सातत्य समीकरण** कहलाती है। यह बताती है कि $-\partial\rho/\partial t$, द्वारा निरूपित **संहति में स्थानीय हानि विशिष्ट संवेग के अपसरण के बराबर** होती है (12.14)।

अब:

$$\frac{\partial(\rho v_x)}{\partial x}+\frac{\partial(\rho v_y)}{\partial y}+\frac{\partial(\rho v_z)}{\partial z}=\frac{\partial\rho}{\partial x}v_x+\frac{\partial\rho}{\partial y}v_y+\frac{\partial\rho}{\partial z}v_z+\rho\left(\frac{\partial v_x}{\partial x}+\frac{\partial v_y}{\partial y}+\frac{\partial v_z}{\partial z}\right).$$

इसलिये समीकरण (XII, 17) से

$$-\frac{1}{\rho}\frac{d\rho}{dt}=\frac{1}{\alpha}\frac{d\alpha}{dt}=\frac{\partial v_x}{\partial x}+\frac{\partial v_y}{\partial y}+\frac{\partial v_z}{\partial z}. \qquad \text{(XII, 21)}$$

वामपक्ष का पद गतिमान् अवयव के विस्तार—दर का निरूपण करता है। इस स्वरूप में सातत्य समीकरण उल्लेख करती है कि **गतिमान अवयव की विस्तार-दर वेग के अपसरण के बराबर होती है।**

उपरोक्त स्वरूप में सतत्य समीकरण परिसीमा पृष्ठ पर मान्य नहीं होती है क्योंकि वहां कोई अपवाह या अन्तर्वाह नहीं हो सकता है। परिसीमा के अभिलम्ब दिशा में उस पृष्ठ के कण को उसी वेग से चलना (बहना) चाहिये जिससे स्वयम् पृष्ठ चलता है। यदि पृष्ठ ठोस होता है तो पृष्ठ के अभिलम्ब कोई संघटक विद्यमान नहीं होता और वेग को दिष्ठ के समांतर पृष्ठ होना चाहिये। प्रतिबन्ध

$$v_n = \frac{dn}{dt} \qquad \text{(XII, 22)}$$

निरपेक्षगतिक परिसीमा प्रतिबन्ध का निरूपण करते हैं, जिसमें n परिसीमा पृष्ट के अभिलम्ब दिष्ट होता है और $\frac{dn}{dt}$ उस दिशा में परिसीमा पृष्ठ का वेग है, तथा जो (प्रतिबन्ध) परिसीमा पर सातत्य समीकरण का स्थान ले लेता है।

सातत्य समीकरण के प्रयोग :—समुद्र पृष्ठ पर निरपेक्षगतिक परिसीमा प्रतिबन्ध की पूर्ती होनी चाहिये। साम्यावस्था के किसी तल के सापेक्ष समुद्र पृष्ठ के ऊर्ध्वाधर विस्थापन को η से नामोद्दिष्ट करके तथा इस दूरी को अधोमुखी घनात्मक मानकर क्योंकि घनात्मक z अक्ष अधोमुखी दिष्ट होती है, प्राप्त होता है कि

$$v_{z,o} = \frac{\partial \eta}{\partial t};$$

अर्थात्, समुद्र पृष्ठ पर ऊर्ध्वाधिर वेग समुद्र पृष्ठ के उठान के समयगत परिवर्तन के बराबर होता है। यदि समुद्र पृष्ठ स्थिर रहता है तो $v_{z,o} = 0$ होता है। यदि (अवस्तल) तली समतल है तो समरूपतः $v_{z,h} = 0$ होता है जहां h तली की गहराई है।

संहति के अचल वितरण ($\partial\rho/\partial t = 0$) के साथ सातत्य समीकरण निम्न रूप में आ जाता है।

$$\frac{\partial(\rho v_x)}{\partial x} + \frac{\partial(\rho v_y)}{\partial y} + \frac{\partial(\rho v_z)}{\partial z} = 0 \qquad \text{(XII,23)}$$

एकक चौड़ाई के शीर्ष–पृष्ट से होकर पृष्ठ से अवस्तल तक पहुंचनेवाली संहति के सम्पूर्ण परिवहन के निम्न संघटक होते है।

$$M_x = \int_0^h (\rho v_x)\, dz, \qquad M_y = \int_0^h (\rho v_y)\, dz$$

समीकरण (XII, 23) को dz से गुणा करके तथा पृष्ठ से अवस्तल तक समाकलन करके प्राप्त होता है कि

$$\frac{\partial M_x}{\partial x} + \frac{\partial M_y}{\partial y} + (\rho v_z)_h - (\rho v_z)_0 = 0$$

यहां $v_{z,h} = 0$, तथा स्थिर समुद्र पृष्ठ पर $v_{z,o} = 0$ । इस प्रकार समीकरण लघुकृत हो जाती है कि

$$\text{div}\, M = 0, \qquad \text{(XII, 24)}$$

या, जब समुद्र तल स्थिर रहता है तब पृष्ठ और अवस्तल के मध्य वहन अपसरण से मुक्त रहता है ।

जब पृष्ठ के निकट की अवस्थाओं का विचार करना होता है तो घनत्व को अचर मान लिया जा सकता है तथा H मोटाई की ऊपरी परत में $\bar{v}_x$ तथा $\bar{v}_y$ को वेग के संघटक का औसत मान की तरह उपयोग में लाया जा सकता है । इस सरलीकरण से तथा $v_{z,o} = 0$ से

$$v_{z,d} = -H\left(\frac{\partial \bar{v}_x}{\partial x} + \frac{\partial \bar{v}_y}{\partial y}\right) = -H\, \text{div}\, \bar{v}. \qquad \text{(XII,25)}$$

होता है । यदि H काफी छोटा होता है तो औसत वेग पृष्ठ वेग से बहुत अधिक भिन्न नहीं होगा । चूंकि ऋणात्मक ऊर्ध्वाधर वेग आरोही गति का निरूपण करता है और घनात्मक ऊर्ध्वाधर वेग अवरोही गति का निरूपण करता है तो समीकरण (XII, 25) बताती है कि पृष्ठ से नीचे लघु दूरी पर आरोही गति मिलती है यदि पृष्ठीय धाराऐं अपसारी होती है, और यदि पृष्ठीय धारायें अभिसारी होती है तो अवरोही गति मिलती है । यह एक सुस्पष्ट निष्कर्ष है, क्योंकि, अपसारी पृष्ठीय धाराओं के साथ जल अपसरण क्षेत्र से परे वहां ले जाया जाता है तथा पृष्ठ से नीचे किसी गहराई से ऊपर उठने वाले जल द्वारा बदल जाना चाहिए और इसके विलोमतः होना चाहिए । अतः ऊर्ध्वाधर गति से सम्बन्धित निष्कर्ष पृष्ठीय धाराओं को बताने वाले चार्ट पर आधारित हो सकते है ।

इस प्रयोजन के लिए, द्विविमितीय सदिश क्षेत्र के अपसरण को भिन्न रूप में लिखना लाभदायक होता है :

$$\text{div}\, v = \frac{\partial v}{\partial l} + \frac{v}{\Delta n}\frac{d\Delta n}{dl}, \qquad \text{(XII, 26)}$$

यहाँ dl प्रवाह की दिशा में लम्बाई का अवयव है और $\triangle n$ पड़ौसी धारा-रेखाओं के बीच दूरी का निरूपण करता है। यदि धारा-रेखाओं के साथ (स्पर्शी) वेग अचर है $\left(\frac{\partial c}{\partial l}=0\right)$, तो प्रवाह अपसारी होता है जब धारा रेखाओं के बीच दूरी बढ़ती है $\left(\frac{d\triangle n}{dl}>0\right)$, और अभिसारी होता है जब यह दूरी घटती है $\left(\frac{d\triangle n}{dl}<0\right)$। इसके विपरीत, जब धारा-रेखाओं के बीच स्थिर दूरी रहती है $\left(\frac{d\triangle n}{dl}=0\right)$, तब अपसरण केवल धारा-रेखाओं के स्पर्शी वेग में परिवर्तन पर निर्भर करता है। वर्धमान वेग $\left(\frac{\partial c}{\partial l}>0\right)$ का अर्थ होता है पृष्ठ के नीचे आरोही गति के साथ अपसरण यदि यह पृष्ठ स्थिर है और ह्रासमान (घटते हुवे) वेग $\left(\frac{\partial c}{\partial l}<0\right)$ का अर्थ होता है पृष्ठ के नीचे अवरोही गति से सम्बद्ध अभिसरण।

सातत्य समीकरण न केवल संहति क्षेत्र के लिये ही प्रयोज्य होती है परन्तु विलीन पदार्थ क्षेत्र के लिये भी प्रयोज्य होती है जो जैव-क्रिया द्वारा प्रभावित नहीं हुआ हो। मानो कि पदार्थ की संहति प्रति जल की इकाई संहति s है। यदि पृष्ठ पर ऊर्ध्वाधर वेग शून्य हो, तो सातत्य समीकरण को s से गुणा करने से और पृष्ठ से पैंदे तक समाकलन करने से, प्राप्त होता है कि,

$$\frac{\partial N}{\partial t}+\text{div}\ P=0$$

यहाँ

$$N=\int_0^h s\rho dz,\quad P_x=\int_0^h s\rho c_x\,dz,\quad P_y=\int_0^h s\rho c_y\,dz.$$

स्थिरता की अवस्थाओं में स्थानीय समय परिवर्तन शून्य होता है, और

$$\text{div}\,P=0,\quad \text{div}\,M=0$$

इन समीकरणों का उपयोग द्रोणियों के अपवाह और अन्तर्वाह के बीच सम्बन्ध की संगणना करने के लिये सरलीकृत स्वरूप में पहले से ही किया गया है। (12.15) अन्य सरलीकरण न्यूडसेन, विटिंग और गेहर्के द्वारा पुनःस्थापित किये गये हैं (क्रूमेल, Krümmel, 1911, पृ. 509-512)।

धारा-रेखाएं तथा प्रक्षेप वक्र :—किसी दिये गये समय पर धाराओं की दिशा को बताने वाली सदिश रेखाएं धारा रेखाएं या प्रवाह रेखाएं कहलाती हैं। इसके

विपरीत, गतिमान जल कणों द्वारा अपनाये गये पथ कणों के **प्रक्षेप वक्र** कहलाते हैं। धारा-रेखाएं और प्रक्षेप वक्र समरूप होते हैं केवल जबकि गति स्थिर होती है, जिस हालत में वेग क्षेत्र की धारा-रेखाएं समय के साथ अपरिवर्तित रहती हैं और कण उसी धारा-रेखा पर स्थिर रहता है।

धारा रेखाओं तथा प्रक्षेप-वक्रों में सामान्य अन्तर प्रगामी पृष्ठीय तरंग में गति के प्रकार को विचार कर दृष्टान्तित किया जा सकता है। चित्र 98 में तीर सहित ठोस रेखाएं उस पृष्ठीय तरंग अनुप्रस्थ काट में **धारा रेखाएं** बताती हैं जो बिन्दू A से गुजरते हुवे बायें से दायें जाने के लिये कल्पित होती है। जब तरंग-शृगं A से गुजरता है तो A पर जल के कणों की गति प्रगति की दिशा में होती है परन्तु अधोमुखी ह्रास मान (घटते हुवे) वेगों के साथ होता है। तरंग के गर्तो b और e पर गति विपरीत दिशा में होती है। अतएव A और b के मध्य अवरोही गति के साथ अपसरण होता है, तथा A और e के मध्य आरोही गति के साथ अभिसरण होता है। पृष्ठ इसलिये c पर धंस जायगा तथा d पर उठ जायगा जिसका अर्थ है कि तरंग बायें से दायें की ओर प्रगति करेगी। जब c बिन्दु A पर पहुंचता है तो जल की क्षैतिज गति नहीं होगी, परन्तु ज्योंही b बिन्दु A से गुजरता है गति प्रतिवर्तित हो जायगी। इस प्रकार से धारा रेखाओं का प्रतिरूप, जिस वेग से तरंग गमन करती है उसी (वेग) से बायें से दायें चलता है।
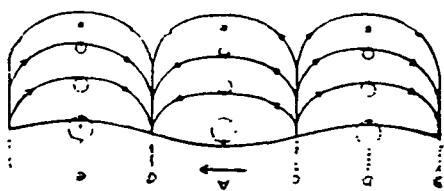
चित्र 98 : प्रगामी पृष्ठीय तरंग में प्रक्षेप-वक्र (बिन्दु रेखाऐं) और धारा रेखाऐं (लगातार रेखाऐं)

यह कल्पना करली जाती है कि जिस चाल पर तरंग गमन करती है वह तरंग गति में भाग लेने वाले अकेले जलकणों के वेग से बहुत अधिक होती है। इस अनुमान पर, एक जल कण जो प्रारम्भ में A के नीचे स्थित था वह इस ऊर्ध्वाधर से कभी भी अधिक नहीं हटाया जायगा तथा एक तरंग काल के पश्चात् अपनी प्रारम्भिक स्थिति पर आ जायगा। इस हालत में ऐसे कणों के प्रेक्षक वक्र चक्र होते हैं, जिनके व्यास पृष्ठ से बढ़ती हुई दूरी के साथ घटते हैं, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। यह स्पष्ट है कि प्रेक्षक-वक्र तथा धारा रेखाओं में कोई समानता नहीं होती है।

समुद्र में गति क्षेत्र के निरूपण

महासागर में पृष्ठीय जल संहतियों के **प्रेक्षक-वक्र** धाराओं द्वारा हटाई गयी प्लवमान वस्तुओं के अपवहन का अनुसरण कर निर्धारित किये जा सकते हैं। तो भी वस्तुओं के अपवन सम्बन्धी उपलब्ध जानकारी की व्याख्या करते समय

अत्यधिक सावधानी का प्रयोग आवश्यक होता है। कई बार तो प्रेक्षक वक्रों के केवल अंतिम बिन्दु ज्ञात होते हैं—यानी स्थान जहां अपवहन आरम्भ और अन्त हुवे। अपवहन-बोतल परीक्षणों के परिणाम प्रेक्षक वक्रों से सम्बन्धित अपूर्ण जानकारी का उदाहरण देते हैं। नियमानुसार अपवहन बोतलें बालुतटों पर पुनः प्राप्त होती हैं, और जिस स्थान से बोतलें छोड़ी गयी थी वहां से उनके द्वारा अपनाये गये मार्ग का पुनर्निर्माण बहुत ही परिकल्पनात्मक हो सकता है। धाराओं से सम्बन्धित पृष्ठीय ताप तथा लवणता के वितरण की जानकारी के रूप में अतिरिक्त सूचना से, या समुद्र पर इकट्ठी की गयी अपवहन बोतलों से प्राप्त सूचना से पुनर्निर्माण में मदद हो सकती है। व्यवस्थित अपवहन-बोतल परीक्षण किये जाते हैं, विशेषरूप से तटीय क्षेत्रों में जो मात्स्यकी के लिये महत्व के होते हैं।

वास्तविक पृष्ठीय या स्थल मंडलीय धाराओं की **धारा रेखाऐं** भारी संख्या में धाराओं के प्रत्यक्ष माप पर आधारित होनी चाहिये। जहां वेग अचर नहीं होता है वहां समकालिक प्रेक्षणों की आवश्यकता होती है। स्थलमण्डलीय धाराओं के प्रत्यक्ष माप लंगर डाले हुवे जल पोतों से करने चाहिये, परन्तु यह प्रक्रिया इतनी कठिन होती है कि कोई प्रत्यक्ष माप उपलब्ध नहीं होते हैं जो किसी क्षेत्र के लिये प्रेक्षित स्थल मंडलीय धाराओं के चार्ट तैयार करने के लिये काम में लिये जा सके।

इसके विपरीत, पृष्ठीय धाराओं के अनेक प्रेक्षण जहाजों के अभिलेखों से व्युत्पन्न किये जाते हैं। मानलो कि किसी दिन दोपहर के समय जहाज की स्थिति खगोलीय प्रेक्षणों द्वारा निश्चित की जाती है (चित्र 99 में बिन्दु A)। बिन्दु A से बिंदु B के लिये पथ निर्धारित किया गया, जो (B) जहाज के औसत वेग से चौबीस घण्टों में आ जाना चाहिये। दूसरे दिन, ज्योतिष प्रेक्षण बताते हैं कि जल पोत B बिन्दु तक नहीं पहुंचा है, जोकि **अज्योतिष गणना से स्थिति होगी**, परन्तु बिन्दु B' पर है। तब यह माना जाता है कि विस्थापन BB' धारा के कारण हुआ है जिसकी औसतन दिशा B से B' की ओर है तथा वेग $\frac{BB'}{24}$ नाट्स (Knots) है यदि BB' दूरी समुद्री मील में हो इस विधि से प्रेक्षित धारावेग या तो नाट्स में या समुद्री मील प्रतिदिन में दिये जाते हैं। यदि विस्थापन कम होता है तो दिशा और वेग अनिश्चित होते हैं क्योंकि ज्योतिष फिक्स 1 या 2 समुद्री मील के भीतर आमतौर से परिशुद्ध नहीं होता है, और अज्योतिष गणना द्वारा स्थिति की परिशुद्धता नियम से कम होती है। चौबीस घण्टों में 5 या कम मील के विस्थापनों को अल्प महत्व दिया जा सकता है
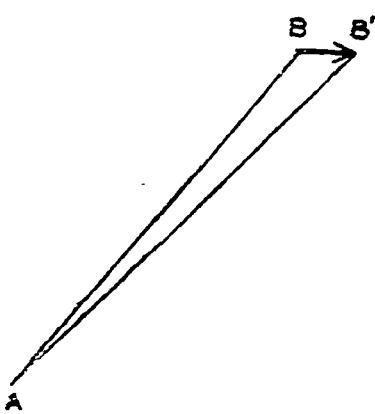
चित्र 99. स्थितियों के मध्य अन्तर से, अज्योतिष गणना से तथा नियत स्थितियों से पृष्ठीय धाराओं का निर्धारण

जहाजों के अभिलेखों से प्राप्त पृष्ठीय धाराओं के आंकड़े धाराओं के सारूप चार्ट बनाने के काम में नही लिये जा सकते, क्योंकि

समकालिक प्रेक्षणों की संख्या अत्यधिक अल्प होती है। महीनों, एक चौथाई वर्षो या मौसम के लिये आंकड़े तो भी, कई वर्षो के प्रेक्षणों से संकलित किये गये है, यद्यपि ये भी सामान्य अवस्थाओं को बताने के लिये असन्तोषजनक होते है क्योंकि आंकडे वृहत् क्षेत्रों मे समरूपता से विपरित नही होते है परन्तु व्यापार मार्गो के साथ सकेंद्रित होते है। कुछ चार्टों मे विभिन्न इलाकों मे औसत दिशा तीर द्वारा सूचित की जाती है और जहां प्रबल धाराएं प्रचलित है वहां समुद्रीमील प्रतिदिन मे औसत चाल संख्या द्वारा दिखाई गई है। अन्य चार्ट मे पृष्ठीय प्रवाह दिशा समूहों (Direction roses) द्वारा निरूपित किया गया है जिनमें समूह के केन्द्र मे दी गई संख्या कोई धारा न होने की प्रतिशतता का निरूपण करती है तथा विभिन्न तीरों की लम्बाई तीर की दिशा मे धाराओं की प्रतिशतता का निरूपण करती है और तीर के अन्त में दिये गये अङ्क सूचित दिशा मे औसत वेग का मील प्रतिदिन मे निरूपण करते है। इन चार्टो मे या तो वर्ष भर के या सामूहिक महीनो के औसत दिये होते है।

ऐसे चार्टो के आधार पर, कुछ क्षेत्रो मे महीनो अथवा ऋतुओं पर्यन्त **औसत** पृष्ठीय धाराएं, धारा-रेखाए और वेग के समादिश वक्रों द्वारा निरूपित की गई है। इस निरूपण का मुख्य लाभ है कि इससे प्रमुख लक्षणों का सर्वेक्षण शीघ्र हो जाता है तथा धारा रेखाओं की विचित्रताओ को बता देता है। यद्यपि कई दृष्टान्तो मे आंकडों की व्याख्या अनिश्चित होती है और चार्ट का विवरण व्यक्तिगत निर्णय पर अत्यन्त ही निर्भर करता है।

इन धारा-रेखाओं को खीचने मे सदिश रेखाओं सम्बन्धित नियमों (12.16) का पालन करना आवश्यक है। धारा-रेखाए प्रतिच्छेद नही कर सकती, परन्तु अनन्त संख्या मे धारा-रेखाए अभिसरण-विन्दु या अपसरण-बिन्दु मे मिल सकती है या अभिसरण-रेखा तक अनन्त स्पर्शतः पहुंच सकती है, या अनन्त-स्पर्शः अपसरण रेखा से अपसृत हो सकती है।

उदाहरणार्थ जुलाई मे दक्षिण-पूर्वी अफ्रीका और दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्वी मेडागास्कर से दूर पृष्ठप्रवाह की धारा रेखाएं चित्र 100 मे दिखाई गई है। चित्र वीलीमजीक, Willimzik, (1929) के चार्ट पर आधारित है परन्तु सरलीकरण हेतु मूल चार्ट की कई धारा-रेखाएं छोड दी गई है। चार्ट मे सदिश क्षेत्र की कई लाक्षणिक विचित्रताएं बताई गई है। *A* से अङ्कित तीन अतिपरवलयिक बिदु है, *B* से अङ्कित चार अभिसरण बिदु दिखाई पडते है और *C* द्वारा अंकित कई अभिसरण-रेखाएं तथा *D* से अङ्कित कई अपसरण-रेखाए विद्यमान है। धारा-रेखाएं सर्वत्र तट के समान्तर नही है और इस निरूपण मे तट पर ऊर्ध्वाधर गति की कल्पना अन्तर्ग्रस्त है, जहां क्षैतिज गति शून्य होनी चाहिए।
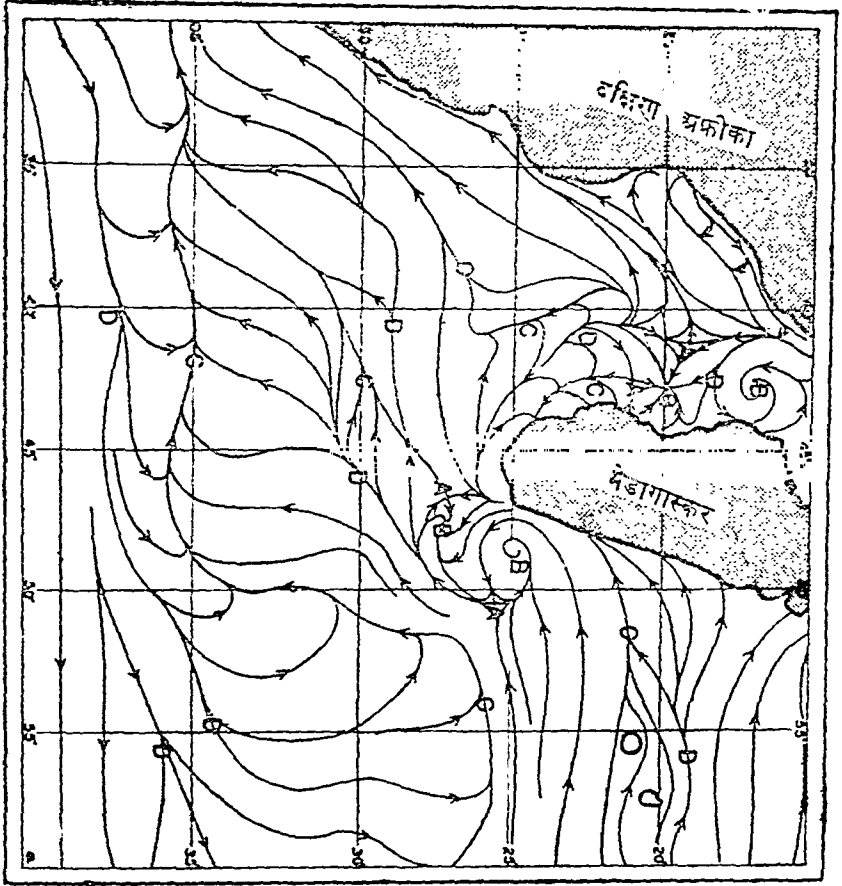
चित्र 100. जुलाई माह में दक्षिण पूर्वी अफ्रीका से परे (दूर) पृष्ठीय धाराओं की धारा-रेखाएं
(वीलीमज़ीक, Wilimzik, के आधार पर)

अति स्पष्ट लक्षण अभिसरण की अविरत रेखा है जो मेडागास्कर के दक्षिण पश्चिम में दक्षिण की ओर घूमती है और तब 35°द अक्षांश के साथ-साथ पश्चिम की ओर जाती है। इस अभिसरण की रेखा, उपोष्ण कटिबंध अभिसरण (सब ट्रॉपीकल कन्वरजेन्स) पर अवरोही गति होनी चाहिये। यह कन्वरजेन्स सम्पूर्ण हिन्द महासागर के आरपार अनुरेखित किया जा सकता है, तथा इसका प्रतिरूप अन्य महासागरों में होता है। समरूपतः अन्य अभिसरण रेखाओं पर, अभिसरण विन्दुओं पर, तथा मेडागास्कर के पूर्वी तट पर अवरोही गति होनी चाहिये, जबकि अपसरण रेखाओं के साथ तथा मेडागास्कर के पश्चिमी तट के साथ, जहां पृष्ठीय जल तट से दूर की ओर वहता है, आरोही गति होनी चाहिये। वेग वक्र छोड़ दिये गये हैं जिस कारण से ऊर्ध्वाधर गति सम्बन्धी निष्कर्ष अपूर्ण रह जाते हैं (12.17)। किनारों के निकट भंवर धारायें या प्रतिधारायें सूचित की गयी हैं और ये घटनायें वहुधा प्रवाह के विशिष्ट लक्षण निरूपित करती हैं तथा लम्बी अवधि तक अपरिवर्तित रहती हैं।

जैसा कि पहले ही उल्लेखित किया जा चुका है, पृष्ठीय प्रवाह का धारा रेखाओं द्वारा निरूपण केवल कुछ ही विषयों (अवस्थाओं) में तैयार किया गया है। नियमानुसार पृष्ठीय धारायें तीर द्वारा दिखाई गयी हैं। कुछ दृष्टान्तों में निरूपण जहाज के धारा-प्रेक्षण पर आधारित हैं, परन्तु अन्य विषयों में पृष्ठीय प्रवाह ताप व लवणता के प्रेक्षित वितरण से, सम्भवतः अपवहन-बोतल परीक्षणों के परिणामों का विचार कर व्युत्पन्न किया जाता है धाराओं का वेग सूचित न किया जाय अथवा अतिरिक्त अंकों से, या तीरों की मोटाई से बताया जाय। कोई समरूप प्रणाली नहीं अपनायी गयी है (देखिये डिफेन्ट, Defant 1929) क्योंकि उपलब्ध आँकड़े ऐसे विभिन्न प्रकार के हैं कि प्रत्येक अलग-अलग विषय (अवस्था) में निरूपण के स्वरूप का चयन करना चाहिए। जो उपलब्ध जानकारी को अति सन्तोषजनक रीति से प्रस्तुत करें। पृष्ठीय प्रवाह के अन्य उदाहरण विशिष्ट क्षेत्रों में धाराओं सम्बन्धी अनुभाग में दिये जायंगे।

CHAPTER II

BIBLIOGRAPHY

Bencker, H. 1930. The bathymetric soundings of the oceans. Hydrographic Review, v. 7, no. 2, p. 64-97, 1930. Monaco.

Bucher. Walter H. 1933. The deformation of the earth's crust. Princeton Univ. Press. 518 pp., 1933.

——— 1940. Submarine valleys and related geologic problems of the North Atlantic. Geol. Soc. Amer., Bull., v. 51, p. 489-512, 1940.

Daly, Reginald A. 1934. The changing world of the ice age. New Haven, Yale Univ. Press, 271 pp., 1934.

——— 1936. Origin of submarine "canyons." Amer. Jour. Sci., v. 31, p. 401-420, 1936.

Field, Richard M., *et al.* 1938. Symposium on the geophysical exploration of the ocean bottom arranged by the American Geophysical Union. Amer. Philos. Soc., Proc., v. 79, p. 1-144, 1938.

Fowle, Frederick E. 1933. Smithsonian physical tables. Smithsonian Misc. Coll., v. 88, 682 pp., 1933.

Gutenberg, Beno, ed. 1939. Internal constitution of the earth. v. 7 of Physics of the Earth. (Nat. Research Council.) New York, McGraw-Hill, 413 pp., 1939.

International Hydrographic Bureau. 1937. Limits of oceans and seas. Internat. Hydrogr. Bur., Spec. Pub. no. 23, 2nd ed.,25 pp., 1937.

Johnson, Douglas W. 1919. Shore processes and shoreline development. New York. Wiley and Sons, 584 pp., 1919.

——— 1925. The New England-Acadian shoreline. New York, Wiley and Sons, 608 pp., 1925.

——— 1939. The origin of submarine canyons. New York, Columbia Univ. Press, 126 pp., 1939.

Johnstone, James. 1928. An introduction to oceanography, Liverpool, University Press, 368 pp., 1928.

Kossinna, Erwin. 1921. Die Tiefen des Weltmeeres. Berlin Univ., Institutes. f. Meereskunde, Veroff., N. F., A. Georg.-naturwiss. Reihe, Heft 9, 70 pp., 1921.

Kuenen, Ph. H., 1935. Geological interpretation of the bathymetrical results. *Snellius* Exped. in the eastern part of the Netherlands East Indies 1929–1930, v. 5, Geolygical Results, pt. 1 123 pp. and charts, 1935. Utrecht.

Littlehales, G. W. 1932. The configuration of the oceanic basins. p. 13–46 in Physics of the Earth, v. 5, Oceanography. Nat Research Council, Bull. no. 85, 1932. Washington, D. C.

Nansen, Fridtjof. 1928. The oceanographic problems of the still unknown Arctic regions. p. 3–14 in; Problems of Polar Research. Amer. Geogr. Soc., Spec. Pub. no. 7, 479 pp., 1928. New York.

Niblack, A. P. 1928. Terminology of submarine relief. Hydrogrphic Review, v. 5, no 2, p. 1–23, 1928. Monaco.

Raisz, Erwin. 1938. General cartography. New York, McGraw-Hill. 370 pp., 1938.

Revelle, Roger, and F. P. Shepard. 1939. Sediments off the California coast. p. 245–282 in: Recent Marine Sediments, A symposium. Amer. Assn. Petrol. Geol. 736 pp., 1939. Tulsa.

Schott, G. 1926. Geographie des Atlantischen Ozeans. Hamburg, C. Boysen, 368 pp., 1926.

—— —— 1935. Geographie des Indischen und Stillen Ozeans. Hamburg, C. Boysen, 413 pp., 1935.

Shepard, Francis P. 1931. Glacial throughs of the continental shelf. Jour. Geol., v. 39, p. 345-360, 1931.

———— 1933. Geological misconceptions concerning the oceans. Science, v. 78, p. 406-408, 1933.

———— 1937. Revised classification of marine shorelines. Jour. Geol,, v. 45, p. 602-624, 1937.

———— 1938. Submarine canyons off the California coast. Calif. Jour. Mines and Geol., Report 24, State Mineralogist, p. 298-310, 1938.

———— 1939. Near-shore sediments—hemipelagic deposits. p. 219-229 in : Recent Marine sediments, A symposium. Amer. Assn. Petrol. Geol., 736 pp., 1989. Tulsa.

———— 1941. Unpublished data.

Shepard, F.P., and K.O. Emery. 1941. Submarine topography off California coast : canyons and tectonic interpretations. Geol. Soc. Amer., Spec. Paper, no. 31, 171 pp., 4 charts, 1941.

Shepard, F.P.. and E C. LaFond. 1940. Sand movements along the Scripps Institution pier. Amer. Jour. Sci., v. 238, p. 272-285, 1940.

Stetson, Henry C. 1936. Geology and paleontology of the Georges Bank canyons. Geol. Soc. Amer., Bull., v. 47, p. 339-366. 1936.

Stocks, Theodor. 1938. Morphologie des Atlantischen Ozeans. Statistik der Tiefenstufen des Atlantischen Ozeans. Deutsche Atlanstische Exped., *Meteor*, 1925-1927, Wiss. Erg., Bd. 3, 1. Teil, 2. Lief., p. 35-131, 1938.

Stocks, Theodor, and G. Wüst. 1935. Die Tiefenverhältnisse des offenen Atlantischen Ozeans. Deutsche Atlantischen Exped. *Meteor*, 1925-1927, Wiss. Erg., Bd. 3, Teil 1, 1., Lief., 31 pp., 1935.

U.S. Beach Erosion Board. 1933. Interim report. April 15, 1933.

van Riel, P.M. 1934. The bottom configuration in relation to the flow of the bottom water. *Sneilluis* Exped. in the eastern part of the Netherlands East Indies 1929-1930, v. 2 Oceanographic results, pt. 2, chap. 2, 62 pp., 1934. Utrecht.

Vaughan, Thomas Wayland. 1938. Recent additions to knowledge of the bottom configuration of the southern oceans. Congress Internat. de Geographie, Amsterdam, 1938, Comptes rendus, IIb, Oceanographie, p. 160–174, 1938.

Vaughan, T. W., *et al.* 1937. International aspects of oceanography. Washington, D.C., Nat. Acad. Sci.' 225 pp., 1937.

——— 1940. Report of the Committee on the criteria and nomenclature of the major divisions of the ocean bottom. Union Geod. et Geophys, Internat., Assn. d'Oceanographie phys.. Pub. sci. no. 8, 124, pp., 1940. Liverpool.

Veatch, A.C., and P.A. Smith. 1939. Atlantic submarine valleys of the United States and the Congo Submarine Valley. Geol. Soc. Amer., Spec. Pap. no. 7, 101 pp. 1939.

Wüst, Georg. 1936. Die Gliederung des Weltmeeres. Hydrographic Review, v. 13, no. 2, p. 46-56, 1936. Monaco.

CHAPTER III

BIBLIOGRAPHY

Atkins, W. R. G., G. L. Clarke, H. Pettersson, H.H. Poole, C. L. Utterback, and A. Angstrom. 1938. Measurement of submarine daylight. Conseil Perm. Internat. p. l'Explor. de la Mer, Journal du Conseil, v, 13, p. 37-57, 1938.

Barnes, H.T. 1928. Ice engineering. Renouf Pub. Co., Montreal 364 pp., 1928.

Barnes, T.C., and Theo. L. Jahn. 1934. Properties of water of biological interest. Quart. Rev. Biol., v. 9, p. 292-341, 1934.

Bayliss, W.M. 1927. Principles of general physiology. 4th ed. Longmans, Green and Co., Ltd., London. 882 pp., 1927.

Bein, Willy, Heinz-Gunther Hirsekorn, and Lotte Moller. 1935. Konstantenbestimmungen des Meerwassers und Ergebnisse uber Wasserkorper. Berlin, Universitat. Institu f. Meereskunde. Veroff., N.F., A Geogr.-naturwiss. Reihe, Heft 28, pp. 240, 1935.

Bergmann, Ludwig. 1939. Ultrasonics and their scientific and technical applications. Trans. from the German by H. S. Hatfield. John Wiley and Sons, New York. 264 pp., 1939.

Bjerknes, V., and J. W. Sandstrom. 1910. Dynamic meteorology and hydrography. Pt. I, Statics. Carnegie Inst. Washington, Pub. no. 88, 146 pp. + tables. 1910.

Clarke, George L. 1933. Observations on the penetration of daylight into mid-Atlantic and coastal waters. Biol. Bull., v. 65, p. 317-37, 1933.

———— 1936. Light penetration in the western North Atlantic and its application to biological problems. Conseil Perm. Intern. p. l'Explor. de la Mer, Rapp. et Proc-Verb. v. 101, pt. 2, no. 3, 14 pp., 1936.

Clarke, George L , and Harry R. James. 1939 Loboratory analysis of the selective absorption of light by sea water. Optical Soc. Amer. Jour., v. 29, p. 43-55, 1939.

Cummings, N.W. 192. A sinker method for the determination of specific gravities. Scripps Inst. Oceanogr., Univ. Calif., Bull., tech. ser , v. 3, p. 101-18, 1932.

Dietrich, G. 1939. Die Absorption der Strahlung im reinen Wasser und im reinen Meerwasser. Ann. d. Hydrogr. u. Mar. Meteor., Bd. 67, S. 411-17, 1939.

Dorsey, N. Ernest. 1940. Properties of ordinary water-substance. Amer. Chem. Soc , Monograph Ser. No. 81. Reinhold Pub. Corp., New York. 673 pp,, 1940.

Ekman, V.W. 1908. Die Zusammendruckbarkeit des Meerwassers. Conseil Perm. Intern. p. l'Explor. de la Mer, Pub. de Circonstance, No. 43, 47 pp., 1908.

———— 1914. Der adiabatische Temperaturgradient im Meere. Ann. d. Hydrogr. u. Mar. Meteor., Bd. 42, S. 340-44, 1914.

Fleming, R. H., and Roger Revelle. 1939. Physical processes in the ocean. P. 48-141 in Recent marine sediments, A symposium. Parker D. Trask, Ed. Amer. Assn. Petroleum Geol., Tulsa, Okla. 736 pp., 1939.

Forch, C., Martin Knudsen, und S. P. L. Sorensen. 1902. Berichte uber die Konstantenbestimmungen zur Aufstellung der hydrographischen Tabellen. D. Kgl. Danske Vidensk. Selsk. Skrifter, 6 Raekke, naturvidensk. og mathem., Afd XII. 1, 151 pp., 1902,

Gunther, E.R. 1936. A report on oceanographical investigations in the Peru coastal current. Discovery Repts., v. 13, p. 107-276, 1936.

Hartmann, G. K., and Alfred B. Focke. 1940. Absorption of supersonic waves in water and in aqueous solutions. Phys. Rev., v. 57, p. 221-25, 1940.

Harvey, H.W. 1928. Biological chemistry and physics of sea water. Cambridge Univ. Press, London. 194 pp., 1928.

Heck, N. H., and Jerry H. Service. 1924. Velocity of sound in sea water. U.S. Coast and Geod. Surv., Spec. Pub. no. 108, 27 pp., 1924.

Helland-Hansen, B. 1912a. Physical oceanography. Ch. 5, p. 210-306 in Murray and Hjort, Depths, of the ocean. Macmillan and Co., London, 821 pp., 1912.

———— 1912b. The ocean waters, An introduction to physical oceanography. Intern. Rev. d. Hydrobiol., Suppl. to Bd. III, Ser. 1, H. 2, 84 pp., 1912. Leipzig.

———————— 1930. Physical oceanography and meteorology. *Michael Sars* North Atlantic Deep-Sea Exped:, 1910, Rept. Sci. Results, v. 1, art. 2, 217 pp., 1930.

Henderson, L. J. 1913. The fitness of the environment. Macmillan Co., New York, 317 pp., 1913.

Hesselberg, Th., and H. U. Sverdrup. 1914. Die Stabilitatsverhaltnisse des Seewassers bei vartikalen Verschiebungen. Bergens Museums Aarbok, no. 14, 17 pp., 1914-15.

Hydrographic Review. Published by the International Hydrographic Bureau Monaco. v. 1–, 1923–to date.

International Association of Physical Oceanography (Assn. d'Oceanogr. Phys.) Union Geod. et Geophys. Intern. 1939. Report of the Committee on Chemical Methods and Units. Presented at 7th General Assembly, Washington, D. C., 1939. Publication Scientifique. In press.

International critical tables of numerical data, physics, chemistry and technology. Published for Nat. Research Council by McGraw-Hill Co., New York. 7 volumes, 1926-1930.

Jocobsen, J. P., and Martin Knudsen. 1940. Urnormal 1937 or primary standard sea-water 1937. Union Geod. et. Geophys. Intern. Assn. d'Oceanographie. Pub sci., no. 7, 38 pp., Liverpool, 1940.

Johnson, Nils G., and G. Liljequist. 1938. On the angular distribution of submarine daylight and on the total submarine illumination. Svenska Hydrogr-Biologiska Kommiss. Skrifter. N.S., Hydrografi no. 14, 15 pp., 1938.

Johnstone, James. 1928, An introduction to oceanography. Univ. Press, Liverpool. 368 pp., 1928.

Jorgensen, Wilhelm, and C.L. Utterback. 1939. Periodic changes in spectral scattering and spectral transmission of daylight in tidal water. Jour. Marine Research, v. 2, p. 30-37, 1939.

Kalle, K. 1938. Zum Problem der Meereswasserfarbe. Ann. d. Hydrogr. und Mar. Meteor., Bd. 66, S. 1-13, 1938.

Knudsen, Martin. 1901. Hydrographical tables. G. E. C. Gad, Copenhagen, 63 pp., 1901.

———— 1903. Gefriepunkttaballe fur Meerwasser. Conseil Perm. Intern. p. l'Explor. de la Mer, Pub. de Circonstance, no. 5, p. 11-13, 1903.

———— 1922. On measurement of the penetration of light into the sea. Conseil Perm. Intern. p. l'Explor. de la Mer, Pub. de Circonstance, no. 76, 16 pp., 1922.

Krümmel, Otto. 1907. Handbuch der Ozeanographic : Bd. 1, Die raumlich, chemischen und physikalischen Verhaltnisse des Meeres. J. Engelhorn. Stuttgart. 526 pp., 1907.

Kuwahara, Susumu. 1939. Velocity of sound in sea water and calculation of the velocity for use in sonic sounding. Hydrogr. Rev., v. 16, no. 2, p. 123-40, 1939. Monaco.

Langevin, P. 1924. The employment of ultra-sonic waves for echo sounding. Hydrogr. Rev., v. 2, no. 1, p. 57-91, 1924. Monaco.

Lyman, John, and Richard H. Fleming. 1940. Composition of sea water. Jour. Marine Research, v. 3, p. 134-46, 1940.

Malmgren, Finn. 1927, On the properties of sea-ice. Norwegian North Polar Exped. with the *Maud* 1918-1925, Sci. Results, v. 1, no. 5, 67 pp., 1927.

Matthews, Donald J. 1923, Physical oceanography. v. 3, p. 665-692 in A dictionary of applied physics, Sir Richard Glazebrook, Ed. Macmilan and Co., London, 1923.

——— 1927. Tables of the velocity of sound in pure water and sea water for use in echo-sounding and sound-ranging. British Admiralty, Hydrogra. Dept., H.D. no. 282, 29 pp., 1927.

——— 1932. Tables of the determination of density of sea water normal pressure, *Sigma-t.* Conseil Perm. Inter p. l'Explor. de la Mer. Copenhagen. pp., 1932.

——— 1938. Tables for calculting the specific volume of sea under pressure. Conseil Perm. Intern. p. l'Expl. de la Mer. Copenhagen. 67 pp., 1938.

McEwen, Geo. F. 1929. Tables to facilitate dynamic computations of ocean currents according to the Bjerknes circulation theory. Scripps Inst. Oceanogr., Univ. Calif. Mimeographed, 1929. La Jolla.

Miyake, Y. 1939a. Chemical studies of the western Pacific Ocean. III. Freezing point, osmotic pressure, boiling point and vapour pressure of sea water. Chem. Soc. Japan, Bull., v. 14, no. 3, p. 58-62, 1939.

——— 1939b. Chemical studies of the western Pacific Ocean. IV. The refractive index of sea water. Chem. Soc. Japan, v. 14, no. 6, p, 239-42, 1939.

Nansen, Fridtjof. 1900. On hydrometers and the surface tension of liquids. Norwegian North Polar Exped. 1893-1896, Sci. Results, v. 3, no. 10, 88 pp., 1900.

Pettersson, Hans. 1936a. Das Licht im Meer. Bioklim. Beiblatter, Heft 1, 11 pp., 1936.

——— 1936b. The transparency of sea water. Conseil Perm. Intern. p. l'Explor. de la Mer, Rapp. et Proc.-Verb., v. 101, pt. 2, no. 6, 7 pp., 1936.

Pettersson, Hans and Otto. 1929. Methods for determination of the density and salinity of sea water. Svenska Hydrogr.-Biologiska Kommiss. Skrifter. N.S., Hydrografi no. 3, p. 1-4, 1929.

Poole, H. H. 1936. The photo-electric measurement of submarine illumination in offshore waters. Conseil Perm. Intern. p. l'Explor. de la Mer, Rapp. et Proc.-Verb., v. 101, pt. 2, no. 2, 12 pp., 1936.

Poole, H.H., and W.R.G. Atkins. 1929. Photo-electric measurements of submarine illumination thoughout the year. Marine Biol. Assn. U.K., Jour., v. 16, p. 297-324, 1929. Plymouth.

Schmidt, Wilhelem. 1917. Wirkungen der ungeordneten Bewegung im Wasser der Meere und Seen. Ann. d. Hydrogr. u. Mar. Meteor., Bd. 45, S. 367-81, 431-45, 1917.

Soule, Floyd M. 1932. Oceanographic instruments and methods. Physics of the earth, v. 5, Oceanography, p. 411-441. Nat. Research Council, Bull. no. 85, 1932.

Sund, Oscar. 1929. An oceanographical slide rule. A new apparatus for calculating oceanographical data. Conseil Perm. Intern. p. l' Explor. de la Mer, Jour. du Conseil, v. 4, p. 93–98, 1929.

Sverdrup, H. U. 1933. Vereinfachtes Verfahren zur Berechnung der Druckund Massenverteilung im Mere. Geofysiske Publikasjoner, v. 10, no. 1, 9 pp., 1933. Oslo.

Swainson, O.W. 1936. Velocity and ray paths of sound waves in sea water. U.S. Coast and Geod. Surv., Field Engineers Bull. no. 10, 64 pp., 1936.

Swartout, J.A., and Malcolm Dole. 1939. The protium-deuterium ratio and the atomic weight of hydrogen. Amer. Chem. Soc., Jour. v. 61, p. 2025–29, 1939.

Taylor, G. I. 1931. Internal waves and turbulence in a fluid of variable density. Conseil Perm. Intern. p. l'Explor. de la Mer, Rapp. et Proc.-Verb., v. 76, p. 35–42, 1931.

Thomas, B.D., T.G. Thompson, and C. L. Utterback. 1934. The electrical conductivity of sea water. Conseil Perm Intern. p. l'Explor. de la Mer, Jour. du Conseil, v. 9, p. 28–35, 1934.

Thompson, T. G. 1932. The physical properties of sea water. Physics of the earth, v. 5, Oceanography, p. 63–94. Nat. Research Council, Bull. no. 85, 1932.

Utterback, C. L. 1936. Spectral bands of submarine solar radiation in the North Pacific and adjacent inshore waters. Conseil Perm. Intern. p. l'Explor. de la Mer, Rapp. et Proce.-Verb., v. 101, pl. 2, no. 4, 15 pp., 1936.

Utterback, C. L., T. G. Thompson, and B. D. Thomas. 1934. Refractivity-chlorinity-temperature relationships of ocean waters. Conseil Perm. Intern. p. l'Explor. de la Mer, Jour. du Conseil, v. 9, p. 35-38, 1934.

Wenner, F., Edward H. Smith, and Floyd M. Soule. 1930. Apparatus for the determination abroad ship of the salinity of sea water by the electrical conductivity method. Jour. Research, U.S. Bur. Standards, v. 5, p. 711-32, 1930.

Wirth, H. E., T.G. Thompson, and C. L. Utterback. 1935. Distribution of isotopic water in the sea. Amer. Chem. Soc., Jour., v. 57, p. 400-04, 1935.

Writting, R. 1908. Untersuchungen zur Kenntnis der Wasserbewegungen und der Wasserumsetzung in den Finnland umgebenden Meeren. Finlandische Hydrogr.-Biologische Untersuchungen, no. 2, 246 pp., 1908. *Cf.* p. 173.

Young, R.T., Jr., and R.D. Gordon. 1939. Report on the penetration of light in the Pacific Ocean off the coast of southern California. Scripps Inst. Oceanogr., Univ. Calif., Bull., tech. ser., v. 4, p. 197-218, 1939.

CHAPTER IV

BIBLIOGRAPHY

Angstrom, Anders. 1920. Applications of heat radiation measurements to the problems of the evaporation from lakes and the heat convection at their surfaces. Geografiska Annaler, H. 3, 16 pp. Stockholm. 1920.

Birge, E.A., and C. Juday. 1929. Transmission of solar radiation by the waters of inland lakes. Wisconsin Acad. Sci., Arts, and Letters, Trans., v. 24, p. 509-80, 1929.

Bjerkness, V., J. Bjerknes, H. Solberg, T. Bergeron. 1932. Physikalische Hydrodynamik. Berlin. Julius Springer, 797 pp., 1932.

Bohnecke, G. 1938. Temperatur, Salzgehalt und Dichte an der Oberflache des Atlantischen Ozeans. Deutsche Atlantische Exped. *Meteor* 1925-1927, Wiss. Erg., Bd. 5, 2 Lief., 62 pp., 1938.

Bowen, I.S. 1926. The ratio of heat losses by conduction and by evaporation from any water surface. Phys. Rev., v. 27, p. 779-787, 1926.

Defadt, Albert. 1928. Die systematische Erforschung des Weltmeeres. Gesellsch. f. Erdkunde, Zeitschrift, Jubilaums Sonderband, p. 459-505, Berlin, 1928.

__________ 1932. Die Gezeiten und inneren Gezeitenwellen des Attentischen Ozeans. Deutsche Atlantische Exped. *Meteor* 1925–1927, Wiss. Erg., Bd. 7, 1 Teil, p. 1–318, 1932.

__________ 1936. Ausbreitungs- und Vermischungsvorgange im Antarktischen Bodenstrom und im Subantarktischen Zwischenwasser. Deutsches Atlantische Exped. *Meteor* 1925-1927, Wiss. Erg., Bd. 6,2 Teil, Lief. 2, p. 55–96, 1936.

Fjedstad, J. 1933. Warmeleitung im Meere. Geofysiske Publikasjoner, v. 10, no. 7, 20 pp., 1933. Oslo.

Fleming, R.H., and Roger Revelle. 1939. Physical processes in the ocean. P. 48–141 in: Recent Marine Sediments, A symposium Tulsa. Amer. Assn. Petrol. Geol. 1939.

Gaarder, T. and R. Sparck. 1932. Hydrographisch-biochemische Untersuchungen in norwegischen Austern-Pollen. Bergens Museums Aarbok 1932, Naturvidenskapeligrekke, Nr. 1, p. 5—144, 1932.

Helland-Hansen, B. 1916. Nogen hydrografiske metoder. Skand. Naturforsker mote, Kristiania (Oslo). 1916.

__________1930. Physical oceanography and meteorology. *Michael Sars* North Atlantic Deep-Sea Exped., 1910, Rept. Sci. Results, v. 1, art. 2, 217 pp., 1930.

Iselin, C. O'D. 1939. The influence of vertical and lateral turbulence on the characteristics of the waters at mid-depths. Nat. Research Council, Amer. Geophys. Un., Trans., p. 414–17, 1939.

Jacobs, W. C. 1942. On the energy exchange between sea and atmosphere. Jour. Marine Research, v. 5, 37–66, 1942.

Kimball, Herbert H. 1928. Amount of solar radiation that reaches the surface of the earth on the land and on the sea, and methods by which it is measured. Monthly Wea. Rev., v. 56, p. 393-99, 1928.

Koenuma, K. 1939. On the hydrography of southwestern part of the North Pacific and the Kuroshio. Imper. Marine Observ., Memoirs, v. 7, p. 41-114, 1939. Kobe.

Krummel, Otto. 1907. Handbuch der Ozeanographie. Bd. 1. Stuttgart. J. Engelhorn, 526 pp., 1907.

Kuhlbrodt, Frich, and Joseph Reger. 1938. Die meteorologischen Beobachtungen. Methoden, Beobachtungamaterial und Ergebnisse. Deutsche Atlantische Exped. *Meteor* 1925-1927, Wiss. Erg., Bd. 14, p. 215-345, 1938.

McEwen, George F. 1938, Some energy relatians between the sea surface and the atmosphere. Jour. Marine Research, v. 1, p. 217-38, 1938.

Millar, F. Graham. 1937. Evaporation from free water surfaces. Canadian Meteorol. Memoirs, v. 1, p. 41-65, 1937. Ottawa.

Montgomery, R.B. 1940. Observations of vertical humidity distribution above the ocean surface and their relation to evaporation. Papers in Physical Oceanogr, and Meteorol., v. 7, no 4, 30 pp., 1940. Cambridge and Woods Hole.

Mosby, Hakon. 1936. Verdunstung und Strahlung auf dem Meere. Ann. d. Hydrogr. u. Mar. Meteor., Bd., 64, p. 281-86, 1936.

Netherlands Meteorological Institute. Atlas of oceanographic and meteorological observations.

Neumann, Gerhard, 1940. Die ozeanographischen Verhalltnisse an der Meeresoberfiache im Golfstromsektor nordlich und nordwestlich der Azoren. Ann. d. Hydrogr. u. Mar. Meteor., Beiheft zum Juniheft, 1. Lief., 87 pp., 1940.

Powell, Wilson M,, and G. L. Clarke. 1936. The reflection and absorption of daylight at the surface of the ocean. Optical Soc. Amer., Jour., v. 26, p. 111-120, 1936.

Schmidt, Wilhelm. 1915. Strahlung und Verdunstung an freien Wasserflachen; ein Beitrag zum Warmehaushalt des Weltmeers und Wasserhaushalt der Erde Ann. d. Hydrogr. u. Mar. Meteor., Bd. 43, p. 111-24, 1915.

Schott, G. 1935. Geographie des Indischen und Stillen Ozeans. Hamburg, C. Boysen, 413 pp., 1935.

Skogsberg, Tage. 1936. Hydrography of Monterey Bay, California. Thermal conditions, 1929-1933. Amer. Phil. Soc., Trans., N.S., v. 29, p. 1-152, 1936.

Strom, K.M. 1936. Land locked waters. Hydrography and bottom deposits in badly ventilated Norwegian fjords with remarks upon sedimentation under anaerobic conditions. Norske. Vidensk. Akad. I. Mat. Naturv. Klasse, No. 7, 85 pp., 1936.

Sverdrup, H.U. 1929. The waters on the North-Siberian Shelf. Norwegian North Polar Exped. with the *Maud* 1918–1925, Sci. Results, v. 4, no. 2, 131 + 75 pp., 1929.

__________1937. On the evaporation from the oceans. Jour. Marine Research. v. 1 p. 3–14, 1937.

__________1940. On the annual and diurnal variation of the evaporation from the oceans. Jour. Marine Research, v. 3, p. 93–104, 1940.

Sverdrup, H.U., and R.H. Fleming. 1941. The waters off the coast of southern California, March to July, 1937 Scripps Inst. Oceanogr., Univ. Calif., Bull., v. 4, p. 261–378. 1941.

Taylor, G. I. 1919. Tidal friction in the Irish Sea. Roy. Soc., Philos. Trans , Series A, v. 220, p. I ff., 1919. London.

U. S. Weather Bureau. 1938. Atlas of climatic charts of the oceans. W.B. no. 1247, 130 pp., 1938. Washington, D. C.

Vercelli, Francesco. 1937. La propagazione delle radiazioni solar nelle acque marine. La Laguna di Venezia, v. 1, parte II, tomo V, 102 pp., 1937. Venice.

von Hann, Julius. 1915. Lehrbuch der Meteorologie. 3rd ed , Leipzig. Tauchnitz. 847 pp., 1915.

Wegemann, G. 1920. Der tagliche Gang der Temperatur der Meere und seine monatliche Veranderlichkeit. Wiss. Meeresuntersuch., N.F., Bd. 19, Abt. Kiel Abh. 2. Kiel. 1920.

Wust. Georg. 1935. Die Stratosphare. Deutsche Atlantische *Exped. Meteor* 1925–1927, Wiss. Erg., Ed. 6, 1 Teil, 2. Lief. 288 pp., 1935.

__________ 1936. Oberflachensalzgehalt, Verdunstung und Niederschlag auf dem Weltmeere. Festschrift Norbert Krebs (Landerkundliche Forschung), p. 347–59. Stuttgart. 1936.

CHAPTER V

BIBLIOGRAPHY

Defant, Albert. 1929. Stabile Lagerung ozeanischer Wasserkorper und dazu gehorige Stromsysteme. Berlin Universitat, Institut f. Meereskunde, Veroff., N.F., A. Geogr.-naturwiss. Reihe, Heft 19, 33 pp., 1929.

__________ 1936. Ausbreitungs- und Vermischungsvorgange im Antarktischen Bodenstrom und im Subantarktischen Zwischenwasser. Deutsche Atlantische Exped. *Meteor* 1925–1927, Wiss. Erg., Bd. 6, 2 Teil, 2. Lief, p. 55–96, 1936.

Montgomery, R. B. 1939. Ein Versuch, den vertikalen und seitlichen Austausch in der Tiefe der Sprungschicht im aquatorialen Atlantischen Ozean zu bestimmen. Ann. d. Hydrogr. u., Mar. Meteor., p. 242–46, 1939.

Seiwell, H. R. 1937. The minimum oxygen concentration in the western basin of the North Atlantic, Papers in Physical Oceanogr. and Meteorol., v. 5, 24 pp., 1937. Cambridge and Woods Hole, Mass.

Sverdrup, H. U. 1939. Lateral mixing in the deep water of the South Atlantic Ocean. Jour. Marine Research, v. 2, p. 195-207, 1939.

Sverdrup, H. U., and R. H. Fleming. 1941. The waters off the coast of southern California, March to July, 1937. Scripps Inst. Oceanogr., Univ. California, Bull., v. 4; no. 10, p. 261-378, 1941.

Thorade, Hermann. 1931. Stromung und unzgenformige Ausbreitung des Wassers. Gerlands Beitr. z. Geophys., Bd. 34, Koppen-Bd. 3, p. 57-76, 1931.

Wattenberg, Hermann. 1938, Die Verteilung des Sauerstoffs und des Phosphats im Atlantischen Ozean. Deutsche Atlantische Exped. *Meteor* 1925-1927, Wiss Erg., Bd. 9, 1. Lief, 132 pp., 1938.

Wust, Georg. 1935. Die Stratosphare. Deutsche Atlantische Expen. *Meteor* 1925-1927 Wiss. Erg., Bd. 6, 1 Teil, 2. Lief, 288 pp., 1935.

ZoBell, C.E. 1940. The effect of oxygen tension on the rate of oxidation of organic matter in sea water by bacteria. Jour. Marine Research, v. 3, no. 3, p. 211-223, 1940.

CHAPTER VI

BIBLIOGRAPHY

Atkins, W.R.G. 1923. The phosphate content of fresh and salt waters in its relationship to the growth of algal plankton. Marine Biol. Assn. U. K., Jour., v. 13, p. 119-50, 1923. Plymouth.

__________ 1936. Estimation of zinc in sea water using sodium diethyl-dithiocorbamate. Marine Biol. Assn. U.K., Jour., v. 20, p. 625-26, 1936. Plymouth.

Ball, Eric G., and C.C. Stock. 1937. The *p*H of sea water as measured with the glass electrode. Biol. Bull., v. 73, p. 221-26, 1937.

Bein, Willy, H. Hirsekorn, L. Moller. 1935. Konstantenbestimmungen des Meerwassers und Ergebnisse uber Wasserkorper. Berlin Universitat, Institut f. Meereskunde, Veroff., N.F., A. Geogr.-naturwiss. Reihe, Heft 28, 240 pp., 1935.

Boury, M. 1938. Le plomb dans le milieu marin. L'Office des-Peches maritimes. Revue des Travaux scientifiques, v. 11, p. 157-66, 1938. Paris.

Buch, Kurt. 1933a. Der Borsuregehalt des Meerwassers und seine Bedeutung bei der Berechung des Kohlensauresystems im Meerwasser. Conseil Perm. Internat. p. I'Explor. de la Mer, Rapp. et Proc.-Verb., v. 85, p. 71-75, 1933.

________ 1933b, On boric acid in the sea and its influence on the carbonic acid equilibrium. Conseil Perm. Internat. p. I'Explor. de la Mer. Jour. du Conseil, v. 8, p. 309-25, 1933.

________ 1937. Die kolorimetrische Bestimmung der Wasserstoffionen-koncentration im Seewasser. pt. 2, p. 27-33 in : Wattenberg, H., Critical review of the methods used for determining nutrient salts and related constituents in salt water. Conseil Perm. Internat. p. I'Explor. de la Mer, Rapp. et Proc.-Verb , v. 103, 1937.

________ 1938. New Determination of the second dissociation constant of carbonic acid in sea water. Acta Acad. Aboensis, Math. et Physica, v. 11, no. 5, 18 pp., 1938. Abo, Finland.

________ 1939a. Beobachtungen uber das Kohlensauregleichgewicht und uber den Kohlensaureaustausch zwischen Atmosphare und Meer im Nord-Atlantischen Ozean. Acta Acad. Aboensis, Math. et Physica, v. 11, no. 9, 32 pp., 1939. Abo, Finland.

________ 1939b. Kohlensaure in Atmosphare und Meer an der Grenze zum Arkitkum. Acta Acad. Aboensis, Math. et Physica, v. 11, no. 12, 41 pp., 1939. Abo, Finland.

Buch, Kurt, H. W. Harvey, H. Wattenberg, and S. Gripenberg. 1932. Uber das Kohlensauresystem im Meerwasser. Conseil Perm. Internat. p. I'Explor. de la Mer, Rapp. et Proc.-Verb., v. 79, 70 pp., 1932.

Buch, Kurt, and Ole Nynas. 1939. Studien tiber neuere *p*H,-Methodik mit bessonderer Berucksichtigung des Meerwassers. Acta Acad. Aboensis, Math. et Physica, v. 12, no. 3, 41 pp.. 1939. Abo, Finland.

Clark, W.M. 1928. The determination of hydrogen ions. 3rd ed., Baltimore, Williams and Wilkins, 717 pp., 1928.

Clarke, F.W. 1924. The data of geochemistry. 5th ed. U.S. Geol. Survey, Bull. no. 770, 841 pp., 1924. Washingtoh, D.C.

Closs, Karl, 1931. Uber das Vorkommen des Jods im Meer und in Meeres-organismen. Morten Johansen, Oslo. 150 pp., 1931.

Clowes, A.J. 1938. Phosphate and silicate in the southen oceans. Discovery Repts., v. 19, p. 1-120, 1938.

Cooper, L.H.N. 1935. Iron in the sea and in marine plankton. Roy. Soc., Proc., Ser. B, v. 118, p. 419-38, 1935. London.

________ 1937a. Oxidation-reduction potential in sea water. Marine Bio. Assn. U.K., Jour., v. 22, p. 167-76, 1937. Plymouth.

________ 1937b. Some conditions governing the solubility of iron. Roy. Soc., Proc., Ser. B, v. 124, p. 299-307, 1937. London.

——————1938a. Salt error in determinations of phosphate in sea water. Marine Biol. Assn. U.K., Jour., v. 23, p. 171–78, 1938. Plymouth.

——————1938b. Redefinition of the anomaly of the nitrate-phosphate ratio. Marine Biol. Assn. U.K., Jour., v. 23, p. 179, 1938. Plymouth.

Dietz, R.S., K. O. Emery, and F.P. Shepard. 1942. Phosphorite deposits on the sea floor off southern California. Geol. Soc. Amer., Bull, v. 53, p. 815-48, 1942.

Dittmar, W. 1884. Report on researches into the composition of ocean water, collected by H.M.S. *challenger.* Challenger Repts., Physics and Chem., v. 1, p. 1-251, 1884.

Dorsey, N. Ernest. 1940. Properties of ordinary water-substance. Amer. Chem. Soc., Monograph Ser. No. 81, New, York, Reinhold Pub. Corp., 673 pp., 1940.

Ernst, Theodor, Hans Hoermann. 1936. Bestimmung von Vanadium, Nickel und Molybdan im Meerwasser. Gesellsch. d. Wiss. zu Gottingen. Math.-Phys. Klasse, Fachgruppe IV, Geol. u. Mineral., v. 1. p. 205-08, 1936.

Evans, R.D., A.F. Kip, and E.G. Moberg. 1938. The radium and radon content of Pacific Ocean water, life, and sediments. Amer. Jour. Sci., v. 36, p. 241-59, 1938.

Field, R.M. 1932. Microbiology and the marine limestones. Geol. Soc. Amer., Bull., v. 43, p. 487-93, 1932.

Fox, C. J. J. 1907. On the coefficients of absorption of the atmospheric gases in distilled water and sea water. Conseil Perm. Internat. p. l'Explor. de la Mer, Pub. de Circonstance, no. 41, 27 pp., 1907.

——————1909. On the coeffiicients of absorption of nitrogen and oxygen in distilled water and sea water and of atmospheric carbonic acid in sea water. Faraday Soc., Trans., v. 5, p. 68-87, 1909.

Fox, H. Munro, and Hugh Ramage. 1931. A spectrographic analysis of animal tissues. Roy. Soc., Proc., Ser. B. v. 108, p. 157-73, 1931. London.

Foyn, Ernst, B. Karlik, H. Pettersson. and E. Rona. 1939. The radioactivity of seawater. Oceanografiska Inst. Goteborg (Goteborgs K. Vetensk. . . . Handlingar, 5, Ser. B), Meddelanden, N.S., 44 pp., 1939.

Gaarder. T. 1916. De vestlandske fjordes hydrografi. I. Surstoffet i fjordene. Bergens Mus. Aarbok, 1915-16.

Goldschmidt, V. M. 1933 Grundlagen der quantitativen Geochemie. Fort-schritte der Mineral., Kristal. und Petrographie, v. 17, p. 112-56, 1933.

——————1937. The principles of distribution of chemical elements in minerals and rocks. Chem. Soc., Jour., p. 655-73, 1937. London.

Goldschmidt, V.M., and L.W. Strock. 1935. Zur Geochemie des Selens, II. Gesellsch. d. Wiss. zu Gottingen, Math.-Phys. Klasse. Fachgruppe IV, Geol. u. Mineral., N.F., v. 1, p. 123-42, 1935.

Greenberg, D.M., E.G. Moberg, and E. C. Allen. 1932. Determination of carbon dioxide and titratable base in sea water. Ind. Eng. Chem. Anal. ed., v. 4. p. 309-13, 1932.

Gripenberg, Stina. 1937a. The calcium content of Baltic water. Conseil Perm. Internat. p. l'Explor. de la Mer, Jour. du Conseil, v. 12, p. 293-304, 1937.

——— 1937b. The determination of excess base in seawater. Internat: Assn. Phys. Oceanogr. (Assn. d'Oceanogr. Phys.), Union Geod. et Geophys. Internat., Proc.-Verb., no. 2, p. 150-52, 1937. Liverpool.

Haber, F. 1928. Das Gold im Meere. Zeitschr. d. Gesellsch. f. Erdkunde, Suppl. 3, p. 3-12, 1928.

Haendler, H.M., and T.G. Thompson. 1939. The determination and occurrence of aluminum in sea water. Jour. Marine Research, v. 2, p. 12–16, 1939.

Harding, M. W., and E. G. Moberg. 1934. Determination and quantity of boron in sea water. Fifth Pacific Sci. Cong.. Canada, 1933, Proc., v. 3, p. 2093-95, 1934.

Harvey, H. W. 1926. Nitrates in the sea. Marine Biol. Assn. U.K., Jour., v. 14, p. 71–88, 1926. Plymouth.

——— 1937. The supply of iron to diatoms. Marine Biol. Assn. U.K., Jour., v. 22, p. 205-19, 1937. Plymouth.

Hewitt, L. F. 1937. Oxidation-reduction potentials in bacteriology and bio-chemistry. 4th ed. London County Council, no. 3200, 101 pp., 1937.

Igelsrud, Iver, and T.G. Thompson. 1936. Equilibria in the saturated solutions of salts occurring in see water. II. The quaternary system $MgCl_2$-$CaCl_2$-KCl-H_2O at 0°. Amer. Chem. Soc., Jour., v. 58, p. 1–13, 1936.

Igelsrud, Iver, T. G. Thompson, and B. M. G. Zwicker. 1938. The boron content of sea water and of marine organism. Amer. Jour. Sci., v. 35, p. 47–63, 1938.

International Assn. Phys. Oceanography. (Assn. d'Oceanographie Physique, Union Geodesique et Geophysique Internationale.) Report of the Committee on Chemical Methods and Units. Presented at 7th General Assembly, Washington, D. C., 1939. Publication scientifique. (In press.)

Jacobs, Woodrow C. 1937. Preliminary report on a study of atmospheric chlorides. Monthly Wea. Review, v. 65, p. 147–51, 1937. Washington, D. C.

Jacohsen, J. P., and Martin Knudsen. 1940. Urnormal 1937 or primary standard sea-water 1937. Internat. Assn. Phys. Oceanogr. (Assn. d'Oceanogr. Phys., Union Geod. et Geophys. Internat.) Pub. sci. 7, 38 pp., 1940. Liverpool.

Johnstone, James. 1928. An introduction to oceanography. Liverpool, University Press, 368 pp., 1928.

Kirk, P. L., and E. G. Moberg. 1933. Microdetermination of calcium in sea water. Ind. Eng. Chem., Anal. ed., v. 5, p. 95–97, 1933.

Knopf, A. 1931. Age of the ocean. Physics of the earth, v. 4, Age of the earth, pt. 2, p. 65–72. Nat. Res. Council, Bull., no. 80, 1931. Washington, D. C.

Kohler, Hilding. 1921. Zur Kondensation des Wasserdampfes in der Atmosphare. Geofosiske Publikasjoner, v. 2, no. 1, 15 pp., 1921. Oslo.

Krogh, August. 1904. On the tension of carbonic acid in natural waters and especially in the sea. Medd. om Gronland, v. 26, p. 342, 1904.

——————— 1934. A method for the determination of ammonia in water and air. Biol. Bull., v. 67, p. 126–131, 1934.

Krummel, Otto. 1907. Handbuch der Ozeanographie. Bd. I. Die raumlichen, chemischen und physikalischen Verhaltnisse des Meeres. Stuttgart, J. Engelhorn, 526 pp., 1907.

Lewis, G. N., and Merle Randall. 1923. Thermodynamics and the free energy of chemical substances. N. Y., McGraw-Hill, 653 pp., 1923.

Lyman, John, and R. H. Fleming. 1940. Composition of sea water Jour. Marine Research, v. 3, p. 134–46, 1940.

McClendon, J. F., C. C. Gault, and S. Mulholland. 1917. The hydrogen-ion concentration, CO_2-tension, and CO_2-content of sea water. Carnegie Inst. Washington, Pub. no. 251, Papers from Dept. Marine Biol., p. 21–69, 1917.

Malmgren, Finn. 1927. On the properties of sea-ice. Norwegian North Polar Exped. with the *Maud* 1918–1925, Sci. Results, v. 1, no. 5, 67 pp., 1927.

Marks, Graham. 1938. The copper content and copper tolerance of some species of mollusks of the southern California coast. Biol. Bull., v. 75, p. 224–37, 1938.

Michaelis, L. 1930. Oxidation–reduction potentials. Phila., Lippincott, 199 pp., 1930.

Mitchell, P. H., and N. W. Rakestraw. 1933. The buffer capacity of sea water. Biol. Bull., v. 65, p. 437–451, 1933.

Moberg, E. G., D. M. Greenberg, R. Revelle, and E. C. Allen. 1934. The buffer mechanism of sea water. Scripps Inst. Oceanogr., Calif. Univ., tech. ser., v. 3, p. 231–78, 1934.

Moberg, E. G., and R. R. D. Revelle. 1937. The distribution of dissolved calcium in the North Pacific. Internat. Assn. Phys. Oceanogr. (Union Geod. et Geophys. Internat., Assn. d'Oceanogr. Phys.), Proces verb., no. 2, p. 153, 1937.

Rakestraw, Norris W. 1936. The occurrence and significance of nitrite in the sea. Biol. Bull., v. 71, p. 131–67, 1936.

Rakestraw, N. W., and V. M. Emmel. 1937. The determination of dissolved nitrogen in water. Ind. Eng. Chem., Anal. ed., v. 9, p. 344–46, 1937.

————1938a. The relation of dissolved oxygen to nitrogen in some Atlantic waters. Jour. Marine Research, v. 1, p. 207–16. 1938.

————1938b. The solubility of nitrogen and argon in sea water. Jour. Phys. Chem., v. 42, p. 1211–15, 1938.

Rakestraw, N. W., C. E. Herrick, Jr., and W. D. Urry. 1939. The helium-neon content of sea water and its relation to the oxygen content. Amer. Chem. Soc., Jour., v. 61, p. 2806–07, 1939.

Rakestraw, N. W., and F. B, Lutz. 1933. Arsenic in sea water. Biol. Bull., v. 65, p. 397–401, 1933.

Rakestraw, N. W., H. E. Mahncke, and E. F. Beach. 1936. Determination of iron in sea water. Ind. Eng. Chem., Anal. ed., v. 8, p. 136–38, 1936.

Reith, J. F. 1930. Der Jodgehalt von Meerwasser. Recueil Trav. chim. Pays-Bas, v. 49, p. 142–50, 1930.

Revelle, Roger. 1934. Physico-chemical factors affecting the solubility of calcium carbonate in sea water. Jour. Sedim. Petrol., v. 4, p. 103–10, 1934.

Revelle, Roger. 1936. Marine bottom samples collected in the Pacific Ocean by the *Carnegie* on its seventh cruise. California University, Dissertation, 1936. (Carnegie Inst. Washington, *Carnegie* Repts. In press.)

Revelle, Roger, and R. H. Fleming. 1934. The solubility product constant of calcium carbonate in sea water. Fifth Pacific Sci. Cong., Canada, 1933, Proc., v. 3, p. 2089–92, 1934.

Riley, G. A. 1937. The significance of the Mississippi River drainage for biological conditions in the northern Gulf of Mexico. Jour. Marine Research, v. 1, p. 60–74, 1937.

Robinson, Rex J., and F. W. Knapman. 1941. The sodium-chlorinity ratio of ocean waters from the northeast Pacific. Jour. Marine Research, v. 4, p. 142–152, 1941.

Robinson, Rex J., and H. E. Wirth. 1934. Report on the free ammonia, albuminoid nitrogen and organic nitrogen in the waters of the Puget Sound area, during the summers of 1931 and 1932. Conseil Perm. Internat. p. l'Explor. de la Mer, Journal du Conseil, v. 9, p. 15–27, 1934.

————1935. Photometric investigation of the ceruleo-molybdate determination of phosphate in waters. Ind. Eng. Chem., Anal. ed., v. 7, p. 147–50, 1935.

Rogers, C. G. 1938. Textbook of comparative physiology. 2d ed. New York, McGraw-Hill, 715 pp., 1938.

Smith, C. L. 1940. The Great Bahama Bank. II. Calcium carbonate precipitation. Jour. Marine Research, v. 3, p. 171–189, 1940.

Strom, K. M. 1936. Land-locked waters. Hydrography and bottom deposits in badly ventilated Norwegian fjords with remarks upon sedimentation under anaerobic conditions. Norske Vidensk. Ak. i Oslo, 1. Math.-Naturv. Klasse, no 7, 85 pp., 1936.

Subow, N. N. *1931*. Oceanographical tables. U.S.S.R., Oceanogr. Institute, Hydro-meteorol. Com., 208 pp., 1931. Moscow.

Sverdrup, H. U. 1929. The waters on the North-Siberian Shelf. Norwegian North Polar Exped. with the *Maud* 1918–1925, Sci. Results, v. 4, no. 2, 206 pp., 1929.

Thomas, Bertram D., and T. G. Thompson. 1933. Lithium in sea water. Science, v. 77, p. 547–48, 1933.

Thompson, T. G., and R. W. Bremner. 1935a. The determination of iron in sea water. Conseil Perm. Internat. p. l'Explor. de la Mer, Jour. du Conseil, v. 10, p. 33–38, 1935.

——————1935b. The occurrence of iron in the water of the northeast Pacific Ocean. Conseil Perm. Internat. p. l' Explor. de la Mer, Jour. du Conseil, v. 10, p. 39–47, 1935.

Thompson, T. G., and H. G. Houlton. 1933. Determination of silicon in sea water. Ind. Eng. Chem., Anal. ed., v 5, 417–21, 1933.

Thompson, T. G., W. R. Johnston, and H. E. Wirth. 1931. The sulfate-chlorinity ratio in ocean water. Conseil Perm. Internat. p. l'Explor. de la Mer. Jour. du Conseil, v. 6, p. 246–51, 1931.

Thompson, T. G., and R. J. Robinson. 1932. Chemistry of the sea. Physics of the earth, v. 5, Oceanography, p. 95–203. Nat. Research Council, Bull., no. 85, 1932. Washington, D. C.

—————— 1939. Notes on the determination of dissolved oxygen in sea water. Jour. Marine Research, v. 2, p. 1–8, 1939.

Thompson, T. G., and H. J. Taylor. 1933. Determination and occurrence of fluorides in sea water. Ind. Eng. Chem., Anal. ed., v. 5, p. 87–89, 1933.

Thompson, T. G., and T. L. Wilson. 1935. The occurence and determination of manganese in sea water. Amer. Chem., Soc., Jour., v. 57, p. 233–36, 1935.

Thompson, T. G , and C. C. Wright. 1930. Ionic ratios of the waters of the North Pacific Ocean. Amer. Chem. Soc., Jour., v. 52, p. 915–21,1930.

Tourky, A. R., and D. H. Bangham. 1936. Colloidal silica in natural waters and the "silicomolybdate" colour test. Nature, v. 138, p. 587–88, 1936.

Wattenberg, H. 1933. Uber die Titrationsalkalinitat und den Kalziumkarbonatgehalt des Meerwassers. Deutsche Atlantische Exped. *Meteor* 1925–1927, Wiss. Erg., Bd. 8, 2 Teil, pp. 122–231, 1933.

——————1936. Kohlensaure und Kalziumkarbonat im Meere. Fortschritte d. Mineral., Kristal. u. Petrographie, v. 20, p. 168–95, 1936.

__________ 1937. Critical review of the methods used for determining nutrient salts and related constituents in salt water. 1. Methoden zur Bestimmung von Phosphat, Silikat, Nitrat und Ammoniak im Seewasser. Conseil Perm. Internat. p. l'Explor. de la Mer, Rapp. et Proc.-Verb,, v. 103, pt. 1, p. 1–26, 1937.

__________ 1938. Zur Chemie des Meerwassers: Uber die in Spuren vor-kommenden Elemente. Zeitschr. f. anorg. u. allgemeine Chemie, v. 236, p. 339–60, 1938.

Wattenberg, H., and E. Timmermann. 1936. Uber die Sattigung des Seewassers an $CaCO_3$, und die anorganogene Bildung von Kalksedimenten. Ann. d. Hydrogr. u. Mar. Meteor., p. 23-31, 1936.

__________ 1938. Die Loslichkeit von Magnesiumkarbonat und Strontiumkarbonat in Seewasser. Kieler Meeresforschungen, Bd. 2, p. 81–94, 1938.

Webb, D. A. 1937. Studies on the ultimate composition of biological material. Pt. 2. Spectrographic analyses of marine invertebrates with special reference to the chemical composition of their environment. Roy. Dublin Soc., Sci,, Proc., v. 21, p. 505–39, 1937.

__________ 1938. Strontium in sea water and its effect on calcium determinations. Nature, v. 142, p. 751–52, 1938.

__________ 1939. The sodium and potassium content of sea water. Jour. Exper. Biol., v. 16, p. 178–83, 1939.

Wiese, W. 1930. Zur Kenntnis der Salze des Meereises. Ann. d. Hydrogr. u. Mar. Meteor., Jahrg. 58, p. 282–286, 1930.

CHAPTER VII

BIBLIOGRAPHY

Barnes, C. A. and T. G. Thompson. 1938. Physical and chemical investigations in Bering Sea and portions of the North Pacific Ocean. Univ. of Washington, Pub. in Oceanogr., v. 3, no. 2, 79+App. 163 pp., 1938. Seattle.

Bond, R. M. 1933. A contribution to the study of the natural food-cycle in aquatic environments. Bingham Oceanogr. Coll., Peabody Museum, Bull., v. 4, art. 4, 89 pp., 1933.

Carey, Cornelia L. 1938. The occurrence and distribution of nitrifying bectaria in the sea. Jour. Marine Research, v. 1, p. 291-304, 1938.

Carnegie Results. Physical and chemical data and results of dynamic computations for *Carnegie* deep-sea stations, 1928-1929, Tabulated data. Results of Oceanographic and Meteorological Work on Board the *Carnegie* on Cruise VII, 1928-1929. (In press.) Carnegie Institution of Washington.

Clarke, F. W., and W. C. Wheeler. 1922. The inorganic constituents of marine invertebrates. U. S. Geol. Surv., Prof. Paper, no. 124, p. 1-62, 1922.

Clements, F. W., and R. C. Hutchinson. 1939. The ash constituents of Australian fish. Australian Jour Exper. Biol. and Med. Sci., v. 17, p. 89-92, 1939.

Clowes, A. J. 1938. Phosphate and silicate in the southern oceans. Discovery Repts., v. 19, p. 1-120, 1938.

Cooper, L. H N. 1933. Chemical constituents of biological importance in the English Channel, November, 1930, to January, 1932. Marine Biol. Assn. U. K., Jour., v. 18, p. 677-753, 1933. Plymouth.

__________ 1934. The determination of phosphorus and nitrogen in plankton. Marine Biol. Assn. U.K., Jour., v. 19, p. 755-59, 1934. Plymouth.

__________ 1935. The rate of liberation of phosphate in sea water by the breakdown of plankton organisms. Marine Biol. Assn. U.K., Jour., v 20, p. 197-200, 1935. plymouth.

__________ 1937a. "Organic" phosphorus in sea water from the English Channel. Marine Biol. Assn. U.K. Jour.,v. 21, p. 673-78, 1937. Plymouth.

__________ 1937b. The nitrogn cycle in the sea. Marine Biol. Assn. U.K. Jour., v. 22, p. 183-204, 1937. Plymouth.

__________ 1938a. Redefinition of the anomly of the nitrate-phosphate ratio. Marine Biol. Assn. U.K. Jour., v. 23. p. 179, 1938. Plymouth.

__________ 1938b. Phosphate in English Channel, 1933-38, with a comparison with earlier years, 1916 and 1923-32. Marin Biol. Assn., U.K., Jour., v. 23, p. 181-95, 1938. Plymouth.

Deacon, G.E.R. 1933. A general account of the hydrology of the South Atlantic Ocean. Discovery Repts., v. 7, p. 171-337, 1933.

Defant, A. G. Bohnecke, H. Wattenberg. 1936. Die ozeanographischen Arbeiten des Vermessungsschiffes *Mereor* in der Danemarkstrasse und Irmingersee, Berlin Universitat, Institut f. Meereskunde, veroff., N.F., A Geognaturwiss. Reihe, Heft 32, 152 pp., 1936.

Discovery Reports. 1932. Station-list, 1929-1931. Discovery Repts., v. 4, p. 1-230, 1932.

Fleming, Richard H. 1940. The composition of plankton and units for reporting populations and production. Sixth Pacific Sci. Congr., Calif., 1939, Proc. v. 3, p. 535-540, 1940.

Gilson, H. C. 1907. The nitrogen cycle. John Murray Exped., 1933-34, Sci., Repts., v. 2, no. 8, p. 21-81, 1937.

Huthchison, A. H. 1928. A bio-hydrographical investigation of the sea adjacent to the Fraser River mouth. Roy. Soc. Can.,Trans., v. 22, Sect. 5, p. 293-310, 1928.

Jowett, W. G., and W. Davies. 1938. A chemical study of some Australian fish. Australia, Council for Sci. and Industr. Research, Pamphlet 85. 40 pp., 1938.

Keys, Ancel, E. H. Cristensen, and A. Krogh. 1935. The organic metabolism of sea water with special reference to the ultimate food cycle in the sea. Marine Biol. Assn. U. K., Jour., v. 20, p. 181-96, 1935. Plymouth.

King, E. J., and Voila Davidson. 1933. The biochemistry of silicic acid. IV. Relation of silica to the growth of phytoplankton. Biochem. Jour., v. 27, p. 1015-21, 1933.

Krogh, August. 1931. Dissolved substances as food of aquatic organisms. Conseil Perm. Internat. p, l'Explor. de la Mer, Rapp. et Proc.-Verb., v. 75, p. 7-36, 1931.

________ 1934a. Conditions of life in the ocean. Ecol. Monographs, v. 4, p. 421-29, 1934.

________ 1934b. Conditions of life at great depths in the ocean. Ecol. Monoraphs, v. 4, p. 430-39, 1934.

Krogh, August; and Ancel Keys. 1934. Methods for the determination of dissolved organic carbon and nitrogen in sea water. Boil. Bull., v. 67, p. 132-44, 1934.

McCance, R. A., and M. Masters. 1937–38. The chemical composition and acid base balance of *Archidoris brittanica.* Marine Biol. Assn. U. K., v. 22, p. 273-79, 1937-38. Plymouth.

Moberg, E. G. and R. H. Fleming. 1934. The distribution of nitrogen compounds in the sea near southern California. Fifth Pacific Sci. Congr., Canada, 1933. Proc., v. 3, 2085-88, 1934.

Phelps, Austin 1937. The variation in the silicate content of the water in Monterey Bay, California, during 1932, 1933 and 1934. Amer. Phil. Soc., Trans., v. 29, p. 153-88, 1937.

Phifer, Lyman D., and T. G. Thompson. 1937. Seasonal variations in the surface waters of San Juan Channel during the five-year period, January 1931 to December 30, 1935. Jour Marine Research, v. 1, p. 34-53, 1937-38.

Rakestraw, Norris W. 1936. The occurence and significance of nitrite in the sea. Biol. Bull., v. 71, p. 133-67, 1936.

Rakestraw, N. W., and H. P. Smith. 1937. A contribution to the chemistry of the Carribbean and Cayman Seas. Bingham Oceanogr. Coll., Peabody Museums, Bull., v. 6, art 1, 41 pp., 1937.

Redfield, A. C. 1934. On the proportions of organic derivatives in sea water and their relation to the composition of plankton. p. 176–92 in James Johntsone Memorial Volume, Liverpool, Univ. Press, 348 pp., 1934.

Redfield A. C. and Ancel Keys. 1938. The distribution off ammonia in the waters of the Gulf of maine. Biol. Bull , v. 74, p. 83-92 1938.

Redfield, A C.H., P. Smith, and B. Ketchum. 1937. The cycle of organic phophorus in the Gulf of maine. Biol. Bull., v. 73, p. 421–43, 1937.

Robertson, J. D. 1939. The inorganic composition of the body fiuids of three marine invertebrates. Jour. Exp. Biol., v. 16, p. 387-97, 1939.

Robinson, R. J., and H. E. Wirth. 1934a. Report on the free ammonia, albuminoid nitrogen and organic nitrogen in the waters of the Puget Sound area, during the summers of 1931 and 1932. Conseil Perm. Internat p. l'Explor de la Mer, Journal du Conseil, v. 9, p. 15-27, 1934.

____________ 1934b. Free amonia. albuminiod nitrogen and organic nitrogen in the waters of the Pacific Ocean of the coasts of Washington and Vancouver Island. Conseil Perm Internat. p. l'Explor, de la Mer. Journal du Conseil, v. 9, p. 187-95, 1934.

Rogers, C. G. 1938. Textbook of comparative physiology. 2nd ed. New York, Mc Graw-Hill, 715 pp. 1938.

Seiwell, H. R. 1935 The cycle of phosphorus in the western basin of the North Atlantic. I. Phosphate phosphorus. Papers in Physical Oceanogr. and Meteorol., v. 3, no. 4, 56 pp. 1935.

Seiwell, H. R., and G. F. Seiwell. 1938. The sinking of decomposing plankton in sea water and its relationship to oxygen consumption and phosphorus liberation. Amer. Phil. Soc , Proc., v. 78, p. 465-81, 1938.

Strom, K. M. 1936. Land-locked waters. Hydrography and bottom deposits in badly ventilated Norwegian fjords with remarks upon sedimentation under anaerobic conditions. Norske Vidensk. Ak. i Oslo, I. Mat-Naturv. Klasse, no. 7, 85 pp., 1936.

Thompson, T. G.; B. D. Thomas and C. A. Barnes. 1934. Distribution of dissolved oxygen in the North Pacific Ocean. p 203-34 in James Johnstone Memorial Volume, Liverpool Univ. Press, 348 pp., 1934.

Thomsen, Aelge. 1931. Nitrate and phosphate contents of Mediterranean water. Danish Oceanogr. Exped. 1908-1910, v. 3, no. 6, 14 pp., 1931.

____________ 1937. Hydrographical observations made during the *Dana* Expedition 1928–1930. Dana Repts., no. 12, 46 pp., 1937.

Vinogradov, A. P. 1935. Elementary chemical composition of marine organisms. (In Russian) Pt. 1. Laboratoire de Biogeochimie pres l'Acad des Sci., U.R.S.S., Travaux, v.3, p. 63-278, 1935. Leningrad.

——— 1937. Elementary chemical composition of marine organisms. (In Russian) Pt. 2. Laboratorie de Biogeochimie pres l'Acad. des. Sci., U.R.S.S., Travaux, v. 4, p. 5–225, 1937. Leningrad.

——— 1938. Chemical composition of marine plankton. (In Russian.) Inst. Marine Fisheries and Oceanogr. of the U.S.S.R., Trans., v. 7, p. 97–112, 1938. Moscow.

von Brand, Theodor. 1935. Methods for the determination of nitrogen and carbon in small amounts of plankton. Biol., Bull., v 69, p. 221–32, 1935.

——— 1937. Observations upon the nitrogen of the particulate matter in the sea. Biol. Bull., v. 72, p. 1–6, 1937.

——— 1938. Quantitative determination of nitrogen in the particulate matter of the sea. Conseil Perm. Internat. p. l'Explor. de la Mer, Journal du Conseil, v. 13, p. 187–96, 1938.

von Brand, Theodor, N. W. Rakestraw, and C. E. Renn. 1937. The experimental decomposition and regeneration of nitrogenous organic matter in sea water. Biol. Bull., v. 72, p. 165-75, 1937.

——— 1939. Further experiments on the decomposition and regeneration of nitrogenous organic matter in sea water. Biol. Bull., v. 77. p. 285–96, 1939.

Waksman, S. A., and C. E. Renn. 1936. Decomposition of organic matter in sea water by bacteria. III. Factors influencing the rate of decomposition. Biol. Bull., v. 70, p. 472–83, 1936.

Webb, D. A., and W. R. Fearon. 1937. Studies on the decomposition of biological material. Pt. I. Aims, scope and methods. Roy. Dublin Soc., Sci. Proc.. n.s., v. 21, p. 487-504, 1937.

ZoBell, Claude E. 1933. Photochemical nitrification in sea water. Science, v. 77, p. 27–28, 1933.

——— 1935a. The assimilation of ammonium nitrogen by *Nitzschia closterium* and other marine phytoplankton. Nat. Acad. Sci., Proc. v. 21, p. 517–22, 1935.

——— 1935b. Oxidation-reduction potentials and the activity of marine nitrifiers. Abstract. Jour. Bacter., v. 29, p. 78, 1935.

——— 1940. The effect of oxygen tension on the rate of oxidation of organic matter in sea water by bacteria. Jour Marine Research, v. 3, p. 211–23, 1940.

ZoBell, Caude E., D.Q. Anderson. 1936. Observations on the multiplication of bacteria in different volumes of stored sea water and the influence of oxygen tension and solid surfaces. Biol. Bull., v. 71, p. 324–42, 1936.

CHAPTER VIII

BIBLIOGRAPHY

Bethe, A. 1929. Ionnedurchlassigkeit der Korperflache von wirbellosen Thieren des Meeres als Ursache der Giftigkeit von Seewasser abnormer Zusammensetzung. Pflugers Arch., 221, p. 344–362, 1929.

Dakin, W. J. 1935. The aquatic animal and its enivronment. Linnean Soc., Nem. South Wales, proc., v. 60, pts. 1, 2, p. viii–xxxii, 1935.

Ekman, Sven. 1935. Tiergeographie des meeres. Akad Verlagsgesellsch., Leipzig. 542 pp., 1935.

Gislen, T. 1930. Epibiosis of Gullmar Fjord. II. Kristinebergs Zool. Sta. 1877 to 1927, No. 4, p. 1–380, 1930.

Hesse, Richard, W. C. Allee, and K. P. Schmidt. 1937. Ecological animal geography. An authorized, rewritten edition based on "Tiergeographie auf oekologischer Grundlage" by Richard Hesse. John Wiley & Sons. New York. 597 pp., 1937.

Hewatt, Willis G. 1937. Ecological studies on selected marine intertidal communities of Monterey Bay, California. Amer. Midland Naturalist, v. 18, p. 161–206, 1937.

Keys, Ancel. 1933. The mechanism of adaptation to varying salinity in the common eel and the general problem of osmotic regulation in fishes. Roy. Soc., Proc., B, v. 112, p. 184-199, 1933. London.

Macallum, A. B. 1926. Paleochemistry of body fluids and tissues. Physiol. Rev., v. 6, p. 316–357, 1926.

Pantin, C. F. A. 1931. Origin of the body fluids in animals. Biol. Reviews, v. 6, p. 459–482, 1931. Cambridge, England.

Pearse, A. S. 1936. The migrations of animals from sea to land. Durham, N. C., Duke Univ. Press, 176 pp., 1936.

Pratt, Henry S. 1935. A manual of the common invertebrate animals exclusive of insects. Revised. Philadelphia. Blakiston, 854 pp., 1935.

Shelford, V. E., *et al.* 1935. Some marine biotic communities. of the Pacific Coast of North America. Pt. 1. General survey of the communities. Ecol. Monographs, v. 5, p. 250–332, 1935.

CHAPTER IX

BIBLIOGRAPHY

Arber, A. 1920. Water plants. London. Cambridge Univ. Press.

Bigelow, H. B. 1938. Plankton of the Bermuda Oceanographic Expedition. VIII. Medusae taken during the years 1929 and 1930. Zoologica, v. 23, p. 99–189, 1938.

Campbell, M. H. 1934. The life history and post embryonic development of the copepods, *Calanus tonsus* Brady, and *Euchaeta japonica* Markawa. Canada, Biol. Board, Jour., v. 1, p. 1–65, 1934.

Clark, Frances N. 1925. The life history of *Leuresthes tenuis*, an atherine fish with tide-controlled spawning habits. Calif. Fish and Game Comm., Fish Bull. no. 10, p. 1–51, 1925.

Coe, W. R. 1926. The pelagic nemerteans. Harvard Coll., Mus. Comp. Zool., Mem., v. 49, 244 pp., 1926.

——————— 1940. Divergent pathways in sexual development. Science, v. 91, p. 175-82, 1940.

Damas, D. 1905. Notes biologiques sur les copepodes de la mer Norvegienne. Conseil Perm. Internat, p. l'Explor. de la mer, Pub. de Circonstance, no. 22, 23 pp. 1905.

Ellis, B. F. and A. R. Messina. 1940. A catalogue of foraminifera. New York. Amer. Mus. Nat. Hist. 30,000 pp., 1940.

Farran, G. P. 1927. The reproduction of *Calanus finmarchicus* off the south coast of Ireland. Conseil Perm. Internat. p. l'Explor. de la mer, Jour., du Conseil, v. 2, p. 132–43, 1927.

Fritch, F. E. 1935. The structure and reproduction of the algae. Vol., 1, Introduction, Chlorophyceae, Xanthophyceae, Crysophyceae, Bacillariophyceae, Cryptophyceae, Dinophyceae, Chloromonadineae, Euglenineae, colorless Flagallata. New York, Macmillan. 791 pp , 1935.

Gail, F. W. 1922. Photosynthesis in some of the red and brown algae as related to light. Univ, Washington, Puget Sound Biol. Sta., Pub., v. 3, p. 177–193, 1922. Seattle.

Gran, H. H. 1902. Plankton des Norwegischen Nordmeeres von biologischen und hydrografischen Gesichtspunkten behandelt. Norwegian Fishery and Marine Investigations, Rept., v. 2, no.5, p. 1–222, 1902. Bergen.

——————— 1912. Pelagic plant life. p. 307–86 in: Murray and Hjort, Depth of the ocean. London Macmillan, 821 pp., 1912.

Hartge, L. A. 1928. Nereocystis. Univ. Washington, Puget Sound Biol., Sta., Pub., v. 6, p. 207–37, 1928.

Hesse, Richard, W. C. Allee and K. P. Schmidt. 1937. Ecological animal geography An Authorized, rewritten edition based on "Teirgeographie auf eokologischer Grundlage" by Richard Hesse. New York. John Wiley and Sons. 597 pp., 1937.

Hjort, J. 1912. In: Muaray and Hjort, Depths of the ocean. London, Macmillan. 821 pp., 1912.

Hjort, Johan, Gunnar Jahn, and Per Ottestad. 1933. The optimum catch. Hvalradets Skrifter, No. p. 92-127, 1933. Oslo.

Hustedt, F. 1930 et. seq. Die Kieselalgen. In: Rabenhorst's Kryptogamen-Flora, v. 7, 1 Teil, 2 Teil, 576 pp., 1930-1933. Leipzig. Akad. verlagsges.

Hyman, Libbie H. 1940. The invertebrates: Protozoa through Ctenophora. New York, McGraw Hill. 726 pp., 1940.

Johnson, Martin W. 1935. Seasonal migration of the wood-borer *Limnoria ligonrum* (Rathke) at Friday Harber, Washington. Biol Bull., v. 69' p. 427.-438, 1935.

Kofoid, C. A. 1930. Factors in the evolution of the pelagic Ciliata the Tintinnoinea. p. 1-49 in: Contributions to Marine Biology Stanford Univ. Press, 277 pp., 1930.

Kofoid, C. A , and A. S. Campbell. 1929. A conspectus of the marine and fresh-water Ciliata belonging to the subrorder Tintinnoniea, with descriptions of new species principally from the Agassiz Expendition to the eastern tropical Pacific 1904-1905. Calif. Univ., Pub. Zool., v. 34, 404 pp., 1929.

Kofoid, C. A., and T. Skogsberg. 1928. Dinoflagellata: The Dinophysoidae. Report, *Albatros* Exped. 1904-1905. Harvard Coll., Mus. Comp. Zool., Mem., v. 51, 766 pp., 1928.

Kofoid, C. A., and Olive Swezy. 1921. The free-living unarmored Dinoflagellata. Calif. Univ., Mem., v. 5, 538 pp., 1921.

Lebour, M. 1926. A general survey of larval euphausiids, with a scheme for their identification. Marine Biol. Assn. U.K., Jour., v. 14, no. 2, p. 519-27, 1926. Plymouth.

Murray, Sir John. 1913. The ocean: A general account of the science of the sea. London, Williams and Norgate, 256 pp., 1913.

Myers, E. 1936 The life cycle of *Spirella vivipara* Ehrenberg, with notes on morphogensis, systematics and distribution of the foraminifera. Roy. Microsc.. Jour., v. 56, p. 120-46, 1936.

Nicholls, A G. 1933. On the biology of *Calanus finmorchicus* I. Reproduction and seasonal distribution in the Clyde Sea area during 1932. Marine Biol. Assn. U. K., Jour., v. 19, no. 1, p. 83-101, 1933. Plymouth.

——————— 1934. The developmental stages of *Enchaeta norvegica* Boeck. Roy. Soc. Edin., Proc., v. 54, pt. 1, no. 4, p. 31-50, 1934.

Petersen, C. G. Joh. 1918. The sea bottom and its production of fish food. Danish Biol. Sta., Rept. v. 25, 62 pp., 1918. Copenhagen.

Pratt, H. S. 1935 A manual of the common invertebrate animals exclusive of insects. Revised. Phila., Blankiston, 854 pp., 1935.

Ruud, J. T. 1932. On the biology of southern Euphausiidae. Hvlradets Skrifter, no. 2, 105 pp., 1932. Oslo.

Setchell, W. A. 1912. Kelps of the United States and Alaska. U.-S. Senate Document 190, Fertilizer resources of the United States, App. K, p. 130–178, 1912.

Sette, O. E. 1931. Outlook of mackerel fishery in 1931. U. S. Bureau of Fisheries, Fishery Circular no. 4, 20 pp., 1931, *et seq.*

Thompson, W. F. 1919. Spawning of the grunion (*Leuaesthes tenuis*). Calif. Fish and Game Comm., Fish Bull., no. 3, p. 1–29, 1919.

Thompson, W. F. 1937. The theory of the effect of fishing on the stock of halibut. Internat. Fisheries Comm., Report no. 12, 22 pp., 1937.

Tilden, J. E. 1935. The algae and their life relations, Fundamentals of phycology. Minneapolis, Minn., Univ. Press, 550 pp., 1935.

Truitt, R. V. 1939. Our water resources and their conservation. Chesapeake Biol. Laboretary, Contribution no. 27, 103 pp., 1939.

Vaughan, T. W. 1919. Corals and the formation of coral reefs. Smithsonian Inst., Report for 1917, p. 189–276, 1919.

Wilson, D. P. 1935. Life of the shore and shallow sea. London. Ivor Nicholson and Watson. 150 pp., 1935.

CHAPTER X

BIBLIOGRAPHY

Ardley, R. A. B., and N. A. Mackintosh. 1936. The royal research ship *Discovery II.* Discovery Repts., v. 13, p. 77–106, 1936.

Barker, H. A. 1935. The culture and physiology of marine dinoflagellates. Archiv f. Mikrobiol., Bd. 6, 2 Heft, p. 157–181, 1935.

Bauer, L. A., W. J. Peters, J. P. Ault, J. A. Fleming. 1917. The magnetic work of the *Carnegie*, 1909–1916. Carnegie Inst. Washington, Pub. 175, Researches of the Dept. of Terrestrial Megnetism, v. 3, p. 157–165, 1917.

Birge, E. A., and Chancey Juday. 1922. The inland lakes of Wisconsin. The plankton. I. Its quantity and chemical composition. Wisc. Geol. & Nat. Hist. Survey, Bull. no. 64, Sci. Ser., no. 13, p. 1–222, 1922.

Bowditch, Nathaniel. 1934. Instruments and accessories in navigation. p. 11–40 in: American Practical Navigator, no. 9 Washington, D. C., 852 pp., 1934.

Brooks, Charles F. 1932. Oceanography and meteorology. Physics of the earth, v. 5, Oceanography, p. 457–519, Nat. Research Council, Bull no. 85, 1932. Washington, D. C.

Buchanan-Wollaston, H. J. 1925. A recording current meter. Conseil Perm. Internat. p. l'Explor de la mer, Pub. de Circonstance no. 86, 14 pp., 1925.

———— 1930. Note a self-recording current meter. Conseil Perm. Internat. p. l'Explor. de la mer, Rapp. et Proc.-Verb., v. 64, p. 33, 34, 1930.

Carruthers. J. N. 1930. Eurther investigations upon the water movements in tne English Channel. Marine Biol. Assn. U. K., Jour., v. 17, p. 241–275, 1930.

Defant, A. 1929. Dynamische Ozeanographie. Naturwissensch. Monographien u. Lehrbucher, Bd. IX, Einfuhrung in die Geophysik III, 222 pp., 1929. Berlin.

Ekman, V. W. 1905. Kurze Beschreibung einer Propellerstrommessers. Conseil Perm. Internat. p. l'Explor. de la Mer, Pub. de Circonstance, no. 24, 4 pp., 1905.

Ekman, V. W. 1926. On a new repeating current-meter. Conseil Perm. Internat. p. l'Explor, de la Mer, Pub. de Circonstance, no. 91, 27 pp., 1926.

———— 1932. An improved type of current-meter. Conseil Perm. Internat. p. l'Explor. de la Mer, Jour. du Conseil, v. 7, p. 3–10, 1932.

Emery, K. O., R. S. Dietz. 1941. Gravity coring instrument and mechanics of sediment coring. Geol. Soc. Amer., Bull., v. 52, p. 1685–1714, 1941.

Fulton, T. W. 1897. The surface currents of the North sea. Scottish Geogr. Mag., v. 13, p. 636–645, 1897. Edinburgh.

Gran, H. H. 1932. Phytoplankton. Methods and problems. Conseil Perm. Internat. p. l'Explor. de la Mer, Jour. du Conseil, v. 7, no. 3, p. 343–358, 1932.

Hardy, A. C. 1936. The ecological relations between the herring and the plankton invastigated with the plankton indicator. Pt. I. The object, plan and methods of the investigation. Marine Biol. Assn. U. K. Jour., v. 21, p. 147–177, 1936.

Helland-Hansen, Bjorn. 1914. Eine Untersuchungsfahrt im Atlantischen Ozean mit dem Motorschiff *Armauer Hansen* in Sommer 1913. Intcrnat. Rev.d. ges. Hydrobiol. u. Hydrogr., Bd. VII, p. 61–83, 1914.

Hough, Jack. 1939. Bottom-sampling apparatus. p. 631–664 in Recent Marine Sediments. A. Symposium. Tulsa, Okla., A.A.P.G. 736 pp., 1939.

Idrac, P 1931. Le nouvel enregistratuer de courants sousmarins. Inst. Oceanographique, Ann., v. 10, p. 99–116, 1231. Paris.

Iselin, C. O'D., II. 1933. Some phases of modern deep-sea oceanography. Smithsonian Rept. for 1932, p. 251–67, 1933.

Jacobsen, J. P. 1909. Der Libellenstrommesser. Conseil Perm. Internat. p l'Explor. de la Mer, Pub. de Circonstance, no. 51, 20 pp., 1909.

Kunne, Cl. 1933. Weitere Untersuchungen zum Vergleich der Fangfahigkeit verschiedener Modelle von vertikal fischeden Plankton-Netzen. Conseil Perm. Internat. p. l'Explor. de la Mer, Rapp. et Proc.,-Verb., v. 83, 36 pp., 1933.

Marshall, S.M., A. G. Nicholls, and A. P. Orr. 1934. On the biology of *Calanus finmarchicus*. V. Seasonal distribution size, weight, and chemical composition in Loch Striven in 1933, and their relation to the phytoplankton. Marine Biol. Assn. U. K., Jour., v. 19, no. 2, p. 793–828. 1934.

Moberg, E. G., and John Lyman. 1942. The *E. W. Scripps*. Scripps Iast. Oceanogr., Records of Observations, no. 1, p. 3–12, 1942.

Mosby, H. 1940. An oceanographic thermo-sounder. Union Geod. et Geophys. Intern., Assn. d'Oceanographie Phys., Proces-Verb., no. 3, p. 190-91, 1940.

Murray, Sir John, and Johan Hjort. 1912. The depth of the ocean. Macmillan, London, 82P pp., 1912.

Nansen, Fridtjof 1906. Methods for measuring direction and velocity of currents in the sea. Conseil Perm. Internat. p. l'Explor. de la Mer, Pub. de Circonstance, no. 34, 42 pp., 1906.

Parker, W. E. 1932. Additional oceanographic instruments. Physics of the Earth, v. 5, Oceanography, p. 442–450. Nat. Res. Council, 581 pp , 1932.

Petersen, C. G. Joh. 1918. The sea bottom and its production of fish food. I. Apparatus for investigation of the sea bottom. Danish Biol. Station. Rept., no. 25, p. 1–6, 1918.

Pettersson, H. 1915. A recording current meter for deep sea work. Roy. Met. Soc., London, Quart. Jour., v. 41, p. 65–69, 1915.

Pettersson, O. 1913. Photographisch registrierender Tiefenstrommesser fur Dauerbeobachtungen. Ur. Svenska Hydr. Biol. Komm. Skr., v. 5, 8 pp., 1913. Goteborg.

Piggot, Charles S. 1936. Apparatus to secure core samples from the ocean bottom. Geol. Soc. Amer., Bull., v. 47, p. 675-684, 1936.

Pillsbury, John E. 1891. The Gulf Stream. Methods of the investigation and results of the research. U. S. Coast and Geod. Surv.. Rept. for 1880, Appendix no. 10, p. 461-620. 1891.

Pinke, F. 1938. The expeditionary ship and the naval personnel's share. Snellius-Exped. in the eastern part of the Netherlands East-Indies 1929-1930, v. 1, p. 47-48, 1938.

Rauschelbach, H. 1929. Beschreibung eines bifilar aufgehangten, an Bord elektrisch registrierenden Strommessers. Ann. d. Hydrogr. u. Mar. Meteor., Beiheft, 71 pp., 1929.

Redfield, A. C. 1939. The history of a population of *Limacina retroversa* during its drifts across the Gulf of Maine. Biol. Bull., v. 76, p. 26-47, 1639.

Revelle, R. R., and F. P. Shepard. 1942. Bottom currents at the California sea floor (to be submitted to Geol. Soc. Amer., Bull.)

Rude, G. T. 1928. Instructions for tide observations. U. S. Coast and Geod. Surv., Spec. Pub. no. 139, 78 pp., 1928.

———— 1938. New methods of marine surveying. Amer. Phil. Soc, Proc., v. 79, p. 9-25, 1938.

Schmidt, Johs. 1929. Introduction to the oceanographical reports. Danish *Dana*-Expeditions 1920-1922 in the North Atlantic and the Gulf of Panama. Oceanogr. Repts., no. 1, p. 1-20, 1929.

Seiwell, H. R. 1929. Patterns for conical silk plankton-nets of one meter and half-meter diameters. Conseil Perm. Internat. p. l'Explor. de la Mer, Jour. du Cynseil, v. 4, p. 99-103, 1929.

———— 1940. Anchoring ships on the high seas. U. S. Naval Inst., Proc., v. 66. p. 1733-1740, 1940

Soule, Floyd M. 1932. Oceanographic instruments and methods. Physics of the Earth, v. 5, Oceanography, p. 411-441. Nat. Research Council, Bull. no. 85, 581 pp., 1932.

Spieses, H. C. Fritz. 1932a. Das Forschunsschiff und seine Reise. Deutsche Atlantische Exped. *Meteor* 1925-1927, Wiss. Erg., Bd. 1, 442 pp., 1932.

———— 1932b. Mooring of ships in deep water for the direct measurement of currents. Hydrogr. Rev., v. 9, no. 1, p. 1-38, 1932.

Spilhaus, Athelstan F. 1938. A bathythermograph. Jour. Marine Research, v. 1, p. 95-100, 1938.

———— 1940. A detailed study of the surface layers of the ocean in the neighbourhood of the Gulf Stream with the aid of

rapid measuring hydrographic instrnments. Jour. Marine Research, v. 3, p. 51–75. 1940.

Stetson, H. C. 1937. Current measurements in the Georges Bank canyons. Nat. Research Council, Amer. Geophys. Union, Trans., p. 216–219, 1937.

Sverdrup, H. U. 1929. The waters on the North Siberian Shelf. Norwegian North Polar Exped. with the *Maud* 1918–1925, Sci., Results, v. 4, no. 2, 131+75 pp., 1929. Bergen.

Sverdrup, H. C., and Odd. Dahl. 1926. Two oceanographic current recorders desinged and used on the *Maud* Expedition. Optical Soc. Amer., Jour., v. 12, p· 537–545, 1926.

Tait, J. B. 1930, The water drift in the northern and middle area of the North Sea and in the Faeroe-Shetland Channel. Fishery Coard for Scotland. Sci., Invest. no. 4, 56 pp., 1930. Edinburgh.

Thompson, Thomas G. 1936. The motorship *Catalyst*—A seagoing laboratory. Jour. Chem. Education, v. 13, p. 203–209, 1936.

Thorade, Hermann. 1933. Methoden zum Studium der Meeresstromungen: Abderhalden's Handbuch der biologiscken Arbeitsmethoden, Abt. II, Teil 3, p. 2865–3095, Berlin, 1933.

Tibby, R. B 1939. Report on returns of drift bottles released off southern California, 1937. Div. fish and game of Calif., Bur. Marine Fisheries, Fish Bull. no. 55, 36 pp., 1939.

Uda, M. 1935. The results of simultaneous oceanographical investigations in the North Pacific Ocean adjacent to Japan made in August, 1933 Japan, Imperial Fisheries Exper. Sta., Jour., no. 6, 130 pp., 1935.

Veatch, A. C., and P. A. Smith. 1939. Atlantic submarine valleys of the United States and the Congo Submarine Valley. Geol. Soc. Amer.. Spec. Paper, no. 7, 101 pp., 1939.

Winsor, C. P., and G. L. Clarke. 1940. A statistical study of variations in the catch of plahkton nets. Jour. Marine Research v. 3, p. 1–34, 1940.

Witting, R. 1923. Om en till skeppsbord reporterande strommatare. Festsschrift f. Otto Pettersson, p. 90–96, 1923. Helsingfors.

Wust, Georg. 1932. Programm, Ausrustung, Methoden der Serienmessungen. Deutsche Atlantische Exped. *Meteor* 1925–1927, Wiss. Erg., Bd. IV, 1 Teil, p. 1–59, 1932.

——————— 1933. Thermometric measurement of depth. Hydrogr. Rev., v. 10, no. 2, p.28–49, 1933.

ZoBell, Clavde E. 1941. Studies on marine bacteria. I. The cultural repuirements of the heterotrophic aerobes. Jour. Marine Research, v. 4, p. 42–75, 1941.

CHAPTER XII

BIBLIOGRAPHY

Bjerknes, V., and different collaborators. 1910. Dynamic meteorology and hydrography. Pt. I. Statics. Carnegie Inst. Washington, Pub. no. 88, 146 pp.+ tables. 1910.

——— 1911. Dynamic meteorology and hydrography. Pt. II. Kinematics. Carnegie Inst. Washington, Pub. no. 88, 175 pp., 1911.

Defant, A. 1929. Dynamische Ozeanographie. Naturwissenschaftliche Monographien und Lehrubucher, Bd. 9, III, 222 pp., 1929. Beɹlin.

Helland-Hansen, B. 1930. Physical oceanography and meteorology. *Michael Sars* North Atlantic Deep-Sea-Exped., 1910, Rept. Sci. Results, v. 1, art. 2, 217 pp., 1930.

Hesselberg, Th. 1918. Uber die Stabilitatsverhaltnisse bei vertikalen Verschiebungen in der Atmosphare und im Meer. Ann. d. Hydr. u. Mar. Meteor., p. 118–29, 1918.

Hesselberg, Th., and H. U. Sverdrup. 1915. Die Stabilitatsverhaltnisse des Seewassers bei vertikalen Verschlebungen. Bergens Museums Aarbok 1914–15, No. 15, 16 pp., 1915.

Willimzik, M. 1929. Die Stromungen im subtropischen Konvegenzgebiet des Indischen Ozeans. Berlin, Universitat. Institut. f. Meereskunde, Veroff., N. F., A. Geogr.-naturwiss. Reihe, Heft 14, 27 pp., 1929.